निवेदन

उपन्यास करतल़ रंगभूमि है, हथेली पर की नाटकशाला है। इसलिए उपन्यास के पाठकों को नाटक देखने वाले प्रेक्षक भी बनना पड़ता है।

पाठकों की कल्पना को सदा जाग्रत रहना चाहिए। उसका सोना एक ओर रहे, मगर उसका ऊँघना भी रसास्वादन में भंग उत्पन्न करेगा। परिसरों की कल्पना करते समय, दृश्यों का चित्रण कर लेते समय, व्यक्तियों का परिचय कर लेते समय, उनकी बातचीत भिन्न-भिन्न वाणियों के साथ सुनते समय पाठकों को सिनेमा वाक्-चित्र के प्रेक्षकों की तरह बनना पड़ता है। ऐसा न करें तो पढ़ना सार्थक न होगा।

सबसे प्रधान बात है—सहानुभूति। यदि वह न हो तो नंदनवन भी रेगिस्तान बने।

कृति-रचना की तरह कृति का रसास्वादन भी एक सृष्टि कार्य है। जो सृष्टि-कार्य नहीं हैं वे सारे कर्म रस-रहित हो जाते हैं। ऐसे कर्मों से हमें जो मिलता है वह आनन्द लेना नहीं, उकताना है, बेज़ार होना है। इसलिए उपन्यास पढ़नेवालों की प्रतिभा में उसकी सृष्टि फिर से करनी पड़ती है। रसास्वादन एक इमारत से दूसरी इमारत को पहुंचाई जानेवाली वस्तु की भांति नहीं है; नये सिरे से जोतकर, बोकर फुलवारी को बढ़ाने की भांति वह एक सजीव, प्राणों से पूर्ण क्रीड़ा क्रिया है।

मेरे इस प्रथम उपन्यास के पाठकों से मेरा एक निवेदन है। इसे कहानी के कोलाहल के लिए न पढ़ें। सावधान-से सचित्त सजीव हो पढ़िए। यहां जो चित्रित है वह पर्वत-प्रान्त के जीवन-सागर में एक बूंद है। नये गांव जानेवाले वहां के लोगों एवं जीवन के बारे में झट कोई निर्णय किये बिना, थोड़ी देर सब्र से रहकर धीरे-धीरे परिचय से लोगों की तथा उनके जीवन की जानकारी जैसे कर लेते हैं वैसे इस उपन्यास की जंगली-दुनिया में—वन्य संसार में—प्रवेश करने वाले पाठकों को बरतना पड़ता है। यानी, एक बार पढ़ने मात्र से 'हमने सब कुछ जान-लिया' कहनेवाले उन्हीं की तरह हंसी के पात्र होंगे जैसे मोटर में बैठकर जाने

वाले एक गांव की एक गली में से होकर दूसरी गली से पार होकर कहते हैं कि हमने उस गांव का पूरा परिचय प्राप्त कर लिया है।

इस उपन्यास को लिखते समय, उसके बाद इसे बार-बार पढ़ते समय मुझे जो रस-सुख मिला है, उसका किंचित् सुख भी पाठक यदि पावें और वह मुझे ज्ञात हो जाय तो समझूंगा कि मेरी यह कृति सार्थक हो गई।

कई सौ पृष्ठों के इस बड़े उपन्यास की अनंत श्रद्धा से, अमित श्रम से, विपुल विश्वास से छपाई के लिए योग्य नकल करके देने वाले चि० विजय देव का, छपाई के लिए भेजने के समय से लेकर, पांडुलिपि सुधारने आदि सभी कार्य मन लगाकर निभानेवाले मेरे मित्र श्री कूडली चिदंबरम् जी का, पुस्तक के आवरण के लिए काजाण पंछियों का मनोहर चित्र बनाकर देनेवाले श्री० ए० सीताराम जी का मैं कृतज्ञ हूं।

मैं यह उपन्यास जब लिख रहा था तब हर सप्ताह बहुत दूर से कड़ी धूप में बिना चूके मेरे यहां आकर, उसे पढ़वाकर, सुनकर बहुत आनंद पाकर मुझे भी आनंद एवं उल्लास देने वाले हर एक मित्र को मैं अपने वंदन अर्पित करता हूं। क्योंकि कवि के लिए सहानुभूति आधी स्फूर्ति होती है।

मैसूर
१६ दिसंबर, १९३६.

कुवेम्पु

अनुक्रम

१

रामतीर्थ की ओर कल्लुसार के मार्ग पर

दुपहर का समय था। ग्रीष्म की चिलचिलाती प्रखर धूप वदन को झुलसा रही थी। तीर्थहल्ली के कल्लुसार के मार्ग से तुंगा नदी को पार करनेवाले दो युवक धूप से थककर, पसीने से तर होकर वाहिनी के दक्खिन तट पर खूब मस्ती से वढ़े हुए पेड़ों की हरी छाया का आश्रय लेने के लिए मानो जल्दी-जल्दी कदम वढ़ा रहे थे। उनको देखते ही मालूम होता था कि वे धनी परिवार के हैं। वहुत दूर से चलकर आने के कारण, थकावट के मारे, नींद न होने से और खाना न मिलने से सदावहार कांतियुक्त रहनेवाले उनके चेहरे तनिक कुम्हला-से गये थे।

एक तो ऊंचा, लंवा, पतला था। तो भी वह ताकतवर, नीरोग, मजवूत था जो कि उसके चलने के गंभीर दर्प से मालूम होता था। धूप की आंच खूव तेज होने पर भी उसने सिर पर टोपी नहीं पहनी थी, सिर पर छाता भी तना हुआ नहीं था। क्रॉप तितर-बितर होकर सारे सिर पर एक तरह की धीर स्वच्छंदता से फैला हुआ था। उसके सिर के वाल कुछ लंवे थे, जो काजल की तरह काले, मुलायम और धुंघराले थे। एक-दो लटें पसीने से भीगी हो, माथे पर टेढ़े-मेढ़े चिपक करके सुशोभित हो रही थीं। उस गेहुएं रंग के माथे पर गहरे काले रंग की अलकावली रमणियों की सुंदरता की मानो याद दिला रही थी। लेकिन मुख-भंगि में अवलता का भाव तिल भर भी नहीं था। उसके वदले में रसिकता फूट पड़ती थी। वालों में काढ़ी हुई मांग कंघी न करने से तितर-वितर हो गयी थी। ज्यों की त्यों नहीं थी। काले वालों पर फेंकी 'मंगलोर की बुकनी' की भांति लाल धूल के मुलायम, चिकने कण लगे थे जो यह सूचित करते थे कि उसने दूर का प्रवास किया है और उसके प्रवास के मार्ग की हालत कैसी थी? उसकी आंखें यद्यपि काफी विशाल नहीं थीं तथापि उज्ज्वल, मर्मभेदी, योगी के नयनों की भांति अंतर्मुखी थीं, जो जानकारों में गौरव का भाव तथा अनजानों में मानो मोह उकसाती, उद्वेलित करती थीं। नाक लंवी थी और छोर में तोते की चोंच की तरह झुकी थी। वह ऐसी लगती थी कि सृष्टि के रहस्यों को अपनी चोंच से मारकर, 'अंदर घुसकर देखती हूं,' कह रही हो। उस पर तनिक उभरी हरी नस सुन्दरता एवं

सवलता को गंभीरता दे रही थी। होंठ झुके धनुप के समान थे। अधर धनुप के सहारे से ही अपनी शिथिलता को तजकर पौरुपवाली लाल रंग की डोरी की भांति एक-दूसरे का सहारा लेकर, एक-दूसरे को छाती से लगाकर, एक-दूसरे पर अवलंवित होकर अप्रतिहत वने हुए थे। यानी वह धनुप सुरचाप की अपेक्षा हरचाप से ही अधिक मिलता-जुलता-सा था। गाल होंठों की तरह यद्यपि मनोहर तथापि कोमल नहीं थे। पतंगों को आकर्पित करने वाली दीप-द्युति के समान सुन्दर थे। गाल छोटे, गोल एवं नुकीले थे, जो एक प्रकार की कठोर साधना एवं हठ को सूचित करते थे। तरुणाई एवं यौवन के वीच में खड़े होकर, उन दोनों अवस्थाओं के श्रेष्ठ अंशों से समाविष्ट उसका शरीर एक लंवे कुरते से आवृत्त होकर विशाल उभरे उर प्रदेश का प्रदर्शन कर रहा था। उसका पहना खादी का कुर्ता और ढीली पहनी धोती प्रवास की धूल से मैली हो गयी थी। कुल मिलाकर पौरुप, आध्यात्मिकता, अंतर्मुखता, रसिकता, मेधाशक्ति, औरों के लिए कष्ट-दायक न होने पर भी, अपने लिए कष्टदायक हो सकनेवाला हठभाव, इनसे युक्त वह भव्य व्यक्ति था। उसके साथ में जो छोटा था उसमें वड़े की तरह किसी प्रकार की भोग सामग्री नहीं दिखाई देती थी। उसकी सरल सुन्दरता ही एक गंभीर भोग वनी हुई थी।

उसके साथ जो छोटा युवक था उसमें उतना विशेप व्यक्तित्व नहीं था। वह थोड़ा नाटा, मोटा, अधिक सुखापेक्षी की तरह दिखाई पड़ता था, वह भी खादीधारी था, उसके सिर पर एक सफेद टोपी थी, वदन पर नीले रंग का कोट था, कोट की छोटी जेव में एक फाउण्टेन पेन था, कलाई पर घड़ी थी, अपने लिए वड़ी लगनेवाली खादी की धोती पहने हुए था। वदन सरलता, सुशीलता से युक्त होकर मुग्ध वन गया था। दृढ़ मनस्कता या दक्षता उसमें दिखाई नहीं देती थी।

ऐसी कड़ी धूप में तीर्थहल्ली के कल्लुसार के मार्ग पर चलना मुश्किल था। मगर उन दोनों के पांवों में जूते थे। इसलिए वे विना दर्द चल सकते थे। छोटा इधर-उधर देखे विना चल रहा था। वड़ा जोर-जोर से चल तो रहा था, मगर वार-वार, घड़ी-घड़ी सिर चारों ओर घुमाकर खुशी से देख रहा था किसी सुखी आशा के ख्याल से। रामतीर्थ के नजदीक आते ही जो नदी के ऊपर मार्ग के वीच में था उसकी चाल धीमी पड़ गई, और अंत में निश्चल हो गई। जव वह तीर्थहल्ली में पढ़ता था तव प्रतिदिन वह इस तुंगा नदी पर और रामतीर्थ को आया करता था। यह उसको याद आया। उसने देखा कि कुछ लड़के तैर रहे थे। उसको अपने तैरने की याद आई। वहां की स्थिति पहले जैसे थी वैसी ही दीख पड़ी। परंतु वह खुद पहले जैसा नहीं था। पर्वतों की दरार में से वहकर आई नदी उन दिनों की तरह आज भी पर्वतों की दरार में ओझल हो जाती थी। तुंगा के दोनों तटों पर उन दिनों के जैसे ही जंगल माला की तरह खड़े हुए थे। उन दिनों में जो पेड़

थे उनमें से कुछ आज भी हैं। नदी के बीच में सोई बड़ी-बड़ी चट्टानों की राशि भी पहले की तरह आज भी थी। परंतु एक तो प्रवाह में लुढ़ककर गिर गई है। चट्टान से चट्टान पर छलांग मारती जलराशि समर्थित होकर फेनिल-फेनिल, तुंतुर-तुंतुर हो, घूर्णित हो, अंत में लहरें-लहरें बनकर धूप में चमक-चमककर उस दिन की भांति आज भी लीलामगन हुई जैसी दीख रही है।

नहीं आनेवाले तथा वहीं खड़े रहे, बड़े भाई को छोटे भाई ने पुकारा। बड़े भाई ने चौंककर तुरंत घूमकर देखा और कदम आगे बढ़ाया। उसके होंठों पर एक मुस्कुराहट वक्रता दिखाकर गायब हो गई कितना परवश थी मैं! सोचकर।

बड़ा जब पास आया, छोटे ने पूछा, "इस धूप में क्या देख रहे थे, भैया ?"

"लड़के तैर रहे थे; उनका तैरना देखकर मुझे अपना तैरना भी याद हो आया तो वैसे ही खड़ा-खड़ा देखते रह गया। वे आज भी वही पत्थर का खेल खेल रहे हैं जो हम खेला करते थे।"

"आओ, चलें! देर हो गई है। अब घर पहुंचें तो बस···कितनी कड़ी धूप है!···"

"वे अभी तक आये ही नहीं···या हम ही गाड़ी ले जाएं ?"

दोनों ने अपना चलकर आया कल्लुसार का मार्ग देखा, इस किनारे से उस किनारे तक। वे दोनों करीब दो फर्लांग चलकर आये थे। कल्लुसार और डेढ़ फर्लांग था।

छोटे भाई ने नाराज़ हो कहा, "वे अभी तक क्या कर रहे हैं? दो ट्रंक लाने में कितनी देर लगती है ?"

बड़े भाई ने कहा,"बाज़ार में शायद कोई काम रहा हो।" फिर दोनों जल्दी-जल्दी आगे बढ़े।

छोटे भाई ने कहा, "काम क्या होगा? होटल गये होंगे। हां, पुट्टण्ण जहां जाता है वहां ऐसा ही होता है।"

फिर आधा फर्लांग चलने के बाद बड़े ने घूमकर देखा और कहा, "वह देखो, वहां आ रहे हैं।"

छोटे भाई ने भी घूमकर देखा और कहा, "वह कौन हैं? दूसरे कौन हैं साफे वाले ?"

"न जाने कौन हैं? दूर से तो मालूम नहीं होता।"

दोनों ने नदी का पुल पार किया। पेड़ों से भरे तट पर पहुंचकर आगे बढ़े। पेड़ों की छाया निर्मल सरसी की भांति शीतल थी। कुरुवल्ली के अश्वत्थवृक्ष के चबूतरे के पास उनके घर की कमानवाली बैलगाड़ी खड़ी थी। जुते हुए दोनों बैल सोकर उठे थे और अधमुंदी आंखों से खड़े हो पागुर कर रहे थे। बार-बार आकर अपने ऊपर बैठने वाली मक्खियों को अपनी पूंछ से भगा देते थे। कई बार गर्दन के

निचले भाग पर तथा सिर पर आकर बैठनेवाली मक्खियों को सिर हिलाकर भगाते समय उनके गले में बंधी घंटियों की आवाज़ संगीत की आठ-दस ध्वनियों को सुनाकर थम जाती थी। दोनों बैलों में एक काला था, दूसरा भूरा। दोनों भाई गाड़ी के पास पहुंचे तो काला बैल घंटी की ध्वनि सुनाकर खड़ा हो गया। बड़े भाई ने थोड़ा पीछे हटकर कहा, "रामू, आगे मत बढ़ना। बैल सींग मारेंगे। जो पीछे रह गये हैं उनके आने पर ही गाड़ी में बैठेंगे।" इतना कहकर अपने डर पर आप ही मुस्कराया।

"अच्छा, हम क्या इन बैलों के लिए नए हैं? बैल हैं तो क्या, उनको हमारी पहचान नहीं होती?" कहकर छोटा कुछ आगे बढ़ा और बैल की पीठ थपथपाकर बोला, "नंदी, उठो।"

वह भला जानवर उठकर खड़ा हुआ और आगंतुक को देखा। उसी आंखों से किसी ज्ञान या अज्ञान का पता न लगा, तो भी छोटे ने समझ लिया कि बैल ने उसको पहचान लिया है, इसलिए उसको खुशी हुई। उसकी गर्दन के नीचे के चमड़े पर हाथ फिराकर प्यार दिखाया, फिर दूसरे बैल के पास गया, तो वह उद्वेग से उछल-कूद करने लगा। छोटा भाई छलांग मारकर पीछे खड़ा हुआ। उसे देखकर बड़ा भाई खूब हंसा और कहा, "मैंने तुझसे कहा था न?"

छोटा भाई तनिक शरमाकर, आंखें लाल करके काले बैल को देखते और "यह लुच्चा लछमन, अपना स्वभाव कैसे छोड़ेगा? नया-नया जब लाया गया था, तब इसने गाड़ीवान को ही सींग मारा था न?" कहते हुए बड़े भाई के पास आया।

दोनों भाइयों को वह बैलगाड़ी और बैलों को देखकर खुशी हुई कि मानो उन्होंने अपने घर के लोगों को देखा हो। उनको देखने से उनके मन पर छाये हुए मैसूर, चामुंडी पहाड़ी, राजमहल, कुक्कन ग्राम का तालाब, अठारा कचहरी, हैरफूल, कालेज, लोगों की भीड़ आदि सब गायब हो गए और उनके बदले अपना घर, जंगल, गोठ, खेत, गोरू, बाग, नौकर-चाकर आदि छा गए और मन की आंखों के आगे गुज़र गए। इतना ही नहीं, पर अपनों को घर ले जानेवाले जानवरों के प्रति उनके मन में प्यार के सिवा दूसरे किसी भाव के लिए गुंजाइश नहीं थी।

रामय्य को मालूम हुआ कि लछमन को छेड़ना खतरनाक है; इसलिए वह नंदी के पास गया और कई तरह से उसे चूमने-पुचकारने लगा। बड़ा हूवय्य नरम ज़मीन पर बैठकर ऊपर पेड़ों पर चहकनेवाले पक्षियों को एक शाखा से दूसरी शाखा पर उड़कर बैठते हुए देखता रहा और सामने दिखाई देनेवाली नदी के उस पार मकान-मंदिरों की तरफ, पेड़ों की वितान की दरार में से सिर पर दिखाई देनेवाले नीले आकाश की ओर और यहां-वहां थिरकनेवाले सफेद ऊनी की भांति के बादलों की ओर देखते अंतर्मुखी हो गया। उसके मन में कई विचार-चित्र सदा चमकते

रहे। अपनी शिक्षा, विद्या, अपना ध्येय, अपने मार्ग में आनेवाली कठिनाइयां, अपनी विधवा माता तथा खुद पर रहनेवाली अपने चाचा की असूया—इत्यादि बातें उसके मन में तैरने लगी थीं कि पेड़ पर एक कोयल ने 'कुहू-कुहू' की रट लगा दी। हूवय्य एक दुनिय से दूसरी दुनिया में गिरनेवाले की तरह जागकर ऊपर देखने लगा। कोयल दिखाई पड़ी। हरे पत्तों के बीच डाली पर बैठकर कुहुकने लगी थी। उसकी कुहुक मानो उससे कह रही थी "मेरी तरह बनो, मेरी तरह बनो।" इतने में दो कुत्तों ने दूर के घर में जूठे पत्तलों के लिए झगड़ते, भौंकते शोर मचाया। एक ने दूसरे को गुर्राकर अच्छी तरह काटकर भगा दिया। सारे गांव को मानो जगाते हुए कुत्ता कुय्यों-कुय्यों चीखते-चिल्लाते चला गया।

रामय्य ने पीछे घूमकर देखा और कुछ ज़ोर से अधिकार-वाणी से पूछा, "इतनी देर क्यों हुई?"

हूवय्य ने भी घूमकर देखा। गाड़ीवान निंग उसका भारी ट्रंक ढोकर धीरे-धीरे चला आ रहा था। उसके चेहरे पर पसीने की बूंदें छलछला आई थीं। सिर पर बंधा लाल कपड़ा एक ओर सरककर झूल रहा था। उसकी चोटी मनमाने फैल गई थी। किसी से दान में प्राप्त जो कोट उसने पहना था उसके बटन नहीं थे। इसलिए उसकी तोंद का प्रदर्शन हो रहा था। यह तोंद चरबी के कारण बढ़ी हुई नहीं थी, परंतु कटहल की जितनी मोटी ज्वर की गांठ के कारण बनी थी। उसने घुटने तक जो धोती पहनी थी, वह मैली-कुचैली बन गई थी। एक पांव में मनौती के चांदी के कंगन-सा कड़ा था। दाढ़ी के बाल आधा इंच बढ़े हुए थे। पेट को पहाड़ की तरह मान लें तो छाती कंदरा के समान थी। उसको देखने से क्रूर से क्रूर आदमी का हृदय भी पिघल जाता। ट्रंक के भारीपन से वह ऐसे हांफता आ रहा था कि मानो उसकी कील कहीं टूटकर गिरी हुई है। रामय्य के सवाल का जवाब भी वह नहीं दे सका। उसने हूवय्य के सहारे से ट्रंक को गाड़ी में रखा; उसांस छोड़ते हुए, हांफते हुए लाल कपड़े से माथे पर की पसीने की बूंदें पोंछकर उसे गाड़ी में फेंक दिया। उसको देखने से ऐसा लगता था मानो गांव के सारे रोग एवं दरिद्रता उसमें घर कर चुकी हों, उसमें साकार हो उठी हों।

रामय्य ने पूछा, "वह कहां गया रे? न जाने क्यों इतनी देर हुई?"

"क्या कहूं? कहिये। इस धूप में पांव उठते ही नहीं। हां जी, इस ट्रंक में क्या रखा है? लोहे से भी भारी होंगे, लगता है!"

"इसमें किताबें हैं, रे!"

"कागज़ भी इतने भारी होते हैं? आप लोग, न जाने, इतनी पुस्तकें कैसे पढ़ते हैं! एक घड़ी भी मैं इनको ढो नहीं सकता।"

रामय्य को हंसी आई। उसने हूवय्य की ओर देखा। वह भी हंस रहा था।

इतने में निंग नदी की ओर की पगडंडी की तरफ देखते हुए बोला, "लीजिये, वे भी आ गये न ?"

पुट्टण्ण और एक ट्रंक हाथ में उठाकर धीरे-धीरे आ रहा था। वह सांवले रंग का आदमी था। सिर पर हासनवाली काली टोपी थी। इससे न क्राप दीखता था, न चोटी दीखती थी। यदि शोध किया जाता तो तेल की स्निग्धता काफी मिल जाती। वटन थे, पर गरमी के मारे खुले थे जिससे अंदर की मैली कमीज अपना प्रदर्शन कर रही थी। वह कमीज सिलाते समय साफ-सुथरी थी, पर धीरे-धीरे वह अपनी सफेदी खो चुकी थी। वह न वहुत सफेद थी, न काली थी; मटमैली थी, कह सकते हैं। मगर उसकी पहनी धोती पैरों तक थी। तो भी वह सफेद कहला लेने का प्रयत्न कर रही थी, पर उसकी सफेदी नहीं रह गई थी। कुल मिलाकर उसके पहनावे को देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह एक सेवक है। रंग काला था, पर मजवूत था। उसे देखकर ऐसा लगता था कि उसने उसी दिन दाढ़ी वना ली है। छाती चौड़ी थी, वदन सशक्त था, वह इनके कारण, एक तरह से प्रतिरोध करनेवाली मूर्ति की तरह दिखता था। उसको देखने से त्रिकोण की याद आती थी, न कि वृत्त की। लेकिन स्वभाव से वह चक्र की तरह लुढ़कते रहनेवाला था, त्रिकोण की तरह पग-पग पर गिरनेवाला नहीं था। उसकी उम्र अंदाजन पैंतीस वर्ष की होगी।

हूवय्य या रामय्य से कोई पूछता कि 'पुट्टण्ण' कौन है ? तो जवाव देना मुश्किल होता। यदि जवाव देते भी तो शायद कहते कि वह 'हमारे घर में रहता है' या 'हमारी जात का है'। क्योंकि वह उनका रिश्तेदार नहीं था। न वह उनका सेवक था। वाहरवाले कोई पूछते तो कह सकते थे, "वह एक वड़ा वलवान शिकारी है।" वह वढ़ई का काम, लोहे का काम, वंदूक का काम, वेंत का काम आदि दस-एक हुनर जानता था। लेकिन इनमें से एक का भी उसने अपनी कमाई के लिए उपयोग नहीं किया। यह वात नहीं थी कि उसे पैसे नहीं चाहिए थे। वह एक तरह का आरामतलव व्यक्ति था। कड़ी वात करनेवाले उसे निरा आलसी भी कहते थे। उसने शादी नहीं की थी। उसका न घर था, न खेत; उसका अपना कुछ भी नहीं था। हूवय्य विनोद से उसे पुकारता था, "जंगली फकीर"। हूवय्य की, रामय्य की, विशेप रूप से हूवय्य की मदद करता था। शिकार में जव वह छुट्टी में घर आता था। ऐसा जंगल नहीं था जिसे उसने न देखा हो, ऐसा जंगली जानवर नहीं था जिसे उसने न मारा हो, ऐसा साहस नहीं था जिसे उसने न किया हो।

पुट्टण्ण नज़दीक आया तो तुरंत हूवय्य ने हंसते हुए पूछा, "नदी में इतनी देर क्या करने वैठा था रे ? कव तक हम घर पहुचेंगे ? वारह तो अभी व्रज गये हैं। पेट में चूहे कूद रहे हैं।"

पुट्टण्ण ने दांत का प्रदर्शन करते हुए कहा, "तो क्या हुआ ? रास्ते में आपके रिश्तेदारों के घरों का अभाव तो नहीं है आपके लिये ?"

हूवय्य ने कहा, "अच्छा, अच्छा; तुम्हारे लिए क्या ? तुम तो निरे जंगली फकीर हो ! जहां भोजन मिले खाते हो और पैर पसारते हो।" इतना कहने के बाद रामय्य की तरफ घूमकर कहा, "रामू, रास्ते में मुत्तल्ली ग्राम मिल जाता है। हम वहां जरूर खाना खाकर ही जाएंगे।"

रामय्य ने कहा, "कोई मिलकर बुलावें तो जायं। नहीं तो सीधे घर जायेंगे।" इतना कहने के उपरांत उसने कलाई की घड़ी देखी और कहा, "अब तो बारह बजे हैं। दो बजे तक घर पहुंचेंगे।···निगा, जरा गाड़ी को जोर से हांकना।"

निंग गाड़ी में बैलों को जोतकर तैयार खड़ा था। उसने कहा, "जी हां, हुजूर, रेलगाड़ी की तरह चलाऊं तो बस है न ? ये बैल हवा से बातें करते जाते हैं। आप चिंता न करें। आप गाड़ी में बैठ जाइये। देखिए कैसे दौड़ाता हूं।" इतना कहकर उसने बैलों के कंधे पर हाथ थपथपाया।

"अरे, भले आदमी, रेलगाड़ी की तरह भी नहीं, मोटर की तरह भी नहीं ! गाड़ी इस तरह चलाना कि वह खड्ड में न गिर जाय। एकाध घंटा देर हो जाय तो भी कोई हर्ज नहीं।" कहते हुए पुट्टण्ण ने गाड़ी के पिछले भाग से ट्रंक अंदर रखा। पहले रामय्य, फिर हूवय्य और अंत में पुट्टण्ण गाड़ी में चढ़कर बैठ गए। निंग पुचकारते हुए गाड़ी के अग्रभाग पर बैठ गया। बैल अपने गले की घंटियों की घन-घन आवाज करते जोर से निकल पड़े। गाड़ी की परछाईं कुरुवल्ली के छोटे बाजार की लाल मिट्टी की सड़क पर, गाड़ी के नीचे ही मसि के लौंदे की तरह बनकर बैलों की परछाईं के साथ आगे बढ़ी।

२

रास्ते में शनि

पिछले दिन किसी काम के लिए सीतेमने के सिंगप्प गौड़जी तीर्थहल्ली आये थे। वे अगले दिन अपने घर जाने के लिए निकले थे। जव वे कल्लुसार पार कर रहे थे तव ट्रंक ढोकर जानेवाले निंग और पुट्टण्ण से मिले। पूछने पर मालूम हुआ कि कानूरु चंद्रय्य गौड़जी का पुत्र रामय्य और उनके वड़े भाई का पुत्र हूवय्य दोनों गरमी की छुट्टी में मैसूर से आये हैं, उनको घर ले जाने के लिए गाड़ी भेजी गई है। सिंगप्प गौड़जी और चंद्रय्य गौड़जी के वीच में एक मजदूर के वारे में कहासुनी होकर मनमुटाव हो गया था। इससे सीतेमने एवं कानूर कानूरु के वीच का संवंध एवं व्यवहार टूट गया था। हूवय्य की मां सिंगप्प गौड़जी की पत्नी की वड़ी वहन थी। इसलिए उन्होंने उसकी खैरियत के वारे में पूछताछ की। उसको देखने की प्रवल इच्छा थी, तो भी उसको रोककर वे नदी से सीधे जानेवाले कुरवत्ती के रास्ते से मिलनेवाली पगडंडी पर आगे वढ़े। सीतेमने जाने के लिए कानूरु के पास से ही होकर जाना पड़ता था। इसलिए पुट्टण्ण ने सिंगप्प गौड़जी को गाड़ी में वैठने के लिए आग्रह वार-वार किया मगर कोई वहाना वनाकर वे आगे वढ़े थे। उनसे वातें करने में पुट्टण्ण लगा था, इसलिए उसको गाड़ी के पास आने में देर हो गई थी। हूवय्य तथा रामय्य ने सिंगप्प गौड़जी को कल्लुसार पार करके आते समय, दूर से ही देखा था, पर पहचान नहीं सके थे। कोई आते होंगे, सोचकर चुप हो गए थे। अगर उनको मालूम हो जाता कि वह सिंगप्प गौड़जी हैं तो दोनों उनका स्वागत करते और उनको गाड़ी में वैठने के लिए मजवूर करते। हूवय्य और रामय्य दोनों मैसूर में रहकर पढ़ते थे। इसलिए उनको मालूम नहीं था कि सिंगप्प गौड़जी एवं चंद्रय्य गौड़जी के वीच में नये सिरे से मनमुटाव हो गया है। फिर भी सिंगप्प गौड़जी महाभारत, रामायण आदि पढ़ते थे, सरल, विनोदप्रिय व्यक्ति थे, अतः वचपन से रामय्य तथा हूवय्य को उनके प्रति प्रेम था। इसलिए वे उम्र में वड़े होने पर भी उनसे एकवचन में ही वातचीत करते थे।

सिंगप्प गौड़जी कोप्प ग्राम को जाने वाले मार्ग पर दो फर्लांग चल चुके थे। कड़ी धूप के कारण उनका तना छाता गरम हो गया था। उनको गरमी महसूस हो

रही थी और वे थके हुए-से हो गए थे। सवेरे का किया हुआ नाश्ता भी पच गया था, और उनको भूख भी ज्यादा लग रही थी। रास्ते की लाल-लाल धूल भी उड़-उड़कर उनके पैर के अग्र भाग को आंच पहुंचा रही थी। इसलिए धोती घुटने तक उठाकर खोंस ली थी कमर पर। उनकी रोमावली से भरी छाती दिखाई पड़ती थी चूंकि उन्होंने कोट-कमीज खोल दी थीं। उन्होंने सोचा कि पुट्टण्ण के बुलाने पर गाड़ी में जा बैठता तो अच्छा होता; आराम से बैठकर गांव जा सकता था। तुरंत ही फिर उन्होंने सोचा कि यह मेरे लिए शरम की बात है। इसलिए उन्होंने गाड़ी में जाकर बैठने के विचार को दूर कर दिया। इतने में पीछे थोड़ी दूर से आती हुई गाड़ी और बैलों के गले में बधी घंटियों की आवाज़ सुनाई पड़ी। उन्होंने पीछे घूमकर देखा और जान लिया कि कानूर की गाड़ी है, गाड़ी में बैठे हुओं को अपनी थकावट का प्रदर्शन करना अपने गौरव के लिए बट्टा है। इस प्रकार सोचकर वे जल्दी-जल्दी चलने लगे।

गाड़ी में आगे बैठे हुए रामय्य ने सिंगप्प गौड़जी को देखा। मगर पुट्टण्ण से शिकार, कुत्ते आदि के बारे में कुतूहलकारी बातें सुनते और उत्साह से बातचीत करते बैठे हुए हूवय्य को वे दिखाई नहीं पड़े।

"वह कौन है, वहां जाने वाले ?चाल तो सिंगप्प चचा की तरह दीखती है।" कहा रामय्य ने।

हूवय्य ने झट सिर को ऊंचा करके घूमकर खुशी से देखकर कहा; "और कौन ? वही हों शायद ?"

"हां, वही है। हमारे साथ ही नदी को पार किया। मैंने उनसे कहा कि गाड़ी है, आइए, लेकिन वे नहीं आये।" कहकर पुट्टण्ण उनके न आने का कारण बताना शुरू करने लगा ही था कि रामय्य ने ताली बजाकर जोर से पुकारा, "सिंगप्प चचाजी, रुक जाइये, रुक जाइये।" पुकार सुन करके भी सिंगप्प गौड़जी बिना रुके दस कदम आगे बढ़ ही गए। तुरंत रामय्य और हूवय्य दोनों उनको बुलाने लगे। तब सिंगप्प गौड़जी यह सोचकर रुक गए कि मेरे और चंद्रय्य गौड़जी के बीच में मनमुटाव हो गया हो तो इन लड़कों ने मेरा क्या बिगाड़ा है? इस उदारता का कारण शायद बहुत करके सूरज भी बन गया हो।

जोर से दौड़ती हुई गाड़ी उनके पास जाकर रुक गई। आठ खुरों, दो पहियों से ऊपर उठाई गई लाल धूल बादलों की तरह होकर गाड़ी के भीतर और बाहर भर गई, फैल गई। निंग ने नकेल जोर से खींची तो बैल उसांस छोड़कर हांफते खड़े हो गए। उनके नथुने उसांस जोर से लेने-छोड़ने लगे थे। इस कारण से नथुने ऊपर-नीचे हो रहे थे जैसे भाथी। बैलों के गले में बंधी घंटियों की आवाज रुकी ही थी कि सिंगप्प गौड़जी गाड़ी के आगे आए। उनका छाता, उनका पहनावा देखकर बैल चौंक पड़े, फिर वे गाड़ी के पीछे गए।

"क्यों महाशय जी, कितनी बार पुकारा ! सुनाई नहीं दिया ? इस कड़ी धूप में रणपिशाच की तरह अकेले कहां जा रहे हो ?"

"कौन ? हूवय्य ! नमस्कार।" कहा सिगप्प गौड़जी ने। उनकी टेढ़ी आंख हूवय्य को देखती थी, तो भी वह ऐसी लगती थी कि रामय्य को भी देख रही है।

"नमस्कार बाद को ! पहले गाड़ी पै चढ़ो !" कहा रामय्य ने यह सोचकर कि सिगप्प गौड़जी मेरी ओर देख रहे हैं।

"तुम ही लोग गाड़ीभर में हो। कोई हर्ज नहीं, मैं चलकर आऊंगा।" सिगप्प गौड़जी ने हंसते हुए कहा।

रामय्य ने कहा, "पागल हो गये हो क्या ? पहले गाड़ी पै चढ़ो, देर हो गई है। पेट में आग-सी लगी है।"

सिगप्प गौड़जी ने "अच्छा महाराज" कहकर छाता उतारा और पुट्टण्ण ने इसे अपने हाथ में लिया। तब वे चप्पल उतारकर, उनको घास में छिपाकर गाड़ी पै चढ़े। गाड़ी आगे बढ़ी।

हूवय्य ने सिगप्प गौड़जी के धूलिधूसरित पांवों को देखकर कहा, "चचाजी, दरी मैली हो जाती है। पांव ज़रा घास में रगड़ियो।" सिगप्प गौड़जी वैसा ही करके, पांव समेटकर आराम से बैठ गए।

"क्या महाराज, कितना पुकारा, कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा ?" कहा रामय्य ने।

"हां ! अपने बैलों के गले में और ज्यादा घंटियां बांधो तो अच्छी तरह सुनाई पड़ेगा। उन घंटियों की आवाज़ में ढिंढोरा पीटने पर भी सुनाई पड़ेगा ! फिर पुकार कैसे सुनाई पड़ेगी ?" सिगप्प गौड़जी ने कहा और वे अच्छी तरह जान गए कि अपने और चंद्रय्य गौड़जी के बीच में घटी घटना इन लड़कों को मालूम नहीं है।

"नदी पार करते समय पुट्टय्य ने बुलाया, तुम नहीं आए ! ऐसा क्यों किया ? हमें चुपके से गाड़ी चलाके जाना था और कड़ी धूप में तुम्हें चलने देना था ?" कहकर हूवय्य हंसा।

रीति-रिवाज मालूम होता तो हूवय्य सचमुच इस तरह नहीं बोलता। यह जानकर सिगप्प गौड़जी ने कहा, "तुम लोगों के आने में देर होगी। सोचकर आगे बढ़ गया मैं।" यह कहने के बाद उन्होंने पुट्टण्ण की ओर देखा। पुट्टण्ण तब मुस्करा रहा था।

निंग अपने कर्त्तव्य में मग्न था, अतः वह कुछ भी नहीं बोलता था। वह चुप था। हूवय्य, रामय्य दोनों सिगप्प गौड़जी के सवालों के जवाब देकर अपने मैसूर, बंगलोर, गरमी की छुट्टी आदि के बारे में कई बातें बता रहे थे। पुट्टण्ण उनकी बातचीत सुनते, बीच-बीच में एकाध सवाल करते पान-सुपारी खाने लगता था। गाड़ी के पिछले हिस्से में बैठा था वह इसीलिए तमाखू के साथ खाई हुई

पान-सुपारी बार-बार थूकने में आसानी थी। वह दो-तीन मिनटों में एक बार थूकता और उसका वह रक्तारुण लाल जल पिंड बूंद-बूंद और धाराकार न होकर लौंदा-लौंदा बनता और फूटकर रास्ते की धूल में पड़ता तो सूखकर मिट्टी के लड्डू बना देता। रास्ते में समानान्तर पड़ी पहियों की अविच्छिन्न रेखा मुद्रा ऐसी दीखती थी कि मानो सर्प के समान चलती गाड़ी का पीछा करती हो।

गरमी की दुपहरी के सूरज के तप्त ताम्रबिंब की कड़ी निष्करुणा से बुलाई गई प्रखर किरण-वर्षा में जंगल बढ़कर घने हुए थे और ऐसे जंगलों से युक्त तरंगों के समान फैले हुए वन-प्रदेशों के पहाड़ थककर मानो मूर्छित हो श्यामल निद्रासक्त थे। लाल धूल का रास्ता सह्याद्रि की वन देवी के महामस्तक पर की सुदीर्घ मांग की सरल वक्रता-सा निम्नोन्नत रेखा-विन्यास की तरह सुशोभित था। रास्ते में यहां-वहां तार के खंभे थे। आकाश के सामने तार की काली रेखा ऐसी दीखती थी कि खंभे से खंभे तक से प्रवाहित हो बिजली मानो दौड़ रही हो। बड़ी सड़क के दोनों तरफ शुरू होकर स्वच्छंद कानन श्रेणी वहां तक फैली हुई थी जहां तक दृष्टि जाती थी। किसी प्राणी का संचार नहीं था। कभी-कभी जामुन के पेड़ों के कोटरों से पिकलार पंछियों का उछलना केवल दिखाई देता था। उस कड़ी धूप में उनका वह काम धूर्तता का था, न कि लीला का। वे क्या पुकार रहे थे मालूम नहीं होता था। जो हो, उनकी ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती थी। दो बैलों के गले में बंधी करीब चालीस-पचास घंटियों का सुमधुर नाद महारण्य का मौन मथ रहा था। वह दिन, वह धूप, उस जंगल की हरी शांति, वह विजनता, उस गाड़ी की डोलायमानता, उस घंटानाद की लोरी, इनके बीच में गाड़ी में बैठे लोग भूख एवं थकावट के मारे बोलना छोड़कर ऊंघ रहे थे। निंग भी आधी नींद में था। उसके हाथ में रही चाबुक अपनी क्रिया छोड़कर झुक गयी थी। उसका सिर कंधे पर सोना चाहता था। जैसे गाड़ी डोलती वैसे उसका सिर डोलता। इस निश्चल जग में एक गाड़ी ही चलनेवाली क्षुद्र वस्तु थी।

घर की तरफ जानेवाले बैलों को रास्ता बताने की जरूरत नहीं है। सारथी के न होने पर भी वे सकुशल घर पहुंच जाते हैं। लेकिन आज एक अनहोनी बात हो गई। गाड़ी को ले जाने की हड़बड़ी में निंग बैलों को पानी पिलाना भूल गया था। गाड़ी चौदहवें मील के पत्थर को पार करके तीर्थहल्ली से डेढ़ या दो मील जा चुकी थी। लछमन को खूब प्यास लगी थी। अनतिदूर पर रास्ते के बगल में एक तालाब उसकी नजर में पड़ा। पानी देखना-भर था, उसने तुरंत चाल तेज कर दी। नंदी को उतनी प्यास नहीं लगी थी। तो भी साथी के जोर से खींचने से उसको भी कदम उठाना पड़ा। गाड़ी में बैठे हुए सभी बाहरी प्रज्ञा खो चुके थे। चढ़ाव का रास्ता होने के कारण तालाब उच्च कगार का था। बैल पानी की तरफ कुछ जोर से बढ़े। दाहिना पहिया पहले तुरंत नीचे उतरा जिससे जोर से

गाड़ी खिंच गई। तुरंत सिंगप्प गौड़जी जाग गए। वे जान न सके कि क्या खतरा है तो भी उन्होंने पुकारा, "निगा-निगा, ओ निगा रे!" वाकी सभी जाग गये और पुकारने लगे, "हाय, हाय, हाय!" कहने भी लगे, "हो! हो! हो!" निंग भी जाग गया और नकेल को ज़ोर से खींचा। तव तक समय हाथ से निकल गया था। गाड़ी लुढ़क गई। चढ़ाव के निचले भाग में उगने वाले एक जंगली आम के पेड़ से गाड़ी की कमान टकरा गयी। नंदी की फांस कस जाने से वह घरघराने लगा। गाड़ी में सभी एक पर एक लुढ़क पड़े। पेड़ के आधार से गाड़ी के रुकते ही पुट्टण्ण, सिंगप्प गौड़जी और रामय्य वाहर कूद पड़े। निंग ने भी गाड़ी से नीचे उतरकर नंदी के गले की फांस खोलनी चाही, पर कामयाब न हो सका। नंदी की आंखें सफेद हो गईं और वह फुसफुसाने लगा। फांस क्षण-क्षण कसती जा रही थी। फांस को काटने के लिए गाड़ी में रखी अपनी थैली में छुरी ढूंढ़ने लगा। उसकी वदनसीवी से वह भी नहीं मिली। घवराहट के मारे कोई कुछ भी न कर सका। आखिर पुट्टण्ण दो पत्थर लाया। एक पर फांस को रखकर दूसरे पत्थर से मारकर काट दिया। नंदी ने सिर नीचे झुकाया। इतने में गाड़ी में से हूवय्य ने पुकारा, "चाचाजी! हाय! हाय!" इस तरह हूवय्य का कराहना सुनकर सिंगप्प गौड़जी गाड़ी के भीतर गए, देखा कि ट्रंक उसकी रीढ़ से लग गया है। उससे उसकी पीठ में चोट लगी थी। पीठ के दर्द के मारे वह रो रहा था। हूवय्य खड़ा भी न हो पा रहा था। पुट्टण्ण एवं सिंगप्प गौड़जी ने मिलकर उसको धीरे से गाड़ी में से नीचे उतारा। लेकिन हूवय्य खड़ा न हो सकने के कारण वहीं रास्ते के वगल में ही ज़मीन पर लेट गया।

रामय्य के सिर को गाड़ी की खूंटी से चोट लगी थी जिससे उसको दर्द हो रहा था। तो भी हूवय्य की हालत को देखकर वह घवरा रहा था। वह उसके पास गया और पूछा, "क्या हुआ है भैया?" दर्दनाक चेहरे एवं ध्वनि में उसने कहा, "ट्रंक का कोना लग गया रीढ़ को।" रामय्य की आंखों में आंसू आये और उसने वड़े भाई के कुर्ते को उठाकर चोट लगी जगह को देखा। कोई घाव तो नहीं था। मगर एक ज़गह हरा-हरा हो गया था और उसके चारों ओर लाल-लाल हो गया था। उस पर रामय्य ने धीरे से हाथ फेरा तो हूवय्य वेदना से 'हाय!' कहकर कराहने लगा। रामय्य वड़े भाई की वेदना कम करने के लिए सव कुछ करने को तैयार था, परंतु उसको कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि किया क्या जाय?

पुट्टण्ण, निंग, सिंगप्प गौड़जी तीनों मिलकर गाड़ी को उठाकर ठीक रास्ते पर लाने का प्रयत्न कर रहे थे। दोनों वैल तालाव में घुटने तक कीचड़ में खड़े होकर आराम से पानी पी रहे थे। लछमन की नकेल काई पर झूल रही थी। उसकी परछाई दाहिनी ओर सरककर आधी पानी पर, आधी घास पर सोई थी।

प्रतिविंव उसका केवल पानी के मंद दर्पण में सीधे पड़ा था। नंदी पानी पीकर लौटा। कुछ मेंढक कूदकर दूर हट गए।

गाड़ी को तो उठाकर खड़ा कर दिया गया। लेकिन ज्यादा कगार होने से तीनों का वल उसे रास्ते तक ढकेलने में काफी न हो सका। तीनों ने खूव कोशिश की, पसीना वहाया। कदाचित् दूसरा समय होता तो तीनों का वल पर्याप्त होता मगर भूखे पेट क्या कर सकते थे? उनका प्रयत्न असफल होते देख रामय्य भी उनकी मदद करने गया। तो भी गाड़ी रास्ते पर नहीं लाई जा सकी।

तिपहर का सूरज चमकता ही रहा। आकाश में एक-दो वादल आलसी की भांति घूम रहे थे। सारा कानन प्रदेश निश्चल, सुनसान, नीरव था। हवा भी नहीं चल रही थी। वगल के खेत के किनारे, एक वड़े आम के पेड़ के नीचे कुछ चौपाये चरते दिखाई पड़े। और कुछ लेटकर निश्चित हो ऊंघते पागुर कर रहे थे।

अचानक तालाव के उस पार के घने जंगल में से किसी के पुकारने की आवाज़ आई तो सवने उस तरफ़ देखा। पेड़ों की छाया में झुरमुटों के वीच में से कोई दो आदमी आते हुए दिखाई पड़े।

३

चिन्नय्य का मछलियों का शिकार

मुत्तल्ली ग्राम तीर्थहल्ली से करीव तीन-साढ़े तीन मील दूरी पर कोप्प ग्राम जानेवाली सरकारी सड़क के दाहिनी ओर था। वहां के साहूकार और पटेल श्यामय्य गौड़जी का खपरैलों का मकान पेड़ों की आड़ में था, तो भी रास्ते पर जानेवालों को दिखता था। उनका घर रास्ते से करीव दो-तीन फर्लांग पर था, वहां तक जाने के लिए कच्ची सड़क थी। उस गांव में सवसे वड़ा मकान उन्हींका था। वाकी लोगों के घर क्या थे? घास-फूस की झोंपड़ियां थीं उनके किसानों की और मज़दूरों की।

श्यामय्य गौड़जी का पुत्र चिन्नय्य नौवजवान था। वह कुछ दिन तीर्थहल्ली में पढ़ा था। मगर विद्या उसके भाग्य में नहीं थी। वह पढ़ना छोड़कर अपने गांव आ गया था। उसको शिकार वहुत प्रिय था। पेट में अन्न का एक दाना न होने पर भी, उसकी ओर उसका ध्यान नहीं रहता था। वंदूक हाथ में लेकर जंगल-जंगल घूमने में ही उसको वड़ा आनंद मिलता। पर हां, वह वड़ा निशानेवाज़ था। गांव के सभी लोग जानते थे कि उसका निशाना कभी नहीं चूकता। वह खुश-मिज़ाज, सरल स्वभाव वाला था। हूवय्य तथा रामय्य के प्रति उसकी गाढ़ी मित्रता थी। वंधुता में या मित्रता में स्नेह भी मिल जाय तो क्या कहने?

सवेरे वगीचे की ओर जाकर सरकारी रास्ते से वह घर आया करता था। यह प्रतिदिन की रूढ़ि थी। वह घर से अच्छी हवाखोरी के लिए नहीं जाता था, वल्कि सिगरेट पीने के लिए जाता था ताकि उसके पिताजी को उसका सिगरेट पीना मालूम न हो। उसे सिगरेट पीने की यह आदत तव पड़ी थी जव वह तीर्थ-हल्ली के स्कूल में पढ़ता था। वह इस वुरी आदत से मुक्त नहीं हो सकता था।

चिन्नय्य आराम से सिगरेट पीते रास्ते से आ रहा था। चार-पांच कुत्ते अपने परिवार के साथ उसके इर्द-गिर्द आ रहे थे। अचानक उसके कानों में गाड़ी के वैलों के गले में वंधी घंटियों की आवाज़ पड़ी। उसने यह सोचकर कि तीर्थहल्ली से गाड़ी कोप्प जाती होगी, घूमकर देखा। कोई गाड़ी नहीं दिखाई दी। वह कुछ दूर गया ही था कि फिर घूमकर देखा तो रास्ते के घुमाव में कमानवाली गाड़ी

दिखाई पड़ी जो उसी की ओर आ रही थी। उसने जल्दी-जल्दी दो-तीन कश लगाकर सिगरेट को झुरमुट में फेंक दिया। इस तरह करने में उसका चोर भाव था। सिगरेट के फेंकते ही तीन-चार कुत्ते उस झुरमुट की ओर गए और सिगरेट के धुएं को सूंघने लगे। चिन्नय्य ने उनको डांटा तो लौटकर आए।

गाड़ी जल्दी-जल्दी आई और उसके बगल में खड़ी हो गई। गाड़ी में से आवाज़ आई, "नमस्कार।"

"कौन? पुट्टण्ण?" चिन्नय्य ने कहा।

निंग ने जवाब दिया भय-भक्ति से "जी हां।"

पुट्टण्ण ने गाड़ी के अगले हिस्से में से झांककर देखा।

चिन्नय्य ने पूछा, "कितनी दूर जायंगे?"

"सिर्फ तर्थहल्ली तक।"

"क्यों? ओ हो, हूवय्य और रामय्य आ रहे हैं क्या?"

"हां, उनका पत्र आया है। इसीलिए उनको लिवा लाने के लिए यह गाड़ी जा रही है।"

"मैंने सोचा था कि गाड़ी में मामाजी हैं", चिन्नय्य कह रहा था कि डाइमंड ने रूबी को काटा तो वह चीखते हुए शोर मचाने लगा। चिन्नय्य ने डाइमंड को मार भगाया और पुट्टण से कहा, "दोपहर का भोजन हमारे घर में करें।"

"गौड़जी ने सीधे घर आने को कह दिया है।"

"हूवय्य से कह दो कि मैंने कहा है। आज घर न जाने से कोई गठरी नहीं डूब जाती है।"

पुट्टण्ण ने दांत दिखाते हुए कहा, "उसके लिए नहीं! गौड़जी शायद नाराज़ हो जायें। इसीलिए मैंने वैसे कहा था। आप अन्यथा न समझें।"

"हूवय्य से कहना कि मैंने कहा है। तुमको यहां आने में ही बारह बज जायेंगे। भोजन करके शाम को जा सकते हैं।"

"अच्छा कह दूंगा।"

चिन्नय्य बोलते-बोलते लछमन की जांघ पर हुए घाव को देख रहा था, बातों के रुकते ही पूछा "यह क्या रे निंगा, बैल की जांघ पर घाव?"

"किसी बैल ने सींग मारा था। क्या किया जाय? यह लछमन बैल जो है न, सब बैलों से सींग मारने का खेल खेलने लग जाता है···" कहकर पुट्टण्ण कहानी सुनाने वाला ही था कि चिन्नय्य ने कहा, "तो चलो पुट्टण्ण, उन दोनों से कहना कि मैं उनकी राह देखता रहूंगा।"

पुट्टण्ण ने कहा, "अच्छा, नमस्कार।" गाड़ी घंटानाद करती निकली।

गाड़ी आंखों से ओझल हो गई। चिन्नय्य झुरमुट के पास गया और ढूंढ़ा। हाथ डालते ही झुरमुट में से एक मादा गिरगिट कूदकर भाग गई। कुत्तों ने

उसका पीछा किया। लेकिन वह उनको नहीं मिली। वह दूसरे झुरमुट में घुस गई और प्राणों को वचा लिया। सिगरेट से अभी तक धुआं निकल रहा था। इसलिए उसने सिगरेट को उठाकर दोनों होंठों के वीच में पकड़कर एक कश लगाया तो वह सजीव हो गया। चिन्नय्य को अपने इस काम पर हंसी आए विना न रही। वह अपने-आप हंस पड़ा।

घर की तरफ जाते समय चिन्नय्य को एक नयी वात सूझी जिससे वह खुश हुआ। उसने तय किया कि उस रात को हूवय्य और रामय्य को अपने घर में ठहरा लेना चाहिए और रात के भोजन के लिए मछली की तरकारी वनवा लें; अतः वह नंज की झोंपड़ी के पास गया और नंज को पुकारा। कंवल ओढ़े हुए एक काला व्यक्ति झोंपड़ी के अंधेरे में से इधर आया।

चिन्नय्य ने कहा, "मछली पकड़ने के लिए वैलु तालाव जाएंगे। साढ़े आठ वजे मेरे घर आना।"

नंज कंवल के भीतर ही अपनी जांघ खुजलाते हुए वोला, "उसमें मछलियां हैं कहां? ऐरे-गैरों ने सव मछलियां पकड़ ली हैं। तूव के तालाव जावें, वहां कुछ मिलें।"

"नहीं, वैलु तालाव ही जाएंगे। रास्ते के वगल में है। आसानी से जाकर आ सकते हैं। इसके अलावा कानूर की गाड़ी तीर्थहल्ली गई है। वारह वजे वापस आ सकती है। लौटते समय उसीमें चढ़कर आ जायं। कौन उतनी दूर उस तूव के तालाव जाएगा कड़ी धूप में मरने के लिए?"

नंज ने मान लिया। चिन्नय्य घर की तरफ घूमकर मन में मित्रों के मिलन की खुशी का आस्वादन करते हुए गया।

कुत्तों का परिवार भी उसका पीछा करता गया।

झोंपड़ी के छोटे दरवाजे पर आधा शरीर वाहर, आधा भीतर करके देहलीज पर एक पैर रखकर, चौखट के दोनों खंभों को दोनों हाथों से पकड़कर, कमान की तरह झुककर खड़ा नंज तांवूल की लाल थूक को तीर की तरह थूककर गला साफ करते हुए खंखार के इस तरह झोंपड़ी में गया जैसे कछुए का सिर उसके शरीर में घुस गया है। घास, सूखे पत्ते, गन्ने के छिलके, मटके के टुकड़े, कंवल के चिथड़े आदि चीजें, और भी वस्तुओं के अवशेष उस झोंपड़ी में खचाखच भरे हुए थे। उसके आंगन में या आंगन कहने के लायक स्थान में नंज के जूठन को भी जगह मिली और वह लाल हो गई। थूक जहां गिरा था वहां से लाल मक्खियां 'गुंई' करती उड़ीं और फिर थूक पर वैठ गईं।

नंज जाति का कुम्हार था। वह अपनी जाति के हुनर के सिवा सव काम-धंधे कुछ न कुछ जानता था। श्यामय्य गौड़जी का कृपक वनकर उनके खेत जोतता था तो भी उसकी आसक्ति दूसरी ओर ही थी। वह अच्छा निशानेवाज भी था; वह वड़े-वड़े शिकार में साहसपूर्ण काम कर चुका था, इसके लिए भी लोग उसकी

तारीफ करते थे; लेकिन उसकी ओर उसका ध्यान नहीं था। वह शिकार सिर्फ गोश्त के लिए करता था। उसकी तारीफ किये बिना उसके धैर्य, उसकी ताकत व निशाने की प्रशंसा करना उसकी दृष्टि में अर्थहीन था। ताड़ी और शराब उसे प्राण की तरह प्रिय थी। इसके लिए वह दिन, रात, बारिश, धूप की परवाह किये बिना, दूर, समीप का ख्याल किये बिना घर-घर घूमता था। कई बार खूब पीकर रास्ते के किनारे पड़ा रहता था और सवेरे घर आता था। एक बार बरसात के दिनों में एक शाम को खूब पीकर, नशे में चूर हो कीचड़ से भरे खेत के किनारे पर झूमते, लड़खड़ाते आ रहा था, उसके कंधे पर उसके मालिक की दी हुई एक कैंप बंदूक थी। शायद नंज अपने मनोराज्य में खुद को चक्रवर्ती राजा मानता होगा कि क्या? अचानक उसकी आंखों को एक विकराल आकार का भयानक शत्रु दीख पड़ा। नंज झूमते हुए, लड़खड़ाते हुए बोला, "आं! मे···रे···आ···गे ही ते···रा··· खे···ल?" इतना कहकर उसने बंदूक हाथ में ली। ज़मीन की ओर, खेत के किनारे के निचले हिस्से पर निशाना बांधा। बिल से आहार की खोज में निकला काला केकड़ा काली छड़ी को अपनी ओर आते देख, डर के मारे अपने बिल की ओर भागने लगा। नंज की आंखों को लगा, वह विकटाकर शत्रु की तरह अपने हाथ उठाये उसकी ओर ही मानो आ रहा है, तो "हां, फिर! मैं···कौ···न हूं! जानते हो?" कहकर नंज ने बंदूक दाग दी। गोली ने नली से निकलकर खेत की मिट्टी में प्रवेश करके कीचड़ का लौंदा उछाल दिया। बेचारी बंदूक की नली खराब हो गई। इधर नंज ने खूब पीने के कारण, बंदूक को अपनी छाती से मजबूती से नहीं लगाया था; इसलिए गोली के दागते ही बंदूक के पिछले हिस्से ने धक्का मारकर ढकेल दिया तो खेत में नंज धड़ाम् से गिर पड़ा। धान के पौधे टूटकर गिर पड़े। उसका मुंह और शरीर कीचड़ से पुत गया। दूर खेत में काम करनेवाले कुछ लोग दौड़कर आये और उन्होंने देखा तो उनको नंज का साहस मालूम हो गया और वे खूब हंसने लगे। केकड़े को हाथ से पकड़ना छोड़कर नंज ने गोली दागकर उसको पकड़ने का साहस जो किया था! उसकी कहानी गांव-भर में फैल गई जिससे नंज हंसी का शिकार बन गया। गौड़जी ने बंदूक की टेढ़ी हुई नली को देखकर उसको खूब खरी-खोटी सुनाई।

नंज जल्दी कांजी का भोजन करके गौड़जी के घर गया। चिन्नय्य तभी जाने के लिए तैयार हो गया था। मालिक ने कारतूस की बंदूक ली और मजदूर ने कैंप की बंदूक ली और मछली के शिकार के लिए बैलु तालाब के लिए रवाना हो गए। आधे घंटे में वे तालाब पहुंचे। सरकारी रास्ते के सामने वाले किनारे पर दो पेड़ थे, दोनों एक-एक पेड़ पर चढ़कर बंदूक पकड़कर बैठ गए।

नौ बज गए थे। ग्रीष्म की धूप कड़ी थी। तो भी उस जंगल की हरियाली में सब कुछ सर्द था। पेड़ों में से होकर आनेवाली धूप की छड़ियां तरंगरहित हो,

दर्पण की भांति नीले आकाश को, सफेद वादलों को प्रतिविंवित करने वाले उस तालाव के सलिल वक्ष पर खेल रही थीं। तालाव भर काई वढ़ गई थी। किंतु गहरे कुछ स्थानों में काई सिर उठाए हुए नहीं थी, इससे वे स्थान निर्मल दीखते थे। कोने-कोने में काई, आवल (कमल जैसा एक पुष्प) आदि जलशस्य खूव जंगल की भांति वढ़ गए थे। उनके वीच में जल-कुक्कुट चौंककर-डरकर चल रहे थे। कुछ मेंढक 'टर्र-टर्र' वोल रहे थे और कुछ फुदक रहे थे। मेंढ़कों के काले वच्चे भी जहां-तहां घूम रहे थे। छटपटाते थे। तालाव के वीच कभी-कभी मछलियां जल को काटतीं तो निश्चल जल कांपता और तरंगित होता। ऐसे समय में धूप झिलमिलकर नाचती थी। एक-एकवार मछलियां पानी पर तैरने-वाले आहार पदार्थ पर हमला करतीं तो 'टुमक-टुमक' आवाज़ होती। पंछियों के गान से भग्न कांतार के मौन में वह आवाज मानो गुदगुदाने की भांति सुनाई पड़ती थी।

चिन्नय्य जिस शाखा पर वैठा था वह तालाव की ओर खूव झुकी थी। उसका पेड़, वह खुद, वंदूक, वैठने के लिए विछाए हुए कंवल ये सभी चित्र की तरह पानी में प्रतिविंवित थे। जिस पेड़ पर वह वैठा था उसकी एक शाखा से जाल वांधकर, उसे चक्राकार फैलाकर दूसरी शाखा से उसे वांध दिया था और उसके केंद्र में निश्चल वैठी रंग-विरंगी एक वड़ी मछली प्रतिविंव में आकाश के नीले रंग के आगे दीखती थी। चिन्नय्य वंदूक हाथ में लेकर तालाव की ओर ही शोध दृष्टि से देखते वैठा था।

करीव एक घंटा वीत गया। तालाव के जल पर प्रातः सूर्यातप में लंवी सोई पेड़ की परछाईं क्रमशः संकुचित होती पेड़ के तले की तरफ सरकने लगी। तालाव के वीच में कभी-कभी मछलियां दीख पड़ती थीं। पर चिन्नय्य जहां वैठा था वहां उनका पता तक नहीं था। अगर वह तालाव के वीच में गोली दागता निशाना वांधकर, तो पानी की गहराई के कारण मछलियों को वाहर निकालना मुश्किल होता अतः उसने इस तरह का साहस करने के लिए अपना हाथ नहीं लगाया। एक वार थोड़ी दूर में दूसरे पेड़ की एक शाखा पर वैठे नंज को वुलाकर पूछा, "क्या मछलियां दीख रही हैं?"

"दूर पर खेल रही हैं। किनारे की ओर नहीं आ रही हैं। एक भी नहीं आई अव तक। कम्वख्त, उनका पेट फट जाय! मैंने तभी कहा था न? तूव के तालाव जाते तो अव तक एक-दो मछलियां मिल जातीं।"

फिर दोनों चुप हो गए। चिन्नय्य नीचे देख-देखकर परेशान हो गया। इसलिए वह ऊपरदेखने लगा। तालाव के वीच में गगन के आगे वैठी जंगली मकड़ी दिखाई पड़ी। पास के एक पेड़ के पत्ते को तोड़कर, उसका लौंदा वनाकर उस मकड़ी की ओर फेंका। निशाना चूक गया। मकड़ी को गोली नहीं लगी। पत्ते का

लौंदा जाल में फंस कर लटकने लगा। तब बाघ के रंग की मकड़ी तीर की तरह उड़कर उस पत्ते के लौंदे पर टूट पड़ी। फिर निराशा से लौटकर अपने पहले के स्थान पर बैठ गई। उसके लंबे पैर, विकट आकार को तथा भैरव आकार का देखकर चिन्नय्य का बदन कांप गया। फिर बंदूक को अपने कंधे पर सुलाकर, जेब से सिगरेट का पैकेट निकालकर, उसमें से एक सिगरेट निकालकर दोनों होंठों के बीच में दबाकर, सिगरेट के पैकेट को जेब में रखकर दियासलाई जलाई और सिगरेट को उससे सुलगाकर एक कश खींचा तो सिगरेट का धुआं होंठों के छोरों से निकला। फिर उसने सलाई को मकड़ी पर फेंका। वह उसे न लगकर पानी में गिर गई। पानी में सलाई के गिरते ही छोटी-छोटी मछलियां कलकल करती उस पर टूट पड़ीं। उनको मालूम हो गया कि वह खाने की चीज़ नहीं है। वे लौटकर अचरज से उसके इर्द-गिर्द खेलने लगीं। आधी काली, आधी सफेद वह सलाई जल पर तैर रही थी। चिन्नय्य फिर सिर ऊपर उठाकर आराम से सिगरेट पीते हुए बैठ गया। पीले पंख का एक पंछी चिन्नय्य के पेड़ पर उड़कर आया और उसके पास में बैठ गया और तीन बार सीटी बजाई, फिर चिन्नय्य को देखकर, चौंककर पंखों को फड़फड़ाते हुए उड़ गया।

चिन्नय्य ने नीचे देखा। झट से जांघ पर से बंदूक उठा ली। सिगरेट मुंह में ही थी, और धुआं निकल रहा था। अपने बैठने की जगह से कुछ नजदीक ही पानी का बुद-बुदा दिखाई दिया। अवलु मछली, मछली के बच्चों का होना तुरंत उसको मालूम हो गया। छोटी-छोटी मछलियां कभी ऊपर आतीं, कभी नीचे जातीं, जिससे लगता था कि तालाब के पानी में रोमांच हो उठा हो। छोटी मछलियों को खेलाने वाली बड़ी मछलियां नहीं दिखती थीं। छोटी मछलियों के चलने-फिरने-तैरने से बड़ी मछलियां अपने पास आ रही हैं, समझकर, सोचकर आगे की होनी के बारे में अनिश्चयता एवं आशंका से चिन्नय्य कुछ उद्विग्न होकर पानी की ओर अधिक गौर से, जगरूकता से देखने लगा। छोटी मछलियों का झुंड और पास आ गया। शिकारी ने अपनी सारी नसों को तानकर, समस्त शक्ति को दृष्टि में ही केंद्रित कर लिया। तब उसके लिए छोटी मछलियों का तालाब मानो सारी दुनिया हो गया था। एकाग्रता से चारों ओर के संसार की प्रज्ञा ही उसे नहीं थी। इस प्रकार तन्मय होकर देखता रहा, तो उसको पानी में एक कदम नीचे कुछ काली, लंबी वस्तु जैसी दीख पड़ी। चिन्नय्य के हाथ बंदूक को मजबूती से पकड़कर तैयार हो गये कि बड़ी माता मछली ऊपर आकर पड़ी धूप में साफ़ दिखाई पड़ी। वह और भी बित्ते-भर पानी के नीचे थी, तब गोली दागना व्यर्थ होगा समझकर चिन्नय्य उसके और ऊपर आने के समय की ताक में था। हाथ निशाना बांधने को तैयार थे।

सूर्यातप से प्रकाशित उस वनपुष्करिनी में डेढ़ हाथ अवलु मछली खेल रही

थी। कोयले की तरह काली दिखाई देने वाली उसकी देह के शिरोभाग में दो आंखें गुंजे की भांति लाल दिखाई देने लगी थीं। उसके कानों के वगल के और उसकी पूंछ के, पेट के ऊपर के पंख इधर-उधर खेलते क्रीड़ोन्मत्त हुए थे। उसकी लीला में एक प्रकार की धीर-गंभीरता, सावधानी, जागरूकता, संशयाशंकाएं मिली-जुली थीं। चिन्नय्य देख ही रहा था कि दूसरी मछली भी दिखाई पड़ी। उसके मन में उद्वेग के साथ अति आशा भी उत्पन हो गई। वह फूल गया और कहा—'एक ही निशाने से दोनों को भून दूंगा।" यह मत्स्य दंपति अपनी शत संतान के परिवार के साथ, पेड़ पर उनके प्राण हरण के लिए ताक में वैठे चिन्नय्य की रुद्र निकटता को थोड़ा-सा भी न जानते हुए विहारासक्त था। अचानक एक मछली पानी काटने के लिए ऊपर-ऊपर आई। चिन्नय्य को एक-एक क्षण एक-एक वर्ष की भांति लग रहा था तो मछली का गमन अत्यंत धीरे-धीरे दिखाई पड़ा। अवलु मछली की आंखों के इर्द-गिर्द लाल-लाल अंगूठियां प्रस्फुट दिखाई दीं। वगल के और पूंछ के पंखे आगे-पीछे चल रहे थे। मछली का सिर ऊपर, देह नीचे होने से वह पहले की अपेक्षा कुछ नाटी दिखाई दी। वार-वार खुलने-वंद होने वाले उसके मुंह की सफेद रेखा दिखाई पड़ी। तव चिन्नय्य के शरीर की सारी नसें तन गईं, सांस रुक गई, वह अपलक हो, वंदूक का घोड़ा सीधा करके उस पर उंगली रखकर निशान वांधकर तैयार हुआ। मछली ने पानी को काटा! चिन्नय्य ने वंदूक के घोड़े को खींचा। पानी गोली के आघात से चारों ओर उछला। गोली के दागने की धांय की आवाज से जंगल का मौन टूट गया और पहाड़ प्रतिध्वनित हुआ। मार खाई हुई मछली ऊपर-नीचे उछल-कूद करके पानी में डूव गई।

"नंजा! अरे नंजा, दौड़कर आ जाओ रे! जल्दी आ जाओ!" चिन्नय्य ने नंज को एक ही सांस से ज़ोर से पुकारा।

नंजय्य वंदूक पेड़ पर ही रखकर जल्दी-जल्दी सतर्क हो, चौकन्ना होकर पेड़ से कूदा और भागा। भागते समय उसका पैर कीचड़ पड़े पत्तों पर पड़ने से वह फिसलकर गिर गया। उसके हाथ और वदन कीचड़ से मैले हो गए, कुछ चोट भी आई, तो भी उसकी ओर विना ध्यान दिए उस ओर गया जहां मछली छटपटाकर गिर गई थी। उसके आने के पहले ही मछली डूव गई थी। नंज ने घुटने तक पानी में जाकर पूछा, "कहां गोली दाग दी थी?"

"थोड़ा आगे," पेड़ पर से जवाव आया।

नंज कमर तक पानी में गया।

"अपनी दाहिनी तरफ़ ढूंढ़ो।"

नंज ने पानी में झुककर, जमीन तक हाथ डालकर खोजा। कीचड़ ऊपर उठी और पानी गंदला हुआ। नंज की धोती भीग गई। वांह कंधे तक डूव गई थी।

पानी उसकी छाती को छू रहा था। जैसे-जैसे वह कदम उठाकर रखता वैसे-वैसे कीचड़ से भरे बुदबुदे मालाकार में ऊपर आते।

कुछ समय इधर-उधर टटोलते-टटोलते खोजकर थकावट के मारे 'उश!' कहकर वह खड़ा हुआ और कहा, "तो कहां गई रे कमवख़्त, उसका पेट फट जाय!'

"छि: !ढूंढ़कर देखो ! मार ठीक पड़ी है। वहीं कहीं मरकर पड़ी होगी। और थोड़ा आगे जाकर देखो। मिल जाय।"

"आगे कैसे जाए ? गड्ढा है कि क्या ? कमवख्त ! उसकी नानी मर जाय। इस तरह मार खाकर किस ओर गई ?"

"गई कहीं नहीं। वहीं पड़ी होगी। अच्छी तरह ढूंढ़कर देखो।" कहकर चिन्नय्य ने गुस्से से कठोर होकर कहा।

नंज तीर पर आया, धोती उतारकर, लंगोटी पहनकर फिर तालाव में उतरा। पानी कमर से ऊपर आया।

"और एक कदम आगे।" पेड़ पर से हुक्म हुआ।

नंज आगे वढ़ा। पानी छाती तक आया।

"हां, वस ! अव ढूंढ़ो।"

नंज खड़े होकर ही पैर से टटोलते ढूंढ़ने लगा। पानी क़ी शीतलता से उसके शरीर पर रोंगटे खड़े हो गए। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते पांच मिनट हो गए। चिन्नय्य निराश होने लगा था कि उसने पूछा, "क्या रे ? मिली कि नहीं ?"

"उसकी नानी मर जाय। कहां गई जी वह !" कहते नंज पैर से टटोलते ढूंढ़ने लगा।

"क्या मैं भी आ जाऊं ?"

"ठहरिये तो ! यहां शायद मिल जाय ! अरे, यहां गिर गई लौंडी !" कहते-कहते नंज पानी में डूवकर ओझल हो गया। इधर चिन्नय्य खुशी से आंखें फाड़कर, नंज के पानी में से ऊपर उठने की प्रतीक्षा करता रहा। तालाव के पानी को अल्लोल-कल्लोल करके नंज ऊपर उठकर खड़ा हो गया विलकुल भीगकर। उसके हाथ में मछली थी ! उसका पेट सफेद दीख पड़ा। "सिर इसका उड़ गया है।" कहकर वहीं से तालाव के तीर पर उसे फेंककर नंज ऊपर आया।

"और कुछ समय देखें क्या रे ? एक मछली कैसे काफी होगी ? अलावा इसके, कानूर की गाड़ी भी अभी तक नहीं आई।" कहा चिन्नय्य ने।

नंज ने 'हां' कहकर अपनी सम्मति प्रकट की। फिर वह एक हाथ से मछली, दूसरे से धोती लेकर अपनी जगह पर पहुंच गया। तव सूरज सिर पर आ गया था। लेकिन आशा के लिए मिति कहां ? फिर दोनों राह देखते वैठ गये।

दूर से घंटी की आवाज़ के साथ गाड़ी की गड़गड़ाहट भी सुनाई पड़ी। चिन्नय्य रास्ते की ओर देख रहा था। अनुमान लगाया कि तीन-चौथाई कानूर की

गाड़ी होगी। इतने में रास्ते के मोड़ पर जोर से आती हुई गाड़ी दीख पड़ी। जब वह तालाव के चढ़ाव के वीच में आ जाय तब पुकारकर उसे यहीं रोक दूंगा; सोचकर चिन्नय्य चुप वैठ गया। वह यह सोचकर खुश हुआ कि मुझे यहां देखकर मेरे मित्रों को अचरज होगा। उसके देखते-देखते वैल कगार की ओर भागे; पुकार सुनाई पड़ी, गाड़ी लुढ़क गई।

दोनों शीघ्र से शीघ्र पेड़ पर से कूदे, तंग रास्ते से होकर पांच मिनट में वहां पहुंचे जहां गाड़ी गिर गई थी।

छहों लोगों ने मिलकर परिश्रम से गाड़ी को खींचा और रास्ते पर लगाया। ज़मीन पर सोए हूवय्य को धीरे से उठाकर गाड़ी में सुलाया। रामय्य क्राप को लगाने के लिए तेल लाया था। ट्रंक में से उसे निकालकर हूवय्य की पीठ पर लगाकर मालिश किया। हूवय्य को लगी चोट उसकी ऊहा से अधिक थी। वह पीड़ा से कराहने लगा था।

सिंग ने चाबुक से वैलों को पीटकर उनपर अपना गुस्सा शांत कर लिया और उनको गाड़ी में जोता। चिन्नय्य अपनी वंदूक पुट्टण्ण के हाथ में देकर उसकी जगह पर खुद वैठ गया। नंज और पुट्टण्ण दोनों गाड़ी के पीछे-पीछे पैदल चले।

उस दिन चिन्नय्य ने जो मछली अपने मित्र-वंधुओं के लिए मारी थी उसे वहीं हड़वड़ी में छोड़ आए। वह मछली अपने पुत्र-मित्र-सगे लोगों से चिर-वियोग पाकर तालाव के उस पार के किनारे पर क्रमि-कीटकों की खुराक वन गई। थोड़ी दूर जाने के वाद नंज को उसकी याद आई। लेकिन हूवय्य का कराहना सुनकर भी, औरों के दुखाक्रांत मौन देखकर भी, वापस जाकर वह मछली लाना शर्म और हीनता की वात होगी, समझकर चुप हो गया।

४

सीता

सवेरे चिन्नय्य कुम्हार नंज से मिला था और मछली के शिकार के लिए आने का निमंत्रण देकर लौट आया था। वह घर के बड़े दरवाजे से प्रवेश कर रहा था कि किसीने उसका नाम लेकर पुकारा तो उसने घूमकर देखा। उसकी गौरम्माजी गोठ से दूध से भरा पीतल का लोटा हाथ में पकड़कर आ रही थीं। उनके तलवे पर, पाद के ऊपर उंगलियों के बीच में गीला हरा गोबर पुत गया था। साड़ी को तनिक ऊपर उठाकर बांध लिया था। जिससे दंतवर्ण के पैरों का निचला भाग गोबर के रंग से बिल्कुल अलग होकर दीखता था। वह जैसे-जैसे कदम रखतीं उनके कंगन तथा कड़ों से निकलने वाला झंकार चिन्नय्य के मन को माता की प्रीति की महिमा बतानेवाले डिंडिम के समान लगता था। गौरम्माजी देखने में सुंदर तो थीं, परन्तु चिन्नय्य की दृष्टि में वह सुंदरता नहीं थी, मगर पवित्रता थी। उनमें अर्थात् गौरम्मा में युवती की नाजो-अदा परिपक्व होकर पवित्र नारी का गांभीर्य पा चुकी थी। उनकी अंगभंगी में से चंचलता गायब होकर स्थिरता का भाव अभिव्यक्त होता था। तारुण्य के सभी रागावेग गायब होकर भरे-पूरे यौवन के पावन स्नेह, निःस्वार्थता, सहिष्णुता तथा संयम आदि गुण साकार हो उठे थे। उनको देखने पर वसंत प्रभात की सर्द हवा में लचकनेवाली लता की याद नहीं आती थी, परंतु अच्छी तरह बढ़कर, अपने नीचे छोटे-बड़े पौधों को जन्म देकर, गुच्छ से थोड़ा झुककर खड़े हुए कदली वृक्ष की याद आती थी। वह मातृ-देवी चिन्नय्य के पास आकर खड़ी हो गई तो उसको एक अनिर्वचनीय खुशी हुई। उसको लगा कि मैं फिर शिशु बन जाऊं, उस माता की गोद में बैठकर, उसके दिव्य वक्षों पर खेलकर, सिर के बालों व मुंह पर हाथ फिराकर उसके दिये जाने वाले चुंबन से तृप्त होऊं। गौरम्माजी के हाथ में जो सोने का-सा पीतल का दूध का कलश था उस पर प्रातःकालीन कोमल धूप के पड़ने से जगमगाकर चिन्नय्य की आंखों को वह चौंधिया रहा था। उनके हाथ पर खुदा लता का-सा गोदने का हरा रंग उनके गौरवर्ण का एक आभूषण-सा दीखता था। चिन्नय्य नयी विचारधारा का था, इसलिए वह गोदने को अनागरिक रिवाज़ समझता था; अतः उसने अपनी

वहनों आदि को इस रिवाज से मुक्त किया था। तो भी अपनी मां के हाथ पर का गोदना देखने से उसे खुशी होती थी। क्योंकि उसे उठाकर, खिलाकर उसी हाथ ने वड़ा किया था। नित्य परिचय से वह इतना स्वाभाविक हो गया था कि उसके विना वह माता का हाथ उसको पराया जैसा लगता था! दूध से भरे उस कलश के कंठ में लगा सफेद फेन सफेद ऊनी मेह की भांति मृदु, मनोहर हो मातृ-वात्सल्य की तरह आप्यायित था। उस फेन पर उठे एक-दो वुदवुदे गरम प्रातः के सूर्य के सुवर्ण प्रकाश में इंद्रधनुष के छोटे-छोटे अंडों के समान रंग-रंगीन वने थे। माता एवं पुत्र की लम्वी परछाईं जमीन पर गिरकर, पास की चूने से पुती सफेद दीवार पर खड़ी हो गई थी। चिन्नय्य के साथ घर में प्रवेश किये हुए कुत्तों में कुछ भीतर का आंगन पार करके गए थे, कुछ वाहर धूप में आराम से सोकर, अपने को सतानेवाली मक्खियों को मुंह से भगाते थे उछल-उछलकर। रूवी अगले पैरों को टेककर पिछली टांगों पर वैठकर मां-वेटे के मुंह की ओर कुतूहल दृष्टि से देखते उनकी वातों को मानो समझने की कोशिश कर रहा था। साये में उसकी पूंछ का हर्षप्रदर्शन अंकित था। शायद गौरम्माजी के हाथ में जो दूध का कलश था उसके प्रति उसका हर्ष-प्रदर्शन हो।

"भैया" कहकर गौराम्माजी अपने पुत्र को संवोधित करके वातचीत करती थी। आज भी वह "भैया" कहकर वोलने लगी। "एक काम करना है न?" माता के मुंह पर एक अहेतुक हर्ष की मुस्कुराहट खेलकर तांवूल से अनार के वीजों की भांति लाल वनी उनकी दंतपंक्ति का कुछ भाग दिखाई पड़ा।

"क्या है, कहो न?"

"तुम 'करके दूंगा' कहोगे तो वताऊं।"

"कहो तो!"

माता-पुत्र दोनों अपनी वातचीत की मिठास का सेवन कर रहे थे। उस मिठास के लिए ही मानो वातचीत शुरू हो गई थी। गौरम्माजी का विलंव ही मानो उसका प्रवल गवाह था।

"काले से कहकर पिछवाड़े से चौलाई थोड़ी मंगा दोगे?"

"तुम्हीं कहो मां, वह लाकर देगा।"

"कहां मानता है मेरी वात वह?"

"क्यों नहीं मानता? ना कहता है?"

चिन्नय्य को मां की वातों का मर्म नहीं मालूम हुआ। वातें करने के लिए ही मां को चौलाई की आवश्यकता है, यह उसको नहीं सूझा। अतः उसने उस वात को क्षुद्र समझकर दूसरी वात उठाई।

"जो हो, दुपहर को हूवय्य और रामय्य मैसूर से आ रहे हैं।" यह कहने में सूचना थी कि खाने के लिए कुछ विशेष पदार्थ वनाये जायं। मां को वह मालूम

हो गया।

"किसने कहा तुमसे ?" तनिक उत्साह से गौरम्मा ने पूछा।

"किसीने नहीं कहा। कानूर की गाड़ी रास्ते में आ रही थी, पूछकर जान लिया, ···अब मैं बैलु तालाव जाता हूं मछली पकड़ने के लिए। जल्दी काफी और नाश्ता दो।"

"काफी और नाश्ता तैयार है। तुम ही नहीं आए।"

इतने में बगल के बगीचे के गुलाबी पौधों के बीच में से मीठी आवाज़ आई, "भैया, थोड़ा यहां आ जाओ।" माता-पुत्र दोनों ने घूमकर देखा। सीता गुलाब के पौधों के पास हाथ में दो फूल लिये हंसते हुए खड़ी थी। उसके बगल में उसकी छोटी बहन लक्ष्मी बड़ी बहन की साड़ी की शिकन मजबूती से पकड़कर खड़ी थी।

"हाय ! इससे तो तंग आ गई हूं ! इसको वहां क्यों ले गई थी ? सांप-गींप रहते हैं वहां, कहने पर भी नहीं मानती। मैं क्या करूं ? भैया, जाओ, उसको उठाकर लाओ।" अपने बेटे से कहकर गौरम्माजी बड़ा दरवाजा पार करके अंदर गई। चिन्नय छोटी बहन के पास गया। लक्ष्मी बड़े भैया को आया देखकर, घर से इतनी दूर आना अपना साहस समझकर, उसके पास हंसती हुई खुशी से दौड़कर जाने लगी तो उसका लहंगा पैर में फंस गया और वह घास पर गिर गई और रोने लगी। चिन्नय्य दौड़कर उसके पास गया और उसे उठाकर दिलासा दिया। वहां से सीता के पास जाकर उसने पूछा, "क्यों ? किस-लिए बुलाया ?"

"वह गुलाब तोड़कर दो तो," कहकर दिखाया।

चिन्नय्य ने लक्ष्मी को धीरे से जमीन पर संस्थापित करके, सीता को फूल तोड़कर दिया। फिर कहा, "हां, अब बस ! आ जाओ। जायं ?"

सीता ने "नहीं भैया, मैं और भी फूल चुनकर आऊंगी।" कहा।

"मां ने बुलाया है, सुना नहीं ? नाराज़ होगी।"

"लक्ष्मी को ले जाओ। मैं बाद में आऊंगी।"

"किसके लिए इतने फूल ! क्या तुम्हारी शादी है ?" कहकर चिन्नय्य हंसा।

सीता ने नाराज़ होकर, मुंह फुलाकर, होंठ आगे बढ़ाकर, "हूं, मेरी नहीं तो मेरी भाभी की !" कहा।

चिन्नय्य ने उसका हाथ पकड़कर बिलकुल धीरे से एक घूंसा जमाया जैसे फूल को मुक्का मारा जाता है।

"तुमने ऐसा क्यों कहा ?" कहकर सीता ने वक्र हंसी बिखेर दी।

"क्यों कहा था ? आज कौन आ रहा है जानती हो ?"

गौरम्माजी और चिन्नय्य की बातों से सीता सब जान चुकी थी। तो भी अन-जान की तरह पूछा, "कौन आ रहा है!" उसका चेहरा बदल गया था पूछते समय।

"कौन ? तुम्हारे मामा, मैसूर से।"

"कौन ? वह क्या रामय्य मामा ?"

"अनजान की तरह पूछ रही हो ! क्या रामय्य मामा ही अकेले मैसूर गए थे ?"

सीता सिर झुकाकर चुप हो गई।

"अरे, शादी अभी नहीं हुई, अभी से नाम लेने में इतनी शर्म !"

"चुप रहो भैया," कहकर सीता ने नाराजगी दिखाई।

"हां तो, विवाह के पहले ही नाम लेने के लिए शरमा रही हो !"

सीता को मान भंग जैसा हुआ। उसका परिहार धैर्य से कर लेने का निर्णय करके, सिर उठाकर, भाई की तरफ़ देखती हुई बोली, "कौन ? हूवय्य मामाजी भी आते हैं ! इतना ही न ?" यह कहते समय उसके गाल पर लाली छा गई और मुंह आरक्त हुआ।

"अरी पुंसवती ! पति होनेवाले के प्रति गौरव नहीं है क्या ! उनको आने दो, कह दूंगा !" कहकर चिन्नय्य हंसा। लक्ष्मी अपने नन्हे हाथों से घास में कुछ ढूंढ़ रही थी।

सीता को 'कैंची में फंस गई हूं' जैसे लगा। आंसू उमड़कर गाल पर लुढ़ककर बहने लगे। चिन्नय तृप्त-सा होकर "लक्ष्मी, चलो,घर जाएं।" कहकर उसको उठाने आगे बढ़ा। तब लक्ष्मी 'नहीं, मैं नहीं आती।" कहकर रोने लगी। तो भी चिन्नय्य उसे जबरदस्ती उठाकर घर ले गया। सीता सिर झुकाकर आंसू बहाती खड़ी रही।

सीता के आंसुओं का सच्चा कारण दुःख नहीं था। अगर उन आंसुओं से पूछा जाता तो वे दूसरी ही कहानी सुनाते। शायद एक आंसू कहता, "मैं शर्म के मारे आया।" दूसरा कहता, "अपना अभिमान-भंग होने के कारण आया।" तीसरा कहता, "मैं घमंड का परिणाम हूं।" चौथा कहता, "मैं हर्षाश्रु हूं।" चिन्नय्य के जाने के उपरांत थोड़े समय में ही शर्म, अभिमान, घमंड, सभी वैशाख के गाढ़े नीले गगन में बादल के टुकड़ों के धीरे-धीरे पिघलकर लीन होने की तरह गायब होकर हर्षलीन एक ही सर्वव्यापी होकर स्थिर हो गया। पृथ्वी सुंदरी के दिगंताधर में उषःक़ाल का मंदहास दिखाने के जैसे सीता के गुलाब-से सुंदर अधरों में मुस्कान खेलकर, गालों पर लहराकर चेहरे को प्रसन्न करके गई। चेहरे की प्रसन्नता का कारण था मन की प्रसन्नता। उसके मन में हूवय्या की सुंदर मूर्ति भर गई थी। उसके बारे में अनेक भाव, दृश्य समूह एवं अनुभव चित्त की भित्ति पर चित्रित होकर, बाहरी दुनिया की प्रज्ञा से शून्य बनी वह स्मृति के नन्दन-वन में अप्सरा बनकर विहार करने लगी।

सीता के लिए हूवय्य बचपन से ही चिरपरिचित स्नेह मूर्ति था। गौरम्माजी साल में कम से कम एक बार रिश्तेदारिन की तरह कानूरु जाती और एक-दो

सप्ताहों से अधिक ही दिन वहां रहकर लौट आया करती थीं। हूवय्य सीता से पांच-छः साल बड़ा था। तो भी सीता को उसके प्रति अपनी हमजोलियों से अधिक स्नेह था, प्यार था, हेलमेल था। वह भोजन के लिए हूवय्य के बगल में बैठती, उसके साथ खेलती और पढ़ने के लिए जब बैठती तब हूवय्य से पढ़ाने के लिए कहती। हूवय्य को लाचार होकर पढ़ाना पड़ता। 'हूवय्य मामा' उसके लिए मानो पंच प्राण था। एक बार सब लड़के मिलकर परिवार का, कुटंब का खेल खेल रहे थे। तब सीता का विवाह हूवय्य के साथ करने का निश्चय हुआ। विवाह की सब रस्म पूरी हुई। सीता के गले में हूवय्य ने मंगल सूत्र भी बांध दिया था, मांग में सिंदूर भी भर दिया था। बालक दंपतियों का कपड़े का एक शिशु भी पैदा हुआ! वहां से पति-पत्नी ने तिल-अमावास्या के दिन तीर्थहल्ली की यात्रा का अभिनय भी किया। तीर्थहल्ली के मेले में रथोत्सव होता था। तब इन दोनों ने जाकर मिठाई, मुरमुरे, चने, खजूर, बताशे, सीटी आदि खरीद लाने का अभिनय भी किया। एक बार पति-पत्नी के कलह का भी अभिनय हुआ, उसमें हूवय्य ने सीता को पीटा भी। उस दिन के खेल में रामय्य ने सीता के भाई का अभिनय किया और सीता को हूवय्य से छुड़ा लिया। उस दिन तो सारा का सारा समय सीता-हूवय्य ने सच्चे दुलहिन-दुल्हे की तरह अत्यंत आनंद से बिताया। एक दूसरे से अलग ही नहीं हुए। रात को सोते समय सीता ने हूवय्य के साथ सोने के लिए ज़िद भी की थी। तब गौरम्माजी उसे एक-दो घूंसे देकर अंदर घसीट ले गई थीं। इस विनोद-विवाह का समाचार सबके कानों में पड़ा था। अतः सभी विनोद के लिए उन दोनों को दंपति ही कहने लगे थे। और एक बार भागवत का खेल हुआ। उसमें सीता ने हूवय्य के गले में माला पहनाई जिसे उसने बनाया था। इस प्रकार उसने हूवय्य को अपना पति बना लिया था। और एक बार की बात है। सीता की उम्र छः-सात साल की होगी, हूवय्य ग्यारह-बारह साल का होगा। सीतेमने के सिगप्प गौड़जी भोजन के लिए कानूर आये हुए थे। वे जैमिनी भारत पढ़कर अर्थ बता रहे थे। तब सभी लड़के उनको घेरकर बैठे हुए थे। सीता हूवय्य के कंधे पर हाथ रखकर इस तरह बैठी थी जैसे हूवय्य को गले लगा लिया हो। कथा में दंपतियों के अनुराग का प्रसंग आया। जब सिगप्प गौड़जी ने बैठे हुए लोगों को सीता और हूवय्य को दिखाकर कुछ हास्य की बातें कहीं तो दोनों-बालक-बालिका अपमान-सा होने से, अलग-अलग होकर रोने बैठ गये थे। गुलाब के पौधे के पास खड़ी सीता के मन में ऐसे कई-सैकड़ों चित्र उभरे तो उसे खुशी हुई। उनमें से कुछ प्रसंगों की याद करके अपने-आपमें शरमाकर मुस्कुराई। उसके अस्तित्व को न जाननेवाली कोयल उड़कर एक पेड़ की डाली पर बैठकर गान में मगन हो गई थी। सीता को न उसकी ध्वनि सुनाई पड़ी, न पंछी दिखाई पड़ा। वह अपने-आपमें इतनी मगन थी।

बचपन बीत गया था, तरुणाई आ गई थी। तब सीता और हूवय्य का रिश्ता लोक की दृष्टि में दूर-दूर हुआ-सा दीख रहा था। किंतु अंतरंग में वे अधिकाधिक नज़दीक हो रहे थे। फिर भी उनका संबंध अभी तक युवक-युवती के इंद्रिय सुख का (काम का) नहीं बना था। उनमें बालक-बालिका का मुग्ध प्रणय मात्र था। अब वे अलग हो गए थे, पर विरह वेदना उनमें नहीं थी। दोनों परस्पर सदा याद भी नहीं करते थे, कल सीता को हूवय्य की सोच भी नहीं थी। आज चिन्नय्य से खबर मिलने पर ही उसमें पूर्व स्मृति जाग्रत हुई। अब तक सुप्त स्नेह मन में उभरकर प्रबुद्ध हो गया था। मगर हूवय्य के मन में वह भी नहीं था।

अचानक सीता के सुवर्ण-स्वप्न का रंगीन बुद्बुद जैसे फूट गया, वह जागकर देखती है—पास के ऊंचे सुपारी के पेड़ से उसका छिलका नीचे गिर रहा था। भूरे रंग के सुपारी के पेड़ के पत्ते हवा में थर-थर कांप रहे थे। क्षणार्ध में नीचे के कदली के पौधे के पत्ते से लगकर, उसके अखंड, स्निग्ध, कोमल, श्यामल पत्ते को चीरकर जमीन पर के पत्तों पर धड़ाम से सुपारी के पेड़ का छिलका गिर पड़ा। केले का पत्ता आघात से थरथराकर ऊपर-नीचे हो, झूले की तरह झूमने लगा। मैले रंग की कठिन देह, मेघ से चुंबित सिर, सिर पर पौरुषयुक्त हो बढ़कर, चारों ओर कमान की तरह झुके कालेपन से युक्त हरे केले के पत्ते, उन पत्तों के केंद्र में हरे भाले की भांति तेज़ होकर सीधे गगन के सामने खड़ा हुआ उसका नुकीला लपेटा कोमल पत्ता, कदली पत्तों के नीचे गहरे हरे तने के आगे माता का वात्सल्य बालक के हृदय में भर जाने के समान अंदर के कोमल अर्धप्रस्फुटित सुपारी के पुष्प को गले लगाये सफेद-पीले रंग के सुवर्ण कदली—इनसे अलंकृत होकर धीरे खड़े होकर हूवय्य की याद दिलाने वाले उस सुपारी के पेड़ के नीचे जो कदली का पौधा था वह उसी की याद दिलाने वाला लगा सीता को। कदली का मैला पत्ता झूम-झूम कर धीरे-धीरे निश्चल हो गया। सीता ने जैसे भाई से कहा था वैसे फूल नहीं तोड़े। वसंत का मंद पवन उद्यान-कुसुम कुंजों में ललित गमन से संचार जैसे करता रहता है वैसे वह तनिक उत्कंठित भाव से रंगीन साड़ी के शिकन की आवाज़ के साथ लचकती, तैरती-सी हो, चलकर घर के भीतर बड़े दरवाज़े से प्रवेश कर रही थी। तब गोठ में गाय का प्यार पाते खड़ा एक बछड़ा सीता को अपलक देख रहा था।

सीता घर आकर, पांव धोकर फूलों को अपने कमरे में ले गई। उनको वहां रखकर रसोई घर में गई। गौरम्माजी पूरणपोलिका बनाने की तैयारी कर रही थीं। चिन्नय्य नाश्ता करके काफी पी रहा था। उसने पूछा, "फूल तोड़ चुकी?" इस प्रकार पूछकर वह अपनी छोटी बहन सीता को देख व्यंग्य से हंसा। सीता ने भौंहें सिकोड़ लीं और बिना बोले मां के काम में मदद पहुंचाने लगी।

५

कानूरु चंद्रय्य गौड़जी की तीसरी पत्नी

कानूरु चंद्रय्य गौड़जी का बड़ा घर मंगलूर खपरैलों का था। वह घने जंगल के पठार पर बड़े वट वृक्ष के नीचे के वल्मीक की याद दिलाने के समान प्रशांत था। घर की पूर्वोत्तर दिशाओं में तो जंगल-पहाड़ों की बड़ी दीवार भयंकर हो नजदीक में उठी थी। पच्छिम-दक्षिण की दिशाओं में उनके खेत, बगीचे, किसानों एवं मजदूरों के घर तथा निवास थे। खलिहान, गोठ आदि भी थे।

घर पुराने ज़माने का था। रचना में सर्वत्र भीमता ही प्रधान थी। दीवार, खंभों से लेकर बल्लों, बल्लियों तक स्थूलता दीखती थी। घर पर मंगलूर के खपरैल छाये हुए थे जो बारिश एवं धूप से काई के फैलने और उसके सूखने से अपना स्वाभाविक लाल रंग खोकर काले पड़ गये थे। बरसात के पूर्वार्ध में होने वाली वर्षा में पड़े बड़े-बड़े ओलों के कारण यहां-वहां खपरैल टूटे पड़े थे जिससे पानी चूता था। इसलिए टूटे हुए खपरैल निकालकर नये खपरैल डाले गये थे। इससे ऐसा लगता था मानो सर्व सामान्य प्राचीनता के बीच में अपूर्व एवं विरल नवीनता झांक रही थी। घर में उपयोग किये गए लकड़ी के सामान कई वर्षों के धुएं से अलकतरा पुते हुए के समान काले हो गए थे। दीवारों में एक-दो जगह वल्मीक भी बढ़े हुए थे। उन पर पूजा के समय लगाये लाल, सफेद टीके चित्र-विचित्र थे। प्राकार के बीच आंगन में पत्थर का चबूतरा था जिसपर तुलसी का पौधा बढ़ गया था। वह 'आंगन का देवता' बन बैठा था। आंगन के एक कोने में सुपारी पकाने का चूल्हा था। उसके बगल में हल, था। दीवानखाने में दीवार, पर एक बड़ी घड़ी के चारों ओर कुछ निरुपति के रंग-रंगीन चित्रपट टांगे हुए थे। दो-एक देशभक्तों की तस्वीरों के साथ-साथ भारत माता की तस्वीर भी थी जो यह बताती थी कि राष्ट्रीय महासभा का प्रभाव अपने कुशल-क्षेमकर आशीर्वाद का अपना हाथ उस वन प्रदेश के कोने तक फैल चुका था जो इस बात का स्पष्ट गवाह बन गया था कि उस घर में प्राचीन एवं नवीन के बीच में स्नेह या समर हो रहा है। यह उस घर के वातावरण और रूपलक्षणों की स्थिति का स्थूल रेखाचित्र है।

उसकी जंगम स्थिति भी साधारण कौतूहलकारी ही रहती थी। सात-आठ कुत्ते थे। कुछ चीनी, कुछ कंट्री, कुछ सफेद, कुछ काले, कुछ रंग-विरंगे। कुछ सोते रहते, कुछ वाहर घूमते-फिरते थे। वार-वार कभी-कभी गौड़जी के पास किसी न किसी काम के लिए सफेद पोशाक वाले भी, नौकर-चाकर भी आया-जाया करते थे। पिछवाड़े की अपनी दुनिया का अतिक्रमण करके आई मुर्गियां-मुर्गे, उनके वच्चे इत्यादि यहां-वहां घूम-फिरकर चरते। यहां-वहां अनिवार्य गंदगी करते। कोई आदमी या कुत्ता उनको जव भगाते तभी वे वाहर कुक्कुट शव्द करते हुए जाते। घर से लगकर ही गोठ था। वहां से विश्रृंखल गोरू कभी-कभी, साफ़-साफ़ खुटपुट ध्वनियों से वहां वालों को चेतावनी देते, धान की घास आदि कुचल करके आते थे कि हमको भगा दो।

यह सव उस घर के आंगन का चित्र था। पिछवाड़े का चित्र तो दूसरा ही था। वहां जव कभी मौका मिले तव क्रमाक्रम की भी परवाह न करके अपना उदरपोपण करते, पेट फुलाकर, पैर पसारकर पड़े रहने वाले पिल्ले थे। अपनी छोटी वच्चियों के साथ जमीन को कुरेदकर मैला करने वाली मुर्ग़ी थी। कोने में जगह न मिलने के कारण वड़ी टोकरी में धान की घास पर पड़े अंडों को पंखों में आलिंगन करके सेंक देते वैठी कुक्कुट गर्भिणी थी। वड़ा चूल्हा एक ओर था। वहीं ऊपर लटकने वाली थाली में सूखने के लिए मांस के टुकड़े रखे हुए थे। ऊपर के मंजिल पर झाड़ुओं का वड़ा वंडल था। एक ओर दीवार के सहारे एक-दो मूसल रखे हुए थे। पास में एक पत्थर की ओखली थी और एक वट्टा था। एक चक्की भी थी। एक छुरा भी था। इतना ही नहीं, एक तांवे का वड़ा हंडा भी था। यहां-वहां के कोनों में भरमार खचाखच भरे मकड़ों के जालों का तुमुल जटिल विन्यास था! पहनकर फेंकी हुई सूखी माला भी थी वहां। वालों को संवार करके झड़े हुए वालों का लौंदा भी था। तांवूल का लाल थूक भी था। इन सवके अतिरिक्त मूत्र की वदवू भी थी।

वह घर इतना वड़ा था कि तीस-चालीस आदमी आसानी से रह सकते थे। उसमें इस कहानी के समय के पूर्व पुरुप, स्त्रियां, वाल-वच्चे सभी घरवाले वीस-पच्चीस आदमी, दस-वीस सेवक, कुल चालीस-पैंतालीस लोग इस घर में रहते थे। संयुक्त कुटुंव होने से इतने लोगों का रहना अचरज की वात नहीं था। मगर कुछ वर्प पूर्व महामारी—शीतला रोग—के कारण वहुत-से मर चुके थे। इससे उस कुटुंव में सिर्फ सात लोग रह गये थे। उनमें से भी हूवय्य और रामय्य दोनों पढ़ने के लिये गए थे। तव नौकरों को छोड़कर घरवाले पांच ही लोग थे। घर का मुखिया चंद्रय्य गौड़जी, उनकी तीसरी पत्नी सुव्वम्म, उनकी दूसरी पत्नी की संतान पुट्टम्म और वासु तथा चंद्रय्य गौड़जी के दिवंगत वड़े भाई की सहधर्मिणी एवं हूवय्य की माता नागम्माजी।

चंद्रय्य गौड़जी के पहले उनके बड़े भाई सुब्बय्य गौड़जी घर के मालिक थे। सुब्बय्य गौड़जी की मृत्यु के समय उनके तथा चंद्रय्य गौड़जी के बीच में मनमुटाव हो गया था। नागम्माजी सबसे यही कहती थीं कि उनके पति की मृत्यु का कारण चंद्रय्य गौड़जी ही हैं। उन्होंने विश्वास कर लिया था कि चंद्रय्य गौड़जी ने मेरे पति पर भूत-पिशाच का आक्रमण कराके मार डाला। मगर सच बात यह है कि वे रेशम की बीमारी से मर गये थे। चंद्रय्य गौड़जी का भी ऐसा बर्ताव था कि उसे देखकर लोगों को नागम्माजी की बात पर विश्वास हो जाता था। नागम्माजी के प्रति द्वेष नहीं था तो भी उनसे अनादर से पेश आते थे। पीड़ित, वेदना से भरे हृदय वाली नागम्माजी को चंद्रय्य गौड़जी का एक-एक अनादर का बर्ताव भयंकर वैर के समान लगता था। ये सारी बातें हूवय्य जानता था, तो भी वह भावुक होने से तथा उसका सारा मन विद्यार्जन की ओर होने से, रामय्य के विश्वास के प्रभाव से भी वह तय नहीं कर पाया था कि क्या किया जाय। अतः वह चुप था।

रामय्य की मां, चंद्रय्य गौड़जी की प्रथम पत्नी, जब चल बसी थी, तब उन्होंने अत्यंत दुःख के कारण आत्महत्या कर लेने के लिए बंदूक हाथ में उठा ली थी। तब भी एक वर्ष के भीतर उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। दूसरी पत्नी पुट्टम्म तथा वासु को जन्म देकर तीसरे प्रसव में शिशु सहित स्वर्ग सिधार गई। उसकी मृत्यु के बाद एक वर्ष भी नहीं बीता था कि चंद्रय्य गौड़जी को तीसरी पत्नी की आवश्यकता महसूस होने लगी। लोग यह जानकर दांतों तले उंगली दबाने लगे। उनके विधुर होने के कुछ ही महीनों में उनपर एक अपवाद उत्पन्न हो गया था। उनके सेरेगार (मिस्तरी) रंगप्प सेट्टजी के अधीन काम करनेवाली दक्षिण कन्नड़ जिले की एक स्त्री के प्रति उनका दिखाया गया असाधारण अनुराग ही इस अपवाद का कारण हो गया था। चंद्रय्य गौड़जी दृढ़ कायावाले थे, अमीर भी थे, मध्य आयु पार कर चुके थे, तीन संतानों के पिता थे; अतः सुसंस्कृत अमीर उनको कन्या देने में पीछे हट गये। गौड़जी ने अप्रतिभ हुए बिना नेल्लुहल्ली जाकर कन्या को मांगा। नेल्लुहल्ली वाले असंस्कृत, बेनाजुक जिंदगी बसर करनेवाले एवं गरीब होने के कारण कन्या देने के लिए तैयार हो गये बिना प्रतिवाद किये, स्वसंतोष से। यह मालूम होते ही मुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी आदि हितेच्छु बंधुओं ने चंद्रय्य गौड़जी को उस साहस से पराङ्मुख (विमुख) करने का प्रयत्न किया। उन्होंने गौड़जी से कहा, "उस कन्या को लाना आपको शोभा नहीं देता।" पुट्टम्म तथा वासु दोनों ने अपनी बड़ी काकी से सभी बातें जानकर आंसू बहाए। गौड़जी के प्रति द्वेष करनेवाली नागम्माजी को भी उन बच्चों पर दया आई। कुछ भी हो, गौड़जी का नव-दांपत्य प्रेम तनिक भी कम नहीं हुआ। विवाह निश्चित हो गया। मगर मैसूर में रहने वाले हूवय्य तथा रामय्य को इसकी खबर ही नहीं थी। उन दोनों को इस घटना से दूर रखा गया। चंद्रय्य गौड़जी की इच्छा के अनुसार उन दोनों

को विवाह का आमंत्रण पत्र नहीं भेजा गया। अतः गौड़जी के तृतीय विवाह के वारे में वे अंधकार में रखे गये।

आखिर, सुव्वम्म चंद्रय्य गौड़जी की धर्मपत्नी वनकर कानूरु आई।

सुव्वम्म इसके पहले एक-दो वार अन्य विवाह आदि समारोहों में कानूरु गई थी, तव वहां एकत्रित भद्रपुरुषों की सभा में हूवय्य की तेजोमय सूरत उसने देखी थी। वहां एकत्रित महिलाओं के मुंह से हूवय्य की प्रशंसा सुनी भी थी। जवान वनी लड़कियां सुंदर, जवान लड़कों को देखने पर जो-जो सोचती हैं, जो-जो अनुमान करती हैं व कल्पना करती हैं या आशा करती हैं वह सभी उसने भी सोचा था, अनुमान किया था, कल्पना की थी और आशा भी की थी। लेकिन उसने अच्छी तरह जान लिया था कि अपनी भावनाएं, अपने अनुमान, अपनी आशाएं केवल दिवा-स्वप्न हैं। नैशाकाश के वहुत दूर के प्रदेश में चिरंतन ज्योति से जगमगाते तारे के लिए वह नाशवान मिट्टी का पलीता वन गई थी। ज्योतिहीन मिट्टी का पलीता उस दूर के नक्षत्र को ही अपने हृदय में जलनेवाला दीप हो, यदि ऐसी इच्छा करे तो वह नहीं होने की वात होगी, न अपराध की वात। कानूरु चंद्रय्य गौड़जी अपने घर कन्या मांगने के लिए आये हैं, यह समाचार पाते ही उसको अनहोनी होनी की तरह लगकर दिग्भ्रम हुआ, परंतु न हाथ लगनेवाला नक्षत्र हस्तगत होगा, इस ख्याल से वह आनंद संभ्रम का स्रोत वनी थी। लेकिन उसको जव सच्ची वात मालूम हुई तव वह हताश हुई थी, तो भी वह दुःखी नहीं हुई। आमतौर के जीवनक्रम से उसको एक सामान्य किसान का पाणिग्रहण करके मेहनत, मजदूरी से जीवन विताना चाहिए था। कानूरु के वड़े घर के मालिक, गण्यमान्य चंद्रय्य गौड़जी का पाणिग्रहण करना और हेग्गडिति वनना अपना सौभाग्य मानकर वह संतुष्ट हुई। और कुशल लड़कियों के लिए तो अपने प्यारे को छोड़कर दूसरे से व्याह करना या विधुर से विवाह करना मानो हृदयविदारक व महासंकट की वात हो लेकिन सुव्वम्म के जीवन में ऐसी कुशलता के लिए तनिक भी गुंजाइश नहीं थी। इसलिए वह संभ्रम से ही चंद्रय्य गौड़जी की तृतीय पत्नी वनकर कानूरु आई थी।

गरीवी में पली, असंस्कृतों में पोषित, उनके आचार-विचार व शील को सीखी सुव्वम्म में सुसंस्कृत स्त्री-सहज उदारता, गंभीरता, शालीनता, विनयशीलता तथा संयमशीलता से युक्त चालचलन आदि गुण तनिक भी नहीं थे। इसलिए अव तक अवकाश के न मिलने से सुप्त अहंकार, छल, दर्प, स्वार्थपरता, दुरभिमान आदि अनागरिक गुण, जंगली भाव, चंद्रय्य गौड़जी की तीसरी पत्नी वनकर कानूरु की हेग्गडिति वनते ही भयंकर हो, फन उठाकर खड़े हो गए। वह सव कामों में, सव लोगों पर निर्दाक्षिण्य हो, निःसंकोच हो हुकुम चलाने लगी। हरएक वात में उसकी छोटी, ओछी वुद्धि ही प्रकाशित हुई। वह इतनी अधोगति

पर उतरी कि जन्म से ही साबुन का नाम तक न जाननेवाली उसने नागम्माजी को वासु को साबुन लगाकर स्नान कराते देखकर, मनमानी गाली दे दी! नागम्माजी को उस नई जंगली रानी का शासन अच्छा नहीं लगा। पुट्टम्म को तो सुब्बम्म की परछाईं तक असहनीय हो गई। सुब्बम्म ने घी, मक्खन आदि चीजों को अलमारी में रखकर ताला लगा दिया। इस तरह की हरकतों से घर में तीनों पहर झगड़ा होता और घर की शांति मिट गई थी। चंद्रय्य गौड़जी स्वभाव से रोबदार थे तो भी अपनी नवोढ़ा के माधुर्यसार के शोषणासक्त होकर अंदर ही अंदर उसकी कठपुतली जैसे बन गए। यदि पति की उम्र कम होती तो सुब्बम्म उसकी आंखों में सुंदरी होने की बात तो दूर रहती, वह उसको बदसूरत ही दिखाई पड़ती। लेकिन अब तो उनके लिए रति बन गई थी। पुराने को नवीन सभी सुंदर ही लगता है! वे सुब्बम्म को सुधारने के बदले उसकी चुगली सुनकर, नागम्माजी से भी, अपने बच्चों से भी कठोरता बरतने लगे। इससे सुब्बम्म के सिर पर और दो सींग उग गये जिनसे वह सबको मारने लगी।

चंद्रय्य गौड़जी अपनी अठारह वर्ष की छोटी पत्नी के शरणागत हो गए थे। इसमें भी एक राज था। वे यह जाने बिना नहीं रह सके कि मैं अधिक उम्र वाला हूं, कमसिन के योग्य वर नहीं हूं। इसलिए वे सौंदर्य, यौवन, सरसता से युवती को अपने वश में करने का सुयोग न होने से नवोढ़ा पत्नी की चुगली की बातें सुनते थे और उसको अनागरिक रीति से बरतने देते, खुद वस्त्राभरण लाकर देते। इन हीनोपायों से अपनी पत्नी का मन अपनी ओर खींच लेने का साहस करते थे। इसके अलावा उसका अन्याक्रांत होने के भय से वे अंदर ही अंदर कुढ़ रहे थे। इस शंका के लिए आधार बने हुए थे उनके घर में चाकरी करने के लिए रहे हुए सेरेगार रंगप्प सेट्टजी।

आखिर नेल्लुहल्ली ग्राम के निवासियों से 'सुब्बि' कहला लेनेवाली चंद्रय्य गौड़जी की कृपा से कानूरु सुब्बम्म हेग्गडिति बन गई थी।

६

सेरेगारजी की कैप की बंदूक

तरंगित सह्याद्रि की श्रेणियों रचित बहुत दूर के प्राचीदिगंत रेखा का दीर्घ सर्पविन्यास सद्यः प्रफुल्लित उपःकांति से कुछ हद तक साफ होने पर भी, शीघ्र-शीघ्र प्रस्फुटित होते रहने पर भी कानूरु पहाड़ों के कानन के अंतर में सिर्फ अंधेरा अभी घना होकर पुता-सा था। गिरि के सिर पर पर्ण समाकीर्ण एक बड़े पेड़ के पत्तों की आड़ के अंधकार के गर्भ में ताक में छिपा बैठा एक जंगली मुर्गा एक बार पूरब की ओर, एक बार जंगल के अंधकार की तरफ देख-देखकर दुमन का हो गया था। पूरब की ओर देखने से ऐसा लगता था मानो प्रभात पर्यटन के लिए निकला हो और वह समां मनमोहक था। तब जंगल का अंधेरा जैसे कह रहा था थोड़ा सब्र करो। पेड़ों की सघनता से ठंडी हवा के खुलकर बहने में रुकावट हो रही थी, तो भी उसकी शीतलता सर्वत्र फैल गई थी। मुर्गे के गरम पंखों में भी घुस गई थी। तो भी वह हवा साहस प्रेरक थी, न कि साहस निवारक। मुर्गा कान लगाकर सुन रहा था। अनंतारण्य निःशब्द, घनीभूत मौन से मानो अचल था। लेकिन थोड़े समय में ही जंगल के अंधकार की सेना में दरार दिखाई दी, उसमें से होकर अरुणोदय का किरणविहीन रक्तराग यहां-वहां हमला करके वन प्रांत को आक्रांत कर रहा था। घाटी में मडिवाल पंछी सीटी बजा रहा था;उसका गान मुर्गे को सुनाई पड़ा। वह अपनी बैठी शाखा पर सीधे खड़े होकर, दीर्घ अंगड़ाई लेकर दीर्घ स्वर से वन के मौन को तोड़कर, उसे जागृत करने के लिए मानो बांग देकर अपने पंखों को फड़फड़ाते नीचे कूदा। चारों ओर के पत्तों ने भी 'बर-बर' आवाज की। मुर्गे के पंखों में प्रातःकाल की शीतल हवा तनिक जोर से प्रवेश करने के कारण वह पहले की अपेक्षा उसे अधिक शीतल-सी लगी। पर उसने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह जमीन पर बैठते ही सिर उठाकर, छाती फुलाकर, गर्दन टेढ़ी करके, पूंछ के पंखों को तानकर, 'कु कु कुकडूं कूं' करके जोर से टेर लगाकर, फिर परों को फड़फड़ाकर अपनी चोंच से खुराक शोधने में लग गया। तुरंत जंगल में जहां-जहां मुर्गियां थीं वे भी अपने पंखों को फड़फड़ाने लगीं। उसकी आवाज़ भी सुनाई पड़ी।

मुर्गे ने सूखे पत्तों के नीचे की मिट्टी कुरेद-कुरेदकर कीड़े-मकोड़ों को खाया, बीच-बीच में मुर्गियों को पुकारकर बुलाया। बिना पेट भरे कौन मुर्गी अपने प्रणय सुख के लिए इच्छा करेगी ! वनकुक्कुट राजा के पास कोई मुर्गी रानी नहीं आई। फिर मुर्गा लगातार ज़मीन कुरेदने के काम में लग गया। करीब एक घंटे के बाद, पेट खूब भर जाने पर मुर्गे को मुर्गी की याद आई, उसने पुकारा। उस पुकार में 'अब तनहाई नहीं सही जा सकती' की विरह-व्यथा, और 'आ जा प्रिये, आ जा' के प्रेमामंत्रण की मधुरता भी सम्मिलित थी। मुर्गे ने दर्प से बार-बार पुकारा तो एक मुर्गी अपने बड़े बच्चों के साथ 'कु कु कु' करती हुई दौड़कर उसके पास आई। लेकिन मुर्गी ने पीछे हटकर भोगासक्ति की अपेक्षा भोजनासक्ति को दिखाया। उसकी इच्छा को जानकर मुर्गा ज़मीन कुरेदकर मुर्गी को पास बुलाकर कीड़े खिलाने लगा। इस दावत में न बुलाने पर भी उसके बच्चे माता के खुराक में हिस्सेदार बने।

सूर्योदय हो गया था। सुनहली धूप दीर्घ तरु छाया के बीच में से होकर झुरमुटों पर, गुंथी हुई लताओं पर, शुष्क पर्णावृत्त ज़मीन पर पड़ी थी। अन्य वन्य पंछी अपनी-अपनी ध्वनि का प्रदर्शन करने में लग गए। एक ओर काजाण पंछी ने अपने स्वर्गीय सुमधुर गान सुधा से समस्त वनगिरि प्रांत को आप्लावित कर दिया था। एक ओर तोतों की चकित वाणी मनोहर थी। एक ओर कामल्ली पंछी का ललना कंठ धूप के नीचे सोई पत्रहीन शाखा के सिर पर से ध्वनिमधु बरसा रहा था। और एक ओर मंगट्टे पंछियों का विकट गान जंगल को मानो डराने लगा था। फूलों से भरे पेड़ों पर लाखों मधुमक्खियां ओंकार के समान झंकार कर रही थीं। संतोष-संभ्रम से मुर्गा फिर जोर से पुकार-पुकारकर बुलाने लगा। अब की बार वह मुर्गी को बुलाने की पुकार नहीं थी। मगर सारे जंगल को यह बताना था कि मैं पुरुष हूं। तो भी थोड़े समय में ही एक मुर्गी थोड़ी दूर पर 'तेको तेक् तेक्, तेको तेक् तेक्' मिथुन ध्वनि करने लगी। मुर्गे ने सिर को एक ओर टेढ़ा करके एक आंख से बहुत देर तक देखते, एक पैर पर खड़े हो, कौतूहल से निस्पंद हो सुना। साथ में मुर्गी थी, तो भी उसका मन चंचल हो उठा और दूसरी मुर्गी पर बिक गया। मुर्गे को अपने-आप जो पास आई थी उसे त्यागने की चाह नहीं थी। दूसरी मुर्गी को पास में बुलाने की इच्छा से थोड़ी दूर दौड़कर जाके खड़े हो पुकारा ! उस पुकार की प्रतिध्वनि हुई। वह मुर्गी पास आये बिना अपने स्थान पर ही रहकर 'तेको तेक् तेक् तेक्' करके बुलाने लगी। उस अनदेखी मुर्गी की ओर मुर्गा आकृष्ट हुआ। अनुकंप उसके प्रति बढ़ा। और कुछ दूर आगे बढ़ा, उसे संदेह-सा होने लगा, पीछे हुए मुर्गी के बच्चों की ओर उसने ऐसा देखा जैसे आगे जाऊं कि नहीं पूछ रहा हो। मुर्गी और उसके बच्चे ज़मीन कुरेदने में इतने मग्न थे कि मुर्गे की ओर उनका ध्यान ही नहीं था। फिर 'तेको तेक् तेक् तेक्' ! मुर्गा

चौंककर दो कदम पीछे हटकर खड़ा हो गया। उसका खड़ा होने का ढंग ही मानो उसकी सोच को सूचित करता था। क्योंकि उस मुर्गी के स्वर में कुछ अपस्वर-सा था। फिर 'तेको तेक् तेक् तेक्' ! छिः, अपस्वर कहां ? वह तो कुक्कुट ललना का सुमधुर सुस्वर है, सोच रहा था कि फिर सुनाई पड़ा—'ते को तेक् तेक् तेक्, तेको तेक् तेक् तेक्' !मुर्गा प्रणयावेग से बढ़कर उतार से चढ़ाव की तरफ धाया। थोड़ी दूर जाकर देखता है: झुरमुटों के बीच में छिपकर खड़ा है एक मनुष्याकार ! वहीं से आ रहा था वह माया मुर्गी का बुलावा ! मुर्गा डरकर लौटनेवाला ही था कि धड़ाम से गोली लगी उसकी देह में और मुर्गा मूर्छित हो लुढ़का। उस बंदूक की आवाज़ सुनकर डर के मारे मुर्गी, जो आहार के शोध में लगी थी, अपने बच्चों को साथ में लेकर भाग गई।

बंदूक की गरम नली से अब भी धुआं निकल रहा था, ऐसी कैपवाली बंदूक हाथ में धरकर कानूर के रंगप्प सेट्ट जी अपने झुरमुट में से निकलकर कुतूहल से उस मुर्गे के पास आये। मुर्गा निश्चल पड़ा था। उसकी देह से फूटा रक्त ज़मीन पर और सूखे पत्तों पर तथा कूड़े-करकटों पर गिरा था। बिंबाफल एवं लाल अड़हुल फूल से बढ़कर आरक्त तुर्रे ने उसके सिर को कोमल रमणीय बना दिया था। उसके गर्दन पर के पंख मयूर कंठश्री की याद दिलाने के जैसे धूप में जगमगा रहे थे। उसके अगल-बगल के पंख और पूंछ के डैने और पूंछ के पंख रंग-बिरंगे थे। तीन भागों में बंटे उसके दोनों पांव धूल से गंदे हो गये थे। उसके पैरों के अग्रभाग कम लाल थे। उसके नख आधे इंच के जितने लंबे आयुध के समान पैने थे। कांटों की तरह पूंछ के लंबे-काले दो पंख गर्वित विन्यास से टेढ़े हो, जमीन पर पड़े जगमगा रहे थे। उसका मुंह ऊपर को था। उसकी आंखों की पलकें मुंदी थीं जैसे जीवन पर मृत्यु का परदा गिरा हो। सेरेगारजी ने सौंदर्य पुंज की भांति धराशायी बने उस मुर्गे को तृप्ति से, आत्मप्रशंसा से देखकर, झुककर उसे बायें हाथ से उठाकर जोर से हिलाया ताकि उसके पंखों में लगी धूल झड़ जाय। फिर उसे लेकर अपने स्थान पर गए। वहां उनका काला कंबल पड़ा था। उसके पास मुर्गे को रखकर, बंदूक में गोली-बारूद भरने लगे।

सेरेगार रंगप्प सेट्टजी करीब पैंतीस वर्ष के, साधारण कद के आदमी थे। मोटे-ताजे कद में कोई आकर्षक विशेपता नहीं थी। उनका रंग सांवला था। मुंह चपटा था। आंखें-भौंहें कुटिल थीं। होंठ हमेशा खुले रहते जिनसे दंत-पंक्ति उभरी दिखाई देती थी। वे जब हंसते तब उनके कीड़े लगे, काले हुए दांत दिखाई देते। कानों में वज्र के कर्णकुंडल थे जो उनकी रसिकता की गवाही देते थे। गाल पर एक चौड़ा मच्छ था जो उभर कर दीखता था। वे सुंघनी के रंग का कुर्ता पहनते थे, घुटनों तक की धोती। कुरते के सफेद बटन दूर-दूर तक दिखाई देते थे। नंगे घुटनों के हिस्से रोममय थे। बायें पैर में मनौती का चांदी का कड़ा था। पादों में

मोटे देहाती जूते थे।

रंगप्प सेट्टजी घाट के नीचे के प्रदेश के थे। घाट के ऊपर मजदूरों को लाकर मिस्तरी का काम करते थे। दक्षिण कन्नड़ (मंगलोर) जिले से आने वाले मिस्तरी लोगों को 'सेरेगार' कहते हैं।

रंगप्प सेट्टजी कानूर में पांच वर्षों से अपने मज़दूरों सहित लोगों के विश्वास पात्र बनकर रहते थे। शिकार में तथा एक मजदूरिन की सोहवत में उनकी आसक्ति थी। उनका निजी परिवार घाट के नीचे उनके गांव में था। तो भी घाट के ऊपर के प्रदेश में एक अल्पकालीन तत्कालीन परिवार बना लेना बड़ा पाप नहीं समझते थे। यह अफवाह थी कि उन्होंने अपनी रखैल की मदद से चंद्रय्य गौड़जी को अपने जाल में फंसा लिया है, अपने वश में कर लिया है।

शिकार के मिलने से खुश थे सेट्टजी; अतः आराम से बंदूक में बारूद भर रहे थे। बारूद की बुकनी बंदूक की नाली में डालकर, उस पर पुआल डालकर छड़ से कूट रहे थे। तब अब तक निस्पंद पड़ा मुर्गा छटपटाने लगा। सेट्टजी ने उसकी तरफ देखा। वह फिर निश्चल हो गया। थोड़ा प्राण कहीं बचा था, वह भी निकल गया सोचकर, जेब से छोटी गोली को निकाल कर हथेली पर रखकर उसका प्रमाण निर्णय कर ही रहे थे कि मुर्गा छटपटाकर खड़ा हुआ और लड़खड़ाते हुए भागने लगा। सेट्टजी ने जल्दी-जल्दी बंदूक में गोली भर ली और बंदूक को बायें हाथ में लेकर दाहिने हाथ से उस मुर्गे को पकड़ने के लिये गये। उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि वह उनकी आंखों में धूल झोंककर इस तरह भाग जाएगा। मगर मुर्गा टेढ़ा-मेढ़ा जाते हुए झुरमुट में घुसने लगा। एक गज, दो गज, दस गज दूर हो गया। सेट्टजी बंदूक नीचे रखकर दोनों हाथों से पकड़ने के लिए खूब प्रयत्न करने लगे। मुर्गा इधर-उधर घुसकर, यहां-वहां खिसककर अंत में एक घने झुरमुट में गायब हो गया। सेट्टजी हताश, दुःखी, नाराज़ होकर मुर्गे के जाने की आहट ही को सुनते असहाय-से खड़े हो गये। आहट दूर होती हुई अंत में थोड़े समय में ही नीरव हो गई। सेट्टजी खिन्न हो, दीर्घ सांस छोड़, मार्ग में छोड़ी बंदूक उठाकर, वहां पहुंचे जहां उनका कंबल पड़ा था। उनको कंबल ऐसा दीखा जैसे वह उनका मजाक उड़ा रहा हो।

भग्नमनोरथ होकर सेट्टजी ने कुछ न कुछ शिकार करके ही जाने का संकल्प किया। वे दुगुने उत्साह एवं साहस से जंगल में घात लगाये घूमने लगे। तब उनको एक ऐसी जगह दिखाई पड़ी जो लताओं के घेरने से समतल बनी थी। सेट्टजी का कुतूहल बढ़ा, उसके पास गये। उस पर खड़े होने से वह खाट जैसा समतल सपाट लगा। उन्होंने लताओं को हटाकर, उखाड़कर देखा : किसी ने लकड़ी के टुकड़ों को इकट्ठा करके ऐसा रखा है कि वे किसी को दिखाई न पड़े; इसीलिए उन पर लताएं फैला दी हैं। चिकने-मोटे बल्ले, तख्ते, रीप आदि ढेर के ढेर

सुव्यवस्थित पड़े हैं। किसी ने विना लाइसेंस के पेड़ काटकर टुकड़े वनाए हैं, यह जान सेरेगारजी को इतनी वड़ी खुशी हुई कि मानो उनको वड़ी निधि मिल गई हो। जिन्होंने ये टुकड़े कटवाये हैं वे इन्हें घर न ले जायें, सोचकर सेट्टजी ने संकल्प किया कि इसकी खवर चंद्रय्य गौड़जी को देनी चाहिए, और इन लकड़ी के टुकड़ों को उनके घर पहुंचाना चाहिए, इसमें अपना भी फायदा है, और गौड़जी का भी। अव सेट्टजी के मन से शिकार की वात वाहर निकल गई; वे लकड़ी के टुकड़ों को घर पहुंचाने का उपाय सोचने लगे। वे मन ही मन खुश हुए कि आज सवेरे शिकार के लिए वंदूक लेकर जाना सार्थक हुआ। मुर्गा हाथ से निकल गया तो क्या हुआ? लकड़ी के टुकड़े मिल गये न!

इतने में पेड़ के काटने की आवाज आई। सेट्टजी चोरों को पकड़ने जाने वाले पुलिस की तरह उस ओर वढ़े जिस ओर से आवाज़ आ रही थी। उन्होंने देखा: अपने पहचान के वढ़ई! वड़े-वड़े पेड़ों के तनों को आरे से काटकर चार-पांच फुट के टुकड़े वनाकर वे ढेर लगा रहे हैं। रंग-रंगीन पेड़ों की वुकनी ढेर की ढेर पड़ी है जो मानो वता रही थी कि काम वहुत दिनों से चल रहा है। सेट्टजी को देखकर वढ़ई पहले अप्रतिभ हुए। फिर भी उन्होंने उनको पास वुलाया, पान-सुपारी देकर सत्कार किया। वातचीत से मालूम हुआ कि सीतेमने के सिंगप्प गौड़जी वहुत दिनों से चोरी-चोरी से तने के टुकड़े कटवा रहे हैं। चंद्रय्य गौड़जी का सीतेमने के सिंगप्प गौड़जी से वदला लेने का उपाय मैंने खोज लिया है, यह सोचकर सेरेगारजी कानूर की तरफ़ रवाना हुए। धीरे-धीरे आरे की आवाज़ दूर-दूर होती गई।

सेट्टजी अपने देखे दृश्य के वारे में सोचते, घने जंगल में कदम धीरे-धीरे उठा कर रखते जा रहे थे। वे कभी तेज चलते, कभी आहिस्ता-आहिस्ता। अचानक उस जंगल में एक पगडंडी दिखाई पड़ी। उसी पर से वे जाने लगे। मगर उनको मालूम नहीं हुआ कि उस जंगल में पगडंडी कैसे वनी? वह पगडंडी एक वड़े वगनी (ताड़ वृक्ष की जाति का एक पेड़) पेड़ तक गई थी। तव सेट्टजी को मालूम हुआ कि किसी ने विना लाइसेंस के उस पेड़ पर ताड़ी के लिए मिट्टी का घड़ा वांध दिया है।

ऐसा लगता था। उस लंवे वगनी के पेड़पर अभी-अभी कोई मिट्टी का घड़ा वांध-कर गया है क्योंकि थूका हुआ तांवूल पेड़ के पास पड़ा था। वह अभी तक गीला था, सूखा भी नहीं था। सेट्टजी को यह सव देखकर, खासकर पेड़ पर वंधे घड़े को देखकर मुंह में पानी आया, परंतु पेड़ से लगाई नसैनी(सीढ़ी)पर चढ़ने का साहस नहीं हुआ। इसलिए वे निराश हो जाने लगे, फिर झुरमुट में से आहट सुनाई पड़ी तो खड़े होकर जांच करने लगे, झुरमुट में कुछ हिलता-सा दिखाई पड़ा। उन्होंने झुककर अच्छी तरह देखा। कोई जानवर खड़ा-सा दीखा परंतु सेट्टजी उसे पहचान न सके। क्योंकि वह झुरमुट के अंधेरे में था। देर करने से वह भाग न जाय, इस लिए उन्होंने गोली दाग दी।

"कौन है गोली दागने वाला ?" मनुष्य की आवाज़ आई झुरमुट में से।

सेट्टूजी की छाती धड़कने लगी। वदन गरम-गरम पानी पड़ने के समान लगा। वे कांपने लगे। पसीने से तर-वतर हुए खड़े न रह सके। ज़मीन पर वैठ गये। जानवर समझकर किसी आदमी को मार डाला सोचकर !

"कौन है गोली दागने वाला?" फिर पूछते हुए कानूरु चंद्रय्य गौड़जी के वेलर जात का आजन्म चाकर वैरा झुरमुट से वाहर आता दिखाई दिया। सेट्टूजी को देखते ही, "आप ही ने क्या गोली दाग दी ?" पूछकर पास आया।

सेट्टूजी ने मूक, भयचकित होकर उसको देखा। उसके काले कलेवर पर घुटनों तक की मैली धोती के सिवा सूत का एक चिथड़ा तक नहीं था नाम के लिए भी। सिर के अगले हिस्से पर कुछ वाल थे, गाय के खुर के आकार में कुछ वाल छोड़े हुए थे, वाकी तमाम सिर घुटा हुआ था। उसकी चोटी वंधी हुई थी। तो भी बहुत दिनों तक तेल नहीं लगाया था जिससे वे सूखे-सूखे होकर उलझे-उलझे और तितर-वितर हो रहे थे। मूंछ-दाढ़ी एक-एक इंच वढ़ गई थी। कानों में कुंडल थे, वांह पर तांवे का तावीज काले धागे से वंधा था। मलेरिया के प्रकोप के कारण उसका पेट फूला हुआ था, तो भी वह मेहनत करने में कमज़ोर नहीं था। उसके वदन पर दागे गये जो निशान थे वे वैद्य की राक्षसी भाव के प्रमाण थे। उसके नंगे शरीर, हाथ, पैरों पर कोई घाव या लोहू का निशान न दीखने से, उसकी वाणी में सहजता दिखाई देने से सेट्टूजी की जान में जान आ गई, वे उसांस छोड़ते हुए वोले—"हां जी ! मैंने ही दागी थी !"

सेट्टूजी की हालत देखकर वैरे ने पूछा, "ऐसा क्यों करते हो जी ?"

"तुमको कुछ भी नहीं हुआ है ?"

"हां, कुछ भी नहीं हुआ है !···क्यों ?"

"कोई वात नहीं ! परमात्मा ने ही वचाया।" कहकर सेट्टूजी ने वंदूक को नमस्कार किया।

"किसको गोली दागी थी ?"

"तुम्हींको।"

"मुझको ?"

"क्यों इस तरह छिपकर वैठे थे जी ? मार ही डाला था न तुमको ?" कहकर सेट्टूजी ने सव कुछ सुना दिया जो घटा था।

"मैं टोकरी वनाने के काम आने वाली वेंत के लिए आया था। वहीं वैठ गया था।"

सेट्टूजी को मालूम नहीं हुआ कि उनका निशाना कैसे चूक गया। दोनों ने मिलकर देखा गोली कहां लगी है। परंतु उनको कहीं गोली नहीं दिखाई दी यद्यपि उन्होंने वहां पेड़-पौधों को छान डाला।

"वैरा, मेरा भाग्य अच्छा था। तुम्हारी उम्र भी वलवान थी। नहीं तो इतना ठीक निशाना कैसे चूकता? गोली का न लगने, उसके गायव होने का मतलव क्या?···अव की वार भूतराय को एक मुर्गी और चढ़ाऊंगा!"

सेट्टजी की गोली की तलाश में वढ़ते-वढ़ते वे दोनों उस स्थान के पास गये जहां वैरा छिपकर वैठा था।

वैरे ने विलकुल घवराकर, "गोली जाय भाड़ में, पीछे आ जाइये। फिर आगे क्यों जाते हैं?" कहकर उनको वापस वुलाया।

लेकिन सेट्टजी की नाक को वैरे के रहस्य का पता लग गया था। वैरे के छिपे स्थान पर एक कंवल था, ताजी ताड़ी से भरा एक मटका था जिससे घम-घम खुशवू आ रही थी।

"यह क्या वैरा! वगनी पर मटके को किसने वांधा था?"

वैरे का मुंह छोटा हुआ। सेट्टजी की गोली के लगने पर जितनी वेदना होती, उसे उससे भी अधिक वेदना हुई। अपना रहस्य खुल जाने से वह घवरा गया। सेट्टजी के पास आया, उनके पांवों पर पड़ा, उसने गिड़गिड़ाकर कहा, "हुजूर, क्षमा कीजिए। मेहरवानी करके किसीसे न कहियेगा!"

"अरे, तुम्हारी चोरी की ताड़ी के मारे मुझे फांसी होती रे! तुम्हारे घर का सत्यानाश हो! वहां क्यों वैठा था रे?"

"क्या कहूं? आपको परमात्मा ने वचाया। आपको मुझे वचाना चाहिए। आपके आने की आहट पाकर छिपा वैठा था!"

"जाने दे, जो वीता सो वीता।···ताड़ी अच्छी है?"

वैरा वेलर जात का, अस्पृश्य था। फिर भी जंगल में कोई देखनेवाला नहीं था; इसलिए वैरे ने वगनी के छिलके से वने दोने में ताड़ी को भरकर सेट्टजी को दिया। ताड़ी फेनिल, ताजी थी। सेट्टजी ने उसे खूव पिया। दुपहर का समय हो गया था तव। दोनों आपस के रहस्य को मन में गोपनीय रखकर कानूर की तरफ निकल पड़े।

गोली वैरे को नहीं लगी थी। इसलिए सेट्टजी को रास्ते में एक वात सूझी अचानक। वंदूक की नली में भरने के लिए गोली को हाथ में जव पकड़ा था तव मुर्गा भाग गया था न? गड़वड़ी में गोली को वंदूक की नली में डालकर मुर्गे का पीछा किया था। उसके वाद निराश होकर सेट्टजी लौटे थे। मगर गोली के ऊपर घास डालकर कूटना भूल गये थे। वंदूक के कान पर केवल कैंप रखकर आगे के शिकार के लिए निकले थे। रास्ते में वंदूक को ऊपर-नीचे घुमाते समय गोली लुढ़ककर नीचे गिर गई थी। अतः वंदूक को दागने पर केवल आवाज़ हुई और वैरा वच गया।

सेट्टजी ने मन ही मन मुर्गे को नमस्कार किया और उसका शुक्र माना।

७

मथने के खंभे की गवाही में

रसोई घर के चूल्हे में सुलगती आग अपनी लीलामयी जीभों से चूल्हे पर रखी पत्थर की बनी मटकी की मसिमय बनी पीठ को चाट रही थी। धर्मराज जनमेजय आदि पुराण-पुरुषों के यज्ञों में पवित्र हविष का आस्वादन किया हुआ पवन-सखा कलियुग की महिमा से मानो कानूर सुब्बम्म के हाथ में पड़कर, पाषाण-से मटके की पीठ चाटने के पतित कर्तव्य में तन्मय था। सुब्बम्म हाथ में कलछी लेकर चूल्हे के पास खड़ी थी अग्नि का अंकुश बनकर! मटके में कोई व्यंजन पदार्थ 'गोज गोज, तकपक' करते पक रहा था और भाप की सफेद सांस छोड़ रहा था!

चारों ओर की दुनिया में सवेरा हो गया था। मगर रसोईघर से अभी झुट-पुटा नदारद नहीं हुआ था। क्योंकि चूल्हे के ठीक ऊपर एक ही खिड़की थी। तो भी रसोईघर की रूपरेखा कुछ हद तक प्रदर्शित थी: पतीला, नमक की बटलोई, हाथ धोने के लिए पीतल का एक बर्तन, छींके पर रखी मिर्च की टोकरी, दही का मटका, मट्ठे का लोटा, मथनी-खंभा; घी, मक्खन आदि अपने भीतर समाकर खड़ी हुई बंद अलमारी, पीढ़ों की राशि, रसोईघर के एक अनिवार्य अंग के रूप में चूल्हे के पास, गरम कोने में अपनी संतानों के साथ सोई बिल्ली, यहां-वहां उड़कर आके बैठनेवाली मक्खियां इत्यादि पाकशाला में प्रदर्शित सामान थे। कोई प्राच्य वस्तु संशोधक पंडित उस रसोईघर में प्रवेश करके देखते तो उनको पुराण प्रसिद्ध गुफा या खंडहर बने मंदिर की याद आये बिना न रहती। उसका वाता-वरण ही उसकी पूर्विकता से भर गया था।

उस रसोईघर में कई पीढ़ियां खा-पीकर गुजर गई थीं। वह तीन फुट ऊंचा मथनी-खंभा सदियों की गवाही दे रहा था। न जाने कितनी स्त्रियों ने उसके आगे बैठकर प्रातःकाल में दही मथा है। उसे कितने कोमल करों का स्पर्श हुआ है! कितने कंठ, कितने रूप, कितने संवाद-संभाषण, कितने क्षुद्र कलह उसको विदित हैं, कौन कह सकता है? वासु की मां, चंद्रय्य गौड़जी की मां, उनके दादा की मां, उनके दादा के दादा की मां, ये सभी परिचित थीं उस मथनी के खंभे से! अगर वह मथनी का खंभा बोल पाता तो कई रहस्य खुल जाते! कई स्नेह-प्रेम् चकना-

चूर होकर ज़मीन चाटते हुए दीख पड़ते। कई द्वेष-मात्सर्य नाश होकर फिर स्नेह-शांति उभर आती दीख पड़ती। यदि वह मुंह खोलता तो खुदा हाफ़िज़। रामायण, महाभारत से भी बड़ा पुराण हो जाता! "हाय! हम राम, सीता, हनुमान, रावण, पंचपांडव, कृष्ण, कौरव, द्रौपदी आदि की कथा ही को बड़ी कथा समझ गये थे न?" कहकर वाल्मीकि, व्यासादि कविवरों को भी शरम के मारे सिर झुकाना पड़ता। खैर, अब उसका मुंह बंद है। यदि होने पर भी, न होनेवाले की तरह बहाना कर रहा था तभी तो वे सभी बच गये हैं!

"वासु, तुम्हारी माखन-चोरी की बात कह दूं?"

लाल मिट्टी पुती दीवार से पीठ टेककर वासु पीढ़े पर बैठा था। जमीन पर बिछे केले के पत्ते पर उप्पिट्टु(नमकीन हलवा) परोसा गया था। उसे अन्यमनस्क होकर खा रहा था। उसने चौंककर सिर उठाकर देखा। मथनी का खंभा उसीकी ओर टकटकी लगाकर देख मानो हंस रहा है, ऐसा लगा! वासु को भय हुआ। किसने मुझे माखन चुराते हुए देखा था! उसको सुनाई पड़ी ध्वनि। महरूम दादी की ध्वनि-सी सुनाई पड़ी। दादी ही मथनी के खंभे से मानो छिपकर बोल रही है। यों समझकर उसने मन ही मन में कह लिया, "दादी मां, दोहाई है! कान पकड़ कहता हूं, किसीसे नहीं कहना! छोटी मां यहां खड़ी हैं।" फिर वह उप्पिट्टु खाने लगा। उप्पिट्टु के दाने उसके गाल, कपोल, नाक इत्यादि पर लग गये थे चूंकि वह अन्यमनस्क होकर खा रहा था।

थोड़ी दूर पर नागम्माजी तरकारी काटने बैठी थीं। उन्होंने ही पूछा था। वासु को चौंकते देखकर मुस्कुराई। फिर करुणा से चुप हो गई। बड़े भाइयों की तरह वह क्राप रखने का हठ करता था। मगर उसका हठ न चला था। उसके सिर के बाल चोरी और क्राप के बीच मध्यस्थ की तरह थे जो क्रांति की सूचना मानो दे रहे थे। उन केशपाशों में से एक सैनिक ने उसके बायें कपाल पर और कानों पर वैसे ही हमला किया था जैसे मधुमक्खियां अपने छत्ते पर हमला करती हैं। बे-बटन की उसकी कमीज़ 'आ' करके मुंह खोलकर गली के पागल की तरह अस्तव्यस्त थी। उसे साफ करने के लिए एक बड़े साबुन की जरूरत होती, इतनी गंदी थी वह कमीज़। उसकी धोती भी कमीज़ की तरह ही मैली थी। वह कमीज की दोस्त बनने लायक थी। जो हो, उसे देखकर नागम्माजी को उसे चूमने की इच्छा हुई। तरकारी हाथ में धरकर उसीको देखने लगी।

वासु ने पत्ते पर उप्पिट्टु समाप्त करके कहा, "छोटी मां, और उप्पिट्टु चाहिये।"

सुब्बम्म नाराज़ होकर बोली, "क्या पेट है तेरा? उप्पिट्टु नहीं है।" कहकर कलछी को मटके में पकती हुई चीज में फिराने लगी।

वासु ने हताश होकर, आंखों में आंसू भरकर अपने आगे ज़मीन की तरफ़

देखा। अभी-अभी धूप खिड़की के सलाखों से होकर भीतर आकर कक्ष को जगमगा रही थी। वासु ने खिड़की के बाहर देखा। सुनहरी धूप कटहल के पेड़ के कोमल पत्तों पर खेल रही थी। दूर के जंगली पेड़ों की हरियाली ऐसी लगी मानो उसको बुला रही थी। इतने में जंगल की ओर से बंदूक की ध्वनि आई। उसको सुनकर उसे आज करने वाले सभी साहस के काम याद आये। हूवय्य और रामय्य आज आ रहे हैं। उनके लिए कल्लुसंपिगे फल, बेम्मारल फल लाने चाहिये। कल फेंके गये जाल में कोई चिड़िया फंस गई है या नहीं, देखना चाहिये और देखना चाहिये कि पिकलार पंछी के अंडे कैसे हैं? बैरे के पुत्र गंग को बांसुरी बनाने के लिए कहा था, वह कहां तक आया है, देखना चाहिये। उससे पूछना चाहिये कि बांसुरी कब तक तैयार होगी और वह काम कहां तक हुआ है? कल उसने गुलेल से जिस चिड़िया को मारा था, वह बहुत ढूंढ़ने पर भी कहीं उसे नहीं मिली,आज उसका पता लगाना चाहिये। जैसे-जैसे वह सोचता गया वैसे-वैसे सूची बड़ी होती गई। जिद्द करके उप्पिट्टु मांगने के लिए वक्त भी नहीं था। आंसू बह रहे थे। नाराज़गी से गिलास में दी गई काफी को एकबारगी गटककर पीकर गिलास को जमीन पर जोर से पटककर कहा, "इसके बाप की गठरी! छिनाल कहीं की!" धीमी आवाज में गाली देता हुआ चला तो रसोईघर की ओर आती हुई पुट्टम्म के सवाल को अनसुनी करके, बिना रुके, बिना जवाब दिये, तेजी से घर के बाहर चला गया।

यह सब देखते बैठी नागम्माजी का बदन तप्त हो गया। पुट्टम्म के भीतर आते ही उन्होंने सारा क़िस्सा कुछ तेजी से ही सुनाया।

वासु की गाली सुब्बम्म सुन चुकी थी। तभी उसका मन अग्नि-पर्वत-सा हो गया था। नागम्माजी की बातें समाप्त होते ही सुब्बम्म की बातों की झड़ी लग गई। बीच-बीच में ओले की भांति गालियों की गोलियां भी दागी जा रही थीं:

"पति को खोई हुई बेवा का भाग्य ही ऐसा···उसकी आंखें फूट जायं।··· झूठ-मूठ बोलना, चुगली खाना···उसकी जीभ जल जाय। मैं इस सत्यानाशी के घर क्यों आई···परमात्मा की आंखों को दीमक लगे थे कि क्या! कांजी पीकर अपनी मां के घर रहती···उसके मुंह में कीड़े पड़ जायं।···कितनी यातना देती है, बदन को जलाती है···कितना जलती है···दो को खाने वाली तीसरी को भी खाना चाहती है···उसके मुंह में आग पड़े,···बाल-बच्चों की तरफदारी करके मेरे खिलाफ जो मुंह में आए वह गाली दे! यह सब अब नहीं होने का!"

"किसने तरफदारी की? कब की?"

"उसकी तरफ आंखों से इशारा कर रही थीं, मैंने नहीं देखा, समझती हो?"

"जो मुंह में आए वह गाली देती है! नीच, बदचलन की, छिनाल कहीं की।"

"कौन छिनाल, कौन वदचलन की, कुलटा, पुंश्चली।"

नागम्माजी ये वातें सह न सकीं। सुव्वम्म ने इस तरह हद से वढ़कर गाली नहीं दी थी। आगे क्या करे, नहीं मालूम। इतने में सव कुछ सुनती पुट्टम्मा ने कहा, "वड़ी मां, चुप रहो री ! उस कुतिया के मुंह क्यों लगती हो ?"

"कौन-सी कुतिया ? वजारी !" कहकर सुव्वम्म कलछी लेकर आगे वढ़ी।

"आ जा, देखें ?" कहकर पुट्टम्मा भी तैयार हो गई।

वचपन से मेहनत करते वढ़ी सुव्वम्म पुट्टम्मा से ज्यादा ताकतवाली थी। तो भी अमीर कन्या से डरकर वकझक करती वह पीछे चली गई।

इतने में मटके में पकती तरकारी जल गई थी। सुव्वम्म ने क्रोध के मारे उस मटके को जोर से चूल्हे पर से उठाकर जमीन पर पटक दिया। कई वर्षों से जीवित रहा वह पत्थर का मटका कानूरु परिवार का भविष्य सूचित करने के लिए मानों दरार का प्रतीक वन गया। उसमें तरकारी का जो रस था वह वाहर लाल होकर वहने लगा। सुव्वम्म का क्रोध भय-अनुताप में वदल गया। वह उस व्यंजन को दूसरे वरतन में भरने लगी।

अभी तक तरकारी काट रही नागम्माजी से पुट्टम्मा ने कहा, "हाय री, गया न वड़ी मां ! मोती-सा मटका !"

"गया न ? जाने दो। सव सत्यानाश हो जाय। तुमको क्या ? क्या तुम इस घर में शाश्वत रहनेवाली हो ?" कहकर नागम्माजी घूमकर देखे विना अपने काम में लग गई।

पुट्टम्मा चुप न रह सकी। "उसके टुकड़े से ही तुम्हारे सिर को खरोचना चाहिये।" कहकर दांत चवाने लगी।

"तेरे दादा को आना चाहिये।" कहा सुव्वम्म ने।

"मेरे दादा के टट्टी फिरने के स्थान पर वैठकर आने की कूवत भी नहीं तुझमें !···सब्र कर, पिताजी से कहकर मरम्मत कराऊंगी।"

"वाप से कह, या दादा से ! कौन मना करता है ?" सुव्वम्म ने कहा।

नागम्माजी ने पुट्टम्मा से कहा, "अरी टट्टी पर पत्थर क्यों मारती हो ? चुप रहोगी कि नहीं ?"

"मुंह में हमेशा टट्टी ही रहती !" सुव्वम्म ने कहा।

फिर किसी ने वात नहीं वढ़ाई। अपने-अपने काम में लग गई। मथनी का खंभा अक्षरशः गवाह वनकर खड़ा था। खिड़की में से होकर आई धूप में मक्खियां भी भिनभिनाती आकर वैठतीं और धूप सेंकतीं। विल्ली कोने में वैठ अपना वदन चाट लेती थी। उसके वच्चे वासु के फेंके नमक के टुकड़ों को चाट रहे थे। उनमें से एक वच्चा प्यार से "मियाउं, मियाउ" करता सुव्वम्म के पास गया। सुव्वम्म ने गुस्से से लात मारी तो वह दीवार से टकराकर गिर गया।

इतने में पिछवाड़े के दरवाज़े से किसी के पुकारने की आवाज़ आई "अम्मा ! अम्मा !"

किसी ने जवाव तो नहीं दिया, परंतु सव जान गये थे कि पुकारने वाली वेलर वैरे की स्त्री सेसी थी।

सेसी ने फिर जोर से पुकारा, "अम्मा ! अम्मा ! कौन हैं भीतर ?" फिर भी किसीने जवाब नहीं दिया। वह खिड़की के पास गई और जोर से पुकारा। चूल्हे के पास वैठी सुब्वम्म ने नाराज होकर कहा, "कौन है ?"

"मैं हूं सेसी ! चावल पीसने के लिए वुलाया था।"

"यहां कोई नहीं मर रहा है मीठी टिकिया खाने के लिए," कहा सुब्बम्म ने।

सेसी की समझ में सुब्बम्म की वात का अर्थ नहीं आया। फिर उसने धीरे से कहा, "वासी रोटी, भात ले जाने के लिए कहा था।"

"किसने कहा था री ?"

"नागम्माजी ने।"

हूवय्य रामय्य आनेवाले हैं, जानकर नागम्माजी ने रोटी वनाने के इरादे से चावल पीसने के लिए सेसी को वुला भेजा था।

"मैं नहीं जानती। कोई मरे या आवे ! भात भी नहीं, गीत भी नहीं।"

पुट्टम्मा ने जोर से वुलाया, "सेसी !"

"हां" खिड़की के वाहर से ही सेसी, ने कहा।

"भात देती हूं, ठहर जा।"

"जी हां।"

सुब्बम्म ने कुत्तों के लिए रात को वचा भात चूल्हे के पास रखा था। उस हिसाव से ही उस दिन भात वनाने के लिए कम चावल डाला था खौलते हुए पानी में। पुट्टम्मा जल्दी-जल्दी जाकर उस भात की पतीली को उठाकर पिछवाड़े की ओर गई। समाधान का समय होता तो सुब्बम्म कहती कि वह भात कुत्तों के लिये रखा गया है। और पुट्टम्मा भी उसे सेसी को देने के लिए जिद नहीं करती। भात नहीं है कहकर सेसी को वापस भेजा भी जा सकता था। लेकिन अव हालत ही वदल गई थी। सुब्बम्म धड़धड़ करती दौड़ गई और पतीली को छीनने के लिए हाथ लगाया। छीना-झपटी में पतीली धड़ाम से नीचे गिर गई। गोवर से पुती जमीन पर ताम्रवर्ण का चावल का अन्न तितर-वितर हो गिर पड़ा। फिर गाली-गलौज शुरू हो गई। सुब्बम्म वापस गई। पुट्टम्मा ने गिरे भात को वटोरकर पतीली में भर दिया, और पिछवाड़े के दरवाजे पै खड़ी सेसी के पास जाकर अन्न का वर्तन रखकर विना वोले क्रोध के मारे वापस आई। सेसी को रसोईघर में हुए संघर्ष का शोरगुल, गाली-गलौज, शाप आदि से सब कुछ पता लग गया था। झगड़े का भात लेने से डरकर, उसे वहीं छोड़ अपने घर आश्चर्य करते वापस चली गई

सेसी। अपने मालिक के घर में इतनी गरमी, आंच चढ़ी थी, चढ़ेगी, चढ़ सकती है, इसकी कल्पना भी वह नहीं कर सकी थी, न कर सकेगी।

पिछवाड़े के आंगन में सोये हुए पिल्ले जागकर पुट्टम्मा को भात की पतीली को लेकर जाते हुए देखकर उसके पीछे-पीछे, पूंछ को हिलाते खड़े हो गये थे और भात से कुछ दूरी पर उछल-कूद कर रहे थे। सेसी के आंखों से ओझल होते ही पतीली में मुंह डाला। उनके भात खाने की रीत देखकर वकासुर भी शरमा जाता। समय ज्यादा लगा दिया जाय तो भात गायब हो जाय, इस ख्याल से काल को ही धोखा देने की भांति पिल्ले भात खाने में तल्लीन थे। पूंछें खुशी से हिल रही थीं। पेट उनके फूल रहे थे। जैसे खरीफ की वारिश में नदियां महापूर से फूल जाती हैं। पास के कूड़ा-करकट में चरनेवाली कुछ मुर्गियां भी पिल्लों की परवाह किये विना पतीली से अन्नापहरण में लगीं। पिल्लों को मानो वाहरी दुनिया का भान ही नहीं रहा। एक पिल्ला मुर्गी को हटाने लग जाय, तो दूसरा पिल्ला सारा भात खा जाय तो वो भी क्या करे, इस ख्याल से हरेक पिल्ला स्पर्धा कर रहा था। पिल्लों और मुर्गियों का शोरगुल थोड़ी दूर खड़े टाइगर को सुनाई पड़ा तो अपने कुतूहल के परिहारार्थ वह भी उठकर आया। देखता है .अन्न के स्वर्ग का दरवाज़ा खुल गया है !न ताला है, न पहरा! वस, एक ही झटके में कूद-कर वह भी आया, मुर्गियों, पिल्लों को दूर हटाकर पतीली में मुंह लगाया। तो पिल्ले कहां छोड़ने वाले थे ? वार-वार आकर पतीली में मुंह डालने लगे। टाइगर ने गुर्राकर पिल्लों को भगाया। पिल्लों की आर्तध्वनि सुनकर रूवी, डाइमंड, रोजी, टाप्सी, कोतवाल ये सभी कुत्ते आये; देखा और पतीली पर टूट पड़े। कोलाहल मच गया। पतीली उलट गई। भात तितर-वितर होकर फैल गया। कुत्तों से ज्यादा मुर्गियों को अच्छा मौका मिल गया। वे भी टूट पड़ीं। टाइगर और डाइमंड के वीच में रोजी के प्रणय के कारण मनमुटाव हो गया था। अत: दोनों में प्रवल मुठभेड़ हो गयी। उनकी भौंकने की आवाज़ कोने-कोने में सुनाई दी। एक पिल्ला लड़ने वाले कुत्तों के पैरों में आया और कुचला गया। उसका सारा शरीर कीचड़ से पुत गया। उसी समय कीचड़ में पड़े अन्न को चुगनेवाले मुर्गे ने अचानक पिल्ले की आंख में चोंच मारी। पिल्ला दारुण पीड़ा से लगातार चिल्लाने लगा।

८

वेलर वैरे के पुत्र गंग लड़के के साथ

छोटी मां ने मांगने पर भी उप्पिट्टु नहीं दिया था, इसलिए वासु नाराज होकर रसोई घर से निकलकर वैठक खाने में आया। वहां खुले दरवाजे की अलमारी के पास इधर-उधर गाफिल पड़ी हिसाव-कितावों के वीच में उसके पिताजी कुछ लोगों के साथ वोलने वैठे थे। वासु को वे कौन-कौन हैं, देखने की फुरसत भी नहीं थी। पिताजी का ध्यान अपनी ओर न जाय, वैसे विना आहट किये, गोठ में गया और वहां वंधे जंगली भैंसे के सींग को हाथ लगाया। हाथ लगे कुर्ते को लेकर छोटी वैठक में गया जहां एक कोने में कंवल लपेटकर लौंदा जैसे पड़े पुट्ट के पास जाकर पुकारा, "ऐ पुट्टा, ऐ पुट्टा रे!" गाड़ीवान निंग का पुत्र कंवल में से ही वोला, "आं!"

"कल जो काम वताया था, उसके लिए चलते हो क्या?"

"कल पांव में कांटा चुभ गया था। वड़ा दर्द है, मैं नहीं आ सकता; तुम ही जाओ।"

"कंकड़ों की थैली कहां है?"

पुट्ट तितर-वितर हुए वालों वाला सिर, लार टपकता मुंह, मैल से भरी आंखें, विकृत चेहरा कंवल में से निकालकर वोला, "उस वड़े दरवाजे के कोने में सव्वल, कुदाल, फावड़ा रखते हैं न, वहां।"

"हूं।"

पास में डूली पूंछ हिलाते खड़ी थी। उसने पिल्लों को जन्म दिया था। इसलिए वासु उसको खाने के लिए कुछ न कुछ देता था। अतः उसके साथ डूली को स्नेह-सा हो गया था।

"वहां एक लाट मिट्टी की टोकरी रखी है न?"

"हां", वासु तभी तंग आ गया था।

"उसके पास मछली पकड़ने के लिए एक उपयोगी टोकरी है।"

"अच्छा रे।" वासु की ध्वनि में गुस्सा था।

"वड़ी नहीं, छोटी टोकरी।"

"कहो न?..."

"वैरे की वनाई नहीं, सिद्द की वनाई।···"

वासु मुंह फुलाकर वहां से तुरंत गया, मुख्य दरवाजे के कोने में ढूंढ़ा। वहां कुदाल, सव्वल, टोकरा रखे हुए थे!···छोटी टोकरी में हाथ डाला तो मछलियों के टुकड़े खाने के लिए आया हुआ चूहा उसके हाथ पर चढ़कर, कूदकर पास की दीवार में वने विल में घुस गया। वासु ने झट से उठकर खड़े होकर उसांस छोड़ी। पुट्ट पर खामखाह नाराज़ हुआ। फिर उसने ढूंढ़ा। कंकड़ों की थैली कहीं नहीं दीखी। दांत पीसते हुए फिर वहीं गया जहां पुट्ट सोया था। वह पहले की तरह सोया था कंवल में।

"ऐ पुट्टा!"

पुट्ट ने फिर सिर कंवल में से वाहर निकाला।

"कहां रखी है रे! नहीं मिल रही है।" वासु गुस्से से वोला।

"मैं कहने वाला ही था, तुम चले गये।···उस इमली के पेड़ की जड़ों के वीच में रखी है।"

वासु वहां गया और ढूंढ़ा तो छोटे-छोटे कंकड़ों से-भरी थैली मिल गई।

स्लेट, कितावें ले जाने के लिए थैली सिलवाई गई थी। अव वह गुलेल, कंकड़ ले जाने के काम में आने लगी थी। छुट्टी के दिनों में उसे वेकाम, वेगार क्यों रखा जाय?

वासु अव अपने हाथ में पकड़ा कुर्ता पहनने लगा। पिछले दिन उसे उतारकर रखते समय एक आस्तीन उलट गया था जिससे पहनने में तनिक तकलीफ़ हुई। आखिर युक्ति की अपेक्षा वल-प्रयोग से पहन लिया। जेव में हाथ डाल देखता है: गुलेल गायव था! तव वासु की हालत ऐसी हुई जैसे भाषणकर्ता को वेदिका पर खड़े हो जाने पर यह मालूम हो जाय कि उसका भाषण गैरहाज़िर है। उसने घवराहट से अपनी सारी जेवों में तलाश की। सर्ववस्तु संग्रहालय जैसी चिपचिपी जेवों से वाहर निकलकर वस्तुएं एक-एक करके प्रकाश में आईं! सरस्वती का टूटा-फूटा एक रंगीन चित्र, कुचली रांगा की सीटी, किसी ज़माने का रोटी का एक टुकड़ा, एक भद्दी, नाटी-सी पेंसिल, दो-तीन चाक-पीस, सात-आठ वंदूक की छोटी-छोटी गोलियां, एक रंगीन भौंरा, आधा खाया हुआ छुहारा, दो-तीन पत्थर की गोलियां, वेल के ज्यादा पके फल, एक धूपवृक्ष का फल, रवड़ के चूर, रस्सी, एक अष्टावक्र, वेमूठ की छोटी छुरी, एक रंगीन चिड़िया का पर, एक सेफ्टी पिन, वीच में सुराख वाला पैसा। वेकार सामान! जितने निकालो उतने-उतने आयेंगे। उसकी जेव जैसे अक्षय पात्र थी, द्रौपदी का अक्षयांवर थी। पहले उसे शक हुआ कि किसीने चुराया होगा। फिर उसको लगा कि पुट्ट ने ही चुराया होगा। फिर वाहर निकाली सारी चीजें उसने जेव में भर दीं। गड़वड़ी में तनिक मिट्टी भी भीतर गई।

पुट्ट से गुलेल निकलवाने के लिए वासु उसके पास गया। वासु ने अनुमान किया

कि इसी कारण से वह उसके साथ आने से इनकार कर रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं।

लेकिन गुलेल मार्ग में ही पड़ी हुई थी।

हड़बड़ी में वह उसकी जेब से गिर गयी थी। उसको यह मालूम नहीं हुआ था। आंख बचाकर सोये हुए चोर को पकड़ने के लिए जाने वाले पुलिस की भांति वासु ने दूर पड़ी गुलेल उठायी। फिर इमली के पेड़ के नीचे जाकर कंकड़ों से भरी थैली की पट्टी को जनेऊ की तरह गले में डालकर निकला।

घाट के मजदूर अपने-अपने हथियारों को सान चढ़ा रहे थे। कुछ मज़दूरिनें धूप सेंकती गप्पें मार रही थीं। उनके बीच में गंगा भी सालंकृत होकर बैठी गप्पें लड़ा रही थी। सेरेगारजी तथा चन्द्रय्य गौड़जी की विश्वासपात्र बनी उसने 'औरों की तरह खुद उसको भी अधिकार है' जैसे दिखाने के लिए वासु को बुलाया। लेकिन वासु पीछे घूमे बगैर आगे बढ़ गया।

जाते समय उसने यथावत् धान की ढेर की ढेर पड़ी भूसी की ओर झांककर देखा। उदासीन दृष्टि अचानक कौतूहल की दृष्टि हो गई। वह खड़ा हो गया। कबूतर जैसे सात-आठ पंछी वहां चर रहे थे। थैली में से एक कंकड़ निकाला, गुलेल पर उसे चढ़ाया, रबड़ को खींचकर निशाना बांधा। जिस पंछी पर उसने निशान बांधा था वह उड़कर दूसरी जगह पर जाकर बैठ गया। उसी पर निशान बांधे वासु उसकी ओर बढ़ा तो उसका पैर गोबर पर पड़ गया। वह उसके तमाम पैर पर, उंगलियों के बीच में से ऊपर आया। वासु को बहुत बुरा लगा। पैर झटकना चाहा, तो भी निश्चल हो उस पंछी पर निशाना बांधा। उसी का पीछा करते आई डूली अपने मालिक के शिकार में मदद करने के ख्याल से पंछियों की ओर जोर से भागी जिससे वे फड़-फड़ करते उड़ गये और पेड़ों में छिप गये। वासु को गुस्सा आया। उसने निशाना डूली की ओर घुमाया और मार दिया। डूली दर्द के मारे चिल्लाती हुई भागी। पैर में लगे गोबर को कटहल के पेड़ की जड़ से रगड़कर गंग को बुलाने बैरे के साथ उसके घर गया।

घर में न बैरा था, न उसकी स्त्री सेसी। बैरे को दूर जंगल में बगनी के पेड़ पर मटका बांधने जाना था, इसलिए वह चौपायों को चरने के लिए छोड़ने गोठ गया था। नागम्माजी ने आटा पीसने के लिए सेसी को बुला भेजा था, सो वह 'घर' गई थी। सवेरे घूमने जाकर लौटा गंग घर के दरवाजे पर बैठ कुछ कर रहा था। उसके आगे एक काला देसी कुत्ता उसकी ओर देखते अमावस्या की तरह काला हो बैठा था। वहीं बगल में चमेली की लता फैली थी एक 'हालिवाण' पेड़ पर। उसके नीचे एक मुर्गी अपने बच्चों के साथ कूड़ा कुरेदने के काम में लगी थी।

अचानक कुछ दूर पर किसीको आते देखकर कुत्ता भौंका। गंग ने घूमकर देखा। वासु आ रहा था। गंग ने घबराकर अपने हाथ में धरी वस्तु को और ज़मीन

पर पड़ी चीजों को भी अंधेरे में फेंक दिया। इतने में वासु ने पुकारा, "अरे गंगा, गंगा !" "हां" कहते हुए उसके सामने गया। उसने वासु को आंगन की ओर आते देखकर "तुम क्यों आते हो ? मैं ही आता हूं, वहीं रुके रहो।" कहा। वासु को पता नहीं लगा कि उसके चाल-चलन में, वोली में भीति, आशंका है। वह सीधे चमारों के आंगन में जाकर ही खड़ा हो गया।

मैले कौपीन के सिवा दिगंवर वने, जंग-से वने उसके शरीर को देखकर वासु ने पूछा, "वंसी तैयार हो गई क्या रे ?"

"नहीं जी। अभी नहीं हुई," कहकर गंग ने कुत्ते के सूंघते पैरों की ओर चोरी की नजर से देखा।

"कहां ? कितनी हो गयी है, देखें, ले आओ।"

"पिताजी कहीं रखकर गये, कहीं है।···" कहा, मगर सच वात तो यह थी कि वांसुरी वनाने का काम उसने हाथ में लिया ही न था।

"अच्छा रहने दो। कल जिस चिड़िया को मारा था उसे ढूंढ़ें, आ।"

गंग ने फिर चोरी की दृष्टि से पैरों की तरफ देखकर कहा, "गिरा कि नहीं गिरा ! वह कहां मिले अव ?"

"ठीक नीचे गिरा है। मैंने देखा है।"

"गिरा था रात को। लोमड़ी वगैरह उठाकर ले गयी होगी।"

"तुम आते हो कि नही ?···एक वही काम नहीं है। विछाये जाल को भी देखना है।···पिकलार पंछी के वच्चों को फल देना है···अलावा इसके आज दुपहर हूवय्य भैया-रामय्य भैया आने वाले हैं मैसूर से···उनके लिए वेम्मारल फल, कल्लुसंपिगे फल लाना है।"

"घर में कोई नहीं है, तो क्या करें ? मां गौड़जी के घर गई है।"

वासु ने सोचा कि मैं अकेला ही जाऊं। वह वापस जाने लगा तो सामने सेसी को आते देखा। वह घर में घटी वातों को सोचती आ रही थी। वासु ने कहा, "अरे गंगा, देखो, सेसी वहां आ रही है; अव कोई चिंता नहीं, तुम भी आ जाओ।"

"हां, ठहरिये।" कहकर गंग भीतर गया। कुछ देर के वाद हाथ में एक छुरा लिए वासु के पास धीरे-धीरे आया और वोला, "मां से तुम्हीं कहो।"

आंगन में आई सेसी को देख वासु ने कहा, "सेसी, गंग को ले जा रहा हूं, थोड़ा काम है।" सेसी 'हां' कहकर घर के भीतर गई। दोनों लड़के निकले।

कुछ दिन पहले की वात। गंग, पुट्ट, वासु तीनों मिलकर चिड़ियों के घोंसलों के लिए झुरमुटों में तलाश करने लगे थे तव एक पिकलार पंछी का घोंसला दिखाई पड़ा। उस घोंसले में लाल-नीले रंग की छींटे वाले तीन छोटे-छोटे अंडे थे। वासु ने सख्त ताकीद की थी कि जव तक अंडों से वच्चे नहीं निकलेंगे तव तक कोई उनको न उठाकर ले जायं, वच्चों के निकलने पर उनको, उनकी मां के साथ ले

जाकर पालेंगे। उस दिन से वह दिन में एक-दोवार वहां जाकर उनको देख आता। जब वह जाता तब माता पंछी को अपने अंडों को सेंकती वैठी देखता, मगर ज्यों ही वह वासु को देखती तब उड़ जाती। एक दिन वह जाकर देखता है। अंडे फूट गये हैं बच्चे वाहर निकल आये हैं। वे बच्चे देखने में भद्दे थे। पर के बिना देह, वड़ी-वड़ी चोंच, सब जुगुप्सा करने के समान थे। वासु जब-जब उनको देखता तब-तब वे अपने चौड़े मुंह खोलते मानो दुनिया को निगलने के लिए तैयार वैठे होते। वह पास में खड़े पेड़ के लांटान फल तोड़कर उनके मुंह में डालता रहता जब तक उनका मुंह बंद न हो जाता। उनको उनकी माता खिलाती, विमाता की भांति वासु भी खिलाता था। वे बच्चे वदहजमी से कैसे नहीं मरे खुदा जाने! (पुट्ट और गंग भी अलग-अलग जाकर खिलाते थे कि नहीं, हम नहीं जानते) फिर वच्चों के पर उगने लगे। अब माता पंछी अपने बच्चों को उड़ाकर ले जायेगी, इस विचार से उनको पकड़कर घर ले जाने के वार में वासु ने पुट्ट और गंग से परामर्श किया। गंग के ज्ञान से, पुट्ट के परिश्रम से, उसके नेतृत्व में उस झुरमुट के पास ही जाल बिछाया गया था। उसी को देखकर आने के लिए वह उस दिन प्रातःकाल में गंग के साथ निकला था।

जाकर देखते हैं: पंछी जाल में फंस गया है। डोर चढ़ाये कमान की तरह जमीन से ऊपर उठकर झुके डंडे के छोर से ज़मीन पर उतरे सूत के वीच जाल में पैर के फंसने से लटक रहा था पिकलार पंछी। खूब छटपटाने से वह निश्चल हो गया था। उसकी छाती की सफेदी, उसकी गर्दन के चारों तरफ की लाली धूप में जगमगा रही थी। पंछी के वगल में आकर्षण के लिए फंसाकर रखा तेनेफल रक्तवर्ण की मकई की भांति दीखता था।

दोनों लड़के मस्ती से शोरगुल करते आगे बढ़े। वगल में लटकाई कंकड़ों की थैली झूलकर उसको लग रही थी तो भी उसकी ओर उसका ध्यान नहीं था। राक्षस गात्र वाले दो आदमियों को अपनी तरफ आते हुए देखकर जोर से पर फड़काकर पहले ही थका हुआ, कमज़ोर बना, वह वेचारा पंछी वंधन-मुक्त होने का प्रयत्न करने लगा। मगर वासु के हाथ ने उसे पकड़ लिया। भय से, थकावट से हांफते पंछी का पैर जाल से सावधानी से, धीरे से दोनों ने छुड़ाया।

वासु उसके कोमल परों पर हाथ फेरते, उसे चूमते गंगा "माता पंछी तो मिल गई। इसके साथ इसके बच्चों को भी ले जायंगे और पिंजरे में रखेंगे।" कहकर परम उल्लास से वोला।

गंग ने चिड़िया को चाह-भरी नजर से देखते हुए कहा, "फिर जाल बिछा दे। शायद नर चिड़िया भी मिल जाय।"

वायें हाथ में चिड़िया को पकड़कर वासु ने दाहिने हाथ से कमान की छड़ी को झुकाकर सूत को ढीला किया। गंग ने जाल बिछाना शुरू किया। जाल

विछाना, फैलाना पूरा हुआ जानते ही वासु ने हाथ छोड़ दिया तो—कमान की छड़ी पीछे जोर से उछलकर उसके वायें हाथ को लगी और चिड़िया हाथ से छूट गई ! एक झुरमुट की शाखा पर वह उड़कर वैठ गई। वासु विना कारण गंग को गली देता हुआ चिड़िया को पकड़ने के लिए दौड़ा। वह उड़कर दूसरी जगह पर वैठ गई। उसमें दूर भाग जाने की ताकत नहीं थी। कुछ क्षण पहले जिस चिड़िया को चूमकर प्यार किया था उस पर गुस्से से गुलेल में कंकड़ रखकर मारा। एक कंकड़ नहीं लगा। दूसरा कंकड़ ठीक उसके सिर को लगा तो जमीन पर गिर पड़ी। वासु ने तेजी से दौड़कर उसे पकड़ लिया। लेकिन उसमें जान नहीं थी। वह तो सजीव चिड़िया को चाहता था। आंखों में आंसू भरकर, गंग को गाली देता हुआ उसके वच्चों के घोंसले की ओर जाकर देखता है। वच्चे नहीं थे ! सिर्फ खाली घोंसला था निर्जन। दुख से भरी अपनी ध्वनि से अपना शोक प्रकट करते हुए नर, मादा चिड़िया चक्कर काट रही थी, मगर जाल में फंसी चिड़िया दूसरी ही थी।

"ए गंगा, वच्चे नहीं हैं क्या !" वासु की वाणी में रुदन था।

गंग दौड़कर आया, उसने भी देखा और कहा, "हाय रे, क्या हुए ?"

'कोई चोर, पाजी ले गया होगा !"

'शायद उड़ गए होंगे, कौन जाने !"

"उड़ गई होतीं तो माता चिड़िया इस तरह छटपटाती थोड़े ही।" कहकर विहग दंपति का मुंह दिखाया।

"तुमने तो नहीं किया यह सव रे ?" वासु ने लाल आंखों से उसकी तरफ देखा। उसकी कोपाग्नि को जलाने के लिए कोई एक वस्तु की ज़रूरत थी। फिलहाल नज़दीक था गंग।

लेकिन गंग अस्पृश्य था। 'वासु अपनेको नहीं छुएगा', सोचकर, किंचित् भी अप्रतिभ हुए विना उसने कहा, "मैं इस तरफ आया ही नहीं, खुदा की कसम! पुट्टय्य आये थे कि क्या···" इस तरह वासु की कोपाग्नि की दिशा को दूसरी ओर फिराने का उपाय किया।

"उसके पैर में कांटा चुभ गया है। वह घर में सोया है।"

कुछ भी नहीं सूझ रहा था वासु को कि क्या किया जाए। वासु चोर को मन-माने शाप देते, गाली देते, गंग को लेकर पिछले दिन शाम को झुरमुट में गायव हुई चिड़िया को ढूंढ़ने गया। वहुत खोजा, मगर वह नहीं मिली।

फिर दोनों वालक फलों के लिए भटक-भटकर थककर आखिर करीव ग्यारह वजे वैरे के घर आये। वैरा अगर घर आया हो तो वांसुरी देखने को मिले; इस आशा से वासु सीधे गंग के साथ अपने घर न जाकर वैरे के घर गया था।

घर के अंधकार में रसोई वनाने में लगी सेसी ने पुत्र के आने की खवर उसकी

ध्वनि से मालूम करके पुकारा, "गंग !"

बाहर वासु के साथ बांसुरी के वारे में बोलते हुए गंग ने कहा, "ओ, अम्मा, क्या है ?"

सेसी ने अंदर से ही कहा, "यह चिड़ि या लो, पर निकालकर सेंककर दो तो भला।" इसे सुनकर गंग को ऐसा लगा कि मानो गरम पानी उसके वदन पर डाल दिया गया हो। आंखों में विस्मय। चेहरा फक।

वासु ने शक से पूछा, "कहां थी रे चिड़िया ?"

"मैं···मैं···मैं···सवेरे···" गंग तुतला ही रहा था कि सेसी बाहर आई। एक चिड़िया और उसके दो बच्चों को गंग के पैरों के पास फेंककर भीतर चली गई।

वासु देखता है यह वही चिड़िया है जिसे उसने पिछले दिन शाम को मारा था। बच्चे पिकलार पंछी के थे जो घोंसले में थे ! गंग के धोखे की मूक गवाही देने जमीन पर निश्चल पड़े हैं पंछी के शव !

गंग कांपते हुए खड़ा था। वासु को सारी वातें साफ़-साफ़ मालूम हो गईं। उसके क्रोध की सीमा न रही। वेलर जाति के लड़के को अस्पृश्य जानते हुए भी उसने गंग को एक घूंसा जमाया जैसे मूसल से आटा पीसा जाता है। अपनी जेब में रखी चिड़िया को भी निकालकर उसके पेट पर फेंक दिया और रोते हुए अपने घर की ओर चला गया।

मार्ग में जाते समय वेलर जाति के लड़के को छूने के कारण प्रायश्चित्त स्वरूप गोठ में जाकर गोवर पोंछकर, पिछवाड़े के दरवाजे से घर में प्रवेश किया। रसोई घर में पिताजी के क्रोध की ध्वनि, मुक्के के मार की आवाज और छोटी मां की आर्त ध्वनि उसको सुनाई पड़ीं।

९

चंद्रय्य गौड़जी का दरबार

वासु सवेरे उठकर रसोईघर से वैठकखाने में आकर देखता तो उसको मालूम होता कि, अपने पिता के साथ वातें करते वैठे हुए लोग ये अग्रहार के ज्योतिपी वेंकप्पय्य, केलकानूर के अण्णय्य गौड़जी, हलेपैक का तिम्म। वे सभी अपने-अपने मान-मर्यादा के योग्य जगह पर वैठे हुए थे। हर एक का लिवास उनकी संस्कृति एवं संपत्ति की गवाही दे रहा था।

दुवले-पतले, लंवे, फूल पड़ने से एकाक्षी वने वेंकप्पय्याजी दीवार से लगे एक पीढ़े पर पद्मासन में वैठे थे। उनकी राय में शूद्रों के घर की दरी आदि कपड़े पर वैठना और उनको छूना संप्रदायस्थ सनातनी ब्राह्मण होने के कारण उनके लिए अशुद्ध था। उन्होंने नये कपड़े, नई धोती आदि नहीं पहने थे। आर्पेय से आये, शरीर का स्वाभाविक चमड़ा ही उनका वस्त्र था। लेकिन गौरव की दृष्टि से उन्होंने एक सफेद वस्त्र ओढ़ लिया था। इसके सिवा एक काछनी थी। उनके कपड़े शुभ्र न होने पर भी धौत थे। ज़रा गौर से देखने पर मालूम होता कि उन्होंने नस की डिविया कमर में खोंसी हुई है। उनकी वृत्तियों में प्रधान थे देव-पूजा, निमित्त देखना, भविष्य कहना, जातक लिखना एवं देखना, विवाह का मुहूर्त निकालकर देना, शूद्रों के भूत आदि को वलि देने के पूर्व फलादि अर्पण करना, मंत्रादि से भूतों को भगाना, पकड़ाना इत्यादि। इसलिए उनके प्रति सारे देहातियों में भयभक्ति थी। वैठकखाने में चवूतरे पर विछाई एक मैली दरी पर चंद्रय्य गौड़ जी के आगे केलकानूर के अण्णय्य गौड़जी वैठे हुए थे। वे अपनी आयु से भी अधिक वूढ़े हो गये थे। एक अंगरखा पहने हुए थे और घुटने तक धोती। सभी कपड़े कितने ही साल पहले धुले हुए थे! अंगरखे में वटन नहीं थे, जो नीचे थे वे लगाये नहीं हुए थे। कमीज तो उनके लिए खरगोश के सींग के समान था। इस-लिए सफेद वालों से भरी उनकी छाती, सिकन पड़ा पेट, दोनों करुणा उत्पन्न कर रहे थे। कुछ दिन पहले दाढ़ी वना लेने से मुंह पर वुढ़ापे की तरंगें एक के वाद एक आती हुई-सी दीखती थीं। दांत के न होने से गाल अंदर धंसे हुए थे। साठ-सत्तर ग्रीष्म की धूप में झुलस-झुलसकर उनके चेहरे के चमड़े के पीछे कपोल

तथा सिर की हड्डियां, नसें उभरकर आगे बढ़ी थीं। गंजे सिर पर यहां-वहां उगे बालों की खोपड़ी पर लाल कपड़ा लपेटा हुआ था। वे बोलते तो उनकी तुतली बोली से शब्द साफ़-साफ़ नहीं सुन पड़ते थे।

अण्णय्य गौड़जी कानूर से एक मील की दूरी पर केलकानूर में चंद्रय्य गौड़जी की खेती-बारी ठेके पर करते उनके किसान बन गये थे। उनको चंद्रय्य गौड़जी के पिता, दादा सभी परिचित थे। किसानी से पहले वे अच्छे-खासे मालदार बने हुए थे, मगर लड़कियों के लिए कन्याशुल्क दे-देकर इधर कुछ वर्षों से गरीब बने हुए थे। उनकी बदनसीबी, तीनों पत्नियां मर गई थीं, चौथी पत्नी रोग से पीड़ित थी। उनकी द्वितीय पत्नी से उत्पन्न पुत्र ओबय्य की उम्र पच्चीस हो गई थी और तीसरी पत्नी से पैदा हुई बेटी आठ साल की थी।

पच्चीस साल का हो गया था ओबय्य, तो भी उसका विवाह नहीं हुआ था। इससे पिता-पुत्र में मनमुटाव-सा हो गया था। वह अपने पिता को डराता था कि मैं अलग घर बसाऊंगा। विवाह न होने का कारण था, कन्याशुल्क देने के लिए रुपये नहीं थे। अलावा इसके चंद्रय्य गौड़जी के यहां एक हज़ार रुपये का कर्ज था। चंद्रय्य गौड़जी अण्णय्य गौड़जी को एक दमड़ी भी कर्ज देने के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। इसलिए अण्णय्य गौड़जी उस दिन सवेरे कानूर आये थे पुत्र के विवाह के लिए कर्ज मांगने। उनको देखने से ऐसा लगता था कि उन्होंने ज़िन्दगी-भर नरक यातना भोगी है।

बैठक के निचले हिस्से में मैले छोटे तख्ते पर अपना कंबल बिछाकर उस पर बैठने वाला तीसरा आदमी था हलेपैक का तिम्म। वह भी चंद्रय्य गौड़जी का काश्तकार था। मगर उसका खानदानी पेशा था बगनी के पेड़ से ताड़ी उतारना। ताड़ी की महिमा से ही वह चंद्रय्य गौड़जी का बहुत प्यारा बन गया था। उसका जीवन सुचारु रूप से चल रहा था। यह उसके बदन के गठन से साफ मालूम होता था। पांच-छः पैबंद लगाए फटे कुरते को पहने था। दायें आस्तीन पर काली डोरी से बंधा तावीज फटे कुरते की खिड़की में से दीखता था। उसके बिखरे बालों में एक ताजी चमेली का गुच्छा था। उसकी लपेटी धोती इतनी नाटी थी कि उसका लंगोट भी दिखाई देता था। पहले एक बार बगनी के पेड़ से गिर जाने के कारण उसके होंठ फट गये थे, उसके दाग दिखाई पड़ते थे। छप्पर की दरार में से घुसती सूरज की किरणों की पट्टियां उसके शरीर पर भी जाल की भांति बिछी थीं। 'कोतवाल' नामक कुत्ता उसके पैरों तले सो रहा था। उसके बदन पर वह हाथ फेर रहा था। वह अपनी छोटी पूंछ हिलाते अपना हर्ष प्रदर्शित कर रहा था।

चंद्रय्य गौड़जी अपनी अलमारी के बगल में हिसाब-किताबों के बीच में बैठकर सबसे बातें कर रहे थे। सभी जोर-जोर से बोल रहे थे। वजह यह थी कि

साहूकार के दोनों कानों में कपास की दो गोलियां थीं। उनके कान चू-चूकर मंद पड़ गये थे। सदा दवा की बूंदें डालकर कानों में कपास की गोलियां रखना उनका रोज़ाना काम हो गया था।

सिर झुकाकर हिसाव की किताव की ओर देखने वैठे चंद्रय्य गौड़जी ने सिर उठाकर अण्णय्य गौड़जी से पहले कही वातों का समर्थन करते हुए, "यहां देखो, सूद मिलाकर एक हज़ार पौने दो सौ रुपये छः पैसे वाकी होते हैं।" कहकर हिसाव देखने के लिए वही आगे सरका दी।

अण्णय्य गौड़जी हिसाव देखने की ओर तनिक भी कुतूहल विना दिखाये, पान से भरे मुंह को ज़रा ऊपर उठाकर वोले, "जी हां, क्या मैं इनकार करता हूं?"

साहूकार ने किताव को और आगे सरकाकर कहा, "देखो, तुम्हीं देखो।"

अण्णय्य गौड़जी विलकुल अपढ़ थे। फिर भी अर्थविहीन कई और काम जैसे किया करते थे वैसे आगे झुककर, किताव देखकर पहले जो उन्होंने कहा था उसी को दुहराया।

"एक दमड़ी भी मैं नहीं दे सकूंगा। वाकी चुका दो तो वस है," कहा साहूकार ने।

"क्या करें, कहिये। उसकी एक शादी करनी है कि नहीं?...आपका कर्ज़ तो मैं निगलने वाला नहीं हूं।...अगर मैं मर भी जाऊं तो वह तो है न चुकाने के लिए?" कहकर अण्णय्य गौड़जी उठकर आंगन के एक कोने में भूसे के एक डिव्वे में मुंह में भरा तांवूल थूककर लौट आये और अपनी जगह पर वैठ गये।

"क्या मैंने कहा कि शादी नहीं करनी चाहिए? मुझसे एक दमड़ी की भी मत पूछो। इस वर्ष का तुमने पूरा ठेका भी नहीं दिया।" कहकर साहूकार वेंकप्पय्य ज्योतिषी की ओर मुड़कर वोले, "आप ही कहिये ज्योतिषीजी, इस तरह कर्ज़ देते जाएंगे तो किसका घर वरवाद होगा?"

ज्योतिषी ने कहा, "अरे हां, अण्णय्या, तुम्हारी इतनी उम्र हो गई, फिर भी नहीं समझते हो क्या? कर्ज करते जाओ तो वढ़ता ही जाता है, कव पूरा चुकाओगे उसे? कर्ज क्या है, गले में वंधा पत्थर का गोला है। सर्वज्ञ कवि ने कहा है न 'कर्ज लेते समय लगता है जैसे दूध-भात खाया, जव साहूकार मांगने आता है तव कमर की हड्डी टूटने के समान लगे।' इस तरह ज्योतिषी ने एक भाषण ही झाड़ दिया। ज्योतिषी जी का भी इसी साहूकार के यहां पांच सौ रुपये का कर्ज था।

"हां महाशय, आप तो कहते हैं कर्ज गले में वंधे पत्थर के गोले के समान है। मैं मानता हूं, अव क्या किया जाय? लड़के और मेरे वीच में रोज झटापटी, झकझक हो रही है। उसकी उम्र पच्चीस साल की हो गई। कहता है कि यदि

उनकी शादी न करूं तो वह घर छोड़ जायगा। परसों 'सीतेमने के सिंगप्प गौड़जी के यहां गया था कर्ज मांगने। इसे मैं नहीं जानता था। सुना है कि संबंध ठीक नहीं है, आपके और उनके बीच में इसलिए उन्होंने कह दिया मेरे लड़के से 'मेरे पास कर्ज के लिए मत आना।' " ज्योतिषी से कहकर बातें पूरी कर ही रहे थे कि चंद्रय्य गौड़जी खूब बिगड़कर बोले, "जाकर उससे कह दो, सिंगप्प गौड़जी से कर्ज मांग ले। मुझसे एक दमड़ी का भी कर्ज नहीं मिलेगा।" इतना कहकर ज्योतिषी की ओर घूमकर समाधान के आशय से पूछा "कहिये ज्योतिषीजी, आप किसलिए आये थे?"

"चंद्रमौलेश्वर का प्रसाद देने के लिए आया था।" कहते हुए ज्योतिषीजी ने पास की एक गठरी में से नारियल के एक फांके को, फूल और कंकुम को निकालकर साहूकार के आगे रख दिया। चंद्रय्य गौड़जी ने उसे भक्ति से स्वीकार किया और कुंकुम को माथे पर लगाकर, फूल को माथे से छुआकर कान के ऊपर रख लिया।

अण्णय्य गौड़जी चिंतित होकर आंगन के बीच में बने तुलसी के चबूतरे को ही देख रहे थे। घर में बीमार पड़ी स्त्री, घर छोड़कर जाने की धमकी देने वाला पुत्र और अबोध बेटी का चित्र सामने आये और बूढ़े को अपने आप पर तरस आया। आंखों में आंसू आये, उनके सिकन पड़े गालों पर लुढ़के परंतु आंगन में का पत्थर का देवता तो चंद्रय्य गौड़जी से भी ज्यादा पत्थर बनकर बैठ गया था।

इतने में रसोई घर में हो रहे वाग्युद्ध की आवाज बैठकखाने तक सुनाई पड़ी। मन ही मन में गौड़जी बिगड़े हुए थे, मगर ज्योतिषी तथा औरों के आगे, अपने घर के मामलों का प्रदर्शन करना न चाहकर चुप बैठ गये।

"चंद्रय्या, उस सत्यनारायण के व्रत के लिए बीस रुपये खर्च हुए हैं। वह देते तो अच्छा होता," ज्योतिषी जी की वाणी मानो एक महान समझ दे रही थी, और साहूकार को एक बड़ा भारी श्रेयी मिलने वाला है, कहने के समान थी।

एक बार खांसकर गौड़जी ने गला साफ कर लिया और कहा, "उस दिन तीस रुपये दिये थे न? उन्हींमें से काट लीजिये। आपके हिसाब में सिर्फ दस रुपये लिख लेता हूं।" कहकर ज्योतिषी की तरफ प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा।

ज्योतिषी ने बहुत गंभीरता से 'देवता का हिसाब मेरे हिसाब में क्यों मिलाते हो? ऐसा करने में तुम्हारी बुराई है। मेरा और देवता का खाता अलग-अलग हो तो अच्छा," कहकर आंखें मूंदकर, फिर खोल दीं।

गौड़जी ज्योतिषी जी से पंद्रह-बीस वर्ष बड़े थे। तो भी वे शूद्र थे। अतः ज्योतिषी जी से सम्मानसूचक बहुवचन में संबोध करके बोलते थे और गौड़जी ज्योतिषी जी से एकवचन में संबोध करके बोलते थे। यह रिवाज था उस प्रदेश का।

इतने में तिम्म के पैरों के पास बैठा 'कोतवाल' घर के पिछवाड़े में दरवाजे के

पास अपने जात वालों का स्वर सुनकर उठा और उनकी ओर भागा। थोड़ी देर गौड़जी ने सोचा, और वीस रुपये अलमारी में से निकालकर ज्योतिषी के आगे रख दिये। ज्योतिषीजी को उन्हें लेकर अपने उत्तरीय के कोने में बांधते समय पिछवाड़े में कुत्तों का भयंकर कोलाहल सुन पड़ा।

गौड़जी ने तिम्म की ओर घूमकर कहा, "अरे तिम्मा, वहां जाकर जरा देख आओ, क्या हो रहा है?" तिम्म झट से उठा और घर के पिछवाड़े की तरफ अपनी कमर में कसी छुरी की ठण-ठण आवाज़ करता हुआ भागा।

ज्योतिषीजी जाने के लिए तैयार हुए। उनसे विदा लेने गौड़जी बैठकखाने के निचले भाग में उतरे। ज्योतिषीजी का ओढ़ा हुआ लाल दुशाला नीचे खिसका। वालों से भरी उनकी मोटी-ताजी छाती दीख पड़ी। तुरंत उन्होंने ठीक से उसे ओढ़ लिया।

दरवाजा पार करते समय ज्योतिषीजी ने कहा, "तुम्हारे लड़के के लिए तावीज चाहिये, कहा था।"

"हां, चाहिये था।" कहते हुए गौड़जी महाद्वार की ओर निकले।

"गत वर्ष एक मंत्रित करके वांधा तो था..."

"क्या कहूं? हमारा हूवय्य है न? उसकी वातों में आकर उसने तावीज निकालकर फेंक दिया है।"

"मैंने पहले ही कहा था तुमसे कि आजकल की पढ़ाई लड़कों को विगाड़ देती है। भगवान भक्ति-पूजा सव निर्नाम! साथ ही सैकड़ों दुरभ्यास उनसे चिपक जाते हैं। यदि तुमको अपनी जायदाद को वचा लेना हो उनकी पढ़ाई रोक दो। शादी-वादी करके खेती-वारी आदि काम में लगा दो। संसार की कठिनाई उनको अच्छा सवक सिखा देगी।"

"सच, ऐसा करना ही अच्छा लगता है।—अव देखिये, वह हूवय्य और यह रामय्य दोनों ने मिलकर दैव-देव, भूत-पिशाच, जकणी-गिकणी (जखनी-गिखनी) कुछ भी नहीं चाहिये, ये सारे मूढ़ विश्वास हैं, कहकर उपदेश देना शुरू किया है। हूवय्य तो न जाने क्यों भगवद्गीता, उपनिषद पढ़-पढ़कर सिर विगाड़ ले रहा है।...घर आया हुआ नौकर-चाकरों का काम वह नहीं देखता है। अटारी पर पढ़ने वैठ जाता है।"

"अच्छा, यह वात है। ठीक; कमाकर खिलाने वाले हों तो फिर क्या करेगा? उसका हिस्सा उसे देकर अलग कर दो, तव सव ठीक हो जायगा। इन सभी शूद्र वच्चों को उपनिषद्, भगवद्गीता की गंध तनिक भी समझ में नहीं आने वाली। हमीं को उनकी गंध नहीं मालूम होती।..."

गौड़जी हंसते हुए वोले, "क्या आपकी समझ में भी वे नहीं आतीं?"

"ऐसी वात नहीं है चंद्रय्य, तुम नहीं जानते वड़े-वड़े आचार्य ही उन पर

भाष्य लिखने में घुटने टेक चुके हैं। अगर भाष्य लिखा भी है तो बड़ी कठिनाई से। उन्हीं में एक राय नहीं है। इन शूद्र बच्चों को क्या मालूम होगा?···उन सबको पढ़कर घर बरबाद कर लेंगे, बस!···"

"मैंने भी तय कर लिया है कि अब की बार उनकी पढ़ाई छुड़ाकर उनको घर के काम में लगा दूं।" गौड़जी ने मिश्रित वाणी से तनिक राग में कहा।

"ऐसा करोगे तो तुम्हारा घर बचेगा। देखो, भगवान के कोप का भाजन नहीं हो जाओगे। क्योंकि वह करुणालु है, दयामयी है। मगर इन भूतादि का भाजन हो पाओगे तो बचना मुश्किल है। तुम समझदार हो। मैं क्या समजाऊं?"

"यह क्या कहते हैं आप? और कौन हैं आपके सिवा हमें समझाने वाले?"

ज्योतिषीजी आंचल में बंधे रुपये की गठरी हाथ में मजबूती से पकड़कर, जूतों की चुरमुर-चुरमुर आवाज करते, छाता सिर पर ताने चले गये। गौड़जी लौटकर बैठकखाने में आयेतिम्म एक पिल्ले की गर्दन का चमड़ा पकड़कर खड़ा था। उस पिल्ले की मां रूबी उसके पास खड़ी थी। अपनी संतान की ओर टकटकी लगाकर देख रही थी।

गौड़जी ने कहा, "थू! उसे यहां क्यों लाया रे? उधर ले जाकर फेंक दो।"

"कमबख्त मुर्गी ने इसकी आंख पर चोंच मार दी है।" कहकर तिम्म ने उसकी आंख की जांच की जिस आंख से लोहू आ रहा था।

गौड़जी ने डांटकर कहा—"मर जाय, वह उधर फेंक दो!"

"मैं इसे ले जाकर पाल लूंगा हुजूर।"

"कुछ भी करो, जा मर!"

तिम्म पिल्ले के साथ फाटक पार चला गया। रूबी भी उसके साथ गई।

पैर के दर्द के मारे न उठ सकने वाला, कंबल ओढ़ के सोया हुआ पुट्ट सब सुन रहा था। पिल्ले की बुरी हालत, तिम्म का उसे ले जाना वह न सह सका। इसलिए वह धीरे-धीरे उठा और लंगड़ाते हुए फाटक पार करके तिम्म को पुकारा।

"वासय्य गाली देंगे रे। उनका पिल्ला है वह।"

"गौड़जी ने कहा है, इसलिए ले जा रहा हूं।" यह कहकर तिम्म ने पिल्ले को नीचे छोड़ दिया। वह जानता था कि वासु ऐसे ही छोड़ने वाला नहीं है। रूबी पिल्ले को चाटने लगी।

पुट्ट को लंगड़ाते देखकर तिम्म ने पूछा, "क्या हो गया है रे पैर में?"

"कांटा चुभ गया है।" कहकर पुट्ट ने तलवा दिखाया। तलवा सूज गया था, पीप भरा हुआ था, उसके बीच में काला कांटा दीख रहा था। तिम्म ने एक जंबीरी नीबू के कांटे से वह कांटा निकाला। कांटे से साथ पीप भी निकल गया जिससे पुट्ट को आराम लगा। तिम्म के चले जाने के बाद पुट्ट उस पिल्ले को धोकर चिकित्सा करने के लिए जगत पर गया।

गौड़जी ज्योतिषीजी को विदा करके लौटे। मगर अण्णय्य गौड़जी दोनों हाथों से सिर पकड़कर चिंता में बैठे हुए थे। उनके दिल में दुख का सागर लहरा रहा था। जीवन की आग में तप-तपकर उनका जीव कुम्हला-सा गया था। उनको कुछ नहीं सूझ रहा था कि आगे क्या किया जाय ? समस्या जब खूब जटिल बन जाती तब "ऐ भगवान, नाटक पूरा हो, जीवन पर मृत्यु का अंतिम परदा गिर जाय।" प्रार्थना करना स्वाभाविक था। इस बूढ़े की हालत भी ऐसी ही बन गई थी।

गौड़जी के मन के भीतर बैठकर देखा जाता तो वे इतने निर्दयी नहीं जितने दिखाई देते थे। वे कुछ-कुछ दुविधा में पड़े हुए थे। अपने बाप, दादा के समय से विश्वासपूर्वक खेती करते आये हुए को, बाल्य से अपने परिचित को, कष्ट में पड़े बूढ़े को धन वाले का "धन न दे सकेंगे" कहना क्रूर ही दिखाई देता है लेकिन गौड़-जी इस तरह कर्ज देकर कई हज़ार रुपये खो चुके थे। अण्णय्य गौड़जी से सूद के मिलने की गुंजाइश न रहने से और अधिक कर्ज देने के लिए हिचकिचाये। गौड़जी के मन में अण्णय्य गौड़जी की इस हालत का कारण वे ही थे, यह साफ़ बात थी। अण्णय्य गौड़जी को चार विवाह क्यों कर लेना था ? एक-एक कन्या के लिए इतने रुपये क्यों देते थे ? यौवन में प्राप्त अति सुख का प्रायश्चित्त बुढ़ापे में करना पड़ा, यह उनका कर्म था ! साथ ही सीतेमने के सिंगप्प गौड़जी के पास ओबय्य गया था, यह अण्णय्य गौड़जी के मुंह से सुनने के बाद तो गौड़जी का मन खट्टा हो गया था, टूट गया था।

"तो मैं क्या करूं ? गले में फांसी डाल लूं ?" कहा अण्णय्य गौड़जी ने।

"जो चाहे करो ! मैं कर्ज तो नहीं दे सकता।"

"अच्छा, तो जाता हूं।" कहकर बूढ़ा हाथ जोड़कर उठा और दीवार से लगा अपना बेंत का सोंटा लेकर उसे टेकते हुए थोड़ा झुककर चलते फाटक को पार कर गया। गौड़जी एक बार नस अच्छी तरह नाक में चढ़ाकर हिसाब-किताब में मशगूल हो गये।

धूप कुछ तेज थी। सोंटा टेकते हुए जाने वाले बूढ़े पर वह निष्करुणा ही मानो बरसा रही थी। पौने छः फुट ऊंचे उस बूढ़े की परछाईं सवा फुट की बनकर, उसकी आत्मा की शोचनीय अवस्था के प्रतिबिंब-सी मानो पदतल में भूमि पर लोटकर, धूल में आगे बढ़ रही थी।

बूढ़े ने एक बार फिर सिर उठाकर देखा। पेड़ पर एक कौआ 'कां-कां' कह-कर बुला रहा था। बूढ़ा उसांस छोड़कर, सिर नीचे किये आगे बढ़ा। एक गिरगिट मेंड पर बैठकर "ऐसा होना चाहिये, ऐसा होना चाहिये" कहके सिर हिलाकर मानो चिढ़ा रहा था, हंसी उड़ा रहा था।

१०

घमंडी सिंगारिन

मुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी नहाकर वैठक में आये और दीवार पर की वड़ी घड़ी की ओर देखा। पूरे दस वजकर चालीस मिनट हुए थे। दो खंभों पर के तख्ते पर रखी तिलक की पेटी लेकर, सामने रखकर एक पतले चौड़े पीढ़े पर पद्मासन लगाकर वैठ गये। उनके सीधे आगे आंगन में लाल-सफेद तिलकों से अलंकृत तुलसी का चबूतरा विविध वर्णों के पुष्पों से अलंकृत था। उस कला में प्रवीणा वनी अपनी वेटी सीता की कुशलता, चातुरी देखकर गौड़जी के दिल में परमात्मा की भक्ति की अपेक्षा पुत्री पर का वात्सल्य लहरा गया।

गौड़जी की तोंद काफी वढ़ गई थी। तो भी देखने में अच्छे थे, यौवन में सुंदर रहे होंगे, इसका सुबूत मानो उनकी देह दे रही थी। भक्ति, धार्मिक भाव, ईश्वर आराधना से ही साध्य हो सकने वाला ओजस उनके व्यक्तित्व में दिखाई देता था। कमर से घुटने तक पहनी धोती थी, वाकी शरीर नंगा था जो गंभीर स्वभाव वालों में गौरव, लघु स्वभाव वालों में विनोद उकसाता था। पेट, छाती, भुजा, एवं माथे पर टीका लगा-लगाकर प्रकाश न देखे हुए उनके शरीर के सफेद पड़े हुए ये भाग ऐसे लगते थे मानो स्वाभाविक तिलक हों। पेट और माथे पर पड़ी शिकन उनकी उम्र तथा उनके सुखी जीवन के लिए साक्षी थे। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता था कि वे ब्राह्मण होते तो 'सनातनी वैदिक ढोंगी' नाम के पात्र वन जाते।

गौड़जी ने वेंत से वनी तिलक की पेटी का ढक्कन खोला। वह उनके लिए तुलसी के पीठके समान पवित्र वस्तु थी। उसका रंग ही वता रहा था कि वह वहुत पुरानी है। अगर कोई नये विचार वाले उसके भीतर झांककर देखते तो मुस्कुराकर घृणा से कहते कि वह 'मत या संप्रदाय की भ्रांति का वारूद का घर' है। पुराने संप्रदाय वाले देखते तो कहते 'शांति की पर्णकुटी है।' लेकिन वह तिलक की पेटी चुप ही रहती।

उस काली गुफा में कई वस्तुएं तप कर रही थीं। लाल टीका की करंडिका, सफेद टीका की टिकिया, तुलसीमणि की माला, सूखे तुलसी के पत्ते, दो इंच चौकोर

टूटी आरसी, लाल,सफेद टीका लगाने के लिए काम में आने वाली तीलियां, भस्म-चार-पांच जंग लगे तिपैसे, पंच पैसे, एक चांदी का छोटा त्रिशूल इत्यादि। उस पेटी की दरारों में आस्तिकों के समाज में जैसे नास्तिक अपनी रायें गोपनीय रख लेते हैं और जीवन विताते हैं वैसे कुछ झींगुर के वच्चे गौड़जी की आंख चुराकर जी रहे थे।

गौड़जी सावधानी, भक्ति एवं तृप्ति से अपने विशाल शरीर पर निर्दिष्ट स्थानों पै लाल-सफेद टीके की पताकाएं लगाकर, मुंह से प्रभु के नाम लेते हुए उठे और पास में रखे चांदी का कलश लेकर तुलसी के पीठ के पास गये। सुपारी के छप्पर की दरार में से आने वाली धूप की किरणों से आंगन में प्रकाश-छाया की आकृति चौकपूर जैसी मनोहर लगती थी। गौड़जी के महाकाय पर वह चौकपूर ऐसा लगता था मानो सफेद-लाल टीकों से होड़ कर रहा हो। एक रंगीन टिटिहरी आंगन में उड़ते हुए दृश्य को और भी रमणीयता दे रही थी। कुत्ते दूर कोने में सोये हुए थे। गौड़जी की देवताराधना मानो उन दुष्ट दानवों के लिए डरावनी थी!

पीठ पर फूलदान में रखे फूलों को देवता पर चढ़ाते हुए गौड़जी ने पुकारा, "सीता!" इस तरह पुकारना उनकी आदत वन गया थी।

सीता जगमगाते चांदी के पंचपात्र में उससे भी शुभ्र दूध भरकर, उन दोनों को भी मात करने वाली मुख-प्रसन्नता से साड़ी के मर्मरनाद से लता की भांति लचकती चलकर पिता के पास आई। इस प्रकार उसका आना भी एक रिवाज था। उसको देखकर गौड़जी को वड़ी प्रसन्नता हुई। अभी-अभी नहाकर धौतांवर पहने वह आई थी। वह निराभरण थी। वाल भी ठीक तरह संवारे हुए नहीं थे। काले-काले वालों का गुच्छ-गुच्छ, लहर-लहर वनकर उसके नितंव तक स्वच्छंद खेल रहे थे। उसके पिता को उसकी यह छवि पूजा में सहायक वन इधर-उधर थिरकती दिखाई दे रही थी। युवती के मुखविंव पर भी तेजःपुंज था, आंखों में भी उस दिन एक प्रकार की तृप्ति, संतोष की नई आभा उमड़ रही थी।

"चिन्नय्य कहां गयी री? आज सवेरे से उसको नहीं देखा" कहते पूजा के वीच-वीच में गौड़जी वोलने लगे। मगर इस तरह वोलते समय भी उनके पूजा-विधान में वाधा नहीं आई, क्योंकि आदत के कारण मन पूजा में वाधा उत्पन्न किये विना इधर-उधर संचार कर सकता था और हाथ पूजा में अपने काम करते रहते।

"सवेरे ही वंदूक लेकर मछलियों के शिकार के लिए गया। कहता था कि आज कानूरु के रामय्य मामा आने वाले हैं।" सीता ने कहा। सीता पिताजी के साथ अधिक सुलूक से रहती थी।

"कव आने वाले हैं?"

"अव तक तो आ जाना चाहिये था!"

घड़ी में घंटी वजी। गौड़जी ने सोचा था कि ग्यारह वजे हैं। पर वजे थे वारह। ग्यारह वजने का समय उसके ध्यान में नहीं आया था। रसोई घर से जायकेदार भक्ष्य-भोज्य की खुशवू ढोकर आई हवा देवता की पूजा में लगे लोगों की नाकमें प्रवेश कर गई।

देवतार्चना शीघ्र ही समाप्त हो गई। वेटी ने पिता का दिया हुआ प्रसाद एवं पादोदक स्वीकार करके, पिता की तरह प्रदक्षिण करके एवं नमस्कार करके वाल संवारने तथा उवटन करने के लिए अपने कमरे में चली गई। गौड़जी ने थोड़ी देर रामय्य, चिन्नय्य के आने की प्रतीक्षा की। कानूर की गाड़ी नहीं आई। वह रसोई घर में गये और भोजन किया। वैठकखाने में तकिये के सहारे वैठ गये। काले ने तश्तरी में पान-सुपारी लाकर उनके सामने रख दिया।

गौरम्माजी ने सीता से भोजन करने को कहा। पर, सीता ने मां की वात नहीं मानी और कहा, "मैं आप ही के साथ खाऊंगी।" फिर वह कमरा वंद करके, चटाई पर वैठ, अपना सिंगार करने लगी। तेल, आईना, कंघी, मालस आदि प्रसाधन की वस्तुएं चारों ओर पड़ी हुई थीं। सीता आईने में अपना मुंह देख-देखकर अपने आपपर रीझ रही थी। कमरे के भीतर की सांकल चढ़ी हुई है कि नहीं देख, धीरज धरकर फिर निर्लक्ष भाव से अपने काम में लग गई। वालों को छूकर देख लिया। अभी गीले ही थे। दूसरा दिन होता तो माता के डर से वह कभी भी गीले वालों में तेल लगाने का साहस न करती। लेकिन आज सीता में साहस आया था। खूव वढ़े हुए लावण्य-स्निग्ध केश-पाश को आगे खींचकर तेल लगाया। वीच-वीच में दर्पण में अपना चेहरा देखते, आंख, नाक, होंठ, गाल, कपोलों को प्रशांत दृष्टि से देख लेती थी। एक वार आइने में देख रही थी, तव किसीने दरवाज़े पर दस्तक दी तो उस ओर देखा और सुनाई पड़ा—

"वहन जी! वहन जी!" लक्ष्मी जोर से कहती, दरवाजे पर मुक्का मारती, विल्ली की तरह खरोचती थी। सीता जान गई यह सव लक्ष्मी की ही करतूत है।

सीता को गुस्सा आया। दांत पीसती हुई वह दरवाजा न खोलने का तय करके फिर वालों को तेल लगाने लगी। मगर लक्ष्मी का पुकारना, दरवाजा खटखटाना, चीख-पुकार मचाना धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगा। एक वार विगड़कर सीता ने कहा, "जरा ठहर जा री, अभी खोलती हूं।" पर लक्ष्मी वड़ी जिद्दी थी। उसने और भी ज्यादा जोर से दरवाजा खटखटाना और उस पर मुक्का मारना शुरू किया। मानो सत्याग्रह ही करने लगी। सीता ने भी विगड़कर, कोसकर, कड़ी आवाज में कह दिया, "दरवाज़ा नहीं खोलूंगी।" क्योंकि सीता सोच रही थी कि लक्ष्मी कमरे में आ जाएगी तो अपने अलंकार करने में वाधा पडेगी। वनाव-सिंगार करने में खलल पड़ेगी। साथ ही लक्ष्मी अवोध लड़की है, उसके आगे वार-वार आइने में अपना चेहरा देख लेने में संकोच होता।

सीता ने डरा दिया तो तुरंत दरवाजे के वाहर क्रांति मच गई। लक्ष्मी ज़ोर से रोती हुई ज़मीन पर लोटती हुई मां को पुकारने लगी। सीता ने गुस्से से दरवाजा खोला तो देखा कि लक्ष्मी के पास गौरम्माजी खड़ी थीं। "क्यों, दरवाज़ा क्यों वंद कर लिया था?" पूछते हुए, धमकाते हुए, गौरम्माजी लक्ष्मी को उठाकर कमरे में आईं। चटाई पर पड़ी चीजें देखकर वह वोलीं—"हाय री! वाल अभी तक सूखे ही नहीं, शुरू कर दिया संवारना?"

"वाल कुछ सूखे थे!" कहकर सीता ने भौंहें सिकोड़ीं।

"जो चाहे सो करो! तुम तो वड़ों की वात मानती ही नहीं हो।" कहकर गौरम्माजी ने फिर सीता से कहा—"यहां आ जाओ, मैं वाल संवारूंगी।"

"नहीं, मैं खुद ही संवार लूंगी। उसको मां की मदद भी जैसे अड़चन वन गई थी। गौरम्माजी को भी वेटी के मन के भीतर के भाव का पता लग गया था, इसलिए वह "जो चाहे सो करो" कहती, मुस्कराती रसोई घर चली गयी। शायद उनको अपनी जवानी की याद आई होगी।

मां आंख से ओझल हो गई। सीता ने चटाई पर मुग्ध खिलौने की भांति वैठी लक्ष्मी की ओर आंखों को और अधिक खिलाकर "क्या हुआ प्यारी, तुझको? जान जा रही थी क्या?" कहकर दांत पीस लिया। लक्ष्मी फिर मुंह फुलाकर रोने का श्रीगणेश कर रही थी कि सीता ने इस डर से कि फिर मां आ जायेगी, यकायक चटाई पर वैठ, छोटी वहन को छाती से लगाकर, विलकुल मीठी वाणी से "रोओ मत! मेरा सोना! तेरी वेणी में भी माला पहनाऊंगी! हूवय्य मामा आ रहे हैं री!" कह लाड़-प्यार से उसे चूम लिया। लक्ष्मी चुप हो गई। 'हूवय्य मामा आ रहे हैं' वड़ी वहन का उससे कहना, उसको न रोने के लिए कहने का वड़ा प्रवल कारण शायद लगा हो। वड़े भैया के आगे हूवय्य का नाम लेने में शर्म करने वाली सीता को लक्ष्मी से कहने में संकोच नहीं हुआ। इतना ही नहीं, खुश हो रही थी नाम लेकर, जैसे उस नाम में मिठास घोल दी गई हो।

लक्ष्मी तो चुप हो गई थी, तो भी सीता ने वार-वार ज़ोर देकर कहा, "हूवय्य मामा आ रहे हैं री, हूवय्य मामा!" लक्ष्मी को हूवय्य की याद नहीं थी; याद आई भी नहीं। तो भी वड़ी वहन का गौरव-आदर का पात्र वना हूवय्य अपने लिए भी गौरव-आदर का पात्र है सोचने वाली की तरह अवाक् होकर वह अपनी वड़ी वहन का मुंह देखती रही।

सीता ने वाल संवारकर जूड़ा वांध लिया। फिर प्यारे माथे पर अंगुली से कुंकुम की गोल विंदी लगा रही थी तव लक्ष्मी ने उसे चिढ़ाया तो हाथ हिल गया। प्राची के ललाट पर पूनम के चंद्रविंव की भांति वर्तुलाकार में रहने वाला कुंकुम का तिलक धूमकेतु की तरह दीर्घवक्र हो गया। उसने अपनी छोटी वहन को तो डांटा, मगर उसके मन में खुशी थी; क्योंकि उसे आइने में

अपना चेहरा देखते रहने के लिए, और कुंकुम की विंदी ठीक कर लेने के लिए अधिक समय मिल जायगा। सीता ने कुंकुम की विंदी को ठीक कर लेने के उपरांत कान, नाक,हाथ, पैर, सिर के आभूपण पहन लिये—करीने से, सावधानी से, कुशलता से। हाथों में उसने सोने के कंगन पहने जिन्हें उसने आइने में भी देखा।

इधर लक्ष्मी अपने काम में तल्लीन हो गई थी। वह कंघी, फूल, आभूपण इन सवको हाथ लगाकर एक-एक करके जांच कर रही थी; तेल की डिविया को हाथ लगाया। उसकी वदनसीवी से वह चटाई पर लुढ़क गई और तेल से उसके लहंगे का छोर भी भीग गया। तेल वहकर फूलों की ओर जाने वाला ही था कि सीता ने देखा और चिल्लाई; शीघ्रता से पुष्पमाला को लेकर दूसरी ओर रख दिया। तेल की खवर लेना छोड़कर वह छोटी वहन की खवर लेने लगी। उसके गाल पर चिकोटी काट ली। अव की वार कसूर लक्ष्मी का ही था। इसलिए वह ज़ोर से नहीं रोई। मगर उसका रोना नीरव था। वह जानती थी कि अगर वह जोर से रोती तो गौरम्माजी आती और उसको पीटे विना न रहती। इतने में गाड़ी के आने की आवाज़ आई। सीता ने "आ गये हूवय्य मामा री!" कहते खिड़की के पास जाकर देखा। रास्ते पर धूप थी, मगर निर्जन था। किसी गाड़ी का निशान भी नहीं था। रास्ते के किनारे के नाले में मुर्गियां कुछ कुदेरती दिखाई पड़ीं। लक्ष्मी भी रोना वंद करके खिड़की के पास आ गई, टकटकी लगाकर देख रही थी; मगर उसको मुर्गियां नहीं दिखाई पड़ी। लेकिन आकाश, मेघ, पेड़ों के हरे-हरे सिर, उनको विभाजित करने वाले खिड़की की सलाखें ही सिर्फ उसे दिखाई पड़ीं।

सीता हताश होकर वापस आई और गिरे तेल को वटोरकर डिविया में भरने लगी। उसने चटाई को उठाकर देखा तो ज़मीन भी तेल चूसकर काली पड़ गई थी। उसने उसी जगह पर चटाई विछा दी ताकि किसी को मालूम न हो कि वहुत तेल गिर गया था। अव लक्ष्मी ने शेप छोड़ी रुलाई को फिर शुरू किया और तेल से भीगे अपने लहंगे के किनारे की तरफ, असहाय हो जुगुप्सा से देख रही थी। सीता ने उसको देखा। उसे कोसते, भला-वुरा कहते, अपनी लाड़ली छोटी वहन के लहंगे के तेल से भीगे भाग को डिविया में निचोड़ने लगी!

सीता ने अभी तक माला नहीं पहनी थी। उसके पहले आखिरी वार, आखिरी नाटक की भांति आइने में अपना चेहरा देख रही थी। वैलों के गले में वंधी घंटियों की आवाज़, गाड़ी के पहियों की गड़गड़ाहट अच्छी तरह सुनाई पड़ी। "हूवय्य मामा आये, देख री!" कहकर खिड़की के पास दौड़कर गई। देखती है; कमान वाली वैलगाड़ी, काले-सफेद वैल—लछमन और नंदी! ओहो निंग! पीछे कौन? पुट्टण्ण और नंज; वंदूक उठाकर आ रहे हैं। गाड़ी में आगे वैठे हुए कौन हैं? रामय्य मामा! हूवय्य मामा कहां? उन्नत गिरिशृंग पर खड़े होकर दूर के

दिगंत पै चंद्रोदय की ओर टकटकी लगाकर प्रतीक्षा में रहे कवि की तरह सीता उत्कंठित हुई। वेणी, फूल, माला, आभूपण, हाथ, मुंह, आंख कहां? सीता अपने-आप को भूलकर दृष्टि मात्र वन गई।

वैल गाड़ी वाहर आंगन में आकर रुक गई। गाड़ी के पीछे से चिन्नय्य, सिगप्प गौड़जी नीचे कूदे। निंग भी नीचे कूद पड़ा, फिर आगे से रामय्य उतरा।

हूवय्य को न देखने से सीता को अचरज हुआ।

वहां जो थे सवके मुंह पर चिंता थी। ज़ोर से कोई नहीं वोल रहा था। पुट्टय्य अपने हाथ नंज के हाथ में देकर गाड़ी के आगे आया। गाड़ी में किसी से वातें कीं। वह सव देखकर सीता का रक्त नसों में गरम होकर वहने लगा। चिन्नय्य गाड़ी में गया। उसके सहारे धीरे से हूवय्य उतरने लगा। सीता घवरा गई। चिन्नय्य का दाहिना हाथ हूवय्य की पीठ को संभालकर पकड़ा हुआ था।

"चलते हो? या उठाकर ले जाएं?" सिगप्प गौड़जी ने पूछा।

"कोई परवाह नहीं। चल सकता हूं।" कहा हूवय्य ने।

सीता वैठकखाने के दरवाजे के पास दौड़कर गई और खड़ी हो गई। सभी वैठकखाने में आ रहे थे। सोये हुए श्यामय्य गौड़जी उठ गये और घवराकर हूवय्य की तरफ दौड़े।

"क्या? क्या हुआ?..."

"कुछ नहीं, आप न घवरावें। पीठ से ट्रंक लग गया। थोड़ी-सी चोट आई है!" कहकर हूवय्य ने दर्द उद्वेग का कारण नहीं है, यह अपनी मुस्कुराहट से श्यामय्य गौड़जी को दिखाया।

सवने हूवय्य की वात का ही समर्थन किया। गाड़ी के गिर जाने की वात किसीने नहीं कही। गौड़जी ने दरवाजे पर खड़ी सीता से विछौना विछाने को कहा। लेकिन इतने में वहां आए हुए काले ने वह काम किया। सीता ने भी उसकी मदद की।

सिगप्प गौड़जी ने भोजन के वाद श्यामय्य गौड़जी से सारी घटना सुनाकर इतना ही कहा, "परमात्मा की कृपा! वच गये।" पुट्टण्ण भी वीच-वीच में विवरण देता रहा। मगर उसका विवरण घटना से भी अधिक था। रामय्य वड़े भाई के पास वैठकर पीठ पर तेल, नींवू का रस मल रहा था। चिन्नय्य भी उसकी मदद करते वातें करता रहा। सीता आवश्यक वस्तुएं देती हुई 'नर्सम्मा' वनी हुई थी।

आखिर उस दिन सचमुच 'त्योहार का भोजन' किया श्यामय्य गौड़जी ने और लक्ष्मी ने।

११

अण्णय्य गौड़जी का गृहस्थी का शूल

धूप बहुत तेज थी। हवा धीरे-धीरे वह रही थी। तो भी उससे उमस कम नहीं हो रही थी। मानो पेड़ की छाया में सोकर थकावट दूर कर रही थी। आकाश की नीलिमा में मेघ लौंदा-लौंदा-सा होकर तैर रहा था। पहाड़ी जंगल लहर-लहर से हो निर्लक्ष धीरता से दिगंत में विश्राम कर रहे थे। कानूर से कमजोर मन के अण्णय्य गौड़जी निकले थे; उनका बूढ़ा शरीर थकावट के मारे चल नहीं सका। बैठने के इच्छुक मन को दो-तीन वार उकसाकर, लाठी टेकते हुए झुक-झुककर चले। सूखे गले को थूक निगल-निगलकर गीला कर लिया। बहुत दिनों से बीमार पड़ी पत्नी के पास शीघ्र पहुंचने के लिए उनका मन तड़प रहा था। तिस पर रास्ते में कौवे का 'कांव-कांव' सुनकर वे घबरा रहे थे। लेकिन शारीरिक थकावट आत्मा की साहसेच्छा से भी प्रवल होने से वे बसरी के पेड़ के नीचे बैठ गये। लंबी सांस छोड़ी। सिर पर का लाल कपड़ा उतारकर पसीना पोंछ लिया और उससे हवा करने लगे। पेड़ पर बैठी कुछ चिड़ियों ने झूलने वाले लाल कपड़े को देखा और वे चहकती उड़ गईं।

अण्णय्य गौड़जी के मन में अशांति की क्रांति शुरू हो गई थी। उनकी हालत ऐसी हो गई थी जैसे रेगिस्तान में आंख पर पट्टी बांधकर छोड़े गए आदमी की हालत होती है। चंद्रय्य गौड़जी कर्ज नहीं देंगे। आगे क्या निस्तार! पुत्र भी मेरा मुझे अकेला छोड़ जायगा, मुझे कौन आश्रय देगा इस बुढ़ापे में? बीमार पत्नी की मेरी दुर्बल छोटी बेटी अकेली शुश्रूषा कर सकेगी? कौन जोतने वाले? कौन बोने वाले?···हाय रे भगवान, अंतिम समय में कितना कष्ट दिया! कैसा कष्ट दिया!···उनके सारे जीवन के चित्र उनकी आंखों के आगे से खिसक गये। बूढ़े का दिल शोक से विदीर्ण हो गया। प्रकृति के सिवा वहां कोई नहीं था। वे बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। हे नारायण, तुमको भी मेरी रुलाई नहीं सुनाई पड़ती? इस बूढ़े ने कितनी वार तुम्हारी मनौती मानी है? तिरुपति, धर्मस्थल के देवता से विनती की है? वेंकप्पय्य ज्योतिषी के द्वारा चंद्रमौलीश्वर को फल-पुष्पार्पण किया है! उन्हीं से भविष्य पूछकर चिट्ठी-विभूति यह बूढ़ा ले

आया है।…भूत, पिशाच, पंचोल्ली आदि को इसी बूढ़े ने मुर्गियों की वलि दी है। अपने को विदित कपाय भी वनाकर पत्नी को पिलाया है। मित्रों की सलाह के अनुसार कई अस्पताल जाकर डाक्टरों को दिखाया है…उनसे लाभ क्या हुआ? अग्रहार के ज्योतिषी जी के मंत्र-तंत्र से, तिरुपति धर्मस्थल के देवताओं से, अपने गांव के वैद्यों से (मैंने कितने लोगों को दवा नही दी? कितने लोगों को नहीं बचाया!) भूत, जक्कणी (यक्षिणी) से भी वरी न हो सकने वाली वीमरी क्या अस्पताल के डाक्टरों से वरी हो जायगी? कितने ही लोगों से मैंने कहा था कि अस्पताल मत जाओ तीमारदारी के लिए। कुछ भी फायदा नहीं होता वहां। "माता-पिता मर जायं अस्पताल में!" कहावत है न? वेद शायद झूठे हो जायं, मगर कहावत झूठी नहीं हो सकती! सब कर्म का फल है। पिछले जन्म में लगा यों ही चुपचाप जायगा?…फिर बूढ़े को अपने चार विवाहों की वात याद आई। एक वार उसको अपना किया गलत मालूम हुआ।…लेकिन फिर विवाह करने में क्या गलती है? संसार कैसे चलाया जाय? कहकर उन्होंने अपने कामों का समर्थन आप ही कर लिया।…सोच ही रहे थे कि पास के एक पेड़ पर कौआ फिर कांव-कांव कहकर पुकारने लगा। चौंककर बूढ़े ने देखा। हरे पत्तों के वीच में एक भूरे रंग का मोटा कौआ काला-सा होकर वैठा पुकार रहा था। गौड़जी देखते हैं: श्मशान की ओर ही मुंह करके वैठा है। "तेरा गला वन्द हो जाय" कहकर बूढ़ा शाप देता हुआ उठकर सिर पर लाल कपड़ा लपेटकर, लाठी टेकता हुआ, झुककर आगे वढ़ा। धूप और भी तेज होती दिखाई दी। उस सुनसान दुपहर की दुनिया में निर्जनता का भीषण मौन मानो यह कहकर खिल्ली उड़ा रहा था, "तुम निर्गतिक हो।"

खेतों और जंगल के वीच में अपनी झोंपड़ी के दिखाई देते ही अण्णय्य गौड़जी जितना हो सके जल्दी-जल्दी प्रयत्नपूर्वक कदम वढ़ाने लगे। जंगल में पड़े अनाथ शव की भांति वह झोंपड़ी निश्चल, नीरव थी। मनुष्यों के संचार का निशान तक नहीं दीखता था! अपनी कब्र में जाने वाले दिवापिशाच की भांति अण्णय्य गौड़जी चल रहे थे, तभी घर में से रोदन की आवाज सुनाई पड़ी! मानो जान ही निकल गई उनके पैरों की। फिर कुछ आगे वढ़े। रुदन अपनी पुत्री का है, वे जान गये। दीर्घ उसांस छोड़कर उन्होंने कहा "नारायण!" प्रभु का नाम भी उनके कान नहीं सुन सके। आंसू पसीने के साथ वह रहे थे। कूड़े-करकट में कुरेदती मुर्गियों की परवाह किये विना और वाहर उसके घर की हालत को मानो वतलाने के लिए मूर्च्छित की भांति सोते काले कुत्ते की ओर भी गौर किये विना, उनको पार करके घर में घुस गये। देहलीज पार करते समय दरवाजे का नाटा चौखट उसके सिर को लगा।

उस दिन सवेरे अण्णय्य गौड़जी जव कानूर के लिए निकले थे तव घर में

उनका पुत्र ओवय्य था। आजकल पिता-पुत्र में बातें नहीं होती थीं। इसलिए उन्होंने अपनी पुत्री को संबोधित करके "मैं कानूर हो आता हूं," घर का काम और रोगी को देखते रहने के बारे में इतने जोर से कहा ताकि उनका पुत्र ओवय्य भी सुने। उनकी बेटी अबोध थी. अपनी मां के पास बैठी थी। मां उल्टी, सिरदर्द, ज्वर से पीड़ित हो छटपटा रही थी। बेटी भी स्वस्थ नहीं थी। बार-बार बुखार भी चढ़ता, ज्वर की गांठ भी बढ़ गयी थी। तिल्ली बढ़ गई थी। अच्छा आहार, अच्छी हवा, अच्छी शुश्रूषा आदि के अभाव से वह पत्थर के नीचे बढ़नेवाली घास के कण की तरह बन गई थी। बालकों के लिए स्वाभाविक खेल-कूद-घूमना आदि से वह जन्म से ही वंचित थी। पास में कोई पड़ोसी भी नहीं था। इससे उसके भाग्य में बालक-बालिकाओं की संगति भी कथावार्ता-सी बन गई थी। इस तरह उसकी शारीरिक बढ़ती की तरह आत्मा की बढ़ती भी स्वाभाविक परिसर, वातावरण के अभाव से कुब्ज बन गई थी। उसके पिता बिलकुल बूढ़े हो गये थे। सैकड़ों चिंताओं से पीड़ित होने की वजह से पुत्री को खेलाने या उसके साथ कुछ समय कम से कम खेलने की ओर ध्यान न दे पाये थे। घर के काम से मां को फुरसत ही नहीं मिलती थी, हाथों को खाली रहने का अवसर ही मुश्किल से मिलता था, अत: उसकी मां उसे अपने स्तन का दूध भी अच्छी तरह नहीं पिला सकी थी। वह माता के प्रेम से वंचित ही थी। उसको स्वाभाविक शिशु का लाड़-प्यार प्राप्त नहीं था। ओवय्य बड़ा भाई था। वह भी छोटी बहन की ओर उसी तरह देखता था जैसे वह पिता और माता की ओर देखता था। इस तरह वह लड़की माता-पिता के साथ रहने पर भी 'अनाथ' की तरह बढ़ रही थी। बेचारी चुपचाप सब कुछ सहती रही।

पिता के जाने के कुछ समय बाद ओवय्य ने अपनी बहन को रसोई घर बुलाकर आज्ञा दी, "चूल्हा जला।" उस लड़की को बड़ा भाई बाघ की तरह डरावना लगता था। न जाने कितनी बार उसने न मुंह देखा, न आंख, बहन को मारा था। अत: बड़े भाई की बात का प्रतिवाद किये बिना काम करती थी।

"मैं गोठ जाकर जानवरों को छोड़कर आता हूं, कांजी बनाकर रखो।" कहके आंख दिखाकर ओवय्य चला गया।

लड़की ने चूल्हा जलाने में हाथ लगाया। मगर लकड़ी नहीं थी। वह बाहर जाकर लकड़ियां चुनने लगी। तब माता की उल्टी की आवाज़ सुनाई पड़ी। भागकर जाके देखती है : मां बिस्तर पर बैठी है, सारा कपड़ा कैसे भर गया है। बदबू जैसे उस घर के अंधेरे को भगा रही है। पुत्री को उससे न घृणा हुई, न जुगुप्सा। उसे आदत-सी हो गई थी। वह बदबू, अंधेरा, उल्टी सब सह सकती थी। वह सहिष्णुता की मूरत-सी बन गई थी। माता के तितर-बितर हुए बाल, मुरझाए हुए गाल, निस्तेज आंखें, जीर्ण-शीर्ण देह, यह सब देखकर उसको तरस

आया। साथ ही साथ डर भी लगा। होंठ कांपे; आंसू वहे। मां में वोलने की शक्ति भी न रह गई थी। करुणापूर्ण दृष्टि से उसने पुत्री के मुंह को टकटकी लगाकर देखा। उसकी दृष्टि अलौकिक थी। गरम-गरम आंसू वहकर ज्वर से तप्त गालों पर लुढ़ककर नीचे गिरे। उसने इशारे से वताया कि पीने के लिए कुछ दे दो। लड़की भागकर गई, एक लोटे में पानी भरकर लाई। कोई जानकार होता तो ऐसी विषम अवस्था में ठंडा पानी पीने को कभी न देता। पानी भी साफ़ नहीं था। वह खेत की सिंचाई के लिए उपयोग किए जाने वाले तालाव का पानी था। वह ऐसा तालाव था जिसमें लोग कपड़े धोते, मल विसर्जन करने के वाद मलद्वार को साफ़ करते थे। उस तालाव में काई जमकर पानी हरा-हरा हो गया था। कभी-कभी दिन में भैंसें भी गरमी को दूर कर लेने को उसमें पड़कर लोटती थीं जिससे उस तालाव में गोवर की बू भी भर गई थी।

अवोध लड़की ने मां को पानी दिया; ज्वर से पीड़ित, ज्ञानशून्य माता ने पी भी लिया। फिर उसी विस्तर पर लेट गई जिसपर उसने उल्टी कर ली थी। मगर लड़की ने अपने से जितना हो सके, कै को निकालकर पुकारा, "मां! मां!" मगर मां रोती हुई, आंसू वहाती हुई वोलने की कोशिश कर रही थी। पुत्री ने उसके मुंह से अपना कान लगाया। माता अपने शीतल हाथों से वेटी को गले लगाकर फूट-फूटकर रोई। उस लड़की को उस निर्जन नीरवता में डर लगा। उसने पुकारा, "भैय, रे, भैया!" ओवय्य वाहर से दौड़कर आया और देखा कि विमाता पहले की भांति तव सोई थी। वेवजह शोर मचाने के कारण उसने वहन को धमकाया, चंद्रमौलीश्वर की मनौती के लिए उसके हाथों में जो चांदी का कंगन था उसे मांगा। लड़की ने विना सोचे-विचारे दे दिया। वेचारी की इच्छा थी कि मां किसी तरह स्वस्थ हो जाय। ओवय्य ने उस कंगन को रोगी विमाता के चारों ओर घुमाया और अग्रहार जाकर, वेंकप्पय्याजी से पूजा कराऊंगा कहकर उसे अपनी जेव में रख लिया।

ओवय्य ने वहन से चूल्हा जलाने के लिए कहा और खुद कांजी वनाने की तैयारी में था। लड़की चूल्हा फूंक-फूंककर थक गई। हार गई। धुआं उठकर आंख-कान में भर गया। आंखें लाल हो गईं; आंसू वहने लगे। नाक से पानी चूने लगा। उसे जमीन पर टपकाती, चूल्हे के छोर पर गिराती, अपनी गंदी साड़ी के आंचल से पोंछती, फिर-फिर आग को फूंक-फूंककर सुलगाती रही। परंतु अग्नि-देव के वदले धूम्रपिशाच ही पैदा होता! लड़की ने गुस्से से एक वार चूल्हे में थूका फिर धीरे से रोने लगी। ओवय्य आया, उसने उसे एक घूंसा दिया, उसे पीछे हटाया और खुद आग सुलगाकर कांजी वनाने के लिए चूल्हे पर पानी से भरा वर्तन चढ़ाया। लड़की कोने में फूट-फूटकर रो रही थी।

ओवय्य ने कांजी खुद परोस ली और उसे पीकर वहन से कहा, "तुम भी पी लो,

मां को भी पिलाओ और कुछ पिताजी के लिए भी रखो।" इतना कहकर वह घर से बाहर निकल गया।

लड़की कुछ कांजी लेकर मां के पास गई। मां आंखें मूंदकर सो रही थी। लड़की डर गई। पीछे हट गई। पत्तल में कांजी लेकर पीने लगी। लगता है कि कांजी तब तक कुछ गाढ़ी बन गई थी। काला कुत्ता भी उसके पास आकर पत्तल के आगे लार टपकाता बैठ गया। लड़की ने उसको ज़मीन पर थोड़ी कांजी परोस दी। उसने उसे अपनी जीभ से चाट लिया। लड़की का कुत्ते की अपेक्षा ज्यादा प्रिय दोस्त कोई नहीं था। ओबय्य की संगति की अपेक्षा कुत्ते की संगति ही उसे अधिक सुखकर और धीरज की थी।

लड़की ने पत्तल को बाहर आंगन में फेंक दिया। कुछ मुर्गियां भात के दाने चोंच मार-मारकर खाने लगीं। खेत में बैठी कुछ चिड़ियां उड़ गईं। जहां-तहां कुछ चौपाये चर रहे थे। आसमान, जंगल, पहाड़, खेत, मैदान, सारी दुनिया बेफिक्र और उदास थी। लड़की ने बहुत देर तक खड़े होकर देखा। हवा, रोशनी, जीवों से भरी बाहरी दुनिया मनोहर थी। और भी खड़े होकर उसने देखा। उसे पिताजी के आगमन की आहट कहीं भी नहीं मिली। फिर खेत की बावड़ी पर गई, हाथ-मुंह धोया, लौट आई, माता के पास गई; फिर पुकारा "मां! मां!" उस नीरवता में उसकी ध्वनि उसी को भयानक लगी। फिर धीरज धरकर, मां को छूकर, हिलाकर पुकारा, "मां! मां!" पहले मां का जो स्पर्श हर्षदायक बना था आज वही पुत्री को भयानक लगा था। मां ने धीरे से पलकें खोलीं। आंख की सफेद पुतली को देख डर के मारे लड़की ने चीख मारी। उसको सजीवता की सूचना भी मृत्यु-सी भयानक लगी। मां ने फिर आंखें बंद कर लीं। लड़की शोक की अपेक्षा अधिक भय से रोने लगी। थोड़ी देर रोई। फिर चुप हो गई। एक-दो बार बाहर दरवाजे तक गई और बाहर देखा। पिताजी के आगमन की आहट नहीं मिली। फिर अंदर गई, अपनी सारी ताकत लगाकर रोने लगी। रुलाई की ध्वनि मौन की अपेक्षा हितकर थी। ज्यादा धीरज बंधाने वाली-सी थी।

अण्णय्य गौड़जी आये, तब लड़की ज्यादा ज़ोर से रोने लगी। बूढ़े का दिल धड़कने लगा। वह रोगी के पास गया। अण्णय्य गौड़जी देहाती वैद्य थे, कई रोगियों की मृत्युशय्या के पास खड़े हुए थे। ऐसे समय में लोगों को धीरज बंधाते थे। लेकिन आज ऐसा नहीं हो रहा था। बूढ़े का दिल संसार के अनगिनत निष्कारण आघात-प्रत्याघातों से सूखे पत्ते की तरह जर्जरित हुआ था, निकम्मा बन गया था। धीरे से रोगी ने आंखें खोलकर देखा। अण्णय्य गौड़जी जान गये कि अब भी जान है, तो वे तुरंत रोना छोड़कर प्राण बचाने के अन्य उपाय करने में लग गये। ठंडे पड़ने वाले हाथ-पैरों पर राख मलने लगे। रोगी का मुंह खोलकर दवा निचोड़ी। बेटी से दूध लाने को कहा। लेकिन उस दिन उनकी एकमात्र गाय का

दूध नहीं दुहा गया था। ओवय्य ने सभी चौपायों को चरने जंगल भेजा था। अंत में कांजी का पानी ही पिलाया गया। रोगी ने उसे पी लिया। बूढ़े को मालूम हो गया कि अब रोगी के प्राणों के निकल जाने में देर नहीं है। "बेटा कहां है?" पूछने पर सब कुछ सुनाकर लड़की ने कंगन से खाली अपना हाथ दिखाया। सब सुनकर बूढ़ा दीर्घ सांस छोड़कर, दोनों हाथों से माथा पकड़कर बैठ गया।

अण्णय्य गौड़जी को विदा करके कानूरु चंद्रय्य गौड़जी थोड़ी देर हिसाब-किताब देखते रहे। फिर वे स्नानगृह जाकर नहा आये। उनका मन कुछ हिल गया था। बूढ़े का दुखड़ा सुनकर उनके हृदय में करुणा उत्पन्न हो गई थी। परंतु उन्होंने उसे प्रयत्नपूर्वक दबा दिया था। लेकिन वह अंतर्मन में खौल रही थी। वेंकप्पय्य ज्योतिषी जी से बातचीत करते समय रसोईघर में जो झगड़ा हो रहा था उसका कोलाहल उनको दूसरी ओर से सता रहा था। प्रतिदिन रात को अपनी पत्नी की चुगली भरी बातें सुन-सुनकर नागम्माजी उनकी दृष्टि में विषसर्पिणी की भांति दीखती थीं। लेकिन हूवय्य के प्रति गौरव होने के कारण और भय से भी, नागम्माजी उनकी भाभी होने से, लोकापवाद के डर से गौड़जी कुछ भी न कर पाते थे। करने की इच्छा न होने से भी वे चुप थे।

मन की ऐसी स्थिति के समय गौड़जी बैठकखाने में एक पीढ़े पर बैठकर तिलक लगा ले रहे थे। तब पुट्टम्म वहां आ गई और सवेरे घटी सभी बातों का वर्णन छोटी मां के विरोध में किया। गौड़जी के लिए रसोई घर का झगड़ा कोई अपूर्व नहीं था। परंतु आज अग्रहार के ज्योतिषी वेंकप्पय्य के रहते रसोई घर में जो झगड़ा हुआ उससे गौड़जी को अपमान-सा लगा। पहले से ही उनका पारा चढ़ गया था, वह अब भभक उठा। तब पास में रही पुट्टम्मा को निर्देशित करके सभी को लगे, इस तरह गाली दी। रोती हुई पुट्टम्म बड़ी मां के पास गई। बेचारी वह क्या जाने कि वे गालियां उसके लिए नहीं थीं, औरों के लिए थीं जिन्होंने रसोई घर में झगड़ा किया था।

गौड़जी रसोई घर गये। भोजन करने बैठने वाले ही थे कि उनको चूल्हे के पास गीली जमीन दिखाई पड़ी। विवाह के बाद अब तक नई पत्नी से क्रूरता के साथ पेश नहीं आये थे। अब तक यानी तीसरी पत्नी के पहले उन्होंने जिनसे शादी की थी वे बड़े घरानों में पैदा हुईं, बड़ी हुईं, सुशील आचार-विचार में सुसंस्कृत थीं। उनके मुकाबले में सुब्बम्म नहीं ठहरती थी। उसका बर्ताव कई बार उनको अच्छा नहीं लगा था। उसके प्रति उनमें क्रोध भीतर ही भीतर धुआं-सा था। आज के झगड़े ने उसमें तेल का काम किया। जिनसे उनकी सहिष्णुता में बारूद-सा बन गया। एक दिया-सलाई की जरूरत भर थी फट जाने के लिए।

भोजन शुरू करते ही उनका चेहरा क्रूर बन गया था। दाल के जल जाने

की बात मालूम होते ही वह कर्कश बन गया।

परोसती हुई, पत्नी से उन्होंने चिल्लाकर पूछा, "क्यों री, दाल क्यों जल गई है ?" यह सवाल सिर्फ आगे की घटना का बहाना मात्र था। सुब्बम्म अभी जवाब देना शुरू नहीं कर रही थी कि चंद्रय्य गौड़जी उठे और बिल्ली को भगाने के लिए रखी मोटी छड़ी को जूठे हाथ से ही उठाकर पत्नी को राक्षस की तरह तड़ातड़ मारने लगे। सुब्बम्म "हाय रे, मर गई !" जैसे जैसे वह ज़ोर से चिल्लाते कहती गई वैसे ही मार भी ज़ोर से पड़ती गई। एक मिनट में वह छड़ी टूट गई। और सुब्बम्म के हाथ में जो चूड़ियां थीं वे भी चकनाचूर हो गई। फिर वे अपने बाएं हाथ से पत्नी का जूड़ा पकड़कर दाहिने हाथ से उसकी पीठ पर लगे घूंसा देने। नागम्मजी, पुट्टम्म दोनों सुब्बम्म की मदद के लिए आना चाहती थीं, मगर गौड़जी के भीषण क्रोध को देखकर, डर के मारे दूर होकर ही दंग होकर खड़ी रहीं। इतने में जंगल से लौटे सेरेगार रंगप्प सेट्टजी को रसोईघर में हो रही आवाज़ सुनाई पड़ी तो वे अंदर गये और गौड़जी को नमस्कार करके विनती करने लगे, "नहीं, नहीं, मेरे मालिक। इस तरह नहीं मारना, मेरे मालिक !" घर के पिछवाड़े से भीतर आया वासु भी अपनी बड़ी मां और बहन के साथ खड़े होकर न जाने क्यों रोने लगा। पुट्टम्म भी रो रही थी। वासु केवल एक ही मिनट खड़ा रहा होगा। अपने पिताजी के पास भागकर गया "न पिताजी, न पिताजी।" कहकर रोने लगा। सुब्बम्म की कराहने की शक्ति भी मानो सिकुड़ गई थी।

पराये सेरेगार के आगमन से, प्रिय पुत्र के आर्त-नाद से, हाथ थक जाने से, गौड़जी पीछे हटकर हांफते खड़े रहे। उनके होंठ कांप रहे थे। छाती फूल-फूल पड़ती थी। आंखें खिलकर लाल हो गई थीं। पति ने तितर-बितर बने जूड़े को ज्योंही छोड़ा त्योंही सुब्बम्म ज़मीन पर लुढ़क पड़ी।

१२
ताड़ी की दुकान

ओवय्य जव पैदा हुआ था तव अण्णय्य गौड़जी सुखी परिवार वाले थे। गोठ में चौपाये थे; खलिहान में अनाज थे, संदूक में आभूपण थे; उनकी देह में ताकत थी, हृदय में हर्प था; मन में शांति थी; देहातियों के गौरवादर के वे पात्र थे। उनका पुत्र ओवय्य आम अमीर लड़कों की भांति पला, वढ़ा। माता के मरते समय वह कुछ हद तक घर के सभी काम-काज अच्छी तरह देखभाल करने वाला, पिता का प्यारा पुत्र वन गया था। वाग-वगीचे उसकी मेहनत से तरक्की पर थे। यह आम लोगों की राय थी। मगर जिस दिन अण्णय्य गौड़जी ने आठ सौ रुपये कन्याशुल्क देकर तीसरा विवाह कर लिया उसी दिन से ओवय्य का मन टूटने लगा। पिताजी का तीसरा विवाह उसको पसंद नहीं था। इसके अलावा आठ सौ रुपये तीसरे विवाह के लिए देना उसको अखरने लगा, संसार विनाशकर दीखने लगा। सौतेली मां का आना उसको कतई पसंद न था। 'रसोई वनाने के लिए एक स्त्री की जरूरत थी तो मेरी शादी करानी थी। मेरे लिए तो कम कन्याशुल्क पर कन्या मिल सकती थी!' यों वह सोचने लगा।

पिता के तीसरे विवाह के वाद के समय से ओवय्य अपने और घर के कामकाजों के प्रति उदासीन वन गया। वह नौ सौ रुपये कन्याशुल्क देकर चौथा विवाह करने के लिए तैयार हुए अपने पिताजी का विरोध करने लगा। युवक वने, विवाह के योग्य वने पुत्र का विवाह करना छोड़कर अपने वूढ़े पिता का इतनी वड़ी रकम देकर चौथा विवाह करना पुत्र के ईर्ष्या-द्वेष का कारण वन गया। खुद मेहनत करके भावी सुख के लिए कमाया धन अविवेकी पिता अंधाधुंध खर्च करे तो कौन पुत्र सहन करेगा? उस दिन से चंद्रय्य गौड़जी के यहां अण्णय्य गौड़जी का कर्ज वढ़ता गया चूंकि युवक वना ओवय्य पिता का विरोधी वनकर मनमाना खर्च करने लगा और कई वुरी आदतों का शिकार वन गया। पहले से ही अण्णय्य गौड़जी घर में ताड़ी वनाकर पीते रहते थे। मगर सीमा का उल्लंघन नहीं करते थे। उन्होंने मन को अपने नियंत्रण में रख लिया था। मगर घर की ममता समाप्त हो जाने पर ओवय्य वाहर जाकर खूव ताड़ी-शराव पीने लगा। उसके लिए पैसे की

जरूरत पड़ती; वह सुपारी, धान आदि चोरी-चोरी से बाहर भेजकर बेचता रहा। ताड़ी की दुकान में कर्ज किया; हलेपैक के तिम्म के यहां भी। उस कर्ज को चुकाने के लिए घर के आभूषण चुराके ले गया। अंत में शराब के साथ स्त्री का प्रणय भी अचानक मिल गया। वह बाद को लत में बदल गया। वह शराब और स्त्री का आदी हो गया।

एक दिन एक बार ओबय्य कानूर के पास के जंगल में एक पेड़ पर 'क़लम' करने गया। रात के आठ बज गये थे। आकाश में बादल छा गये; चांदनी गायब हो गई; आंधी आई; बिजली चमकी; मेघों की गड़गड़ाहट हुई; मूसलाधार वर्षा होने के लक्षण दिखाई पड़े। वह पेड़ पर से उतरा और अपने घर की तरफ रवाना हुआ। थोड़ी दूर ही गया था कि बड़ी-बड़ी बूंदें टपटप गिरने लगीं। जल्दी घर पहुंचना मुश्किल था। दो फर्लांग पर सेरेगार रंगप्प सेट्टीजी के घाट के ऊपर वाले मजदूरों के घर थे, जो याद हो आये। वह उनकी तरफ तेजी से कदम बढ़ाने लगा। इतने में जोर से बारिश शुरू हो गयी और ओले गिरने लगे। ओबय्य बंदूक कंधे पर रखकर दौड़ा। दूर एक घर में जलता दिया दीख पड़ा। उसने उसमें प्रवेश किया।

वह सेरेगार रंगप्प सेट्टीजी की प्रेयसी गंगा का घर था। आम तौर से रंगप्प सेट्टीजी रात उसी घर में बिताया करते थे। इसलिये और मजदूरों के घरों की अपेक्षा गंगा का घर अच्छा, बड़ा, सजा-धजा था।

गंगा वासकसज्जा बन सेरेगारजी के इंतजार में थी। क्योंकि चंद्रय्य गौड़जी के घर ही खा-पीकर सेरेगारजी यहां आया करते थे। सच पूछा जाय तो सेरेगारजी का प्रधान निवास चंद्रय्यगौड़जी का घर ही था। गंगा का घर रात का 'उपवास' मात्र बन गया था। सेट्टीजी रात का भोजन करके, गौड़जी से कुछ समय बातेंकरने के उपरांत नौकर-चाकरों के सो जाने के बाद, चुपके से गंगा के निवास पर आया-जाया करते थे। आज भी गंगा अपना भोजन करके 'वासकसज्जा' बनकर सेट्टीजी की प्रतीक्षा कर रही थी। बादलों के घेरने से, बिजली की कड़क से वह घबरा गई थी। आज प्रियतम आएगा कि नहीं सोचकर। इतने में वर्षा जोर से शुरू हुई। उसने निराश होकर उसांस भरी। इतने में किसीके दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनाई पड़ी। उत्कंठित गंगा, दरवाजा खोलकर देखती है; सेरेगारजी नहीं हैं; केल कानूरु अण्णय्य गौड़जी का पुत्र ओबय्य गौड़जी हैं!

ओबय्य गंगा की बिछाई गई चटाई पर बैठ गया। वह दौड़कर आया था। थकान को मिटाने के लिये थोड़ी देर आराम किया। चेहरे पर की पसीने की बूंदें पोंछ लीं। गंगा के सवाल का जवाब देते हुए वहां आने का कारण उसने सुनाया। गंगा ने सेट्टीजी के आगमन की पूरी आशा छोड़ दी। मगर ओबय्य के आगमन को अपना भाग्य समझा। गंगा की आंखों में वह युवक अक्षत रसाल-फल-सा लगा।

प्रणय विदग्धा उसको एक मुग्ध युवक को अपने जाल में फंसा लेना बड़े साहस का काम प्रतीत नहीं हुआ, ओवय्य भी विरागी की हालत में नहीं था।

गंगा ओवय्य की चटाई पर ही एक ओर आकर बैठ गई। फिर वह बोलने लगी। उसकी आंखें, भौंहें, उसके होंठ, उसके गाल; उसका सारा शरीर पतंग को आकृष्ट करने वाली लीलामय ज्वाला की भांति चंचल, मोहक बन गया। पर, पहले-पहल, ओवय्य के भाव में कोई वक्रता नहीं थी। बारिश के रुकने तक बोलना है, इसलिए बोल रहा था। लेकिन गंगा की माया ने पूरे यौवन के युवक को बहुत देर तक उदासीन न रहने दिया। उसने इधर-उधर की बात करके उससे उसके विवाह की बात उठाई। उदास-भाव से अब तक बोलता हुआ ओवय्य अब भावपूर्ण होकर बोलने लगा। उनकी बात भी बारूद की भांति थी उनके बीच में। गंगा और ओवय्य आग की बत्तियों की भांति इधर-उधर बैठे थे। बोलते-बोलते ओवय्य के मुंह पर लाली छा गई। रक्त भी चढ़ा। छाती धड़कने लगी; शरीर पसीना-पसीना हो गया। उसको भी उसका अर्थ मालूम हुआ। तब तक अविद्यमान एक भाव उसके मन में चमका। विचक्षणी गंगा को भी वह भाव मालूम हुए बिना न रहा। दो-चार बातें करके घर के भीतर गई; अच्छी पीने लायक फेनिल मीठी ताड़ी लाकर उसने ओवय्य को दिया। ओवय्य बारिश में भीग गया था; सर्दी लग रही थी; इसलिए उसने खूब पी ली। उसके बाद गंगा ने पान-सुपारी दी। उसे भी उसने स्वीकार किया। गंगा ने उसे कहा, "इस बारिश में घर तो जा नहीं सकते, यहीं सोना बेहतर है।" ओवय्य मान गया। उसे अभी तक अपनी स्वीकृति का अर्थ और उसका परिणाम पूरी तरह समझ में नहीं आया था। सूझा भी नहीं था।

घर का दरवाजा बंद हुआ। बत्ती बुझ गई। बाहर वर्षा, झंझा, बिजली पागलों की तरह तांडव कर रही थीं।

सबेरे ओवय्य उठा और गंगा के घर से निकला। अब वह पहले का लड़का नहीं रह गया था। उसको नये अनुभव का, मधुर संसार का ज्ञान हो गया था। उसको तब मालूम हो गया कि अपने पिताजी ने क्यों चौथा विवाह कर लिया। उस दिन से ओवय्य का खर्च दुगुना हुआ। दिन-ब-दिन नीचे गिरने लगा। उसका अधः-पतन शुरू हुआ।

छोटी बहन से कंगन लेकर ओवय्य घर से निकलकर सीधे सीतेमने गया। तीर्थहल्ली गये हुए सिंगप्प गौड़जी अभी नहीं लौटे थे। इसलिए वह वहीं भोजन करके सोया और उठकर अग्रहार के लिए रवाना हुआ। कड़ी धूप थी; प्यास लगी तो उसे ताड़ी की दुकान याद आई। उस दुकान में कर्ज लिया था, जब तक कर्ज नहीं चुकाएगा तब तक उसे ताड़ी नहीं मिलने वाली थी; दुकानदार कर्ज चुकाने के

लिए वार-वार तकाज़ा कर रहा था। इसलिए ओवय्य वहां जाने में हिचकिचाया। फिर उसे जेव में रखे चांदी के कंगन की याद आई। उसकी आंखों में नई प्रभा की चमक आई। मगर कंगन तो ईश्वर की मनौती का था। इससे वह डर गया। वह पतित वन गया था केवल, परंतु अभी धूर्त नहीं वन पाया था। भीति की सहायता से प्रलोभन को जीतकर वह अग्रहार गया।

अग्रहार तुंगा नदी के तट पर था। अत्यंत रम्य स्थान था देखने में। सामने निर्मल नील गगन का प्रतिविंव तुंगा के पानी में मनोहर दीखता था, तट पर कोमल-चिकनी रेत की राशि, नदी के वीच इधर-उधर ऊपर उठी हाथी जैसी छोटी-वड़ी चट्टानें, नदी के किनारे से शुरू होकर नीलाकाश के दिगंत तक फैली-सी दीखती हरी वन श्रेणी ने अग्रहार को मनोहर दृश्य प्रदान किया था। नदी के तीर पर ही चंद्र-मौलीश्वर का मंदिर था, उसके पास ही वेंकप्पय्य ज्योतिषीजी का खपरैलों का मकान था। घर का वाहरी भाग वहुत साफ़, चौकपूर से सुशोभित आंगन, ब्राह्मणों का घर कहलाने लायक था। मेंड पर लाल एवं काले रंग की साड़ियां और सफेद धोतियां-सूखने को फैलाई गई थीं।

दो लड़के आंगन में खेल रहे थे। ओवय्य को देखते ही वे खेल छोड़कर दूर जाकर खड़े हो गये, इसलिए कि वे जान गये थे कि ओवय्य शूद्र है। ओवय्य ने उनसे वातें कीं। मालूम हुआ कि वेंकप्पय्यजी अभी घर में नहीं हैं। ओवय्य ने कहा कि प्यास लगी है तो एक लड़का एक लोटा भर पानी और गुड़ लाया; ओवय्य के आगे रखकर दूर खड़ा हो गया। तव ओवय्य भी उनसे कुछ दूरी पर ही खड़ा था। दूसरे लड़के ने कहा, "मुंह लगाकर पानी मत पीना, ऊपर से मुंह में उंडेलकर पीना, ओवय्य ने वीच-वीच में थोड़ा-थोड़ा गुड़ खाते लोटे को ऊपर उठाकर उसे मुंह लगाये विना पानी पिया। ऊपर से पानी पीने की आदत न होने से कुछ पानी मुंह में, कुछ पानी कुरते पर गिर गया। वे ब्राह्मण लड़के इसे देखकर जुगुप्सा से भर गये। शूद्रों के वारे में उनको दी गई शिक्षा के कारण उनके प्रति तिरस्कार और अधिक हो गया।

वेंकप्पय्यजी से भेंट नहीं हुई; इससे वह चंद्रमौलीश्वर को नारियल आदि अर्पण नहीं कर सका। वह केवल मंदिर के पास जाकर वाहर से ही भगवान को नमस्कार करके, नदी के प्रवाह के निकट गया। वहां पली हुई छोटी-वड़ी मछलियां काफी तादाद में दिखाई पड़ीं। वह घाट केवल ब्राह्मणों के लिए ही था, अतः मछलियों को किसी प्रकार का खतरा नहीं था। वे भगवान की मछलियां थीं। जो उस घाट पर आता वह उन्हें चावल, केले और नारियल के टुकड़े आदि चीज़ें डालकर खिलाता था। इसलिए वे वहां वड़े स्नेह से रहती थीं। भगवान की मछलियां कोई शूद्र पकड़कर, उनकी तरकारी वनाकर खाने लगे तो तुरंत वह तरकारी गोवर वन जाती थी, कहते हैं। अतः कोई शूद्र उनकी तरफ नहीं जाता

था। इसे ओवय्य भी जानता था। वह पानी के पास गया तो मछलियां दौड़कर आईं यह जानकर कि कोई उनको खाने के लिए कोई चीज़ लाया है। कुछ मछलियां तो चार-पांच फुट लंबी और एक-दो फुट चौड़ी थीं। चारों तरफ देखा तो कोई उसे नहीं दिखाई पड़ा। पानसुपारी की जेब से उसने तमाखू निकाला, उसे खूब मलकर गोली बनाया, फिर उसे पानी में फेंक दिया। बीस-तीस मछलियां उसपर टूट पड़ीं मानो उनको कोई खाद्य मिल रहा हो। अग्रहार की प्रजा की भांति वे भी बन गई थीं; खद्याखाद्य, भक्ष्याभक्ष्य का विवेक-विचार शायद भूल गई थीं! एक-दो मिनटों में एक साधारण बड़ी-सी मछली चित हो छटपटाकर किनारे पर आ गिरी। ओवय्य ने जल्दी-जल्दी उसे सिर के कपड़े में लपेटकर, बगल में दबाकर चोर रास्ते से निकल पड़ा। बगल में दबी पड़ी मछली संकट-जलन के मारे बार-बार तड़पती रही। ओवय्य उसे जोर से दबाता रहा। थोड़ी दूर जाने के बाद उसका छटपटाना बंद हो गया। दिन भी चढ़ गया था।

मुत्तल्ली और क़ानूर के बीच में एक ताड़ी की दुकान थी। करीब सात-आठ मील दूर से ग्राहक वहां आते थे। शाम से शुरू होकर रात के आठ-नौ बजे तक उस 'जंगली छांछ का होटल' में लोगों की भीड़,गपशप, मारपीट आदि हुआ करती थीं। ताड़ी में ज्यादा मस्ती लाने के लिए ताड़ी का दुकानदार न जाने क्या-क्या वनस्पति मिलाता था। इसलिए उस दुकान की ताड़ी के लिए लोग जान देते थे। ग्राहकों में प्रमुख थे कानूरु चंद्रय्य गौड़जी के नौकर-चाकर, मुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी के चाकर, सीतेमने के सिंगप्प गौड़जी के नौकर। किसानों में भी कुछ वहां आया-जाया करते थे। वे अपने-अपने पत्नी-बच्चों की भूख मिटाने का अपना कर्तव्य भूलकर, किसीकी चिंता किये बिना, अपनी मज़दूरी का धान, धन इस ताड़ी की दुकान में देकर अपने घर उन्मत्त हो लौटते थे। कई बार तलवार, छुरी, हंसुआ, कुदाल, फावड़ा आदि चुराकर लाते और दुकानदार को देकर खूब ताड़ी पी मदहोश होकर जाते।

अग्रहार के भगवान की मछली बगल में दबाकर निकला ओवय्य ने ताड़ी की दुकान जाने की सोची। क्योंकि वहीं से घर नजदीक पड़ता था, मतलब यह कि वह नजदीक का रास्ता था। अगर कोई जान-पहचान वाले मिलें तो कुछ फ़ायदा होने की दूर की आशा भी थी उसे। ताड़ी की दुकान तक आते-आते अंधेरा होने लगा था। घास की छत कुछ आगे झुकी थी। तो भी अंदर जलती बत्ती दिखाई देती थी। दुकान के भीतर और बाहर कुछ लोग इकट्ठे हुए थे। भीतर ऊंची ज़ात के लोग, बाहर नीची जाति के लोग थे। दुकानदार अपने बेटे के साथ ताड़ी-शराब बेचने में लग गया था। उसकी पत्नी भी ग्राहकों के लिए भीतर गोश्त, नमकीन मछली, अंडे आदि व्यंजन पदार्थ पका रही थी जो ताड़ी, शराब की बू के साथ-साथ आनेवाली बू से मालूम होता था।

वहां जो लोग जमा हुए थ वे सब ओवय्य को जानते थे। ओवय्य भी उनमें से बहुतों को पहचानता था। कुछ आंगन में झुंड-झुंड में बैठ, नमकीन मछली और गोश्त के टुकड़े खाते और बीच-बीच में ताड़ी पीते-पीते गप मारते, चीखते और चिल्लाते थे और खूब कहकहे लगाते थे। भीतर कुछ लोग ताड़ी-शराब पीने में और ताश खेलने में मशगूल थे। मुत्तल्ली का नंज अकेला एक पीढ़े पर बैठ, बायें हाथ में भुने मांस का कटोरा पकड़कर, मांस का एक-एक टुकड़ा खाते, बीच-बीच में आने वाली हड्डी थूकते, सामने रखी ताड़ी की हांडी को टकटकी लगाकर देख रहा था। जब वह ताड़ी की हांडी की ओर देख रहा था तब उसका जबड़ा सिर्फ चलता था। वह अपने घर में जो अनहोनी करके आया था उसका मन उसी को सोच रहा था। अब तक वह दो गिलास पीकर, तीसरा गिलास ताड़ी पीने के लिए तैयार हो रहा था। जब उसने ओवय्य की ओर देखा तब उसकी आंखों में खुमारी थी, क्रूरता थी। नंगा पेट फूल गया था। ओवय्य उससे बोला नहीं, मगर उसी ने बातें शुरू कीं।

"अजी! तुम्हीं कहो, मेरा क्या कुसूर है! मैंने बनवाके दिया था, उसे मैं मांगूं तो कहती है; उसका क्या जोर? अजी, तुम्हीं कहो तो! अच्छी तरह पकड़-पकड़ के घूंसे दिये। उसकी बहन को···हः हः हः," कहकर उसने सीने के कर्णफूल को अपनी कमर की धोती के किनारे में से जूठे हाथ से निकालकर दिखाया। नंज का नशा सिर को चढ़ रहा था।

उस दिन सवेरे चिन्नय्य के साथ मछली के शिकार के लिए जाकर, कानूर की गाड़ी के पीछे दुपहर में घर आया नंज शाम होते ही ताड़ी की दुकान की तरफ़ निकला। हाथ में न पैसे थे, न घर में अनाज। उसने पत्नी से कर्णकुंडल मांगे। उसने देने से इनकार किया। उसे खूब पीट पाट-कर, आभूषणों को ऐसे खींचा कि कान फट जाय, उन कर्णफूलों को लेकर वह ताड़ी की दुकान पर आया था। उन्हीं के बारे में उसने ओवय्य से कहा था।

इतने में दुकानदार वहां आया, नंज से कर्णकुंडल लेकर गया और उनको संदूक में रख दिया। नंज उसकी तरफ़ ग़ौर किये बिना, गिलास में बची-खुची ताड़ी पीकर, होंठ चाटते, दुकानदार को प्रशंसा की दृष्टि से देखते, "लो जी, ले लो, ले लो: मेरी कमाई, मैं पीना! हः! ह,! हः!" कहकहे लगाकर जोर से उसने कहा— "दे दो और एक गिलास!" दुकानदार के लड़के ने मांड मिश्रित ताड़ी लाकर गिलास में भर दी। नंज को परखने की इतनी प्रज्ञा नहीं थी कि कौन-सी सच्ची ताड़ी है और कौन-सी मांड मिश्रित ताड़ी है। वह कुछ अस्पष्ट बोलते हुए उसे पीना शुरू किया। उसके पेट पर ताड़ी चूकर पड़ी थी और धोती गीली हो गई थी।

ओवय्य को किसीने अपना अतिथि नहीं बनाया। साथ ही दुकानदार ने साफ़

कह दिया कि पहले का कर्ज चुकाये विना ताड़ी नहीं दी जायगी। ओवय्य को ताड़ी और गोश्त की खुशबू भली मालूम हो रही थी, उसके संयम को ढीली कर रही थी। उसने खुशबूदार हवा में प्राणायाम किया। मगर तृष्णा धीरे-धीरे तेज हुई। वगल में दवाकर रखी मछली को धीरे से वाहर निकाला, उसे दुकानदार को दिया। उसके वदले में ताड़ी देने की प्रार्थना की। लेकिन उसने यह नहीं वताया कि वह अग्रहार के भगवान की मछली है। दुकानदार ने मछली के एवज में थोड़ी ताड़ी दिलवा दी। उसे पीने के वाद और पीने का पागलपन सिर पर सवार हुआ। उसने जेव में से भगवान की मनौती का कंगन वाहर निकाला। उसे गिरवी रखकर, ताड़ी मांगते हुए कहा कि उसे रुपये देकर कुछ ही दिनों में छुड़ा लूंगा। दुकानदार ने खुशी से उसे लिया और ताड़ी दिलाई। वह अच्छी तरह जानता था अनुभव से, कि उसे छुड़ा लेना केवल कोरी वात है।

वाङ्मय मात्र वना दुकान का वातावरण धीरे-धीरे शब्दमय होता आया। इधर ताड़ी-शराव समाप्त होने को आई तो उधर मानव पशु वनते गए। अश्लील वातें, स्वच्छंद गालियां शुरू हुईं। ओवय्य भी खूव पीकर मस्ती से झूमने लगा। नंज ने पहनी धोती को खोलकर सिर पर वांध लिया और विकृत रूप से चिल्लाते हुए, भद्दे गीत गाते हुए वाहर निकला। आंगन में मारपीट भी शुरू हुई। तव रात के आठ वजे चुके थे। दिन में मुनि की तरह मौन वनी वह ताड़ी की दुकान उस रात को निशाचर की भांति भयानक, वीभत्स रसों से भर गई।

इतने में वाहर से कोई दो अछूत आये और ताड़ी मांगी।

दुकानदार ने कहा, "क्या रे वैरा, इस वक्त ?" आये हुए दोनों चंद्रय्य गौड़जी के चाकर थे। वेलर का वैरा और सिद्द।

"आज देर हो गई जी। केल कानूरु अण्णय्य गौड़जी की पत्नी को किसी कीड़े के काटने से सारा शरीर पीड़ा से तड़प रहा था। एक-एक रुपया दिया; तो वैसे ही यहां चले आए।" सिद्द ने कहा।

"क्या हुआ था उनको ?" पूछा दुकानदार ने।

"कुछ हुआ था, क्या, नहीं मालूम।···ताड़ी दे दो जी", कहा वैरे ने। उसके लिए तो ताड़ी मुख्य थी, मृत्यु के कारण मुख्य नहीं थे।

"ओवय्य गौड़जी ने सुना क्या रे?" कहकर दुकानदार ग्राहकों की सेवा में लग गया।

सिद्द की वात ओवय्य को तो सुनाई पड़ी मगर उसके संपूर्ण प्रभाव को ग्रहण करने की प्रज्ञा उसमें नहीं थी। "हाय रे ! गई क्या !" कहकर जोर-जोर से रोने लगा। उस रोदन में उन्माद था, मगर शोक नहीं था। ताड़ी से पैदा हुई मस्ती वाहर निकलने के लिए राह ढूंढ़ रही थी; उसके लिए मानो एक नाला मिल गया।

ओबय्य मस्ती से लड़खड़ाते हुए उठा। आंगन में उतरते समय लुढ़क पड़ा। फिर लड़खड़ाते उठा, रोता हुआ चल पड़ा और अंधकार के गर्भ में विलीन हो गया। मगर जो बचे हुए थे वहां उनका दिमाग ठिकाने होता तो उसे उस हालत में जाने न देते। लेकिन ताड़ी की दुकान में पीने, नाचने, चिल्लाने, मारने, पीटने की नदी में महापूर आया था।

१३

कानुवैलु की ताड़ी की चोर-भट्ठी

दुनिया रात को गहरी नींद में गुम होने की तैयारी कर रही थी। सूरज तभी पश्चिम में पर्वत विरचित दिगंत में अपराह्न का लाल-नीला रंग घोलकर मेंहों के हृदय के बीच अंतर्यामी बना था। अरण्यावृत गंभीर सह्याद्रि श्रेणियों की गिरि-कंदराओं पै रात की रानी अपनी साड़ी का काला अंचल धीरे से ओढ़ा रही थी। घोंसलों पर जाने वाली चिड़ियों का गीत समाप्त हो गया था। गोठ जाने वाले जानवरों का रंभाना थम गया था। उनके बदले पर्वत प्रदेश के गोधूली के झुटपुट के समय सुनाई पड़नेवाली ओंकार की भांति प्रांतभर में उमड़ पड़नेवाली हजारों मधुमक्खियों की झंकार की निरंतर नादवाहिनी या वारिधि बुलंद थी। पेड़ों की स्पष्टाकृतियां गायब हो जाने से उनका अस्फुटाकर धुंधला-धुंधला दीख रहा था।

कानूरु चंद्रय्य गौड़जी के घर के दक्षिण भाग में एक पर्वत के शिखर पर छोटी-सी आग जल रही थी। चारों ओर पेड़ उगे थे। वह स्थान जंगल की तरह था। तो भी वहां बड़ी-बड़ी चट्टानें थीं, पत्थर बिछे थे। उनके कारण वह स्थान मैदान-सा लग रहा था। दिन को वहां खड़े होकर देखने से बहुत दूर तक का प्रदेश दिखाई देता था। सीतेमने, मुत्तल्ली आदि के कई घरों को फैले जंगल में से ऊपर उठनेवाले धुएं से और सुपारी के बगीचों एवं खेतों आदि से पहचान सकते थे। आगुंबे का घाट, कुंद का पहाड़, कुदुरेमुख, मेरुति पर्वत आदि सह्याद्रि के भाग कई बार प्रातःकाल में वहां खड़े होकर देखने से नील वायुमंडल में पश्चिम नीलाद्रि के आगे खनिज लवण महाराशियों के जैसे सुंदर दिखाई देते थे। सूर्योदय और सूर्यास्त एवं चंद्रोदय दुगुने सुंदर बने हुए सुशोभित हो रहे थे। छुट्टी के दिनों में गांव आए हूवय्य और रामय्य के लिए तो वह स्थान नित्य संदर्शनीय सृष्टि सौंदर्य का स्थान बन गया था। देहातियों के लिए वह स्थान 'कानुवैलु' था चूंकि वे उसे 'कानुवैलु' ही कहकर पुकारते थे।

उस दिन उस झुटपुट के समय उस 'कानुवैलु' में सुलगती छोटी-सी आग कभी बुझती, कभी सुलगती, कभी-कभी बिलकुल प्रज्वलित हो जाती थी। मूढ़ देहाती कोई उसे देखता तो कहता कि वह लुआठी-भूत है। अगर उसे जानकर

देखते तो कहते कि वह 'दोंदि' (सुपारी या बांस की तीलियों से बनी मशाल) है। यदि धीर, कुतूहली आदमी वहां जाकर देखते तो सच्चाई दूसरी ही दिखाई पड़ती।

आग के पास, उसका कारण बनी एक मनुष्याकृति दिखाई पड़ती थी। और आगे बढ़कर जाने वाले को ताड़ी की बू आती। उसके और नजदीक जाते तो कानूर का हलेपैक का तिम्म दिखाई देता जो ताडी की भट्ठी सुलगाकर बैठा था और भट्ठी पर मटके में ताड़ी गरम हो रही थी।

तिम्म कभी आग को फूंकता झुककर, कभी खड़े होकर कानूरु की तरफ किसी की प्रतीक्षा में देखता, फिर किसी को न देख हताश हो बैठता। कभी-कभी खांसकर गला साफ़ कर लेता, अभ्यास के कारण मानों पेट, जांघ, पीठ खुजलाता, कभी-कभी निर्जनता, नीरवता के भार को दूर करने के लिए आवाज़ करता; इस तरह वह करते वहां बैठा था। फिर वह बीच-बीच में अपने आप कहता, "छिनाल के बच्चे कौन होंगे जो सारे जंगल को सड़क बना रहे हैं!", "करें। फिर 'मार्क' आयगा तो उनकी अच्छी मरम्मत कराऊंगा।" कहकर फिर से आग फूंकता। राख उड़ गई। चारों ओर के कूड़े-करकट को, लकड़ियों को भट्ठी में डालकर उसने फिर फूंका। धुंआं उठा, फिर एकदम आग भभक उठी, सुलग गई।

आस-पास के जंगलों में बगनी के पेड़ पर मटका बांधकर ताड़ी उतारना खानदानी पेशा था तिम्म का। उसे वह बाहर नही बेचता था। कभी-कभी ताड़ी ज्यादा निकलती तो चोरी से ताड़ी के दुकानदार को बेचता। आमतौर से उसकी ताड़ी कानूरु वालों को ही पर्याप्त नहीं होती थी। मगर चन्द्रय्य गौड़जी को रोज कानुबैलु में ताड़ी गरम करके लाकर देना पड़ता था। वह गौड़जी का नौकर था न? इसलिए मालिक के साथ मियां मिट्ठू बनकर रहता था। औरों की अपेक्षा गौड़जी भी अधिक आदर से उसे देखते। जब भी वह कर्ज मांगता देते, मांगा खेत जोतने के लिए मांगे बैल भी देते! कई बार तिम्म के काम के लिए अपने घर की गाड़ी, और बैल तथा नौकर भी दे देते थे। क्योंकि दूसरे काम करने वाले बहुत थे। मगर तिम्म की तरह ताड़ी उतारना कोई नहीं जानता था। वह उसकी जात का रहस्य था। बेलर, कुम्हार, मराठे, सेट्टजी, किसान इन सबको जाति परंपरा के अनुसार ताड़ी उतारने का अधिकार नहीं था। वह अधिकार था हलेपैकवालों का। इसीलिए कानूर में हलेपैक का तिम्म ही अकेला ताड़ी उतारने वाला सर्वाधिकारी था। यदि कोई धंधे में हाथ डालता तो वह जात से बाहर निकाला जाता था। उस दिन दुपहर को बेलर बैरे का रंगप्प सेट्टजी का पांव पड़ना, बगनी के पेड़ पर ताड़ी उतारने के लिए मटका बांधना बिना लाइसेंस के, इस राजकीय भय से नहीं था, मगर उससे जाति भ्रष्ट होने का सामाजिक भय का भी डर था।

तिम्म का इस धंधे में कोई प्रतिस्पर्धी नहीं था। उसको जितने पेड़ों से ताड़ी उतारने का लाइसेंस मिला था उनसे दुगने,तिगुने पेड़ों से तिम्म ताड़ी उतारता था। मगर कुछ दिनों से उसको जंगल में पगडंडियों का बनना दिखाई पड़ा। एक ओर जाकर वह देखता है: किसीने बगनी के पेड़ पर मटका बांध दिया है! वह कौन होगा? वह अनुमान न कर सका। सपने में भी उसने नहीं सोचा था कि बेलर बैरा वह काम कर सकेगा जिसे वह करता था। क्योंकि वह सोचता था कि बगनी के पेड़ पर चढ़ना, मटका बांधना और ताड़ी उतारने की कला उस बुड्ढ़ चमार को क्या मालूम? तिम्म इस घमंड में था कि वही नहीं, उसकी इक्कीस पीढ़ियां भी मिलकर यह काम नहीं कर सकेंगी। इसलिए तिम्म ने बैरे से कहा कि मैंने चोर-बगनी को देखा है। फिर उसने बैरे को ही चोर को पकड़ने का काम सौंपा। बैरा चोर को पकड़ने के काम में तिम्म का सहायक बना। बैरा और तिम्म दोनों ने बारी-बारी से पहरा दिया। मगर चोर नहीं मिला। बार-बार ताड़ी की चोरी होती ही रही। अंत में गुस्से के मारे तिम्म ने उस पेड़ के ताड़ी देने वाले बगनी के फूल को ही काट डाला।

कुछ दिनों के बाद बैरे ने फिर दूसरे बगनी के पेड़ पर मटका बांधा। उसी पेड़ के नीचे उसके लिए बंदूक की पूजा रंगप्प सेट्टजी करने वाले थे! वह पेड़ ऐसे स्थान में था कि आसानी से किसी को नहीं दिखाई देता था। लेकिन तिम्म उस दिन शाम को अपने बगनी के पेड़ों को देखकर ताड़ी उतार लाने के लिए जंगल गया, तब वह मटके को कसकर बांधने के लिए बगनी की शाखा को ढूंढ़ रहा था तो उसे बैरे का नया मार्ग भी दिखाई पड़ा। वहां जाकर देखता है: चोरी से बगनी पर मटका बांध दिया गया है! छिपाकर रखे बाबू दिखाई देने पर भी सी० ए० डी० को उतना आश्चर्य, आनंद और गुस्सा नहीं होता! मगर तिम्म को हुआ। बगनी के पेड़ पर बंधे मटके की रीत को देखकर तिम्म ने अनुमान किया कि जिसने पहले मटका बांधा था इसको भी उसी ने बांधा है। उसने तय किया, अबकी बार चोर को किसी न किसी तरह पकड़ना चाहिए।

शाम को 'कानुबैलु' में चंद्रय्य गौड़जी के लिए ताड़ी की भट्ठी उतारता हुआ तिम्म अपने देखे चोरी से बंधे मटके के बारे में सोच रहा था और अपने-आप बोलता था—"कौन होंगे? छिनाल के बच्चे! राह बना रहे हैं सारे जंगल में!" फिर बीच-बीच में यह भी कहता, "दूसरी बार 'मार्क' आवे तो कराऊंगा बन्दोबस्त।" तिम्म जैसे प्रतीक्षा कर रहा था, अंधेरा छा गया। सिर्फ दिगंत पर भूमि और आकाश के बीच अंतर दिखाई दे रहा था। आकाश के शरीर पर लाखों तारे ऐसे थे जैसे खुजली की सफेद फुंसियां हों। आकाश गंगा या अमृत पथ अच्छी तरह निहार लेने से शरीर पर पड़ने वाली राख-सी रेखा के समान तिम्म को दिखाई देता था। वह उस ओर नजर रखता और ताड़ी के मटकों

को भट्ठी से उतारकर, उसका मुंह पलाश के पत्ते से ढंककर, फिर उस पर एक कंकड़ रख, इधर-उधर अधीर हो घूमने लगा। जेब में सुपारी-पान थे, वह खाये बिना चुप था चूंकि ताड़ी पीने के बाद ही पान-सुपारी का सेवन करना चाहिये, अन्यथा ताड़ी के सेवन में लुत्फ़ नहीं रहेगा। ताड़ी तो पीना था, मगर गौड़जी नहीं आये थे। उनके लिए कम न पड़े, इस विचार से उसने पीने की इच्छा को दबा दिया था। यही नहीं, बल्कि गौड़जी अपने साथ कभी कभी किसी और को भी ले आते थे, दोनों को तुष्ट करना पड़ता था, नहीं तो घूंसे खाने पड़ते।

तिम्म अचानक कुतूहल से टकटकी लगाकर देखने लगा। 'कानुबैलु' के नैऋत्य में, करीब डेढ़ मील के फासले पर, कंदरा के पठार पर एक आग-सी दिखाई पड़ी। चारों ओर फैले अंधेरे में उसकी तप्त सुवर्णकांति देदीप्य हो, मनोहर बन गई थी। तिम्म के देखते-देखते वह आग बड़ी हो गयी। उसकी मनोहरता गायब होकर रौद्र बन गई। पहले स्थिर दिखाई पड़ती आग चंचल एवं विकट भीम-ज्वालामय हो गई और पागलों की भांति नाचने लगी। पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर देखने वाले तिम्म को शक हुआ—"क्या हो रहा होगा?" न जाने, उसने नया अनुमान किया; किसी झोंपड़ी में आग लगी होगी क्या? या घास की ढेरी को आग लगी होगी? या कोयले की ढेरी को आग लगी होगी क्या? या बांस के झुरमुट को? वहां तो कोई झोंपड़ी भी नहीं है। घास की ढेरी को आग लगती तो उसके गुच्छे उड़ते। बांस के झुरमुट को आग लगती तो उनके फटने की आवाज़ भी सुनाई पड़ती। कोयले की ढेरी को आग लगती तो वह लगातार इस तरह देदीप्यमान हो न जलती! सोचते-सोचते तिम्म अचानक चौंका! उसको दूसरा सत्य सूझा। आग जो जल रही थी वह कानूरु के श्मशान में ही न? केल कानूरु अण्णय्य गौड़जी की पत्नी बीमार थी! इसीलिए चंद्रय्य गौड़जी ताड़ी की इस चोर-भट्ठी पर, ठीक समय पर न आ सके होंगे। तिम्म ने फिर आग की ओर देखा। अबकी बार उसके सारे विचार और अनुमान उसकी दृष्टि में प्रत्यक्ष थे: कैसे आग विकटाकार में नाच रही है? वह सचमुच मुर्दे की आग है! उसमें भूत है! देखो, उस ज्वाला की विकाराकृति! उस आग के प्रकाश में कोई घूम रहा है न? तिम्म की भीतरी दृष्टि को लगा कि आग पर की लाश दांत निकालकर, अंगड़ाई ले जैसे उसकी हंसी उड़ा रही है। उसको उसकी सुनी भयानक कहानियां भी याद हो आई: मनुष्यों के घर जाने के बाद पिशाच आते हैं, अधजली-पकी लाश को उतारकर आपस में बांटकर खाते हैं, फिर नाचते हैं। उस समय जान हो तो भी उसको चीरकर खाते हैं! तिम्म को जंगल और जंगली जानवरों का भय नहीं था, मगर पिशाच कहते ही उसका लोहू ठंडा पड़ जाता। अंधेरे में जंगली पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर श्मशान की आग को देखने वाले तिम्म को ऐसा लगा जैसे उसके चारों ओर भूत खड़े होकर उसकी तरफ आशाभरी दृष्टि से ताक

रहे हैं। सारा अंधेरा पिशाचों की आंखों से खचाखच भर गया। इतने में उसके पास पट्पट्-सी आवाज़-सी हुई और कुछ विकृत चीख सुनाई पड़ी। तिम्म को तव लगा कि उसकी धमनियों में रक्त के वदले अंधेरा मानो वह रहा है। अगर वह तव अनुद्विग्न होता तो उसे मालूम होता कि वह एक अंधपंछी की चीख है। लेकिन चौंके मन को विकृति ही दीखेगी, प्रकृति का दीखना दुर्लभ है। तिम्म डर-कर देखता है: पेड़ों के वीच में कुछ सफेद-सा खड़ा है! वह दूर का आकाश है, यह उसके विचलित मन को नहीं मालूम हुआ। तिम्म ताड़ी और मग वहीं छोड़-कर घर की तरफ भागने लगा।

कुछ ही दूर भागा था कि किसी ने उसको पुकारा। तिम्म और भी घवराकर धीरे से दौड़ने लगा। फिर जोर की पुकार सुनाई पड़ी। चंद्रय्य गौड़जी की ध्वनि का पता लगा। वह खड़ा हो गया। रंगप्प सेट्टजी और चंद्रय्य गौड़जी पास आकर वोलने लगे, तभी तिम्म की जान में जान आ गई। छाती मजवूत वन गई।

"कहां जा रहे हो?" पूछा गौड़जी ने।

"आप आयेंगे कि नहीं, सोचकर घर जा रहा था।" कहा तिम्म ने।

फिर तीनों 'कानुवैलु' लौटे। अव तिम्म को श्मशान की आग, अंधे पंछी की चीख, पेड़ों के वीच का आकाश भयंकर नहीं दीख पड़े। अण्णय्य गौड़जी की पत्नी की मृत्यु, चंद्रय्य गौड़जी का अपने चाकरों के साथ श्मशान जाकर दहन कार्य में सहायता पहुंचाना, अतः देर होने से अपने साथ सेरेगारजी को लाना, तिम्म को सव मालूम हो गया। तिम्म ने गरम-गरम ताड़ी कटोरों में भर दी, गौड़जी और सेरेगारजी मस्त मजे में पीते जाते और वीच-वीच में वोलते जाते।

"तुमने कहां देखा?" गौड़जी ने पूछा।

"वहां उस उभार के परे।" कहकर सेट्टजी ने जंगल-पहाड़ों की दिशा की ओर हाथ के इशारे से दिखाया।

"लकड़ी के टुकड़े काटने वाले सिंगप्प गौड़जी ही हैं, सो आपको कैसे मालूम हुआ?"

"वे सभी वढ़ई हमारे गांव के ही हैं न? सव कुछ वता दिया उन्होंने मुझे।"

"तो फिर एक काम कीजिये। कल नौकरों को लेकर जाइए और जितने हो सके उतने टुकड़ों को ढुलवाकर लाइए। फिर जो होगा, मैं देख लूंगा।

"महाशयजी, किसीने जंगल-भर में चोरी से वगनी के पेड़ पर मटके वांध दिए हैं! परसों एक एक फूल को काट दिया है। आज देखता हूं दूसरा कट गया है।" कहकर वीच में तिम्म ने शिकायत की।

"कौन है, तुम जानते हो?"

"कैसे कहूं कि कौन है?"

सेरेगारजी चुप थे। एक बार बैरे का नाम बताकर, उस दिन अपना अनुभव सुनाने की इच्छा हुई, सत्य बुद्धि से नहीं, साहस की बुद्धि से। लेकिन बैरे ने उनको ताड़ी देकर, उनके पांव पड़कर उनकी जीभ को ताला लगा दिया था।

"और एक बार 'मार्क' आवे तो वह पेड़ दिखाना। वही चोर को पकड़े।" कहकर गौड़जी चुप हो गये।

मगर तिम्म ने दीन वाणी से कहा, "मगर मैंने भी बिना लैसेंस के एक-दो पेड़ों पर मटका बांध दिया है न। उसको जंगल में ले जाऊं तो वह देख लेगा, मेरी पोल भी खुल जायगी तब !"

"कोई परवाह नहीं रे ! उसके लिये क्या ? मैं कह दूंगा। उसका हाथ गरम कर दिया तो बस, काम बन जायगा। उसके बाप की गठरी कहां जाती है। पेड़ जंगल का, बांधने वाला तू !" कहकर गौड़जी ने तिम्म को धीरज बंधाया।

दूर कंदरा के पठार पर सुलगती आग को देखते सेरेगारजी चौंक पड़े। हाथ में ताड़ी का जो कटोरा था नीचे गिर पड़ा। उन्होंने जो शव देखा था उसका चित्र याद हो आया और उससे वे भयग्रस्त हो गये थे। उनका विश्वास था कि घाट के नीचे जीवंत रहने वाले ठग हैं और घाट के ऊपर रहने वालों को, उनके मरने पर विश्वास नहीं करना चाहिये। घाट के ऊपर के 'भूत' से घाट के नीचे रहने वाले बहुत डरते थे। इसीलिए सरकार के कानून, पुलिसवाले, जेल भी उनको झुकाकर न्यायमार्ग पर नहीं लगा सकते थे। मगर पर्वत प्रदेश के लोग उनको अपने 'भूतों' द्वारा न्याय के पथ पर ले आतेथे।

सेट्टजी की हालत देखकर चंद्रय्य गौड़जी को भी कुछ डर-सा लगा और पूछा, "क्या हुआ जी ?"

सेट्टजी ने "कुछ नहीं" कहकर उठके आकाश की ओर और अंधकार की तरफ ताककर कहा, "आज अमावस्या है न ? देर हो रही है, घर जायं।"

उनके स्वर तथा बातों का अर्थ सबको, जो वहां थे, मालूम हो गया। उसके बारे में न बोलते, दूसरे विषय पर बोलते वे घर की ओर रवाना हुए। इतने में बैलगाड़ी के बैलों के गले में बंधी घंटियों का स्वर अंधकार के मौन में मृदु-मधुर बनकर, माला-माला बनकर, बूंद-बूंद बनकर, लहर-लहर बनकर सुनाई पड़ा। लेकिन उसे सुनने वाले चंद्रय्य गौड़जी को हर्ष के बजाय ज्यादा गुस्सा आया। दुपहर तक ही आनेवाली गाड़ी, रात तक नहीं आई, यही उनके गुस्से का सबब था। यही नहीं, उस दिन सवेरे से घटी एक-एक-घटना—ज्योतिषी के रहते रसोई घर में हुए झगड़े की चिल्लाहट, अप्पय्य गौड़जी को रुपये दिए बिना लौटाना, फिर पुट्टन का शिकायत करना, खुद का अपनी पत्नी को पीटना, तीर्थहल्ली गई गाड़ी का समय पर न लौट आना, सिंगप्प गौड़जी का चोरी से जंगल में लकड़ी के टुकड़े कटवाना और उसकी खबर सेट्टजी द्वारा लगना, अप्पय्य गौड़जी की पत्नी

की दहन-क्रिया में नौकरों के साथ जाकर मदद पहुंचाने से हुई थकावट—गौड़जी के मन में हलचल मचा रही थी। उनके मन में समाधान नहीं था। वे तीनों अंधेरे में पत्थर-कांटों की राह पर एक मिनट पर एक कदम रखते, ठोकर खाके आगे बढ़े। घर के पास आते ही गौड़जी को कुत्तों की चिल्लाहट के साथ मनुष्य के रोदन सुनाई पड़ा तो वे घबरा गये।

"कौन हैं जी रोनेवाले?" गौड़जी ने पीछे आने वाले सेरेगारजी से पूछा।

सेरेगारजी रुके, थोड़ी देर तक सुनकर बोले—"कम्बख्त कुत्ते! कितना भौंकते हैं?"

तिम्म ने कहा, "ध्वनि नागम्माजी की-सी लगती है।"

तीनों फिर आगे बढ़े। फाटक पर आये। भीतर से "हाय रे भगवान, सत्यानाश तेरे मंदिर का हो!···तेरी आंख फूट जाय!···मैंने क्या किया था तुझको? ···उनको खा लिया, तो भी तेरा पेट न भरा? एक लड़का जो था, उसको भी तोड़ लिया!···सत्यानाश हो तेरे मंदिर का! आदि गालियां, शाप", आर्तनाद आकर भयंकर हो सुनाई पड़े। भीतर जाकर गौड़जी देखते हैं; बैठकखाने के दिये के मंद प्रकाश में आंगन में तुलसी के चबूतरे के पास नागम्माजी खड़ी होकर शाप देती, रोती बार-बार अपना सिर पत्थर के चबूतरे पर मारती अपने दोनों हाथों से सिर और छाती को पीटती शोकमूर्ति बनी हुई हैं। बगल में पुट्टम, वासु दोनों रोती हुई उनको तसल्ली देते खड़े हैं। थोड़ी दूर पर खड़े होकर पुट्टण्ण भी उनको तसल्ली दे रहा है।

१४

नया-पुराना मिलें तो

तय हो गया था कि कानूरु की गाड़ी मुत्तल्ली से तीसरे पहर में रवाना हो जाय। यह भी तय हुआ कि हूवय्य मुत्तल्ली में ही रहे तब तक, जब तक उसका पीठ का दर्द कम न हो जाय। पीठ का दर्द कम हो जाने पर ही वह कानूरु जाय। मगर रामय्य को एक-दो दिन और बड़े भाई के साथ रहना चाहिये। सिगप्प गौड़जी को कम से कम उस दिन तो वहां रहना ही चाहिए। इससे चिन्नय्य को बड़ी खुशी हुई कि मित्र बहुत समय तक घर में रहेंगे। उसने इसे बड़ा सुयोग समझा। निंग और पुट्टण्ण गाड़ी जोतकर निकलने वाले ही थे कि काला दौड़कर आया और कहा कि अग्रहार के ज्योतिषी वेंकप्पय्यजी आ रहे हैं। अतः थोड़ी देर और ठहर जाएं।

कानूर से निकले ज्योतिषीजी अग्रहार जाकर भोजन करके सीधे मुत्तल्ली गये थे—श्यामय्य गौड़जी से कुछ रुपये ऐंठने थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने मुत्तल्ली की यात्रा की थी। साथ में भगवान का प्रसाद भी ले गये थे। बैठकखाने में सोये हूवय्य को देखकर उनको एक प्रकार की जुगुप्सा हुई। क्योंकि वह उनके व्यापार की पूंजी की तरह रहे देहातियों की मूढ़ता को दूर करने का प्रयत्न कर रहा था, जो ज्योतिषी के लिए असहनीय हो गया था। वे भली भांति जानते थे कि उनसे भी—ब्राह्मण से भी—हूवय्य, जो उनकी दृष्टि में शूद्र था, अधिक उपनिषद, भगवद्गीता को जानता है। इसलिए उसके बारे में एक प्रकार से उनको डर भी था। अंत में, कुछ भी बोले बिना, अपना प्रसाद बांटा। हूवय्य ने भी उसे नम्रता से स्वीकार किया। हूवय्य की स्थिति को जानकर ज्योतिषीजी ने श्यामय्य गौड़जी से कहा—"हम हूवय्य के पीठ का दर्द मंत्र से दूर करेंगे, तावीज़ बांधेंगे, ग्रहगति को ठीक बना देंगे।" गौड़जी विरोध में कुछ भी नहीं बोले। ज्योतिषी की बातों के प्रति अपनी सम्मति प्रकट करते हुए हूवय्य को ज्योतिषीजी के अनुग्रह के बारे में गौड़जी ने सुनाया तो हूवय्य ने हंसकर मज़ाक उड़ाया। ज्योतिषीजी और उसके बीच में गरमा-गरमी की दो-चार बातें हुईं। ज्योतिषीजी का मुख मलिन हुआ। सिगप्प गौड़जी और श्यामय्य गौड़जी ज्योतिषी के पक्ष में बोलने लगे। पहले

विनोद में शुरू हुई चर्चा आखिर-आखिर में विपाद से बदलने लगी।

ज्योतिषीजी ने नाराज होकर कहा, "ऐसी बुद्धि अच्छी नहीं हूवय्य, तेरे लिए। प्राचीनकाल से चलते आये हुए आचार-विचार, भगवान, वेद, शास्त्र, सब इन-कार करने वाले तेरी बुराई हुए बिना नहीं रहेगी।"

हूवय्य ने भी ज़ोर से कह ही दिया, "आप अपने को बड़े जानकार समझकर देहातियों को अज्ञान, मूढ़ता का उपदेश देकर, सगुन बताकर, भस्म देकर, सत्यनारायण का व्रत कराकर, भूत-पिशाच को बलि दिलाकर अपना पेट पाल रहे हैं। ट्रंक के लगने से जो दर्द हो रहा है उससे मुक्ति पाने के लिए दवा सुझाने के बदले शंख, कुंकुम लगाकर, मंत्र डलवाने के लिए कह रहे हैं न आप! यह किस तत्त्वशास्त्र में कहा गया है? अगर ऐसे उपाय बताने वाले ग्रंथ हों भी तो वे मान्यता के योग्य हैं? आपके उपदेश से कितने ही लोग अच्छी तरह दवा वगैरह न लेकर, सिर्फ राख, भस्म, विभूति लगाकर जान गंवा ले रहे है···"

"अरे, तेरे पिताजी कितने आदर, गौरव से पेश आते थे! उनको भगवान के प्रति कितना भय था! कितनी भक्ति थी! जब तू छोटा था तब मैंने ही कितनी बार चिट्ठी-विभूति तेरे गले में, तेरी बांह पर बांध दी है!···" इत्यादि कितनी ही पुरानी कहानियां ज्योतिषीजी ने सुनाईं।

पिता की याद से हूवय्य ज़रा ठंडा पड़ गया। नम्र वाणी से फिर कहा—

"ज्योतिषीजी, कृपा करके मुझे क्षमा कीजिये। मैंने जो बातें कहीं वे आपको अपमानित करने के लिए नहीं थीं। आपके तत्त्वों से लोगों की कितनी हानि होती है, केवल इतना ही बताने के लिए कही थीं, बस! आपके मन में कृत्रिमता नहीं है, इतने-भर से आपका कहना सभी सत्य नहीं हो सकता।···हमारे पिताजी श्लेष्म ज्वर से जब पीड़ित थे तब आपकी पूजा, आपके मंत्र-तंत्र के लिए ही न वे आंगन में आकर तुलसी के चबूतरे पर बैठ गये; उनको ठंडा पानी, ठंडी हवा के लगने से रोग का प्रकोप बढ़ गया, आखिर वे चल बसे! अस्पताल में ऐसे रोगियों को घूमने-फिरने देते हैं? आपने तो सदुद्देश्य से ही वह काम किया।···परंतु सदुद्देश्य अज्ञान को सुज्ञान नहीं बना सकता।···मैं अब बोल नहीं सकता···कृपया क्षमा करें···आपके प्रति मुझमें अगौरव है, यह न समझें···मेरे पिता के सम्मान प्राप्त आपका भी मैं सम्मान करता हूं।···"

सीता पानी गरम कर लाई। चिन्नय्य-रामय्य हूवय्य की पीठ को सेंकने लगे। सिगप्प गौड़जी, श्यामय्य गौड़जी और ज्योतिषी महोदय किसी दूसरे विषय पर बोलने लगे थे।

इतने में धाड़ें मारकर रोने की आवाज़ बाहर से सुनाई दी। सभी घबराकर "क्या? क्या?" कहते बाहर आये। कुम्हार नंज की स्त्री ज़ोर से रोती आंगन में

आई। उसका कान फट गया था। लोहू बहकर साड़ी पर टपक रहा था। गाल, हाथ सब रक्तमय था। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि उसका पति उसे पीटकर कर्ण-कुंडल छीनकर ताड़ी की दुकान गया है। श्यामय्य गौड़जी बिगड़कर नंज को पकड़ लाने के लिए काले को और पुट्टण को भेजा। पर नंज वहां नहीं मिला। "उसको घर आने दो; उसकी हड्डी-पसली तोड़ दूंगा।" कहकर, उसके कान पर लगाने के लिए नारियल का तेल दिलाकर, धीरज बंधाकर भेज दिया।

सांझ हो गई। ये सब कांड समाप्त होते-होते अंधेरा छाने लगा। ज्योतिषीजी को यह मालूम होने पर कि गाड़ी को हांकने वाला चमार नहीं है, वे गाड़ी में चढ़ बैठे। पुट्टण्ण गाड़ी के पिछले भाग में ज्योतिषीजी से कुछ दूर पर बैठ गया। गाड़ी कानूर के लिए धीरे-धीरे रवाना हुई।

गाड़ी ताड़ी की दुकान के पास आ रही थी कि रास्ते के बगल में अंधेरे में एक आदमी दिखाई दिया जो सफेद मील के पत्थर के पास खड़े होकर मनमाने गाली बकते, थूकते, मील के पत्थर को घूंसे दे-देकर लात मार रहा था। गाड़ी और आगे बढ़ी तो उसमें बंधी लालटेन के प्रकाश में मालूम हुआ कि वह आदमी नंज है। उसको इस ओर का ध्यान नहीं था। पीकर सुस्त हो गया था। उस मील के पत्थर को अपनी पत्नी समझकर या शत्रु मानकर लात मारकर मुक्के से पीट रहा था। निग गाड़ी रोकना चाहता था। लेकिन ज्योतिषीजी ने घबराकर कहा, "मत रोको। आगे हांको।" थोड़ी दूर जाने के बाद वे गाड़ी से उतर गये और जोर से भगवान के नाम का लगे जप करने ताकि भूत-पिशाच सुनकर रास्ते में बाधा उपस्थित न कर सकें; फिर वे अग्रहार जाने वाली पगडंडी पर अग्रसर हुए। जाते समय गाड़ी की लालटेन ले ली, कल भिजवा दूंगा कहकर। क्योंकि अंधेरे में पगडंडी पर जाना था; उनको और रोशनी की जरूरत थी।

ज्योतिषी से विदा लेकर गाड़ी आगे बढ़ी। अंधेरा होने पर भी सड़क का निशान बैलों को अच्छी तरह दीख रहा था। इसलिए वे जल्दी-जल्दी चलने लगे। इसके अलावा उनको कुलथी की याद प्रबल हो गई थी, चाबुक की मार से भी प्रबल। घर में उबाली गरम-गरम कुलथी अपने लिए तैयार मिलेगी, यह बात उनको अभ्यास की महिमा से मालूम हो गई थी।

गाड़ी ताड़ी की दुकान को पार करके थोड़ी दूर ही गई थी। जंगल कुछ घना था, इसलिए आदमी की आंखों को रास्ता साफ़ नहीं दीखता था। अचानक रात के नीरव मौन को मथित करने वाली घंटियों की ध्वनि एकाएक बंद हो गई। बैल रुक गये थे। गाड़ी भी रुकी थी। बैलों का श्वासोच्छ्वास केवल सुनाई दे रहा था। अन्यमनस्क हो गाड़ी में बैठे हुए निग ने जागकर बैलों को हांका। लेकिन वे नहीं हिले। चौंककर सांस ले रहे थे। चाबुक से मारा। बैल वहीं नाचे। घंटियों की आवाज हुई। मगर बैलों के आगे बढ़ने की आवाज कान में नहीं पड़ी। निग

और पुट्टण को वड़ा अचरज हुआ। अनुमान किया कि कहीं वगल में वाघ वैठा होगा। निग तो गाड़ी से नीचे ही नहीं उतरा मगर पुट्टण नीचे उतरकर गाड़ी के आगे गया। रास्ते के वीच में उसके पैर को कुछ गरम-सा लगा। झुककर देखता है; मनुष्य की देह! रास्ते में आड़ी होकर गिर पड़ी है! इसीलिए वैल आगे नहीं जा रहे हैं! निग से दियासलाई लेकर पुट्टण्ण उसे सुलगाकर देखता है; केलकानूर गौड़जी का पुत्र ओवय्य! शराव पीने से होश गंवाकर पड़ा है! दोनों ने मिलकर उसे गाड़ी में डाल लिया।

गाडी कानूरु के पास आ रही थी कि दूर से घंटियों की आवाज सुनकर वासु और पुट्ट दोनों ही फाटक पर आये। वासु को तो हूवय्य एवं रामय्य के स्वागत करने में वड़ी खुशी और वड़ा उत्साह हुआ मगर पुट्टण्ण से सारी वातें मालूम हो जाने पर उसके सारे उत्साह पर पानी फिर गया। वह खिन्न हुआ। आशा वुदवुदे की तरह फट गई। अंदर भागकर गया और पुट्टण्ण से जो कुछ सुना था उसे वड़ी मां और वड़ी वहन को सुना दिया उद्वेग से। लड़का था, वोलने में सावधानी नहीं रही। कह दिया, "गाडी गिर पड़ी, हूवय्य की पीठ की हड्डी टूट गई है। रामय्य भी हूवय्य के साथ वहीं मुत्तल्ली में है।" उसके सुनाने में अत्युक्ति थी। तुरंत नागम्माजी लगी जोर से रोने। अपनी छाती पीटते हुए भगवान को, चंद्रय्य गौड़जी को, सुव्वम्म को मनमाने जो मुंह में आये वह शाप देते आंगन में आई, तुलसी के चवूतरे से सिर पीटने लगी। ठीक उसी समय 'कानुवैलु' में ताड़ी पीकर चंद्रय्य गौड़ जी और सेरेगारजी तिम्म के साथ नागम्माजी की गालियां सुनते घर में दाखिल हुए।

१५

छिपकली की कृपा

अमावस्या का अंधेरा सारे जंगल और देश पर छा गया था। सब कुछ स्याह बन गया था। मेघ रहित आकाश में अनगिनत तारे उज्ज्वल प्रभा से चमकते थे। मुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी के दीवानखाने के उज्ज्वल दिये पर मोहित हो चार-पांच जुगनू उड़ रहे थे। सिंगप्प गौड़जी, श्यामय्य गौड़जी तथा रामय्य बातें करते बैठे थे। बातचीत का विस्तार मैसूर से लेकर बैलुकेरे तक फैला था।

लक्ष्मी अंदर से दौड़कर, पिता के पास जा रही थी। बीच में सिंगप्प गौड़जी ने उसे पकड़कर बिठा लिया। उनकी गोद में पहले उसने संकोच दिखाया, फिर थोड़ी देर में 'सीतेमने सिंगप्प मामा' से अधिक खुलकर, प्यार से बोलने लगी। बातें तो विविध एवं विचित्र थीं। बच्चों से हंसी-मजाक करना सिंगप्प गौड़जी को ज्यादा ही पसंद था। वे महाभारत, रामायण की कहानियां बड़े रोचक ढंग से सुनाते थे। इसलिए वे बच्चों के प्यारे थे। लक्ष्मी और सिंगप्प गौड़जी की विनोदी बात-चीत में बीच-बीच में हिस्सेदार बनकर दूसरे भी हंसते थे।

सिंगप्प गौड़जी ने पूछा, "लक्ष्मी, तू अपनी मां की बेटी है या अपने बाप की?'

लक्ष्मी ने कहा, "अपनी मां की बेटी हूं।"

"किसने बताया तुझको? मेरी आंखों के आगे ही तेरे बाप ने एक मन सुपारी देकर तुझे खरीद लिया है कंदारे के हाथ से! तू अपनी मां की बेटी नहीं है। अपने बाप की बेटी है।"

लक्ष्मी ने भौंहें सिकोड़कर कहा, "ऊं हूं, न, न! मैं तो अपनी मां की बेटी हूं!"

"जाने दो; तेरे पिताजी तेरी मां के क्या लगते हैं?"

"पिताजी लगते हैं।" कहा लक्ष्मी ने। उसकी दृष्टि में उसका उत्तर संपूर्ण सत्य था। मगर सब खूब हंस पड़े तो उसका मुंह फक पड़ गया।

"जाने दो! तेरी मां तेरे पिताजी की क्या लगती हैं? इसका सही जवाब देना, हां।"

लक्ष्मी जवाब देने में हिचकिचाने लगी। तब सिंगप्प गौड़जी ने कहा, "मां

लगती है न ?"

लक्ष्मी ने कहा, "हां।"

"तो तेरी मां तेरी और तेरे पिताजी की मां बनी न ?"

"हां," कहा लक्ष्मी ने। सभी हंस पड़े।

लक्ष्मी किसी तरह सिगप्प गौड़जी का मन-दूसरी ओर खींचने के लिए उनका ओढ़ा दुशाला पकड़कर बोली," यह पिताजी का दुशाला है।"

"अच्छी लड़की ! मैं आज इसे तीर्थहल्ली से लाया हूं।"

"हां, खूब जानती हूं मैं, यह पिताजी का दुशाला है।"

"कैसे जानती हो ? नाम लिखा है क्या इस पर ?"

लक्ष्मी दुशाले को अपनी नाक के पास पकड़कर बोली, "पिताजी की बू आती है इससे, देखिये तो !"

सभी ने ज़ोर से कहकहे लगाये। लक्ष्मी पहले अप्रतिभ हुई, फिर आखिर वह भी खिलखिलाकर हंसी।

चिन्नय्य ने भीतर से बाहर आकर रामय्य को बुलाया। दोनों हूवय्य के कमरे में गये जहां वह सोया था। बैठक में भीड़ हो जाने से उसको सीता के प्रसाधन के कमरे में भेजा गया था शाम को। सीता भी बड़े चाव से तीमारदारी में सहायक बनी थी।

चिन्नय्य-रामय्य दोनों ने मिलकर हूवय्य की पीठ को गरम पानी से सेंका। दवा का तेल अच्छी तरह मल दिया। बीच-बीच में हूवय्य दर्द के मारे 'हाय-हाय' करता था। पास में खड़ी सीता को तो ऐसा लगता था कि खुद उसी को दर्द हो रहा है। वह मन ही मन में कह लेती 'ये उनको क्यों पीड़ा दे रहे हैं ? मैं होती तो इस तरह से तेल से मालिश करती कि दर्द न हो।' बीच-बीच में अपने बड़े भाई को न जाने क्या-क्या सलाह धीमी आवाज़ में देती थी। वह भी सीता की सलाह के अनुसार मुस्कुराते करता था। सीता बार-बार सलाह देने लगी तो उसने उकताकर एक बार कहा, "बस; चुप रहो जी ! बड़ी आई डाक्टरनी !" वह अपमानित-सी होकर खड़ी रही। खिन्न होकर रामय्य ने भी उसे घूरकर देखा। लाज के मारे उसने अपना सिर झुका लिया। बहुत दिनों के बाद उसकी खूबसूरती को देखे हुए रामय्य के मन में एक प्रकार की कसमाहट हुई। वह फिर हूवय्य की तरफ घूमकर अपने काम में लग गया। उसके दिल में दूर की एक आशा अंकुरित हुए बिना न रही।

उपचार का काम समाप्त हो जाने पर सब मिलकर थोड़ी देर बातचीत करते थे। चिन्नय्य ने बताया कि गाड़ी के उलटने के बाद वह बैलुकेरे कैसे आया। बीच-बीच में विनोद भी होता रहता था। गौरम्माजी आईं, हूवय्य से दर्द के बारे में पूछा, फिर सीता के कान में कुछ कहा। मां-बेटी दोनों गईं। थोड़ी देर में ही

हूवय्य के भोजन के लिए सभी तैयारी करके आई। साथ में काला भी कुछ बर्तनों में भोज्य पदार्थ रखकर ले आया था किंकर बनकर। इतने में सिगप्प गौड़जी का अपने प्रिय काव्य जैमिनी भारत का वाचन सुन पड़ा। चिन्नय्य और रामय्य दोनों हूवय्य की आज्ञा लेकर चौपाल गये। गौरम्माजी ने सीता की सहायता से हूवय्य को तकिये के सहारे बिठाया, फिर उसके सामने एक पीढ़े पर पीतल की तश्तरी पर केले का पात बिछाकर, उसपर भोज्य पदार्थ परोसा हूवय्य सास से बातें करते, बार-बार सीता की ओर हंसमुख होकर कनखियों से देखते भोजन करनेलगा। उन दोनों के दृष्टि संगम के क्षेत्र में संकोच भी प्रेम के साथ यात्रा पर आया था।

इधर चौपाल में लक्ष्मी थोड़ी ही देर में भारत वाचन से उकता गई और कुछ गड़बड़ करने लगी। श्यामय्य गौड़जी ने काले को बुलाकर उसे अन्दर ले जाने को कहा। उसने हठ किया, "मैं नहीं जाती।" मगर काला उस रूठी; शंकर प्रतिवाद करती हुई लक्ष्मी को जबरदस्ती उठाकर गौरम्माजी के पास लाया। सीता ने उसे चुप कराने का प्रयत्न किया। हूवय्य ने भी कुछ लाड़-प्यार की बातें कीं पर लक्ष्मी ने रोना बंद नहीं किया। आखिर गौरम्माजी तनिक नाराज होकर उसे उठाकर रसोई घर में चली गई। सीता ने धीरे से काले से कहा, "मैं देख लेती हूं; यहां तुम जाओ। जरूरत पड़ी तो बुला लूंगी।"काला भी कुछ बर्तन उठाकर रसोई घर ले गया।

लक्ष्मी रसोई घर में अभी तक रो ही रही थी। गौरम्माजी उसे मीठी पोली देकर चुप करने को कोशिश कर रही थीं। लक्ष्मी ने पोली को दूर फेंक दिया। मां को गुस्सा आया, उन्होंने एक घूंसा जमाया। बेटी रोती हुई दूर जाकर एक खंभे के कोने में सिकुड़कर बैठ गई। माता का दिल पिघल गया। प्यार से उन्होंने उसे कई बार बुलाया, तो भी वह उठकर माता के पास नहीं गई। उसने रोना बंद न किया। आखिर वह रो-रोकर उकता गई और खुद ही चुप हो गई। उधर मां पुरुषों के भोजन के लिए केले के पत्ते बिछाने में लगी थी। लक्ष्मी मां के बुलावे के इन्तजार में थी। मगर मां ने नहीं बुलाया। उसके अहम् पर बट्टा लगा। फिर रोने लगी। उस रुदन में केवल ध्वनि थी, शोक का भाव कुछ भी नहीं था। बहुत देर होने पर भी मां ने नहीं बुलाया तो वह रुदन की ध्वनि में ही 'फिर बुलाओ तो आऊं, फिर बुलाओ तो आऊं' की सूचना देने लगी। माता का न बुलाना उसने अपना अपमान समझा, मगर गिड़गिड़ाकर सूचित करना 'फिर बुलाओ तो आऊं' और भी अपमानजनक है, उसकी समझ में आया ही नहीं। गौरम्माजी ने बच्ची को गोद में उठाया और मुस्कुराती, उसे चूमती हुई, उसे पोली का नैवेद्य चढ़ाया। काला तो अपनी हंसी को न रोक सका। गौरम्मा जी ने यह संदेह करके कि कहीं न फिर रोना न शुरु कर दे, काले को आंखों द्वारा गाली देने, धमकाने का नाटक किया। लक्ष्मी तृप्त होकर तन्मयता से पोली खाने लगी।

पहले की-सी आजादी से हूवय्य से बोलने में अनुकूलता होगी, इस अभिसंधि में सीता ने काले को उपाय से कमरे से बाहर भेजा था। लेकिन काले के जाने के बाद उसके हृदय में कसमसाहट शुरू हुई। पहले कभी जिसका अनुभव न किया था वह लज्जा आई। उसको इसके पहले मालूम नहीं हुआ था कि कालमातिने ने अपने जीवन में एक नूतनता को ला दिया है। हूवय्य से पहले वह कितनी धीरता से सीधे पेश आई थी! लेकिन उसको वैसे आज पेश आने में, उससे बातें करने में संकोच होने लगा। मगर मन तो बोलने के लिए लालायित था। दो-तीन बार कोशिश भी की। मगर उसका प्रयत्न उद्वेगजन्य मौन में बदल गया। उसके मूंह पर लाली चढ़ गई, पसीने से चेहरा तर हो गया। भोजन करने वाले हूवय्य को देखा, मगर पहले की तरह नहीं दीखा। सौंदर्य-पौरुप उसमें पहले की अपेक्षा अधिक दिखाई दिये और वह अलौकिक पुरुप-सा दिखाई दिया। सीता में हूवय्य के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक अनुराग बढ़ा। परंतु अनुराग के साथ भयमिश्रित सम्मान भी मिल जाने से वह पहले की तरह आजादी के साथ उससे न बोल सकी। यदि हूवय्य पीठ के दर्द के मारे शुश्रूषार्ह न होता तो सीता शायद साथ अकेली न रहती और चली भी जाती क्या पता! लेकिन अब भोजन करने में लगे रोगी को अकेले छोड़ जाना उसे उचित नहीं लगा; अतः वह चुपचाप वहां खड़ी रही। इतना ही नहीं, उद्वेग या उत्कंठता में उसे हर्ष हुए बिना न रहा। एक बार काले को बुलाना चाहा—पर, फिर चुप हो गई। संकोच और परिसर किसी तरह दूर होंगे, अपनी आकांक्षा पूरी होगी, यह दूर की आशा भी उसमें थी। उसने सोचा कि वह खुद बोल न पायेगी तो हूवय्य कम से कम बोलने लगे, लाचार होकर वह बोलने लगेगी। चौपाल में भारत वाचन करते सिगप्प गौड़जी की वह राग-ध्वनि मानो सुन रही है, इस दीवार से सटकर कुछ दूर खड़ी रही।

भोजन तो हूवय्य कर रहा था, परंतु उसकी दृष्टि सर्वव्यापी थी। सीता का काले को बाहर भेजना उसको भी अर्थपूर्ण लगा। वह भी सीता से बोलना चाहता था। मगर वह चाह उत्कंठित नहीं हुई थी। बचपन से हमजोली बनी सीता से बातचीत करने में क्या संकोच? क्या उत्कंठा? उसका इस तरह सोचना, बाद को झूठा लगा। क्योंकि वह भी सीता से बोले बिना चुप रहा। दूसरे के कमरे में उसकी ओर देखने वाले हूवय्य को अब उसकी ओर सिर उठाकर देखने में भी संकोच होने लगा। काल गति ने उसमें भी परिवर्तन ला दिया था।

एक बार हूवय्य ने सीता से बोलने के लिए सिर उठाया पर वह बोले बिना दीवार की ओर देखने लगा। पीतल के दीपाधार में साधारण जलने वाली बत्ती के प्रकाश में, सफेद दीवार पर एक छिपकली छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों का शिकार करने की ताक में बैठी थी। उसका चिकना भूरे रंग का बदन निश्चल था। उसकी पूंछ केवल इधर-उधर डोल रही थी। ऐसे समय में उसकी पूंछ कीपर छाई

काली-नुकीली बनकर नाच रही थी। उसकी दोनों छोटी-छोटी आंखें काली मणियों की भांति चमकती थीं। हूवय्य देख रहा था। छिपकली आगे बढ़ी, जल्दी-जल्दी। एक छोटा कीड़ा उसका शिकार बना था। कीड़े के पास जाकर रुककर निशाना बांध, उसपर टूट पड़ी। कीड़ा उसके मुंह में जाते ही गायब हो गया। उसको सूक्ष्मता से देख रहे हूवय्य की दृष्टि में कुछ और ही दीख पड़ा। जहां छिपकली बैठी थी वहां पेंसिल से कुछ लिखा हुआ था। लिखावट का आधा भाग छिपकली से ढंका हुआ था। उसको पढ़ने के लिए हूवय्य ने अपना सिर कुछ ऊपर उठाकर आगे झुकाया तो छिपकली डर से भाग गई। उसको पढ़ते ही उसके मुंह पर लाली चढ़ गई, "हूवय्य से ही विवाह करूंगी।" उस लिपि को लिखने वाली सीता ही है, लिखावट से उसको मालूम हुआ। दूर खड़ी हुई सीता को यह सब कुछ मालूम नहीं हुआ। कभी उसने लिखा था। वह भूल गई थी। उसने सोचा भी था कि हूवय्य छिपकली को ही देख रहा है।

हूवय्य के संदेह-संकोच दूर हो गये। उसकी आशा को एक सहारा मिल-सा गया। अपने आपको छिपाकर दो कौर फिर खाकर उसने सीता की ओर देखा। दिये के मंद प्रकाश में वह स्वप्न-सुंदरी के समान खड़ी थी। उस अस्पष्टता ने ही उसके सौंदर्य को दुगुना करके मोहक बना दिया था। वसंत काल की सायं-निशा में दूसरे दिन खिलने वाली गुलाब की प्यारी कली की भांति! छिपकली की कृपा से दीवार पर पढ़ी। लिपि के हृदय में तब तक गुप्त अस्पष्ट रही आशा साफ व्यक्त होने से हूवय्य की आंख को सीता इंद्रधनुष की तरह प्रेम-सौंदर्य की सुमधुर मूर्ति बनकर दिखाई पड़ी। उसकी आंखों में नई रोशनी-सी आई थी। उसके दिल में एक नई आशा प्रबल हो उठी थी। दीवार पर की लिपि को पढ़ने के पहले जो उदासीनता का भाव था वह अदृश्य हुआ और उसकी जगह उत्कंठा उभरी थी। हूवय्य ने समझा कि अपने अंतःकरण के निगूढ़ गह्वर में अपने अनजाने सीता किसी अभेद्य दाने से अपनी बन गई है। दीवार पर अंकित लिपि सीता के कहने की अपेक्षा विधि का ललाट-लेखा-सी लगी। "हूवय्य से ही विवाह करूंगी" की लिखावट एक महारहस्य एवं शक्तिपूर्ण बने प्रेममंत्र के रूप में परिणत हुई थी। बार-बार उसकी दृष्टि दीवार की तरफ़ जाती थी। दीवार पर की वह लिपि भी सीता की जितनी ही सम्मोहक बन गई थी। थोड़ी देर पहले केवल जड़ बनी वह दीवार अब बड़ी चेतनायुक्त बनी थी। पहले एक प्राणी बनी छिपकली अब एक बड़े शुभ शकुन की भांति पवित्र बन गई थी; पावन आशा सूचक बनी थी। प्रीतिपात्र हुई थी। उस समय हूवय्य अपनी पीठ की वेदना भी भूल गया था।

"सीता, थोड़ा पानी दो जरा।"

हूवय्य ने प्रयास, उद्वेग एवं संभ्रम से पानी मांगकर दोनों के बीच में विद्यमान मौन-पाताल पर एक पुल बांध दिया। या उन दोनों के प्रेम-प्रवाहों के बीच में

बाधा बनकर खड़े बांध में एक दरार बना दिया। एक मिनट पहले दुर्भेद्य, भयंकर हो खड़े पत्थर के बांध में थोड़ी दरार पड़ते ही वह टूटकर पानी में तैर निकला। उसके अस्तित्व का नामो निशान भी वहां न रहा। ऐसी बात नहीं है कि बांध दुर्बल था। प्रवाह की शक्ति तथा रफ्तार भी तेज थी। उसे देख हूवय्य और सीता दोनों को आश्चर्य हुआ। तब उन को अंतरवलोकन की शक्ति होती तो भी वह उतनी आश्चर्यकर नहीं दीखती। उन दोनों की प्रणय की लहरें बांध के टूटने या उसमें दरार पड़ने की राह ही देख रही थीं। दरार के पड़ते ही कृतक संकोच का बांध टूट गया और लहरें एक हो गई। सीता की हालत भी रसोई घर में हुई लक्ष्मी की हालत के समान बन गई थी—"फिर बुलावें तो आऊं।" हूवय्य के पानी मांगते ही पहले की लज्जा एवं संकोच को विस्मृति के अतल जल में डुबोकर अत्यंत खुशी एवं आदर से हूवय्य के पास आकर सीता ने सविनय, अव्यक्त कोमल शृंगार भाव से उसको देखते पूछा, "हाथ धोने के लिए ?"

"नहीं, पीने के लिए।" हूवय्य ने मुस्कराकर उसके स्निग्ध, मधुर, सजल नयनों को देखा। उसकी आंख, उसका अलक, उसके कपोल, गाल, कान, हाथ और उसकी गरदन आदि उसको एक दैवी चमत्कार की तरह दीख पड़े। कुल मिलाकर वह पहले की सीता न रही। जो साधारण थी पहले वह अब प्रेम की महिमा से असाधारण बन गई थी।

"पानी क्यों पी रही हैं ? दूध है !"

सीता की वाणी कोकिल वाणी की तरह मनोहर थी। वह हूवय्य के उत्तर की राह देखने के लिए ठहरी ही नहीं; पास में रखे एक पात्र से सफेद गरम दूध एक गिलास में ढालकर हूवय्य को दिया। अपने प्रेमामृत को अपने प्रियतम को देने की भांति। हूवय्य ने भी अपना हाथ पसारकर कोमलता से उसे लिया और पेट भरा हुआ होने पर भी फूल के सौंदर्य के लिए उसका मकरंद पीने वाले मधुप की भांति, पीने लगा। पी रहा था, तो भी मुंह ऊपर किये बिना, सीता की ओर आंख उठाकर देखा। वह भी उसी को देख रही थी। दोनों की आंखें मिल गईं, अलेखनीय, अनिर्वचनीय, अज्ञात, मधुर घटनाएं हुईं। दो प्रेमी दृष्टियों का संगम तुंगभद्रा संगम की अपेक्षा, गंगा-जमुना के संगम की अपेक्षा पवित्र है, गूढ़ है, महान् है।

सोते समय रात को, हूवय्य ने अपने पास सोने की तैयारी में लगे चिन्नय्य की आंख चुराकर दीवार पर की सीता की लिखी लिपि को अपनी उंगली से पोंछ दिया। उसकी दृष्टि बार-बार उसी ओर जाती रही। यदि कोई उसे देख ले तो सीता को शर्मिन्दा होना पड़ेगा इस आशंका से उसे पोंछ डालने की सोची थी। मगर तुरंत मन ने यह नहीं माना। अपने को अत्यंत प्रिय आशासूचक बनी लिपि को तहे दिल से मिटाना चाहेगा ? उसे बार-बार पढ़ने की इच्छा होती थी। अंत में, सीता

का अपमान न हो, इस दृढ़ संकल्प से उसे रगड़कर मिटा दिया। मगर मिटाते ही नजाने क्यों उसके दिल में कसमसाहट होने लगी, कसक-सी होने लगी। उसका दिल डर गया जैसे अपशकुन देखने से होता है। मन ने कहा "हाय, उसे मिटाना नहीं चाहिये था। कौन पढ़ाता उसे?" उसे पहले की तरह बनाने के लिए उसका दिल उतावला हो गया। उसका उद्वेग इतना स्फुट हो गया था कि चिन्नय्य ने उसे देखकर कहा "क्या हूवय्य, दर्द ज्यादा हो रहा है! बहुत देर बैठने से दुख रहा होगा, सो जाओ।"

"दर्द तो उतना नहीं है।" कहकर हूवय्य चिन्नय्य की मदद से सो गया।

चिन्नय्य ने 'उफ़' करके बत्ती बुझा दी। अमावास्या का अंधेरा बाहर से झट से घुसकर सारे कमरे में घना होकर भर गया। उस घने अंधकार में बत्ती अभी लाल दीखती थी और उससे उठने वाली तेल की बू इधर-उधर फैल गई थी। थोड़ी देर बातें करके चिन्नय्य सो गया। घर निःशब्द था। बाहर भी सन्नाटा छाया हुआ था। बार-बार गोठ में ढोरों के खंभे से सींग मारने से उत्पन्न शब्द, फर्श पर उनके खुर के पटकने से होने वाला शब्द, डंठलों का शब्द सुन पड़ता था। मगर वह शब्द समुंदर में दूध डालने के समान था; मगर वह नीरवता को तनिक भी भगा नहीं सकता था। जिस ओर देखिये उस ओर, जिस ओर कान दीजिये उस ओर अंधेरा एवं मौन की स्थिति ही दीखती, सुन पड़ती। संसार निःस्तब्ध निद्रा-मुद्रित था।

लेकिन हूवय्य को नींद नहीं आई। पीठ में दर्द के साथ मन क्षुब्ध होने कारण वह विविध विचारों के जंगल में भटकने लगा। उसकी प्रकृति स्वाभाविक ही तात्विक, कल्पना प्रधान, भावमय थी। उस दिन की सारी घटनाओं में एक-एक घटना उसकी दृष्टि में अर्थ-गर्भित थी। गाड़ी का गिरना था? केवल मुझे ही क्यों चोट लगी थी? दीवार पर छिपकली क्यों दिखाई पड़ी? उस छिपकली ने सीता की वह लिखावट क्यों दिखाई? हूवय्य को लगा कि विधि ने उसके और सीता के बीच एक शाश्वत संबंध बढ़ाने के लिए गुप्त व्यूह रचा है। दूसरा समय होता तो उसकी तीक्ष्ण बुद्धि उन सबको सामान्य मानकर उनकी तरफ गौर किये बिना रह जाती। मगर प्रेम के वश हुए दिल को सर्वत्र भले शकुन ही दीखते हैं।

सीता के बारे में सोचते समय उसका मन अपनी पढ़ाई के बारे में भी सोच रहा था। महापुरुषों की जीवनियां वह पढ़ चुका था। उनकी तरह खुद भी कुछ महानकार्य करके कीर्तिमान होने की आकांक्षा उसमें उत्पन्न हुई थी। पर कौन-सा महान् कार्य? किस तरह करना चाहिए उसे? यह उसे कुछ भी नहीं सूझता था। परंतु पिता के मर जाने से, उसके चाचा की दिलचस्पी उसकी पढ़ाई में न होने से उसकी पढ़ाई के प्रति चाचा की उदासीनता दिखाई देने से, 'तुम पढ़ना बंद कर दो' उनके बार-बार कहने से वह निराश हुए बिना, चाचा से बात करके अपनी

पढ़ाई उसने आगे बढ़ाई थी। अलावा इसके चंद्रय्य गौड़जी को अपने पुत्र रामय्य की पढ़ाई के लिए अपने बड़े भाई के पुत्र की इच्छा पूर्ण करनी पड़ी थी। इसके अलावा हूवय्य ने तय कर लिया था कि उसे जायदाद वगैरह नहीं चाहिये, पढ़ाई पूरी हो तो बस है। पर अपनी विधवा माता के कारण वह अपनी इच्छा किसी से मुंह खोलकर नहीं कहता था। पिछले वर्ष छुट्टी में जब हूवय्य आया था तब नागम्माजी ने उससे कहा था कि चंद्रय्य गौड़जी के परिवार में मिलकर रहना मुझे पसंद नहीं है। हम दोनों अपना जायज हिस्सा लेकर अलग घर बसावें। पर, बेटे ने अपनी पढ़ाई की बात उठाकर मां को चुप किया था। मगर हूवय्य को अलग घर बसाकर, उसका भार ढोना भी असहनीय लगा था। अपनी महत्त्वाकांक्षा के आगे बाधक बनाने वाली किसी बात को मानने के लिए वह हिचकिचाता था।

विचारों के बीच में हूवय्य बिछौने पर करवट लेकर पीठ के दर्द के मारे कराहा। थोड़ी देर बाद दर्द कम हुआ, दृष्टि को स्थिर करके सामने वाली खिड़की की तरफ देखा। अंधेरे से भरे हुए आकाश में कुछ तारे झिलमिल-झिलमिल कर रहे थे। भू-संचारी बना उसका मन धीरे से विश्वयात्री बन गया। खगोल विशारदों से संशोधित नये विषयों को पढ़कर, जानकार बनी उसकी आत्मा नये भाव से उज्ज्वल बन गयी। वे तारे करोड़ों मीलों पर हैं? उनमें से कोई-कोई तो भूमि से भी, सूरज से भी, कितने करोड़ों गुना बड़ा होता है। किस प्रकार के भयंकर अग्नि प्रवाह वहां समुज्ज्वल भीषणता से बढ़कर बहकर तांडव मचा रहे हैं? ये काल-देश कितने असीम-अनंत हैं? इस छंदोमय महा ब्रह्मांड के गान को रचने वाले दिव्य कवि की महिमा क्या है? क्षुद्र नक्षत्र सूर्य के इर्दगिर्द घूमने वाली यह भूमि इस विश्व में कितनी छोटी धूलि! धूलि कण! सभ्यताएं, नागरिकताएं, मनुष्य भी, इस बृहत् विश्व के व्यापारों में कितने अदने? कितने छोटे हैं! कितना अज्ञान हैं! सोचते-सोचते हूवय्य की दृष्टि तारों से भी परे, दूर-दूर गई। खुद के प्राण एक ओर रहें, समस्त संसार महत्त्वपूर्ण है; पर उसके प्रसिद्ध व्यापार तथा चेष्टाएं, साहस कार्य क्षुद्र से क्षुद्रतम हो, दरिद्र से दरिद्र ही दीख पड़े। उसका शरीर अव्यक्त भीषण मधुर रसावेग से विकंपित हुआ। रुद्रानंद से उसकी छाती फूल गई।

उस दिन पहले एक बार उसकी छाती इसी तरह फूल गई थी सीता का दीवार पर प्रेमशासन (लेख) पढ़ने पर। आकाश में विहार करने वाला उसका मन फिर भूमि पर उतर कर मुत्तल्ली आया। हृदय चक्षुओं को सीता की मूर्ति गोचर हुई। वह रमणी कितना सुंदर है! बार-बार देखने की इच्छा होती है! उसके कपोल कितने चिकने हैं! प्रेम माधुरी लाल होंठों में उमड़ पड़ी-सी है! हूवय्य ने उस मूर्ति को मन ही मन गले लगाया, चूमा! खिड़की में देखा, नक्षत्र उसको दूर-दूर खींचकर ले गया और इस संसार को तथा इसके व्यापार को क्षुद्र बना दिया। उसी प्रकार सीता का स्मरण लिये हूवय्य के मन को विशाल विश्व

ही क्षुद्र-सा लगा। ललना के सौंदर्य प्रेम के प्रणय जल में करोड़ों ग्रह-नक्षत्र, नीहारिका खचित अनंतकाल-देशों का महा ब्रह्मांड एक छोटे बुदबुदे के समान असहाय हो तैर रहा था ! नक्षत्र के ध्यान की अपेक्षा सीता का प्रेम ही हजारों गुना मधुर एवं महान लगा। सीता की प्रेम महिमा से पहले क्षुद्र दीखा खुद, खुद का जीवन भी इस विश्वव्यूह में महोन्नत होकर, प्रमुख होकर दिखाई दिये। हूवय्य के दिल में तभी अंतः समर का अंकुर स्थापित हो गया था। एक बार संसार का भार ढोना उसको उतना हीन, उतना हानिकारक नहीं है, लगा। दूसरी बार महत्त्वाकांक्षा का आदर्श विचार जो उसको अपनी ओर खींच रहा था धीरे-धीरे मंद पड़ गया।···हूवय्य मैसूर के कुक्कन हल्ली ग्राम के तालाब के किनारे पर हवाखोरी के लिए चल रहा है। सांझ के पच्छिम गगन के मेघलोक में खून-सा हो गया है ! रक्तपात-सा हुआ है ! तालाब निस्तरंग है। पेड़-पौधे निश्चल हैं ! कौन है वह स्त्री ? दूर से आ रही है। हूवय्य देखता है; अपनी मां नागम्माजी हैं ! यह क्या आश्चर्य ! मां यहां कैसे आई ! हूवय्य तालाब की ओर आगे बढ़ा। नागम्माजी नजदीक आई। उनके माथे पर घाव हो गया है। लोहू बह रहा ! चू रहा है ! बेहोश होकर नीचे गिर रही हैं। हूवय्य आगे बढ़ा ! मगर पैर उठ नहीं रहे थे ! हाय !······हूवय्य ने चौंककर आंखें खोलीं। कुक्कन हल्ली ग्राम के तालाब के किनारे पर वह नहीं चल रहा था। मुत्तली में बिस्तर पर सोया है ! उसे कुछ घबराहट-सी हुई। तब भी वह विचित्र सपने पर हंसा और फिर आंखें मूंद लीं। ···वेंकप्पय्य के स्नानगृह में नहा रहा है ! ब्राह्मणों के स्नानगृह में पानी से भरे डंडे से वह छू गया है ! इतने में ज्योतिषीजी वहां दौड़े आये। गुस्से से उन्होंने डंडा उठाया है ! हूवय्य ने चिल्लाकर कहा, "ठहरिये ! गलती हुई, क्षमा कीजिये !" कहकर चौंक पड़ा। जाग गया। बिस्तर पर करवट बदलने से पीठ में दर्द हो रहा था। उसका 'आहा' सुनकर चिन्नय्य जाग गया था।

"हूवय्य, हूवय्या !" कहकर चिन्नय्य ने पुकारा।

हूवय्य ने कहा. "क्या है ?"

"दर्द हो रहा है ? दिया जलाऊं ?"

"नहीं, कुछ नहीं। नहीं।"

"फिर क्यों पुकारा ?"

"सपने में पुकारा, लगता है।"

फिर दोनों चुप हो गये। थोड़ी देर में रात ने मौन निद्रा के निरंकुश प्रभुत्व में सारे लोक को डुबा दिया।

१६
सौ रुपये का नोट

दूसरे दिन तड़के ही चंद्रय्य गौड़जी पैदल ही मुत्तल्ली के लिए रवाना हुए। उनका मन विक्षुब्ध था। पिछली रात को घटी सारी बातें पुट्टण्ण ने सुनाई तो उन्होंने निंग को मारने के बजाय खूब गाली दी, खूब खरी-खोटी सुनाई। इसके अलावा नागम्माजी की शोकपूर्ण निंदा सुनकर उनका मन टूट गया था। पत्थर के भगवान से सिर मारने पर नागम्माजी के माथे से लोहू चू रहा था, उनके होश उड़ गये थे, अतः घर के सब लोग घबरा गये थे। खुद घर के मालिक होने से, नागम्माजी की मनः तृप्ति के लिए भी, पीड़ित का क्षेम-समाचार विचरने की धर्मबुद्धि से भी चंद्रय्य गौड़जी हूवय्य को देखने के लिए सवेरे-सवेरे पैदल ही मुत्तल्ली के लिए निकले थे। क्योंकि गाड़ी का रास्ता ज्यादा घुमावदार और दूर का था। बहुत चक्कर काट के जाना पड़ता था। उनके मुत्तल्ली जाने में एक और कारण भी था; अपने पुत्र रामय्य को उनमें भी वे देखना चाहते थे। एक प्रकार का भय भी था उनमें। क्योंकि उन्होंने हूवय्य एवं रामय्य को बिना बताये एक कुसंस्कृत कन्या से तीसरा विवाह कर लिया था। यह इधर कुछ समय से अपराध-सा लग रहा था। लड़कों को अपने विवाह की खबर किसी तरह लग गई हो तो! कैसे बर्ताव करें उनसे उन्हें इसकी चिंता भी थी। इन सबके साथ ही साथ उसी दिन सोतेमने सिगप्प गौड़जी के चोरी से कटाये लकड़ी के टुकड़ों को गुप्त रूप से घर पहुंचाने का साहस भी करना था। इसीलिए गौड़जी ने पिछले दिन तय किया था कि घर में खुद ही रहें ताकि कोई अनहोनी न हो जाय, सब काम सुगमता से संपन्न हो जाय। लेकिन विधि ने उनको मुत्तल्ली भेजने की साजिश की थी। इसीलिए उन्होंने सेरेगारजी को और पुट्टण्ण को बुलाकर जो कुछ कहना था, कहकर फाटक पार करके गये थे।

इतने में दौड़कर वासु ने जाके कहा, "बड़ी मां भी मुत्तल्ली जाना चाहती हैं। हूवय्य को देखने की ललक है।"

गौड़जी नाराज़ होकर बोले "क्यों? नहीं, मैं खुद जानकर देख आऊंगा!" इस तरह डपटकर आगे बढ़े।

अभी दस कदम ही गये थे, रुक गये। उन्होंने सोचा कि पहले ही फैली शिकायत और भी तीव्र हो जायगी अगर मैं नागम्माजी को अपने साथ मुत्तल्ली न ले आऊं तो। इसीलिए वासु को उन्होंने बुलाकर कहा—"तुम अपनी बड़ी मां से कह दो वह मुत्तल्ली जाएं। निंग से कह दो कि उनको गाड़ी में मुत्तल्ली पहुंचा दे। वह मुत्तल्ली गाड़ी में ही आवें। समझे!"

वासु ने कहा, "मैं भी आऊंगा पिताजी! हूवय्य भैया को देखना चाहता हूं।"

गौड़जी आधी जुगुप्सा, आधे गुस्से से बोले, "अच्छा, जा, मर जा!"

वासु ने फिर जोर से कहा, "पुट्टम्मा भी आना चाहती है।" मगर गौड़जी पीछे देखे विना, सुनी अनसुनी करके आगे बढ़ गये।

ओवय्य गौड़जी के प्रस्थान की राह देखते, कंवल ओढ़कर विना हिले-डुले एक कोने में दुबके पड़ा था। पिछली रात को उसे होश आने पर उसको मालूम ही नहीं हुआ था कि वह कहां है। अमावस्या के अंधेरे में वह घर को पहचान न सका था। आखिर उसको मालूम हुआ था कि कहीं भी हो, वह सुरक्षित है। उसको पता ही नहीं लगा कि उसको कौन वहां लाया, कैसे लाया। इस विषय में उसका मन बाहर के अंधेरे के समान ही बन गया था। लेकिन सुबह होने पर उसको मालूम हुआ कि वह कानूर में है; वह डर गया। क्योंकि वह जानता था कि चंद्रय्यगौड़जी सजा दिये बगैर उसको यों ही नहीं छोड़ेंगे। इसलिए वह स्पर्शमात्र से उपाय को जानने वाले 'बसव कीड़े' के समान हाथ-पैर समेटकर निर्जीव लौंदे की तरह चौकी के कोने में अचल था। जोर से होने वाली बातों से समझ गया था वह कि गौड़जी मुत्तल्ली जा रहे हैं; तब उसके जी में जी आया। घर का फाटक पार करके गौड़जी गये ही थे, कि वह उठा, रात को खाना न खाने से भूख लग रही थी, इसलिए तुरंत मुंह धोकर रसोई घर गया। वहां सुब्बम्म पाक कार्य में लगी हुई थी।

नेल्लुहल्ली की 'सुब्बि' कानूर चंद्रय्य गौड़जी से विवाह करके 'सुब्बम्म' बन जाने के बाद, ओबय्य किसी भूगत या बादरायण संबंध की खोज करके उसको 'बहन' कहने लगा था। वह भी 'ओबय्य भैया' कहती थी। जब कभी वह सुब्बम्म के पास जाता तब वह उसे कॉफी या कुछ खाने की चीजें या खुद गुप्त रूप से मंगाकर रखी ताड़ी को देकर आदरोपचार करती थी। क्योंकि सुब्बम्म कानूर में एकाकिनी की तरह रहती थी, चुहलबाजी के लिए उसको एक भाई की जरूरत थी। ओबय्य उसको मिल गया था। नागम्माजी, पुट्टम्म, वासु, और जो सब सगे-संबंधी वहां आया करते थे वे संस्कृति की दृष्टि से उससे बहुत दूर थे। पराये-से थे अतः उनके बराबर लड़कर वह बोल नहीं सकती थी। उनसे गालियों में वह सब ही को हरा देती थी। विजयिनी होती थी। संस्कृति में भी, वह अपने बराबर के ओबय्य को पाने से उसे 'बड़े भैया' कहने में उसका लाभ था। उससे अपना सुख-दुख कहती। ओबय्य भी बिना उकताए, वह जितनी देर तक सुनाती, सुनता रहता।

इसका कारण उसका बंधुप्रेम नहीं था, उससे खुद को होने वाले भोजनादि का उपचार और उससे अपेक्षित उपकार था।

ओबय्य रसोई घर में गया तो सुब्बम्म ने उसे आदर से पीढ़े पर बिठाया और कॉफी तथा खाने की चीजें दीं। पुट्टम्म और वासु दोनों नागम्माजी के कमरे में मुत्तल्ली जाने की तैयारी कर रहे थे। अतः सुब्बम्म को ओबय्य से बहुत देर तक बोलने का अवसर मिला। उस घर में होने वाले अपने दुःखों को उसने सुनाया। पिछले दिन हुई घटना का ब्योरा सुनाकर खूब रोई। ओबय्य ने भी अपने पिता से होने वाली तकलीफों को सुनाया और पिछले दिन हुई उसकी छोटी मां की मृत्यु की खबर सुब्बम्म को सुनाई। उसके बारे में ओबय्य ने कुछ भी नहीं कहा। शोक-प्रदर्शन भी कतई नहीं किया। लेकिन उससे खुद को दिये गये कष्टों को सरल बना कर सविवर सुनाया। उसकी सारी बातें सुनकर सहानुभूति से सुब्बम्म रोई। उसका हृदय अपने प्रति पिघला देखकर ओबय्य ने दीनवाणी से कहा, "तुमसे एक उपकार होना चाहिये।" सबसे तिरस्कृत सुब्बम्म समझ गई कि ओबय्य का उपकार मांगना अपने लिए गौरव की बात है।

"अरे भाई, क्या उपकार कर सकती हूं मैं भला।"

"तुम करोगी तो मैं जीता रहूंगा। नहीं तो गले में फांसी लगाकर मर जाऊंगा।" कहकर फांसी पर लटकने का अभिनय किया।

"क्या उपकार कर सकती हूं, बोलो। यदि मुझसे हो सकता हो तो अवश्य करूंगी।"

"कुछ भी नहीं, बस मुझे तुरंत कुछ रुपये चाहिए। एक महीने में लौटा दूंगा!'

"हाय रे भैया! कहां से लाऊं मैं? वह नहीं होने के!"

"सुब्बम्मा, साहूकार का पाणिग्रहण करने वाली तुम्हीं ऐसा कहोगी तो!" ओबय्य की वाणी में दीनता थी।

सुब्बम्म को मुख स्तुति एवं मानभंग दोनों एक साथ हुए-से लगे। उसने सोचा कि साहूकार की पत्नी होने से रुपये देने में मुझे समर्थ बनना चाहिए। न दे सकी तो योग्यता पर बट्टा लगेगा! यह ठीक है, मगर उसके पास जेवर आदि थे, परंतु रुपये-पैसे नहीं थे। उसको रुपये-पैसे देना पति का कर्त्तव्य था, मगर पति ने उसे नहीं दिये थे। वह समझती थी, पति ने उसे धोखा दिया है। नासमझ, मुझको इस तरह धोखा देना ठीक है? मुझे कल पीटा था न? ये बातें सोचकर सुब्बम्म को पति पर गुस्सा आया।

'रुपये नहीं हैं,' कहकर ओबय्य को भेजा जा सकता था। पर उस वृद्ध औरत ने ऐसा कहकर भेजना गौरव के खिलाफ़ समझा। उसकी इच्छा थी कि मेरे पास भी रुपये-पैसे हैं, दिखाऊं। ओबय्य को कुछ देर ठहरने के लिए कहकर वह सोने के कमरे में गई।

कुछ वर्ष पहले चंद्रय्य गौड़जी के हाथ एक सौ रुपये के दो आधे नोट आये थे। परंतु उनके नम्बर अलग-अलग थे। किसने दिये? कहां से आये? उनको नहीं मालूम। उनसे लेन-देन करने वालों से पूछा तो सबने कह दिया कि हमने नहीं दिये, हमने नहीं दिये। उन देहातियों में कोई ऐसा नहीं था जो सरकार को इसकी सूचना देता और रुपये पाता। उन दो आधे नोटों को गौड़जी ने अपने पुराने कुरते की जेब में डालकर, अपने सोने के कमरे में रख दिया था। सुब्बम्म नई-नई बहू बनकर आई थी। तब उसने अपने पति के कुरते की जांच करते समय उनको देखा था। वह पढ़ना-लिखना तो जानती नहीं थी। अतः पुट्टम्म से जाना कि सौ का नोट है। उसको या पुट्टम को मालूम नहीं था कि नोटों के नम्बर अलग-अलग हैं। 'नोट है, बस, चलता है!' इतना वे जानती थीं। सुब्बम्म नेकई बार उनको अभीष्ट से देख-देख रखा था कि गौड़जी उन नोटों को वहां रखकर भूल गये हैं। उन नोटों के बारे में उसने पति को बताया भी नहीं। उसका मन्शा था कि मौका पड़ने पर कभी उनका उपयोग किया जाय।

सुब्बम्म ने उस सौ रुपये के नोट के दो टुकड़े लाकर ओबय्य के हाथ में देकर कहा, "एक महीने में लौटा देना।" रुपये पाकर ओबय्य को बड़ी खुशी हुई। वह भी निरा अनपढ़! इतने में वासु मामा के घर जाने के लिए योग्य पोशाक पहनकर अपनी खुशी को जाहिर करते हुए बरसात में बादलों के बीच में से धूप जैसे आती है वैसे दुबारा कॉफी पीने के लिए रसोई घर आया। सुब्बम्म और ओबय्य दोनों चौंककर चौकन्ने हो गये। नोट के टुकड़ों को ओबय्य ने जल्दी-जल्दी जेब में रख लिया। बालक ने वह सब बिना देखे एक पीढ़े पर बैठकर कहा "छोटी मां! कॉफ़ी।" लड़के के मन से पिछले दिन के अनादर की याद बिलकुल निकल गई थी। सुब्बम्म ने अपने किये काम को छिपाने के लिए मानो हंसमुख होकर कॉफ़ी देना चाहा। ओबय्य ने भी कहा, "ओ हो, क्या बात है वासु, खूब बन-ठन के आये हो!" वासु ने राग ध्वनि में कहा, "मुत्तल्ली जा रहे हैं ओबण्णय्या जी!"

वासु ओबय्य को 'ओबण्णय्य' और अण्णय्य गौड़जी को 'अज्जय्य' कहा करता था।

कॉफी पीने के बाद वासु ने कहा, "ओबण्णय्या, कहते हैं कि कल तुमको किसी ने मारकर रास्ते में गिरा दिया था। हमारी गाड़ी आ रही तो थी, पुट्टण्ण ने तुमको देखा, वे तुमको उठाकर गाड़ी में सुलाकर लाये।" बेचारा वासु को क्या मालूम कि वह पीकर मदहोश हो, नशे में चूर हो रास्ते में गिर पड़ा था!

ओबय्य ने कहा, "किसीने नहीं मारा था। अग्रहार गया था कुछ काम पर। आते वक्त अंधेरा हो गया। ताड़ी की दुकान से थोड़ी ही दूर आया था, देखा—घना अंधकार! रास्ते पर कुछ सफेद-सा दीख पड़ा। देखता हूं…भूमि और आकाश को एक करके खड़ा है…।

"वह क्या ?" कहकर वासु घबराहट से आंखें फाड़कर खड़ा हुआ।

"भूत ! और क्या ! हमारा भूतराय !"

वासु और अचरज भरी आंखों से बोला, "फिर ?"

इस प्रदेश के रिवाज के मुताबिक हर एक घर वाले आठ-दस भूत-पिशाच की पूजा करते हैं। घर के चारों तरफ पास के जंगल में पेड़ों तले रहने वाले कुछ पत्थरों को ही 'भूत का वन' कहते हैं। उन भूत-पिशाचों की योग्यता के अनुसार मुर्गी-बकरियों की बलि देते हैं। लोगों को इन भूतों का डर जंगली जानवरों के भय की अपेक्षा सैकड़ों गुना ज्यादा रहता है। उनकी अनुग्रह शक्ति की अपेक्षा उनकी निग्रह-शक्ति में लोगों का अधिक विश्वास होता है। इसलिए उनके प्रति भक्ति की अपेक्षा भय ही ज्यादा होता है। भय को ही भक्ति मानते हैं। हर एक घर के भूतों की कहानियां काफी हैं। बड़े आदमी अपने से छोटों को रोचक बनाकर उन कहानियों को सुनाते हैं। ऐसी कहानियां सुन-सुनकर वासु को बड़ा भय लगता था। संदर्शन करने वाला ओबय्य उसको महावीर की तरह लगा। आश्चर्य से विस्फारित नेत्रों से उसने पूछा, "फिर ?"

"फिर क्या ? मालूम ही है ! हाथ जोड़कर भूमि पर लेटकर कहा, 'भूतराय मेरी गलती कुछ भी हो, अगली मनौती पर एक मुर्गी की बलि दूंगा !' एक बार उसने अपनी लोहे की छड़ी जमीन पर पटकी ! राम ! राम ! बिजली-सी गिरी ऐसा लगा। होश उड़कर गिर पड़ा था ! निंग, पुट्टण्ण गाड़ी में डालकर ले आये।"

ओब्बय्य की सारी बातों पर वासु ने विश्वास किया। मगर ओब्बय्य तभी उनमें से आधी बातों पर विश्वास कर चुका था। उसका कथन उसी को बहुत स्वादिष्ट लगा था। सुब्बम्म के लिए तो उसकी बातें कतई झूठी नहीं लगीं।

ओब्बय्य ने वासु को जो कहानी सुनाई थी वह विनोद के लिए नहीं थी। पहले यही कहानी सुनाकर उसने अपने मद्यपान और बेहोशी की सत्यता को छिपाकर रखा था। देहातियों को ऐसी कहानियों में दिलचस्पी थी, इसलिए उन्होंने उसके कथन पर विश्वास किया था।

ओब्बय्य सुब्बम्म से विदा लेकर रसोई घर से बाहर निकला। वह सीधे फाटक को पार करके गया। जेब में रखे नोट के दो टुकड़ों से मानो उसके पैरों को पर लग गये थे। बाहर आंगन में सेरेगारजी, पुट्टण्ण, बेलर बैरा, सिद्द, हलेपैक का तिम्म, सेरेगारजी की तरफ के घाट के मजदूर एक-एक काम में नियुक्त थे। निंग मुत्तल्ली जाने के लिए गाड़ी को तैयार करके बैलों को ले आया। वह गाड़ी के पास खड़े होकर पिछले दिन के साहस एवं अनाहूत का वर्णन कुछ मजदूरों को सुना रहा था। सवेरे की कोमल धूप में गाड़ी, बैल, और मनुष्यों की परछाइयां लंबी पड़ी थीं। पुट्टण्ण कंधे पर बंदूक रखकर युद्ध को निकले एक सेनापति की भांति अकड़कर बरतता था। कुत्ते हर्ष प्रदर्शित कर उसके इर्द-गिर्द घूम रहे थे।

ये शिकार के लिए नहीं निकले थे बल्कि लकड़ी के टुकड़ों को लाने के लिए; यह वे जानवर कुत्ते क्या जानें !

आमतौर से मजदूर काम पर जाते समय, मुंह नीचा करके जाते थे। परंतु उस दिन लकड़ी के टुकड़ों को लाना साहस का काम था; इसलिए सबमें जोश था। शांति के समय बदन तोड़ काम न करने वाले लोग ही युद्ध के समय में अपना खून बहाकर मरने में अपना उत्साह दिखाते हैं न? सुपारी के पेड़ के छिलके से बनी टोपी पहनकर, नंगे बदन के कंधे पर कंबल डाले, कमर पर गंदा, जीर्ण-शीर्ण कपड़ा लपेटे दुबले शरीर के डरपोक मजदूरों में उस दिन समरोत्साह आ गया था। इसीलिए उनकी बातों में उतना संभ्रम, उतनी आसक्ति आदि दिखाई दे रहे थे।

ओबय्य के आते ही सबकी नज़र उस पर पड़ी। उनमें से कुछ आपस में फुसफुसाकर बातें करने लगे। उसे देखकर वह समझ गया कि उसकी पोल सब जान गये हैं। रंगप्प के प्रश्न के उत्तर में उसने वही भूतराय की कहानी विस्तार से सुनाई जो वासु को सुनायी थी।

पुट्टण्ण ने हंसकर कहा, "हां, हो सकता है, ताड़ी की दुकान का भूतराय।"

कुछ लोग हंसे, मगर कुछ लोग भूतराय के बारे में लघु बर्ताव, बातें ठीक नहीं समझकर चुप थे। पुट्टण्ण का व्यंग्य ओबय्य की समझ में आ गया। तो भी अनजान की तरह वह अभिनय करके बोला, "अरे! क्या मैं नहीं जानता? ताड़ी की दुकान का भूत नहीं। हमारा भूतराय हो! आकाश···भूमि···"

पुट्टण्ण ने कहा, "बस करो, सभी भूतों का परिचय है तुमको क्या रे!"

ओबय्य ने सोचा—और ज्यादा बोलने से अपनी पोल खुल जाएगी। इससे वह घबरा गया। पुट्टण्ण की बात सुनी अनसुनी करके ओबय्य पान-सुपारी मांगने के लिए तिम्म के पास गया। सो, एक बहाना मात्र था।

थोड़े समय में साहसियों की सेना ने इकट्ठे होकर पुट्टण्ण के नेतृत्व में, सेरेगारजी के मार्गदर्शन में शुनक परिवार सहित कलरव करते, शोर मचाते जंगल पर धावा बोल दिया।

उस दिन के काम में महिला मजदूरों की जरूरत नहीं थी। इसलिए उनमें से कोई काम पर नहीं गई थी, बैठी थीं। यानी छुट्टी ली हुई थी। ओबय्य जब गया तब गंगा अपने घर में थी। उसने उसके साथ सरस सल्लाप में बहुत समय बिताया। बातों के बीच में मालूम हुआ कि सेरेगारजी सिंगप्प गौड़जी से कटाये गये लकड़ी के टुकड़ों को लाने के लिए कुछ मजदूरों के साथ जंगल गये हैं। इस रहस्य को सेरेगारजी ने अपनी प्रेयसी को बता दिया था। गंगा ने अपने दो प्रियतमों में एक ओबय्य को बताया। उसे सुनाते समय उसके मन में यह भान नहीं था कि मैं रहस्य का उद्घाटन कर रही हूं। बात को मजे में कह

दिया।

सिगप्प गौड़जी की प्रशंसा के पात्र बनकर, पिताजी के ऋण से और चंद्रय्य गौड़जी की पीड़ा से मुक्ति पाने का यह अच्छा मौका अपने को मिला समझकर ओबय्य गंगा के घर से सीधे सीतेमने गया।

केल कानूरु नहीं गया!

१७

कत्तलेगिरि के नाले में जंगली सूअर का शिकार

विशाल संसार में बड़ी-बड़ी घटनाएं होती रहती हैं। घमासान लड़ाइयां होती हैं, साम्राज्य बरबाद होते हैं, किरीट लुढ़कते हैं, सिंहासन लोटते हैं, राज्य उठते हैं, उनकी शाखाएं बनती हैं। छोटे छोटे देश बनते हैं, राष्ट्रों के जीवन में बड़े-बड़े परिवर्तन होते रहते हैं। सजीव ज्वालामुखियों से नगर भस्म हो जाते हैं। अति प्रवाह से प्रांत बह जाते हैं। लाखों लोग मरते रहते हैं। मनुष्य के यंत्र-कौशल से रेगिस्तान नंदनवन बन जाते हैं। काव्यकलाओं की श्री वृद्धि होती रहती है। मरनेवालों की अपेक्षा पैदा होने वालों की संख्या बढ़ती रहती है। समुद्र गुस्से में होते हैं तो द्वीप डूब जाते हैं, दूसरे द्वीप उभर आते हैं। सूरज, चांद, ग्रह अनंत आकाश में किसी उद्देश्य से घूमते रहते हैं। चर्म चक्षु को अगोचर बने, यंत्र दृष्टि को दीखनेवाले तारों एवं नीहारिकाओं में अनल विप्लव होते रहते हैं। लेकिन इनके कारण विक्षुब्ध हुए बिना अपनी आत्मशांति की साधना में तन्मय रहता है हिमालय की गुफा में तप करने वाला विरागी! उस विरागी की तरह रहने वाले कुछ स्थान हैं सह्याद्रि की श्रेणियों में।

वे स्थान बड़ी गिरि-भित्तियों के बीच गंभीर, नीरव कंदराओं में निरंकुश रहते हैं। कानूर के समीप में 'कत्तलेगिरि' उनमें से एक है। उसका नाम ही उसकी स्थिति का सूचक है यानी 'अंधकारमय गिरि।' कत्तलेगिरि पर केवल दुपहर में सूरज की धूप पड़ती थी। वह धूप भी पेड़ों के सिरों पर पड़ती थी, उसके भीतर जाने के लिए गुंजाइश नहीं थी। इतने ऊंचे, इतने घने-बड़े वहां के पेड़ थे। उन पेड़ों के तल में उन दो गिरिपक्षों के बीच एक झरना सदा बहता था। वास्तव में वह बरसात में बहता था;गरमी के दिनों में वहां की जगह कीचड़ से भरी रहती थी। बरसात में पानी के बहने के कारण वहां कुछ स्थानों में बालू था जहां पैर रखने से आदमी कमर तक धंस जाते थे। उस झरने के प्रदेश में लाखों प्रकार की घास, केवड़े, बेंत आदि सैकड़ों विविध जलप्रिय शस्य गाफिल हो, खूब फूलकर खड़े थे। कुछ स्थान ऐसे निबिड़ थे कि वहां कुत्ते भी घुस न पाते थे। वहां जोंकों को तो चिरजीवन मिला था। खूब गरमी के दिनों में भी अन्य स्थानों में जब मरी-सी रहती

थीं यहां वे इतनी थीं कि पैर रखने को भी जगह नहीं थी। वेंत काटकर लाने के लिए जो जाते वे अपने साथ नमक और चूना ले जाते और वेंत काटना शुरू करने के पहले उनको अपने पैरों पर, घुटनों के नीचे, मल लेते थे। नतीजा यह होता कि जो जोंकें उनका खून चूसने के लिए जातीं वे विना खून चूसे लुढ़क जातीं; मगर तो भी कम से कम खून चूस ही लेतीं। अपनी अमरता में उनको इतना विश्वास था जिसकी कल्पना आदमी नहीं कर सकता! केवड़े की खुशवू के लिए, या पानी; परछाई की ठंडक के लिए या मेंढक आदि के शिकार के लिए 'दासर', 'कालिंग' 'नाग', 'केरे' नामक सर्प वहां रहते थे। मगर मच्छरों के लिए तो वह स्वर्गस्थान था। पंछी भूलकर भी उस ओर नहीं जाते थे। गरमी के दिनों में उस जंगल के जंतु वाघ से लेकर जंगली मुर्गी तक वहां पानी पीने आते थे।

कत्तलेगिरि की स्थिति उसके वातावरण के प्रभाव से ही मालूम हो जाती थी। शिकारी कोई उस प्रदेश में प्रवेश करता तो उसे लगता मानो उसने शीत-वलय में प्रवेश किया है और सर्दी का अनुभव कर रहा है। उसके वाद वड़ी गुफा में भी रोशनी कम दीखती, वन का झुटपुटा घना होता दीखता। मौन, निर्जनता का भाव, निश्छलता धीरे-धीरे अधिक होने से मन को सव सूना-सूना लगता, किसी एक पैशाचिक अमर्त्य दुनिया में प्रवेश कर गया है लगता उसे; भयंकरता नस-नस में रक्त की एक-एक वूंद में भी सरदी से सरदी मिलाती थी। मौन तो शव्द का केवल अभाव न होकर मानो सभाव होकर सुनाई पड़ता था। वन के अंधकार की मंदतम प्रभा की माया के प्रभाव से वहां के पेड़-पौधे सभी स्वप्न-मुद्रित के समान प्रेतवत् होकर दिखाई देते थे। मिट्टी में गड़ा हुआ शव सड़कर, पिघलकर रहते तथा कीड़े उसे पिलपिला करते समय जीव अगर लौटे तो उसे जैसा अनुभव होता वैसा अनुभव होता वहां गये हुए शिकारी को। सारांश यह कि आमतौर से उस पाताल सदृश नरक में कोई नहीं जाता था।

जंगल में सारे रात-भर घूमकर एक जंगली सूअर अपना पेट भर लेकर, उस दिन कत्तलेगिरि के नाले पर पधारकर सोया था। यानी, धूप की गरमी से वचने के लिए जैसे भैंसें कीचड़ में लोटती हैं वैसे ही वह लोट रहा था। मनुष्य के लिए नरक समान वह स्थान महाकाय के उस जंगली सूअर के लिए स्वर्ग के नंदनवन का जलक्रीड़ा-स्थान वन गया था। वह इतना लोटा था कि सारे वदन पर उसके शंख के जैसे रंग की कीचड़ पुत गई थी जिससे उसके वाल नहीं दीखते थे। वह इतना चिकना वन गया था। उसने वार-वार अपना मुंह कीचड़ में डाल दिया था जिससे वह ऐसा लगता था मानो आंख और दांतों को छोड़कर उसका सिर मिट्टी से वनाकर रखा गया है। अपाय की दृष्टि से वह भयंकर जानवर था, मगर देखने के लिए वह हास्यास्पद था। कीचड़ में लोटने से तृप्त हुआ वह चुपचाप यों ही पड़ा हुआ था; उसकी आंखें भी मुंद गई। जव

मेंढक फुदकते थे, कूदते-फांदते और टर-टर आवाज करते तब वह पलकें खोलता, फिर मूंद लेता। थोड़ी देर ही वह सोया होगा, इतने में अचानक लोगों के बोलने की ध्वनि सुनाई पड़ी। चौकन्ना होकर सूअर ने सुना। फिर किसी विपत्ति का भय न देखकर उदासीन हो गया। फिर मनुष्यों के बोलने की आवाज पास आती सुनाई दी। यकायक नाले में चारों ओर छोटे-छोटे जानवरों की भगदौड़ की आहट हुई। पीछे से एक कुत्ता जोर से भौंका। पहले पहल मदोन्मत्त सूअर ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। लेकिन कुत्ता चार-पांच बार लगातार जंगल के मौन पर तीर छोड़ने की भांति भौंका तो सूअर अपने शरीर को ऐंठकर उठा और घूमकर खड़ा हुआ। पहले के कुत्ते का भौंकना सुनकर चार-पांच कुत्ते दौड़कर झपटकर आये और सूअर को चारों ओर से घेरकर थोड़ी दूर पर खड़े हो भौंकने लगे। सूअर वहां से निकल जाना चाहता था। इतने में दो-तीन कुत्ते और आ धमके। चारों ओर से कुत्ते उसपर टूट पड़े तो सूअर ऐसा गरजा कि जंगल कंप गया। कुत्ते कुछ दूर पीछे हटकर खड़े हुए फिर उसे रोककर चारों ओर खड़े हो गये। फिर भौंकने लगे। जंगल का मौन सूअर के हुंकार से, कुत्तों के भौंकने से मथित हो गया। इतने में मनुष्यों की पुकार, चिल्लाहट सुनाई दी। तब सूअर ने सोचा कि यहां अब रहने में खैर नहीं है, फिर पैर को उखाड़कर पूरी ताकत लगाकर आगे बढ़ा। अब की बार उसने कहीं न रुकने का इरादा किया था, कुत्तों से डरकर मनुष्यों से डरकर। सूअर दस-बीस गज दूर भाग गया था। कुत्ते उसका पीछा कर रहे थे। मगर एक कुत्ता, जो बड़ा चालाक और दिलेर था, सूअर की पीठ पर कूदा और अपने दांत गाड़ दिये। अपनी रक्षा के लिए सूअर ने हुंकार करके प्रतिरोध एवं प्रतिहिंसा से ऐसा झटका दिया कि वह कुत्ता दूर जाकर गिर पड़ा और आहत हो गया। वह कराहने लगा। दूसरे कुत्तों ने युक्ति से अपने को बचा लिया। फिर उन्होंने सूअर का पीछा किया। सूअर उस नाले में भागते अपने को बचाने कहीं न ठहरकर तड़प रहा था। शिकार में पले कुत्ते सूअर को कहीं छिपने न देते हुए रोककर इस तरह भौंककर मनुष्यों को सूचना दे रहे थे, "हमने सूअर को छिपने नहीं दिया है, रोके रखा है।" थोड़ी देर में वह शव-सा पड़ा कत्तले-गिरि का नाला मनुष्यों के शोर-गुल से बकने वाले पागल की भांति शब्दमय हो गया था।

सिंगप्प गौड़जी के चोरी से कटाये लकड़ी के टुकड़ों को ले जाने के लिए कानूर से निकले साहुनियों का दल कत्तलेगिरि के नाले के पास से गुजर रहा था, तब उनके साथ आये हुए कुत्ते अचानक भूमि को सूंघकर, 'हवा पकड़ते,' खूब जोर से, उत्साह एवं उद्वेग से नाले में खोज की दृष्टि से इधर-उधर घूमने लगे। लोगों को मालूम हो गया कि कुत्तों को शायद किसी जानवर के मिलने की 'हवा लगी' है। सभी जमीन की तरफ देखने लगे। हलपैक के तिम्म ने कहा, "यहां देखिये

पुट्टे गौड़जी, सूअर के पग का निशान ! आज सवेरे गया है !" पुट्टण्ण और बाकी सब लोगों ने वहां जाकर देखा। सेरेगारजी ने साक्षात् सूअर को देखे हुए के समान हर्षित होकर कहा, "करें क्या ? यह काम न होता तो एक शिकार मिल जाता ! है न गौड़जी ?"

घाट के एक मजदूर ने कहा, "देखिये, यहां उसने अपनी सूंड घुसेड़ी थी !" कुछ दूर जाकर एक जगह वह झुका।

"हां जी, जंगली सूअर ! उसकी टांग के निशान !" बैरे ने कहा, "ये देखो। ढोरों के खुर के निशान की भांति है।"

इतने में कत्तलेगिरि के नाले में कुत्ता भौंका। सब चौंककर आंखें फाड़कर, कान लगाकर सुनते खड़े रहे। जंगल में पूर्वाह्न की धूप में पेड़ों की घनी छाया जमीन पर ऐसी पड़ी थी कि जैसे स्याही पोत दी गई हो। पास में उड़ने वाली एवं गाने वाली 'पिकलार' चिड़िया का चहकना सुन पड़ा था।

कुत्ता एक बार भौंका, फिर भौंका, दो बार भौंका, "भौं-भौं।" "वौ-वौ।"

"टाइगर है न?" पुट्टण्ण ने धीमी आवाज़ में पूछा।

'हां जी," धीरे से अनुमोदन किया हलेपैक के तिम्म ने।

"खामखाह वह भौंकने वाला नहीं है जी ! सूअर को देखने के बाद ही ऐसा भौंका है !" बैरे ने कहा।

इतने में कुत्तों के 'वौ, वौ; भौं, भौं, कुंइ कुंइ" आदि नाना प्रकार के स्वर सुनाई दिये। तिम्म का दिल मानो मुंह को आया। पुट्टण्ण को निर्देशित करके जोर देकर धीमे स्वर में उसने कहा, "कुत्तों ने सूअर को रोक रखा है देखिये जी ! भागो ! दौड़ो !" वह इतना कह ही रहा था कि कुत्तों के भौंकने की आवाज को भी मान करके सूअर का हुंकार सुनाई पड़ा ! पुट्टण्ण तुरंत कत्तलेगिरि के नाले की ओर तीर की तरह भागा। "हाय रे, मैं बंदूक छोड़ आया रे" कहकर तिम्म इधर-उधर ठहरे बिना चहलकदमी करने लगा। घाट के मजदूर तो "यहां आओ, वहां जाओ" कहते आसानी से चढ़ने योग्य पेड़ों को खोजने लगे।

पुट्टण्ण उसी ओर आंख मूंदकर गया जिस ओर से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आ रही थी। आवाज़ तो कत्तलेगिरि के नाले की ओर से आ रही थी। उसका मन सूअर पर केंद्रित था। कुछ जगह वह सीधा नहीं जा सकता था; कभी-कभी बहुत झुककर, कभी-कभी रेंगकर जाना पड़ता था, बेल, पेड़-पौधे, कदम-कदम पर रास्ता रोकके खड़े थे। जोंक लगकर खून चूस रहे थे। इस ओर उसका ध्यान ही नहीं था। उसकी सूती टोपी जब से बनी थी तब से धुलाई नहीं गई थी। तेल की स्निग्धता से अलकतरे के समान काली बनी उसकी 'हासन की टोपी' की दरार से निकलकर उसके बाल उड़ रहे थे, गाफिल। बीच-बीच में वह गिरना चाहती थी, पर वह उसे सिर पर जोर से दबाता आगे बढ़ रहा था। उसको

मालूम हो गया कि अपने हुंकार से सूअर ने कुत्तों को भगा दिया है और वह अकेला होगा।

पुट्टण्ण बड़ी सावधानी से उस नाले के प्रदेश में घुसकर उस जगह के नज़दीक पहुंचा जहां सूअर और कुत्तों का समर छिड़ा हुआ था ! सूअर भी उसको दिखाई पड़ा। उसे मारने के लिए उसने तुरंत बंदूक उठाई। तुरंत कुत्ते मनुष्य की निकटता से और भी निडर हो चारों ओर से हमला करने में लग गये। उस जानवर को सताने लगे चारों ओर से। इसलिए उसने बंदूक के घोड़े को नहीं दबाया, वह रुक गया। क्योंकि ऐसे समय में कई शिकारियों ने उतावलेपन से कुत्तों को मार डाला था। इसलिए वह ऐसे मौके की ताक में था कि कुत्ते कुछ दूर अलग हट जाएं ताकि मैं गोली से सूअर को उड़ा दूं। मनुष्य के होने का सूअर को भी पता लग गया था, वह भी फरार होने के लिए खूब ज़ोर से भागा। तब कुत्ते यदा-कदा पीछे पड़ जाते थे। सूअर से दूर होते। वहीं मौका ताककर पेड़ों और झुरमुटों के बीच में से चमककर जाते हुए सूअर पर गोली दाग दी पुट्टण्ण ने। दूसरी गोली भी बंदूक की नाली से छूट चुकी थी। बंदूक की आवाज़ सुनकर कुत्ते और भी रणभेरी सुने हुए सैनिकों की तरह मृगयावेश से सूअर का पीछा करने लगे। पुट्टण्ण ने भी पीछा किया। मगर उस घने नाले के प्रदेश में वह दूर तक पीछा न कर सका। हांफते हुए वह खड़ा हो गया। सूअर और कुत्तों की आवाज़ धीरे-धीरे कानों से ओझल होकर दूर हो गई।

सूअर को गोली जिस स्थान पर लगी थी उस स्थान पर जाकर पुट्टण्ण जांच करने लगा कि खून गिरा है कि नहीं। एक जगह पत्ते पर खून गिरा था उससे उसको यकीन हो गया कि गोली सूअर को लग गई है। "होय !" कहकर उसने ज़ोर से पुकारा "होय !" कहकर दूर से तिम्म ने जवाब दिया। जंगल नीरव था। उसने कहा, "यहां आओ।"

तिम्म यह तय करके दौड़ता आया कि सूअर गिर गया है। क्योंकि सभी जानते थे कि पुट्टण्ण का निशान-कभी नहीं चूकता। वह एक अंधविश्वास भी हो गया था। पीछे से 'हो-हो' कहते सेरेगारजी, बैरा पता लगाकर आये। घाट के डरपोक मजदूरों में कुछ सूअर का भयंकर हुंकार, कुत्तों का बेशुमार भौंकना, बंदूक की टंकार सुन, घायल सूअर अपनी ओर ही आ जाय, इस डर से वृक्षालिंगन के लिए तैयार हो गये थे। उनमें सबसे बड़ी तोंद का सोम एक मोटे 'नंदी' पेड़ पर चढ़ने की कोशिश करते हुए बार-बार फिसल पड़ता। उसे देखकर किसी को हंसी नहीं आई। क्योंकि सभी भयग्रस्त थे। उनका अपना-अपना कर्म उनके साथ था। कुत्तों का भौंकना, सूअर का हुंकार थम गया था। पुट्टण्ण की पुकार, तिम्म की स्वीकृति की ध्वनि 'ओ' सुनकर घाट के मजदूरों की जान में जान आ गई। वे धीरे-धीरे वहां पहुंचे जहां से पुट्टण्ण बुला रहा था।

सबने मिलकर गोली का गिरा निशान ढूंढा। पहली गोली कड़क टोटे की थी, दो-तीन छर्रे पेड़ों को लगे दीखे। दूसरी गोली ठीक निशाने की थी। किसी पेड़ को या पौधे को लगी दिखाई नहीं दी। बहुत देर जांच करने के बाद तय किया कि गोली सूअर को लगी है, मगर ऐन जगह पर नहीं, इसीलिए वह भाग गया है।

वहां गिरे खून को सोम जैसे देखता वैसे-वैसे उसके मुंह में पानी आता। क्योंकि मांस उसको प्राण से भी प्यारा था। वह उसे गुड़ से भी ज्यादा पसंद था। उसकी तोंद का कारण ज्वर का गट्ठा था, तो भी सभी देहाती यही कहते थे कि उसके मांस खाने का परिणाम ही बड़ी तोंद का कारण है। उस पर भी अपने मांस खाने की अत्याश को छिपाकर रखने की शक्ति उसमें नहीं थी; हुनर भी। एक बार की बात है; बड़े हिरन को शिकार में मारा था, उसके मांस को सबमें बराबर-बराबर बांटा गया था। मगर उसके हिस्से का मांस उसको पर्याप्त नहीं हुआ। दूसरे के हिस्से का मांस चुराकर उसने खाया था, इससे वह सबकी निंदा तथा हंसी का पात्र बन गया था।

"अब क्या किया जाय? कहिये।" पुट्टण्ण ने कहा।

"थोड़ी दूर जाकर देखें; कुत्ता नहीं आया।" सेरेगारजी ने अपनी राय दी।

"हां जी, वहां मारकर गिर गया हो तो? तो! एक सूअर मुफ़्त का जायगा! उसकी न जान बच पाई, न वह हमें मिला। ऐसा हुआ।" बैरे ने कहा।

"हां तो! आज के काम के लिए देर हो जाय तो गौड़जी हमें यों ही नहीं छोड़ेंगे।" कहकर पुट्टण्ण ने जिस काम के लिए वे आये थे उसकी याद दिलाई तो सबके मुंह पर उदासी छा गई। वे निराश एवं निरुत्साहित भी हो गये।

"कमबख्त सूअर! आज ही क्या उसको हमारे मार्ग में आना था! गौड़जी अगर घर में होते तो कहा जा सकता था कि कल लकड़ी के टुकड़े लायेंगे। मर जाने दो! जायं, चलो, कुत्तों को बुलाओ," तिम्म ने हताश होकर कहा।

सबने अनिच्छा से अपनी स्वीकृति दी। पुट्टण्ण 'कुर्रो-कुर्रो' कहकर कुत्तों को बुलाने लगा।

खून को बड़ी ही आशा से देखते खड़े रहे सोम की छाती में आग-सी लग गई। वह करुणा जगाने वाली ध्वनि से मुंह चौड़ा करके चिल्लाया, "हाय रे मालिक, उस सूअर को छोड़कर जाना? देखते नहीं कैसे खून बह गया है! सूअर कहीं मर के गिर गया होगा! थोड़ी दूर जाकर देखें, वह न मिले तो जायं?"

सबका मन भी वही कह रहा था। तो भी सोम के लिए मानो सब खून का निशान देखने खोजते चले। खून एक जगह ज्यादा गिरा था, फिर थोड़ी दूर कुछ भी नहीं। सूअर रुक गया है, सो भी मालूम हुआ। जहां वह खड़ा था वहां

उसका खून जम गया था। इस तरह खोजते वे आगे बढ़े तो एक गोली की आवाज आई।

पुट्टण्ण ने कहा "अरे, किसी और ने हमारे सूअर को मारा क्या ?" इतने में बहुत दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आकर कानों में पड़ी।

सब लोग गोली की आवाज जिस ओर से आई थी उसी ओर गये। जैसे-जैसे आगे बढ़े वैसे-वैसे कुत्तों का भौंकना साफ सुनाई देने लगा। सबके कदम और तेज हो गये।

कुछ दूर जाने के बाद कुत्तों का भौंकना सुनाई नहीं दिया। लोगों की बातें सुनाई पड़ीं। सेरेगारजी ने चारों ओर घूमकर देखा और कहा, "पुट्टे गौड़जी, हम वहीं पहुंच गये हैं जहां लकड़ी के टुकड़े काटकर रखे गये हैं।"

जाकर देखते हैं सीतेमने सिंगप्प गौड़जी का पुत्र कृष्णप्प, उसका नौकर किलिस्तर (ईसाई) जाकी और दस-बीस मज़दूर लकड़ी के टुकड़ों की रक्षा के लिए आये हैं। इनके कुत्ते उनके चारों ओर हुई चोरी या डाका मानो सूचित करने के लिए चक्कर काट रहे हैं ! पुट्टण्ण को देखते ही टाइगर दौड़कर उसके पास गया और उसके वदन पर कूद-कूदकर उसने अपना संतोष दिखाया।

१८

किलिस्तर जाकी और टाइगर कुत्ता

हूवय्य को देखने के लिए चंद्रय्य गौड़जी मुत्तल्ली आने वाले हैं, यह समाचार पाते ही सिंगप्प गौड़जी सवेरे बहुत जल्दी उठकर अपने घर गये थे, क्योंकि वे चंद्रय्य गौड़जी से मिलना नहीं चाहते थे। वहां आये हुए ओबय्य से यह जानकर कि अपने कटाये लकड़ी के टुकड़ों को चंद्रय्यगौड़ जी ने ले जाने के लिए अपने आदमी भेजे हैं सिंगप्प गौड़जी आग-बबूला हो गये और उन्होंने अपने पुत्र कृष्णप्प को अपने नौकर किलिस्तर जाकी तथा मजदूरों के साथ लकड़ी के टुकड़ों की रक्षा के लिए भेजा। उन्होंने भीष्म प्रतिज्ञा की थी, "लाशें गिर जायं तो परवाह नहीं, लकड़ी का एक टुकड़ा भी वे घर न ले जाने पावें, कि जो कुछ भी होगा वह सब मैं देख लूंगा। इसमें अगर मेरा घर बिक जाय तो चिंता नहीं।" ताकतवर, गुंडा, धूर्त किलिस्तर जाकी 'लाश गिरे तो भी चिंता नहीं' सिंगप्प गौड़जी के इस कथन का अर्थ 'लाश गिरना ही चाहिये' लगाकर दृढ संकल्प करके निकला था।

वे सब लकड़ी के टुकड़ों के पास आये ही थे कि कुत्ते सूअर का पीछा करने आये। सूअर चोट लगने से और थकावट से धीरे-धीरे भाग रहा था। कृष्णप्प ने उस पर एक गोली और दाग दी। सूअर मर के गिर पड़ा। कुत्ते उस पर टूट पड़े और लगे नोचने।

कृष्णप्प को मालूम हो गया कि कुत्ते कानूर के हैं। मगर किलिस्तर जाकी की सलाह के अनुसार सूअर को एक ओर हटाकर पत्तों से उसे ढक दिया गया और उस पर कंबल बिछाकर जाकी बैठ गया। कुत्ते नजदीक आये तो लाठी से उनको मार भगाया। तो भी वे वहीं चक्कर काटने लगे। पुट्टण्ण के वहां आते ही टाइगर उसके पास जाकर उस पर कूदता और जाकी जहां बैठा था उस ओर जाता पूंछ हिलाकर मानो सूचित करता 'देखो, सूअर यहां है!'

क्षणमात्र में अनुभवी पुट्टण्ण को सारी घटना समझ में आ गई। बंदूक की गोली की आवाज जो सुनी गई थी वह कृष्णप्प के गोली दागने की आवाज़ होनी चाहिये। सूअर मर गया होगा। उसे वहां के लोगों ने छिपाया होगा। क्योंकि सूअर अगर आगे गया हुआ होता तो कुत्ते वहां न ठहरते; उसका पीछा करते गये

होते। कुत्तों का उद्वेग और चाल, चलने की रीति उसके अनुमान का समर्थन करती थी। वहां लोगों के चेहरे भी रहस्य को बनाये रखने की बात बता रहे थे। सब चुप होकर, आगे क्या होगा, उसकी निरीक्षा करते खड़े हैं।

इतना जानते हुए भी, अनजान की तरह पुट्टण्ण ने आदर से "कृष्णप्प गौड़जी को नमस्कार!…क्या शिकार के लिए आये थे?" पूछा। उसके चेहरे पर मुसकान खेल रही थी।

कृष्णप्प ने भी विनोद से कहा, "नमस्कार।" फिर शिकार की बात का समर्थन किया। वाणी में ललकार थी। किलिस्तर जाकी की तरफ चट से एक बार घूमकर देख, फिर पुट्टण्ण से बोला, "दो बार गोली की आवाज सुनाई पड़ी। तुम्हारी तरफ के लोगों ने दाग दी थी क्या?"

"हां, मैंने ही दागी थी सूअर पर। इस ओर ही वह आया भाई! इधर से एक गोली की आवाज़ आई। किसने दागी थी?"

"एक आवाज तो सुनाई पड़ी इस ओर। किसने दागी थी, मैं नहीं जानता।"

"हमारे कुत्ते यहीं हैं।" कहकर पुट्टण्ण ने शक से जाकी की ओर देखा।

"अब आप लोग आये, ये लोग भी बस अभी आये हैं।" कहा जाकी ने फिर लाठी घुमाकर अपनी ओर आने वाले कुत्तों को दुतकारा। टाइगर दूर कूदकर खड़ा हो गया। फिर जाकी की ओर देख भौंका।

पुट्टण्ण और सेरेगारजी कुछ अप्रतिभ हुए। कोई नहीं होगा, लकड़ी के टुकड़ों को आसानी से ले जाएंगे, वे सोचकर आये थे, परंतु इतने लोगों को वहां देखकर आश्चर्य हुआ। उनमें भी किलिस्तर जाकी को देखकर दंग रह गये! वह लफ़ंगा, खून करने के लिए भी आगा-पीछा न देखने वाला, न करने वाला था जाकी! कम से कम, ऐसी हालत में लकड़ी के टुकड़ों को ले जाना मुमकिन नहीं, उन्होंने मन में ही तय कर लिया।

बखेडा, गड़बड़ करने में पुट्टण्ण किलिस्तर से कम नहीं था। उसकी न घर-गिरस्ती थी, न स्त्री थी, न संतान। आखेट में बाघ-सुअर के साथ भयंकर खिलवाड़ करके भी वह पार हो गया था। जब चाहे तब रात-दिन की परवाह किये बिना बंदूक कंधे पर रख जंगल में घूमा करता था। कई रातें जंगल में बेफिक्र सोचकर बिताई थीं। भय क्या है, वह जानता ही न था। सूअर के दांत के कई निशान उसके बदन पर थे। अप्रतिम साहस, पराक्रम तथा धूर्तता में वह दैत्य के समान बेजोड़ था। मगर जाकी की तरह मान-मर्यादा, आदर-समान छोड़कर बुरी जिंदगी बसर किया हुआ नहीं था। जाकी कसाई था, और बड़ा पियक्कड़ भी था। उसकी सूरत के मूलाधार थे अज्ञात एवं असंस्कृत जीवन। एक-तरह से उसमें एक तरह का 'सूअरपन' था। पुट्टण्ण में जो नय-विनय, संस्कृति की गौरव बुद्धि आदि गुण थे वे जाकी में नहीं थे किंचित् भी। बड़े-बड़े वृक्ष की शाखा की गांठ जैसी ठूंठ

उसकी टांगें और हाथ, काला शरीर, चेचक के दागों से भरा चेहरा, लंबी-लंबी गुच्छेदार मूंछें, होंठों को पीछे हटाकर आगे बढ़े दांत, लाल कपड़े से लपेटा हुआ कड़े पत्थर-सा गंजा सिर, कराल भौंहे, कर्कश दृष्टि की काली आंखें, चपटी नाक —ये सभी उसके अंग-प्रत्यंग, उसकी क्रूरता, भीषणता, निःसंकोचता की गवाही दे रहे थे। पुराणों का काल होता तो उसे हिडिंब, बकासुर, विराध आदि राक्षसों की जाति में समाविष्ट कर सकते थे। मतांतर से उसका राक्षसी भाव तनिक भी कम नहीं हुआ था। उसके बदले हिन्दू समाज के विधि-नियमों-बंधनों से मुक्त होकर देहात में ईसाई समाज के अभाव के कारण उसके संयम के नियमों में फंसे बिना स्वच्छंद जीवन से वह दुगुना किरात बन गया था। कहते हैं कि तीर्थ-हल्ली में जिस पादरी ने उसे ईसाई बनाया था उसी का खून करने वह गया था! क्योंकि ईसाई धर्म में शामिल होने पर पैसे देने के वादे से वह पादरी मुकर गया था! यह भी कहा जाता है कि उसे ब्रांडी पीने के लिए भी पैसे मिलेंगे, इस विचार से वह ईसाई बना। पादरी से पैसे न मिलने से उसे छुरी मारकर खतम करने के लिए गया था! वह पुलिस की आंखों से बचकर वहां से भागकर सीतेमने आकर कुछ वर्षों से रहता था। सिगप्प गौड़जी ने अपने दल में ऐसे एक आदमी का रहना आवश्यक मानकर उसे खाना-कपड़ा देकर रख लिया था।

दो-तीन कुत्ते एक जगह जमीन पर घने पड़े-पत्तों पर से कुछ चाट रहे थे। सोम वहां गया और देखकर कहा—"पुट्ट गौड़जी, कहते हैं न, सूअर को नहीं मारा, यहां आकर देखें।" इतनी खुशी हुई थी उसे कि मानो उसने चोरों का पता लगाया है।

पुट्टण्ण, रंगप्प सेट्टजी, तिम्म, बैरा, सब वहां गये और देखा। कृष्णप्प की तरफ वाले जहां खड़े थे वहां से हटे बिना आपस में आंखों से बातें करते रहे।

पुट्टण्ण ने कहा, "कृष्णप्प गौड़जी, यहां आइये।"

कृष्णप्प ने बिना हिले ही कहा, "क्यों?" उसकी ध्वनि में विरोध था, प्रति शोध था। ललाकार थी।

सेरेगारजी ने गुस्से से कहा, "क्यों जी, यहां आकर देखिये। सूअर को नहीं मारा, कह दिया हो गया? झूठ क्यों बोलते हैं? यहां खून गिरा हुआ है। सूअर गिरा हुआ था, घायल हुआ-सा दीखता है!"

सूअर पर कंबल बिछाकर बैठे हुए जाकी में आवेश चढ़ने लगा था। वह जानता था कि वहां से उठकर जाने से कुत्ते पोल खोल देंगे। इसलिए वहीं बैठे-बैठे उसने कहा, "आप क्या कहते हैं जी? इत्मीनान से बोलिये! आपके सूअर की लाश हमें क्यों चाहिये? ज्यादा बो···" बात पूरी भी कह नहीं सका, झट से कूदकर दूर जाकर खड़ा हुआ। तभी उसका कंबल हिल गया था। उसके नीचे रहे सूखे पत्तों में आहट हुई और कंबल गुब्बारे की तरह ऊपर उठा और एक

मिनट में आगे बढ़े कुत्ते उस पर टूट पड़े। कंवल गिर गया। सूखे पत्ते सरक गये। घायल सूअर का लोटना दीख पड़ा। आग बबूला हुआ टाइगर उसकी गरदन पर जोर से काटकर भौंक रहा था। डर से जाकी दूर भाग गया। यह देखकर पुट्टण्ण को राज़ मालूम हो गया। उसने तुरंत बंदूक का निशाना लगाया। मगर सूअर भाग नहीं सकता था। इसलिए उसने बंदूक नीचे रख दी। फिर अपनी जेब से चट से एक बड़ी छुरी निकालकर, कुत्तों के बीच में से आगे बढ़कर गया और सूअर की गर्दन में पूरे जोर से छुरी भोंक दी। गरम लोहू फूट पड़ा और उसका हाथ लोहू से लाल हो गया!

कृष्णप्प के तरफवालों ने सूअर को छिपाने की गड़बड़ी में नहीं देखा था कि वह अभी मरा है या अभी कुछ जिंदा है।

सूअर अपना बदन झाड़कर कुछ देर में ढेर हो गया। पुट्टण्ण खून से लथपथ छुरी को ज़मीन पर पटककर दूर खड़े हो हांफ रहा था। मगर उस जानवर पर कुत्ते अपना गुस्सा उतार लेने में मशगूल थे। दूर भागा हुआ जाकी फिर सूअर पर अपना हक जमाने के लिए जोर से आ धमका और लाठी घुमाकर कुत्तों को भगाके सूअर के पास खड़ा हो गया।

सेरेगारजी चिल्लाये, "ये कुत्तों को क्यों भगाते हो?" फिर जाकी ने कड़ी आवाज़ में अपने लोगों को आज्ञा दी—"आ जाओ यहां, सूअर के पैर बांधकर ले जाओ।" तो सेरेगारजी ने भी अपने लोगों को ऐसी ही आज्ञा दी।

"आ गये तो लाश गिरा दूंगा।" कहकर जाकी ने लाठी को मजबूती से पकड़ लिया।

कोई अनहोनी होगी समझकर कृष्णप्प ने कड़ककर कहा, "जाकी, जाकी, यहां आ जाओ।"

"रहने दीजिये सरकार। सूअर को जाना चाहिये या मेरी लाश को।" कहकर उसने कृष्णप्प की तरफ मुंह फिराकर भी नहीं देखा। टाइगर दूर खड़े होकर आंखें लाल करके जाकी को घूरकर देख रहा था। सेरेगारजी ने आज्ञा दी। पर जाकी की लाठी से डरकर कोई आगे नहीं बढ़ा।

सिर्फ बड़ी तोंदवाला सोम आगे बढ़ा, केवल मांस के लालच से। न धैर्य से, न ताकत से। उन दोनों में जो वहां थे सभी उससे बढ़कर थे।

आने वाले सोम को देखकर जाकी गरजा, "मत आओ; दूर जाओ!"

सोम ने परवाह नहीं की। उसका अनुमान था कि जाकी सिर्फ डरता है, इतने लोगों के बीच में मुझे नहीं मारेगा।

परंतु उसका अनुमान गलत निकला। जाकी ने लाठी को जोर से घुमाया। सोम ने बदन पर पड़ने वाली मार से बचने के लिए अपना हाथ ऊपर उठाया। चोट बायें हाथ को लगी। वह जोर से "हाय रे मर गया!" चिल्लाकर नीचे

खिसककर गिर पड़ा।

सेरेगारजी ने गुस्से से और भय से चिल्लाकर कहा, "पकड़ो! टैगोर! पकड़ो!"

सोम के गिरते ही पुट्टण्ण, कृष्णप्प, सब "जाकी, जाकी!" कहते धमकाते उसके पास जा रहे थे।

इतने में सेरेगारजी की आज्ञा "पकड़ो! टाइगर! पकड़ो!" सुनकर पहले से नाराज़ वह बड़ी जात का कुत्ता तीर की तरह दौड़कर जाकी पर टूट पड़ा। मगर जाकी कुछ पीछे कूदकर खड़ा हुआ और उसने जोर से लाठी को घुमाकर उसके सिर पर मारा। कुत्ता कराहकर नीचे गिर पड़ा।

"मार डाला रे कुत्ते को!" कहकर पुट्टण्ण दुखोद्वेग से चिल्लाकर, दौड़कर नीचे गिरे कुत्ते के पास गया और उसकी ओर सिर झुकाए बैठा रहा।

कृष्णप्प ने "सिर फिर गया है क्या तेरा?" कहकर जाकी के हाथ से लाठी छीन ली।

टाइगर निश्चल था। सिर पर पड़ी मार से उसकी खोपड़ी टूट गई थी। उसके रेशम-से सफेद बाल खून से भीगकर लाल हो गये थे। मुंह से, नाक से खून बह गया था। प्राणों का कोई निशान नहीं था। उसकी खुली कांच-सी आंखें पुट्टण के हृदय में आग सुलगाती रही थीं। उसने कुत्ते के सिर पर हाथ फेरा। टोपी से हवा की। "टाइगर! टाइगर!" कहकर पुकारा। रुदन के स्वर में कहा, "बैरा! बैरा! पानी ले आओ।" बैरा दौड़ा।

सेरेगारजी और कृष्णप्प सोम को उठाकर उसके हाथ पर पट्टी बांध रहे थे। बाकी लोगों में कुछ लोग पुट्टण्ण के इर्द-गिर्द, कुछ लोग सोम के इर्द-गिर्द खड़े थे। पर सब चुप थे। जाकी बोले बिना दूर जाकर खड़ा था। उसमें थोड़ा-सा विवेकोदय हुआ-सा था। रोपावेश के बदले अपमान, पश्चाताप उसमें अंकुरित हुए थे। उसका खुले फन का मृगीय धैर्य अब फन सिकुड़कर अधीर बन गया था।

धैर्य दो प्रकार के होते हैं। एक तो मृगीय और तामस। दूसरा दैविक और सात्त्विक। तामस धैर्य रागमूलक होता है, सो भी, क्षणिक उद्रेक से उद्दीपित होने-वाला। सात्त्विक धैर्य नीतिमूलक होता है। पहला घास की आग की तरह, दूसरा पत्थर के कोयले की आग की तरह। मृगीय धैर्य दैहिक बल पर खड़ा है; दैविक धैर्य आत्म-बल पर खड़ा रहता है। मृगीय धैर्य उसके बलवान विरोध के सामने झुक जाता है; सात्त्विक धैर्य कष्ट-विपत्ति आदि के विरोध से अधिक फूलकर उज्ज्वल बन जाता है। पहले को मृत्यु का भय होता है, दूसरे को नहीं। पहला दुष्ट वेश का, डरपोक होता है तो दूसरा क्रूस पर चढ़ने वाले ईसा का-सा अपार शक्तिवान्। तामस धैर्य उद्रेक कम होते ही सिर झुकाता है, इसीलिए जाकी मूक कुत्ते को मारकर अपने लोगों से भी तिरस्कृत होकर दूर खड़ा था।

बैरा एक बड़े पत्तल के दोने में नाले से पानी लाया। उसे पुट्टण्ण के कहे

अनुसार कुत्ते के सिर पर डाला। पुट्टण्ण ने टाइगर के मुंह में पानी डालने का प्रयत्न किया। मगर उसका मुंह नहीं खुला। उसकी दूर की आशा भी निकल गई। कुत्ता जियेगा या मरेगा, इस शक से उत्पन्न उद्वेग चरम सीमा तक पहुंच गया। रोष उगने लगा। वह भयंकर बन गया।

शिकारी कुत्ता का क्या है, पंच प्राण ! ईमानदार, सच्चा शिकारी कुत्तों को भाईचारे से देखता है। उसको तनिक भी संदेह नहीं रहता उसमें व्यक्तित्व के बारे में। उसे इस बात का विश्वास रहता है कि अपनी तरह का उसमें भी व्यक्तित्व होता है। वह कुत्तों के दुख को अपना दुख समझता है, कुत्तों को यदि पीड़ा होती हो तो वह समझता है कि मानो मुझे पीड़ा हो रही है। शिवाजी को अपने दाहिने हाथ समान जो प्यारा तानाजी था उसकी मृत्यु से जितना दुख हुआ उतना ही दुख शिकारी को अपने प्यारे कुत्ते की मृत्यु से होता है !

टाइगर मर गया है, यह निश्चित होते ही पुट्टण्ण आगबबूला हो गया। बदला लेने के हठ से वह ऊपर उठा। आंसू-भरे उसके नेत्रों में खून चढ़ गया। गुस्से से उसके होंठ कांपने लगे। चेहरा कराल कर्कश बना। मांस पेशियां तन गई। दृढ़ निश्चय उसके मुंह पर प्रस्फुटित हो गया। सूअर के खून से पहले ही लाल बने उसके हाथ ने, शरीर ने उसको और रौद्र बना दिया। वहां रहने वाले सभी आगे होने वाले दुरंत की शंका से डर गये।

पुट्टण्ण ने "कहां है वह छिनाल का लड़का !" कहकर घूमकर देखा। गुस्से से उसकी नाक फुफकारती थी। दीर्घ सांस से उसकी छाती फूलती-गिरती थी।

शेरेगारजी ने प्रार्थना के स्वर में कहा, "ज़रा सब्र कीजिये पुट्टेगौड़जी !"

"छोड़िये ! न मेरी पत्नी है, न मेरे बच्चे हैं।···उसको गोली से भूनकर··· फांसी होनी हो तो हो जाय···" कहकर पुट्टण्ण उस ओर गया जहां बंदूक रखी थी।

"सब्र कीजिये पुट्टेगौड़जी !···" तनिक ठहर जाओ पुट्टण्ण···" "न, न, दुहाई है।"····"तिम्म, बंदूक ले जाओ···।" इस तरह चारों ओर से उद्वेग की वाणियां सुनाई पड़ीं।

पुट्टण्ण ने अपनी बंदूक को अपने स्थान पर न पाकर और भी ज्यादा गुस्से से "बंदूक देते हो कि नहीं ?" गरजकर वहां रहने वालों की ओर लाल आंखों से देखा। बंदूक किसी के पास नहीं थी। हलेपैक का तिम्म उसे लेकर दूर-दूर जा रहा था। पुट्टण्ण पागल की तरह "रुकोगे कि नहीं ?" चिल्लाकर उसकी ओर निकल पड़ा तीर की तरह। तिम्म डरकर खड़ा हो गया। एक क्षण में बंदूक पुट्टण्ण के हाथ में थी।

"भागो जाकी !"····"जाकण्णा, भाग जाओ।"····"हाय, हाय !"···ना, ना, कसम खुदा की, ना, ना,···!" सब आर्तनाद करने लगे। जाकी तो अपनी जंग से

नहीं हटा।

पुट्टण्ण बंदूक को उठाकर जाकी की तरफ घूमा तो तुरंत सेरेगारजी और कृष्णप्प दोनों ने उसके पास "ना, ना" कहते जाकर उसे घेर लिया।

"पहले मुझे मारकर ही आपको आगे बढ़ाना चाहिए" कहकर सेरेगारजी ने बंदूक को मजबूती से पकड़ा; उसकी नली उसकी छाती से लगी थी। लोगों का 'बमबम', कुत्तों का भौंकना इनसे सारा जंगल बहरा बन गया था।

छुड़ा लेने का प्रयत्न विफल हो गया, पुट्टण्ण मूठ ढीला करके, बंदूक को सेरेगारजी के हाथ छोड़, फिर कुत्ते के पास जाकर बैठ गया। फूट-फूटकर रोने लगा। सारा रोप रुलाई में बदल गया। जाकी के खून के बदले उसने अपने अश्रुजल से कुत्ते को धोया। सारा जंगल बारिश के बाद की भांति नीरव बना था।

थोड़ी देर के बाद दीनता सूचक शोकतप्त ध्वनि से पुट्टण्ण ने बैरा को पुकारा, 'बैरा, यहां आ, आ जाओ।" बैरा आया तो उसने कुत्ते की लाश को दिखाकर कहा, "इसे कंधे पर ले चलो।" बैरे ने कुत्ते को कंधे पर ले लिया। पहले इसी तरह बैरे ने मरे बछड़े को ढोया था। इसीलिए इस मृत कुत्ते को कंधा देकर ले जाना उसको मेहनत-सा नहीं लगा।

आंख पोंछते हुए पुट्टण्ण उठकर सेरेगारजी के पास आया और अत्यंत शांत, नम्र वाणी से "दीजिये बंदूक सेरेगारजी" कहकर हाथ बढ़ाया। पुट्टण्ण पहले जो रोपमूर्ति बना हुआ था अब वही दुःख मूर्ति बना हुआ था। फिर भी सेरेगारजी को बंदूक को पुट्टण्ण को सौंपने का धैर्य नहीं हुआ। वे बोले, "रहने दीजिये, मैं ही लाता हूं।"

"दीजिये, मैं क्यों मारूं उस पापी को! भाड़ में जाय जीकर!"

सेरेगारजी ने बंदूक देने के पहले, उसकी नली को खोलकर देखा, उसमें टोटे नहीं थे।

"टोटे कहां हैं दीजिये।"

"न, मैंने नहीं निकाले।"

"तभी मैंने निकालकर रख लिये थे! लीजिये।" कहकर तिम्म ने दो लाल टोटे उसको दिये। पुट्टण्ण ने उनको नली में नहीं डाला। अपनी जेब में डाल लिया। फिर बैरे को इशारे से कहा, "चलो, उसके पीछे चलें।" फिर बंदूक अपने कंधे पर रखकर चला। कुत्ते मौन होकर उसके पीछे चलें। बैरा जा रहा था, मगर टाइगर का सिर उसकी पीठ पर लटकता था। कुछ कुत्ते बार-बार उसकी ओर देखते। पहले टाइगर ने उन्हींकी तरह बैरे के कंधे पर जंगली जानवरों के शव को देखा था। मगर उसकी दृष्टि में दिग्विजय की सूचना रहती थी।

अपराह्न का समय था। तो भी उस घने जंगल में ठंडी छाया अक्षत थी। कहीं एक जगह धूप पड़ी थी। सेरेगारजी, कृष्णप्प और बाकी लोगों ने बिना बोले

खड़े होकर देखा। कंधे पर बंदूक को उठाये आगे पुट्टण्ण, बैरा कुत्ते की सफेद लाश ढोता हुआ उसके पीछे, उनके इर्द-गिर्द छोटे-बड़े कुत्तों का झुंड ! वह एक भव्य श्मशान यात्रा के जुलूस की तरह था। वही शोक, वही मौन, वह गांभीर्य ! मगर मृत्युसूचक वाद्य नहीं थे। उसे देखकर जाकी का मन भी विक्षुब्ध हुआ था। उसकी देखी हुई अपनी जात वालों की श्मशान यात्रा इससे अधिक शोकपूर्ण और भव्यतर नहीं थी।

थोड़ी देर में पुट्टण्ण, बैरा और उनके कुत्ते नाले के बीच में आंखों से ओझल हो गये। तीर की तरह आये हुए सैकड़ों तोतों के एक हरे समूह ने जंगल की नीरवता को क्षणमात्र अपने गान से तोड़ दिया और चला गया।

हाथ पर पट्टी बांधकर बैठा हुआ सोम उस मरे सूअर की तरफ आशा से देख रहा था !

१९

मायाविनी गंगा

सुव्वम्म पहले पहल जव कानूर आयी थी तव एक दिन उसने छोटी वैठक में चंद्रय्य गौड़जी के वालों को कंघी से संवारने वैठी एक स्त्री को देखा। उसके भेस, पहनावे, मुखलक्षण से वह जान गई कि वह स्त्री दक्षिण कन्नड़ जिले वाली है। उसने जूड़ा वांधकर फूल की माला पहनी थी। उसके कानों में वालियां, नाक में नथ, हाथ में सोने के कंगन, सभी थे। अपने पति को एक परकीया स्त्री से वाल संवरवाते देखकर उस मूढ़ तवियत की स्त्री सुव्वम्म में प्रप्रथम हसद नहीं पैदा हुआ, मत्सर नहीं जनमा। उसके वदले उसमें कुतूहल पैदा हुआ। वाद को पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि वह गंगा है।

कुछ दिनों के वाद गंगा उसकी परिचिता वन गई। सुव्वम्म को गंगा और स्त्रियों से कुछ भिन्न-सी दिखाई पड़ी। इसका कारण उसको सूझा ही नहीं। गंगा पुरुषों के साथ स्त्री के लिए स्वाभाविक भीरुता-लाज को छोड़कर अधिक स्वतंत्रता से वरतती है, वातचीत में आचार-व्यवहार में भी कुछ अलग ढंग की अदा से, गंभीरता से पेश आती है। पुरुष भी उसके साथ ज्यादा आजादी से, नेह से, विना संकोच वरतते हैं। यह सव देखकर उसके प्रति प्रशंसा प्रकट करती और स्त्रियों की अपेक्षा उसी से अपने सुख-दुःख की वातें कहती सुव्वम्म अपने कष्ट एवं संकटों के अवसरों पर उसी से सलाह मांगती।

गंगा का मन दूसरा ही था। सुव्वम्म के कारण चंद्रय्य गौड़जी का प्रणय उसके प्रति कम होता गया। आखिर चुक भी जाने लगा। इसलिए सुव्वम्म से ऊपर ही ऊपर अधिक प्यार एवं स्नेह से रहती मगर अंदर ही अंदर वह उससे कुढ़ती थी। उसका हृदय खौलने लगा था। इसके अलावा सुव्वम्म कितनी ही असंस्कृत हो, मगर उसकी ग्राम्य सहज स्वाभाविक मुग्धता पर, परिशुद्धता पर उसको करुणा भी आती। वुरों की इच्छा होती है कि अच्छों को, भलों को अपनी तरह वना लें। मगर सुव्वम्म इस विचार में इतनी वेवकूफ थी कि गंगा की दुष्ट सूचनाओं को भी जान न सकी वह। कुल मिलाकर यह हुआ कि जव कभी फुरसत मिलती तव गंगा सुव्वम्म के घर आती और उससे वातें करती। सुव्वम्म भी कभी-कभी

उसके घर जाती, उसका दिया हुआ तांबूल खाती, ताड़ी पीती। इस प्रकार असंस्कृति-कुसंस्कृति के जाल में धीरे-धीरे अनजान में गिर रही थी, फंस रही थी।

कई बार नागम्माजी ने चेतावनी दी। मगर सुब्बम्म ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उसने सोचा कि नागम्मा असूया के कारण इस तरह कहती है। इतना ही नहीं, गंगा सुब्बम्म से मीठी-मीठी बातें करती, जायकेदार ताड़ी देती, इस प्रलोभन से सुब्बम्म मुक्त नहीं हो सकी। गंगा के घर जाकर, बातचीत करके अपनी ऊब दूर करले आने में उसकी ग्राम्य बुद्धि को कोई दोष नहीं दीख पड़ा। चंद्रय्य गौड़जी को यह मालूम हो जाने पर भी गंगा के स्नेह के कारण चुप थे। पर उनके दिल के तल में कसमसाहट नहीं थी, सो बात नहीं।

कई बार सुब्बम्म ने गंगा से उसके घर-द्वार, रिश्तेदार, पति आदि के बारे में पूछा था। जब कभी विवाह की बात आती तब सच्चाई को छिपाकर वह कहती कि वह गांव में हैं। सुब्बम्म में सूक्ष्म प्रश्न पूछकर पोल को खोल लेने की शक्ति भी नहीं थी।

उस दिन चंद्रय्य गौड़जी, नागम्माजी, पुट्टम्म सभी मुत्तल्ली गये थे। पुट्टण्ण आदि लकड़ी के टुकड़े लाने के लिए जंगल गये थे। घर में निंग का लड़का पुट्ट और दो-तीन घर के नौकर-चाकरों के सिवा कानूर में कोई नहीं था। विराम के लिए गंगा दुपहर घर आई। सुब्बम्म को परमानंद हुआ। अपनी बनाई ताड़ी, मछली देकर गंगा का सत्कार किया। दोनों पिछवाड़े में दरवाजे के पास बैठ दिल खोलकर बातें करती पान-सुपारी की टोकरी बीच में रखकर पान-सुपारी खाती बैठी रहीं।

घर की छाया पूरब की ओर तिरछा हो आंगन में पड़ी थी। आंगन के एक कोने में जहां धूप पड़ी थी वहां एक सूप में मट्ठे में सने मिरचे फैलाए हुए थे। मुंह धोने से रोज पानी जहां गिरा करता था वहां काली कीचड़ बनी थी। उसमें एक मुर्गी अपनी दस-बीस संतानों के साथ कुरेद-कुरेदकर कीड़ों को ढूंढ़ रही थी। मुग्ध कोमल-राजीव कुड्मल की भांति तभी जन्मे मुलायम परों से सुमनोहर दीखने वाले पुष्पसमान बच्चे चीं-चीं-चीं करते मां के इर्द-गिर्द ऐसे घूमते थे कि किसी एक बड़े कार्य में लगे हों। हल्के लाल रंग की उनकी टांगें कीचड़ से सने होने के कारण भद्दी दीखती थीं।

सुब्बम्म तथा गंगा ने कई विषयों पर बातचीत की। पिछले दिन घटी कहानी का गंगा ने पूर्वेतिहास पूछकर जान लिया। चंद्रय्य गौड़जी, नागम्माजी आदि के मुत्तल्ली जाने का कारण मालूम होने पर भी बार-बार, फिर-फिर पूछकर सुब्बम्म के मन को भड़काया।

"जो भी कहिये,आप तो ठहरी तीसरी पत्नी! इसीलिए मनमाने पीटते हैं।"

"उनका हाथ उठता है उनी नागी के कारण, उस रांड की वजह से।" कहकर

उसने नागम्माजी को गाली दी।

"अपने पति से कहिए कि उनको अलग बाहर रख दे।"

"कह दिया है मैंने भी···वह इस घर में रही तो मैं नहीं रहूंगी।"

"तो क्या कहा उन्होंने ?"

"कहा कि छुट्टी में हूवय्य आवे, तब देखें ···।"

"हूवय्य गौड़जी बड़े अच्छे हैं, देखिये···आपने उनको नहीं देखा है ?"

"देखा था···मुझे पहले पहल उन्हीं के लिए मांगा था, ऐसा समझ रही थी।···"

"हाय रे; वह भाग्य आपको कहां मिला ?" गंगा ने व्यंग्य से कहकर सुब्बम्म की ओर देखा। मगर सुब्बम्म उसकी बात का अर्थ न ग्रहण कर सकी। और आंगन में फिरते मुर्गी के बच्चों की ओर देख रही थी। गंगा ने अब तक अपनी गुप्त रखी जीवन कथा सुनाकर सुब्बम्म की मूढ़ता को भेदने का प्रयत्न किया।

"उन्हीं से विवाह करने की जिद पकड़ी थी क्या आपने ?" यह प्रश्न दुष्ट बुद्धि का, कुहकगर्भित था।

"हां···लेकिन मुझसे तो कहा गया कि वे विवाह नहीं करने वाले हैं।"

"सभी पुरुष ऐसा ही कहते हैं···पहले···बाद को···" कहकर गंगा ने अश्लील बात धीमी आवाज में कही। सुब्बम्म शरमाकर हंसी और गंगा भी हंसी।

"मैं इन पुरुषों को अच्छी तरह जानती हूं।···मैंने भी आपकी तरह एक पर भरोसा किया था, पर लगी दूसरे के हाथ···।"

"यानी ?"

सुब्बम्म के सवाल पर गंगा ने खिन्न स्वर में कहा, "हाय, मेरी कहानी आप सुनेंगी तो, न जाने आप क्या कहेंगी।···" फिर गंगा ने एक दीर्घ सांस छोड़ी। सुब्बम्म कुछ भी नहीं बोली। गंगा ने अपनी कहानी नमक-मिर्च लगाकर सुनाई। बीच-बीच में रोई भी। सुब्बम्म ने उस साहसी स्त्री की जीवनी बिना होंठ खोले, बिना बोले, बिना हिले सुनी।

गंगा के माता-पिता गरीब थे। मजदूरी करते थे, झोंपड़ी में कांजी पीकर जीवन बिताते थे। गंगा जब लड़की थी तब अपने ही गांव के, अपनी ही तरह गरीब कृष्णय्य सेट्टी नामक युवक से उसने दोस्ती की। धीरे-धीरे दोस्ती अनुराग में बदल गई, फिर प्रणय में। कृष्णय्य सेट्टी और गंगा दोनों काम-काज में, उद्योग-धंधे में एकसाथ रहने लगे। फिर दोनों ने आपस में बातचीत भी कर ली कि दोनों अपने जीवनसूत्रों को एक साथ बांटें और गृहस्थी करें। उसी गांव में तिम्मय्य सेट्टी नाम के एक साहूकार थे। उन्होंने चार-पांच शादी की थी। उनकी उम्र साठ वर्ष से भी अधिक की हो गई थी। फिर शादी करने की इच्छा प्रबल हुई। उन्होंने गंगा की मंगनी की। उसके माता-पिता गरीब थे। साहूकार से रिश्तेदारी करने

से अपनी गरीबी दूर होगी, इस विचार से गंगा के माता-पिता ने साहूकार की बात मान ली। प्रणयियों को यह मालूम होते ही दोनों ने मिलकर उस गांव से भाग जाने का निश्चय किया। मगर उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। गंगा को अपनी इच्छा के विरुद्ध बूढ़े तिम्मय्य सेट्टजी की पत्नी बनना पड़ा। तो भी उसका सारा प्रेम कृष्णय्य सेट्टी पर ही था। कृष्णय्य सेट्टी जब कभी समय मिलता तिम्मय्य सेट्टी के घर जाता और गंगा से बातचीत करके आता। तिम्मय्य सेट्टी को यह अच्छा नहीं लगा, उन्होंने कृष्णय्य सेट्टी को अपने घर न आने की आज्ञा दी। उसके बाद वह चोरी-चोरी से आने लगा। यह भी तिम्मय्य को मालूम हो गया तो उसने कृष्णय्य को धमकाया कि अब आओगे तो गोली मार दूंगा। एक दिन रात को आठ बजे कृष्णय्य सेट्टी यह जानकर कि तिम्मय्य सेट्टी दूसरे गांव गये हैं, उसके घर गया मगर तिमय्य सेट्टी दूसरे गांव नहीं गये थे। जानबूझकर गांव में खबर फैला दी थी कि वे उस दिन गांव में नहीं रहेंगे। वे उस दिन घर में थे कृष्णय्य सेट्टी के आने की ताक में। जब गंगा और कृष्णय्य सेट्टी एक कमरे में थे तब तिम्मय्य सेट्टीजी ने बंदूक में गोली भरकर, कमरे के बाहर खड़े हो, दरवाजा खटखटाया। गंगा ने सोचा कि बाहर जो दरवाजा खटखटा रहा है वह अपना पति नहीं है, उसने अपने प्रियतम को किवाड़ की आड़ में छिपाकर दरवाजा खोला। मात्सर्य से कोपोद्रिक्त वृद्ध पति की प्रलय मूर्ति को खड़े देखा।

"ह्याऽ! ह्याऽ! ह्याऽ!" कहती सुब्बम्म उठकर आंगन की ओर झपटी।

ये बातें करती जब वह बैठी थीं तब आकाश में एक गरुड़ आंगन की कीचड़ में मुर्गी के साथ चरने वाले छोटे-छोटे बच्चों की ताक में चक्कर काट रहा था। रुचिकर कृमि-भोजन में मग्न, आसक्त कुक्कुट कुटुंब ने उसे नहीं देखा था। गरुड एकदम बिजली की तरह उन पर जोर से टूट पड़ा। बच्चे 'चिय् चिय्' करते तितर-बितर हुए। कुछ पत्थरों की राशि के बीच की दरारों में छिप गये; कुछ अपनी पूरी ताकत लगाकर भय से भागने लगे। गरुड़ को पास आते देखकर मुर्गी अपने बच्चों को भगाकर ले गई। तो भी गरुड़ एक बच्चे पर झपटा। मगर उसकी आयु मजबूत होने से या मुर्गी के साहस से, या गरुड़ का निशाना चूक जाने से, या उसकी क्रियाशीलता से वह बच्चा बच गया। फिर एक बार गरुड़ ने एक दूसरे बच्चे पर हमला किया, मुर्गी उसे लात मार रही थी, सुब्बम्म 'ह्या ह्या; कह रही थी, तो भी वह उस बच्चे को अपने उग्रनखों के पंजे में पकड़कर उड़ गया, और उसके पंजे में फंसा मुर्गी के बच्चे का शिशु-प्रलाप धीरे-धीरे आकाश में विलुप्त हो गया। कुंकुमांकित शरीरी, धवलांकित वक्षी वह कृष्णवाहक स्वर्ग की अंगना चमककर आके कानूर के पिछवाड़े के आंगन में कीचड़ में विहार करते हुए उस मुर्गी के शिशु को उसके पूर्वजन्म के पुण्य ने मानो उठाकर वैकुंठ ले गया। गंगा और सुब्बम्म उसे असहाय हो अपनी आंखों से ताकती रह गई। पहले

कई वार गरुड़ को नमस्कार कर चुकी सुव्वम्म ने उस कुक्कुट-शिशु का आर्तनाद सुनकर, कोप-ताप से, करुणा से, पेट की जलन से उस विष्णुवाहक को शाप दिया तेरे कुल का सत्यानाश हो !" फिर मुर्गी की तरफ सुव्वम्म ने घूमकर कहा, "यह छिनाल अपने वच्चों को लेकर यहीं मैदान में मरती है।" इस प्रकार उसने मुर्गी की भर्त्सना की। छिपे मुर्गी के वच्चे फिर वाहर आये। मुर्गी फिर पहले की तरह उनके साथ कीचड़ में कीड़े कुरेदने लगी।

अपने परिवार का विनाश से, कई दिनों से अपने अंडों को सेंककर उत्पन्न किये वच्चों में से एक वच्चे की मृत्यु, नोच-नोचकर गरुड़ के खाते देख अपने वच्चों की याद से होने वाले दुख की कल्पना, इन सव वातों से कुक्कुटी माता का मन विक्षुब्ध हुआ-सा न लगा। वह कीचड़ को कुरेद-कुरेदकर वचे हुए वच्चों को कीड़े आदि खिलाकर, उनका लालन-पालन करने में ही तल्लीन थी।

सुव्वम्म और गंगा तांवूल रस को आंगन में थूककर, उसे लाल वनाकर, लौट स्वस्थान पर आकर वैठ गई। गंगा आधे में रुकी अपनी कहानी फिर सुनाने लगी।

ज्यों ही गंगा ने दरवाजा खोला त्यों ही तिम्मय्य सेट्टजी अंदर झपटकर आये और दरवाजा वंद कर दिया। दरवाजा खुलने पर उसकी आड़ में छिपा कृष्णय्य सेट्टी दरवाजा वंद करने पर प्रदर्शित विग्रह की तरह दिखाई पड़ा। तिम्मय्य सेट्टी की रोप-भरी वातों की सीमा पार कर चुकी थी। वे वंदूक की नली को कांपते खड़े कृष्णय्य सेट्टी की छाती से लगाकर खड़े हो गये। गंगा उनका हाथ पकड़कर जोर से चिल्लाया, "मेहरवानी करके छोड़ दीजिये। कृष्णय्य सेट्टी ने भी हाथ जोड़-कर प्राण की भिक्षा मांगी। तो भी गोली छुटी।

कृष्णय्य सेट्टी का खून करने से तिम्मय्य सेट्टी को आमरणांत कैद की सजा हुई। गंगा को व्यभिचारिणी कहकर घर से वाहर निकाला मया। वह दो-चार वर्ष दुख से विताकर, अंत में सेरेगार रंगप्प के साथ घाट के ऊपर आई।

अपने वैधव्य के कष्टों और वाद में हुए सुखों को गंगा ने सुनाकर अपने चलन का समर्थन करती हुई, सुम्वम्म की सहानुभूति पाने की कोशिश की और उस में वह कामयाव भी हुई। सुव्वम्म ने उसकी पूरी कहानी सुनी और उसके सारे कथन को मान लिया। उसकी मुग्धता में गंगा अपनी विदग्धता के विप की वूंद धीरे-धीरे घोलने में लगी रही।

गंगा की कहानी सुनने के वाद सुव्वम्म के मन में तव तक सुप्त कुछ वातें जगीं। वह खुद भी हूवय्य गौडजी को प्यार करती थी। मगर उससे विवाह किया चंद्रय्य गौड़जी ने। चंद्रय्य गौड़जी की दो स्त्रियां हो चुकी हैं। वह तीसरी स्त्री है। विवाह के समय किसी ने उससे नहीं पूछा कि तुम्हारी इच्छा क्या है ? चंद्रय्य गौड़जी पहले जैसे उसे चाहते थे अव नहीं चाह रहे हैं। उसके वदले मारने-पीटने लगे हैं। जव रात को वे दो ही रहते तव चूमकर वे उसका आलिंगन करते थे। मगर वह

उनकी खुशी की स्वार्थता के लिए, न कि सुब्बम्म पर के प्यार के लिए। बातें होतीं, पर प्यार से नहीं। साफ-साफ सोचने की ताक़त और चातुरी भी उसमें नहीं थी। अगर कोई उससे कहता "तो तुम सोच रही हो कि गौड़जी तुमको प्यार करते हैं?' तो वह झट कहती तो उससे 'झूठे कहीं के।' कहके गाली देती। सांप नया-नया अंडा रखे तो उन अंडों को तभी तोड़ दें तो उनमें बच्चे रहेंगे? लाल-पीला अंशमात्र रहता है। वे अंडे भी जब दुरुस्त रहते हैं तब कितने मनोहर एवं मुग्ध दीखते हैं! आगे चलकर उन्हींसे भयंकर जहरीले सांप पैदा होते हैं, कह दें तो ना समझ सचमुच विश्वास नहीं करेंगे। तो भी कलातर में ठीक समय आने पर उन्हीं अंडों से सांप निकलते हैं। सुब्बम्म के विचार उसी तरह अंडावस्था में थे।

मन ऐसा था, मगर मुंह दूसरा बोलता था। लकड़ी के टुकड़े लाने गये हुए लोग अभी तक खाने के लिए क्यों नहीं आये? इतना समय बीत गया, एक बार भी लकड़ी का टुकड़ा लेकर क्यों नहीं आये? मट्ठे की मिर्च की लिए खट्टा मट्ठा काफी नहीं हुआ इत्यादि।

इतने में रसोई घर में धडाम् से आवाज़ हुई; किसी के गिरने की जैसी आवाज! सुब्बम्म और गंगा दोनों दौड़कर भीतर गईं। देखती हैं: पीढ़े लुढककर पड़े हैं। उनके बगल में से पुट्ट उठ रहा है। वह इन दोनों को देखकर रोने लगा।

उस दिन मुत्तल्ली जाते समय वासु ने पुट्ट को उस पिल्ले की अच्छी तरह देख-भाल करने की आज्ञा दी थी जिसकी आंख में मुर्गी ने चोंच मारी थी। उसकी सुश्रूषा के लिए दूध मांगने पर सुब्बम्म ने इन्कार किया था। पुट्ट समय की ताक में था। आज उसने देखा कि रसोई घर में कोई नहीं हैं तो वहां जाकर वह चूल्हे के बगल में रखे मटके से दूध को चुराने का प्रयत्न किया। गिलास ऊपर अलमारी पर रखे हुए थे, उसके हाथ वहां तक नहीं पहुंचती थी। इसलिए पीढ़े पर पीढ़े रखकर उस पर चढ़कर गिलास निकाल लेना चाहता था। मगर हड़बड़ी में छोटे पीढ़ों को नीचे, बड़ों को ऊपर रखा था। उसके चढ़ते ही वे फिसलकर गिर गये और उसे चोट भी लगी। इतने में गंगा और सुब्बम्म वहां आ गईं। चोट की अपेक्षा भय से, करुणा तथा सहानुभूति पाने के लिए भी वह रोने लगा।

उसी समय पुट्टण्ण बैरे से टाइगर को बुलवाकर आ गया जिससे पुट्ट घूंसे से बच गया।

पुट्टण्ण ने बैरे को भोजन करके आने के लिये भेज दिया; उसने खुद नहीं खाया; मन खाना नहीं चाहता था, वह जायफल के संदूक से कपड़े निकालने लगा। वह संदूक उसका सर्वस्व बन गया था। उसमें बंदूक के सामान से लेकर उसके पहनावे तक के समान थे। वह उसका भंडार-सा था। अच्छे-अच्छे कपड़े तो नहीं थे उसके पास। विवाहादि के अवसर पर, तीर्थहल्ली वगैरह शहर जाते समय पहनने के लिए एक धोती थी जो उसके लिए 'चूड़ामणि' थी! उस वस्त्रचूड़ामणि

को बाहर एक ओर रख, बाकी तमाम वस्तुओं को, जो बाहर रखी हुई थीं, उस संदूक में भरकर रखा और उसे बंदकर ताला लगा दिया। फिर धोती को हाथ में लेकर खोलकर देखा। टाइगर की योग्यता से धोती कम कीमत की लगी जिससे उसे खेद हुआ। मगर उससे उमदा वस्तु उसके पास नहीं थी।

बैरा भोजन करके आया। टाइगर की लाश और कुदाल, फावड़ा आदि लेकर दोनों पहाड़ पर चढ़कर 'कानुबैलु' की तरफ चले। दस-बारह गज दूर जाने के बाद अपने पीछे-पीछे आने वाले कुत्तों को डपटकर पुट्ट को बुलाया और उससे पुट्टण्ण ने कहा. "उन्हें भात डलवा दो।" फिर वह आगे बढ़ा। कुत्ते मालिक के मन को ताड़कर, विषाद से लौटकर गये। पेड़ों की छाया पूरब की ओर लंबी होकर गिरने लगी थी। समय तिपहर से सांझ की ओर ढल रहा था।

'कानुबैलु' की ऊंची जगह पर एक गड्ढा खोदा। साथ लाई धोती में टाइगर की लाश को प्यार से आंसू बहाते धोती में लपेटकर, उसे गड्ढे में धीरे से सुलाकर पुट्टण्ण ने मिट्टी डालकर दफनाया। बैरे ने उसके बाद कांटेदार पेड़ों की डालियां काटकर दफन किये गये स्थान पर बिछाकर, उन पर पत्थर लाद दिया ताकि सियार आदि जंगल के जानवर उसे उखाड़ने न पावें।

पुट्टण्ण बगल में एक चट्टान पर बैठ गया; "मैं पीछे से आऊंगा" कहकर बैरे को कुदाल-फावड़े के साथ घर भेज दिया। बैरे को पुट्टण की चाल विचित्र-सी लगी। उसने नहीं सोचा था कि कुत्ते की मृत्यु पर मनुष्य इतना शोक कर सकता है। पुट्टण्ण टाइगर की लाश को धोती में जब लपेट रहा था तब बैरे ने अपने मन में सोचा कि वह धोती मुझे दी जाती तो अच्छा होता, पुट्टण्ण उसे बेकार मिट्टी में मिला रहे हैं।

हूवय्य को टाइगर पच्चीस रुपये देकर बेंगलोर से कुत्ता लाया था! पहले-पहल वह जंगल. शिकार, बंदूक की आवाज़ से डरता था। पुट्टण्ण उसे जंजीर से बांधकर जंगल ले जाने लगा। वह बंदूक की आवाज़ सुनकर घर की ओर भाग जाता था। पुट्टण्ण की ट्रेनिंग से वह धीरे-धीरे अच्छा, उमदा, शिकारी कुत्ता बन गया। वह आखिर में और कुत्तों का गुरु एवं मार्गदर्शक भी बन गया। टाइगर सूअर को रोक देता तो समझिये कि सूअर का शिकार क्या मजाल उसकी कि भाग जाय। दूसरे कुत्तों के भौंकने पर गौर न करने वाले शिकारी टाइगर का भौंकना सुनकर सावधान होते और तेज बनते। सबके मुंह में टाइगर की कीर्ति! वासु के लिए तो टाइगर मानो गौरव व अभिमान का जानवर था, और कुत्तों की अपेक्षा खाने की चीज़ों में उसे ज्यादा हिस्सा मिलता। हूवय्य जब कभी छुट्टी में घर आता तब हमेशा टाइगर उसी के पास रहता। वासु साबुन लगा-लगाकर उसका बदन धोता था जिससे उसके बाल रेशम-से हो गये थे। उसकी अगली टांगों को ऊपर उठाकर देखता तो वह उससे भी ऊंचा लगता; तब वासु को आश्चर्य होता। वासु

ने अपने लिए लाये हुए वेल्ट को काटकर उसके गले में पट्टी बांध दी थी। इसके लिए वासु को पिताजी से मार भी खानी पड़ी थी। टाइगर के घर आने पर पुट्टण्ण का शिकार करना दुगुना हो गया था। उसके लिए मसाला पीसकर रखने के लिए घर में कहकर वह शिकार के लिए उसे लेकर जंगल जाता। टाइगर के संबंध में जो वातें हुईं, घटनाएं हुईं उनकी याद पुट्टण्ण करते हुए चट्टान पर वैठा हुआ था।

सूरज धीरे-धीरे तरंगित पश्चिम गिरि की चोटियों की दिगंत की सीमा रेखा के पास आया। सांध्य का आकाश नारंगी की तरह पक्व होने लगा। विविधाकार के मेघों पर रंग चढ़ गया था जिससे वे मनोहर वन गये थे। पुट्टण चिंतामग्न वैठा हुआ चुपचाप उसकी ओर देख रहा था तो यकायक वह चकित हुआ। कुछ देर पहले उसके लिए उदास वनी पश्चिमी दिशा का आकाश कौतूहलपूर्ण हुआ। पुट्टण्ण ने देखा। टकटकी वांधकर देखा। हर्ष चित्त से "मेरा टाइगर स्वर्ग सिधार रहा है।" कह चट्टान पर खड़े होकर देखा।

एक मेघ कुत्ते का आकार का वनकर शाम की माया में सजीव-सा वना हुआ था। दूसरे दिन होता तो पुट्टण को ऐसा न दीखता। आज उसके भाव, कल्पना, आलोचना शक्ति सभी प्रवुद्ध हुए थे। इसलिए उसका अंतः करण ही आकारों की कल्पना करने में समर्थ वन गया था। इस तरह की उसकी स्थिति में सांझ के मेघ की रचना ने जो साधारण सूचना दी उसके मन को वह टाइगर की तरह दिखाई दी। उसको स्वर्ग, नरक, जीव, देव आदि के वारे में कोई स्पष्ट जानकारी नहीं थी। हरिकथाओं (कीर्तनों) से, भागवतों के खेलों से, भारत-रामायण की कथा के श्रवण से, हव्यय की वातचीतों से उसने कुछ भावों का संग्रह किया था। मरने पर आत्मा स्वर्ग या नरक को जाती है, यह सुनकर जान लिया था। टाइगर उसका अपना प्यारा कुत्ता था, उसने अपनी स्वामिभक्ति के लिए अपने प्राण दिये, इस-लिए उसकी आत्मा स्वर्ग को ही जायेगी, नरक को नहीं, इस तरह की कल्पना से, विचारधारा से उसे दुःख के वजाय आनंद हो रहा था, इसीसे उसको आश्चर्य हो रहा था। देखते-देखते सूरज डूब गया। वे मेघ जो कुत्ते का आकार तथा रंग प्राप्त किए हुए थे वे सब मिट गये। लेकिन पश्चिम दिशा तो उसके लिए स्वर्गीय वन गई थी; स्वर्ग वन गई थी।

उस दृश्य में तन्मय हुए पुट्टण्ण को तोंदवाले सोम का पास आना मालूम नहीं हुआ था। जव उसने "पुट्टे गौड़जी" कहकर पुकारा तव उसने चौंककर देखा। जाली की मार से उसके जिस हाथ पर घाव हो गया था उस पर पट्टी बांध दी गई थी। उस पट्टी से लपेटे हाथ को लेकर आया सोम उस झुटपुट में केवल आकार वन गया हो गया था। तव पुट्टण को संध्यास्वर्ग से स्थूल पृथ्वी पर उतारना पड़ा।

"सूअर को काट लिया गया। पूछ रहे हैं कितने हिस्से वनाये जाएं उसके मांस के ?"

सोम को पुट्टण्ण की मनःस्थिति, उसके भावजगत् की उन्नत अवस्था, समया-समय का विवेक, विचार कुछ भी मालूम नहीं था। उनको जानने की उसे जरूरत भी नहीं थी। वह आया था केवल सूअर के मांस के बंटवारे के वारे में नियमादि जानने के लिए। इसलिए उसने अपने स्वाभाविक मोटे ढंग से पूछा कि कितने हिस्से वनाये जाएं।

पुट्टण्ण ने अत्यन्त जुगुप्सा से कहा, "कुछ भी करो; मैं कुछ नहीं जानता।"

"अजी, देखिये; पहले आपने सूअर को गोली दाग दी थी। तव कृष्णप्प गौड़जी को वड़ा हिस्सा क्यों दिया जाय ?···" कहकर सोम लगा वकालत करने।

पुट्टण्ण ने विगड़कर कहा, "तुम जाते हो कि नहीं यहां से ! मैं वाद को···।"

"पूछकर आने के लिए भेजा···इसीलिए आया।"

"तू जायगा कि नहीं ! मांस पर जान देता है !" पुट्टण्ण ने और गुस्से से कहा।

"टाइगर के लिए हिस्सा करना चाहिये कि नहीं,पूछकर आने के लिए कहा।"

पुट्टण्ण वोला नहीं। उसकी छाती में कुछ चूभ रहा था।

"टाइगर का हिस्सा मैं लूं ?" गिड़गिड़ाकर सोम ने पूछा।

"अरे भाई, कुछ भी कर लो, जाओ, मरो ! वस, अव जाओ !"

पुट्टण्ण की स्वीकृति मिली समझकर वड़ी तोंद का सोम पहाड़ से उतरकर गया। सूअर के मांस में मरे कुत्ते का हिस्सा अपने लिए मांगने के लिए ही सोम वैरे से पुट्टण्ण का पता पूछकर 'कानुवैलु' आया था।

२०

सीता-हृदय

बाल दिनमणि की कोमल किरनें करोड़ों मीलों से चलते आकर मुत्तल्ली के घर के फाटक की देहलीज पर बैठी लक्ष्मी के सुंदर गालों पर चुंबन देकर खुश हो खेल रही थीं। वे सुनहरी किरनें पेड़ों की हरी चोटी पर, घर के खपरैलों पर, लाल मिट्टी के रास्ते पर भी गिरकर अपने निष्पक्षपात का अभिनय यद्यपि कर रही थीं तथापि उनकी एकमात्र महत्वाकांक्षा एवं खुशी उस नन्ही-मुन्नी बालिका के अधर, कपोल, गाल, माथा, आंख, लटों पर नाचने में और उनके साथ खेलने में थी जो जड़मति को भी मालूम होता था ! लक्ष्मी उन किरनों को अपने प्यारे हाथों से पकड़ने की कोशिश करती, अपने कपोलों को तरंग-तरंग समान बनाकर आह्लाद प्रदर्शन करती। दोनों बाजुओं के पेड़ों के बीच से होकर टेढ़े-मेढ़े गये, ओझल हुए रास्ते की ओर बार-बार आशा भरे नयनों से प्रतीक्षा करती बैठी थी। वह जैसे देख रही थी, दूर के कटहल के पेड़ के उस ओर से कुम्हार नंज अपने एक वर्ष की बच्ची को उठाकर, धीरे-धीरे कोमल धूप का मज़ा लूटते चलते आया। पिछली रात को ताड़ी की दुकान में पिशाच की तरह जो नंज था आज वही अपने शिशु को गोद में लेकर, अत्यंत सौम्यतम पिता बनकर पैदल आया और लक्ष्मी से पूछा, "क्यों बैठी है यहां देहलीज पर? "

"कहते हैं कि कानूर से···गाड़ी आनेवाली है। उसमें···वह···वह···वासय्य मामा, छोटी भाभी, आ रहे हैं।" तुतलाती लक्ष्मी खड़ी हुई "नंजा, मैं उठा लूं, दे दो ! रंगी, आरी !" कहकर उसने अपनी छोटी बांहें आगे बढ़ाईं।

नंज का शिशु: दुबले-पतले हाथ-पैर, बड़ी हुई तोंद, नाक से बहकर ऊपर के अधर पर पड़ा सिघण। हाथ पर, बदन पर खुजली। नीचे धंसी छाती। ऐसे शिशु को साफ-सुथरे लोग छूने के लिए हिचकिचाते। परंतु लक्ष्मी का इन बातों की ओर गौर नहीं था। ऐसे शिशु को नहीं उठाना चाहिए, यह सूझा भी नहीं। उसे केवल एक लालसा थी शिशु को उठाने की। वह शिशु चाहे सुन्दर हो, चाहे कुरूप हो तो क्या ? साफ हो तो क्या ? गंदा हो तो क्या ? सजीव हो तो बस ! नंज के शिशु में वही एक गुण था सजीवता का !

"आ री रंगी! आ री गुड़ दूंगी, आ री !" कहकर लक्ष्मी ने अपना हाथ आगे बढ़ाया।

"नहीं अम्मा ! तुम्हारी मां देखेगी तो गाली देगी।" कहकर नंज अंदर जाने लगा।

"नहीं देंगी गाली, दे दो," कहकर लक्ष्मी ने उसे रोका।

"थू ! छोड़िये तो। तुमको मालूम नहीं।" कहकर वह फाटक पार करके चला ही गया।

अपने प्यार पर आघात-सा हुआ यह जानकर लक्ष्मी चुप हो गई। समाज के विधि-नियम-निषेध, बड़े-छोटे आदि भेद-भाव अभी उसे मालूम नहीं हुए थे।

बैठक में तांबूल की तश्तरी के आगे चंद्रय्य गौड़जी और श्यामय्य गौड़जी बातें करने बैठे थे। नंज को देखते ही श्यामय्य गौड़जी को पिछले दिन उसके किये अत्याचार की याद हो आई और वे बिगड़ गये। उसके हाथ में उसका शिशु था, इसलिए उसपर मार नहीं पड़ी। वह तब एक पिता की तरह लग रहा था न कि पियक्कड़ की तरह। पिछले दिन उसको ताड़ी की दुकान में जिन्होंने देखा था वे आज उसको देखते तो दांतों तले उंगली दबाते, इतना सभ्य, संभ्रांत वह दीखता था।

उस दिन सवेरे पहले आये हुए चंद्रय्य गौड़जी ने हूवय्य को देखा। रामय्य, चिन्नय्य वहीं थे। उन्होंने चिन्नय्य से प्यार और विनोद से बातें कीं। परंतु हूवय्य एवं रामय्य से जितनी जरूरी थीं उतनी ही बातें कीं। ऐसा करना पर्वतीय प्रदेश वालों की मरज़ी ! बाहरी रिश्तेदारों से घर वाले जैसे बरतते हैं वैसे अपने घर-वालों से स्नेह से नहीं बरतते। उसमें भी बड़े हुए बच्चों के साथ पिता औपचारिक-सा बर्ताव करता है। ऐसी पद्धति से धीरे-धीरे अनहोनी, अनचाही घटनाएं हो जाती हैं। आदर-गौरव कम होकर अंत में बैर पैदा होने की संभावना भी रहती है। चंद्रय्य गौड़जी अपने घर के बेटे हूवय्य और रामय्य के साथ जैसे पेश आते थे वैसे ही श्यामय्य गौड़जी चिन्नय्य से भी पेश आते थे। अतिथि बंधुओं से सरस रहना चाहिये, सच है। लेकिन यजमान अगर घर वालों के साथ भी उल्लास से, स्नेह से, आत्मीयता से, विनोद से सलूक करें तो उसमें क्या कसूर है ? वैसा करने से छोटी बुद्धि, मनमुटाव कम होकर संसार अधिक सुखी हो जाता है न?

बाघ ने पकड़ा है एक गाय को, यह खबर जब मिली तब रामय्य और चिन्नय्य दोनों उसकी जांच करने के लिए गए। उसके बाद हूवय्य की इच्छा के अनुसार सीता ने उसके ट्रंक में से कुछ किताबें लाकर दीं। वह काम उसने इतने अभिमान से किया कि जो भी उसे देखता तो समझ लेता कि उसमें सेवा की अपेक्षा श्रद्धा अधिक थी। हूवय्य को उसकी पुस्तकें ला देने में वह ठाठ था जैसे सीता अपने पति को उसका शिशु दे रही हो। पुस्तकों की बू से, उनके लाल-हरे

रंग के बैंड से, अपने अपरिचित अंग्रेजी लिपि से भरी हुई, निगूढ़ हुई पुस्तकों के समूहों का स्पर्श करने का भाग्य जो सीता को मिला उसे उसने अपना सौभाग्य-सा माना। उसने कन्नड़ में कथा एवं उपन्यास को पढ़ा था। कुछ पुस्तकें उसके पास भी थीं। मगर उन पुस्तकों और हूवय्य की अंग्रेजी पुस्तकों के बीच में रहा भेद-तारतम्य कॉफी बगीचे के मजदूर एवं मालिक के बीच में विद्यमान भेद के जैसा था। हूवय्य के प्रति पहले ही उसमें जो अनुराग और गौरव थे उसकी अंग्रेजी पुस्तकों को देखकर वे दुगुने हो गये। उन पुस्तकों को खोलकर देखने की बड़ी आशा थी उसमें। हूवय्य को उसकी इच्छा मालूम हुई तो उसको भी संतोष हुआ, उसने एक इतिहास की पुस्तक उसके हाथ में देकर, उसमें की तस्वीरें देखने को कहा और स्वयं एक कविता-संग्रह लेकर पढ़ते तकिये के सहारे बैठ गया। कुछ ही क्षणों में उसका मन सीता को, मुत्तली को भूलकर कल्पना जगत् के सौंदर्य एवं वैभवों के स्वर्ग में विहार करने लगा। नगर के चहल-पहल के कारण धूलि-धूसरित वातावरण में फीकी लगने वाली कविताएं भी उस पहाड़ी मुल्क के सुंदर प्राकृतिक प्रपंच के संसर्ग में भावपुंज होकर प्रसन्न करने लगीं। खिड़की में से उछल कर आने वाली कोमल धूप, बाहर पेड़-पौधों में चहचहाते 'पिलकार' पंछियों की मीठी आवाज, तब थोड़ी देर के लिए विस्मृत होने पर भी, अव्यक्त, स्मृत, प्रिय ललना का सामीप्य, इन सबने मिलकर उसकी कल्पना को मानो पंख दिये थे।

पुस्तक में तस्वीरें देखते बैठी हुई सीता ने एक-दो बार सिर उठाकर देखा हूवय्य से पूछकर चित्रों का परिचय कर लेने की इच्छा से। परंतु दत्तचित्त हूवय्य का ध्यान उसकी ओर नहीं गया। सीता ने चौथी बार सिर उठाया तो फिर उसे नीचे नहीं झुकाया। प्रसार मूर्ति की भांति निस्पंद बने हूवय्य के मुंह को ही देखने लगी।

हूवय्य का मुखमंडल भावोत्कर्ष से, हर्ष से आरक्त बना था सद्यःस्नाता व्यक्ति के चेहरे की तरह। आंखें सलिलावृत हो चमक रही थीं। कभी-कभी छाती उभरती-गिरती थी। सीता देख रही थी, तब पहाड़ी हवा के बहने से जैसे फूलों से बूंदें गिरती हैं वैसे उसकी आंखों से वारिबिंदुएं प्रस्फुटित होने लगीं। हूवय्य ने आंखें मूंद लीं। पढ़ी जाती रही पुस्तक हाथ में ज्यों के त्यों बनी रही। उसे देख मुग्ध सीता के दिल में भय का संचार हुआ। मन में न जाने उसके क्या-क्या भावनाएं उठीं। सोचा कि वह पीठ के दर्द से रो रहे हैं। पूछकर जानना चाहा; पर न जाने क्यों न पूछ सकी। शायद उसकी बुद्धि को गोचर न हो, उसके अंतरंग को मालूम हो गया हो हूवय्य की रस-समाधि की दिव्यावस्था! हूवय्य के 'बदन पै आया हो' (हूवय्य में भूत का संचार हो गया हो) सोचकर घबरा गई। भूत बाधा से पीड़ित लोगों को उसने कई बार देखा था। नंज की पत्नी जब गर्भवती थी तब उसके बदन पर आते हुए को देखकर अवाक् हो गई थी। पर

हूवय्य के शरीर पर भूत संचार के लक्षण नहीं थे। उसके वदले मुंह सौम्य, सुन्दर था। वाला का दिल विविध भावों, आशंकाओं से भर गया। वह पुस्तक वंद करने का वहाना करके, कुछ आवाज़ करके खड़ी हो गई।

हूवय्य ने आंखें खोलीं। दूसरे के आगे भाव प्रदर्शन कर चुकने से वह शरमा गया। मगर मुंह मलने वालों की भांति अभिनय करके आंसू पोंछ लिए। सीता अभी पुस्तक वंद करके खिड़की की ओर देखने का अभिनय कर रही थी जिससे वह समझ गया कि उसे अपना भावावेश नहीं मालूम हो पाया है, तव वह समाधान चित्त हो, भुलाने के लिए पूछा, "तस्वीरें देख चुकी?"

सीता को हूवय्य की शांत वाणी सुनकर अचरज हुआ कि जो कुछ उसने सोचा था वह गलत था। संतोष से 'हां' कहकर स्वीकार करके उसी को देखती हुई खड़ी रही।

उसके मुखमंडल पर जो प्रश्न झलकता था उसका निवारण करने के लिए हूवय्य ने पूछा, "कौन-कौन-सी तस्वीर देखी?"

"देखी, पर मुझे मालूम नहीं हुआ कि किस-किसकी तस्वीर है।"

"मुझसे पूछती तो वता देता।"

सीता ने वड़ी खुशी से कहा, "आपने आंखें मूंद ली थीं, पीठ का दर्द ज्यादा हो गया समझकर चुप रही।"

तो सीता ने देख लिया है!

"पीठ में दर्द नहीं; यों ही आंखें मूंदकर कुछ सोच रहा था।···हमारे घर से गाड़ी आ रही है, कहा चिन्नय्य ने···।"

"हां; वुआ, वासु, पुट्ट, भाभी आ रहे हैं," कह सीता ने वहुत संकोच से पूछ ही लिया, "रो क्यों रहे थे?"

उसका प्रश्न लघु था, इसलिए जवाव देने के उसे अर्ह न समझकर वह हंसा; फिर शंका निवारण के लिए उसने कहा—"रो कौन रहा था?"

"पानी वह रहा था आंखों से।"

सीता से मुक्ति पा न सका; हूवय्य का चेहरा गंभीर हुआ। एकदम वदला हुआ चेहरा देखकर सीता चकित हुई यह सोचकर कि मेरा पूछना क्या अपराध हुआ?

हूवय्य ने प्रयत्नपूर्वक सरस वाणी से पूछा, "सीता, तुम कभी नहीं रोई?"

"रोई थी।"

"कव?"

"किसी के गाली देने पर, माता के पीटने पर, गिर पड़ने से चोट लगने पर," कहकर सीता अपनी इस वात पर मुस्करा रही थी।

"फिर कभी आंसू वहाया कि नहीं?"

सीता अप्रतिभ हो थोड़ी देर चुप रही।

"सास तुमको छोड़कर रिश्तेदार के घर जाने पर?"

"हां रोई थी!"

"कहानी पढ़ते या सुनते समय कभी रोई हो?"

सीता ने सोचा। उपन्यास पढ़ते समय उसने आंसू बहाया था किसीको मालूम कराये बिना, सो याद हो आया। एक बार हूवय्य ने कानूर में नागम्म, गौरम्म, सीता, वासु को 'विषवृक्ष' पढकर सुनाया था, तब सीता ने अपनी रुलाई रोक न सकने से माता की आड़ में छिपकर आंचल से आंसू पोंछ लिये थे।

"हां, कई बार ऐसा हुआ है।"

"तुम कभी सांझ के समय अपने घर के ऊपर की दिशा में पहाड़ की चोटी पर गई हो?"

"हां, गई हूं।"

"वहां पश्चिम दिशा में डूबते हुए सूरज को देखा है?"

"हां, देखा है।"

उसकी भाषा भी अनुकरण से हूवय्य की भाषा के स्तर पर अपने आप चढ़ रही थी। हूवय्य की इच्छा के अनुसार सीता चटाई पर बैठ गई।

"उस संध्या-सौंदर्य को देख तुमने कभी आंसू बहाये हैं?"

"नहीं" सीता ने कहा। उसे हूवय्य के प्रश्न का अर्थ, भाव, सार्थक्य, एक भी ज्ञात नहीं हुआ।

हूवय्य कहने लगा। सीता थोड़ा-सा अर्थ समझ गई। बहुत भाग उसकी समझ में नहीं आया। दूरदर्शक यंत्र की सहायता से नक्षत्रों को देखने वाला चर्म-चक्षुओं को दीखने वाले, न दीखने वाले नक्षत्र-समूहों का वर्णन अपने बगल में रहने वालों को सुनाता रहे तो जैसे सुनाने वाला यों ही आकाश की ओर देखकर कहता है "हां, हूं" वैसे बीच-बीच में सीता "हूं, हां-हां, नहीं" केवल, कह रही थी। बातें करने वाला प्रीतिपात्र था, इसीलिए सीता, ने तन्मय होकर सुना। सुनते-सुनते सहानुभूति के कारण उसके भाव, उसकी कल्पना का उत्कर्ष होने लगा। बुद्धि को जो अगोचर बन गया था वह भावगोचर हो जाने से उसके हृदय में एक महान् परिवर्तन हो रहा था।

बोलते समय हूवय्य सीता की आंखों में अपनी दृष्टि स्थिर करके लगातार देख रहा था। सीता भी उसी का मुंह देख रही थी। तब हूवय्य के मन में या सीता के मन में प्रिय प्रेयसी का भाव नहीं था। विषय की उदार उच्चता ने उन दोनों की आत्माओं को शारीरिकता से परे कर दिया था। तब उन दोनों में जो संबंध था वह गुरु-शिष्य के बीच के संबंध-सा था।

"मैंने आंसू बहाये हैं सीता, संध्या का सौंदर्य देखा तुमने कहा न, तुम्हारी आंखों में आंसू नहीं आये। मेरी आंखों में आंसू आये हैं, कई बार आये ...हैं।"

सीता की समझ में कुछ नहीं आया कि संध्या का सौंदर्य देखकर क्यों आंसू वहाये जाएं ? इसलिए वह चुप, अवाक् हो वैठी थी। तो भी, उसने वैसा न किया जाना अपनी न्यूनता समझा।

"इतना ही नहीं, पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर जहां तक दृष्टि जाती है वहां तक फैले जंगलों को देखकर मैंने आंसू वहाये हैं। पूर्व दिगंत में सूर्य विंव को लाल कुंकुम में नहाकर उगते समय देखकर आंसू वहाये हैं ! वर्षाऋतु के प्रारंभ में आकाश पर घिर आये काले-काले वादलों में महासर्प के महाजीभ की भांति, लता-सी विजली को नाचते देखकर आंसू वहाये हैं।...पूर्णिमा की रात में चंद्र की शुभ्र ज्योत्स्ना को, (सामने वैठने वाली सीता है, यह याद ही आने से) पूनम की रात में दूध के समान गिरी चांदनी को जंगलों पर सोते देखकर आंसू वहाये हैं। ...महात्माओं की कहानियों को पढ़ते समय आंसू वहाये हैं...तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा। औरों की अपेक्षा मुझमें आंसू ज्यादा होंगे, यह अनुमान तुम कर सकती हो।...तो मुझे क्यों आंसू आते हैं ? कहो ! (सीता अवाक् हो, चुप रही।) तुममें भी आंसू वहाने की शक्ति है सीता। तुमको उसे किसीने नहीं सिखाया है। (सीता ने शोकध्वनि से मानो 'न' कहा) कोई चिंता नहीं। मैं सिखाऊंगा। तव तुम्हारी दृष्टि वदलेगी। तुम्हारी आत्मा ही दूसरी होगी।...सारा संसार आनंदमय होगा। दुःख भी मधुर वनेगा।..."

सीता की आंखें खिल गईं, फूल गईं। मनोहर नूतन संसार का संदर्शन करने निकलने वाले यांत्रिक को जो उल्लास होता है उसका अनुभव सीता को हुआ। उस संसार के वारे में उसे अनिश्चयता, अपरिचयता जो थीं इन्होंने ही उसके कुतूहल को और भी उज्ज्वल वनाया।

"रोज प्रार्थना करती हो तुम ?"

सीता आंगन में रही तुलसी देवी को औरों की तरह वार-वार हाथ जोड़कर साष्टांग-प्रणाम करती थी। वह केवल अनुकरण मात्र था, उसमें भाव नहीं था। इसके अलावा, घर वाले वर्ष में एक वार पास के वन में जाकर भूतों को मुर्गी-वकरी की वलि चढ़ाकर नमस्कार करते, तव वह भी औरों की तरह उनको हाथ जोड़ती थी। वड़े आदमी कष्ट निवारण के लिए भी भय से नमस्कार करते, तव छोटे वैसे न करते तो वड़े उन्हें फटकारते थे, अतः छोटे अंध श्रद्धा से नमस्कार करते थे।

अंत में हूवय्य के प्रश्न पर सीता ने "न" कहा।

"सीता, प्रार्थना करनी चाहिए। देखो, परमात्मा ने यह सारा संसार रचा है। मुझे भी, तुमको भी, औरों को भी वनाया है। कितना संतोष दिया है हमें उसने ! तुमने जो फूल पहने हैं उनको भी उसीने वनाया है। तुम्हारी मनोहर आंखों को भी उसीने वनाया है। सोचो : अगर आंखें न होतीं तो क्या होता ?

मैं तुमको नहीं देख सकता था, तुम मुझे नहीं देख सकती थीं।…"

हूवय्य पूरा सीता के स्तर पर उतरकर बोल रहा था।

"सीता, हममें केवल देह नहीं है। हममें आत्मा भी है। उसने जैसे हम कुरता पहनते हैं वैसे इस देह को पहना हुआ है। तुम अमीरों की लड़की हो। इसलिए अच्छी साड़ी पहनकर सुंदर दीखती हो। गरीब लड़कियां साधारण साड़ियां पहनती हैं। उनके पहनावे को देखकर हम उनके स्तर को जान लेते हैं। उसी प्रकार देह भी आत्मा की योग्यता के अनुसार रहती है।…परंतु वह साड़ी कितने दिनों तक टिकती है? पुरानी पड़ते ही उसे छोड़कर नई साड़ी पहन लेती हो न? उसी तरह यह देह पुरानी होते ही आत्मा उसे छोड़ देती है। उसी को हम 'मरण' कहते हैं। देह के जाने पर भी आत्मा नहीं जाती। आत्मा शाश्वत है। वह परमात्मा की वस्तु है। इसलिए हमें उसकी अधिक शुश्रूषा करनी चाहिए। तुम अपनी साड़ी को पुरानी होने तक धोती रहती हो। लेकिन उससे भी ज्यादा इस देह का पोषण करती हो न? उसी तरह हमें भी जब तक जीते रहते हैं तब तक देह को साफ़ रखना चाहिए। परन्तु उससे भी अधिक शाश्वत आत्मा का पोषण करना हमें नहीं भूलना चाहिए। अच्छी बातचीत से, विचारों से, आलोचना से, चाल-चलन से हमारी आमा शुद्ध बनती है, परमात्मा को प्रिय बनती है। इसलिए परमात्मा की प्रार्थना प्रति दिन करनी चाहिए, 'अच्छी बात, अच्छी वाणी हो; अच्छे विचार हो; हम सबकी रक्षा करो' कहकर समझीं?"

सीता ने 'हां' कहा। उसके चेहरे पर कृतज्ञता झलकती थी।

"परमात्मा ने यह सारा जगत् बनाया है। वह हर जगह है। यहां भी है। मैं और तुम जो बातें कर रहे हैं उन्हें वह सुन रहा है। वह जो चाहे कर सकता है। वह सर्वशक्तिमान है। हमें उस पर प्रेम करना चाहिए। उसी को हम 'भक्ति' कहते हैं।…वह यह जगत बनाकर, दूर भागकर नहीं बैठा है। उसमें वह ऐक्य हो गया है, मिल गया है, पानी में घुले शक्कर के समान! सबेरे सूर्य बनकर उगता है; रात को अंधकार के रूप में आता है, वही हवा बनकर बहता है; बिजली बनकर चमकता है;…देखो, तुमने जो फूल पहने हैं उनका सौंदर्य वही है! तुम्हारा सौंदर्य भी वही है! तब मैंने कहा न, संध्या-सौंदर्य भी वही है! उस संध्या-सौंदर्य को देखने से मुझे लगता है मानो मैं उसी को देख रहा हूं। तब मुझे अत्यानंद होता है। इसीलिए आंखों में आते हैं, तुमको ऐसा अनुभव हो जाए तो आंसू आएंगे ही। दुःख नहीं सुख से! मैंने जो कहा, समझ गई न?"

सिर हिलाकर सीता ने स्वीकृति दी। उसका हृदय भाव से भरकर उमड़ पड़ा था; उसकी आंखों में पानी की बूंदें भरी थीं। हूवय्य की बातें ज्ञानियों के लिए सामान्य थीं, परन्तु मुग्ध सीता के लिए तो आंसू बहाने वाली जितनी महान बनी थीं। आंसू धाराकार में उसके भावोज्ज्वल कपोलों पर उतरने लगे। हूवय्य के नयनों

से भी जल वहा ।

"सीता, अव तुम क्यों रो रही हो ?"

सीता ने मुस्कराते "नहीं, मैं नहीं रो रही हूं ।" कहकर आंसू पोंछ लिये ।

"फिर आंसू क्यों ?"

सीता में अपना अनुभव सुनाने की वुद्धि शक्ति नहीं थी । इसलिए उसने इतना ही कहा, "क्यों ? मैं नहीं जानती ।"

"इसलिए मुझे भी तव आंसू आए थे । महत् को देखने से, सुनने से, अपनी महत् की याद हो आकर संतोप होने से ऐसा होता है । ऐसे जितने आंसू हम वहावें उतने हम धन्य होते हैं । सारी महत्, सारा वड़ा परमात्मा है !"

दोनों थोड़ी देर तक चुप थे । हूवय्य ने दूसरा विपय उठाने के लिए "उन चित्रों को देखा न ! उनमें हमारे देश का चित्र भी देखा ?" पूछकर एक पुस्तक खोलकर कहा, "यह हमारी भूमि है जिस पर हम रहते हैं ।"

फिर उसने भूगोल के कुछ विपय संक्षेप में सुनाकर, सौर व्यूह का वर्णन सुनाते कहा, "सूरज भूमि से हजारों गुना वड़ा है ।" सीता को आश्चर्य हुआ । फिर उसने पूछा, "वह इतना छोटा क्यों दीखता है!" सीता के इस प्रश्न का जवाव देकर हूवय्य ने कहा, "इतना ही नहीं, रात को हमें दिखाई देने वाले नक्षत्र सूर्य से कई गुना वड़े हैं ।" अगर कोई दूसरा यह वात कहता तो सीता विश्वास न करती । हूवय्य ने नक्षत्रों के भयानक गात्र, वेग एवं दूरी के वारे में सुनाकर, इंडिया देश का नक्शा खोलकर दिखाते हुए कहा, "यह हमारा भारतवर्प है । यह हमारा मैसूर देश है जिस पर हमारे श्रीमन् महाराज राज करते हैं ।"

"इतना छोटा है हमारे महाराजा का देश !"

"हां, इस संसार की तुलना में छोटा ?"

"तो तीर्थहल्ली कहां है !"

"इसमें वह नहीं है; वहुत छोटा गांव है, इसलिए ।" कहकर मैसूर देश का नक्शा खोलकर, एक छोटी छींट पर उंगली रखकर दिखाया, "यही है तुम्हारी तीर्थहल्ली !" सीता ने कहा, "हाय ! इतना ही !" अपने प्रिय, अपने लिए वड़ा वने तीर्थहल्ली गांव को नक्शे में इतनी छोटी छींट ! इस पर सीता को ताज्जुव हुआ ।

"तो हमारी मुत्तल्ली !"

हूवय्य ने मुस्कुराकर कहा,"मुत्तल्ली को छींट से वता नहीं सकते,इतना छोटा गांव है । सीता को कुछ दुख-सा हुआ । अपना वड़ा घर, खेत, वाग, मजदूर, किसान, पिताजी, माताजी इन सव के रहने का मुख्य स्थान छींट से भी गया-वीता वन गया लगने से ।

वाहर घंटियों की माला की ध्वनि, कुत्तों के भौंकने की आवाज़, लक्ष्मी की

उल्लासपूर्ण अट्टहास की ध्वनि सुनाई पड़ी तो सीता "सासजी आई दीखती है !" कहकर बैठक की ओर भागी।

रिश्तेदारों ने पैर धोए। "आइये, आइये" कहकर उनका स्वागत किया गया। आगंतुकों ने "अच्छा, अच्छा; हां, हां" कहते भीतर प्रवेश किया गौरम्माजी और सीता के साथ। वासु पुरुष जाति का होने से श्यामय्य गौड़जी ने उसको अपने पास बुलाया। उसका मन भीतर जाना चाहता था, मगर वह लाचार होकर बाहर ही पुरुषों के साथ बैठक में बैठ गया। लेकिन पिताजी के सामने बहुत समय तक रिश्तेदार बना नहीं बैठ सका;पांच मिनट में ही वह धीरे से वहां से खिसककर अंदर गया।

पुत्र को देखते ही नागम्माजी का उद्वेग शांत हो गया। उनमें स्वाभाविक गांभीर्य आ गया। तो भी उन्होंने तीन पैसे, छः पैसे के सिक्कों को पुत्र के इर्द-गिर्द फिराकर, अपने जाने हुए देवी-देवताओं का स्मरण करके—तिरुपति, धर्मस्थल से लेकर भूत, 'पंजोल्ली' तक—मनौती रख उनसे प्रार्थना की कि शीघ्रातिशीघ्र मेरे पुत्र को आरोग्य लाभ प्रदान करे।

हूवय्य असहाय हो चुप था। माता के प्रीति भाव को अपनी बुद्धि से, अपने विचार से भी पवित्र मानकर, उसका आस्वादन करते हुए उसने पूछा, "वह क्या चोट माथे पर माताजी ! पट्टी क्यों बांध ली है ?"

"कुछ नहीं, दरवाजा लग गया था" कहकर नागम्माजी अपने पुत्र के पास बैठ गईं; कई बहानों से उसके माथे, गाल, सिर, हाथ पर अपना हाथ धीरे से, प्यार से फिराकर उन्होंने अपनी ममता दिखाई। हूवय्य के लिए तो माता का वह स्पर्श सुधापाणि के स्पर्श के समान एवं शांति एवं आनंदों की सुधामुद्रा हो गया था।

२१

वह नई नारी पिताजी की पत्नी !

उस दिन शाम को रामय्य अपने पिताजी की इच्छा के अनुसार कानूर आया।

रात को भोजन करते समय एक अपरिचित परोसती हुई नारी को देखकर वह चकित हुआ कि यह कौन होगी? पुट्टण्ण और सेरेगार भी चंद्रय्य गौड़जी को भावाक्रोश से सुना रहे थे कि उस दिन सिगप्पगौड़जी के तरफ वालों से अपने ऊपर क्या बीती। चंद्रय्य गौड़जी बीच-बीच में गुस्से से कह रहे थे—ऐसा करना, चाहिए था, वैसा करना चाहिए था। अंत में सिगप्प गौड़जी का नाम लेकर गरजे, "मैं उसको ठीक कर दूंगा। चोरी से कटाये लकड़ी के टुकड़े कैं करा दूंगा। सरकार क्या मर गई है? देखता हूं।"

रात को दुमंजिले पर सोया रामय्य सोचने लगा।

घर आ जाने पर थोड़े ही समय में रामय्य को दीखा कि अपने घर से मुत्तल्ली का घर ही अधिक संतोपजनक है। वासु, पुट्टम्म, हूवय्य, नागम्मा ये सब रहते तो शायद ऐसा न दीखता। उसने अपने पिताजी से मैसूर, कांग्रेस, स्वराज्य के लिए आंदोलन इत्यादि के बारे में बोलना चाहा। मगर उनको घरेलू काम, कोर्ट के काम आदि व्यवहारों में जो अनुभव, जो आसक्ति, जो सहानुभूति वगैरह थीं वे रामय्य के कहे दूर के विचारों में नहीं थीं। इतना ही नहीं, उनके प्रति घृणा, तिरस्कार आदि प्रदर्शित करके, सफेद कपड़ा, खादी टोपी, पांवों को ढेकने वाली लंबी धोती का अवहेलन किया गौड़जी ने। उनकी दृष्टि में सफाई एक दिखावा, एक शौक थी; यही उनका पक्का विश्वास भी था।

रामय्य पुट्टण्ण के साथ शिकार, कुत्ता, बंदूक आदि के बारे में बातें करके, पिछले महीने में उसके किये साहसों का वर्णन सुनकर खुश हुआ। जाकी की क्रूरता से हुई टाइगर की मृत्यु का समाचार सुनकर वह बहुत दुखी हुआ। कुछ भी हो, उसके मन की विपण्णता नहीं गई। मैसूर रहते समय घर की याद से उसको संतोप होता, परंतु अब घर में रहकर भी संतोप नहीं होता।

चारों तरफ घना अंधकार था। सामने वाले पहाड़ और जंगल स्याही के बंडल बने थे। आकाश में चमकने वाले तारों ने उसके एकांत भाव को दुगुना कम-

जोर कर दिया था। बिस्तर पर आराम से सोए रामय्य के मन में कई विचार उठे जिन्होंने उसे बेचैन कर दिया। परोसने वाली नारी कौन होगी? अपने घर रिश्तेदारिन बनके आई हुई होती तो रसोई घर में बहुत समय से परिचित-सी की तरह परिचर्या नहीं कर सकती थी। रसोई बनाने के लिए वेतन पर नियुक्त की हुई होती तो पहनावे में इतना नाजुक न होती! पुट्टण्ण ने नया विवाह किया है क्या? ऐसा नहीं हो सकता। वैसा होता तो वही बता देता। उसको देखने से ऐसा अनुमान करना गलत लगता है। इस प्रकार नाना तरह से विचार करने से सहसा रामय्य के हृदय में रक्त संचार का वेग बढ़ गया। "छिः, ऐसा कभी नहीं हो सकता" कहकर अपने मन में उत्पन्न विचार का निवारण करना चाहा। जैसे-जैसे वह उन विचारों को दूर करने का प्रयत्न करने लगा वैसे-वैसे उसकी सोच प्रबल होती गई, उसके विचार जोर पकड़ने लगे। धीरे-धीरे उसकी आलोचना समंजस होने लगी। आखिर निश्चय-सा भी दीखा। फिर भी रामय्य ने उस पर विश्वास नहीं किया। पर विश्वास करना भी नहीं चाहा। ऐसे विचारों के लिए अपने आपको धिक्कारा। तो भी उसका दिल कातर था कि कहीं वह सच निकल जाय। बिस्तर पर उठ बैठा और मनःपूर्वक भगवान से उसने प्रार्थना की, "वह सच न हो।" उतना विकट असह्य दीखा वह विचार कि हम लोगों को मालूम कराये बिना अपने पिताजी ने उस नारी से विवाह किया है और वह नारी पिताजी की पाणिग्रहीता है।

दूसरे दिन सवेरे रामय्य को भास होने लगा कि घर के सभी लोगों ने उससे एक रहस्य को छिपाकर रखा है। हर एक की बात, दृष्टि, चाल सभी इसी बात का समर्थन जैसी कर रही थी। कॉफी, नाश्ता हो जाने के बाद रामय्य तुरंत पुट्टण्ण को दुमंजिले पर बुलाया और उससे अपनी शंका के बारे में पूछा। वे इस तरह धीमे स्वर में बोले कि उनका बोलना नीचे बैठक में बैठे लोगों को सुनाई न पड़े।

"वह नई नारी कौन है रे?"

"कौन नई नारी?"

"रसोई घर में काम कर रही है न, वह।"

पुट्टण्ण ने तनिक हंसकर, "अजी, ऐसा क्यों पूछ रहे हैं? वह तो आपकी छोटी मां हैं।" कहा।

"छोटी मां!...कहो, किसके घर से लाई गई हैं?"

"नेल्लहल्ली से आपके पिताजी के लिए लाई गई।"

"वह नई नारी पिताजी की पत्नी!"

जो न होने देने के लिए वह प्रार्थना कर रहा था भगवान से, वही हो गया है! यह जानकर रामय्य को बहुत दुख हुआ। लाख प्रयत्न करने पर भी आंसू निकल ही पड़े उसकी आंखों से। पहले 'नई छोटी मां' को लाने वाले नंद्रय्य गौड़जी

के पक्ष में बोलते रहने वाला पुट्टण्ण अब रामय्य के आंसू देख अनुकंपा से चंद्रय्य-गौड़जी के विरुद्ध बोलने लगा। उसकी ध्वनि और धीमी हुई।

"क्या आपको पत्र नहीं मिला था ?"

रामय्य ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

"बहुत कहा हम सबने—आप दोनों को बुला लेने के लिए। लेकिन हमारी बात कहां सुनते ?"

"नहीं बुलाया, अच्छा हुआ।" कहकर रामय्य ने उसांस छोड़ी।

"सबने, मुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी आदि ने कहा—'यह संबंध आप न करें, आपके लिए योग्य नहीं।' किसी की बात उन्होंने नहीं सुनी, नहीं मानी। बस, अपनी बात पर अड़े रहे। अब देखिये, सारे घर में झगड़ा। तीनों काल कलह। आपकी बहन तथा उसमें संबंध छत्तीस का। नागम्माजी के संबंध में मनमानी बातें ! ऐसा हो तो घर में बंटवारा होना ही बेहतर लगता है।"

रामय्य ने फिर कुछ नहीं कहा। चुप सोचने बैठ गया। उसकी मृत मां की शोकपूर्ण छवि कल्पना की आंखों के आगे आंसू बहाती हुई खड़ी रही। उसके लाड़-प्यार याद हो आये;ओझल-विस्मृत मातृप्रेम का स्मरण करके वह खूब रोने लगा।

आम तौर से उसकी कोमल प्रकृति थी। दृढचित्त का वह नहीं था। बचपन से अपने पिता के प्रति बढ़कर आये डर ने उसको डरपोक दिल का बनाया था। उसमें विद्यमान उदात्त हृदय के योग्य मनोबल भी होता तो संसार में आगे प्राप्त होने वाले हृदय विद्रावक घटनाएं न होतीं। हूवय्य के प्रति उसमें जो गौरव था, प्रेम था, उसका कारण भी यही है, दीखता है। अपने में अविद्यमान हृदयबल, मनोबल, दृढचितत्ता उसमें होने के कारण उसको अपनी आदर्शमूर्ति मानकर उसकी आराधना करता था।

बैठक से चंद्रय्य गौड़जी ने बुलाया "ओ पुट्टण्ण !" वह ढीली बनी सीढियों से धड़धड़ आवाज़ करते नीचे उतर आया तो उन्होंने पूछा, "रामु कहां है रे ?"

"यहां हूं। अभी आया,"कहकर मन को शांत करते आंसू पोंछते वह उतर आया।

चंद्रय्य गौड़जी को उसके चेहरे पर का भाव मालूम हुआ, तो भी अनजान की तरह अभिनय करके "गन्ने के खेत जायं, आओ" कहकर वे उन दोनों को साथ लेकर फाटक पार करके गये।

नींद, बदन को खुजलाना, मक्खियों को झाड़ना आदि अपने स्वकीय कार्यों में मग्न कुत्ते एक के पीछे एक उठकर उनके पीछे निकले।

उसके मैसूर जाने के पहले दृश्य सभी जैसे थे वैसे ही थे। वही आंगन, वही खलिहान, आंगन को खलिहान से बांटने वाला एक आदमी के जितना ऊंचा पत्थर का चबूतर, चबूतरा पर जो तब हरा-हरा था अब गरमी से सूखा हुआ वही कांसा, खलिहान में वही इमली का पेड़, वही बड़ा 'बसरी' का पेड़, दाहिने भाग में वही

बाग, केले के वे ही हरे पत्ते इत्यादि ! उस दिन की तरह पंछियों की चहक ! उस दिन की तरह पेड़ों की छाया ! लेकिन रामय्य की आंखों के लिए दुनिया पहले की तरह सुंदर नहीं थी। उसका मन विषाद से भर गया था।

गन्ने के खेत में मजदूर जमा हो गये थे। सेरेगारजी उनको काम बता रहे थे। करीब दो फुट ऊंचे बढ़े गन्नों के हरे सिरों पर पड़ी धूप भी हरी बनी-सी दिखाई देती थी। बीच में इधर-उधर घाट के नीचे की मजदूरिनें और मजदूर खड़े होकर 'तुलु' बोली में गपशप कर रहे थे।

गौड़जी को दूर से आते हुए देखकर मजदूर, सेरेगारजी काम में लगे-से दिखाने लगे। सेरेगारजी जोर से कन्नड़ में आज्ञा देने लगे, "ऐ बग्गा, वह कुदाल यहां ले आओ···अरे गुत्ती, तू क्या कर कहा है वहां ? थू ! चोर!···सुब्बी, काड़ी, क्या कर रही हो वहां ?···सदिया, वह गढ़ा पाटकर आ जाओ यहां···" आदि। इन आज्ञाओं तथा भर्त्सनाओं से वह गन्ने का खेत सजीव, सचल, सशब्द हो उठा। इतने में गौड़जी भी वहां पहुंचे। इस ओर से उस छोर तक चलके काम की निगरानी, जांच करके सूचना देने लगे। सिर पर लाल वस्त्र बांधे सेरेगारजी ने कभी उनके पीछे, कभी अगल-बगल में क्रियाशील हो, घूमते-फिरते अपनी स्वामिभक्ति एवं कर्तव्यनिष्ठा दिखाई। रामय्य के पीछे आने वाला पुट्टण्ण पिछले वर्ष गन्ने खाने आये हुए सूअर को गोली से मार गिराने की अपने साहस की कहानी एवं व्यूह रचना की बात सुनाता था। थोड़ी देर में कुदालों से मजदूरों ने खोदना शुरू किया और बातें रुक गईं। सिर्फ खोदने से उत्पन्न ध्वनि सुनाई देती थी। एक ऊंची जगह पर सेरेगारजी ने कंबल बिछाया; गौड़जी उस पर बैठकर काम देखने लगे। कुत्ते अपने स्वभाव के अनुसार यहां-वहां घूमकर गन्ने के खेत में जो नाला था उसमें घुस गये।

एकाएक एक कुत्ता जोर से भौंकते, गन्ने के पत्ते हिलाकर, कुछ आवाज-सी कराते कुछ को भगाकर ले गया। दूसरे कुत्ते भी उस ओर भागे। किसी को मालूम नहीं हुआ कि कौन-सा जानवर है वह जिसका पीछा कुत्ते करने लगे थे। मजदूरों ने खोदना छोड़कर, अपने औजार रख दिये और खड़े होकर देखा कि क्या मामला है। पुट्टण्ण और रामय्य भी देखने लगे थे। गन्ने के खेत को पार करके कुत्ते धान के खेत में घुस गये। खेत में फसल नहीं थी। तब तीर की भांति उछल-कूदकर भागता हुआ एक खरगोश दीख पड़ा।

पुट्टण्ण "हाय रे, बंदूक नहीं लाया !" कहकर "छू ! पकड़ो ! पकड़ो ! पकड़ लो !" जोर से चिल्लाते, गन्ने के मेंड पर से खेत में कूदकर खरगोश का पीछा किया। भागते हुए खरगोश को, पुट्टण्ण को देखते खड़े मजदूरों को डांटकर गौड़जी ने कहा, "क्या देख रहे हो भंडाड़, अपना काम छोड़कर!" तब वे अपने-अपने औजार —कुदाल, फावड़ा आदि लेकर काम में लग गये, फिर औजारों की आवाज सुनाई

देने लगी।

रामय्य को पिता ने बुलाया। खरगोश के प्रसंग से प्रसन्न बना रामय्य फिर विपण्ण होकर पिता के पास आया और कुछ दूर पर बैठ गया।

"आने वालों को सीधे घर आ जाना चाहिए या रिश्तेदारों के घर में मजे में भोजन करते बैठ जाना चाहिये ?" कहा गौड़जी ने।

पहले ही दुखी बना रामय्य और भी दुखी होकर, अपनी गलती स्वीकार करते हुए मृदु स्वर में बोला, "बड़े भाई की पीठ में चोट लगी थी, उसको छोड़कर कैसे आता ?"

"बड़े भाई को चोट लगी तो छोटे भाई को वहां क्या काम ?"

रामय्य बोला नहीं। गन्ने का छड़ हाथ में लेकर चीरते हुए उसकी ओर देख रहा था सिर झुकाकर।

"तुम अपना सब सामान लाये हो क्या ?"

"नहीं। होटल के रूम में ही रख आये हैं।"

"क्यों ? नहीं लाना चाहिए था क्या ?"

"फिर कौन ढोकर ले जाए ? सोचकर नहीं लाये।"

"न ढोकर ले जाना है, न उठाकर ले जाना है। बस, है तुम्हारा पढ़ना और पास होना।···तुमको थोड़े ही अमलदारी करनी है ! जमीन पर झाड़ू लगाने के समान सफेद धोती तलुवे तक पहनकर शौक करने से सब कुछ आया जैसा हुआ ? उस वेंकप्पय्य के कहने के अनुसार, मिट्टी खोदने वाली जाति के हाथ में लेखनी दी जाय तो क्या हो !···सभी सामान मंगा लो रेल से !"

रामय्य को ऐसा लगा जैसे फोड़े पर गरम छड़ से दाग दिया हो। वह अप्रतिभ हुआ। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या कहा जाय। उसको ऐसा लगा कि पिता ने नई नारी के साथ नई क्रूरता भी कमा ली है। इतना शीघ्र ऐसी बातें सुनने के लिए वह तैयार नहीं था। इस ओर देख, उस ओर देख, थूक निगलकर उसने कहा, "बड़ा भाई कह रहा है कि और भी पढ़ना है।"

"हूं ! तुम पढ़ते, शौक करते, बाजार में घूमते रहो। मैं यहां गोबर उठाकर, मेहनत करके, कमा करके रुपये भेजता रहूं तुमको !···वह जो भी करे !···वह अपना हिस्सा लेकर चाहे मैसूर जाय, चाहे मद्रास !···उसकी मां की शिकायत नहीं सुन सकता।···कहते हैं कि वह आने-जाने वालों से कहती रहती हैं कि हिस्सा करके दे दूं !···सुन-सुनकर मेरा जी उचट गया है।··· उसको मैं देख भी नहीं सकता ('उसको' यानी उनकी पत्नी सुब्बम्म; यह नये सिरे से रामय्य को बताने की जरूरत नहीं थी चूंकि चंद्रय्य गौड़जी जान चुके कि उनके नये विवाह की बात रामय्य को मालूम हो गई है। अतः निःसंकोच हो उन्होंने बातें कीं)···रोज-रोज सवेरे उठते ही रसोईघर में झगड़ा···बैठक में बड़े आदमी बैठे भी रहें तो भी···ऐ

चन्ना, पेड़ को ही काट दिया क्या रे ! थू ! छिनाल के बच्चे !" कहकर गौड़जी ने एक मजदूर को गाली दी।

नील गगन में कुछ सफेद रंग के छोटे-छोटे बादल निश्चल थे। प्रातः काल की कोमल धूप लहर-लहर बनकर जहां तक नजर जाती है वहां तक फैले जंगल के पेड़ों पर स्वच्छंद विहार कर रही थी। रामय्य वह महा दृश्य केवल आंख से देख रहा था, मगर वह व्यसनाक्रांत हो अन्यमनस्क था।

उधर खरगोश और कुत्तों के पीछे भाग-भागकर थका-मांदा पुट्टण्ण खड़ा होकर हांफने लगा। खरगोश और कुत्ते खेत का मैदान पार करके झुरमुट के जंगल में घुस गये। बहुत देर होने पर भी कुत्ते नहीं लौटे। पुट्टण्ण ने "कुरो-कुरो' कहकर जोर से कुत्तों को बुलाया। थोड़ी देर में डाइमंड मुंह खोलकर, लार टपकाते, लाल जीभ निकाले, हांफते भागकर आया। उसके पीछे रूबी, टाप्सी, रोजी, कोतवाल, डूली एक के पीछे एक दिखाई पड़े। उनको देखते ही पुट्टण्ण जान गया कि शिकार बेकार हो गया है।

पुट्टण्ण कुत्तों के साथ लौटकर आ रहा था तब घाट के मजदूरों के निवास के पास हलेपैक के तिम्म की कुछ भेड़-बकरियां चर रही थीं। एक ऊंचा, बड़ा, काला बकरा अपनी पिछली टांगों पर खड़े होकर, अगली टांगों को नीचे झुकी एक पेड़ की शाखा पर रखकर पत्ते चर रहा था जिसे पुट्टण्ण ने दूर से देखा। खरगोश के शिकार से निराश हुए, बिगड़े कुत्ते भेड़ों की ओर झपटे। सब चीखते-चिल्लाते तितर-बितर हुए। मगर एक भेड़ का बच्चा जो दौड़ या भाग नहीं सकता था कुत्तों की सेना का आसानी से शिकार बन गया। पुट्टण्ण कुत्तों को डराते हुए उस भेड़ के बच्चे को बचाने के लिए दौड़ा। वह भेड़ का बच्चा कुछ देर इधर-उधर भागकर, अपने को बचाता रहा। मगर बिगड़े कुत्ते और भी बिगड़कर जिद करके उसके पीछे भागे, अंत में उन्होंने उसे पकड़ ही लिया। वह भेड़ का बच्चा एक बार आर्तध्वनि से चीखकर ज़मीन पर गिर पड़ा, फिर चुप।

पुट्टण्ण ने दौड़कर कुत्तों को अपनी मुट्ठी से मुक्का मार-मारकर भगा तो दिया, मगर वह प्यारा सफेद भेड़ का बच्चा घास वाली जमीन पर छटपटा रहा था। उसकी गर्दन के पास, पिछली टांगों के पास का चमड़ा कुत्तों के काटने से लाल हो गया था। उस प्रिय लौंदे के समान गिरे भेड़ के बच्चे की शोचनीय स्थिति को देखकर पुट्टण्ण का हृदय पिघल कर पानी-पानी हो गया। "हाय ! तुम्हारी लाश गिर जाय !" कुत्तों को कोसते हुए पुट्टण्ण ने उस भेड़ के बच्चे को धीरे से उठा लिया। उसका मुलायम-चिकना-कोमल चर्म हाथ को लगते ही पुट्टण्ण में दर्शन से उत्पन्न करुणा स्पर्श से दुगुना हो गई। उसको पानी पिलाकर, शुश्रूषा करने के विचार से वह पास में रहने वाले घाट के मजदूरों के घर गया। सभी मजदूर काम पर गये थे, इसलिए सब घरों के दरवाजे बंद थे। पिछले दिन हाथ को चोट लगने

से सोम काम पर नहीं गया था। इसलिए वह सोम के घर गया। दरवाजा खुला था। अंदर से कोई आवाज़ नहीं आई। "सोमा! अरे सोमा!" आवाज़ लगाई। मगर जवाब नहीं आया। पुट्टण्ण भेड़ के बच्चे के साथ झुककर घर के भीतर गया।

धूप में से आया था, इसलिए घर में अंधेरा-सा लगा। पुराने सड़े चीथड़ों की बू, नारियल के तेल की बू, भुने सूअर के मांस की बू से सारा घर भर गया था। कुछ 'घोर-घोर', 'गोर-गोर' आवाज़ कान में पड़ी। उसने पुकारा "सोमा! सोमा!" उत्तर में फिर वही 'गोर! गोर! घोर! घोर!' आवाज़। किसी ने 'हां' नहीं कहा। उतने में अंधेरा गायब-सा हो गया था। पुट्टण्ण ने देखा कि एक कोने में चूल्हे के पास, ज़मीन पर सोम खर्राटा लेते पड़ा है। और वह स्तंभित हुआ! भेड़ के बच्चे को नीचे उतार कर सोम के शरीर पर झुका। उसकी आंख कानी बनी थी। मुंह खुला था। सांस बड़े कष्ट से बाहर आ रहा था, वही 'गोर! गोर! घोर! घोर!' आवाज़ करती। पेट फूला हुआ था। वह निश्चल था, तो भी वहां गाफिल पड़ी चीजों को देखने से पता लगता था वह बहुत छटपटाया होगा। पहले पहल उसकी ऐसी स्थिति का कारण नहीं ध्यान में आया। मगर वहां खुला पड़ा सूअर का गोश्त देखकर उसको सारा राज मालूम हो गया। वह तुरंत क्रियाशील बन गया। उसने जल्दी-जल्दी सोम को उठाकर बिठाया, फिर गर्दन के नीचे पीठ पर एक जोर से घूंसा मारा। जैसे कमान से तीर छूटता है डोरी को खींचने से, वैसे सोम के मुंह से कुछ मांसावृत हड्डी का टुकड़ा छूटकर बाहर आकर पट् से जमीन पर गिर गया। फिर सोम दीर्घ सांस लेते हुए, मरकर जीने वाले की तरह पुट्टण्ण की ओर ताकते बैठ गया।

सभी मजदूर उस दिन कांजी पीकर काम पर गये थे। सोम अकेला हाथ पर पट्टी बांध लेकर अपने घर में आया था। समय बिताना दूभर हो जाने से एक-दो बार पान-सुपारी उसने खाई। चार-पांच बार बाहर जाकर थूका। तमाखू मिश्रित तांबूल चर्वण आखिरी बार थूककर लौटते समय उसकी दृष्टि चूल्हे पर रखे मिट्टी के बरतन पर पड़ी। उसमें पिछले दिन मारे सूअर का भुना मांस रखा था। उसे देखकर सोम के मुंह में पानी आया। सवेरे कांजी खाते समय उसको परोसा गया सूअर का मांस यथेष्ट नहीं हुआ था। रात के भोजन के लिए कुछ रहे सबकी स्वीकृति से बचा हुआ मांस आग बुझे चूल्हे पर हांडी में रख दिया गया था। उसमें से थोड़ा खाने से औरों को क्या कम पड़ेगा? सोचकर सोम नमक मिलाकर भुने मांस के टुकड़ों को—पहले एक, फिर दो-दो, फिर तीन-तीन—लगा मजे से खाने। 'थोड़ा खाने से यह—क्या पता लगे औरों को' सोचकर उसने खाना शुरू किया था। वह थोड़ा ही खाया होता तो औरों को मालूम न होता। यह सच है। परंतु उसके 'थोड़ा' की निश्चित बंधी सीमा नहीं थी। थोड़ा-थोड़ा करके

हांडी में रखे मांस का आधा हिस्सा क्या, उससे कुछ ज्यादा ही वह खा गया था। गाड़ी भर के अन्न को खाकर पचाने वाला भीम हमारे सोम को देखता तो आंखें फाड़कर, मुंह खोलकर, अप्रतिभ होकर हार मान लेता कि क्या ! आधा मांस खाने के बाद सोम को डर लगा कि 'मैं पकड़ा न जाऊं। पर ज्यादा खाने का हक मुझे है; मैं ही हूं न जाकी से सूअर को छुड़ाकर लाने के लिए आगे जाने वाला ? अलावा इसके टाइगर के हिस्से को भी पाने के लिए कष्ट उठाकर,'कानवैलु' जाकर 'पुट्टण्ण से स्वीकृति लेकर आने वाला मैं ही हूं न ? औरों के समान ही मुझे हिस्सा ? कहां का न्याय !' यों सोचकर सोम ने फिर खाना शुरू किया ! पहले मांस के टुकड़ों को अच्छी तरह चबाकर खाता था, फिर मुंह में डालकर इधर-उधर दो-दो बार घुमाकर निगलने लगा। तब उसमें न भूख थी, न रुचिप्रियता, मगर सिर्फ मांस खाने का लोभ था। उसी समय कुत्तों का भौंकना, पुट्टण्ण की ऊंची आवाज कानों में पड़ने से सोम कुछ घबराहट से मांस के टुकड़े झटपट मुंह में डालने लगा। बेहड्डी के मांस के टुकड़ों को खाने वाला सोम बाहर की आवाज सुनते ही, किसी के आने के डर से विवेक विवेचना शून्य होकर मांसावृत एक हड्डी को निगल गया। लेकिन वह हड्डी सीधे सुरक्षित पेट में नहीं गई, गले में ही अटक गई, तकलीफ देने लगी। सोम ने उसे आगे बढ़ाने की कोशिश की और वह मजबूत होकर गले में अटक रही। उससे सांस लेने में तकलीफ होने लगी। उसको बाहर निकालने का उसने काफी साहस किया। लेकिन सब बेकार ! वह छटपटाता रहा। किसी को बुलाने का प्रयत्न किया, उसमें भी सफल नहीं हुआ। पहले वह सोच रहा था कि घर कोई नहीं आवे। अब वही चाहने लगा कि कोई आ जाय। वह किसी के आने की प्रतीक्षा में बैठा था कातरता से आंखें खोलकर। चंद मिनटों में आंखों में अंधेरा जम गया। मन भी सुन्न पड़ गया। उसकी छटपटाहट भी रुक गई। इसीलिए सोम पुट्टण्ण का आना, उसका पुकारना, उसका घर में प्रवेश करना न जान सका।

पुट्टण्ण के एक ही घूंसे से हड्डी बाहर निकल आई, सोम में चेतना आ गई।

"हाय रे, आग पड़े तेरे पेट में ! मांस के लिए जान भी गंवा ली थी न तूने !"

पुट्टण्ण के फटकार पर सोम कुछ नहीं बोला। जमीन पर उछलकर पड़ी हड्डी पर टूट पड़ी मक्खियों को देखते धीरे से वह बोला, "देखिए पुट्टे गौड़जी, आपको उस सूअर को नहीं मारना चाहिये था।...दीखता है वह भूत का सूअर था।"

उस सूअर के कारण हुई अनहोनी घटनाओं की याद करके, उसने तय किया था कि उस पर कोई भूत सवार रहता होगा। उसका विश्वास हो गया था कि

जाकी को, टाइगर को, पुट्टण्ण को—उस भूत के कारण से ही सबको तकलीफ़ हुई होगी ।

पुट्टण्ण हंसी को रोक न सका । आंसू आने तक खूब खिलखिलाकर हंस पड़ा । सोम का विश्वास और भी पक्का हो गया ! प्रबल भी !

फिर पुट्टण्ण जब भेड़ के बच्चे के पास आया तब वह मर गया था और उसका सारा शरीर अकड़ गया था ।

२२

हूवय्य की भाव समाधि

घर आकर दो दिन हो गये थे। रामय्य की हूवय्य को देखने की इच्छा हुई। उसने पिताजी से कहा। मगर चंद्रय्य गौड़जी को हूवय्य के प्रति रामय्य का सहानुभूति दिखाना पसंद नहीं था। इसलिए उन्होंने हूवय्य को देख आने की रामय्य की इच्छा को ठुकरा दिया।

"क्यों तुम जाते हो? आज या कल सब यहीं आयेंगे तो", चंद्रय्य गौड़जी ने कहा।

रामय्य का मन कई भावनाओं से विक्षुब्ध था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि बड़े भाई को सब बताकर हृदय पर का बोझ थोड़ा तो कम कर लिया जाय। इसलिए स्वाभाविक डर का भी दमन करके अपने पिता की इच्छा के विरोध में उसी दिन लौटने की इच्छा सुनाकर पैदल ही मुत्तल्ली गया।

हूवय्य का पीठ का दर्द कुछ हद तक कम हुआ था। इसलिए सबको दूसरे ही दिन नागम्माजी, पुट्टम्म, वासु को भी कानूर ले जाना तय हुआ। पुट्टम्म ने गौरम्माजी से, श्यामय्य गौड़जी से विनती की कि सीता को भी उनके साथ कुछ दिनों के लिए भेज दें। उन्होंने कहा, "अभी नहीं।"

दूसरे दिन दुपहर को (छप्पर वाले कमान वाली) बैलगाड़ी कानूर के लिए रवाना हुई। धूप बहुत तेज थी। गाड़ी हांकते नंज बोला, "उमस को देखने से लगता है, आज बारिश होगी।"

थोड़ी देर में निश्चल बना वायुमंडल चलने लगा। हवा धीरे-धीरे जोर से बहने लगी। कुंकुम के समान चिकनी, गरमी की कड़ी धूप से तपकर हलकी बनी सड़क की लाल धूल मेह-मेह हो ऊपर उठ, चक्र-चक्रदार हो, विचित्र विन्यास भंगियों में दोनों बाजुओं के घने जंगल में घुसने लगी। गगनचुंबी पेड़ों की चोटियां लताओं की तरह लचक-लचककर सिर हिलाने लगीं। प्रदेश की नीरवता हवा की भरभराहट से, सनसनाहट से, मिट गई। सेमल पेड़ों का कपास, सूखे पत्ते, कूड़ा-करकट एक जगह से दूसरी जगह पागलों की भांति उड़ने लगे। बांस के झुरमुट तितर-बितर बालों की तरह होकर हाथी के समान चिंघाड़ने लगे। एक दूसरे के

साथ टकराने से उत्पन्न वांसों की कृति अरण्यपिशाचों के आर्तनाद के समान भया-
नक बन गई। गाड़ी में बैठने वालों को भी एक-एक बार पवनहति से सांस रुकती-
सी लगी।

देखते-देखते नीलगगन निर्मल हो गया। कहीं दूर-दूर में एक-एक जगह सिर्फ
छोटे-छोटे बादलों का आसमान खुल गया जिससे वह सजीव उठा। वे छोटे-छोटे
सफेद बादल इधर-उधर तितर-बितर हो, डरकर भागे जैसे भेड़ियों के झुंड के
आने की खबर पाकर भय से सफेद भेड़ों के झुंड चरना छोड़कर भाग जाते हैं।
उनके बदले धूम वर्ण के धूमरूप के महाशिलाखंडों के समान मृदु-कठिन मानसून
के काले बादलों की सेना धीर, गंभीर, भीषण हो, वेग से सारे आसमान पर छा
गई। पहले दूर-दूर में हो रही बिजली की कड़क, थोड़ी ही देर में भयंकर हो पास
आई। गाड़ी के पीछे हिस्से में बैठा हूवय्य उस सौंदर्य व रौद्रों की भीषण भव्यता
को देख अन्यमनस्क हुआ। उसमें भय एवं रोमांचन मानो एक दूसरे से होड़ लगा रहे
थे। प्रकृति की उन प्रचंड शक्तियों की तांडवलीला में मनुष्य के महान् व्यापार भी
क्षुद्र-क्षुद्र हो दीखने लगे। उस झंझा, विद्युत, वज्र के आगे मुत्तल्ली की गाड़ी, गाड़ी
में बैठे असंस्कृत, अर्धसंस्कृत, सुसंस्कृत, लोग भी वहां उछल-कूद करते रहे जो सूखे
पत्तों की अपेक्षा नगण्य दीखते थे। वे सूखे पत्तों से गये-गुजरे दीखते थे।

बारिश के शुरू होने के पहले, रास्ते में पड़ने वाली ताड़ी की दुकान तक पहुंच
जायं तो सब के लिए अच्छा, हितकर, अपने लिए भी प्रयोजनकारी, इस अभि-
संधि से नंज बैलों को चाबुक से मार-मारकर भगाने लगा। गाड़ी लाल धूल के
अविच्छिन्न प्रवाह को उठाती हुई, उतार, चढ़ाव को पार करती, गड़गड़ाहट करती
दौड़ने लगी।

एक जगह दूर रास्ते के मोड़ पर, पैंट, कोट, धोती पहने, हाथ में छाता पकड़े
एक बड़े आदमी को रास्ते के बगल में पौधों में कुछ ढूंढ़ते देखकर नंज ने जोर से
कहा, "कौन हैं इस बारिश की आंधी में ?"

गाड़ी में बैठे हुए सभी गर्दन उठा-उठाकर उस ओर देखकर 'वह कौन होंगे ?'
अनुमान कर ही रहे थे कि गाड़ी उस व्यक्ति के समीप पहुंच गई तो मालूम हुआ
वह सीतेमने के सिंगप्प गौड़जी हैं; गाड़ी रुक गई। रामय्य नीचे उतरा। उसके
प्रश्न पर सिंगप्प गौड़जी ने उत्तर दिया, 'मैं मुत्तल्ली जा रहा हूं, नाक पोंछने के
लिए जेब से रूमाल निकाला, तब मेरे पुत्र कृष्णप्प का जातक नीचे गिर गया, हवा
में उड़कर पौधों में छिप गया, उसी को ढूंढ़ रहा था।" नंज भी गाड़ी से उतरकर
रामय्य के साथ उसे ढूंढ़ने लगा। सिंगप्प गौड़जी गाड़ी के पीछे जाकर अन्दर बैठे
हुए लोगों की खैरियत के बारे में पूछने लगे। इतने में रामय्य ने जातक ढूंढ़ के ला
दिया। पहले ही वह जीर्णावस्था में रहा जातक हवा की मार से फट गया था।

हूवय्य ने पूछा, "वह क्या है चाचाजी ?"

"हमारे कृष्णप्प का जातक है रे ! वेंकण्यय्य ज्योतिषी जी को दिखाना था। मालूम हुआ कि वे आज मुत्तल्ली में रहेंगे। इसलिए वहां जा रहा हूं।" कहकर सिगप्प गौड़जी ने जातक को कोट के अंदर की जेब में रख लिया।

वे अभी बोल रहे थे कि बारिश की मोटी-मोटी बूंदें गाड़ी के छप्पर (कमान) पर बंधी ताड़ की चटाई पर टप-टप गिरने लगीं।

सिगप्प गौड़जी ने उनसे कहा, "तो आप लोग जाइये। बारिश खूब होगी।" फिर उन्होंने अपना छाता खोला, मगर हवा के झोंकों से वह उलट गया जिसे देखकर सबको हंसी आई। फिर वे छाते को ठीक बना लेकर हवा की ओर उसकी पीठ करके जल्दी-जल्दी आगे बढ़े। रामय्य गाड़ी में बैठ गया तो गाड़ी और भी तेज चली। हवा के विरुद्ध छाता पकड़ के जाने वाले सिगप्प गौड़जी की पीठ धीरे-धीरे छोटी होती हुई रास्ते के मोड़ में ओझल हो गई।

ताड़ी की दुकान के पास गाड़ी आई ही थी कि बारिश जोर पकड़ने लगी। बिजली की कड़क. मेघों का गर्जन और भी दूना हो गया। साथ ही ओले भी गिरने लगे। जैसे गगन से पत्थर फेंके जा रहे हों। हवा के मारे बारिश के छींटे गाड़ी के भीतर भी घुसने लगे। गाड़ी में बैठना भी मुश्किल हो गया। नंज की इच्छा पूरी हुई। ताड़ी की दुकान के आंगन में गाड़ी को छोड़कर सभी दुकान के भीतर चले गये। दुकानदार ने अत्यंत सम्मान के साथ बैठक में चटाई बिछाकर सबको बैठने के लिए कहा। चटाई कोनों में फट गई थी और गंदी भी हो गई थी। अच्छे कपड़े पहने हुए अतिथियों को उस पर लाचार होकर बठना ही पड़ा।

नागम्माजी अतिथियों को दुकानदार ने पान-सुपारी दी थी उसे खा रही थी तब वासु और पुट्टम्म आपस में बातें करते हुए हंस रहे थे। हूवय्य दीवार से पीठ लगाकर बैठ गया था, रामय्य भी उसके साथ बैठ गया था। दोनों उस झोंपड़ी को, वहां की चीजों को, वहां की ग्राम्य कलाभिरुचि के दृश्यों को देखते, बीच-बीच में एक दूसरे के मुंह को देखते, मुस्कुराते बातें कर रहे थे। नंज तो अपने कंबल पर बैठकर नव अतिथियों को देखने के कुतूहल से बाहर आकर देहलीज के पास खड़े दुकानदार के पत्नी-पुत्रों के साथ बातचीत कर रहा था। मानसून की वर्षा खूब जोरों से हो रही थी। वह पूरी जवानी पर थी।

हूवय्य चटाई की गंदगी, वहीं ऊपर टंगी गंदे कपड़ों की राशि, घर-भर भरी ताड़ी-शराब, नमकीन मछली आदि की बदबू से पहले पहल तंग आया था, तो थोड़ी देर में उसका मन बाहर होने वाले भव्य निसर्ग के व्यापारों में तन्मय होने लगा। गगन में काले-कजरारे खचाखच उन्मत्त वेग से चलने वाले बादल, क्षण क्षण-रेखारूपी अग्निप्रवाह की तरह काले बादलों के बीच-बीच में शाख-प्रशाखाओं में लता-विन्यास से झट निकलकर, बहकर, आंखों को चकाचौंध करके गायब होती बिजली, तुरंत गगन के परदे को फाड़ने वाले की भांति बादलों एवं बिजली की भयंकर कड़क,

ध्वनि, उन्मादग्रस्त रुद्र प्रलय कर्ममुखी निराकार राक्षस की तरह घोरनाद से चारों ओर के तुंगवृक्षों से भरी अरण्य-श्रेणियों को निर्दयता से तोड़कर, मंथन करने वाला झंझावात, आकाश-भूमि का अंतर दूर करने के समान अविच्छिन्न धारा प्रवाह से सारे प्रदेश को यवनिकावृत की तरह तनिक काला किया हुआ भीषण वर्षा-सौंदर्य, टप-टप गिरकर सारी ज़मीन को भरने वाले सफेद ओलों की रमणीयता इत्यादि से हूवय्य का मन भाव भूमि पर आरूढ़ हो गया था, इससे उसको अपने इस स्थान की क्षुद्रता या असह्यता या वदवू का अनुभव नहीं हो सकता था। चार-पांच भेड़ें और बच्चे वारिश से घवराकर आये और वैठक के किनारे पर खड़े हो गये थे। भीगे वालों से पानी चूकर नीचे गिर रहा था। उनकी तरह काला कुत्ता भी आकर वहां खड़ा हो गया। एक गाय भी अपने वछड़े के साथ आश्रय के लिए वहां आई। वहां जगह न होने से उसे दुकानदार ने वहां से भगा दिया तो वह वछड़े को वहीं छोड़कर घर के पिछवाड़े जाकर गोठ में आकर खड़ी हो गई। उन जानवरों के वदन से निकलती हुई वू—भेड़ों, कुत्तों, वछड़ों, गायों आदि की वू—उसी में दुकान की वू भी मिल गई। घास की झोंपड़ी थी, यहां-वहां पानी चूने लगा तो वहां के कुछ लोगों को अपनी जगह वदलनी पड़ी।

मुत्तल्ली की गाड़ी जव आंगन में खड़ी हुई तव ताड़ी की दुकान के भीतर और जोर से आवेश से वातें करते, नमकीन मछली खाते, शराव पीते, मज़ा करते वैठे जाकी, ओवय्य और कृष्णप्प तीनों ने वातचीत वंद की थी। शरीफ आदमी का पुत्र कृष्णप्प ने गाड़ी में आये हुए लोगों के वारे में जानकर, जाकी, ओवय्य के साथ आकर अपने किये काम से शरमाकर सूचित किया—मेरे यहां आने की ख़वर किसी को न लगने पावे। तिस पर, अभी-अभी उसके पिताजी उसके लिए कन्या मांगने मुत्तल्ली निकले थे। ताड़ी की दुकान में ओवय्य, जाकी जैसे भ्रष्ट लोगों की संगति में मैं मद्यपान में लगा हूं, अपने मामा के घर वालों को अगर मालूम हो जाय तो क्या हालत होगी, कितने शर्म की वात होगी! अंत में तीनों ने पीने का काम पूरा किया विना कुछ भी वोले। सव समाप्त हो जाने के वाद ओवय्य और जाकी दोनों अपना मुंह पोंछते हुए वैठक में आये। हूवय्य भाव जगत में था, इसलिए उसका ध्यान उनकी तरफ नहीं गया। उनको देख रामय्य को घृणा हुई। पुट्टम्म, वासु जाकी के विकार-मुख को भय से देख रहे थे।

"ओवय्य, यह क्या, यहां हो?" वासु ने कहा।

"अग्रहार की ओर गया था। वारिश के डर से यहां आया था।" ओवय्य झूठ वोलकर नागम्माजी से वातें करने लगा।

फिर वासु ने विना चुप हुए वही प्रश्न उससे पूछा—"उस दिन तुमने भूत को देखा था, फिर वह तुमको दिखाई पड़ा?"

"ना रे, रोज कैसे दिखाई देगा ? वह हमारे घर का नौकर थोड़े ही है, रोज हमें अपना दर्शन देने के लिए ?"

इतनी देर तक अपनी इच्छा पूर्ण कर लेने की ताक में बैठा नंज धीरे से उठकर कंबल को कंधे पर डाल के अंदर गया। बाहर होती बातचीत को चोरी से सुनते वहां बैठे कृष्णप्प को देखकर, "ओहो, क्या कृष्णप्प गौड़जी, आप यहां ?" नंज ने पूछा तो कृष्णप्प के इशारे से चुप हो गया। अपना वहां रहना किसी को न बताने के लिए धीरे से कहकर कृष्णप्प ने रिश्वत के रूप में उसे ताड़ी पिलाई।

बारिश रुक गई। नंज गोठ में बंधे बैलों को खोलकर लाया और उन्हें गाड़ी से जोतने के लिए तैयार हो गया। बैठक में बैठे सब उठे और रवाना होने के लिए तैयार हो गये। लेकिन हूवय्य नहीं उठा। वह अभी तक परवशता में निस्पंद हो बैठा था। आंखों से आंसू बह रहे थे। मुंह पर लाली चढ़ी थी। उसे देखकर सभी घबरा गये। रामय्य ने कहा, "चुप रहो, वह कुछ नहीं है। उसे कभी-कभी ऐसा होता रहता है।" ये बातें सुनकर सब संतुष्ट हुए। प्रकृति के सौंदर्य को देख, भावपरवश हुआ है, यह कोई दूसरा नहीं जान सकता था रामय्य के सिवा। अतः उसने किसी को उसके बारे में विस्तार से नहीं सुनाया।

सभी गाड़ी में बैठ गये। तब कृष्णप्प बैठक में गया। ओबय्य ने जो-जो बातें हुई सब सुनाकर कहा, "हूवय्य गौड़जी के वदन में वह आया था" (भूत का संचार हुआ था)।

जाकी ने कहा, "अजी, बात सच होती तुम्हारी तो क्या वे वैसे चुप बैठे रह सकते थे ? मूर्च्छा रोग होना चाहिए। तीर्थहल्ली में एक को मूर्छा रोग था, वह भी ऐसा ही करता था।"

"हां, मैंने भी ऐसे एक आदमी को देखा था।" दुकानदार ने अपनी एक बात जोड़ दी।

कृष्णप्प ने भी कहा—"मैंने भी सुना था।"

उस दिन से हूवय्य की भाव समाधि नानारूप धारण करके फैलने लगी जैसे 'वदन पर आया है', 'भूत का संचार हुआ है', 'वह मूर्छा रोग है।' एक के मुंह से निकलकर दूसरे के कान में पहुंचती, उससे तीसरे के कान में, इसी तरह।

२३

दावाग्नि की चिनगारी की प्रस्तावना

दूसरे दिन सवेरे उठने के वाद नाना चिंताओं से हूवय्य का मन भारी हो गया। पिछली रात को रामय्य ने अपने भाई को घर की सारी वातें, जो वह जानता था, वताकर अपने दिल को हलका कर लिया था। मगर हूवय्य वहुत देर तक वैसे नहीं रह सका। यद्यपि इसको मालूम न होने पर भी उसके आगमन से घर में एक अज्ञात उल्लास उमड़ा पड़ रहा था। वड़ी खुशी हुई थी वासु को; वह तो चिड़िया की तरह उड़ता था। उसका मुग्ध हृदय मुग्ध हर्ष से भरा कितनी ही वड़ी चिंता को दूर करके आनंद दे सकने वाला-सा था। इतना ही नहीं; उस दिन के प्रातःकाल का समय स्वर्गीय हो जाने की वजह से हूवय्य का मन उसके प्रभाव से वहुत समय तक मुक्त नहीं रह सकता था।

स्नान, काफी,नाश्ता हो जाने के वाद हूवय्य, रामय्य, वासु, पुट्टण्ण सभी मिलकर वाहर निकले। कुत्ते भी उनके पीछे गये। उनको जाते देखकर दरवाजे पर खड़ी पुट्टम्म को लगा था—"मैं भी लड़का होकर पैदा होती तो कितना अच्छा होता!"

पुट्टण्ण सोम की कहानी खूव नमक-मिर्च लगाकर सुनाते जा रहा था; वंदूक उसके कंधे पर थी हमेशा की तरह। वीच-वीच में सभी कहकहे लगाते थे। हंसकर लोटपोट हो जाते थे। उस दिन सवेरे हवाखोरी के लिए जाना किसी ने तय किया नहीं था। कुछ हो, वासु अपने आप मार्गदर्शी वन गया था!

पिछले दिन मानसून की वर्षा होने से वायुमंडल निर्मल था। आकाश प्रसन्न था। वर्षा में स्नात पेड़-पौधों, लताओं के पत्तों पर और हरियाली चढ़ गई थी, जिससे सारे जंगल मानो खिलखिल हंसते-से लगे। जमीन पर उगी घास पर, वांसों के झुरमुट पर, लता की नोक पर, पत्तों के छोर-छोर पर, मकोड़ों के जालों पर भी सैकड़ों, हजारों, करोड़ों वूंदें प्रातःकालीन सुनहरी धूप में रंग-विरंगे छोटे-छोटे नन्हे-नन्हे रत्नदीपों की भांति, शोले-शोले-सी, ज्वाला-ज्वाला-सी हो ठंडी हवा में टिमटिमाकर चमकती थीं। तोते, पिकलार, कामल्ली, काजाण, मींचुल्ली चोटे, कुटुर, पुरुलि आदि चिड़ियों के वसंतोदय गान ने प्रातर्मौन समुद्र को मधुर

रव-तरंगित बना दिया था। भीगे जमीन की ठंडक, स्नात हरियाली की शीतलता, कोमल हवा की शीतलता से सारा जग शीतल बन गया था। जीने से श्रेष्ठ ध्येय जीवन का दूसरा ध्येय नहीं है जैसे दीखता था।

घर के नजदीक तालाब था। उसके पास वासु ने नारंगी के पौधे लगाये थे। सबने उनको देखा। वहां से सभी पुट्टण्ण के तरकारी के खेत गये। वहां बैंगन, चौलाई, धनिया, मिरच के पौधों को देखा। पिछले दिन की बारिश और झंझावात से गिरे पौधों को बल्लियों का सहारा देकर खड़ा किया। यहां-वहां पेड़ों की जड़ों में छोटे-छोटे तालाब बनाकर खड़े वर्षा के पानी को छोटे-छोटे नाले बनाकर भगा दिया।

वहां से सभी बगीचे में गये। सुपारी के पेड़ों के बीच, घने-बढ़े केलों के पौधों के बीच में से होकर खेत की ओर जा रहे थे। तब केले और सुपारी के पेड़ों के पत्तों पर से टप-टप गिरने वाली बूंदों से सबके कपड़े भीग गये। वासु यहां-वहां गिरे सुनहरे केलों को चुनचुनकर जांच कर उस दिन के भोजन के लिए संग्रह कर रहा था, बाकी सब छोटे-छोटे नालों को कूद-कूदकर लांघते ये-वे बातें करते हुए जा रहे थे।

एक जगह के केले के पेड़ के नीचे एक गड्ढा खोदकर उस पर घास बिछायी गयी थी ताकि किसी को उसमें पक्व होने के लिए रखे गये केले के गुच्छे दिखाई न पड़े। बेलर बैरे के लड़के गंग ने यह काम किया था जिससे केले के पक जाने पर जब चाहे तब यहां आकर उसको खाने को मिलें। उस दिन गंग आकर केले खा रहा था। उसको उन लोगों का आना मालूम होते ही उसने जल्दी-जल्दी खाकर बाकी फलों को छिपा दिया और केले के पत्तों की आड़ में खुद छिप गया। मगर एक कुत्ता पत्तों की सरसराहट सुनकर, उस ओर देखकर भौंका। वासप्प ने उस ओर देखा तो छिपा गंग दिखाई पड़ा। मगर उसे नहीं मालूम हुआ कि गंग वहां वैसे क्यों खड़ा है। वासु उसके पास गया, तब तक गंग ने सब छिपा दिया था। परंतु उसके फेंके केले के छिलके वहां पड़े थे। उनको छिपाना वह भूल गया था।

वासु ने अधिकार वाणी से पूछा, "क्या करते हो यहां?"

"कुछ नहीं जी, केले की देखभाल करने के लिए आया था।" कहा गंग ने।

गंग ने चिड़ियों के घोंसले से बच्चे चुराकर वासु को धोखा दिया था जिसे वासु नहीं भूला था।

"चोर कहीं का! झूठ बोलता है!" कहकर वासु जमीन को खोदने लगा। 'चोर का राज चोर ही जानता है' कहावत के अनुसार ऐसे कामों में पारंगत वासु को छिपाकर रखे केलों का पता लगाना कठिन न था। केले के छिलके भी यहां-वहां पड़े गवाही दे रहे थे।

"हूवय्य, रामय्य, यहां आइये। यहां आइये, यहां!" जोर से वासु ने पुकारा।

तभी कुछ दूर वे आगे वढ़ गये थे। वासु की पुकार सुनकर खड़े हो गये और पूछा, "क्यों रे ?"

"यहां आइये ! यहां आइये ! एक चोरी !" जोर से उन्हें बुलाकर गंग को "छिनाल के वच्चे ! मुझे धोखा देता है ?" कहकर गाली दी।

सवने आकर देखा। पीले-पीले पके केले गड्ढे में विछी घास पर विराजमान होकर खुशवू फैला रहे थे। गंग आंसू वहाते खड़ा था। सारा मामला साफ मालूम हो गया। मगर हूवय्य ने उसको नहीं डांटा, पर, पके केलों को सवमें वांट दिया, कुछ गंग के हाथ में देकर, घर ले जाने को कहा। वासु की आशा भंग हो गई, क्योंकि गंग को मार नहीं पड़ी।

वाग के अमरूद, जामुन के पेड़ों पर चिड़ियों की आंखों से वचे तथा गंग, पुट्ट की आंखों से वचे फलों को तोड़कर खाते हूवय्य आदि खेत के मैदान पर आये। तव तक वैरे और सिद्द ने हल जोत दिया था। पिछले दिन अच्छी वर्षा हो जाने से, गरमी की कड़क-धूप से सूखकर दरार पड़े खेत खूव पानी पी चुके थे जिससे मिट्टी मुलायम वन गई थी। खेत पर पैर रखते ही मिट्टी की मृदुता एवं शीतलता हर्षप्रद लगती थी। दाने चुगने के लिए आये हुए 'होरसलु' पंछी अपने पंखों को फड़फड़ाते मुड़कर खेत के किनारे मेंड पर वैठ गये। उनकी ताक में पुट्टण्ण गया मगर हूवय्य, रामय्य और वासु तीनों उस खेत के किनारे पर जा खड़े हुए जिसकी जुताई हो रही थी।

वैरे ने लोहे का हल पकड़ा था, मगर सिद्द का हल देसी लकड़ी का वना हुआ था। "हुमा, चिगा, है म् म् चिग चिग चिगा" आदि सांकेतिक पदों के अनुसार वैल जैसे चलते जाते वैसे हल का फाल ज़मीन को चीरकर मिट्टी को दोनों वाजू धर डालता था। हल के चलने से पड़ी लकीर की पंक्ति पीछे-पीछे सरकती जाती थी।

"रुसि (ऋषि) होना चाहते हैं आप ! यह क्या सच है ?" हंसते-हंसते वैरे ने पूछा।

"हां रे", कहकर हुवय्य हंसा। रामय्य भी हंसा।

"तो आप शादी नहीं करेंगे ?"

"सो सव तुझे क्यों चाहिए !"

"यों ही पूछा। कोई-कोई आपस में बोल रहे थे।"

'रहने दो उसे। हल छोड़ो, मैं चलाता हूं।"

"अच्छा, रहने दीजिये ! आपकी धोती ज़मीन से छुएगी तो साफ रहेगी !"

"धोती ऊपर उठाकर वांध लूंगा रे।"

"वैल घवरा गए तो !"

"घवराएंगे नहीं; कुछ भी नहीं। दे दो हल।"

हूवय्य ने धोती को घुटनों तक उठाकर बांध ली और किनारे से खेत में उतरा। वैरे ने अपनी छड़ी हूवय्य को दी और हल छोड़कर, दूर सरकर खड़ा हो, हल जोतने के चार उपदेश दे, 'हुं चिग' का रहस्य वता दिया।

"हल जोर से मत दबाइये। फाल बैलों के पैरों को लगने न पाये। दाहिने घुमाना हो तो बैल को 'चिग चिग चिग' बाई तरफ से कहते उसको छड़ी मारिये। बाईं ओर लेना हो तो 'हुम्, हुम्, हुम्' कहके छड़ी से दायें बैल को मारिये···।"

जैसे वैरा कह रहा था तो सिद्द ने देखा "पुट्राम तभी आंख फिराकर देख रहा है!" कहकर, घबराहट की नज़र से हूवय्य के सफेद कपड़ों को देखने वाले 'पुट्राम' बैल को धमकाया। उसको देखकर रामय्य ने कहा, "हां,रे भैया;तुम्हारा बैल, न जाने क्यों, आंखें लाल करके देख रहा है। जरा होशियार रहो!"

हूवय्य ने जवाव दिया,"वैसे वह जोर लगा दे तो हल को जोर से दबाकर खड़े रहें तो बस। उसका खेल रुक जाता है!"

किनारे पर खड़े हुए वासु ने बड़े अनुभवी की तरह, खेती करने वाले की तरह कहा, "मैं भी आ जाऊं हूवय्य भैया?"

"न भैया, न। तुम्हारी सवारी वहीं खड़ी रहे! तुमको देखकर पत्थर भी कूदते हैं! बैल की हालत क्या हो!"

"हूं! वैरे से ही पूछो। पिछले साल मैंने भी जोता था!" वासु ने कहा।

"भोजन करते समय क्या?"

वैरे ने कहा "हांजी; वासप्पय्य ने भी थोड़ा-थोड़ा जोतना सीखा है।"

अंत में किनारे पर ही वासु को खड़े होकर देखना पड़ा। हूवय्य और रामय्य जोतने लगे।

हमेशा गंदा कपड़ा पहने हुए लोगों को देखने के आदी हुए इन बिलकुल श्वेत वस्त्र धारियों को देखते ही बैल चौंके थे। जब दोनों अजनबी हल धरकर जोतने लगे तो क्रम छोड़कर चलने लगे। 'हुम्, चिग्, चिग्;' 'म्, हुम्, हुम् चिग्, चिग्' कहके चिल्लाने पर भी वे बैल कृषि विद्या के इन पारिभाषिक सांकेतिक पदों की परवाह किये विना खेत में मनमानी तरफ जाने लगे। वासु, वैरा, सिद्द तो हूवय्य और रामय्य की फजीहत देखकर और उनकी पुकार सुनकर हंस रहे थे। बीच-बीच में सलाह भी फेंकते रहते थे। बैल और भी चौंककर भड़क गये। हूवय्य के लोहे का फाल एक बैल के खुर के ऊपरी हिस्से पर लग गया जिससे खून निकल आया। फाल ऐसा लग गया था जैसे तलवार ने काटा हो। यह देखकर हूवय्य घबरा गया। उसने अपनी सारी ताकत लगाकर हल को जमीन में दबाया। लोहे का हल जमीन में गहरा धंस गया, बैल उसको खींच न सके, खड़े हो गये।

तभी ठीक समय पर 'होरसलु' चिड़ियों की ताक में बैठे पुट्टण्ण ने एक

गोली दाग दी।

अभी तक काबू न हुए बैल खेत में हल को और साथ-साथ खींचकर भागने लगे, गोली की धड़ाम आवाज़ सुनकर डर के मारे। लकड़ी के हल को रामय्य तुरंत जोर से जमीन में दबाया, पर बैलों को वह खड़ा न कर सका। वे उसको तथा हल को भी खींचकर किनारे की ओर ले गये। अब क्या उस ऊपर के खेत के किनारे से नीचे वाले खेत में कूदना चाहिए! वैसा करना जोखिम का काम था। इसलिए रामय्य ने वही समय अच्छा समझकर, करीब एक फुट ऊंचे, दो फुट चौड़े किनारे में मजबूत मुट्ठी से हल को दबा दिया। जोर से भागने वाले बैल 'गक्' से रुक गये। पर एक ही क्षण! दूसरे ही क्षण में लकड़ी के हल को तोड़कर जुए के साथ नीचे वाले में खेत में कूद पड़े मगर रामय्य हल की मूठ पकड़कर खेत के किनारे पर खड़ा रहा।

कोई ज्यादा समय न हंस सका। संकट लघु हो तो विनोद बन सकता है। गुरुतर हो तो विषादमय हो जाता है। घायल बैल की टांग से खून निकलना, हल का टूटना किसानों की दृष्टि में लघु घटनाएं नहीं थीं यद्यपि और की दृष्टि में थीं। उसमें भी जुताई के प्रारंभ के दिन में हल का टूटना अपशकुन है, सब का यही विश्वास था। जोर-शोर से बोलने वाले वे दुख से धीमी आवाज में बोलने लगे। बैरा सिद्द तो डर गये थे—इस ख्याल से कि किसी को इस घटना का पता लग जाय तो क्या होगा!

बैरे ने भयोद्विग्न स्वर में कहा, "मैंने तभी मना किया था, बैल भड़केंगे!"

सिद्द 'सवेरे-सवेरे किसका मुंह देखकर उठा था कि क्या! मेरा दुर्भाग्य!" कहकर टूटा हल जमीन पर पटककर, सिर पकड़कर बैठ गया।

"यहां आते समय कौआ रास्ता काट के गया। सोचके ही आया था! आज कुछ बुरा होगा, कुछ हो ही गया!"

"मैं पत्थर से टकराया, तभी सोचा कि मेरा भाग्य आज अच्छा नहीं है!"

बैरा और सिद्द दोनों एक के बाद एक इस तरह जलपते ही रहे। बीच में वासु भी बोला, "पहले ही कहा था मैंने! इसलिए पूछा था कि मैं आऊं? हूवय्य ने मना करके गाली दी। अब?"

अब तक चुप रहे हूवय्य तथा रामय्य को गुस्सा आया। जो होना था, हो जाने पर, आगे के काम के बारे में सोचना छोड़कर, इस तरह बोलते रहने से किस के मन को चोट नहीं लगेगी।

ज्यों ही वासु ने बात पूरी की त्यों ही हूवय्य ने उसकी ओर चट से घूमकर, मुंह फुलाकर कहा, "बस! चुप रहो! मैंने क्या गाली दी तुमको? यह होना तो सभी अच्छा होता कहता है!" इस तरह उसे डांटा।

वासु बेचारा मुंह लटकाकर खड़ा हो गया।

रामय्य ने जोर से आज्ञा दी, "ऐ बैरा, जोतना छोड़ दो। ले जाओ बैलों को जाकर गोठ में बांध दो। जिस बैल की टांग में जहां चोट लगी है वहां दवा लगाओ…" फिर सिद्द की तरफ घूमकर आज्ञा दी—"क्यों रे, इस तरह सिर पकड़कर क्यों बैठा है ? उठ रे ! उठेगा कि नहीं ?"

"क्या उठना, मेरे पैर ही नहीं उठते।" सिद्द लंबी ध्वनि में कहते हुए उठ खड़ा हुआ।

इतने में पुट्टण्ण की "हची ! हची ! छोड़ ! छोड़ ! छोड़ कोतवाल !" यह सुनकर हूवय्य, रामय्य, वासु तीनों उस ध्वनि की ओर दौड़े।

पुट्टण्ण के गोली दागते ही सभी कुत्ते वहां गये थे। छर्रे के लगने से 'होरसलु' पंछी तो नीचे गिर गया, मगर उसमें जान थी। इसलिए वह कहीं झुर-मुट में जा छिप गया। कुत्ते भी शिकारी के साथ उसे ढूंढ़ने लगे।

थोड़ी देर में ढूंढ़ने के बाद वह पछी कोतवाल की नजर में पड़ा। पंछी उसके मुंह में भी छटपटाता रहा, मगर उसे मुंह में दबाकर वह भागने लगा। पुट्टण्ण शिकार को कुत्ते के मुंह से छुड़ाने के लिए उसका पीछा करने गया। मगर कुत्ता पंछी को निगलकर सीगे पेड़ों के झुरमुट में छिप गया। तब पुट्टण्ण दांत पीसते "घर तो आ जा। पंछी की कै करवाता हूं !" कहकर शाप देते खड़ा रहा।

हूवय्य आदि सभी आये तो पुट्टण्ण ने सारी घटना सुनाकर कहा, "क्या करना होगा उस कुत्ते को ? इसी बार नहीं, दो-तीन बार पहले भी ऐसा ही किया है।"

वासु ने सजा सुनाई, "उसे दो-तीन दिन बांधकर रखना चाहिए और खाना भी नहीं देना चाहिए।"

सभी मिलकर चिड़ियों के शिकार के लिए केल कानूर की तरफ गये।

इधर बैरा घायल बैल को लेकर गोठ की ओर गया। उसके पीछे टूटे हल को ढोकर सिद्द जाने लगा।

गन्ने के खेत में घाट के मजदूरों के काम का निरीक्षण करके सेरेगारजी के साथ आने वाले चंद्रय्य गौड़जी ने दूर में बैरे व सिद्द को जुताई छोड़कर जाते देख "क्या करना चाहिये इन लुच्चों को ? नौ बजे काम पर निकलते हैं ! दस बजे काम छोड़ देते हैं !" कहकर आवाज मारी, "ऐ बैरा, आग लगे तुम्हारे घर को ! इतनी जल्दी जुताई छोड़कर घर के लिए मर रहे हो।"

गौड़जी की आवाज सुनकर, सिद्द की टांगों की शक्ति ही जैसे निकल गई। उसने कहा, "बैरा भाई, आज मेरे पीछे दुर्भाग्य हाथ धोकर पड़ा है।"

बैरे ने सारी घटना सुनाई, एक भी बात छोड़ी नहीं। गौड़जी ने बैल की टांग पर लगी चोट और टूटा हल देखकर "घरबार बरबाद करने वाले लड़के !… तुमसे किसने कहा उनके हाथ हल देने के लिए ?" कहकर एक तमाचा बैरे के गाल पर जड़ दिया। ऊपर वाले खेत के किनारे पर खड़ा सिद्द ने सोचा कि मुझे

भी मार खानी पड़ेगी तो वह धीरे से पीछे हटा, तभी पैर चुक गया और टूटे हल के साथ तीन-चार फुट नीचे के खेत में गिर पड़ा।

गौड़जी रंगप्प सेट्टजी की ओर घूमकर "सेरेगारजी, इनको आज की मजदूरी का धान वंद !" कहकर नाक चढ़ाते हुए चले गये।

"हम क्या करें सेरेगारजी ! अगर वे आकर मांगें तो क्या हम इनकार कर सकते हैं ?" कहकर वैरे ने अपने गाल को मलते हुए आंसू वहाये।

खेत में ऊपर उठ, कुरता, वदन झाड़ते हुए सिद्द कह रहा था "हमारा दुर्भाग्य ! वाज़ आए इस जिंदगी से।"

जिस वैल को वैरे ने पकड़ा था वह अपनी गर्दन को झुकाकर अपना वदन चाट रहा था।

सेरेगारजी ने आंखों के इशारे से वैरे की आंख की तरफ देखते धीमी आवाज़ में पूछा, "आज एक वोतल दोगे ?"

वैरा क्षणार्ध में अपना दुःख और अपमान भूल गया और दूसरी दुनिया में प्रवेश करने वाले की तरह जागकर वोला, "देखूं क्या होता है; सुना है कि आज हमारे घर रिश्तेदार आने वाले हैं। कुछ भी हो; अंधेरा हो जाने पर उस 'वसरी' पेड़ के नीचे झुरमुट में आकर देखिये !"

शाम को 'वसरी' पेड़ की छाया पूरव की ओर लंवी हो रही थी, अभी ढोर गोठ की तरफ नहीं आ रहे थे। अंधेरा छाने लगा था। तव वैरे के सूचित स्थान पर सेरेगारजी ने आकर देखा—हरे-नीले रंग का वोतल तो दिखाई पड़ी लेकिन उसमें ताड़ी या शराव नहीं थी। वैरे पर नाराज होकर सेट्टजी "अच्छा, रहे, मेरे हाथ से क्या होता है, देखेगा।" कहकर घर आये।

थोड़ी देर वाद वैरा और सिद्द उस दिन काम पर गये दूसरे मजदूरों के साथ उस दिन का मेहनताना लेने घर आये। ('घर' यानी गौड़जी का निवास। वाकी लोगों के घर को 'विडार' 'गुडि' नाम दिया गया था।)

सेरेगारजी ने सवको मेहनताना दिया, लेकिन गौड़जी की आज्ञा के अनुसार वैरे और सिद्द को नहीं दिया। कई तरह से दोनों ने प्रार्थना की।

"ऐसा करें तो कैसे ? वह वुखार आने से सो गई है। कांजी वनाकर खिलाने के लिए चावल का एक दाना भी घर में नहीं।" वैरे ने कहा।

"गौड़जी से पूछकर आना। क्या विना खाये सोया जा सकता है रात को ?" सिद्द ने कहा।

"गौड़जी घर में नहीं है रे," सेरेगारजी ने कहा।

उसी समय पुट्टण्ण अन्दर से वाहर आया। तव वैरे ने अपना हाल सुनाया।

पुट्टण्ण ने कहा, "सेरेगारजी, जाने दीजिये। उनको दे दीजिये।"

सेरेगारजी ने सवेरे हल के टूटने, वैल की टांग में चोट लगने की वात और

चन्द्रय्य गौड़जी की आज्ञा सुनाई। तब पुट्टम्म ने पूछा, "सच है क्या रे? ऐसा अन्याय करना?"

नीचे होने वाला वाद-विवाद को ऊपर पढ़ने बैठे हूवय्य ने सुना और वहां बंदूक साफ करते बैठे पुट्टण्ण से कहा, "बैरे और सिद्द को मेहनताना देकर भेजिये।" वह नीचे आया और सेरेगारजी से कहा कि उनको मेहनताना दे दें। सेरेगारजी ने इनकार किया। अगर बैरा सेरेगारजी को बोतल भरकर शराब या ताड़ी दे देता तो सेरेगारजी गौड़जी की आज्ञा का इतनी कठोरता से पालन शायद न करते, दीखता है!

सेरेगारजी जब नहीं माने तो खुद पुट्टण्ण देने के लिए आगे बढ़ा। सेरेगारजी को अपमान-सा हुआ, अभिमान-भंग-सा हुआ इसलिए वे पुट्टण्ण को रोककर खड़े हुए और बोले—"आप मत दें। गौड़जी ने कहा है!"

"अजी, हूवे गौड़जी, रामे गौड़जी बैल की टांग को चोट पहुंचावें, हल तोड़ें तो इनको मेहनताना क्यों नहीं देना?"

"मैं नहीं जानता, गौड़जी ने कहा है!"

"मुझसे भी कहा है मेहनताना देने के लिए गौड़जी ने ही।"

"कौन गौड़जी?"

"कोई भी हों, हूवे गौड़जी।"

"यजमानजी चन्द्रय्य गौड़जी हैं। हूवे गौड़जी नहीं।"

पुट्टण्ण अप्रतिभ हो खड़ा रहा। दोनों कुछ क्षण बिना बोले खड़े रहे। इतने में सीढ़ियों पर धड़-धड़ाहट हुई। सबने उस ओर देखा। पढ़ते हुए ग्रन्थ को हाथ में वैसे ही पकड़कर हूवय्य गुस्से से उतरकर नीचे आया और कड़क आवाज में कहा—"पुट्टण्ण, हट जाओ वहां से!" आंखें लाल हुई थीं, चिनगारियां बरसती थीं। उस अन्धेरे में भी सबको हूवय्य का रौद्रावतार दीख पड़ता था। पुट्टण्ण दूर हटकर खड़ा हो गया। सेरेगारजी धान के बोरे पर रखे अपने हाथ को खींचकर पीछे हटकर खड़े हो गये। सदा सौम्य, प्रसन्नवदन रहने वाले अपने बड़े भैया के उग्र रूप को देखकर पुट्टम्म को आश्चर्य हुआ।

"सेरेगारजी, उन दोनों को मेहनताना दीजिये।" कहकर हूवय्य गरजा तो सेट्टजी का दिल धड़क गया। वे तो भी कुछ कहने की कोशिश कर रहे थे।

हूवय्य और भी गुस्से से दो कदम और आगे बढ़कर गरजा, "कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है! आप चुपके से देंगे या नहीं?"

इस भीषण व्यक्तित्व के आगे सेरेगारजी भी झुक गये। कुछ भी बिना बोले उन्होंने मेहनताना माप कर दिया। फिर मुंह को भी दिया। (मुंह को देना यानी पान-सुपारी देना। पहाड़ी मुल्क में गुलामों—आजन्म के मजदूरों या बन्धकों को प्रति दिन शाम को मेहनताना, साथ चार-पांच सुपारी, पान, तमाखू देने का रिवाज है)।

हूवय्य झट सीढ़ियों पर धड़धड़ाहट करते दुमंजिले पर चढ़ गया।

कंवल में धान लेकर, पीठ पर लादे, वैंरा फाटक पार करके गया। सेरेगारजी भी उसके पीछे गये और धीमी ध्वनि में कहा—"अरे, धान न देने की वात नहीं थी! ताड़ी देने का वादा करके, यार, धोखा दिया न तुमने?"

"तभी वोतल में ताड़ी भरकर रख दी थी!" कहकर वैंरा मुंह खोलकर खड़ा हो गया।

"झूठ भी वोल रहे हो। तभी मैंने जाकर देखा, खाली वोतल थी तो!"

"नहीं, मैं सच कह रहा हूं। खुदा की कसम, सचमुच भरकर रखा था! तो क्या हुआ होगा? कौन उड़ा ले गया होगा?"

दोनों वातें कर रहे थे, झुटपुटे में ताड़ी पीने का दैनिक कार्यक्रम पूरा करके चन्द्रय्य गौड़जी हलेपैक के तिम्म के साथ सामने आये।

पूछा, "कौन है रे?"

गौड़जी की वाणी में ताड़ी का रस और क्रोध का रस दोनों मिल गये थे। उनकी वाणी मानों मन की तरह ताड़ी में तैर रही थी।

भय से वैंरे ने क्षीण स्वर में कहा, "मैं हूं जी।"

समीप जाकर कम्वल की गठरी उसकी पीठ प्र देखकर गौड़जी ने पूछा, "क्या है रे वह?"

"धान!"

"धान! धान!! धान!!! क्या तुम्हारे वाप का धान है!!! किसने दिया रे तुमको धान?" धमकाकर गौड़जी ने सेरेगार की ओर घूमकर कहा, "मैंने कहा था न इसको धान मत दीजिये! क्यों दिया मेरी वात का उल्लंघन करके?"

सेरेगारजी ने जो हुआ था उसे संक्षेप में सुना दिया। तभी मद्यपान से भीषण वनी गौड़जी की तवीयत राक्षस वन गई।

"किसने किया मेरा प्रतिवाद? यह किसका घर है? किसके वाप के घर की गठरी है यह? वहां रखकर जाओ वह धान!···रखते हो कि नहीं?" कहकर चिल्लाते गौड़जी दौड़ के गये और गाड़ी के जुए की खूंटी जोर से खींच ली।

वैंरा उनके लौटने के पहले ही कंवल में लपेटी धान की गठरी को वहीं फेंककर एक ही सांस में अपने घर की तरफ भाग गया। यह सव छिपकर देखता रहा सिद्द दूसरे रास्ते से वैंरे से भी अधिक शांत तथा श्रीमंत हो अपने घर की तरफ खिसक गया।

शोर-गुल सुनकर वहां आये हुए कुत्ते भी मनुष्यों का वर्ताव देखकर मानो चकित होकर खड़े देख रहे थे।

वाहर आंगन में एक दृश्य जव हो रहा था तव घर के दुमंजिले पर दूसरा दृश्य हो रहा था।

हूवय्य, रामय्य, पुट्टण्ण और वासु चारों खिड़की में से वाहर के दृश्य को देख रहे थे। जुए की खूंटी को खींचने के लिए ज्यों ही झपटे गौड़जी त्यों ही हूवय्य वैरे के प्रति करुणा से, अपनी गलती से दूसरे को दुख भोगना पड़ा न, इस पछतावे से प्रेरित होकर छोटे काका को रोकने और वैरे की सहायता के लिए निकला। तव रामय्य ने उसका हाथ मजबूती से पकड़कर "न भैया, न, अव मत जाओ। सचमुच मत जाओ। अच्छा समय नहीं है। अभी वे शराव पीकर आये हैं। उनकी बुद्धि उनके अधीन नहीं है!" कहकर रोक दिया। इतने में वैरा फरार हो गया था। इसलिए हूवय्य छोटे काका को रोकने नहीं गया।

२४

शूद्र संघ की महासभा में

रामय्य ने हूवय्य को रोका। उसमें विवेक था। पियक्कड़ कोपोद्रेक से, अधिक मद्यपान से मतवाले बने व्यक्ति का सात्त्विक बातों की ओर ध्यान देना दुष्कर है। जो एक सत्य है। तो भी अगर हूवय्य नीचे उतर कर गया होता तो चंद्रय्य गौड़जी रामय्य के अनुमान की तरह न बरतते। क्योंकि यद्यपि वे आयु में हूवय्य से बड़े थे तथापि मन की दृष्टि से बहुत हद तक छोटे थे। परंतु हूवय्य के पक्ष में सब बातों को निगल जाने वाला नीतिबल था। चंद्रय्य गौड़जी ने कई बार क्रूरता से, अनागरिक वर्ताव किया था, मगर किसी को अपने से उत्तम देखते या कोई उन्हें उनसे श्रेष्ठ दिखाई देता, उनमें एक प्रकार का आध्यात्मिक भय व गौरव उस श्रेष्ठ व्यक्ति के प्रति दीखते थे। उनके हृदय में दुष्टवासनाओं को, प्रलोभनों को जीतने की यद्यपि शक्ति नहीं थी तथापि मन में सौजन्यप्रियता थी। इस सौजन्य-प्रियता के कारण ही कुछ वर्ष पूर्व शराब या ताड़ी न पीने की उन्होंने परमात्मा की कसम खाकर कबूली पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। उसकी सहायता से ही वेंकप्पय्य ज्योतिषी भी उनके गौरव के परम पात्र बन गये थे।

उस कथा का संक्षिप्त निरूपण चंद्रय्य गौड़जी के व्यक्तित्व का परिचय पाने में सहायक होगा, इसमें संदेह नहीं।

उस प्रदेश के किसानों में बहुत पुराने जमाने से शराब, ताड़ी आदि मादक पदार्थों का सेवन अत्यंत सामान्य प्रथा बन गया था। अब भी वह पूर्ण रूप से नहीं मिटी है। पहले जहां-जहां खुले आम मद्यसेवन होता था, वहां-वहां अब छिप-छिप-कर हो रहा है। तो भी मद्यपान शर्म का काम है, यह सबको मालूम हो गया है। करीब तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व देश के किसानों के नेताओं में एक आंदोलन शुरू हुआ। उस आंदोलन के लिए ईसाई पादरियों के उपदेश, मैसूर सरकार के 'पहाड़ी मुल्कों की अभिवृद्धि विभाग' का उपदेश, ब्रिटिश शासन से उद्भूत नागरिकता का आगमन; कॉफी, वैन, विस्की इत्यादि पानीयों की आमद, सन्निवेश के प्रभाव से जनता में स्वाभाविक ही उत्पन्न जाग्रति कारण बन गये, इस प्रकार अनुमान कर सकते हैं।

पहाड़ी मुल्कों में उन दिनों रिश्तेदारों के घर जाने पर पैर धोने के लिए पहले पानी देते थे। उसके बाद तांबूल देते थे। उसके बाद तला हुआ मांस या नमकीन मछली या अचार इत्यादि कोई व्यंजन पदार्थ के साथ खूब खट्टी ताड़ी या शराब आदरपूर्वक देकर अतिथि सत्कार करते थे। आज के लोग जैसे कॉफी, चाय देना, पीना सुधार का निशान, नागरिकता का गौरव मानते हैं वैसे उन दिनों के लोग शराब, ताड़ी का सम्मान करते थे।

उस प्रदेश में पहले-पहल लोअर सेकेंडरी परीक्षा उत्तीर्ण एक महाशय था जो तब के लोगों की दृष्टि में बड़ा विद्वन्मणि था। वह पादरियों, गोरे रेवरंडों के प्रभाव में आ गया था और उनकी प्रशंसा के पात्र हो गया था। वह अपने मत, संप्रदाय के आचारों, अनाचारों की निंदा करते हुए, कहते हैं कि, उसने एक भाषण में घोषित किया था कि वह ईसाई धर्म स्वीकार करेगा। यह भी कहते हैं कि उसने पादरियों तथा रेवरंडों की कृपा का पात्र बनने के लिए कहा था कि अपने रिश्तेदारों में से कुछ को ईसाई धर्म में शामिल करायेगा। कहते हैं कि अंत में भारतीय ईसाई जनसंख्या में कतई वृद्धि कराये बिना, स्वयं भी ईसाई बने बिना कैलासवासी हो गया!

उसी महोदय से प्रचोदित संघ की एक सभा में मद्यपान निषेध पर भाषण हुए। कुछ तो अच्छी तरह पेट में, सिर में ताड़ी, शराब भरकर आये थे। उन्होंने लड़खड़ाते, तुतलाते 'भाषण' दिया! उनमें राजश्री कानूरु चंद्रय्य गौड़जी भी एक थे।

सभी सदस्यों से लेकर अध्यक्ष के मुंह एवं नाक से शराब, ताड़ी, ब्रांडी की खुशबू निकलकर सभा गृह के वायुमंडल में फैलकर मद्यपान निषेध के प्रस्ताव का मानो परिहास कर रही थी! बालूरु सिंगे गौड़जी 'भाषण' समाप्त करके, मुंहसे लार टपकाते, बहुत प्रयास से अपने पीठ को टटोलते, ढूंढ़ते जाकर बैठ गये। फिर कानूर चंद्रय्य गौड़जी बोलने के लिए खड़े हुए। सभा में कोई बोलने खड़े हो जाएं तो प्रारंभ में और भाषण के अंत में उत्तेजनार्थ एवं गौरव सूचित करने के लिए तालियां बजाना सभ्यता का सूचक है। नौसिखुवे संघ के सदस्यों ने चंद्रय्य गौड़जी के खड़े होते ही मद्यपान की मस्ती में मनमाने ताली बजाई। यह नहीं मालूम हो रहा था कि उनका ताली बजाना उत्तेजनासूचक था या परिहाससूचक। खूब पीकर आखिरी पके आम की तरह बने चंद्रय्य गौड़जी ताली की गड़गड़ाहट से चौंक पड़े। मैदानी प्रदेश के लोगों को अच्छे लगने की भाषा में कहना हो तो कह सकते हैं कि गौड़जी सहसा चकित हुए। (चकित हुए कहने की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही हुए कहना होगा।) अब क्या लड़खड़ाकर गिरने ही वाले थे! बगल में बैठे सीतेमने सिंगप्प गौड़जी ने अपने हाथ का सहारा देकर खड़ा किया। चंद्रय्य गौड़जी जो जो कहना चाहते थे वह सब तालियों की गड़गड़ाहट में दिमाग में अस्तव्यस्त हो गया

था, गंदला गया था। उनकी आंखों में सारा संभाषण अस्थूल-सा हो गया और वे मानो सपने में तैरने लगे। तो भी वहां एकत्रित लोगों के अज्ञानांधकार को दूर करके, प्रकाश दिखाने के लिए 'भाषण' करके ही उन्होंने दम लिया। मगर किसी को मालूम नहीं हुआ कि उन्होंने मद्यपान के पक्ष में या विरोध में भाषण दिया।

"सबको नमस्कार करता हूं—मैं दो-चार बातें कहके बैठने के इरादे से खड़ा हुआ हूं···।"

मालूम नहीं हुआ गौड़जी को कि आगे क्या कहें। दिमाग में ताड़ी ने मद्यपान निषेध के विरोध में आंदोलन मचा दिया था।

बगल में बैठे सिंगप्प गौड़जी ने "मद्यपान बुरा है।" कहने की सूचना दी।

वह दी गई सूचना खुद को दिया उपदेश मानकर, नाराज हुए चंद्रय्य गौड़जी तिरछी नज़र से टकटकी लगाकर देखते सिंगप्प गौड़जी की ओर घूमकर जोर से बोले—"कौन रे,···कौन है रे, मुझसे कहने वाले ?"

"मैंने आपसे नहीं कहा था, कहा था उनसे कहिये, बस !" धीरे से सिंगप्प गौड़जी ने कहा और उनको समाधान किया।

चंद्रय्य गौड़जी ने फिर शुरू किया :

"शराब पीना ब···हो···बु···रा, बहोत बु···रा···कॉफ़ी पीना···उस···से ···भी बुरा !···शराब पीना छोड़···दें···तो···आ···गे—क्या···हाल ?··· हाला···? मैं पूछता···हूं ! मेरे बाप ने पी···थी···मेरे दादा···ने पी थी। हम··· भी पी···ते हैं···बरसात में पी···ने···से काफी गरमी···आ···जाती···है। सकती आ···ती है···शराब पी···ना···बहो···त बु···रा है।···"

चंद्रय्य गौड़जी भाषण के बीच में नीचे खिसकर गिर पड़े !···

दूसरे दिन 'मानपत्र' प्रस्तुत हुआ। उसमें लिखा हुआ था—मैं तिरुपति, काशी, रामेश्वर और धर्मस्थल के देवताओं की कसम खाकर कहता हूं कि अब से आगे मैं शराब नहीं पिऊंगा। इस 'मानपत्र' पर कुछ ने मानकर अपने हस्तक्षर किये। चंद्रय्य गौड़जी ने भी हस्ताक्षर किये।

वालूरु सिंगे गौड़जी ने कहा—"मैं देवताओं की सौगंध खाकर हस्ताक्षर नहीं कर सकता। भरोसा नहीं है मुझे कि मैं शराब या ताड़ी पीना छोड़ दूंगा। इस बाबत मुझे अपने पर ही भरोसा नहीं है।"

तब चंद्रय्य गौड़जी ने कहा—"तब आप मीटिंग में आये ही क्यों ?"

"आप सब लोगों ने बुलाया, इसलिए आया। जाओ कहेंगे तो जाता हूं।" कहकर सिंगे गौड़जी चले ही गये।

उन्होंने तो मरने तक शराब या ताड़ी पीना नहीं छोड़ा। कहते हैं 'मानपत्र' पर हस्ताक्षर करने वालों में सिर्फ एक या दो ने मद्यपान करना पूरा छोड़ दिया है। बाकी जो खुल्लमखुल्ला पीते थे वे अब लुक-छिपकर पीने लगे हैं।

उन शूद्रसंघ की महासभा में घटी सारी कहानी का सारा पूर्वोत्तर सुनकर अग्रहार के ज्योतिषी वेंकप्पय आदि वेदमूर्ति ब्राह्मण नागरिकों ने खूब हंसकर कहा—'क्या जन्मजात गुण जलाने पर भी जायेगा ? तेनाली रामकृष्णे काले कुत्ते को गोरा कुत्ता बनाने के लिए गया जैसे हुआ यह !"

'मानपत्र' पर दस्तखत करने के बाद चंद्रय्य गौड़जी को नहीं सूझ रहा था कि किया क्या जाय। वे बुरी तरह फंस गये थे। एक दिन उन्होंने बड़े कष्ट से बिना पिये बिताया। उस दिन उनके मन की स्थिति अवर्णनीय बन गई थी। संसार, जीवन, आदमी सभी शत्रु की तरह दिखाई पड़े। जिनको देखा उनसे लड़ पड़े! भोजन करने बैठे तो सभी औरतों को गाली देते कहने लगे—दाल में "इमली ज्यादा पड़ी है, दही मट्ठे का-सा बन गया है, तरकारी में नमक नहीं है इत्यादि। सभी नौकर अपने मालिक की यह मूरत देखकर ही डर से कांपने लगे।

शाम को और दिनों की तरह हलेपैक तिम्म ताड़ी लाया और गौड़जी को आमंत्रित किया। इससे-उससे लड़कर थका गौड़जी का मन, झुंझलाहट से अशांत हुआ गौड़जी का मन खुशी से हार गया। मगर उसी समय तिरुपति, काशी, रामेश्वर, धर्मस्थल आदि पुण्य स्थानों के देवताओं की कसम जो उन्होंने खाई थी याद आई। वे डर गये। उनको भूत, पिशाच, देवता आदि अप्रापंचिक पुलिस के प्रति बेहद डर था; इसलिए बहुत प्रयत्न से, महान् भीष्म साहस से उन्होंने तिम्म को वापस भेज दिया। वह गौड़जी का संयम देखकर अचंभे से अवाक् हो धीरे-धीरे लौट गया। तो भी वह मन में "मद्य देवता से झूठे देवता! आज नहीं तो कल!" कहता हुआ, धैर्य से आगे बढ़ा।

दूसरे ही दिन तिम्म का भविष्य कथन सच हुआ।

"किसी से न कहना" गौड़जी ने तिम्म से कहा और हमेशा की अपेक्षा उस दिन कुछ ज्यादा ही पीकर पिछले दिन की कसर पूरी कर ली और उन्होंने जिन देवताओं की कसम खाई थी घर जाकर उनके नाम 'भूल-चूक दंड' की मनौती मानी। तब उनको कुछ तसल्ली-सी हुई और स्वस्थचित्त हो गये।

इसके बाद दो-चार दिनों में ही चंद्रय्य गौड़जी को मुत्तल्ली जाना पड़ा। वहां शाम को श्यामय्य गौड़जी ने 'मानपत्र' की बात उठाकर कहा, "आप ही बड़े सिपाही ठहरे। छोड़ ही दिया आखिर पीना !"

"अरे क्या करता, कहिये ? चार आदमी जैसे करते हैं वैसे हमें भी करना पड़ता है न! इनकार करने से चलेगा ? उनकी भी सुननी पड़ती है।" कहकर

---

१. तेनाली रामकृष्ण विजयनगर के नामी नरेश कृष्णदेव राय के दरबार में विदूषक था, विद्वान भी, जैसे अकबर सम्राट के दरबार में बीरबल।

—अनुवादक

चंद्रय्य गौड़जी ने दीवार की तरफ देखा।

थोड़ी देर के बाद श्यामय्य गौड़जी "थोड़ी देर के लिए मैं बाहर आता हूं, आप आराम से बैठे रहिये।" कहकर एक लोटा लेकर गये।

चंद्रय्य गौड़जी को शक हुआ तो वे भी उठकर धीरे से उनके पीछे हो लिये। चिरपरिचित स्थान पर पहुंचे, देखा, मगर कोई नहीं दिखाई पड़ा। अंधेरा छाया हुआ था। अब वे हताश होकर लौटना ही चाहते थे कि झुरमुट में से किसी के खांसने की आवाज सुनाई दी। चंद्रय्य गौड़जी उस ओर गये। अंधेरे में कोई दिखाई नहीं दे रहा था, मगर कानाफूसी सुनाई दी। चंद्रय्य गौड़जी और भी पास गये और देखा कि मैदान में पीतल का लोटा अंधेरे में मुस्कुराता दीख पड़ा। उन्होंने पूछा, "कौन है?"

झुरमुट में से एक रहस्य ध्वनि आई, "कौन? चंद्रय्य गौड़जी?"

"कौन? श्यामय्य गौड़जी? यहां क्या कर रहे हैं?" प्रश्नकर्ता चंद्रय्य गौड़जी के कान को सारी बातें साफ मालूम हुई।

"कुछ भी नहीं!...आपने कहा...मैंने छोड़ दिया है। इसलिए मैं अकेला आया!"

"आप भी बड़े पक्के आदमी हैं!...आपने भी 'मानपत्र' पर हस्ताक्षर किए थे न!"

"हां, किया था। उस गलती के लिए परसों तीस-चालीस रुपये 'भूल चूक दंड' के तौर पर मनौती रखने पड़े!"

"मैंने भी ऐसा ही किया है उसी दिन।"

"तो, आइये!"

दोनों मिलकर जितनी ताड़ी थी सब गटगट पी घर लौटे।

सारी जगह अंधेरा छाया हुआ था। जंगल, पहाड़ ने मानो खूब ताड़ी पी, प्रज्ञाहीन हो पड़े-से दीखते थे। ऊपर अनंत आकाश में अनगिनत तारे "पिओजी! कोई चिंता नहीं! यहां कौन है तुमको देखने वाला?" मानो कहकर आंखें मींच ले रहे थे। क्या भगवान को गुस्सा आवेगा जब सारी दुनिया ही सहानुभूति दखाती है, मानो कह रहे हों, उनको लगा तारों को देखकर।

बैरा फरार होकर अपने घर गया, चंद्रय्य गौड़जी अपने घर आकर दिये से कुछ दूर पर बैठ गये। सारा घर डर के मारे मानो निःशब्द हो गया था।

थोड़ी देर में सीढ़ियों पर आवाज हुई। गौड़जी ने घूमकर देखा। हूवय्य नीचे उतरकर आया। फाटक पार करके बाहर गया। शौच के लिए जा रहा होगा, सोचकर, गौड़जी चुप रहे। पांच मिनट बीत गये। हूवय्य वापस नहीं आया। गौड़जी लड़खड़ाते ही फाटक पार करके गये। देखा कि शुक्लपक्ष के अपूर्व चंद्र की

सौम्य कांति बाग की हरियाली पर मौन हो सोई थी। चांदनी में खलिहान एवं बाहरी आंगन में जमीन पर सफेद राख फैलाई गई-सी दीखती थी। गौड़जी देख रहे थे, दूर केले के झुरमुट के नीचे कोई खड़ा-हुआ सा दीख पड़ा। वे सोच रहे थे कि शायद हूवय्य हो। मगर वह आकृति तुरंत गायब हो गई। केवल केले के सूखे पत्ते दिखाई पड़े। पियक्कड़ गौड़जी की भ्रांत दृष्टि दिग्भ्रांत हो गई। उन्होंने फिर से देखा। हां, वही आकृति केले के झुरमुट में खड़ी थी! मगर पहले की अपेक्षा बड़ी-सी थी।

"कौन, हूवय्य है? क्या?" उन्होंने कहा।

कोई नहीं आया। प्रत्युत्तर में वह आकृति और भी बड़ी हो गई।

"हाय! भूतराय!" चिल्लाकर गौड़जी वहीं धंसकर गिर पड़े।

केले के झुरमुट में खड़ा होने वाला अगर हूवय्य होता तो गौड़जी के सवाल का जवाब दे देता। मगर हूवय्य वहां नहीं था।

वह बैरे के फेंकी धान की गठरी को ढोकर उसे देने उसके घर गया था।

अस्पृश्य की छोड़ी हुई कंबल की गठरी लेकर बेलरों के घर के पास गया ही था, उस सन्नाटे की रात में रुदन हृदय-विदारक हो सुनाई पड़ा तो घबराहट से हूवय्य जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाकर बैरे के घर जाकर देखता है: बैरा उन्मत्त हो, अपनी पत्नी सेसी का जूडा पकड़कर मूसल से पीट रहा है! वह रोती-चिल्लाती थी! उसका लड़का गंग दूर खड़े होकर रो रहा है। सिद्द आदि गली वाले खड़े होकर उसे समझदारी की बातें कह रहे हैं।

हूवय्य का आना उस कोलाहल में किसी को मालूम नहीं हुआ। वह धान की गठरी नीचे रख, दौड़कर भीतर गया और "ऐ बैरा, बैरा!" कहकर धमकाया। तब तक किसी की बात की ओर बैरा ध्यान नहीं दे रहा था, अपने काम में तल्लीन था। एकाएक उसने देखा कि अपने पास एक शुभ्रवसनधारी सुसंस्कृत मूर्ति खड़ी है तो वह तुरंत दूर हटकर खड़ा हुआ। सेसी भागकर आई और हूवय्य के चरणों के पास हाथ जोड़कर अपना दुखड़ा रोने लगी। उसके लिए तो उसका देवता ही मानो उसके पास आया है उसके उद्धार के लिए, लगा।

चंद्रय्य गौड़जी के हाथों से छूटकर घर गये बैरे का मन बिगड़ गया था। उसमें भी हाथ लगा कौर मुंह में नही पड़ सका था। अतः उसका पेट जल रहा था। अंत में वह घर गया और खूब ताड़ी पी ली। नशे में चूर हो पत्नी को खाना परोसने के लिए कहा। सेसी ने कहा, "घर में चावल का एक दाना भी नहीं है, इसलिए रसोई नहीं बनाई।" बैरे ने कहा—"पड़ोसी से मांग लाती।" सेसी ने जवाब दिया, "पड़ोसियों के घर धानों का भंडार थोड़े ही भरा हुआ है।" इस तरह पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाने से बैरा गुस्से से पत्नी को पीटने लगा था। इसके अलावा नशा भी चढ़ गया था।

हूवय्य ने वैरे से कुछ समझदारी की बातें सुनाईं और सेसी को दिलासा दिया। फिर सबको आश्चर्य और आनंद हो जाने की रीत में धान की गठरी वैरे को दी और खुद चिंतामग्न हो घर लौटा।

एक छोटे कारण से कितने विपरीत बुरे काम हो जाते हैं ? अचानक हल के टूटने से, बैल की टांग को चोट लगने से कितनी गुरुतर घटनाएं घटीं ? इन सारी बातों के लिए मनुष्य की अनुदार, क्षुद्र, ओछी, छोटी बुद्धि ही मूल कारण है न ? उसे कैसे ठीक किया जाय ? छोटे भाई के कहने के अनुसार छोटे चाचा का मन भी पागल-सा हो रहा है ! नई नारी के कारण ही क्या !

हूवय्य सोचते हुए घर के पास आया। उसे मनुष्यों का रोना सुनाई पड़ा। हूवय्य फाटक से भीतर तेजी से गया।

बैठक में बिस्तर पर अर्धप्रज्ञावस्था में सोये हुए चंद्रय्य गौड़जी के इर्द-गिर्द घर के सारे लोग खचाखच जमा हो गये थे। सुब्बम्म जोर से रो रही थी। सेरेगारजी भूतादि तथा देवताओं के नाम लेकर मनौती रख रहे थे। पुट्टण्ण पंखा झल रहा था। हूवय्य ऐसे प्रसंग में जितना जान सकता था, जानकर, सब को धीरज बंधाकर खुद छोटे काका की शुश्रूषा में लग गया।

एक घंटे में गौड़जी उठ बैठे। उन्होंने खुद को हुए अनुभव की कहानी सुनाई—"भूतराय को कहीं कुछ 'स्पर्श दोष' लग गया है शायद ! मनौती पूरी करनी चाहिये !" यह उनका अनुभव सिद्धांत था।

हूवय्य, रामय्य, दोनों के सिवा बाकी सब लोगों को गौड़जी की बात सच लगी।

"कोई ऋतुमती बाग में गई होगी शायद" कहकर सेरेगारजी ने भूतराय के गुस्से का कारण बताया।

सेरेगारजी का समर्थन करते हुए गौड़जी ने भी कहा "इन छिनाल के बच्चों को कितनी ही बार मना किया, समझाया, मेरी सुने तो ! तंग आ गया कह-कहकर।" फिर वे आंखें फाड़कर सुब्बम्म की ओर देखने लगे तो सारा स्त्री-समुदाय धीरे से रसोईघर की ओर लौटा।

२५

सीता के मन पर प्रथम गाज

हूवय्य मुत्तल्ली से गया, तभी से सीता के जीवन में जो आनंद लहरें मार रहा था, उमड़ा पड़ता था, वह गायब-सा होकर उसका मन सूखे तालाब के चारों ओर के वन प्रदेश की भांति खाली-खाली-सा हो गया था। वह भी उनके साथ कानूर जाना चाहती थी। मगर बड़ों की आज्ञा, अनुमति नहीं मिलने से वह हताश हुई थी। हूवय्य आदि जिस कमान वाली-छप्परवाली गाड़ी में बैठे थे वह और बैलों के गले में बंधी घंटियों का सुनाद आंख-कान से ओझल हो जाने के बाद, लाल मिट्टी का रास्ता थोड़ी देर देखते विषण्णवदना होकर खड़ी थी। आंखों में अश्रु आये, रास्ता अस्पष्ट हो गया, आंचल से आंसू पोंछकर घर के पिछवाड़े में गई, वहां किसी को न देख, देहली पर बैठकर दिवास्वप्न देखने लगी।

वह पहले की सीता न रही। कुछ दिन पूर्व वह केवल ग्रामीण बालिका थी। मगर आज वह सुसंस्कृत युवती बन गई थी। जैसे लोहा भी पारसमणि के स्पर्श से सोना बन जाता है वैसे हूवय्य के सान्निध्य के प्रभाव से उसके ग्राम्य जीवन के लिए स्वाभाविक रहे कुछ स्थूलांश कुछ सूक्ष्म एवं शुभ्र हो गये थे। उत्तम विचार उसके मन में अंकुरित हो लहलहाने लगे थे। उसके हृदय में उत्तमतर भाव नये पानी की नदियों की लहरों के समान जागरित हो गये थे। हूवय्य ने कितने नये विचार समझाये थे! कितने नये सुंदर भाव दिये थे! कितनी आदर्शपूर्ण पौराणिक कहानियां सुनाई थीं! सीताराम की कथा, हरिश्चंद्र-चंद्रमती की कथा, सावित्री-सत्यवान की कथा! कथाएं एक ओर रहें! उसके प्रिय-कोमल सान्निध्य के परिशुद्ध प्रभाव से केवल उसकी आत्मा में एक नया वसंतोदय हुआ था। देवताओं के बारे में, भूत-पिशाचों के बारे में, भूमि-आकाश के बारे में; पूजा-प्रार्थना के बारे में भी उसमें रहे खुरदरे, कड़े भावों में परिवर्तन हो गया था। वे मानो पुनर्जन्म पा चुके थे कहा जाय तो सच बात होगी।

उनका दिवास्वप्न धीरे-धीरे स्वप्न बनने लगा। उस स्वप्न में भूत-भविष्य-वर्तमान सभी एक काल में चित्रित हुए थे। उस दर्शन के केंद्र में एक अलौकिक देव-मूर्ति प्रतिष्ठित हुई थी। इतर सारे चित्र उस मूर्ति के प्रभावलय में फैले हुए थे।

सीता ने संभ्रम से मन में ही कह लिया—मैं हूवय्य की दमयंती बनूंगी। चन्द्रमती बनूंगी; सावित्री बनूंगी; सच्ची सीता बनूंगी फिर कुछ प्रणय चित्र भीतरी चक्षु को दिखाई पड़े। उसके गाल लज्जा से आरक्त हुए। माधुर्य से शरीर पुलकित हुआ।

"बहनजी, सा···ड़ी···खुल गई री!"

दिवास्वप्न में डूबी सीता ने अपने समीप ही कुछ समय से गुडिया के खेल में तन्मय बनी छोटी बहन को नहीं देखा था। लक्ष्मी के खेल के विवाह मण्डप में कन्यादान के समय मादा गुडिया लुढ़ककर गिर पड़ी जिससे उसे पहनाई गई साड़ी ढीली होकर नीचे गिर गई थी। उसे फिर से अच्छी तरह पहनाने का प्रयत्न किया। मगर उसमें सफलता न मिलने से वह नाराज हुई और उसका सारा रोष नर गुडिया पर उतरा। उसने सोचा, उसी के कारण मादा गुडिया का यह हाल हो गया है। इसलिए उसने नर गुड़िया को जमीन पर पटक दिया। उसकी कमर टूट गई। लक्ष्मी ने अपने नये दामाद की दुरवस्था करके, अपनी गुडिया बेटी की शुश्रूषा में सहायता पाने के लिए बड़ी बहन को बुलाया था।

छोटी बहन की पुकार सुनकर खीझ से कहा सीता ने—

'क्या हुआ री, तेरी गुडिया को, चिल्ला क्यों रही है?" इस प्रकार कहकर धमकाया। मगर वास्तव में लक्ष्मी नहीं चिल्लायी थी।

फिर लक्ष्मी ने चीखकर कहा, "साड़ी खुल गई री!"

उस दिन कानूर जाने के पहले पुट्टम्म ने लक्ष्मी को एक छोटी साड़ी प्रयास से कसकर पहनाई थी। उसको देखने से ऐसा लगता था कि मानो साड़ी ही उसको लपेटी हुई है, न कि लक्ष्मी ने साड़ी पहन ली है। इतनी ढीली हो गई थी वह कि खूब नीचे उतर गई थी। तो भी लक्ष्मी को वह बहुत सुन्दर लग रही थी। जिनको देखती उनको अपनी विनूतन अवस्था बड़े अभिमान से दिखाकर फूली न समाती थी। वह साड़ी ही शायद खुल गई हो, सोचकर सीता ने उसकी तरफ देखा, उसकी वह साड़ी दुरुस्त थी। सीता ने कहा—"क्या हुआ है री? ठीक ही तो है!"

"नहीं, खुल गई है। यहां देखो।" कहकर लक्ष्मी ने गुड़िया को दिखाया।

खेल का विवाह मंडप देखकर सीता ने कहा—"अभी से इसे विवाह का संभ्रम!···यहां ला तेरी दुलहिन बेटी को।"

उसके बाद सीता को अपनी छोटी बहन की गुड़िया बेटी की साड़ी को ही नहीं, बल्कि गुड़िया दामाद की कमर को भी ठीक करके देना पड़ा।

इतने में झंझावात बहने लगा। काले-काले बादल आकाश में खचाखच भर गये, बिजली कड़कने लगी। जोर की वर्षा शुरू हो गयी। ओले भी गिरने लगे। दोनों बहनों ने सफेद मोगरों की कलियों की भांति पल-पल टपटप गिरकर उछल-

उछलकर भीतर आने वाले ओलों को चुन-चुनकर मुंह में डाल लिया। कहते हैं कि देवताओं के बरसाए मोतियों जैसे ओलों को खाना सुहागिनों के लिए शुभ है !

लक्ष्मी तो बाहर राशि-राशि गिरने वाले ओले देख, मुंह खोल, दांतों का प्रदर्शन करते, "वहां देखो जीजी !" कहते नाचती रही।

हवा, बिजली, गाज, वर्षा के कारण किसी ने बाहर जाकर ओलों को चुनने का साहस नहीं किया। चूंकि मां का डर था।

"सिर्फ ओले ही क्यों नहीं गिरते ? यह हवा, यह बारिश, यह गाज, यह बिजली न जाने क्यों ?" कहती हुई सीता ने बाहर भूमि-आकाश को एक करती जोर से रिमझिम-रिमझिम बरसती मानसून की वर्षा को देखा। शायद उसी समय में हूवय्य ताड़ी की दुकान में भाव समाधि में था।

"क्या कर रही हो वहां ? गाज-बिजली आती है। अन्दर आ जाओ री !" जब गौरम्माजी ने बुलाया तो दोनों भीतर गईं।

वर्षा कम हुई, धूप निकल आई। सीता फिर पिछवाड़े के दरवाजे पर आकर बैठ गई। हाथ में तरकारी की टोकरी लाई थी। उसे सामने रखकर चौलाई को बीनकर साफ करने लगी। शाम की हवा नई वर्षा में नहाकर ठंडी-ठंडी बनी बह रही थी। अभी तक खपरैलों से पानी चू रहा था। बांध पर—जाने वाले मुर्गा-मुर्गी, उनके छोटे-छोटे बच्चे, शिशु विविध तुमुल आवाज करते रहे। बड़े चूल्हे में आग छटपटाती अपनी लाल जीभों से हांडे की काली पेंदी पै हमला करती थी। सीता की आंखों में उन सब का प्रतिबिम्ब था। न कि उनके प्रति प्रज्ञा। उसके हाथ भी कभी-कभी रुकते, फिर काम में लग जाते। उसके चेहरे पर अवास्तव संसार का माधुर्य खिलने वाली कलियों में फूल-फलों के मीठे सपने जैसा खेल रहा था। वह फिर सपना देखने लगी।

जब प्रेम पहले पहल हृदय की कली में प्रवेश करता है तब उसके विद्युत-स्पर्श से जड़-जगत् चैतन्यपूर्ण होता है। तब मीठे-मीठे सुनहरे सपने की महोदधि में बहुत भयंकर-भारी स्थूल विश्व भी रंगीन बुद्-बुद बनकर तैरता है। प्राण पंछी अपने पंखों को फैलाकर अनंत में अशरीरी होकर उड़ानें भरने लगता है। आशा अलकावती, अमलावती यों प्रवेश करके वहां की सारी संपदा लूट लेती है, वहां नन्दन वन में बहने वाली देवगंगा में नहाती है, कल्प वृक्ष की अनुराग पूर्ण धवल छायाओं में बैठकर चित्रविचित्र इच्छाओं को पूर्ण कर लेती है। कामधेनुओं के कुम्भस्तनों में मुंह लगाकर अन्तिम बूंद तक आनन्दामृत को पीना चाहती है। ऐसे स्वर्ग में थी सीता।

बर्तन मांजने आये हुए काले ने सीतम्म की निष्पन्द स्थिति देखकर, "क्या सोचती बैठी है अम्मा," कहकर मुंह खोला।

सीता ने चौलाई को झट साफ करना शुरू करके कहा—"बारिश हो रही थी न, उसी को देख रही थी।"

राग-रागिनी के स्वर में काले ने, लाड़ से, आजादी से, नय-विनय से रहित हो कहा, "पानी देख रही थी या पति की चिन्ता कर रही थीं?"

"चुप रहो, बस! तुमको हमेशा वही!"

काला बरतन मांजने लगा। थोड़ी देर चुप रहा। फिर बोला—"फिर आप अब 'कृष्ण' नहीं कह पावेंगी!"

"क्यों रे?"

"क्यों? क्यों? क्या कहूं, कहिए अब आगे भगवान का नाम न कह सकेंगी। ऐसा होने वाला है।"

"थू! आग लगे तुम्हारे मुंह को!...तुम पागल हो गये हो क्या?" सीता ने पूछा लाड़ से, स्वतन्त्रता से।

"मैं अच्छी बात कहूं तो मेरे मुंह को आग क्यों लगे अम्मा? क्या कोई स्त्री पति का नाम कहेंगी?"

"नहीं!"

"फिर?"

"फिर क्या?"

"आपको सीतेम ने कृष्णप्प गौड़जी को दें तो आप 'कृष्ण' कह सकेंगी?"

"आग पड़े तुम्हारे मुंह में! चुप रहो!" सीता ने अपशकुन-सा समझकर गुस्से से कहा।

"आप क्या समझ रही हैं कि मैं तमाशा कर रहा हूं? परसों ही सिंगप्प गौड़जी विवाह का प्रस्ताव लेकर गये थे कहते हैं। आज जातक लेकर आये हैं।... बेचारे! रास्ते में बारिश में फंस गये, भीग-भीगकर उनका बदन ठिठुर गया है। मैं अभी-अभी उनको गरम पानी और काफी दे आया हूं। चाहें तो जाकर देखिये बैठक में...!"

काला दूध में इमली का रस निचोड़कर बाला के दिल में जमते हुए शोको-द्वेग की आंच को तनिक भी जाने बिना स्वस्थ चित हो इमली को राख में भिगोकर पीतल के एक बरतन को घिसघिस रगड़कर मांजने लगा।

सीता प्रतिमा की तरह बैठ गई। समाचार उसके लिए पिशाच की तरह क्रूर, कर्कश बन गया था। उसने एक बार सोचा कि काले ने मजाक के लिए झूठ कहा होगा। उसने सोचा कि मैं खुद उठकर बैठक में जा देख आऊं कि सिंगप्प गौड़जी आये हैं कि नहीं। मगर काले की बात सच निकले तो! इस डर के मारे वह चुप बैठ गई। उमड़कर आते हुए आंसू में हूवय्य की मनोहर मूरत प्रातः काल खिले शतदल के केसर पर हिममणि में अनन्त दूर से आयी बाल सूर्य की किरन के धीमे

से विकंपित होने की तरह अस्थिर वन गई थी।

उसकी हालत को न जानने वाले ग्राम्य हृदय के काले ने फिर, "आप तो अपने पति के घर जायेंगी, इस गरीव को न भूलियेगा"'। आपके यहां आऊं तो क्या थोड़ी काफी-गीफी देंगी अम्मा ?" कह विनोद किया।

सीता के नयनों में भरे नीर गालों पर लुढ़के। दर्द, क्रोध के कारण वोलने के लिए कुछ भी नहीं सूझ रहा था। इसलिए उसने "जीभ कट जाय तुम्हारी।" कहकर काले को कोसा।

काले ने और भी हंसते हुए कहा—"सब्र कीजिये, सीतेमने जब जाऊंगा कृष्णप्प गौड़जी से तब मैं कहूंगा कि आपने मुझे ऐसा कोसा है और उनसे आपको एक चपत लगवाऊंगा।"

"तुम्हारे कृष्णप्प गौड़जी को वाघ पकड़कर ले जाये, अब मेरी खवर लेते न आना।"

"यह क्या अम्मा ! आप अपने पति को ही गाली देती हैं ?"

"यह क्या है रे काला ?" गौरम्माजी ने रसोई घर की खिड़की में से ही डांटा।

आंखें पोंछते हुए सीता ने शिकायत की, "देखो मां, वुरी-वुरी वातें कह रहा है।"

काले ने जोर से दीनवाणी में कहा, "क्या अम्मा, झूठ वोल रही हैं ! विवाह की वात कहूं तो वह वुरी वात हुई ?"

गौरम्माजी ने कहा—"तुम चुप रहो री ? उससे क्या वात ?"

सीता ने कहा—"अंट-संट वातें करता है तो !"

गौरम्माजी ने कहा, "तुम चुप रहो ! कन्या मांगने भर से विवाह हो गया ? जातक मिलना चाहिए कि नहीं ? वह कहता है तो क्या, कह लेने दो ! तुम चुप रहो !'''वाघ पकड़े, शेर पकड़े, क्यों अपशकुन की वात करती हो ?" कहकर वह खिड़की के परे ओझल हो गई।

उसके वाद कोई नहीं वोला। काला जल्दी-जल्दी वर्तन मांजने लगा।

सीता का दर्द दुगुना हुआ। माता की वातों से वह साफ समझ गई कि काले की वातों पर संदेह करने की जरूरत नहीं। सिगप्प गौड़जी अपने पुत्र के लिए मेरी मंगनी के लिए आये हैं। वह तरकारी की टोकरी एक ओर सरकाकर अपने कमरे में गई।

वहां घिरते हुए अन्धेरे में वह फूट-फूटकर रोई। उसी जगह कुछ दिनों पहले उसने घंटों तक हूवय्य के समीप वैठ, उसके सुन्दर मुख से प्रस्फुटित मधुर भाषण को कान खोलकर, आंखें खिलाकर, सुना था। अपने दिल को उसने जैसे दुःख और सुख के लिए तैयार रखा था !

उसके रोते मन को हूवय्य की बातें याद आईं। रोना बन्द करके वह सोचने लगी। हूवय्य ने कहा था कि मनःपूर्वक भगवान की प्रार्थना करें, वह सफल हो जाती है। सावित्री ने भक्ति से सत्यवाद के प्राण वापस पा लिए थे न? सीता रावण से छूटकर राम को पा लिया था न? हमारी सीता में पहले की अपेक्षा अधिक भक्ति उपजी! उसने अपनी इच्छा पूर्ति के लिए हृदय से भगवान की प्रार्थना की। सीता-राम के फोटो को हाथ जोड़कर सिर नवाया। वह जब सिर नवा रही थी तब छिपकली 'लोट-लोट' बोली। उसे सुनकर सीता को उतनी खुशी हुई नदी में बह जाने वाले को एक तृण का सहारा मिलने से जितनी होती है। कन्या मांगने से क्या हुआ? भगवान की कृपा से जातक मेल नहीं खायेंगे, सोचकर वह शान्त हुई। यह उसको मालूम नहीं था कि सब कन्या की मंगनी करने वालों, लेने वालों व ज्योतिषी के हाथ में रहता है।

२६

वैरे का गड्ढे से पानी उलीचकर मछली पकड़ना

दूसरे दिन बेलर वैरा काम पर नहीं गया। घर में ही बैठा रहा। बैठने का मतलब छुट्टी लेना। अगर घर में रहूं तो गौड़जी आकर जोर-जबरदस्ती से मुझे काम पर भेज देंगे, उसे इसका डर था। उसने एक उपाय किया।

सूरज जंगल के सिर पर आया था; पेड़-पौधों को लम्बी छाया, घरों को लम्बी छाया देकर, पंछियों के पंखों को गरम करके चमक रहा था। तब वह अपने पुत्र गंग को साथ में लेकर, कंबल, हथियार, सुपारी के पेड़ के छिलके आदि साथ में लिए, मछली पकड़ने के लिए उपयोगी सामान लिए अपनी पत्नी ससी से मछली के झोल के लिये मसाला तैयार रखने के लिए कहकर तालाब की खोज करने के लिए, खेत के उस पार के झरने की तरफ पान-सुपारी खाते हुए रवाना हुआ।

खेतों के किनारे पर पगडंडी थी। वैरा अपने लड़के गंग के साथ उस पर से जा रहा था। तब उसने एक व्यक्ति को देखा जो कोट, पायजामा पहने, सिर पर लाल कपड़ा लपेटे उसी की ओर आ रहा था। उस व्यक्ति की खाकी वरदी को देखते ही वैरा चौंका और डर के मारे पास के एक "नैक्की" के पेड़ की आड़ में छिपने का प्रयत्न किया। इतने में उस व्यक्ति ने पुकारा—"ऐ! ऐ! यहां आ जाओ!" वैरे के कदम आगे न बढ़ सके। वह वहीं खड़ा हो गया। गंग पिता की आड़ में छिप गया।

उन देहातों में सरकारी अधिकारियों के दर्शन थोड़े ही होते थे! बीट में (अपने क्षेत्र में) घूमने वाले पुलिस-अधिकारी हफ्तों में या पखवाड़े में एक बार वैसे ही आते, मौका मिलते ही गरीबों को धमकाते, डराते और कुछ ऐंठकर ले जाते। उनको देखने पर वे लाइसेंस बन्दूक धारियों को आंख की बीमारी होती। अकसर पुलिस वाले खाकी वरदी, काली टोपी या काला साफा सिर पर धारण करके आते तो देहाती समझते कि कोई बला आ गई। इसलिए वैरा 'नैक्की' के पेड़ की आड़ में छिपना चाहता था कि बला टल जाय।

वैरा वैसे ही खड़ा रहा। मगर उस व्यक्ति ने कुछ आगे बढ़कर, आठ-दस गज-

दूरी पर से पूछा, "क्या रे, गौड़जी घर पर हैं।"

"हांजी, हैं।" वैरे ने जितना हो सके शुद्ध बोलने का प्रयत्न किया।

"तिम्म है क्या ?"

"कौन तिम्म, स्वामी ?"

"बगनी के पेड़ पर मटका बांधने वाला हलेपैक का तिम्मा।"

"बगनी के पेड़ का नाम सुनते ही वैरे की नसों में बहने वाला रक्त एकाएक ठंडा पड़ा, फिर गरम हुआ।

उसने घबराहट से कहा, "मैं नहीं जानता स्वामी !"

तिम्म पर चोरी का कोई केस होगा, सोचकर, 'मैं नहीं जानता।' कहना ही उचित समझकर, उसने कह दिया, "मैं नहीं जानता, स्वामी।" यद्यपि वह जानता था कि तिम्म घर में है।

"झूठ बोलता है ?" कहकर खाकी वरदी पहना व्यक्ति छाता उतारकर कुछ आगे बढ़ा तब वैरे ने कहा—"आं···आपने क्या कहा ?"

"तिम्म घर में है क्या ?"

"यह क्या ? कुछ और ही सोचा था मैंने।" कहके दांतों का प्रदर्शन करते हुए कहा, "जी हां। घर में था, अब कहीं गया हो तो मैं नहीं जानता।"

"कहां जा रहे हो तुम ?"

"तालाब ढूंढ़ने के लिए," कहकर तिम्म ने अपने साथ लाये सुपारी के पेड़ के छिलके की ओर देखा।

"मछलियां बहुत मिलती हैं क्या रे ?"

'कहां मिलती हैं ? तालाब की खोज करने वाले एक हैं ? सभी वही धंधा करते हैं। पिछले साल भरमार थीं। इस वर्ष बिलकुल कम। परसों की बारिश से शायद नदी में ज्यादा मछलियां आई हों !"

वैरे को मछली का इतिहास शुरू करते देखकर उस व्यक्ति ने कहा, "तो जाओ, कुछ सवारी का बन्दोबस्त करके आ जाओ।"

तब तक बोलने के बाद वैरे ने धीरे से पूछा, "आपका घर कहां ?" फिर उसने अपने को सुधारकर कहा, "आपका गांव ?"

"तीर्थहल्ली !"

तीर्थहल्ली का बाजार बहुत दूर का था, वह महानगर था वैरे के लिए। उसने कहा, "ओ-हो-हो, काफी दूर से आये हैं। किस काम पर ?"

"बगनी के पेड़ों पर मार्क डालने के लिए रे !" कहते हुए वह व्यक्ति आगे बढ़ा।

उस समय वह 'मार्क' डालने वाला व्यक्ति पीछे घूमकर देखता तो वैरे के मुंह पर भय को अच्छी तरह देखता। लेकिन वह घूमकर देखे बिना जल्दी चला गया

और उनकी आकृति छोटी होती गई। बैरा दूर होते हुए 'मार्क' को मुंह-आंख फाड़कर देखते खड़ा रहा। वह व्यक्ति 'मार्क' न होकर कोई दूसरा या साक्षात् 'पुलिस इन्स्पेक्टर' होता तो भी बैरे को डर न लगता और संकट भी नहीं होता। वह खाकी कोटवाला आसामी दूर-दूर होते ही "यही 'मार्क' है? दुर्भाग्य!" अपने आप कहकर बैरे ने अपने पुत्र को बुलाया—"गंग!"

पीछे से "आं!" कहकर गंग आगे बढ़ आया और कुतूहल से पूछा, "वह कौन है पिताजी?"

"कहते है कि वह 'मार्क' है, मार्क! दुर्भाग्य!" कहकर एक सांस छोड़कर बैरा आगे बढ़ा।

पिता-पुत्र झरने तक गये। यहां-वहां पानी खड़ा था। जिन गड्ढों में पानी था उनकी जांच की बैरे ने। दो दिन पहले जो वर्षा हुई थी उससे पानी में बहकर आये बालू और कंकड़ों से गड्ढे भर गये थे। झरने के बीच में और आसपास के बाजू में यहां-वहां बांस के पत्ते, सुपारी की शाखाएं, घास-फूस, कूड़ा-करकट जो बहकर आये थे वे पेड़ों की जड़ों में, चट्टानों के बीच में अटककर यह गवाही दे रहे थे कि पानी कहां तक चढ़ गया था। गड्ढे-गड्ढे में पानी खड़ा था, मगर पानी बह नहीं रहा था। पिता-पुत्र दोनों झरने के पात्र-पथ पर यहां-वहां गिरे पेड़-पौधों पर चढ़कर, कूदकर जाते और गड्ढे, गड्ढे में मछली का शोध करते गये। अंत में वे एक जगह पहुंचे।

वह गड्ढे दो या अढाई गज चौड़ा, एक या ड़ेढ़ गज गहरा, कूड़े-करकट से भरा, लकड़ी के टुकड़ों से भी भरा था। एक ओर घनी-बढ़ी झुरमुट की जड़ों ने पानी में मछलियों को आराम से रहने योग्य स्थान मानो बना दिया था। किनारे पर जो पेड़ था उसकी छाया ने गड्ढे के पानी को काला बना दिया था। दो दिन पहले हुई वर्षा से जो महापूर आया था, उसने कलुषों को बहा दिया था; तो भी बाद को सूखे पत्ते पानी में, किनारे के पत्थरों एवं बालू पर काफी गिर गये थे।

बैरे के आते ही मेंढक फुदक-फुदककर दूर हट गये। कुछ छोटी मछलियां केवल खेल रहीं थीं। बैरे ने खांसकर थूका। उसकी थूक सफेद लौंदे के समान पानी में गिर जाने से 'सोसलु' मछलियां उस पर टूट पड़ीं जैसे लाई कड़ाही से छूटकर झपटकर आती हैं। उसे देखकर वह तृप्त हुआ।

पिता-पुत्र गड्ढे का पानी उलीच-उलीचकर मछली पकड़ने लगे। थोड़ी देर में गड्ढे का पानी जैसे-जैसे कम होते गया वैसे-वैसे गड्ढा खाली हो गया। गड्ढे में पानी कम होते ही खेत से बहकर आने वाले पानी के साथ-साथ छोटी-बड़ी 'सोसलु' मछलियां जाने लगीं तो कंबल को जाल बनाकर बैरे ने बिछा दिया। कंबल में कीचड़ के साथ आई हुई 'सोसलु' मछलियां उछलने लगीं। काली-काली आंखों वाली ठंडी, चिकनी छोटी जीवियों को दोनों सुपारी के छिलके में भरकर दबाने लगे

तो थोड़ी देर में उनकी उछल-कूद वन्द हो गयी।

जहां तक वन सके 'सोसलु' मछलियों को पकड़ने के वाद, फिर गड्ढे के वाकी पानी को उन्होंने उलीच दिया। पानी विलकुल कम हो जाने के वाद कीचड़ में चिट्टंगी-सीगड़ी मछलियां छटपटाने लगीं। उनको भी वीन-वीनकर थैली में भर लिया। कुछ मेंढक भी यही मौका पाकर छटपटाने वाली छोटी मछलियों को, चिट्टं-गियों को पकड़कर निगलने लगे। गंग ने गुस्से से उनको पत्थर से मारा। जव वे पीठ के वल गिरे तो ताना मारते हुए कहने लगा "मुफ्त में मछली खाना चाहते हो !···क्या ये तुम्हारे वाप की कमाई की गठरियां हैं ?···चाहते हो चिट्टंगी···" इत्यादि।

गड्ढे का सारा पानी जव निकल गया तव केवल कीचड़ वच गई थी। उससे जड़ें, दरारें, पत्थरों का खोखला भाग, ऊवड़-खावड़ गड्ढे का तल भाग विकृत हो दीखने लगा। जव पानी से भरा रहता था तव—समतल दीखता था, अव वह नहीं रहा। फिर कीचड़ में हाथ डालकर, पत्थर के कोटरों में लाठी घुसेड़कर 'तोल्ले' मछली, 'मुरुगुंडु,' 'गिरलु,' 'कोच्चिली,' 'कारेडी' आदि जलजंतुओं का शिकार किया। गंग ने एक मेंढ़क को जान से मार डाला और उसे एक वांस की नोक पर वांध दिया, उसके सहारे कई केकड़ों को पकड़ा और उनकी टांग तोड़कर थैली में भर दिया। एक वार अति लोभ के कारण विल में रह रहे केकड़े ने वांस की नोक पर के मेंढक को जोर से पकड़ लिया। गंग ने जोर से वांस खींचा, तो भी वह मेंढक को नहीं छोड़ रहा था। इसके पहले मेंढक के साथ जोंकें ऊपर आते उनकी टांग, सींग होशियारी से तोड़कर थैली में भर देता था। अगर कहीं अजागरूकता से पेश आता तो केकड़ा उसकी उंगली काटता। तव गंग गुस्से से उसकी आंख निकालकर प्रतिहिंसा का छल दिखाता और फूला नहीं समाता था।

अव की वार गंग ने कोटर में मेंढक वाले वांस को डालकर खींचा तो केकड़ा नहीं आया, मगर मेंढक का थोड़ा हिस्सा कट गया था। फिर गंग ने वही वांस डाल दिया। खींचा, मगर केकड़ा नहीं आया, मेंढक का फिर कुछ हिस्सा कट गया था। कोई वड़ा केकड़ा होगा, अंदर या वड़ी मछली होगी, अनुमान करके, उसको पकड़ने के लिए गंग ने वांस के वदले अपना हाथ डाला कोटर में। तुरंत एक जल सर्प उसकी उंगली काटकर, हाथ पर लिपट गया। लड़का डर के मारे चिल्लाने लगा। वैरा झटपट दौड़कर आया और सांप को खींचकर मार डाला और गंग को भी कीचड़ भरे हाथ से एक घूंसा जमाकर, गंदला पानी ही पिलाकर दवा दी। गंग कांपते, रोते, किनारे पर वैठ गया।

"कौन हैं पुकारने वाले ?"

कीचड़ छानकर मछली पकड़ने में मशगूल वैरे ने सिर उठाकर देखा—वड़ी तोंद वाला सोम मछली की थैली को देखते खड़ा है। उसकी छाया ऊवड़-खावड़

जमीन पर टेढ़ी-मेढ़ी होकर गिरी है।

"क्या कर रहे हो यहां ?" सोम ने अत्यंत विनय एवं कुतूहल से पूछा।

"देख नहीं रहे हो क्या ?" वैरे ने उदासीनता से, अविनय हो कहा।

"पुकारने वाले कौन हैं रे ?"

वैरा फिर वैसे ही अविनय स्वर में जवाब देकर अपने काम में लग गया।

सोम ने जैसे भूखा कुत्ता अन्न की ओर देखता है थैली में रखी मछलियों की ओर वैसे देखते हुए—"वैरा, उस दिन उस छिनाल के बच्चे ने जो मारा था सो वैसा ही है तो। क्या किया जाय उसे ? उस चोट की वजह से रोज बुखार चढ़ता है। कांजी मुंह में डाल नहीं सकता। जीभ में कतई रुचि नहीं रही है···"कहकर जूठन थूककर रुचि का बिगड़ना प्रयोग करके दिखाया।

सोम को मछली की थैली के पास देखकर वैरे को शक हो गया था कि वह मछली मांगेगा। उसे टालने के लिए ही उसने उदासीनता, अविनय से सोम के प्रश्नों का उत्तर दिया था। तो भी सोम इससे बाज आने वाला नहीं था, हताश होने वाला नहीं था। उसने फिर अपने हाथ के दर्द एवं अपनी अरुचि की बात उठाई। वैरे को उसकी बातों का अर्थ अच्छी तरह समझ में आ गया। तो भी उसने कहा, "दवा ले सकता था न ?"

"उसे भी देने वाला कौन है ?"

"केल कानूरु अण्णे गौड़जी के पास जाकर मांगो।"

"वे क्या दवा देंगे ? उन्हींको कोई दे तो बस है !···रुचि बिगड़ जाय तो दवा भी पसंद नहीं होती।···"

"ज्योतिषी वेंकप्पय्याजी से भस्म या विभूति लाओ।"

"जीभ की रुचि बिगड़ जाने पर विभूति भी क्या करेगी ?"

"कानूरु देवता से पूछकर परसाद लेकर आओ। मुझे भी एक बार तुम्हारी तरह हो गया था। कुलूरु देवता का परसाद लाया तो देखो, सब ग्रहगति बदल गई।"

"कहना तो तुम्हारा सही है। तो देखो···ऐन बात यह है कि जीभ···रुचि बिगड़ जाने पर कुछ भी करो···कुछ भी···फायदा नहीं होता···वह···वह···वहां गई।···वहां गई।···यहां आई रे ! यहां !···बड़ी मछली···देखो···उसे छोड़ना नहीं···।"

वैरे ने कीचड़ में हाथ डालकर, मथ-मथकर, सब जगह खिसक-खिसक जाती उस 'मुरगुंडु' मछली को ढूंढ़ा। सोम एक बार प्रश्नार्थक होकर, एक बार उद्गारवाचक होकर, एक बार बक-ग्रीव बनकर, एक बार हयग्रीव बनकर सलाह देते किनारे पर खड़ा रहा।

सब पूरा हो जाने के बाद वैरा गंग को लेकर अपने घर जाने के लिए तैयार हुआ।

सोम ने मुंह खोलकर मांग ही लिया—"बैरा, बुखार से जीभ मर-सी गई है देखो। चटनी के लिए एक केकड़ा दे देते! तुम्हारा नाम लेकर एक कप कांजी पी लेता।"

"मर जाय, ले लो।" कहकर बैरे ने थैली में हाथ डालकर छोटे केकड़े को निकालकर दिया। फिर उसने कांपते गंग को देख पूछा—"क्यों रे? क्यों कांप रहा है?"

उसने धीमे स्वर में कहा—"बुखार चढ़ा है।"

"लड़का डर गया है, ऐसा लगता है···एक मुर्गी चढ़ा दो, कहते हैं—यहां रणपिशाच घूमता रहता है।" सूचना देते हुए केकड़े को सूंघकर सोम फूला न समाया।

२७

किलिस्तर मार्क को वैरे का खूब छकाना

उधर वैरा अपने पुत्र गंग के साथ गड्ढे से पानी उलीच-उलीचकर मछली पकड़ने का काम कर रहा था, तब उधर हलेपैक के तिम्म की झोंपड़ी में मार्क वगनी के पेड़ पर चोरी से मटका बांधने वाले को पकड़ने की व्यूहरचना कर रहा था। उस दिन शाम को ही वगनी के पेड़ के पास पहरा करने के लिए बैठ जाना चाहिये और ताड़ी के चोर को पकड़ना चाहिये, तय हुआ। मार्क को जंगल का परिचय न होने से और अंधेरे में अकेले रात को जंगल में रहने का धैर्य न होने से, वह चोर अगर मार्क से भी बलवान निकला तो आफत होगी आदि कारणों से तिम्म को भी मार्क के साथ जाना चाहिये, तय किया गया।

झुटपुटे के समय दोनों मिलकर जहां वैरा वगनी के पेड़ पर मटका बांधता था उसके पास गये और छिपकर बैठ गये। वे गुफ्तगू करते, बीच-बीच में जंगल की नीरवता की ओर कान देकर सुनते रहते। जब कभी वे सुनते तो उनको निःशब्द हो, या अपने निश्चित स्थान पर जाकर बैठने वाले तोतों आदि के समूह की ध्वनि या लकड़फोड़वा पंछी का पेड़ काटने की ध्वनि या झींगुरों की 'जींजर्' ध्वनि या हवा की सनसनाहट सुनाई देती थी।

दोनों ने पान-सुपारी खाई। मार्क ने नस को नाक में चढ़ा लिया। कानूर के बारे में बातें कीं; जंभाई ली; फिर दोनों थोड़ी देर थोड़ी दूर चक्कर काटकर आये और अगल-बगल में बैठ गये। आदमी की बात दूर रहे, कोई जानवर भी उस ओर नहीं आया। दोनों बैठ-बैठकर ऊब गये।

तिम्म धीमी आवाज में "आप यहां बैठे रहें। मैं अभी आता हूं।" कहकर उठा।

"कहां रे?"

"नहीं, अपनी जगह देख आता हूं। वह बहुत दूर भी नहीं। आप घबराइये नहीं, मैं एक मिनट में वहां तक हो आता हूं।"

"जल्दी आ जाना, देर मत करना!"

"आप चिंता न करें। अभी आ जाता हूं, पान पर चूना लगाने के पहले ही!"

जंगल के घने अंधकार में तिम्म का आकार उस नाले में ओझल हो गया। सूखे पत्तों पर और झुरमुटों के बीच में होनेवाली आहट धीरे-धीरे रुक गई। मार्क अकेला बड़े-बड़े पेड़ों के जंगल की ओर, बीच-बीच में से झांकने वाले आकाश की ओर, पेड़ों के सिर की हरियाली पर सुनहरी बूढ़ी धूप की ओर, काले मटके को अपने गले में बांधे खड़े हुए बगनी के पेड़ की ओर देखते तिम्म की प्रतीक्षा करते, पहरा करते बैठा रहा।

चोर आता है! पेड़ से लगी बांस की निसैनी पर चढ़कर ताड़ी से भरा मटका उतारता है। तब मैं पेड़ के नीचे खड़े होकर उसको मटका और बगनी के पेड़ में छेद बनाने के लिए उपयोग में लाई जानेवाली छुरी सहित पकड़ता हूं। ऐसा न करूं तो गवाही नहीं मिलेगी। उसके बाद मैं थोड़ी ताड़ी पी लूं···यह कमबख्त तिम्म कितनी देर करता है? आज चोर आता है कि नहीं।···आज न आवे तो कल! ···मार्क इस तरह सोच रहा था कि दूर में सूखे पत्तों की आहट हुई। मार्क ने सारे शरीर-भर आंखों वाला बनकर देखा। नाले में सूखे पत्तों में होने वाली आहट धीरे-धीरे पास आई···लौटकर आता ही होगा तिम्म, नहीं; वह इस ओर से क्यों आयेगा? आहट एकदम रुक गई। मार्क की उत्कंठित दृष्टि सुई की नोक पर बैठी-सी थी। फिर आहट शुरू हुई।···अहो, चोर ही होगा! रुक-रुककर, देख-देखकर आ रहा है! पक्का चोर! छिनाल के बच्चे को कितनी सावधानी!···मार्क ने अपने नीचे के होंठ को दांतों से काटा। आहट नजदीक हुई। नजदीक! और भी नजदीक। झुरमुटों में चल रहा है शायद! हां, झुरमुट को पार करेगा तो दीखेगा! कौन होगा? मार्क उस असामी का मुखपरिचय पाने के लिए आतुर हो दृष्टि से ही उसको झुरमुट के इस ओर खींच रहा था। वहां! मार्क मन में ही "छिनाल का बच्चा!" कहकर देखता है; मनुष्याकृति, पर मनुष्य नहीं! तीन-चार फुट ऊंचा! सारे बदन पर राख के रंग के बाल! चपटे मुंह के चारों ओर काले बाल घने हो बढ़े हैं! आंखें अंधेरे में चमक रही हैं! छाती चौड़ी! कमर बारीक! पिछली टांगों पर खड़े होकर देख रहा है काले मुंह का बंदर! (सिंगलीक नाम का बड़ा कपि।)

मार्क को थोड़ा भय लगा। तो भी कुतूहल से उस मनुष्य सदृश रामसेवक को ही देखने बैठा। न हिला, न डुला। बंदर ने चारों ओर आवाज़ सुनी। मार्क को भी लगा कि एक बंदर और आ रहा है। क्योंकि उसके आने की आहट उसने सुनी थी। वह आहट ज्यों-ज्यों नजदीक होती आई तो सामने वाला बंदर आश्चर्य से घूमकर पेड़ों के बीच में झटपट-झटपट एक बड़े पेड़ पर चढ़ गया और आवाज़ करते एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदते चला गया।

मार्क और भी डर गया। पीछे आने वाला बंदर ही होता तो बंदर को भय से क्यों भागना था? बाघ है क्या? तिम्म को नहीं जाने देना चाहिये था। बेकार

आदमी ! कितना वक्त हो गया उसको गये ! अभी तक आया ही नहीं। मार्क सोच ही रहा था कि आहट पास आई और प्राणी अंधेरे में गोचर हुआ ! कैसी विधि की लीला ! जानवर नहीं, मनुष्य ! मार्क अच्छी तरह देखता है। सवेरे जिसको मैंने खेत में देखा था यह वही है ! कानूरु चंद्रय्य गौड़जी का वेलर जात का मज़दूर ! इसे क्यों चाहिये था यह काम ?" अपने कह लिया मार्क ने।

वैरे ने पेड़ पर उछलते, कूदते जाने वाले बंदर से जोर से कहा—"घर बरबाद हो जाय इसका ! कितना डरा दिया था मुझे !" फिर वह इधर-उधर देखे बिना वगनी के पेड़ के नीचे आया।

ताड़ी भर के ले जाने के लिए जो काला मग् लाया था उसे नीचे रख, वगनी के पेड़ से बंधी बांस की नसैनी पर चातुरी से चढ़कर ताड़ी से भरा मटका खोलकर हाथ में लिया। तब ताड़ी की खट्टी वास से वैरे की सेसी से चाट के लिए मसाला बनाकर रखने के लिए कही हुई वात और लाल रंग की मछली की तरकारी याद हो आई।

मटके की रस्सी को एक हाथ में जोर से पकड़कर अनुभवी वैरा धीरे-धीरे उतरने लगा। चार-पांच सीढ़ी ही उतरा था कि जमीन पर आवाज हुई। वैरे ने नीचे देखा। झुरमुट हिल रहे थे। वैरा आश्चर्य, कुतूहल, उद्वेग, भय से देख ही रहा था कि मार्क दिखाई पड़ा। उसने वगनी के पेड़ के नीचे खड़े होकर ऊपर देखा। दोनों की आंखें टकरा गई।

"उतरो, उतरो। परवाह नहीं।" कहने वाले मार्क की ध्वनि में छल, रहस्य थे, न कि करुणा।

वैरा नहीं उतरा। एक हाथ में उसके मटका था, दूसरे हाथ से उसने पेड़ के तने को छाती से लगा लिया था; उसका एक पांव ऊपर की सीढ़ी पर था, एक पांव नीचे की सीढ़ी पर। वह जोर से सांस ले रहा था, उसकी तोंद पेड़ से लगती, फिर पीछे हटती। उसको कुछ नहीं सूझ रहा था। क्या किया जाय आगे। 'मैं बुरी तरह फंस गया। मेरी हस्ती मिट गई। मैं बरबाद हुआ।' सोचकर उसका मन खलबली से भर गया था और दिग्भ्रम हो गया था।

"उतरोगे कि नहीं ?" फिर मार्क ने धमकाया।

"उतरता हूं मेरे पिताजी ! कान पकड़ लेता हूं ! अब की बार माफ़ कर दीजिये। पांव पड़ता हूं आपके।" उसकी दाढ़ी-मूंछ एक-एक इंच बढ़ी हुई थीं। उसने बच्चों की तरह रोने की आवाज़ निकाली। मगर वह नीचे नहीं उतरा, न हिला अपनी जगह से।

"उतरोगे नहीं तो देखो, नसैनी खोल देता हूं रात-भर पेड़ पर ही बैठा रहना पड़ेगा।" कहकर मार्क ने सीढ़ी के निचले हिस्से पर हाथ लगाया।

"आपकी कसम ! खुदा की कसम ! उतरता हूं !" वैरा दो सीढ़ी नीचे उतरा।

फिर "आपके पांव पड़ता हूं इस बार एक दफे माफ़ कर दीजिये ! जो आप मांगें, दूंगा !" कहकर आंसू वहाये।

"उतरोगे कि नहीं छिनाल के वेटे ! थू !" कहकर मार्क ने गुस्से से उसके ऊपर थूका। थूक हवा में बूंद-बूंद बनकर उसी के मुंह पर पड़ी। मार्क को और गुस्सा आया। एक छड़ी लेकर उसने वैरे की ओर उसे जोर से फेंका। वह उसे न लगकर, उसके वगल से होकर सनसनाहट करती नाले में गिर गई और धप्प-सी आवाज आई।

"हाय रे ! उतरता हूं ! उतरता हूं ! आपकी कसम !" कह वैरा उतरने लगा। अपना मुंह ऊपर करके मार्क उसी की ओर देख रहा था, सोच रहा था कि उसके उतरते ही गिरफ्तार करूंगा। मगर वैरा सोच रहा था कि मैं उससे कैसे वचकर निकल जाऊं।

ज़मीन करीव दस फुट नीचे थी। वैरा रुक गया। नीचे देखा उसने।

"उतरो ! उतरो ! अंधेरा हो गया !" मार्क वैरे के विलकुल सामने नीचे खड़े होकर आकाश की ओर मुंह करके कह रहा था।

एक क्षण में वैरे को एक उपाय सूझा। पहले प्रयत्न करने पर भी नहीं सूझा था। जव आफत नजदीक थी तव उसी प्रसंग ने उसे उपाय भी सूझा दिया। ताड़ी से भरे मटके (मग) को वाएं हाथ से दाहिने हाथ में लिया। उसी को देखते खड़े रहे मार्क ने सोचा कि शायद वैरे का वायां हाथ दुख रहा होगा, इसीलिए दाहिने हाथ में उसने मटके लिया होगा। परंतु दूसरे ही क्षण में ताड़ी से भरा वह भारी मटका ऊपर देखते खड़े हुए मार्क के मुंह पर, तिसमें भी उसकी नाक पर ठीक झोप्प-से गिरकर चकनाचूर हो गया। फेनिल ताड़ी उसकी आंख, नाक, वदन पर गिरकर नीचे गिर गई। उसकी नाक की हड्डी टूट-सी गई जिससे उसे वड़ी वेदना हुई। आंखों में गिरी ताड़ी ने वैरे के पक्ष में अच्छी तरह वकालत की थी।

"हाय ! हाय ! आह ! छिनाल के वच्चे ! मार डाला रे ! तिम्मा ! ऐ तिम्मा ! कहां मर गया रे ! मार डाला रे ! मार डाला रे !! पकड़ो रे उसको ! हाय ! हाय ! आह !" इस तरह मार्क उस निःशब्द संध्या कानन में तार स्वर में चिल्लाकर पागल की तरह वरत रहा था। मानो उसे विच्छू ने डंक मारा हो। वैरा उतरकर फरार हुआ, उसे न देख सका, न सुन सका।

इस घटना की सारी जानकारी तिम्म को नहीं थी। अपना काम पूरा करके, हाथ में ताड़ी का मग पकड़े, धीरे-धीरे नाले में उतर, चढ़, वन के झुटपुटे अंधकार में आने वाले तिम्म ने मार्क का भयंकर आर्तनाद—"हाय ! हाय ! आह ! मार डाला रे, तिम्मा कहां मरा रे...मार डाला रे..." इत्यादि सुन दिग्भ्रांत हो, कहीं खून तो नहीं हुआ ? सोचकर वीभत्स भयोद्वेग से भागने लगा। गुच्छ-

गुन्ठ में गुंथे झुरमुटों के बीच में से झपटकर, कूद-फांदकर, बड़े पेड़ों से घिस-कर, रगड़कर, आ रहा था, तब मार्ग में आड़ी गिरी एक कांटेदार लता में उलझ गया, ठोकर खाकर गिर पड़ा। हाथ में धरा मटका (मग) गिरकर टूट गया। जंगल की भूमि सारी ताड़ी पीने लगी। हथेली और घुटने रगड़ने से खून से तर हो गये थे। उसकी भी परवाह न करके, डर के मारे मृत्यु की भी परवाह किये बिना भागकर आया।

"चोर, छिनाल के बेटे, कहां गये थे तुम?"

मार्क ने गाली दी, तो भी उसका खून नहीं हुआ है, जानकर, शांत हो, हांफते हुए पूछा, "क्या हुआ जी?"

"चोर-छिनाल के बच्चे, यह सब तुम्हारी साजिश है! मैं जान गया। तुम सब मिलकर मेरा खून करना चाहते थे न?" कहकर मार्क अंट-संट आरोप करने लगा। उसकी हालत हास्यास्पद हुई थी। तो भी तिम्म नहीं हंसा। उसको तसल्ली दी।

"कहां गया रे वह भी!" मार्क ने चिल्लाकर पूछा।

"कौन?" तिम्म ने आश्चर्य से पूछा।

"कौन? तेरा बाप!···नहीं मालूम कहके बहाना करते हो क्या? कहां गया रे वह? बताते हो कि नहीं?···तुम्हें भी जेल भिजवा दूंगा। चोर, छिनाल के बच्चे, किसको यह धोखा देता है?"

तिम्म हक्का-बक्का रह गया। मार्क को शांत किया और अपने विलंब का कारण सुनाया। मार्क ने भी सारी घटना सुनाई और "उसको सजा न दिलाऊं तो मैं किलिस्तर जाति का बेटा नहीं हूं।" कहकर चिल्लाया।

"कौन है वह, आप जानते हैं?"

"तुम्हारी बेलर गली वाला। उसका पूरा नाम मैं नहीं जानता!···एक-एक इंच लम्बी दाढ़ी है न! बड़ी तोंद!···कौन रहा होगा, कहो तो?"

तिम्म ने सोचकर कहा—"किसकी दाढ़ी, तोंद? ऐसा आदमी है एक बैरा···।"

"वही! वही! बैरा छिनाल के बेटे को हथकड़ी पहनाऊंगा!"

"वह आज कहां है, गली में? सीतेमने की बेलर गली में उसका रिश्तेदार—साला, कहते हैं कि मर गया है। बैरा वहीं गया होगा।" तिम्म ने सपने में भी नहीं सोचा था कि बगनी के पेड़ पर मटका बांधने वाला बैरा है।

"झूठ बोल रहे हो? सवेरे देखा है। गड्ढे का पानी उलीचकर मछली पकड़ने जा रहा था!"

"सवेरे गड्ढे का पानी उलीचा होगा और दुपहर को गया होगा सीतेमने।"

बहुत देर तक इस प्रकार वाद-विवाद हो जाने के बाद दोनों साली के लिए

मटके के टुकड़े और पेड़ के नीचे रखे वैरे का मग भी लेकर घर को निकले।

रास्ते में तिम्म ने कहा, "आप ईसाई हैं, आप नहीं जान सकते। अगर आदमी होता तो इतना सारा करके क्या अपने को बचा ले सकता था?"

"तो क्या तुम समझते हो कि वह भूत था?"

"इस तरह कई दफ़ा हो गया है! हमारे भूतराय की ईसाई से पटती नहीं है।"

"जाओ, जाओ रे! ये बातें किसी गंवार से कहो।" कहने वाले मार्क के मन में तिम्म की बात के भय ने जड़ जमाई थी।

"आप ऐसा तात्सार न करें। देखिये, सीतेमने का जाकण्ण आप की जात का है। वह भी पहले पहल जब आया था तब हमारे भूत और देवों की खिल्ली उड़ाता था। एक बार 'चौड़ी' ने ऐसा किया कि वह खून कै करने लगा। उसके बाद हमारे देव-भूतों के नाम पर वह मनौती रखता है। मुर्गी-बकरी की बलि चढ़ाता है। सब करता है!...अगर वह सचमुच वेलर वैरा होता तो क्या आप जैसे सर-कारी नौकर के मुंह पर ताड़ी का मटका गिरा के भाग जाता? वेलर वैरे को कहां से आता वह धैर्य? कैसे सूझता वह तरकीब? आप जैसे के हाथ से कैसे भाग जाता? सब तमाशा भूतराय का है। कल-परसों शायद हमारे भूतराय का आशीर्वाद होगा। आप भी रहें; धूप जलाकर प्रार्थना करें।"

वह जंगल, वह अंधेरा, वह उद्वेग, वह शक किस चिड़िया का नाम है न जानने वाले तिम्म की श्रद्धावाणी से मार्क के चमड़े के भीतर रहा ईसाई मत हिल गया। जो कुछ घटा था उसे स्मरण करने से दीखा कि तिम्म की उपपत्ति ही सच है। तो भी बाहर से सिर्फ उसने कहा—"कल सब वेलरों को बुलाकर गौड़जी से उनकी सुनवाई कराऊंगा।"

उस रात को वेलर सिद्द अपने घर में वैठा था तब वैरा वहां आया और बहुत देर तक फुसफुसाया। उसके बाद दोनों वैरे के घर गये। वहां उस्तरा और पानी तैयार थे। सिद्द ने वैरे के सिर के दाढ़ी-बालों और मूंछों को मुड़ाकर साफ़ किया।

"अब मेरी पहचान लगेगी?" वैरे ने पूछा।

"कैसे लगेगी!! मैं ही नहीं पहचान पाता! उस शहर के गधे मार्क को कैसे लगे!" कहकर सिद्द ने पुनर्जन्मे-से वैरे का मुख, ताड़ी के मटके का-सा उसका धड़ देख हंसा।

दूसरे दिन सवेरे पुट्टण्ण वेलरों की गली में गया और सब वेलरों को सुनाया, "सभी वेलर पुरुषों को गौड़जी के घर अभी आना चाहिये। यह गौड़जी की आज्ञा है।" सिद्द, वैरा, मंज, कँच, गुत्ति, दोड्ड रुद्र, सण्ण रुद्र, सभी गौड़जी के घर की

ओर रवाना हुए। अपने पीछे ही आने वाले बेलरों के समूह को देखकर पुट्टण्ण ने कहा—"बैरा नहीं आया ? बुलाओ उसको !"

"यहां हूं जी" कहकर बैरा मुस्कुराया।

उसको देख पुट्टण्ण दंग रह गया और खड़े होकर कहा—"यह क्या रे ?"

"सीतेमने ग्राम की हमारी गली में हमारा रिश्तेदार मामा मर गया था। वहां गया था।" कहा बैरे ने। पुट्टण्ण भी उसे नहीं पहचान सके, इससे बैरे को बड़ी खुशी हुई। नजदीक का कोई रिश्तेदार मर जाय तो सिर मुंडा लेने का रिवाज है बेलर जात वालों में जिसे पुट्टण्ण जानता था। इसलिए फिर उसने प्रश्न नहीं किया।

कानूर चंद्रय्य गौड़जी के घर के आंगन में सभी बेलर कतार में खड़े हो गये।

चंद्रय्य गौड़जी, हूवय्य, रामय्य, वासु आदि सभी चौपाल में बैठे थे। वहीं एक कुछ ऊंची जगह पर मार्क भी बैठा था।

चोरी से बगनी के पेड़ पर मटका बांधने के बारे में बातचीत हो रही थी।

चंद्रय्य गौड़जी ने कहा, "इनको क्या करें ? कहने से सुनते थोड़ी ही हैं। कलाल के घर, ताड़ी की दुकान में धान दे-देकर, पी-पीकर मर गये; इतना ही नहीं, बगनी के पेड़ पर मटका बांधना भी शुरू कर दिया है न !"

हूवय्य ने कुछ विनोद के लिए कहा—"सच है, बड़े-बड़े लोगों ने 'मान-पत्र' पर हस्ताक्षर करके भी, भगवान की कसम खाकर भी पीना नहीं छोड़ा हैं अभी तक तब फिर गरीबों से क्यों कहें ? बड़ों के पास पैसा है, चांदी बोलती है, इसलिए लाइसेंस के वास्ते पैसे दे-देकर बगनी के पेड़ पर मटका बंधवा लेते है और खूब ताड़ी पीते हैं। मगर गरीब लोग चोरी से बगनी पर मटका बांधकर ताड़ी पीते हैं।"

रामय्य ने कहा—"यह घोषणा कर दें कि हमारे गांव का कोई भी बगनी के पेड़ से ताड़ी न निकाले तो अपने आप सब ठीक हो जायगा। एक बगनी पेड़ पर मटका बांध ताड़ी निकालकर पीता रहे तो क्या दूसरे उसको देखते चुप रहेंगे ? पैसे न हों तो चोरी करेंगे, पियेंगे। रंभा, कुदाल, सब ढोकर ले जायेंगे, बेचेंगे और चोरी से पियेंगे···।" इत्यादि।

टीका की कुल्हाड़ी अपने ऊपर पड़ते देख तनिक गुस्से से गौड़जी ने "अच्छी बात कहते हो तुम दोनों। सरकार को धोखा देने का उपदेश देना मुनासिब होगा ?" कहकर मार्क की तरफ देखा।

हूवय्य ने मजाक किया, "सरकार का खजाना भरने के लिए क्या आप सब लोग बगनी के पेड़ों के लिए महसूल नहीं देते हैं ?"

रामय्य ने कहा, "सरकार जो कुछ करती है वह सब सत्कार्य है ? उसको केवल पैसे चाहिये ! यहां ये सब लोग पीकर सेहत बिगाड़ लें, मर जायं तो उसको

क्या चिंता ? यहां के पैसे से वो वहां शहर सजाती है !"

कॉपवाले, अंग्रेजी बोलने वाले, खादी पहने तरुण को देखकर मार्क कुछ नहीं बोला। कई लोगों के आगे हूवय्य ने गौड़जी की पोल खोल दी थी इसलिए वे भीतर ही भीतर हूवय्य के प्रति जलने लगे ! सेरेगार रंगप्प सेट्टी की दृष्टि एक बार गौड़जी की तरफ, एक बार हूवय्य की तरफ जाती थी। दो दिनों पहले वैरे को धान न देने पर हूवय्य ने उनकी तौहीन की थी जिसे वे नहीं भूले थे। उनकी दृष्टि उनके सिर की बांबी में सांप बन गई थी।

मार्क कतार में खड़े बेलरों की जाँच करके पहचानने के लिए आंगन में उतरा, अच्छी तरह दो-तीन मिनट अवलोकन किया। वैरे की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा। सारा घर शांत था, मौन था निर्णय की प्रतीक्षा में। वैरा मनौती मान रहा था कि इससे पार हो जाऊं तो भूतराय को एक मुर्गी ज्यादा चढ़ा दूंगा।

"सभी बेलर यहां हैं ?" कहकर मार्क ने गौड़जी की ओर देखा !

गौड़जी नहीं चाहते थे कि अपने बंधक नौकर सरकार के हाथ लगे। वे जानते थे, ऐसा हो जाने पर खुद को बड़ा कष्ट होगा और हानि भी होगी।

"सभी आये हैं।" उन्होंने कहा।

मार्क किसी को न पहचान सका, इसलिए वापस आके अपने स्थान पर बैठ गया। सभी बेलर गुफ्तगू करते हुए फाटक-फाटक पार करके गये अपने-अपने घट की तरफ।

"कल सुबह खेत में जिसको देखा था वह नहीं आया है।" मार्क ने कहा।

"तो न जाने आपने किसको देखा था। यहां हमारे सभी बेलर आये थे।"

"वैरा नाम का आया था ?"

"हां, हां, बेशक आया था।" पुट्टण्ण ने कहा।

"कहां ? उसको तो मैंने देखा नहीं ?"

"कल वह सीतेमन ग्राम के बेलरों की गली गया था। कहते हैं कि वहां उसका कोई रिश्तेदार मर गया था। जो गांव में नहीं था उसको लेकर आप क्या कहेंगे ?" कहा पुट्टण्ण ने।

मार्क को तिम्म की सुनाई भूतराय की कहानी याद आई और उन्होंने भी आशीर्वाद के समारोह में शामिल होने की अपनी इच्छा प्रकट की।

२८

घर का बंटवारा

युवती से विवाह करने वाले बूढ़े चंद्रय्य गौड़जी बहुत समय तक सुख उपभोग न कर सके। क्योंकि कमसिन लड़की से विवाह करने वाले बूढ़े का मन बहुत शीघ्र अत्यल्प कारणों से शक्की हो जाता है। यदि एक वार शक बूढ़े के मन में घर कर लेता है तो वह सूखे पेड़ की जड़ में दीमक लग जाने के जैसे होता है। जो भी देखे, जो भी सुने वे सभी संशय-पिशाच को और भी बड़ा बनाने में साक्षी बन जाते हैं। पहले साधारण, सरल, मुग्ध दिखाई देती हुई बातें ही बाद को फितूर के पिशाच बनी दिखाई देती हैं। संशय से असूया, द्वेष, क्रोध में बाढ़ आती है जिससे हृदय हिंसाभिमुख हो जाता है। कानून के अनुसार, समाज की रीति-नीति के अनुसार, कमसिन लड़की के साथ बूढे का विवाह करना न अपराध है न पाप। वह बूढ़ा न अपराधी है न पापी मगर प्रकृति का निर्णय दूसरा ही होता है। बूढ़े के मन में ही वह व्यक्त होता है। काफी धन खर्च करके, बहुत सगे-संबंधियों के सम्मुख, शास्त्र के अनुसार, देवी-देवताओं की साक्षी में पाणिग्रहीत बालवधू का अपनी काम लालसा के अनुसार उपभोग कर सकने वाला, अपनी इच्छा के अनुसार उपभोग करने वाला होने पर भी भीतर ही भीतर बूढ़ा अपने मन में अपने को अपराधी ही मानता है। उसके योग्य सजा भी उसके अंतर में शुरू होती है। नया कभी पुराने को नहीं चाह सकेगा। बाल्य-वृद्धावस्था या जवानी-बुढ़ापे के बीच गौरव का संबंध हो सकता है, न कि प्रेम का संबंध।

नुच्चम्म कितनी भी गंवार हो, अनागरिक हो, मगर यह नहीं भूलना चाहिए कि वह कमसिन है। गरीबी में पली उसको अमीर चंद्रय्य गौड़जी से विवाह करने में अभिमान था। कभी पहले उसने जिन वस्त्राभरणों को देख भी नहीं सकी थी उनको देखकर उसकी आंखें चौंधिया गई थीं। चन्द्रय्य गौड़जी ने भी अनुमान किया था कि अपनी युवावस्था में प्रथम विवाह में अनुभवित यौवन का अनुसरण करके भयानक धर्माधिकारी कामदेव को ठगाया है। परन्तु वह वास्तव में मरीचिका घोड़ी की सवारी थी। उस अबोध, बुद्धू लड़की को सेरेगार रंगप्प सेट्टीजी आदि के साथ सरलता से बोलती, बरतती देखकर-देखकर गौड़जी के शृंगार के सुवर्ण

सपने में दरार पड़ने लगी। प्रेम ने जो ओढ़नी ओढी थी उसे हटा दिया। गौड़जी देखते हैं, काम शर्म छोड़कर खड़ा है! उसके हाथ में लोभ का जाल है! गौड़जी के मात्सर्य को एक अवलम्बन चाहिए था। सेरेगार रंगप्प सेट्टीजी मिल गये।

चोर का राज चोर ही जानता है। सेरेगारजी दूसरे की पत्नी गंगा को कन्नड़ जिले से उड़ाकर लाये थे और उपयोग-उपभोग करते रहे, सो गौड़जी जानते थे। यह भी उनको मालूम हो गया था कि छूत-अछूत, शुचि, अशुचि, अपना, पराया, चखा, वेचखा वगैरह भेदभाव सेट्टीजी में कतई नहीं है। क्योंकि अपने लिए ज़रूरत पड़ने पर गंगा से स्नेह करने के लिए रंगप्प सेट्टीजी ने उन्हें छूट दी थी, मना करने के वदले। इतना ही नहीं, गौड़जी को उन्होंने उकसाया भी था और ऐसा करने में अपना अभिमान भी माना था। ऐसा आदमी क्या करने में आगा-पीछा देखेगा? हिचकेगा? उसको गंगा हो तो क्या, सुव्वम्म हो तो क्या? जो हो; कुल मिलाकर सेरेगारजी गौड़जी के संशय के पात्र वन गये थे। पर उसे सूचित करने में डरते थे। ऐसा करना भी वे अपनी शान के विरुद्ध समझते थे। वे अगर चाहते तो सेरेगारजी को उनके सारे मजदूरों के साथ कानूर से भगा सकते थे। ऐसा करने से अपने पेट में आप कुल्हाड़ी मार लेने के समान होगा, अपने आपको नीचा करने के समान होगा, सोचकर, मानकर चुप थे। ज़रूरत पड़ने पर उनको भगाया जा सकता है। इसके साथ ही उन्होंने सोचा कि सेरेगार-जी के साथ गंगा भी चली जायगी तो!

सचमुच सुव्वम्म का मन उतना वुरा नहीं था जितना गौड़जी ने सोचा था। जितना अनुमान गौड़जी करते थे उतना सेरेगारजी भी आगे नहीं वढ़े हुए थे। गंगा ने अपनी पूर्व कहानी सुनाकर जिस दिन उपदेश किया था उस दिन से सुव्वम्म के चित्त में एक-दो अस्फुट पिशाच संचार कर चुके थे, यह सच है। लेकिन गौड़जी के कूते गये साहस का कार्य करने की उसने नहीं सोची थी। न धैर्य ही था उसमें।

संशय का प्रवेश गौड़जी के मन में जव से हुआ तव से गौड़जी अपनी तरुण पत्नी के प्रति यह, वह, कोई न कोई वहाना करके वार-वार थोड़ी क्रूरता से वर्ताव करने लगे। गाली देना, पीटना वढ़ गया। अपने संदेह को सुनाकर उन्होंने अपनी पत्नी को चेतावनी भी नहीं दी। दो-एक वार सेरेगारजी ने वीच में आकर प्रार्थना करके गौड़जी को सुव्वम्म को पीटने से रोका। इस घटना ने संशयाग्नि में घी का काम किया। प्रथमतः गौड़जी की यह वुद्धि सेरेगारजी की समझ में नहीं आई, पर थोड़े ही दिनों में अनुभवी मन को इसका राज झलका। तव से वे जाग-रूकता से, होशियारी से वरतने लगे। सेरेगारजी के वर्ताव में हुए परिवर्तन को देखकर गौड़जी का भ्रम निरसन हुआ।

हूवय्य और रामय्य गरमी की छुट्टी में जव घर आये थे तव घर में ऐसी

परिस्थिति नहीं थी। फिर समस्या धीरे-धीरे जटिल हो गई। इतनी जटिल कि कल्पना को डर लगने लगा।

चंद्रय्य गौड़जी के हृदय में कसमसाहट बढ़ने लगी थी जब, तभी घर में शांति-मैत्री बढ़ने लगी-सी दीख पड़ी ! नागम्म-सुब्बम्म के झगड़े बन्द हो गये। पुट्टम्म और वासु दोनों को अपने प्रति सुब्बम्म का आदर देखकर आश्चर्य हुआ। वे भी हर्षचित्त हुए। वासु तो घी, मक्खन के साथ नाश्ता करने लगा, अच्छी काफी भी मिलने लगी उसे। उसको ये चीजें ऐसे मिलतीं जैसे कातिल हाथ से अधिकारी को रिश्वत मिलती है। सुब्बम्म को धीरे-धीरे विधेय, विनयी, प्रियभाषिणी होती हुई देखकर उसके पति के सिवा सबको आनन्द हुआ।

कारण यह था कि हूवय्य तथा रामय्य को देखने के बाद से सुब्बम्म अपने गंवारपन पर आप ही शर्मिन्दा होकर अपने को सुधार लेने लगी। हूवय्य का भद्राकार, गम्भीर वर्ताव, उसमें एक प्रकार का गुरुभाव सुब्बम्म की आराधना के ध्येय बन गये। उस आराधना में कामभाव किंचित् भी नहीं था। गंगा से प्रचोदित प्रणयभाव भी रत्ती भर नहीं बचा रहा। बृहत् को देखने पर उसकी पूजा करने की, उसकी तरह बनने की, उसकी दृष्टि में पड़ने की, उसकी प्रसंशा के पात्र बनने की मनुष्य कुल की यह सामान्य इच्छा होती है। सुब्बम्म में भी ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई जो स्वाभाविक थी। नागम्माजी हूवय्य की मां हैं, जान जाने पर पहले की सारी निन्दा को भूलकर वह उनका आदर करने लगी। सुब्बम्म का यह हृदय परिवर्तन हूवय्य के व्यक्तित्व का रचित चमत्कार यद्यपि कह सकते हैं तथापि उसकी छोटी उम्र, सरलता, मुग्धता, चाहे बुरी हो, चाहे, अच्छी, परिस्थिति के प्रभाव से शीघ्र मुद्रित होनेवाली एक प्रकार की ग्राम्य सरलता, तारुण्य सहज निरन्तर उद्धार की आकांक्षा ये कारण थीं परन्तु वह परिवर्तन अघटित घटना होकर नहीं दीखेगी।

जैसे-जैसे सुब्बम्म अधिकाधिक विनयशीला बनती गई वैसे-वैसे उसके पति की क्रूरता, अनादर, हिंसा आदि बढ़ते गये। पत्नी में सहसा हुआ। यह हृदय-परिवर्तन पहले शक्की बने चन्द्रय्य गौड़जी के मन को उलटा ही दिखाई पड़ा। उन्होंने समझा कि वह अपने पाप को छिपाने के लिए ओढ़ा हुआ बुरका है या स्वांग है। इसके अतिरिक्त उनके मन में और एक भयंकर भूत विकटाकार में उत्पन्न हुआ। हूवय्य के घर आते ही सुब्बम्म में परिवर्तन होने से, उन्होंने निर्णय कर लिया कि हूवय्य आयु में, बुद्धि में, सौन्दर्य में, शील में, सब दृष्टि से अपने से श्रेष्ठ होने के कारण उनकी पत्नी का मन उसकी ओर आकृष्ट हुआ होगा। अब तक जो शक रंगप्प सेट्टजी पर अवलंबित था अब वह हूवय्य पर केन्द्रित होने लगा ! नागम्माजी के प्रति उनका वैर, यह सब न जानने वाले हूवय्य का बार-बार गौड़जी की सरल रीति से समालोचना करना उनके संशय पिशाच को

खुराक बनने लगे। जो पहले घर में बिल्ली-चूहे की तरह थे वे अब मैत्री से रहने लगे हैं यह देखकर, गौड़जी सोचने लगे कि भीतर ही भीतर कोई गुप्त फितूर हो रही है, और वह भ्रम से सबके साथ पागल की तरह बरतने लगे।

यह सब देखकर, जानकर, यही मौका उचित सोचकर सेरेगारजी अपने प्रति गौड़जी के मन में रहे शक को दूर करने की इच्छा से, बैरे को मजदूरी न देने की बाबत में हूवय्य से हुए अपमान का बदला लेने की इच्छा से गौड़जी के कानों में नाना तरह की चुगली फूंकने लगे। 'भालू' कहने से अन्धे बनने वाले को अन्धेरे में कड़ा-काला पत्थर दिखाने के समान हुआ।

जब दोनों शाम को साथ-साथ ताड़ी पी रहे थे तब "गौड़जी, मैं असूया से नहीं कह रहा हूं। आपके कहने के अनुसार वह बैरा है न, बेलर का बैरा! उसको मैंने धान नहीं दिया तो हूवय्य गौड़जी ने बहुत कुछ कह दिया न! मेरा इसमें क्या दोष था, अब आप ही कहिये। आपके बारे में मनमाने कहना! आपके घर का खाना खाकर बड़ा हुआ पुट्टण्ण का भी आपके बारे में बहुत कुछ कह देना! हां, देखिये! मुझे वह पाप क्यों? मैं असूया से नहीं कह रहा हूं। जो हो, जवान बेटों को उनका विवाह किये बिना घर में रख लेना अच्छा नहीं है, है न! अगर मैं झूठ बोलता हूं तो जीभ कट जाय मेरी आज ही!" इत्यादि दक्षिण कन्नड़ जिले के सेरगारजी बच्चों की भांति सराग कहकर अपनी बात पूर्ण करने वाले ही थे कि गौड़जी ने जो मुंह में आया कह ही दिया, सेरेगारजी की सूचना को हजारों गुना बड़ा मानकर, "आपको नया सुनाने की ज़रूरत नहीं है। मैं खुद ही सब जान गया हूं। उसको, उसकी मां को घर से निकाले बिना चैन नहीं। खेत में उतरने के पहले ही घर का हिस्सा करके उनको अलग रख देता हूं। नहीं तो 'बड़ी बहन की आदत घर के सभी लोगों को पड़े', कहावत है न, उसकी तरह सभी बिगड़ जायं तो आगे क्या हाल हो? वह तो जमीन झाड़ती-सी सफेद धोती पहनकर मंजिल पर बैठ जाता है, घर के काम-काज की ओर तनिक भी नहीं ताकता। उसकी वजह से हमारा रामू भी बिगड़ जायगा!···हमारे देवता, हमारे भूत के प्रति उसको घृणा। उसके घर आते ही भूतराय मुझे दीख पड़ा!—कल-परसों उसकी मनौती पूरा करके, उनका हिस्सा उनको देकर भेज देता हूं। कहीं भी मर जाय! फिर···पुट्टण्ण को भी निकाल दूंगा। वह मुफ्तखोर आसामी! खाने के लिए आकर घुस गया है घर में। तीनों वक्त बंदूक लेकर फिरता है! चुगली खाता है! खूब मेहनत करे और खाय! तब मालूम हो जायगा!"

उसी दिन शाम को हूवय्य मंजिल पर कहानी पढ़कर सुनाते बैठा था तब ताड़ी पीकर आये हुए चंद्रय्य गौड़जी वहां गये। पुट्टम्म, वासु, रामय्य, पुट्टण्ण सभी सुनते बैठे थे।

"बस, हो गया भाई! यह तो एक स्कूल ही हो गया!···तेरा यहां क्या काम

री ? पढ़कर, पास करके क्या रानी बनेगी ?"

पिता की कठोर बातें सुनकर खड़ी हुई पुट्टम्म सिर नीचा करके सीढ़ियों से उतरकर नीचे गई। पुट्टण्ण भी उठकर दूर खड़ा हो गया। उससे गौड़जी ने कहा, "अब क्या ? तुम्हारा भाग्य खुल गया। साफा बांधकर मास्टर के काम पर जाओ।" रामय्य, हूवय्य परस्पर देखते रहे। वासु हंस पड़ा। गौड़जी बिगड़कर बोले— "क्यों रे, क्यों हंसता है ? यहां क्या भालू को नचाते हैं ? तुझे पढ़ने के लिए तीर्थ-हल्ली भेज दूंगा, ठहर जा कुछ ही दिन !" धमकाकर गौड़जी ने पूछा—"हूवय्या, तुमसे कहने के लिए मैंने रामू से कुछ बातें कही थीं। उसने तुमसे कहा ?"

"क्या ?" कहा हूवय्य ने।

"क्या ? अब तुमको पढ़ने के लिए नहीं जाना है। सभी सामान मंगा लो।" कहा गौड़जी ने।

"और एक वर्ष पढ़ूं तो बी०ए० हो जाएगा। बीच में छोड़ आना क्यों ?"

"न बी०ए० चाहिये, न गि०ए०; पैसे भेजना अब मुझसे न होने का।"

"स्कालरशिप मिलती है। उसी से काम चला लूंगा।"

"वह सब नहीं जानता ! अपने हिस्से की जायदाद, जेवर वगैरह लेकर तुम कहीं भी जाओ। तुम्हारी मां और मैं हम दोनों के बीच में समझौता नहीं हो सकता !"

नागम्माजी ने भी अपने पुत्र से कहा था कि अपना हिस्सा लेकर अलग होना बेहतर है। हूवय्य ने मां को अच्छी तरह समझाकर मना लिया था कि जब तक मैं पढ़ाई न समाप्त करूं, यह नहीं होने का। मां भी पुत्र के श्रेय के लिए अपने ऊपर बीतने वाले सब कष्टों को सहने के लिए तैयार हो गई थी। पर चंद्रय्य गौड़जी घर का बंटवारा करने पर तुले हुए थे, ऐसा दीख पड़ा। उसका मुख्य कारण केवल उसका कथन ही नहीं था। अगर हूवय्य अकेला होता तो जायदाद किसी को ठेके पर देकर पढ़ने के लिए जा सकता था। मगर मां ? उसके मन में एक क्षण एक बात कौंध गई—"मां न होती तो कितनी आजादी होती !" इस अमंगल विचार से घबराकर, उसे तुरंत मन से मिटा दिया।

हूवय्य ने कई प्रकार से समझाकर समाधान करने का प्रयत्न किया। मगर गौड़जी ने नहीं माना। रामय्य ने भी डरते-डरते कहा, "हूवय्य एक वर्ष और पढ़ने के लिए जाय, मैं घर में रहूंगा, काम-धंधे में मैं आपकी सहायता करूंगा।" गौड़जी पुत्र की बातें सुन, आंखों से चिनगारियां बरसाते अंट-संट चिल्ला बैठे। ज्यादा बोलना उचित न मानकर, इस वक्त ज्यादा बोलना अविवेक होगा मानकर हूवय्य भी चुप हो गया।

गौड़जी जाते समय खंभे के सहारे खड़े हुए पुट्टण्ण को बुलाकर बोले, "कल भूतराय की मनौती पूरी हो जाने पर, तुम अलग घर बसा लो। उसके बाद मेरे

घर में तुम्हें जगह नहीं।"

गौड़जी उतरकर नीचे गये। तव हूवय्य ने रामय्य को रोते देखकर कहा, "तुम रो क्यों रहे हो औरतों की तरह ? दुनिया ऐसी ही होती है। यह नहीं जानते हो तो ,इतने काव्य, इतने उपन्यास जो तुमने पढ़े, सारा वेकार !" फिर आंखों में आंसू भरे हुए वासु को खींचकर, गले से लगाकर कहा, "कहानी को आगे पढ़ें ?"

वासु न वोला। एक-दो अश्रु विंदु उसके गाल पर लुढ़के।

'आजकल वे ऐसे क्यों हो रहे हैं, समझ में नहीं आ रहा है।" रामय्य ने अपने पिताजी के प्रति कहकर आंसू पोंछ लिये।

"यह सव सेरेगारजी की शरारत है !" पुट्टण्ण ने कहा।

"लात मारकर उस वदमाश को भगा दें तो क्या होगा ?" वासु ने कहकर हूवय्य की तरफ़ देखा। हूवय्य नहीं वोला। मुस्कुराहट उसके होंठों पर खेल रही थी।

रात को वहुत देर तक हूवय्य को नींद नहीं आई। छोटे चाचा की वातों पर विचार करने लगा। अपनी पढ़ाई रुक जायगी, इस विचार से उसे दुःख हुआ। फिर सोचा, कोई चिंता नहीं। यदि परमात्मा की कृपा रही तो घर में ही ग्रंथों की सहायता से विद्यादेवी की आराधना की जा सकती है। इस तरह सोचकर अपने मन को संतुष्ट कर लिया। मन ने इधर-उधर घूमकर अपनी इष्टमूर्ति का दर्शन कर लिया। सीता का लावण्य निग्रह भुवनमोहक वनकर कल्पना चक्षुओं को दिखाई पड़ा। दुःखमय दीखने वाले भवसागर में वह सौंदर्यमूर्ति अकेली मनोहर सुखद्वीप की तरह विराजमान दीखी। सीता का सामीप्य रह सकेगा, इस मधुर विचार से विद्यार्जन के लिए मैसूर जाना रुकने से उत्पन्न दर्द भी प्रिय लगा। लेकिन विधि एक अलग ही दूसरा व्यूह रच रहा था।

२६

कानूर में भूत का आशीर्वाद

कानूर में 'भूत का आशीर्वाद' एक अत्यंत संभ्रम की घटना है। चंद्रय्य गौड़जी के नौकर-चाकर, किसान, नजदीक के नातेदार सभी उसमें भाग लेने आया करते थे। यह एक रिवाज ही था। कुछ बकरियां, मुर्गियां उस दिन भूत, रण, बेटेरण, चौडी, पंजोल्ली आदि भूत देवताओं के लिए बलिवेदी पर चढ़ाई जाती थीं जो कुछ लोगों की आंखों के लिए, कुछ लोगों के पेट के लिए त्यौहार हो जाता। नातेदार, उनके लड़के घर में भर जाते और मन को हर्ष देने वाला कलरव हुआ करता था।

लेकिन इस वर्ष 'भूत का आशीर्वाद' घर वालों के लिए उतना हर्षदायक नहीं रहा, क्योंकि सबके मनोगगन में काले-काले मेघ छाये हुए थे, मगर दूसरे लोगों के लिए पहले की तरह आह्लादकर रहा।

कुछ रिश्तेदार, किसान पिछले दिन शाम को ही घर आ गये थे। दूसरे सवेरे सभी मजदूर हाजिर हुए। बेलर बैरा, सिद्ध, हलेपैक का तिम्म, केल कानूर के अण्णय्य गौड़जी, उनकी बेटी, बाड़ुगल्लु का बड़ी तोंदवाला सोम, गंगा, रंगप्प सेट्टजी की तरफ के घाट के कन्नड़ जिले के मजदूर! थोड़ी देर में मार्क भी आ गया जो अपने कर्तव्य के लिये दूसरे गांव गया था। (भूत के आशीर्वाद की अपेक्षा उस दिन का पकवान ही उसके आने का प्रबल कारण रहा होगा।) गांव छोड़कर सीतामने गया हुआ ओबय्य भी आया। भूत के आशीर्वाद पर उसको विशेष भक्ति थी। इसके अलावा उसने ढिंढोरा भी पीटा था कि भूत मुझे बार-बार दर्शन देता है। ऐसा भूत-भक्त भूत के आशीर्वाद के लिये आये बिना कहीं रह सकता है!

ऊपरी जात के कुछ लोग रसोई बनाने में लग गये। कडुबु (टिकिया जैसा पकवान) के लिए आटा गूंधना, मांस के लिए मसाला पीसना, नारियल तराशना मसाले की चीजें जुटा देना, बड़ी कड़ाही तैयार करना, केले के पत्ते ठीक करना इत्यादि कामों का बंटवारा होकर, काम शुरू किये गये। फिर कुछ लोगों को तालाब के पास तलवारों को घिसकर तेज करने, केले के पत्ते भोजन के पहले बिछाने, बकरी-मुर्गियों को भूनने के लिए आवश्यक आग के लिए लकड़ियां जुटाने-

हड्डियों को काटने के लिए छुरे तैयार करने आदि काम पर नियुक्त किया गया। और कुछ लोग भूत-पिशाचों को वलि देने के काम के लिए नियुक्त हुए। कुल काम तीन पैसे के थे तो शोरगुल, कोलाहल एक रुपये का-सा था। वासु के नेतृत्व में उस दिन घर में इकट्ठे हुए सभी लड़के-लड़कियां चीख-चिल्लाकर नाचना ही अपना कर्तव्य मानो समझकर तालाव से रसोई घर, रसोई घर से चौपाल तक, वहां से वाहरी आंगन में आते-जाते रहे। रामय्य चंद्रय्य गौड़जी का आज्ञाकारी होकर, भूत के आशीर्वाद पर विश्वास न होने पर भी, हिंसामय भूताराधना का काम यंत्रवत् करता था। दोनों कानों में कपास की गोली रखकर चंद्रय्य गौड़जी लोगों के शोर-गुल को मात करने वाले तार स्वर में हुकुम वजाते थे। घर के कुत्ते 'छीः थू !' आदि घुड़कियां सुनते, ठहरने के लिए, लेटने के लिए जगह न पाकर इधर-उधर घूमते थे। गौड़जी की आज्ञा के अनुसार पुट्टण्ण धौत गंदी धोती पहनकर, पूजा की सामग्री तैयार कर वेंकप्पय्य ज्योतिषी की प्रतीक्षा में था। शूद्रों से रक्त वलि चढ़ाने से पहले ब्राह्मणों से भूत की पूजा करवाके जैनेडे दिखाने का रिवाज था। 'जैनेडे' का अर्थ है जैनों की तरह निरामिष नैवेद्य !

सभी इस तरह जव कोलाहल में शामिल थे तव हूवय्य दुमंजिले पर वैठकर भगवद्गीता पढ़ रहा था। लेकिन कहा नहीं जा सकता उसका मन पूर्ण रूप में भगवद्गीता में तल्लीन था। क्योंकि वह कभी-कभी सिर उठाकर वाहर जंगल, पहाड़, आकाश की ओर देखता था। जो उसे उसके सामने वहीं से दिखाई पड़ते थे। शायद उनको भी नहीं देख रहा था। उसकी दृष्टि अंडे पर सेंकने वैठी मुर्गी की दृष्टि की तरह अंतर्मुखी वनी थी। चित्र, भाव, विचार, आशा, आकांक्षाएं उसके मनस्-सरोवर में तरंगित होकर, एक पर एक लुढ़क जाते थे।

आर्य धर्म का उत्तम आदर्श क्या है ? हिन्दू कहलाने वाले ये लोग जो क्रियायें कर रहे हैं, ये क्या हैं ? उपनिषद्भगवद्-गीता महोन्नत दिव्य दर्शन कहां ? इन लोगों की भूत-पिशाचाराधना कहां ? इन सवका कैसे सुधार करें ? एक प्रकार से देखा जाय तो पादरियों का खण्डन कितना सत्य है ! हूवय्य ने हाथ में धरे गीता शास्त्र की ओर देखा। यह श्लोक उसकी दृष्टि में पड़ा।

यांति देवव्रता देवान् पितॄन् यांति पितृव्रता।
भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनो ऽपि माम् ॥

देवताओं की पूजा करने वालों को देवलोक प्राप्त होता है। पितृपूजा करने वाले पितृलोक पाते हैं। भूत-प्रेत पूजक उन भूत-प्रेतों के लोक को ही जाते हैं। मेरे पूजक मेरे पास आते हैं। उसे दूसरा श्लोक याद आया :

यजंते सात्त्विका देवान् यक्ष रक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ॥

सात्त्विक लोग देवताओं की पूजा करते हैं। राजस लोग यक्ष-राक्षसों की पूजा

करते हैं। तामस लोग भूत-प्रेतगणों की पूजा करते हैं।

"हे भगवान्, इन लोगों के मन को तुम्हारी ओर घुमाने की शक्ति मुझे दो।" हूवय्य ने मन ही मन प्रार्थना की। किसी भावोत्कर्ष से उसकी आंखों में आंसू आये। बारहवां अध्याय खोलकर भावपूर्ण हो शक्तियोग के श्लोकों को पढ़ने लगा :

पांचवां श्लोक समाप्त करके छठे श्लोक पर आया :

ये तुसर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंहार सागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥
मय्येव मन आयत्स्व मयि बुद्धि निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्व न संशयः ॥

सब कर्मों का मुझको निवेदन करके मुझमें तत्पर होकर, अनन्ययोग से मेरी उपासना करने वालों को मृत्युसंहार सागर से उबारता हूं। मुझमें मन रहे, मुझमें बुद्धि रहे, निःसंदेह तुम मुझे पाते हो।

हूवय्य भाववश हुआ। उसका शरीर पुलकित हुआ। गीता पुस्तक नीचे खिसकी। झट जाग्रत-सा होकर पुस्तक उठाकर खोल करके नमस्कार करते समय आंसू की एक बूंद कागज पर टपक पड़ी। उस बूंद को हाथ से पोंछते समय एक श्लोक तूर्यवाणी की तरह दिखाई पड़ा।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन ॥

एक पत्र, या एक फूल, या एक फल, मुझे कोई भक्ति से देगा तो उसे मैं आनंद से स्वीकार करता हूं।

"हे भगवान्, आंसू का नैवेद्य सबसे श्रेष्ठ है न?" कहकर हूवय्य ने चैत्र सूर्य की कांति में अनंत विस्तार में फैले वन प्रांत को देखा। एक बकरी की चिल्लाहट से ध्यानभंग हुआ। उसने खिड़की में से देखा।

नीचे बाहरी आंगन में भूत बलि के लिए लाकर तीन-चार बकरियां बांधी गई थीं। उनमें एक काला बकरा पत्ते के लिए गले की डोरी को खींचकर गरदन, बढ़ाकर जीभ आगे करके खाने का प्रयत्न कर रहा था। एक पत्ता उसकी जीभ की नोक तक पहुंचता था, न कि मुंह में आता। और एक घंटे में हत होने वाला यह जानवर आहार पाने के लिए कितना प्रयत्न कर रहा है, सोचकर हूवय्य को बड़ा दुख हुआ। वासु, पुट्ट और कुछ लड़के उन यज्ञ पशुओं से कुछ दूर पर अर्धवर्तुल में खड़े होकर कुछ फुसफुसाहट करते खड़े थे। तिम, ओबय्य, हेग्गडे का तिम्म और अन्य कुछ लोग बकरियों को देख आपस में कुछ बोल रहे थे। उनकी बातों के परिणामस्वरूप मार्क काले बकरे के पास गया।

उसे दोनों हाथों से उठाकर वजन देखकर, वहां खड़े हुए लोगों से जैसे कुछ कहा, "परवाह नहीं।" तुरंत 'हः हः हः, हो, हो, हो' अनेक कंठों से निकला। उनके इस हंसी के नाद से वकरियां भड़ककर घवरा गई। इतने में एक परिचित ध्वनि सुनाई पड़ी तो हूवय्य ने उस ओर दृष्टि घुमाकर देखा। अग्रहार के वेंकप्पय्यजी चंद्रय्य गौड़जी के साथ वातें करते खड़े थे। उनके बगल में मुत्तल्ली का चिन्नय्य रामय्य के साथ वातें कर रहा है। हूवय्य के हृदय में एकाएक भाव-संचार-सा हुआ। उस दिन के भूत के आशीर्वाद में संपूर्ण विश्वास नहीं होने पर भी, एक विचार से उत्साह था उसमें। चिन्नय्य को देखते ही वह दुगुना हो गया! वड़े भाई के साथ छोटी वहन भी आई होगी। कानूर के भूत से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए हर साल श्यामय्य या चिन्नय्य गौरम्माजी, सीता और लक्ष्मी को साथ ले आया करता था। इस तरह आये हुए रिश्तेदारों में स्त्रियां एक-दो हफ्ते कानूर के घर में ठहर जातीं। इसका स्मरण करके हूवय्य को हर्प हुआ।

परंतु उनको लाने वाली गाड़ी कहां? मैं गीता पढ़ने जब वैठा था, तव आई होगी, उसे गाड़ी खाने में खड़ा किया होगा। इस प्रकार सोचकर वहां रहने के लिए मन न लगने से दुमंजिले पर से उतरकर वहां गया जहां चिन्नय्य तथा रामय्य खड़े वातें कर रहे थे!

ज्योतिपी जी "जैनेडे" दिखाने के लिए चंद्रय्य गौड़जी के साथ वातें करते गये। पुट्टण्ण समस्त वस्तुएं तश्तरी में सजाकर खड़ा ही था। वह भी उनके पीछे गया। वाकी तीनों दुमंजिले पर चढ़ गये।

थोड़ी देर वातें करके हूवय्य ने कहा, "तुम्हारी गाड़ी कहां है? दिखाई नहीं पड़ती?"

रामय्य ने कहा, "वह अकेला आया है, गाड़ी क्यों?"

"क्यों, सासजी नहीं आईं?" पूछकर कुछ शर्मिंदा हुआ।

"हमारी सीता की तवियत अच्छी नहीं है। इसलिए वे कोई नहीं आईं" कहते हुए चिन्नय्य ने जेव से एक सिगरेट का पैकेट निकाला।

हूवय्य ने कुछ हताश वाणी से पूछा, "क्या हुआ है सीता को?" चिन्नय्य को सिगरेट सुलगाते देखते, प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा करते हूवय्य खड़ा रहा।

चिन्नय्य धुआं उड़ाते हुए वोला:

"क्या कहूं? कौन-सी वीमारी है, मालूम ही नहीं हो रहा है। तुम सवके चले आने के वाद वह सुन्न हो गई है। कहते हैं कि सपने में वह चिल्लायी—'वाघ! वाघ!' दूसरे दिन वुखार चढ़ गया। थोड़ा विकार-सा हो गया है। उसका जातक देख-कर वेंकप्पय्य ने कहा कि किसी ग्रह की पीड़ा है। न जाने उसकी पीड़ा दूर करने के लिए, न जाने क्या क्या यंत्र-मंत्र किया। कोई लाभ नहीं। मैं यहां आने के लिए रवाना हुआ तव वह भी यहां आने के लिए हठ करके वैठी, "मैं भी जाती हूं!" मां

ने डपटकर कहा, "मत जाओ ।"

"गाड़ी में ला सकते थे," रामय्य ने कहा । मगर हूवय्य कुछ नहीं बोला । वेंकप्पय्यजी ने उसका जातक देखा, सुनते ही, सीतामने के सिगप्प गौड़जी का अपने पुत्र कृष्णप्प का जातक लेकर जाना याद आया । तब उसके दिल में एक निराकार भय उत्पन्न हो गया था ।

"इस बीच में एक और विवाह निश्चय हुआ-सा दीखता है!" चिन्नय्य ने कहा ।

हूवय्य ने अव्यक्त उद्वेग से पूछा, "किसका ?"

चिन्नय्य ने तनिक अतृप्ति से मानो कहा, "हमारी बात कौन सुनता है ? उनका हठ ही हठ; उनका रास्ता ही सही । मुझमें और पिताजी के बीच में उसी के बारे में एक-दो-बार कहा-सुनी भी हो गई । उसकी शादी इतनी जल्दी क्यों? और एक-दो वर्ष छोड़ देने से क्या होता ? वह सीतेमने सिगप्प मामा तो पढ़ते हैं शास्त्र डालते हैं फांसी, अंदर ही अंदर काटते हैं ! कहते हैं कि सीता की मंगनी कृष्णप्प के लिए की । इन्होंने कहा, 'जातक मिल जायं तो हो जाय ।' उस बदमाश वेंकप्पय्य ने जातक देखकर, विवाह निश्चय करके भी दिया है, कहते हैं ।..."

"उनसे जातक मिलाकर जिन्होंने शादी की है उनमें कौन सुखी हो गये हैं ?" रामय्य को अपना उद्वेग छिपाना मुश्किल हुआ ।

चिन्नय्य ने फिर "वह तो एक बृहस्पति बनकर बैठ गया है पिताजी, कानूरु मामा, सिगप्प मामा के लिए !" कहकर सिगरेट की राख खिड़की के बाहर गिरा दी ।

"क्या विवाह तय हो गया ?" पूछने वाले हूवय्य की ध्वनि में दुख समाया हुआ था ।

चिन्नय्य ने कहा, "हां !इस पूर्णिमा के बाद!यह भी कहते थे कि लग्न-पत्रिका छपाने के लिए तीर्थहल्ली जाना है । इतनी जल्दी क्या पड़ी थी ?दो वर्ष ठहर जाते तो कोई दूसरा उससे अच्छा वर न मिलता ?" कहकर हूवय्य की ओर अर्थगभित दृष्टि से देखा । उसकी आंखें भी भीगी हुई-सी थीं ।

इधर ज्योतिषी जी भूत को फल-फूल चढ़वाकर, अपने को मिलने वाली दान-दक्षिणा आदि एक शुभ्र वस्त्र में बांधकर अग्रहार लौट गये । मुत्तल्ली और सीता-मने के बीच होने वाली सगाई का समाचार सुनकर चंद्रय्य गौड़जी मन में ही कुढ़े । उनकी इच्छा थी सीता को अपने पुत्र रामय्य के लिए लाने की । वे सीता की मंगनी करने वाले ही थे, यह समाचार मिल गया । मगर घर में बड़ा हूवय्य था; उससे छोटे रामय्य की शादी कर दें तो लोगों की निंदा का पात्र बनना पड़ेगा, इस विचार से उन्होंने उसका हिस्सा देकर जल्द-जल्द हूवय्य को घर से बाहर भेजकर रामय्य की शादी करना चाहा था । मगर सिगप्प गौड़जी के कारण उसकी आशा भंग हो गई और वे नाराज हुए । उन्होंने विचार किया कि अपने हाथ में जो तंत्र हैं उनके

प्रयोग करके इस विवाह को तोड़ दिया जाय।…पर कैसे हो सकेगी?…राश्याव्य गौड़जी भी इस बारे में मुझसे पूछे बगैर कन्या देना मान गये। अतः उन पर भी गौड़जी नाराज हुए। उनको सिगप्प गौड़जी का चोरी से लकड़ी काटना याद आया तो मन में कह लिया, "अच्छा, मैं भी शादी कराऊंगा उसकी !"

३०

वकरे के लिए

ज्योतिषी जी की पूजा के बाद रक्त वलि शुरू हुई। वे गौड़जी की आज्ञा के अनुसार छोटे-बड़े भूतों को दिये जाने वाले वलि-पशुओं को (यज्ञपशुओं को) लेकर चले। बकरियों का मिमियाना, बंधी टांगों की मुर्गियों की तरह-तरह की चिल्लाहट आदि से गगनमंडल भर गया। जिन्होंने जो-जो मनौती थी उनकी-उनको उठाकर अपने भूत के वन की ओर गये। मनौती के वलि पशुओं के खून का दृश्य देखने लोग छोटे-छोटे, वड़े-वड़े समूह बनाकर गये। इनमें भी 'चौंडी' के वन जाने वाले ही ज्यादा संख्या में थे। क्योंकि 'चौंडी' को वलि दिये जाने वाले पशु को तलवार से नहीं काटते थे। जानवर की टांगों को मजबूती से बांधकर, उसका पेट ऊपर करके, उसकी छाती पर मूसल से कूट-कूटकर मार डालते थे। इस तरह मारने से ही, यह भावना थी कि 'चौंडी' तृप्त होगी।

भूत के वन के प्रति कई लोगों का पक्षपात था। क्यों कि भूत को वलि चढ़ाने वाला हलेपैक का तिम्म कितने ही बड़े वकरे को एक ही वार में खूब रसिकता से काटने की निपुणता तथा शक्ति दिखाता था। जो अवलों का आकर्षक साहस था।

कुंकुम, लाल अड़हुल (जवा कुसुम) पुष्प आदि का रुद्र समर्पण के बाद वलि चढ़ाना शुरू हुआ। काला वकरा तो अपने गले में बंधे अड़हुल के फूलों को ही गर्दन झुकाकर अत्यंत श्रम से खा रहा था। लेकिन मुर्गियों की वलि शुरू होते ही वकरा सहसा एकाएक गंभीर हो गया। शायद उसको अपनी दुर्गति का ज्ञान हो गया हो!

जो पास में थे उन्होंने व्याख्या की "देखो, भूत की महिमा! उसको भी मालूम हो गया! कितनी भक्ति से खड़ा है!"

तिम्म ने एक-एक करके सभी मुर्गियों की वलि चढ़ाने के वाद उनको अलग-अलग करके, पेड़ के नीचे रहे भूत के पत्थर को रक्त लगाने लगा। सिर के कटने पर मुर्गियां पंख फड़फड़ाते हुए इधर-उधर उड़कर गिरने लगीं। पेड़ों के बीच में से होकर आने वाली धूप के प्रकाश में फैला हुआ रक्त रक्तारुण हो गया था। रुंड विहीन एक मुर्गी, अस्पृश्य होने से दूर खड़े वैरे के पास छटपटाती आने लगी और

उसका रक्त वैरे की मैली धोती पर छिड़क गई तो उसने "कम्वख्त ! सिर गया, मगर घमंड नहीं गया!" कहकर उसे लाठी से पीटकर उसको वंद कर दिया। जव वह उसको मार रहा था तव वे 'हि हि हि हि ! हो हो हो हो !' करके हंस रहे थे। काला वकरा चौंक पड़ा, "दया वाले दया करो, वचाओ !' मानो प्रार्थना दीनवाणी से करके गले की रस्सी को तोड़कर छुटकारा पाना चाहा। उसको निग ने पकड़ा था। उसने गुस्से से "यह पुण्य तुझे कहां मिले ? चुप खड़ा रह !" कहकर उसे एक घूंसा जड़ दिया।

मुर्गियों की वलि समाप्त हो जाने पर पुकारा—"हां ! वकरे-वकरी आवें !" अपनी सेहत अच्छी न होने पर भी, अपने पकड़े वकरे के स्वास्थ्य पर अभिमान करने वाला निग उत्साह से आगे वढ़ा। मगर वकरा टस से मस नहीं हुआ। वह वास्तव में शक्ति में, वजन में निग से कम नहीं था। निग ने उसे खींचा तो वकरे ने भी खींचा। निग को ही एक कदम आगे सरकना पड़ा।" हः हः हः हः ! हिः हिः हिः हिः हो, हो, हो, हो,' करके देखने वाले फिर हंसे। इतने में दूसरा एक आदमी अपनी वकरी तिम्म के पास वलि पीठ की ओर ले गया। इसलिए तिम्म चुप हो गया। वह वकरी भी थरथर कांपती थी ! जोर से मिमियाती थी !उसीको पकड़ने वाले ने उसके मुंह के आगे पत्तों को गुच्छा पकड़ा। वेचारी ! उस जानवर ने पहले कई वार अपने पालनहार के दिये पत्ते खाये थे ! इसलिए आज भी पालनहार की करुणा और मातृभाव का द्योतक मानकर, उसको खाने से अपने को क्षमा कर देंगे सोचकर, उसने पत्ते को मुंह लगाया। तुरंत तिम्म की तलवार उसकी गर्दन पर पड़ी, झट उसका मुंड जमीन पर गिर पड़ा। देह छटपटाई, खून निकलकर तिम्म के शरीर पर गिरा जिससे उसके शरीर के भाग लाल हो गये, 'जल्दी ला रे !" पुकारने से एक आदमी पतीली लाया, उसे धर दिया जिससे खून जमीन पर गिरके खराव न हो जाय ! वेकार न जाय !

यह सव देखते खड़ा रहा निग का काला वकरा चिल्ला-मिमिया भी न सका, उसका सारा शरीर थर-थर कांपने लगा। "अरे, देखो वहां ! कैसे कांप रहा है !" एक ने प्रशंसा की। दूसरे ने कहा, "डर उसे भी है न ?"

"निगय्य ! खींचकर ला रे !" कहके हलेपैक के तिम्म ने पुकारकर कहा।

निग ने वकरे को खींचा। कंपित खड़े हुए वकरे ने भी अपनी प्राणरक्षा के लिए अंतिम धैर्य-साहस-शक्ति से वंधी डोरी को जोर से खींचा तो निग ठुकराकर गिर पड़ा।

"पकड़ो। पकड़ो !" सव चिल्लाकर झपट ही रहे थे कि वकरा गले की डोरी के साथ जंगल की ओर भागने लगा।

ताकत वालों ने पीछा किया, कमजोर चिल्लाये। कुछ ने "क्रू क्रू" करके कुत्तों को वुलाकर उस पर हमला करने के लिए उकसाया। आखिर मनुष्य कह-

लाने वालों ने, पशु कहलाने वाले कुत्तों ने मिलकर सारे जंगल को कोलाहल से प्रतिध्वनित करते हुए बकरे का शिकार किया। मगर बकरा भी लगातार पेड़ों के बीच में चढ़ाव पर चढ़-उतरकर, कूद-कूदकर, फांद-फांदकर, मनुष्यों से, कुत्तों से खुद को बचाते मृत्युवेग से भागा। सब जगह शोरगुल फैल गया। कई लोग उस रण रंगभूमि की ओर झपटे।

सच्ची घटना के जानने वालों ने अपनी मनमानी खबरें फैलाईं। अकेले रसोई घर से ही विविध वार्ताएं प्रसारित होकर भय फैल गया। नागम्माजी के पास पुट्टम्म दौड़कर आई और कहा, "बड़ी मां, बाघ आकर हलेपैक के तिम्म को पकड़कर ले गया, कहते हैं।" इतना कहकर वह लगी कांपने। वहां रोते हुए आया निग के बेटे पुट्ट ने कहा, "नहीं! मेरे पिता को पकड़कर ले गया, कहते हैं।" फिर वह रोने लगा। ये बैठक की तरफ आ रहे थे कि वासु जोर से भागते आया और सुब्बम्म से टक्कर खाकर बोला, "तिम्म पर भूत सवार हो गया है जिससे वह पागल बन गया है! कहते हैं। बकरी के बदले बकरे को पकड़ने वाले को ही काट दिया!" फिर वह बिना रुके दुमंजिले पर दौड़ गया। लाठी पकड़े दौड़ने वाले सेरेगारजी, जोर से चिल्लाकर कह रहे थे, "भूतराय ही राक्षस बनकर आके बकरे को मुंह में दबाकर उड़ गया कहते हैं। देखने वालो, सभी आ जाओ।"

वासु से भयंकर वार्ता सुनकर हूवय्य, रामय्य, चिन्नय्य, दुमंजिले पर से उतरे और जिस ओर से हल्ला-गुल्ला सुनाई दे रहा था उस ओर पैदल ही भागे। दसों से दसों प्रकार की अफवाह सुनने वाले चंद्रय्य गौड़जी बेतहाशा, "हूवय्य! रामू! आओ रे!" पुकारते हुए भूत वन की ओर जितना हो सके उतना शीघ्र चल पड़े। उस दिन के त्यौहार के लिए जमा हुए कौए "कां! कां! कां! कां!" करते शोरगुल में अपना शोरगुल मिलाते रहे।

अंत में "निग को खींचकर-गिराकर बकरा भाग गया।" गड़बड़ी में कही गई यह बात "निग को बाघ खींचकर ले भाग गया।" में बदलकर चित्र-विचित्र, विकट-विकृत रूप धारण कर शोरगुल का कारण बन गई।

कुत्तों से, मनुष्यों से किरातीय ढंग से पीछा किया गया बकरा घबराकर, भाग-कर अंत में हूवय्य आदि के पास आया ही था, कि लोगों के डर के मारे तालाब में कूद पड़ा, जो घर से थोड़ी दूर पर था। सब लोग झुंड-झुंड में तालाब के इर्द-गिर्द इकट्ठे होकर, चीखते, चिल्लाते, पत्थर, लाठी फेंकते आसन्न विजयी होकर खड़े थे या नाचते थे। बकरे का सिर केवल तालाब के बीच तैर रहा था। खड़े रहने वालों के उकसाने से एक-दो कुत्ते भी पानी में कूद पड़े और लगे तैरने। बकरा घबराकर फिर किनारे पर चढ़ने का प्रयास करने लगा। पर, किनारे पर खड़े हुए लोगों को देखकर फिर पानी की ओर लौटा। इतने में कुत्ते भी उसके पास जाकर झपटे। बकरा और कुत्ते भी दो-दो, तीन-तीन बार डुबकी लगाकर उठे। किनारे पर खड़े

रहने वाले ताली वजाते जयध्वनि करते रहे।

हूवय्य ने तनिक कठोरता से कहा, "ऐ पुट्टण्ण, तुम तैरकर उसे पकड़कर लाओ।"

साहस प्रेमी पुट्टण्ण इतने सारे लोगों के सामने प्राप्त मौका क्या खो लेगा? कुर्ता उतारकर, धोती ऊपर उठाकर कमर में कसकर बांध ली, सारे तालाव को अल्लोल-कल्लोल करते धड़ाम् से कूद पड़ा। देखते-देखते लड़ाकू कुत्तों से वकरे को छुड़ाकर, वकरे के गले की रस्सी को मुंह में दवाके पकड़कर, वकरे को विना घवराये अपने हाथ;पांव मारते किनारे पर पहुंच गया खूव थका हुआ वह जानवर भेड़ों के वच्चों की तरह प्रतिवाद किये विना पुट्टण्ण के साथ किनारे पर चढ़ा। तिम्म, ओवय्य, निंग, तीनों एक के वाद एक झपटकर गले की रस्सी को हाथ लगाया।

"दूर हट जाओ!" हूवय्य की अधिकारवाणी सुन सभी पीछे हट गये। हूवय्य वकरे के गले की रस्सी पकड़कर घर की ओर चला। वकरा भेड़ के वच्चे की तरह उसके पीछे-पीछे चलता गया।

"दीजिये स्वामी, देर हो गई! भूत को समर्पण करना है।" कहकर तिम्म ने मांगा। हूवय्य ने खड़े हो, घूमकर आने वाले समूह को देखा कठोर दृष्टि से। उसकी दृष्टि की भीषणता देखकर किसी को वोलने की हिम्मत नहीं हुई।

उस दिन अंत में, वकरा वच गया। चंद्रय्य गौड़जी ने वहस किया कि भूत के लिए मनौती रखी गई वस्तु को नहीं रखना चाहिये। कई लोगों ने कई तरह से कहा। अनिष्ट होगा, अमंगल होगा। हूवय्य ने "मूक प्राणी के वलिदान से बढ़कर है करुणा जो सर्वश्रेष्ठ पूजा है।" कहकर किसी के उपदेश की ओर गौर नहीं किया।

शाम को सुव्वम्म सेरेगारजी से गुप्त रूप से कह रही थीं कि उसने जो रकम ओवय्य को दी थी उसे वापस देने के लिए उससे कहें। चंद्रय्य गौड़जी ने इसे देख लिया था। उन्होंने सेरेगारजी को वुलाकर पूछा, "वह क्या है?" सेरेगारजी ने कहा, "कुछ नहीं। केले के पत्ते चाहिये!' इतना कहने के वाद वे तालाव के पास वकरे और मुर्गियों की वलि के कार्य में लगे ओवय्य के पास गये। गौड़जी को विश्वास नहीं हुआ, इसलिए वे चुपचाप सेरेगारजी के पीछे-पीछे हो गये।

वहां ताड़ी के दूकानदार और ओवय्य के वीच में झगड़ा हो रहा था।

"तुम अपने लोट (नोट) ले लो। वे नहीं चलते हैं!'" कहते हुए ताड़ी के दूकानदार ने दो कागज के टुकड़े ओवय्य की तरफ वढ़ाये।

ओवय्य "वह सव मैं नहीं जानता। मैंने जव दिया था तव सही थे। वैसे खोटे लोट होते तो तभी वापस करते! इतने दिन रखकर अव दें तो कौन लेगा?" कह-कर लाल मांस की वकरी की टांग आग में सेंक रहा था।

"मैंने तो तुम्हारे लोट वदले ही नहीं हैं!"

"वदलाये हैं या नहीं किसे मालूम?"

"तो तुम सचमुच नहीं लोगे ?"

"मैं क्या बेवकूफ हूं लेने के लिये ?"

"तो मैं गौड़जी के पास जाता हूं। वे ही इसका विचार करें।

"जाओ, मैं मना कहां करता हूं ?"

ताड़ी के दूकानदार ने यकायक कह दिया, "एक पिता से पैदा हुए होते तो इस तरह झूठ नहीं बोलते।"

"क्या कहा, छिनाल के बच्चे।" कहकर ओबय्य ने हाथ में धरे बकरी की जांघ के कच्चे-से मांस ताड़ी के दूकानदार के मुंह पर जोर से मार दिया।

वहां इकट्ठे हुए सभी दोनों के बीच में होती हुई हाथा-पाई को रोक रहे थे। इतने में वहां सेरेगारजी और चंद्रय्य गौड़जी आये। विचार भी हुआ। तब ताड़ी के दूकानदार ने "ओबय्य को मुझे तिरपन रुपये, आठ आने तीन पैसे देने हैं। उस रकम के मद्दे उसने मुझे सौ रुपये का नोट दिया है। उस नोट को भजाने के लिए मैं कोप्प ग्राम को गया तो चांप (शॉप) वाले ने कहा कि यह नोट नहीं चलता है। अब इसको वापस देने के लिए आया तो यह नहीं ले रहा है।" कहकर, सारी घटना सुनाकर नोट के टुकड़ों को गौड़जी को सौंप दिया।

उनको देखते ही गौड़जी ने "यह नोट कहां मिला रे तुमको ?" कहकर ओबय्य की ओर देखा।

"एक दिन मैं रात को रास्ते में आ रहा था तो भूतराय मुझे दिखाई पड़ा। मैं बेहोश हो गया। होश आने पर जब मैंने जेब में हाथ डाला तो ये नोट के दो टुकड़े मिले।" ओबय्य ने अप्रतिभ हुए बिना कहा।

चंद्रय्य गौड़जी सीधे घर गये; अपने कोट की जेब में हाथ डाला। वहां नोट के टुकड़े नहीं थे। एक हैंडबुक को खोलकर देखते हैं; उसी नोट के नंबर वहां लिखे हुए हैं।

उन्होंने पत्नी को बुलाकर पूछा। सुब्बम्म ने रोते हुए कहा, "मैं कुछ नहीं जानती।" बेटी पुट्टम्म से पूछा, वासु से पूछा। सबने कह दिया "हम नहीं जानते।" गौड़जी सोचने लगे—तो अपने सोने के कमरे में बाहर वाले कौन आएगा ? कोट की जेब में रखे नोटों का पता ओबय्य को कैसे मालूम हो ? मालूम होने पर भी, कैसे चोरी करेगा ? गौड़जी का शक नागम्माजी की ओर मुड़ा। पर उनसे कैसे पूछा जाय ? इसके अलावा हूवय्य भी तो घर में है।

भूत के आशीर्वाद के दिन रिश्तेदारों के आगे बखेड़ा खड़ा करना उचित न समझकर गौड़जी चुप हो गये। ताड़ी के दूकानदार से कहा—"एक दिन और विचार करूंगा।" इस तरह कहके उसका समाधान करके भेज दिया।

३१
सीता के रोग का रहस्य

संध्या हो रही है। रक्तवर्ण की लाल किरन का सूर्यबिंब पश्चिमी पर्वत के जंगल के पीछे प्रज्वलित होते धीरे-धीरे डूब रहा है। देखते-देखते पाव हिस्सा ओझल हो गया। फिर आधा, फिर पूर्ण ओझल हुआ। संध्या की कांति ने जंगल-पहाड़ों पर लाल रंग छिड़क दिया था।

"यह कौन-सा प्रदेश है ? यह कौन-सा पर्वत है ? यह कौन-सा जंगल है ? मैं कहां हूं ? कहां के लिए निकली हूं ? क्यों ? यह क्या मेरे साथ कोई नहीं है न ?"

सीता की समझ में कुछ भी नहीं आया। भय की दृष्टि से देखती है : अब क्या अंधेरा भी चिकना, चिकना होकर धीरे-धीरे घेरे आ रहा है ! हृदय स्पंदित होने लगा। सीता ने दूर दौड़कर टकटकी लगाकर देखा। कोई दिखाई नहीं पड़ा ! कुछ भी आहट नहीं। भय की अधिकता के कारण उसांस भरने लगी। आंसू भी छलके। कौन-सा गांव है कि क्या ? कौन-सा रास्ता है ? कहां जाना है ? कुछ भी उसकी समझ में नहीं आया। हाय ! मैं यहां क्यों आई ? मुझे यहां कौन ले आया ? पिताजी कहां हैं ? लक्ष्मी भी दिखाई नहीं देती ! यह क्या ? यकायक असहाय, अनाथ की तरह बन गई हूं न ?

"अण्णय्य !" कहकर उसने पुकारा। (अण्णय्य=बड़ा भाई साहब)।

किसी ने जवाब नहीं दिया। सीता ने रोते-रोते माता-पिता को बुलाया। जब उससे भी जवाब न मिला तब "हाय ! मुझे क्यों अनाथ बना दिया ? क्या गलती की है मैंने ? मुझे क्षमा करो ! जैसे तुम कहोगे वैसे ही करूंगी।" अब फिर गलती नहीं करूंगी कहकर रोने लगी। प्रत्युत्तर में और भी अंधेरा बढ़ा! सीता ने कान दिया: सहसा भयानक गर्जन, उसके साथ आर्तनाद सुनाई पड़े ! उस गर्जन से जमीन कंपित-सी हुई ! सीता कंगाल होकर चारों ओर देखने लगी। वह किसी को पुकार भी न सकी। उतना भयंकर गर्जन ! उतना करुणापूर्ण था वह आर्तनाद !

धीरे-धीरे गर्जन, आर्तनाद समीप हुए। सीता का कलेजा जैसे मुंह को आया, देखती है : भीषण भीमाकार का एक बड़ा-सा बाघ एक आदमी का पीछा करते आ रहा है। वह बाघ गरज रहा है। बेसहारा होकर आदमी चिल्लाते भाग रहा

है। सीता पत्थर की तरह खड़े होकर, अपलक हो देख रही है : आह ! भाग जाने वाला सीतिमने सिगप्प गौड़जी का पुत्र कृष्णप्प तो नहीं है ! हाय ! हो गया ! अब बाघ पकड़ लेगा ! नहीं ! कृष्णप्प एक ओर चट से कूदकर, बच के भाग रहा है ! हाय, हाय, सीता की ओर ही आ रहा है बाघ ! फिर देखा सीता ने ! हाय ! यह क्या ? भागने वाला कृष्णप्प नहीं है। फिर कौन ? चंद्रय्य गौड़जी का पुत्र रामय्य ! सीता यकायक चिल्ला उठी—"रामय्य मामा !"

उसकी पुकार सुनकर मानो रामय्य सीधे उसी की ओर झपटा। बड़ा बाघ रंग-रंगीन गाज की तरह झपटकर आ रहा है ! सीता ने भागना चाहा। पर भाग न सकी ! फिर देखा : बाघ ने कूदकर रामय्य पर हमला किया !

पर यह क्या ? रामय्य कहां गायब हुआ ? कोई नहीं है ! बाघ तो केवल सीता की तरफ मुंह खोले, दांत दिखाते हुए, गरजते आ रहा है ! अपनी इच्छा-शक्ति, सीता ने अपना साहस, सब उपयोग करके फिर भागने का प्रयत्न किया। परंतु पैर नहीं उठते थे ! बाघ आया ! आया ! आया ! "हाय, मांजी, बाघ !" बाघ !" चिल्लाई सीता ! यह क्या ! बाघ गायब, उसके बदले हूवय्य हंसते—"मत डरो सीता ! मैं हूं ! क्यों चिल्लाती हो ?" कहते आ रहा है !

सीता ने झट जागकर आंखें खोलीं। बिस्तर के पास बैठी गौरम्मजी बेटी को धीरज बंधाती हुई—"सीता ! सीता ! बेटी, डर गई क्या री ! क्यों चिल्लाई !" कह रही थीं। सीता की आंखों में घबराहट थी। बदन पर पसीना छूट रहा था। सांस जोर से चल रही थी। बुखार भी चढ़ा-सा था !

यदि सीता के सपने को उसकी आशा-आकांक्षाओं को और भय को सूचित करने वाला एक रूपकालंकार मान लें तो उसके चित्त में गुप्त रूप से होते रहे मनोव्यापारों का कुछ हद तक अनुमान कर सकते हैं। एक बात तो अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है—उसकी कृष्णप्प के प्रति भावना, हूवय्य के प्रति उसकी प्रीति !

स्वप्न और उन्माद में उतना अधिक अंतर नहीं है। दोनों का आधार सामान्य है। जीवन में महा दरिद्र रहा हुआ स्वप्न में अमीर बन सुख पाता है; जागने पर वह समझता है कि वह स्वप्न था, फिर दरिद्र की तरह बरतता है। लेकिन उस तरह वह न बरते और अमीर की भांति बरते तो उसे पागलखाने में दाखिल कराते हैं। ऐसा आदमी समझ सकता है कि मैं वास्तव में अमीर हूं, अस्पताल ही मेरा निजी घर है, डाक्टर, नर्सें, सभी मेरे परिवार वाले हैं। उनका सारा काम मेरी परिचर्या है। या सबने मिलकर मेरी संपत्ति का अपहरण किया है, धोखा देने के लिए मुझ से यह खेल रचा है। ऐसी व्याख्या करके भ्रांति से बरत सकता है। कुल मिलाकर, शाश्वत असामंजस्य ही पागलपन का कारण होता है। पागलपन में भी कई प्रकार हैं। अपूर्ण आशा, भय भी समाज की मर्यादा

के लिए व्यक्ति के मन में दबी रहकर अगर वे उल्वणावस्था पर पहुंचे तो पागल-पन में बदल जाते हैं। उनके वेगों का हिसाब नहीं कर सकते। सामान्य सिर दर्द से लेकर, मूर्छा रोग, बदन पर भूत आना, भूत का संचार होना, निरंतर भ्रांति, इत्यादि होकर आत्महत्या तक पहुंच सकते हैं।

प्रेम भंग कई बार अलग-अलग उन्मादों में बदल जाता है। या रोगों में अंत पा सकता है। एक तरुण पर नैसर्गिक प्रेम करने वाली लड़की को उसके माता-पिता धन के लिए या कुल के लिए, या समाज की मर्यादा के लिए या वचन देने से, किसी दूसरे को देकर विवाह करें तो उसमें उत्पन्न जुगुप्सा, दुःख, निराशा, नाना रूप-वेश धरकर अपनी इच्छा पूर्ण कर ले सकती है। उसका सच्चा प्रेम-प्रेमी पर रहता है, न कि उस पर जिसके साथ उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किया जाता है। ऐसे प्रसंगों में लड़की का सुप्तचित्त विवाहित तरुण के संग से छुटकारा पाने का विविध मार्ग ढूंढ़ सकता है। वह अनैच्छिक होकर चलता है। लड़की को वह मालूम नहीं रहता। पति के सान्निध्य की सूचना मात्र से लड़की भूत का शिकार बनी हुई-सी होकर भयंकर वर्ताव कर सकती है। या उन्माद शाश्वत भी हो सकता है। या किसी भयंकर रोग का शिकार भी वह हो सकती है। आत्महत्या कर लेना भी असंभवनीय नहीं होता।

अगर लड़की सूक्ष्म तबियत वाली न हो तो, कानूरु की सुब्बम्म की तरह अपना प्रेमभंग, अपनी निराशा को पद्धति एवं रूढ़ियों के पत्थर से रगड़कर ठंड बनाकर, भूलकर कुछ ही दिनों में नये वातावरण के योग्य बरतने लगेगी और जीवन को कुछ हद तक सुखी बनाकर चलेगी। अगर लड़की भावजीवी हो, सूक्ष्म हृदय वाली हो तो कोई पद्धति, कोई रुढ़ि, कोई अभ्यास, कोई समाज नियम, कोई विवाह के शास्त्रोक्त नियम व कर्म उसके प्रथम प्रणय की विन्युमुद्रा को नहीं मिटा सकते। उसके बदले भावी बाधा से प्रथम प्रेम की नोक और भी तेज होती है। हूवय्य पीठ की दर्द के कारण मुत्तल्ली में कुछ दिन रहकर सीता से उतनी बातें न करता तो वह शायद स्थूल हृदय की बाला ही रह सकती, अपने माता-पिता जिसको देकर उसका विवाह करते उसी को पति मानकर आराम से जीवन बिताती, लगता है। परंतु विधि ने ऐसा नहीं होने दिया। हूवय्य के लिए वह सूक्ष्म हृदय वाली भावजीवी कुमारी बन गई थी।

इस तरह उसको बनना किसी को विदित नहीं हुआ था। यदि विदित होता तो कहानी ही दूसरी हो जाती। सीता ने तो इसे अत्यंत गुप्त रखा था। श्यामय्य या गौरम्मा इस स्वयंवर का स्वारस्य इशारे से जान सकने वाले नवीन आदमी नहीं बने थे। वे और उनकी तरह के इतर लोग देश के बुजुर्ग, गुरुजन, समाज के नेता जो निर्णय करते उसके अनुसार विवाह करके गृहस्थी चलाते रहने वाले थे। उन सबका सिद्धांत यह था—विवाह के बाद प्रेम, प्रेम के बाद विवाह नहीं।

इसलिए श्यामय्य गौड़जी ने हूवय्य को अपनी बेटी सीता को देने का जो वचन दिया था, उसमें अज्ञान था, न कि कोई अन्याय।

स्त्री सुलभ लज्जा से सीता ने हूवय्य के प्रति अपना अनुराग जैसे छिपाकर रखा था वैसे ही पुरुष सुलभ संकोच के कारण ही हूवय्य ने भी सीता के प्रति अपने प्रेम को अपने हृदय गह्वर में कैद कर रखा था। अपनी धीरता, अपने गौरव-गांभीर्य को कलंक न लगने देने के विचार से वह अपने अंतर की चिनगारी को बाहर अव्यक्त रख, प्रकृति को धोखा देने के साहस में आत्मवंचना भी कर ले रहा था। लेकिन प्रकृति उनसे बदला लिये बिना नहीं रहेगी जिन्होंने उसे धोखा दिया है। मगर प्रकृति के प्रति शोध में लगी आत्मा को प्रकृति पर विजय प्राप्त करके अपना उद्धार कर लेना चाहिये, नहीं तो आदर्श से गिरकर, पतित हो बरबाद होना चाहिये। या करोड़ों लोग जिस मार्ग से जाते हैं उस पर चलना चाहिये या उस मार्ग को धरना चाहिये।

देश की रूढ़ि के अनुसार विवाह करने वाले, विवाह करने वाले लड़की की इच्छा नहीं पूछते, सुनते भी नहीं पुत्र-पुत्रियों के योग-क्षेम के कातर माता-पिता, वधु उनके कल्याण में भंग लाने के लिए विवाह का क्या निश्चय करते हैं ? इतना ही नहीं, विवाह रचाने वाले अनुभवी गुरुजनों की अपेक्षा विवाह कर लेने वाले छोटों को ज्यादा मालूम रहता है ?

लेकिन प्रेम पांडित्य नहीं है, बुद्धिमानी नहीं है। प्रेम का भावावेश ही निराला होता है ! होशियारी या बुद्धिमानी के हिसाब की रीति ही अलग होती है। शायद अत्यंत आखिर में बुद्धिमानी को प्रेम की दासी बनकर, चरण सेविका बनकर सीखना पड़ता है, ऐसा दीखता है।

जिस दिन विवाह का निश्चय हुआ उसी दिन से सीता ने बिस्तर पकड़ा। प्रतिदिन बुखार चढ़ता, उतरता रहता। प्रातः काल के गुलाब के पौधे के हरे पत्तों के बीच अधखिली प्रसन्न कली के समान रही हुई ललना अपने पहने फूल को धूल में फेंकती है, उस धूल में फेंके गये पुष्प की तरह सीता भी मुरझा गई। कितनी ही बार, न जाने क्या-क्या भयंकर सपने देख चिल्लाती थी। फिर जब जागी रहती तब भ्रांति से डर के मारे कांपती थी। अंत-अंत में वह दूसरों को पहचान भी नहीं सकती थी। सीतेमने सिगप्प गौड़जी तो उसकी स्मृति से बहुत चिंतित हो गये थे। वह पास में बैठ बोलते भी तो पहचान नहीं सकती थी। जब कभी तनिक तन्दुरुस्ती की हालत में होती तो शरमाती थी, तो भी संभ्रांत समय में हूवय्य मामा को बुलाती थी।

श्यामय्य गौड़जी ने उसका इलाज देहाती वैद्यों से कराया। व्यवहार के वेंकप्पय्य ज्योतिषी से निमित्त पूछकर तावीज बंधवाया, दान दिलाया, सत्यनारायण व्रत कराया, भूतादि को बलि चढ़वाई, इत्यादि कर्म-क्रियाएं करवाकर सीता

के कष्ट को दूर करने का प्रयत्न किया। पर कोई भी उपाय सफल नहीं हुआ। तो भी उस सारी समर्थ ज्योतिषी ने रोगी की बुराई को अपने ऊपर लेने की धर्म-बुद्धि से विविध दानों का स्वीकार करने के सेवाकार्य में हाथ लगाया।

एक दिन रामय्य सीता के रोग के बारे में विचार करने के लिए मुत्तल्ली गया था। तब आंसू बहाते सीता ने, अपने कमजोर कंठ से, बहुत धीमी आवाज से पूछा, "हूवय्य माना नहीं आये?"

रामय्य ने "नहीं, नहीं आया वह; न जाने क्या काम पर है।" झट बोलकर उसे समाधान करना चाहा। सीता फिर बोली नहीं। यकायक रोने लगी। बिस्तर पर सोया उसका कृशमलिन शरीर यातना की बिजली के लगने के जैसे कांपने लगा।

सीता विचित्र रोग से बिस्तर पकड़कर कराहती है, हूवय्या ने यह समाचार पाकर मुत्तल्ली जाकर नहीं देखा था। चिन्नय्य के मुंह से कृष्णप्प के साथ सीता का विवाह तय हुआ है, सुनकर, उसका मन खट्टा-सा हो गया था। अति भावजीवी उसको संसार के व्यवहार का कटु और कड़ा अनुभव नहीं था। उसमें भी उसको ज्ञात प्रणय प्रपंच मानो काव्य का किन्नर जगत् था। सीता का प्रेम केवल अपने लिए है समझे हुए उसके अभिमान पर लग्ननिश्चय की बात से आघात हुआ था। उसके विवाह का निश्चय करने वाले उसके माता-पिता थे। तो भी सीता की स्वीकृति ही, इसका कारण है, यों हूवय्य ने कुतर्क करके, उसका प्रेम झूठा है, अपने लिए अब से वह पराई है, सिद्धांत कर लिया था।

इस प्रकार के सिद्धांत से वह प्रसन्न नहीं था। उसके हृदय के उद्यान में चिन-गारी बैठी, सुलगकर धूआंधार बन गई थी। उसकी पिछली तत्त्व दृष्टि में परिवर्तन होने लगा था। लोक और जीवन भी माया है, नश्वर है, धोखा है, दुःखमय है, ऐसे भाव अंकुरित हुए थे। एक ही बात में कहना हो तो पहले जो वह समुल्लसित था अब वह हताशा से धीरे-धीरे निराशावादी बन रहा था। जीवन में जुगुप्सा कदम रखने लगी थी। मनोगृह में धूआं भर रहा था।

सीता ने अपने उदार प्रेम को धोखा दिया, इस तरह सोचने वाले हूवय्य ने तनिक निष्पक्ष हो विचार किया होता, सचमुच वह औदार्य से बरत सकता था। इसके अलावा भविष्य का गर्भ में अपना इंद्रभवन बना सकता था। लेकिन उसके हृदय में प्रेम औदार्य के नाम पर मात्सर्य को छिपाकर कृपण बन गया था।

३२
जीवन का जाल

"भूत का आशीर्वाद" समारोह के उपरांत कानरु चंद्रय्य गौड़जी ने ओवय्य का विचार किया। सबसे वह जो कहता था (भूतराय के प्रत्यक्ष होने और नोट देने की बात) वही कथा सविवर सुना दिया। भूतादि में अपार श्रद्धा रखने वाले गौड़-जी को भी उसकी बात पर विश्वास नहीं हो सका। कई तरह से पूछने पर भी ओवय्य ने सच्ची बात नहीं बताई। गौड़जी को सत्यस्थिति जाननी थी और वह उनको जरूरी भी थी क्योंकि उनके अनुमान के अनुसार नागम्माजी अपराधिनी थी। अगर ओवय्य से मालूम हो जाय कि नागम्माजी ने नोट दिया था तो शीघ्राति-शीघ्र जायदाद का बंटवारा क के माता-पुत्र को घर से निकालने का उनका मनशा था। अत: सत्यस्थिति को प्रकट कराना ही चाहिये, उन्होंने तय किया।

"सच बोलोगे कि नहीं?" गौड़जी ने कहा।

"मैंने अब तक जो कहा है, वह क्या है फिर?"

"वह सब रहने दो। तुम्हारी दगाबाजी मेरे यहां नहीं चलने की।"

"दगाबाजी करने के लिए क्या मैंने चोरी की है?"

"जो सत्य है कह देना ओवे गौड़जी। उसमें कपट-दुराव-छिपाव क्यों?" कहा सेरेगारजी ने।

"क्या कहते हैं सेरेगारजी? खुदा की कसम, अगर मेरा कहना झूठ हो तो मेरा सिर कटकर यहीं गिर जाय!" कहकर ओवय्य ने आंगन के मध्य स्थित तुलसी के पीठ को नमस्कार किया।

"तो तुम अच्छी बात से सच नहीं कहोगे?" गौड़जी ने रुद्र होकर कहा।

"अच्छी बात से भी उतना ही कहना है! बुरी बात से भी उतना ही! जो नहीं, उसे कैसे कहूं? तराग में "नहीं कहूंगा।" जैसे गौड़जी की नकल करके ओवय्य ने कहा।

कुपित होकर गौड़जी एक बेंत झट से लेकर ओवय्य की ओर कराल काल की तरह झपटे। वह चट्टान की तरह, बिना हिले-डुले खड़े हो जमीन की तरफ देख रहा था।

"सच कहोगे कि नहीं ?" गौड़जी ने गरजकर कहा तो वहां चारों ओर खड़ सभी भय से चुप रहकर परस्पर टुकुर-टुकुर देखने लगे। ओवय्य ने सिर नहीं उठाया।

"कह रहा हूं ओवे गौड़ जी, सच कहिये।" सेरेगारजी ने उपदेश दिया।

गौड़जी ओवय्य को चुप खड़े देखकर और भी बिगड़े, न आव देखा न ताव, बस तड़ातड़ बेंत से मारने लगे। ओवय्य ४-५ बार मार पड़े तक चुप रहकर, चट्टान की तरह खड़ा रहने वाला यकायक "हाय रे!" हृदयद्रावक आवाज़ करके चिल्ला उठा और गौड़जी के हाथ से बेंत छीन ली। गौड़जी ने बेंत छीन लेने की बहुत कोशिश की, पर वे नहीं छीन सके। क्रोध से हांफ़ने लगे।

पुट्टण्ण और सेरेगारजी ने ओवय्य के हाथ से बेंत को छुड़ा लिया। गौड़जी उसको लेकर फिर मारने लगे। ओवय्य दांत पीसकर चुप मुंह फुलाकर खड़ा रहा। वहां दूसरे न होते तो वह स्थान-मान की परवाह किये बिना गौड़जी का बदला लेने के लिए या प्रतिहिंसा करने के लिए शायद पसोपेश न करता। लेकिन गौड़जी को अनेक सेवकों की सहायता प्राप्त थी। इसलिए कोई साहस करने से डरकर, मार न सह सकने के कारण जो कुछ हुआ था सब बाहर प्रकट कर दिया।

"हाय रे मरा ! मत मारिये, कहता हूं !"

"फिर कहो," कहकर गौड़जी रुक गये।

"अम्मा ने दिये, मैंने नहीं चुराये।"

"कौन अम्मा रे ?"

"सुब्बम्मा !"

"आं, क्या कहा ?" नागम्मा ने दिये हों, सोचे हुए प्रश्नकर्ता गौड़जी अप्रतिभ हो गये।

"सुब्बम्मा !"

पत्नी पर क्रोध, छल, काले बादलों की तरह उनके मनोगगन में छा गये। तब तक पत्नी के प्रति रहा अस्पष्ट संशय अब स्पष्ट-साफ स्वतःसिद्ध होकर दीखा। झूठ बोलकर मुझे धोखा देने वाली और क्या नहीं कर सकेगी ? और क्या न किया !

गौड़जी की शिखा खुल गई थी। बाल तितर-बितर हो गये थे। ओढ़ा हुआ शाल झूल रहा था। आंखें लाल हो गई थीं। नाक के नथुने फूल रहे थे। भौंहें सिकुड़ी थीं। माथे पर पसीने की बूंदें उभर आई थीं। वे बेंत लेकर सीधे रसोईघर की तरफ झपटे।

बाहर आंगन में हो रहे कांड को दरवाजे की आड़ में खड़ी होकर सुनती रहीं नागम्माजी, पुट्टम्म, सुब्बम्म और एक-दो रिश्तेदारिनें ओवय्य के सच कहने पर, आगे न जाने क्या हो सोचकर, डर के मारे रसोईघर भाग गईं। नागम्मा, पुट्टम्म काम में लगीं-सी अभिनय कर रही थीं।

नागम्माजी ने करुणा से "सुब्बू, तुझे पीटकर मार डाल देंगे री! जल्दी जाकर कहीं छिप जाओ री।" कहकर सूचना दी तो झटपट भागकर सुब्बम्म अंधेरे में रखी एक बड़ी कड़ाही के पीछे छिप गई।

चंद्रय्य गौंड़जी ने रसोईघर में आकर चारों ओर देखा, सुब्बम्म नहीं दीख पड़ी, तब पुत्री से जोर से चिल्लाकर पूछा, "कहां गई री वह?"

पुट्टम्म ने बिना बोले नागम्मा जी की तरफ देखा। उसने कहा—"शायद गोठ में गई हो।"

गौंड़जी गोशाला में गये। वहां सुब्बम्म नहीं थी। लौट आये। दो-तीन कमरों में खोजा। वहां भी सुब्बम्म नहीं दीख पड़ी। फिर वे रसोई घर आये और "वह कहां है, बताओगी नहीं?" कहकर बेंत से पुट्टम्म की पीठ पर मारा। वह चिल्लाकर बोली—"बताती हूं। वहां! वहां!!" हाथ से इशारा किया।

गौंड़जी कड़ाही के पीछे अंधेरे में सुब्बम्म की आकृति देखते ही मनमाने अश्लील गालियां देते हुए उसके पास गये और तड़ातड़ मारने लगे। सुब्बम्म की नथ छूटकर नीचे गिरी। कान पर मारने से कर्णाभरण खून से तर हो गया। "गलती हुई! पांव पड़ती हूं!" कहती, रोती खड़ी रही। गौंड़जी ने उसकी चोटी पकड़कर उसे बाहर खींचकर ले गये और खूब पीटा जैसे जानवरों को पीटते हैं। उनको रोकने का धैर्य किसी को नहीं हुआ। हूवय्य अकेला आया, "चाचाजी, बस, छोड़िये! छोड़िये!" कहकर उसने हाथ आगे बढ़ा दिया। उसके हाथ पर भी मार पड़ी, चोट भी आई। उससे भी अधिक जोर से गौंड़जी के मुंह से कठोर वाक्यों का प्रहार हुआ। सुब्बम्म को मारना छोड़कर हूवय्य की निंदा करने लगे। उनकी एक व्यंग्य निंदा की बात ने एक तीर की तरह उसकी छाती में घुसकर चोट पहुंचाई। हृदय को विदीर्ण कर दिया। कुछ शब्दप्रयोग ऐसे थे कि हूवय्य सुब्बम्म का प्रणयी है, साफ सूचित करते थे। सीता के विवाह के निश्चय की बात सुनकर पहले ही दुखी बने उसने जर्जरित होकर कुपित वाणी से कहा, "यह क्या? आप क्या कहते हैं? क्या आपके सिर पर सनक सवार तो नहीं है? पागलपन तो सवार नहीं है?"

"अपनी पत्नी को मैं मारूं तो तुम कौन होते हो पूछने वाले?"

अगर मनुष्य मनुष्य की सहायता न करे तो दूसरा कौन करेगा? क्या अपनी पत्नी कहकर आप उसका खून कर देंगे तो उसे हम देखते खड़े रहें? मारने की भी एक सीमा नहीं होती है? बुद्धि जिनको होती है वे इस तरह जानवर को भी नहीं मारते। थोड़ा शांत होकर विचार कीजिये, तब मालूम होगा।"

"बस करो अपना उपदेश! मैं सब कुछ जानता हूं। तुम सबने मिलकर अंदर ही अंदर षड्यंत्र रचा हुआ है। अब इस घर में मैं और तुम एक साथ नहीं रह सकते। तुम अपना हिस्सा लेकर चले जाओ। तुम्हारे साथ रहूं तो मेरे सम्मान पर भी धब्बा लगेगा।" कहकर गौंड़जी चिल्लाये।

"अगर मुझसे आपके सम्मान पर वट्टा लगता हो तो हिस्सा करके दे देना। मैं अलग ही रहूंगा। आखिर, आप जो कुछ कहते हैं, करते हैं, वह सब देखते मैं चुप नहीं रह सकता।" कहकर हूवय्य वहां नहीं रुका।

इधर मार खाया ओवय्य कानूर में एक क्षण भी विना ठहरे, ज्योंही चंद्रय्य गौड़जी रसोईघर की तरफ झपटे त्योंही वहां से चल पड़ा। फाटक पार करके वह गया ही था कि ताड़ी के दूकानदार ने भी झटपट उसके पीछे जाकर "मेरी रकम का क्या करते हो ?" पूछा।

"रकम ! क्या तुम्हारे वाप की गठरी थी ! गले में रस्सी फांस लो !" कहते हुए ओवय्य मुंह फिराये विना केलकानूर गया।

ओवय्य ने मानो तय कर लिया था कि उसको दी गई सजा ने ही उसका ऋण चुका दिया है। अब के दुकानदार को उससे रकम मांगने का हक नहीं है।

केलकानूर की अपनी झोंपड़ी में प्रवेश करने के वाद ओवय्य अपने पिता को ढूंढा। परित्यक्त घर की तरह झोंपड़ी लगती थी। सुनसान थी। लगता था कि कई दिनों से झाड़ू नहीं लगाया गया है। चीजें भी गाफ़िल पड़ी थीं। वैठक में इधर-उधर मुर्गी के पर पड़े थे। वहां किसी को न देख ओवय्य सीधे रसोईघर गया। वहां उसकी सौतेली वहन अंधेरे में दरिद्र पाककार्य में लगी थी।

"पिताजी कहां है री ?" ओवय्य ने पूछा।

लड़की चौंक पड़ी। फिर कांतिहीन आंखों से अपने वड़े भाई को देखकर, वाएं हाथ से नाक साफ करती, चीथड़ी वनी साड़ी से पोंछती अत्यंत क्षीण स्वर में वोली, "वाहर ही तो था।"

"वैठक में तो नहीं है, फिर कहां गया है ?"

"गोठ में गया है क्या ?"

ओवय्य सीधे गोठ में गया। अण्णय्य गौड़जी का वृद्ध शरीर गोठ में एक ओर झुककर, हाथ से गोवर निकाल-निकालकर टोकरे में भर रहा था। पुत्र को देखते ही प्रश्नवाचक दृष्टि से उसको देखते "उश" कहके खड़ा हो गया। सारे गोठ में गोवर की वू भरी हुई थी।

"यहां क्या कर रहे हो ?" ओवय्य ने कहा।

"देख नहीं रहे हो क्या ?" अण्णय्य गौड़जी ने कहा।

"तुम इस उजड़े गांव में रहते हो ? या मेरे साथ आते हो ?"

"कैसे रे ?" दीर्घ स्वर से कहा।

"कैसा भी नहीं ! अव मैं इस उजड़े गांव में नहीं रहने वाला। पांव भी इसमें नहीं रखूंगा। तुम यहीं रहकर मरोगे या मेरे साथ रहकर जिये रहोगे ?"

"कहां जाते हो !"

"कहीं भी हो ! तुम भी आते हो क्या ?"

"इनका ऋण चुकाये बिना कैसे जा सकता हूं बाबा ? क्या वे जाने भी देंगे ?"

"तो तुम ऋण चुकाने यहां बैठे रहो। मैं दूसरी जगह जाकर जमीन जोतूंगा।"

"कौन देगा तुझे जमीन ?"

"सिगप्प गौड़जी देंगे, कहा है, 'तुम आना चाहते तो आओ !' "

"हमारा कर्ज भी चुकाने में मदद करेंगे ?"

"कर्ज ! कर्ज ! फिर कर्ज की बात उठा रहे हो न ? कर्ज तो पूरा चुका दिया !"

अण्णय्य गौड़जी को यह सुनकर अद्भुत आनंद आया। वे बोल भी न सके।

ओबय्य ने "कर्ज पूरा चुका दिया ! यहां देखो!" कहकर अपना बदन दिखाया, उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। गला भर आया था।

अण्णय्य गौड़जी आगे बढ़ आये; झुककर शरीर के नाना भागों में पड़ी मार के चिह्नों को देखकर करुणा से बोले, "किसने मारा रे तुमको ?" उस समय अण्णय्य गौड़जी के मन से पुत्र की धूर्तता, अविधेयता अन्याय सब मिट गये थे। केवल स्वाभाविक पितृवात्सल्य भाव अकेला परिशुद्ध होकर प्रस्फुटित होता था। फिर-फिर ओबय्य ने सारी बातें सुनाईं। पहले चंद्रय्य गौड़जी का ऋण चुकाये बिना कैसे जायें, कहने वाले अण्णय्य गौड़जी ने पुत्र की कहानी सुनने के उपरांत पुत्र की इच्छा के अनुसार चलने की स्वीकृति दे दी। शायद उनके सत्यव्रत को उससे छुटकारा पाने के लिए अवकाश का अभाव ही प्रबल कारण था, दीखता है। सीतेमने सिगप्प गौड़जी जमीन देंगे, सुनते ही आधा मन पुत्र की ओर खिंच गया था।

पिता-पुत्र दोनों ने मिलकर दूसरे ही दिन रात को गुप्त रूप से ढोर-बर्तन, और सब बाकी सामान सीतेमने भेजने का निश्चय किया। यह विचार सिगप्प गौड़जी को सुनाकर, उनसे गाड़ी और लोगों की सहायता पाने के लिए ओबय्य सीतेमने चला गया।

उसी दिन शाम को कानुर्बनु में एक ऊंची जगह पर हूवय्य अकेला बैठा हुआ था। उसकी आंखों में पानी था। चेहरे पर खिन्नता थी। हृदय अधीर हो गया था। उस दिन पूर्वाह्न में घटित कांड ने उसके दिल को हिला दिया था। तबतक चंद्रय्य गौड़जी ने जो कठोर बातें कही थीं। वे उस दिन की हुई बातों की अपेक्षा क्रूर, कठोर, करुणाहीन नहीं थी। अपनी माता के समान रही सुब्बम्म तथा अपने बीच में गोपनीय प्रणय संबंध है, इस अर्थ की सूचना देनेवाले छोटे चाचा के वाक्य उसे निचोड़ रहे थे, गीले कपड़े को निचोड़ने के समान। घर के बंटवारे के बारे में पहले उसके मन में जुगुप्सा थी। वह अब नहीं रही। मगर उसमें आसक्ति उत्पन्न

हो गई थी। चंद्रय्य गौड़जी के संशय रूपी भयंकर भूत से जितना शीघ्र पार हो जाय उतना ही अच्छा लग रहा था उसको। साथ में हताश प्रेम की आग भी मिलकर उसके जीवन को जला रही थी। सीता का स्मरण करके रोया। क्या सचमुच सीता ने कृष्णप्प से प्यार करके मुझे धोखा दिया! दीवार पर लिखे शब्द याद आये। हूवय्य विकट हंसी-हंसा। इस प्रकार चिंतन करते-करते उसके मन में यह भय उत्पन्न होकर बढ़ने लगा कि संसार में सब नश्वर है, सब दुःखमय है। सीता का विचार अब छोड़ देता हूं; उसने मुझे धोखा दिया है, जो भी हो, वह अब विवाहित परस्त्री है, वह अस्वस्थ है, अब कहते हैं तो अब जाकर उसे क्यों देखूं? मैं केवल प्रेम का भिखारी नहीं हूं, वह समझे। उसके भाग्य के लिए मैं नाचीज हूं तो वह मेरे भाग्य के लिए नाचीज है। इससे ज्यादा और क्या?

सीमा पर्यंत लहरों के समान फैले जंगलों से भरी पर्वत श्रेणियों के दिगंत में डूबने वाले सूर्य का लाल बिंब रमणीय होने पर भी हूवय्य को वह सीता के प्रेम की भांति चंचल, क्षणिक नश्वर गोचर हुआ। पहले ऐसे दृश्य को देखने पर जो आनंद, आवेश उसके दिल में नाचते थे वे आज मरी आग के समान राख बन गये थे।

हूवय्य ने फिर सोचा। वह सोचा करता था कि मैं अविवाहित रहकर, महापुरुषों के जीवन का अनुकरण करूं, और उनके समान लोक-सेवा करके कीर्ति संपादन करूं। फिर वही बात उसके मन में सिर उठाने लगी। मैंने कैसे असंभव बात में हाथ डाला था? कैसे मोह में फंसने वाला था? प्रलोभन के उस जाल से मुझे भगवान ने ही मुक्त कर दिया है! किसी देहाती नारी की सुन्दरता का कैदी बनकर आदर्श साधना को तिलांजलि देनेवाला था। अब ऐसी सब बातों को सावधान होकर मन से दूर करूंगा। दृढ़ चित्त से, एकाग्रता से, ज्ञान-भक्ति-वैराग्य का संपादन करके, ईश्वर की कृपा से देशवासियों को प्रकाश दिखाकर जीवन सार्थक बना लूंगा।

सोचते-सोचते रात हो गई। अर्द्धचंद्र का प्रकाश मायामोहक हो फैला था। आकाश में एक-दो नक्षत्र थे, फिर वे धीरे-धीरे दस, सौ, हजार तक होने लगे। कुरुडुगप्पटे नामक पंछी जोर से गाने लगा। दूर से तेने नामक पंछी गा रहा था। पेड़, जंगल केवल आकार मात्र बन गये।

दूर में ताड़ी के स्थान पर जाते हुए चंद्रय्य गौड़जी की ध्वनि सुनाई पड़ी। उनमें पीछे सेरेगारजी भी थे।

चंद्रय्य गौड़जी "कुछ भी हो, कल रात तक पता लगा लेना चाहिए जी? अपने सब बेघर लोगों को ले जाइये। उस पेटू भट्ट पुट्टण्ण को भी आने के लिए कह दूंगा। रामू भी आयेगा। उन लकड़ी के टुकड़ों का पता न लगावें तो क्या हम अपने पिता से पैदा किये बेटे कहलाएंगे?" कह रहे थे।

सेरेगारजी की बातें साफ सुनाई नहीं पड़ती थीं।

हूवय्य घर आया, रामय्य से उसको सारी बातें मालूम हो गई। चंद्रय्य गौड़-जी ने तीर्थहल्ली फॉरेस्ट रेंज को अर्जी भेजकर मालूम कराया था कि सीतेमने सिंगप्प गौड़जी ने चोरी से लकड़ी के टुकड़े कटवाये हैं। रेंजर ने एक 'गार्ड, को सीतेमने भेजा था। लेकिन सिंगप्प गौड़जी के घर में कोई लकड़ी का नया टुकड़ा नहीं मिला। गार्ड ने चंद्रय्य गौड़जी के यहां जाकर जो कुछ उसने किया था वह बतलाया था। तब चंद्रय्य गौड़जी ने गार्ड को यह कहकर समाधान किया था कि कल ही मैं लकड़ी के टुकड़े कहां रखे हैं, पता लगाकर सूचित करूंगा।

३३

अणय्य गौड़जी का गांव छुड़ाना

सवेरे आठ वजे का समय। कुछ तनिक झुकी धूप सिगप्प गौड़जी के मंगलोर खपरैलों के घर के सामने वाले सुपारी के पेड़ों के हरे सिरों को चूम रही थी। धूप वगीचे के बीच में से खिसककर, झपटकर सुपारी के हरे गुच्छेदार पत्तों पर, केले के गुच्छों पर लंबी हो गिर के रंगीन चित्र लिख रही थी। वाग की जमीन पर तो पत्तों, पत्तों पर की स्निग्धता, गोवर, लाल मिट्टी की भरमार के कारण आसानी से चलने में वाधा पड़ती थी। कुछ मजदूर वूढ़े सुपारी के पेड़ों को कुल्हाड़ी से काट-कर गिराने में लगे थे। काटने की ध्वनि की प्रतिध्वनि से वह प्रदेश शव्दमय वन गया था। वे वूढ़े, समाप्त आयु के सुपारी के पेड़ कुल्हाड़ी की एक-एक मार से कंप-कंपकर अपने विखरे हरे पत्तों वाले सिरों को हिला रहे थे।

काम करने वाले मजदूरों को, थोड़ी दूर में वैठ कृष्णप्प पुकार-पुकारकर सलाह दे रहा था। उसके इर्द-गिर्द कुत्ते चार-पांच भिन्न-भिन्न भंगियों में विश्राम पा रहे थे।

एक सुपारी के पेड़ का निचला तना लट्-लट् लट् आवाज कर रहा था। उसके पास खड़े होने वाले सावधान होकर दूर खड़े हो गये।

"देखो, सुपारी के दूसरे पेड़ों पर वह गिरने न पाये। सावधान!" कृष्णप्प जोर से पुकारकर मजदूरों से कह रहा था जो उसे लुढ़काकर गिराना चाहते, प्रयत्न करते उसके पास खड़े थे। कृष्णप्प उस गगनचुंवी सुपारी के पेड़ को ही देखने मजदूरों को सावधान कर रहा था।

सुपारी का पेड़ लट्-लट्-लट् भयंकर आवाज करता हुआ जमीन पर गिर गया। उसके गिरते समय उसके अगल-वगल में रहने वाले पेड़ों से रगड़ा था वह जिससे वे आगे-पीछे झूमने लगे थे। जाकी ने चिल्लाकर कहा, "हाय रे, एक सुपारी के पौधे का सिर टूट ही गया।"

"तुम्हारे काम पर ओले गिर जाएं! निकाला क्या रे उस पौधे को?" कहते हुए कृष्ण उस सिर कटे पौधे के पास दौड़ा।

अगर दूसरा समय होता कृष्णप्प मजदूरों को खूब फटकारता, गाली देता।

परंतु अपने विवाह का मंडप बनाने के लिए आवश्यक पेड़ों को काटने वाले मज-दूरों को गाली देना उसे अच्छा नहीं लगा।

सिंगण्ण गौड़जी विवाह मंडप के लिए जरूरी पेड़ों को काटने के लिए कृष्णप्प से कहकर अस्वस्थ सीता को देख आने के लिए मुत्तल्ली गये थे। कृष्णप्प मीठे मन से कर्त्तव्य तत्पर था।

चार-पांच पेड़ नहीं गिरे थे कि एक गोपालक ने हांफते आकर कहा, "एक बाघ ने जानवर को पकड़ लिया है।"

"कब पकड़ लिया है रे?" कृष्णप्प ने पूछा।

"लगता है, कल झुटपुटे के समय। रात को गोठ में आया ही नहीं।"

"लगता है तुम्हारे कारण एक भी जानवर बचा नहीं रहेगा, जानवरों को कैसे चराते हो, भगवान ही जाने!"

कृष्णप्प शिकार का सनकी था। कई प्राणियों का शिकार करके मार डाला था। मगर बाघ को मारने का सुअवसर अभी तक उसको नहीं मिला था। इसलिए 'बाघ ने जानवर को पकड़ लिया है' समाचार सुनकर, एक सुपारी के पौधे के नाश से उसे दुःख हुआ था; तो भी बाघ का शिकार करने का मौका मिलने से वह अंदर-ही-अंदर खुश हुआ। वह तुरंत मजदूरों से पेड़ों को काटते रहने के लिए कहकर, जाकी और ओबय्य के साथ बंदूक भी लेकर वहां के लिए निकला जहां जानवर की लाश गिरी पड़ी थी। मगर कुत्तों को अपने साथ आने नहीं दिया।

चरवाहा तीनों को साथ लेकर जंगल के चढ़ाव पर गया। थोड़ी दूर जाने के बाद "अजी यहां देखिए" कहकर उसने वह जगह दिखाई जहां बाघ ने जानवर को पकड़ा था। बाघ ने जब जानवर को पकड़ा था तब दोनों में संघर्ष हुआ था जिसके कारण सारी घास दब गई थी, छोटे-छोटे पौधे टूटकर गिर गये थे। गोबर पानी-पानी-सा होकर गिर गया था, गिरा खून जम गया था मगर अभी-अभी गीला था कुछ।

"दीखता है यहीं खून पीकर, बाद को लाश को मुंह में दबाकर ले गया है," ओबय्य ने कहा।

"बाघ इतना छोटा तो नहीं है! यहां देखिये उसके कदम के निशान?" कह-कर जाकी ने अस्पष्ट पद चिह्न को दिखाया।

जमीन कड़ी होने की वजह से निशान साफ नहीं थे।

"उसका चमड़ा उधाड़े बिना नहीं छोड़ना चाहिए," कहकर कृष्णप्प पग के निशान ढूंढते आगे बढ़ा। बाघ जानवर की लाश को खींचकर ले गया था; उसका निशान अभी भी साफ दिखाई पड़ता था।

निशानों को देखते आगे गये तो एक सूखा छोटा झरना मिला। उसकी रेत पर जानवर को खींच ले जाते समय पड़ा निशान साफ दीखता था।

"यहां देखिये, उसका एक-एक नख नींबू की फांक-सा बड़ा है!"

"यहां देखो रे! एक छोटा कदम अलग है! छोटा बाघ या बाघ का बच्चा होगा, दीखता है!"

बाघिन के कदम के साथ तनिक पास में उसके शिशु का पदचिह्न भी साफ दिखाई पड़ रहा था।

"मालिक, इसकी सोहबत नहीं चाहिए। छोटा बाघ!" ओबय्य ने कहा तो कृष्णप्प को गुस्सा आया। उसने उसकी ओर तिरस्कार से देखकर कहा, "तुम्हारा सिर छोटा बाघ हो तो क्या बंदूक की गोली नहीं लगेगी? तुमको डर लगता हो तो घर जाओ!"

"डरने के लिए क्या मैं औरत हूं? बाघ का बच्चा जरा खरनाक होता है, इतना ही मेरे कहने का मतलब था, बस!" कहकर ओबय्य ने अपने धैर्य-प्रदर्शन के लिए सबसे आगे चला।

जंगल के किनारे गाय को पकड़कर, बड़ा बाघ उसे जंगल के बीच ले गया था। उसकी पिछली टांगें और जांघें खाकर, बाकी को अगले दिन की भूख मिटाने के लिए छिपाकर रखा था।

उसको देखकर कृष्णप्प ने कहा, "आज रात को पेड़ पर धान में बैठें तो बाघ को एक गोली में मार सकते हैं—उस पेड़ पर एक, वहां एक, और तीसरा वहां बैठे। बाघ आये तो शायद इस ओर से आये। आ ही जाता है! आये बिना कहां जाता है। उसमें भी छोटा बाघ, अंधेरा होते आ जाय!"

जाकी ने पेड़ों को देखकर कहा, "हां···इन पेड़ों के अंधेरे में बाघ को गोली कैसे मारेंगे? दीखता है चांदनी भी नहीं निकलेगी!"

उस दिन अंधेरा हो जाने के बाद ओबय्य केल कानूर से अपने सामान सीतेमने पहुंचाना चाहता था। परंतु वह यहां बुरी तरह फंस गया था। उसने कहा, 'वह कहां? नहीं होने का। केवल बंदूक बांध दी जाय तो बस है; सबेरा होते-होते लौंडी छिद्र-विछिद्र हुई रहती है!"

कृष्णप्प ने फिर नाराज होकर कहा, "तुम सब कामचोर हो! आलसी! खाना खाया, पिया, सोया! तुम सब नहीं आ सकते हो क्या? कहो तो मैं अकेला ही आ जाता हूं। अंधेरा हो जाय तो क्या? चांदनी थोड़ी भी नहीं आयगी? मगर, अंधेरा होने पर भी बाघ को मारने में क्या दिक्कत होगी? पिछले वर्ष अपने बगीचे के ऊपर के जंगल में जब मैंने चीते को मारा था तब भी चांदनी क्या? बिलकुल नहीं के बराबर थी। अंधेरे में उसकी आंखें चमकती थीं। उन्हीं को देख, निशाना बांध मार दिया था। गोली सीधे सिर को लगी थी।" कहकर "पेड़ों की छाया में भी बाघ को मारा जा सकता है।" कृष्णप्प के इतना कहने के बाद जाकी ने बाघ की ताक में बैठने के लिए आवश्यक मचान बनाने की बात उठाई।

"आज रात को गाड़ी में केल कानूर से सामान यहां पहुंचाने के लिए सिगण्ण गौड़जी ने कहा था। उसके बाद ही ताक में बैठना हो सकता है।" कहकर ओबय्य ने कृष्णप्प की ओर देखा।

"लो भाई! एक यह है अलग तो!" कहा जाकी ने।

"भाड़ में जाय! कहो फिर क्या करें," कृष्णप्प ने कहा।

ओबय्य ने कहा, "बंदूक बांध दें तो क्या होगा?"

कृष्णप्प ने कहा, होगा क्या?···" आधा ही कहकर असमाधान से बोलना बंद किया।

जाकी ने कहा—"दो-तीन जगह बंदूक बांधें। एक से बच जाय तो दूसरे की ओर झपटे!"

अंत में पेड़ों पर मचान बांधकर ताक में बैठने का विचार छोड़ दिया गया। तीनों वापस घर लौट आये। दुपहर तीन बजे के करीब पशु की लाश की जगह गये और बंदूक बांध दी।

शाम को अंधेरा छा रहा था तब एक बैलगाड़ी सीतेमने से निकलकर केल कानूर के राज मार्ग पर जा रही थी। पहियों की गड़गड़ाहट के बिना कोई भी आवाज नहीं थी। बैलों के गले में घंटियों की माला नहीं थी। गाड़ी को हांकने वाले ने आवाज न हो, इस विचार से प्रयत्नपूर्वक घंटी की मालाओं को खोलकर घर में रख दिया था। गाड़ी के पहियों की खीलों की आवाज न होने देने के लिए उनमें काफी तेल डाल दिया था, धुरे में भी।

थोड़ी देर में फिर तीन आदमी पीछे से आकर गाड़ी में बैठे। सभी आपस में गुफ्तगू कर रहे थे। उस जंगली रास्ते में उनकी गुप्त बातें कोई सुनने वाला नहीं था, तो भी वे गुप्त बातें बड़ी धीमी आवाज में कर रहे थे जिससे मालूम होता था कि वे किसी चोरी के काम के लिए निकले हैं।

गाड़ी सीधे जाकर केल कानूर अण्णय्य गौड़जी की झोंपड़ी के आंगन में रुक गई। ओबय्य ने नीचे कूदकर धीमी आवाज में कहा, "कृष्णप्प गौड़जी, भीतर आइये।" कृष्णप्प गाड़ी से उतरकर ओबय्य के साथ भीतर गया। गाड़ीवान ने बैलों को जुए से अलग किया। गाड़ी का अगला भाग जमीन पर रखने के बाद जाकी ने गाड़ीवान से पूछा, "चंद्रय्य गौड़जी का घर यहां से कितनी दूर है रे!"

"बहुत ज्यादा दूर तो नहीं, एक सुपारी खाने में जितना वक्त लगता है उतने में उनके घर पहुंच सकते हैं।" कहकर उसने गाड़ी में से सूखी घास निकालकर बैलों के आगे रख दिया। वे निःशब्द होकर उसे चरने लगे।

अण्णय्य गौड़जी ने बाहर आकर गाड़ीवान को और जाकी को बुलाया। वे दोनों उनके पीछे गये। चौपाल में एरंडी के तेल का दिया जल रहा था। उसके प्रकाश

में ओबय्य कृष्णप्प का ताड़ी से सत्कार कर रहा था। बाकी सब वहां गये तो उनको भी ताड़ी दी गई। सबने ताड़ी अच्छी तरह पी ली।

पहले जो धीरे से बोल रहे थे, अब वे जोर से बोलने लगे। और भी ज्यादा पीने दें तो उस दिन का काम बिगड़ जायगा, यह सोचकर अण्णय्य गौड़जी ने अपनी पुत्री को बुलाकर कहा—"यह ताड़ी का घड़ा अंदर ले जाओ।" लेकिन जाकी ने पागल की तरह हंसते हुए कहा, "ताड़ी बड़ी अच्छी है, देखो जी। कुछ और दे दो! रात-भर जागना है न?" फिर उसने लड़की के हाथ से घड़ा छीन लिया। फिर चुल्लू में भर-भरके पीने लगा। ताड़ी की एक बूंद भी उसने नहीं बचने दी। घड़ा खाली करके वह लड़खड़ाते उठा और गाड़ी में सामान भरने वालों की मदद करने में जुट गया। कई बार उसकी मदद काम में बाधा डालती रही।

गाड़ी में सामान को भर दिया गया, उसके बाद अण्णय्य गौड़जी ने पान-सुपारी से भरा अपना मुंह ऊपर करके ताकि तांबूल का रस नीचे न गिरे, कहा, "टुम खाणा खा आओ। डूसरी बार सबी सामान पूरा आ जायगा। उसके बाद जाणवर जोट कर जा सकते हैं।"

जाकी आंगन में कंबल बिछाकर बैठ गया था। वह कह रहा था, 'चां...चां... चांदनी का परकास कितना पसंद है।" फिर वह अपने सब दांतों का प्रदर्शन करते हुए हंसने लगा।

"गाड़ी के पीछे एक-दो जानवर अभी बांध दें। अभी जितने जा सकते हैं, जायं फिर आसान होगा।" कृष्णप्प ने कहा।

"हां जी, वह भी एक अच्छी तरकीब है।" कहकर ओबय्य गोठ में गया; तीन जानवरों को लाकर, रस्सी को जरा लंबी करके गाड़ी के पिछले हिस्से से बांध दिया।

गाड़ी सीतेमने की तरफ रवाना हुई। पर्वत, जंगल, कंदरा सभी चांदनी में नहा-कर बेहोश होने की भांति या आनंद समाधि में मगन-से मौन थे। तेने नामक चिड़ियों की ध्वनि, कानूर के कुत्तों का भौंकना सुनकर बार-बार उनके प्रत्युत्तर में अण्णय्य गौड़जी का कंत्री कुत्ते का भौंकना गाड़ी के पीछे जाने वाले कृष्णप्प, जाकी और ओबय्य को अपनी दिग्विजय की ध्वनि के समान सुन पड़ता था। थोड़ी देर में गाड़ी, गाड़ी का शब्द जंगल के बीच में ओझल हो गये।

तो भी अण्णय्य गौड़जी का कंत्री कुत्ता भौंकता ही रहा। अण्णय्य गौड़जी सुनते हैं: कानूर में कुत्तों का शोरगुल उठा है। वह अच्छी तरह से सुनाई पड़ रहा है!

उसी समय अण्णय्य गौड़जी कानूर जाकर देखते तो विस्मित होते। चंद्रय्य गौड़जी, रामय्य, पुट्टण्ण, सेरेगारजी, हलेपैक का तिम्म, बैरा, सिद्द आदि बेलर, सोम आदि घाट के मजदूर सभी दल बांधकर कहीं जाने के लिए तैयार हो गये हैं!

इनके साथ जंगल विभाग का अधिकारी 'गार्ड' भी है ! उस चांदनी रात में शिकार के लिए निकले हैं, ऐसा भी नहीं दीखता है। क्योंकि वे कुत्तों को नहीं आने दे रहे थे; उनको पीछे भगा रहे थे। चंद्रय्य गौड़जी ने गाड़ीवान निग को हुक्म दिया— "सभी कुत्तों को अंदर बांध के आओ आज।" वासु-पुट्ट शोर मचाने वाले कुत्तों को जंजीर से या रस्सी से खंभे से कसकर बांध रहे थे। कुछ के कंधों पर लोहे के लंबे-लंबे रंभे हैं, कुछ के कंधे पर कुदाल हैं। पुट्टण्ण के हाथ में केवल दो नलियों की कारतूस की बंदूक है।

सिगप्प गौड़जी भी काफी दूरदर्शी थे। बिना लाइसेंस के कटवाये लकड़ी के टुकड़ों को, इस डर से कि चंद्रय्य गौड़जी अपने विरुद्ध फरियाद करेंगे, उन्होंने अपने खेत के किनारे में घर से थोड़ी दूर पर जो नाला था उसके बालू में गड़वाकर रखाया था। इसीलिए चंद्रय्य गौड़जी की फरियाद के मुताबिक तीर्थहल्ली के फॉरिस्ट रेंजर ने एक 'गार्ड' को आजमाइश करने के लिए सीतेमने भेजा था तब उसे लकड़ी के टुकड़ों की चोरी का कुछ भी पता नहीं लगा था। गार्ड ने चंद्रय्य गौड़जी को यह बात बताई तो उन्होंने उन चोरी के लकड़ी के टुकड़ों का पता खुद लगाने का भरोसा गार्ड को देकर पुट्टण्ण को खुफिया काम पर भेजा था। समाचार-पत्रों की तरह रहती है ताड़ी की दूकान। वह वहां गया, दूकानदार को फुसलाकर पूछा। ताड़ी के दूकानदार को पहले से ही ओबय्य पर गुस्सा था। यही नहीं चंद्रय्य गौड़जी द्वारा ओबय्य से अपने को मिलने वाले पैसे मिल जायेंगे, यह आशा भी थी। क्योंकि ओबय्य उनका किसान था न? दूकानदार ने जो कुछ उसको मालूम था उसे सब बता दिया। उसको यह ठीक मालूम नहीं था कि लकड़ी के टुकड़े कहां रखे हैं। अंत में मालूम हो गया कि वे नाले की कीचड़ में गड़वाकर रखे गये हैं। उसी का पता लगाने चंद्रय्य गौड़जी उस दिन रात को अपने दल-बल-परिवार के साथ गुप्त रूप से निकल पड़े थे।

चंद्रय्य गौड़जी और उनका परिवार सीतामने जाने वाले रास्ते पर कुछ दूर गये ही थे कि आगे एक आदमी रास्ते के एक ओर से दूसरी ओर सर्पगमन की तरह टेढ़ा-मेढ़ा लड़खड़ाते जा रहा था, सो दिखाई पड़ा। चांदनी खूब छिटक रही थी। लाल राजमार्ग पेड़ों की छाया के कारण काले-से दिखाई दे रहा था। ऐसे मार्ग पर उस आदमी का विचित्र कर्म पैशाचिक था। अपनी तोंद को ढोकर सबके पीछे आने वाले सोम के शरीर पर उसे देख रोंगटे खड़े हो गये।

पुट्टण्ण सबसे आगे बंदूक कंधे पर रखे जा रहा था। उसने पुकारा, "कौन है वह?" जवाब नहीं मिला।

पुट्टण्ण ने फिर पुकारा, तो जवाब मिला, "तुम्हारा बाप!" वह यों जवाब देकर, पीछे घूमकर देखे बिना लड़खड़ाते जा रहा था।

पुट्टण्ण जल्दी-जल्दी उसके पास पहुंचा और आज्ञा दी, "कौन है वह? ठहर

जाओ !"

उस आदमी ने तुतलाते हुए कहा— "तुम्हारी पत्नी का विट रे !" यह कह घूमकर खड़े होने का प्रयत्न करने पर भी खड़ा न हो सका। लड़खड़ाता ही रहा। पुट्टण्ण गुस्से से पास जाकर देखता है। सिंगप्प गौड़जी का धूर्त सेवक जाकी! अपनें प्रिय टाइगर कुत्ते का खून करने वाला राक्षस! पुट्टण्ण का विवाह नहीं हुआ था। तो भी "तुम्हारी पत्नी का विट रे !" कहने वाले जाकी की नाक पर ठीक अपनी दाहिनी मूंठ से एक घूंसा जड़ दिया। पीकर कमज़ोर बना जाको जमीन पर चीख-कर गिर पड़ा। उस चीख को सुनकर क्या हुआ ! डरके मारे गाड़ी के पीछे कुछ दूर पर जाते रहे कृष्णप्प, ओवय्य जाकर देखते हैं। जाकी नीचे गिर गया है ! चंद्रय्य गौड़जी और अन्य सब लोग उसके चारों तरफ खड़े हैं !

चंद्रय्य गौड़जी अपने लोगों के साथ उस रात को किस उद्देश्य से आये हैं, न मालूम होने के कारण कृष्णप्प ने सोचा कि चोरी से निकले अपने किसान को रोकने के लिए आये हैं। इसलिए उसने गुस्से से कहा,"आपका किसान अपनी मर्जी से हमारे यहां आवें तो हमारे नौकर को आपने क्यों मारा ?"

चंद्रय्य गौड़जी को और अन्य लोगों को भी इस सवाल का मतलव समझ में नहीं आया।

पुट्टण्ण ने ताना मारा, "तो वह क्यों मनमाने गाली दे ?"

इस तरह कहा-सुनी हो रही थी तव जाकी उठा और कहा, "कौन छिनाल का वच्चा आता है हमारे गौड़जी की गाड़ी को रोकने को, देखता हूं,लाश गिरा दूंगा ! ओवे गौड़ जी, चलिये।" फिर "ऐ सुक्रा! ऐ सुक्र !" कहकर गाड़ीवान को पुकारते हुए रास्तेमें पागल की तरह आगे वढ़ा। जितना हो सके उतना गाड़ीआगे वढ़ जाय,इस विचार से कृष्णप्प ने गाड़ीवान से कह दिया था, तो गाड़ीवान गाड़ी को आगे ही वढ़ाता जा रहा था। जाकी को कई वार वुलाने पर भी जाकी सुने विना "ऐ सुक्रा! ऐ सुक्रा !" जोर से पुकारते हुए दौड़ने लगा। गाड़ीवान शुक्र ने यह शोर सुनकर, दिग् भ्रांत हो, गाड़ी खड़ा करके देखता है !पीछे लोगों का झुंड आ रहा है।

गाड़ी के भीतर के सामान, गाड़ी के पीछे चलने वाले जानवरों को देख चंद्रय्य गौड़जी को कृष्णप्प की वात का अर्थ झट सूझ गया: सिंगप्प गौड़जी मेरे किसान को रात में चोरी के उड़ाकर ले जा रहे हैं !

गौड़जी ने गाड़ी को रोका और अपने घर की तरफ घुमाया। कृष्णप्प ने कहा, "अपनी गाड़ी ले मैं जाऊंगा। अपने किसान के सामान चाहें तो ले जायं।" अपने दल के कारण गौड़जी वलवान थे। इसलिए उन्होंने इनकार किया। उतने लोगों को देखकर जाकी भी वोल रहा था सिर्फ़, मगर हाथ न उठा रहा था। कृष्णप्प फिर कुछ नहीं वोला; फिर शुक्र से "सभी सामान उनके घर में डालकर गाड़ी वापस लाओ," कहकर जाकी के साथ सीतेमने की ओर चला। गौड़जी ने

ओबय्य को जबरन कानूर ले गये। अंत में चंद्रय्य गौड़जी और उनका दल-परिवार गाड़ी के साथ लौटे। ओबय्य कैदी बन गया।

थोड़ी दूर वापस जाने के बाद चंद्रय्य गौड़जी ने सेरेगारजी को और पुट्टण्ण को बुलाकर धीरे से कहा, "तुम चार-पांच आदमी को साथ में ले जाओ और लकड़ी का पता लगाओ। मैं वापस जाकर अण्णय्य गौड़जी के सामान और जानवरों का बंदोबस्त करता हूं।"

पुट्टण्ण और सेरेगारजी ने मजदूरों के साथ उस रात को हर जगह लकड़ी के टुकड़ों को खोजा। जहां-जहां शक होता वहां-वहां रंभों और कुदालों से खोदकर देखा, मगर वहां पत्थर-कीचड़ के सिवा लकड़ी के एक भी टुकड़े का निशान तक नहीं मिला। उनको गाड़कर रखी जगह का पता नहीं लगा।

दूसरे दिन गार्ड मुंह लटकाकर तीर्थहल्ली गया।

उसी दिन चंद्रय्य गौड़जी ने केलकानूर अण्णय्य गौड़जी के वर्तन-गिर्तन, सामान-गिमान, ढोर-जानवरों को अपने कर्ज के मद्दे जमा करके हड़प लिया और अण्णय्य गौड़जी को उनके पुत्र तथा पुत्री के साथ गांव से बाहर निकाल दिया। उनकी मुर्गियों तक को भी उनके लिए नहीं छोड़ा। उनके लिए रह गया केवल उनका काला कुरूप कंत्री कुत्ता।

३४

वह बाघ

चंद्रय्य गौड़जी ओबय्य तथा उसके सामानों के साथ गाड़ी को घुमाकर ले गये। इधर-उधर हाथ-पैर फेंकते, जो मुंह में आया सो बकते जाकी को बहुत कष्ट से चलाते कृष्णप्प सीतेमने ले गया। घर में सभी सोये हुए थे। भौंकने वाले कुत्तों को धमकाकर चुप करके, चौपाल में सोने के लिए बिस्तर बिछा ही रहा था 'धड़ाम' करके बंदूक की आवाज़ हुई उसे सुन कृष्णप्प का खून गरम हो गया। इतने में रात की नीरवता को चीरने वाली बड़े बाघ की दहाड़ जंगल में से होकर आयी और कृष्णप्प के कानों पर पड़ा। घर के सारे कुत्ते तुरंत भौंकने लगे। अपना बंदूक बांधना सार्थक हुआ प्रात काल की राह कातरता से देखते-देखते सो गया।

उसने नींद में सैकड़ों सपने देखे : कुछ मीठे, कुछ कड़वे, कुछ मनोहर, कुछ भयंकर : अपना विवाह हो रहा है, सीता का पाणिग्रहण किया है ! मानो उसके जीवन में स्वर्ग उतर कर आया है। क्या ? विवाह में आये हुए लोगों का कोलाहल नहीं ! विवाह के लिए आये हुए लोगों का हंगामा नहीं ! घायल बड़े बाघ का भयंकर दहाड़ ! बाघ मुंह खोले झपटते हुए आ रहा है ! चारों ओर भयंकर जंगल ! विवाह का मंडप महारण्य बन गया है ! कृष्णप्प ने गोली दाग दी। बाघ को चोट लगी। तो भी वह बदन पर आक्रमण कर रहा है ! हाय ! हाय ! कूदा शरीर पर ! हा ! नखाघात ! कृष्णप्प नींद में कराहकर जागा। सब मौन था। चांदनी दूध की तरह फैल गई। दूसरी तरफ करवट लेकर सो गया। फिर सपने : सामान लादकर गाड़ी आ रही है ! हूवय्य ने आकर गाड़ी रोक दी है। कृष्णप्प और हूवय्य के बीच कहा-सुनी होकर हाथा-पाई हो रही है ! सीता बीच में आकर झगड़ा रोकती है !…नौकर सुपारी के पेड़ काट रहे हैं। एक पेड़ उस पर ही गिर रहा है ! कृष्णप्प भागने का प्रयत्न कर रहा है ! पर भाग नहीं सकता ! किसीने मानो उसे पकड़कर वहां बांध रखा है। सुपारी का पेड़ गिर ही पड़ा। कृष्णप्प ने चौंककर बिस्तर पर पड़े-पड़े आंखें खोली। कितनी दिव्य-मौन शांति! कैसी निशाकांत की रमणीक कांति !

सवेरे सिंगप्प गौड़जी ने पिछली रात की घटना सुनकर आगबबूला हो अपने पुत्र को भला-बुरा कहकर मनमाने गाली दी "थू ! तुम्हारे पौरुष पर ! तुम्हारी मर्दानगी को आग लग जाय ! उनको गाड़ी ले जाने के लिए छोड़ दिया ? तो यह विवाह करने वाला पुरुष है, मर्द है ! न मान, न मर्यादा, न सम्मान, न अभिमान ? मैं अगर होता तो जान दे देता ! तुमको कौन अपनी कन्या देगा रे ! नपुंसक को ? हाथमें कंगन पहन लो, साड़ी पहन लो रे !"

कृष्णप्प ने पिता की ये निष्ठुर बातें सिर झुकाकर सुनीं। पर प्रत्युत्तर नहीं दिया। आंसू भी आये। बात-बात पर मान भंग। उसका दिल निचोड़ा-सा हुआ। मूक क्रोध चढ़ा, वहां ठहरे बिना वह रसोईघर में गया, माता से नाश्ता-कॉफी मांगा। माता से कुछ नहीं बोला।

नाश्ता करते बैठे पुत्र के आगे बैठ गई। उससे कई तरह से बोलने का प्रयत्न किया। मगर वह बिलकुल बोला ही नहीं। चुपचाप नाश्ता करता रहा।

माता ने कहा, "उनके बिना तुमसे कहने वाला कौन है रे? उसके लिए नाराज़ क्यों होते हो ?"

नाश्ता खाकर, कॉफी पीकर कृष्णप्प बाहर गया। कुर्ता पहना, टोपी पहनी, हाथ में बंदूक ली, फिर रसोई घर आया। चूल्हे के ऊपर तख्ते पर रखी पेटी में से कुछ कारतूस लेकर जेब में डाल लिये !

"जा किधर रहे हो बेटे ?" पूछा मां ने। पुत्र कुछ नहीं बोला।

"क्या मुझसे भी नाराज हो ?" मां की करुणापूर्ण ध्वनि सुन कृष्णप्प ने कहा, "कहीं भी नहीं मां; कल बाघ को मारने के लिए बंदूक बांध दी थी, देखकर आता हूं; रात को बंदूक की आवाज सुनाई पड़ी।" इतना कह उसने मां के मुंह की ओर देखा। उसकी आंखों में आंसू, चेहरे पर उद्वेग थे।

"क्या तुम अकेले हो रे ?"

"नहीं जाकी को भी साथ ले जाता हूं।"

"सावधान रहना ! बाघ का वास्ता बुरा !"

कृष्णप्प रसोई घर पार कर रहा था, तब देहलीज से ठोकर खाया। उसे देख मां ने फिर उसको वापस बुलाया और कहा, "सावधान रहना रे! बाघ का वास्ता बुरा ! किसी दूसरे को ले जा सकते हो क्या ?"

"क्या हम बाघ का शिकार करने जा रहे हैं मां ? बंदूक बांधी थी; गोली छूटी। क्या हुआ है, देखकर आयेंगे, बस।"

सूरज सभी जंगल एवं पहाड़ों पर अपनी किरन वर्षा की सुनहरी बूंदें बरसा रहा था। बहने वाली ठंडी हवा में सैकड़ों विविधपंछियों का गान तैरकर आ रहा था। कृष्णप्प कारतूस की बंदूक, जाकी छर्रे की बंदूक कंधे पर रखकर पेड़, पौधे, लताओं के बीच से होकर पहाड़ पर चढ़ रहे थे। कुत्ते उनके इर्द-गिर्द सैकड़ों

गज दूरी में जमीन को सूंघते, हवा के रुख को परखते, इधर-उधर ठहरकर पिछली टांग उठाकर पौधों को पानी देते उत्साह से दौड़ रहे थे।

बंदूक जहां बंधी थी उस जगह पर जाकर देखा तो वह दृश्य भयमिश्रित नीरव था। कृष्णप्प ने जिन बंदूकों से गोलियां नहीं छूटी थीं उनको जल्दी-जल्दी खोल दिया। नहीं तो कुत्ते उन पर चलकर कूद के मर जाते।

जानवर की लाश जैसे कल थी आज भी वैसी ही थी। मगर मक्खियां ज्यादा उड़ रही थीं। कुछ बदबू भी आ रही थी। बाघ को गोली लगी है जो यहां-वहां गिरे खून से और रंगीन बालों से मालूम हो गया। पर, बाघ पास में कहीं मरा पड़ा नहीं दीखा। उसको बड़ी चोट लगी थी। परंतु जान उसकी बच गई थी। कुत्तों में से कुछ को बाघ की बू मिली, वे अचंभे से देखने लगे।

"अब क्या करें जाकी ?" कृष्णप्प ने कहा।

"करना क्या, घर जाएं। घायल बाघ का वास्ता अच्छा नहीं। मंडगद्दे में एक अंग्रेज साहब घायल बाघ को मारने गया, कहते हैं वापस ही नहीं आया !"

पुट्टण्ण जैसे अनुभवी न होते तो अधिक लोगों की सहायता या धैर्य के बिना कोई घायल बाघ की खोज कभी नहीं करता। लेकिन कृष्णप्प बड़े शूर हृदय का तरुण सूरमा था। अलावा इसके उस दिन उसने अपने पिता से बुजदिल, नपुंसक, औरत आदि गाली जो खाई थी उसे वह न भूला था। तब का गुस्सा कम नहीं हुआ था। मैं साहसी हूं, सीता पर शासन करने में समर्थ मैं मर्द हूं, यह दिखाने की इच्छा उसके दिल में उसीको आज्ञा देने के रूप में उभर रही थी।

"घर जाना ही अच्छा है ! इतना रक्त जिस बाघ से निकल गिरा है वह इतने समय तक जिंदा नहीं रह सकता। कुछ दूर जाकर खोजकर देखें। कुत्ते हैं ! तुम क्यों डर रहे हो ? मेरे पीछे ही आ जाओ।"

जाकी ने भय मिश्रित विवेक से कहा, "नहीं जी, नहीं। घायल बाघ को खोजने जाना और नाग का फन पकड़ना एक-सा ही है ! फिर गौड़जी से गाली खाएंगे। मेरी बात मानिये।"

"तो तुम यहीं खड़े रहो। मैं कुत्तों को लेकर हो आता हूं।" कहकर कृष्णप्प धीमी आवाज में 'कू कू' कहके कुत्तों को बुला ले उनके साथ, खून के निशान देखते आगे बढ़ा। जाकी नहीं ठहरा, वह बेमन से उसके पीछे-पीछे चला।

दोनों कदम-कदम पर खड़े होते, बदन भर आंखें बनाकर देखते, कुत्तों को बीच-बीच में मृदु ध्वनि से उकसाते नाले में चले। कुत्ते भी घबराकर अत्यंत सावधानी से मनुष्यों से थोड़ी ही दूर पर जा रहे थे।

एक बार कुत्ता चौंक पड़ा, उसे देख, अपनी पीठ से ही लगे आनेवाले जाकी से कृष्णप्प ने "क्यों रे, कुत्ता चौंक रहा है। लगता है बाघ यहीं कहीं मरकर गिर गया है क्या ?" कहकर कुत्तों को धीरे से चुटकी बजाकर, "छू ! पकड़ो, झपटो !"

कहकर आगे के नाले को दिखाया।

कुछ दूर जाकर कुत्ते फिर खड़े हो गये। कृष्णप्प अपनी बंदूक ठीक करके दो कदम आगे बढ़ा। नाले को और अपने मुंह की ओर बारी-बारी से देखने वाले कुत्तों से कहा—"छू ! चलो ! झपट जाओ ! टूट पड़ो ! पाट्रैंट ! झपट !"

पाट्रैंट कुत्ता अच्छा शिकारी कुत्ता था। पर वह बाघ से कुछ डरता था। क्योंकि एक बार रात में जब वह घर के पास सो रहा था तब एक बड़े चीते ने उसे उठाकर जाने का प्रयत्न किया था। पाट्रैंट ने उससे लड़कर अपने को बचा लिया था। उसके बाद उसमें बाघ-चीतों के प्रति डर कायम रह गया।

मालिक ने उसका नाम लेकर "छू ! झपट !" कहा तो पाट्रैंट एक मन से आगे बढ़ा। तुरंत एक छोटे झुरमुट में से एक छोटा दहाड़ सुनाई पड़ी। कृष्णप्प और जाकी के रोंगटे खड़े हो गये। दोनों दो-दो कदम पीछे कूदकर खड़े हो गये। कुत्ते भी चौंककर, घबराहट से नाले में दो कदम पीछे आ जोर-जोर से भौंकने लगे। कृष्णप्प ने उनको खूब उकसाया मगर एक भी आगे नहीं बढ़ा। यह तय हो गया कि बाघ वहीं है।

कमर में गोली के लगने से, यातना से बड़ा बाघ कुत्तों और मनुष्यों का सामीप्य जानकर प्रतिहिंसा के लिए रोष-भीषण हो रहा था।

"सचमुच कृष्णप्पजी, आगे न बढ़ें। घर जाकर और लोगों को लेकर आवें।" जाकी ने कहा।

"तुम्हारे जैसे ही लोग वे भी ठहरे, क्या वे आएंगे ? हां, वे आकर भी क्या करेंगे ? इतना ही जितना तुम कह रहे हो ! बाघ को जोर से चोट लगी होगी रे। किसी दरार में से एक गोली दाग दें तो चित होकर गिर जाय !" कहकर कृष्णप्प धीरे से आगे बढ़ा। जाकी जहां का तहां खड़ा हो देख रहा था कातर दृष्टि से !

जाकी को देखते-देखते कृष्णप्प का झुका शरीर नाले में ओझल हो गया। वह खुद दो कदम आगे बढ़ उसके पीछे जाना चाहता था पर साहस नहीं हुआ। फिर खड़े होकर कुत्तों से कहा, "छू ! झपटो ! पकड़ो !"

यकायक खून जम जाय जैसे, हाथ-पैर ऐंठ जाएं जैसे बड़े बाघ की महा भीषण दहाड़ ने अरण्य का मौन चकनाचूर करने की तरह फटकार जाकी को हिला दिया। नाले में एक बड़े जानवर के चलने की आहट हुई। नाला भी जैसे हिला। कुत्ते गला फाड़-फाड़कर भौंकने लगे। तुरंत बंदूक की धड़ाम-सी आवाज हुई। "हाय रे जाकी !" कृष्णप्प का आर्तनाद भी सुन पड़ा उसी समय। जाकी पागल की भांति कांपते-चिल्लाते आर्तनाद जहां से आ रहा था वहां पहुंचा।

देखता है : नाले में जमीन पर पड़े कृष्णप्प पर भयंकर आकृति का बड़ा बाघ सवार ! जाकी का सिर चकरा गया। सारी वस्तुएं केवल रंगों की तरह आंखों के आगे चक्कर काटने लगीं। पीला, हरा, काला, लाल, सफेद ! नाले का

हरा, वाघ के शरीर पर की पट्टियों का पीला, काला, खून का लाल, दांत और जवड़ों का सफेद ! जाकी को देखते ही वाघ ने एक ही छलांग मारकर उस पर कूदा। तव जाकी को लगा कि खौलता पानी किसीने उस पर छिड़क दिया है, आंखें अंधिया गई हैं; न जाने कैसे उसने वंदूक के घोड़े को दवाया। तुरंत ही शरीर को कुछ लगता प्रतीत होकर, वेहोश हो गिर पड़ा। वंदूक की गोली की आवाज सुनकर आवेश में सभी कुत्ते आये और झपटकर वाघ पर हमला किया। वाघ जाकी के वगल में ही मरा पड़ा था। मगर कृष्णप्प और जाकी दोनों की गोलियां उसे लग गई थीं। गोली के छूटने के वेग से जाकी का शरीर खुरच-सा गया था; अतः वह मरा नहीं।

रसोई वनाने वैठी कृष्णप्प की मां वंदूक की आवाज़ सुनकर, अत्यंत वेदना से उठी और चौपाल में भाग गई, पति से उद्वेग के साथ कहा, "वेटा वाघ को मारने गया था। वंदूक की दो आवाजें सुनीं। लोगों को ले जाकर देखिये।"

सिगप्प गौड़जी भी सहसा डर गये। कुछ लोगों को साथ लेकर वे जंगल की तरफ चले।

कुछ देर के वाद जाकी को होश आया। देखता है, वाघ अपने वगल में पड़ा है। कुत्ते भौंक रहे हैं। कृष्णप्प विना हिले पड़ा है। अपना शरीर वाघ के नाखूनों की चोट से लाल हो गया है। भयानक दीख रहा है। उठने की कोशिश की, पर उठ न सका। हाथ टेककर घुटनों के वल धीरे-धीरे कृष्णप्प के पास गया।

कृष्णप्प की लाश लोहू से तरवतर हो गई थी। मुंह तो पहचाना भी नहीं जा सकता था, इतने सारे घाव हो गये थे। वाघ के नाखून से आंख की एक पुतली भी वाहर निकल आई थी। सिर तीन-चार जगह कट गया था मानो कुल्हाड़ी से काट दिया हो। दूसरे रक्तमिश्रित सफ़ेद दिमाग काले वालों में निकल पड़ा था। वायां हाथ वंदूक को मजवूती से पकड़ा हुआ था। उस वीभत्स दृश्य को देख जाकी रो भी न सका, वह सुन्न रह गया।

सिगप्प गौड़जी खूव रोते-रोते अपने पुत्र की लाश को, वाघ के नाखूनों के विष से उत्पन्न असहनीय दर्द से भयंकर कराहने वाले जाकी को ढुलवा कर घर आये। मां हृदय विदारक रुदन से विह्वल हो, छाती, सिर पीटते, सिर के वाल नोचते मुंह को खरोच लेते रक्तमय पुत्र के छिद्र-विछिद्र शव पर गिरकर लोट-पोट होने लगी। नौकर, चाकर, पड़ोसी, घरवाले सभी मिलकर रोते रह तो सीतेमने रोदन का रौरव नरक वन गया।

शाम के भीतर सव जगह खवर फैल गई। मुत्तल्ली से श्यामय्य गौड़जी और चिन्नय, कानूर से चंद्रय्य गौड़जी और रामय्य, हूवय्य आदि और इतर देहातों से आने वाले अन्य सभी रिश्तेदार भी सीतेमने आ जमा हो गये। आने वाले सभी उस रुद्र दृश्य को, माता-पिता के अति दारुण दुख को देखकर रो-रो वलहीन

हो गये। बहुतों ने बहुत कुछ कहा, परंतु कृष्णप्प की मां ने पुत्र के शव को नहीं छोड़ा। उसकी साड़ी खून से भीग गई थी।

यह सब देखने पर हूवय्य के मन में कुछ दिनों से उद्भूत निराशा भाव और प्रबल हो गया। उसकी दृष्टि को पहले सौंदर्य का पुंज बना दीखने वाला विश्व अब क्रूर पिशाच की कर्मशाला के समान दीखने लगा। सर्व क्षणिकं, क्षणिकं, सर्व दुखं, दुखं, सर्व शून्यं, शून्यं, शून्यं, शून्यं, ये उसके पढ़े बौद्ध धर्म के सिद्धांत आज सत्य, प्रत्यक्ष दीख पड़े। पहले वह क्षणिकवाद, दुःखवाद, शून्यवाद को कमजोर, हारे हुए या चिर रोगियों के सिद्धांत मानकर, तिरस्कार करके हंसता था। पहले वह जिसे अभिमान से कहता था—

"देव है व्योम में
सर्व क्षेम भूमि में !"

इस अर्थ के आशावादी ब्राउनिंग कवि के पद्य के ये चरण कितने थोथे हैं, आज उसको प्रत्यक्ष मालूम हो गया।

गाड़ी में लादकर जाकी को तीर्थहल्ली के अस्पताल भेजा। उसकी ईमान-दारी के लिए पुट्टण्ण ही गाड़ी के साथ गया। जाकी की बदनसीबी, मार्ग में ही बादल छाये, बिजली चमकी, गाज गिरी, मानसून की घनघोर वर्षा हुई।

३५

मुत्तल्ली में एक दुपहर

"लक्ष्मी !"

"आं ऽऽ !" सराग उत्तर मिला।

"यहां आ री।"

"क्यों ऽ ?" और भी लंबी राग ध्वनि में उत्तर।

"यहां आ, कहती हूं।"

"क्यों जी ?" राग आलापना तक चढ़ा था।

"तू आती है कि नहीं ? मैं ही आऊं ?"

वाल साफ करने के लिए मां अपनी छोटी पुत्री को बुला रही थी। गौरम्माजी ने वगल में रोगशय्या पर पड़ी अपनी वड़ी वेटी सीता की ओर करुणा से देखा।

सीता गरदन तक दुशाला ओढ़कर सोई थी। सफेद वने चेहरे पर आंखें पिंजड़े में नये-नये वंद (कैद) गानेवाली चिड़ियों की तरह इधर-उधर घूमती दुखपूर्ण थीं। कुछ दिनों से कंघी न करने से उसके वाल तितर-वितर हुए थे। विस्तर के इर्द-गिर्द ज्वर की वू का मंडल फैला था। वगल में दवा की वोतल, नींवू की फॉंकें; उन पर कुछ मक्खियां मंडरा रही थीं। जैसे-जैसे वह सांस लेती वैसे-वैसे दुशाला ऊपर उठती, नीचे-नीचे होती। गौरम्मा को वेटी का सांस लेना जैसे उसांस हो, लगता।

सीता की दृष्टि वहुत दूरगामी हुई थी। कमरे के एक कोने में वांसों पर टंगी ककड़ियां या अपने विस्तर के ऊपर एक कपड़े में लपेट टांगा गया, अग्रहार के ज्योतिषी से मंत्रित नारियल उसे नहीं दिखाई पड़ते थे।

पुत्री की दयनीय, शोचनीय स्थिति को देखकर मां के मन में करुणा तथा भय उत्पन्न हुए थे। कुछ ही दिनों में विवाहित हो संसार का सुख भोगती है सीता, मानने वाली गौरम्माजी को अपनी लाड़ली वेटी का न जाने क्या अमंगल हो, संशय था। माता-पिता ने अपनी पुत्री के रोग निवारण के लिए जो कुछ कर सकते थे, सव कर दिया था। वैद्य से दवा दिलाई थी, ज्योतिषीजी से मंत्र फुंकवाया था, भूत-पिशाच की पीड़ा को दूर करने के लिए भूतवलि भी दी थी; धर्म-

स्थल, तिरुपति, सिब्बलु गुड्डे आदि पवित्र स्थानों के देवताओं के नाम पर मनौती रखी थी। तो भी पुत्री के रोग के निवारण के आसार नहीं दीख रहे थे।

गौरम्माजी ने प्रतिदिन की भांति आज भी दुःखदमन कर लेने के स्वर में, पुत्री के माथे, गालों पर हाथ फेरते हुए, तितर-बितर हुए बालों को ठीक करते हुए उससे पूछा, "अब कैसा है ?"

हमेशा की भांति सीता ने भी "अब कुछ अच्छा लग रहा है।" कहकर जननी के नीर भरे नयन देखे।

मगर न माता को, न पुत्री को उस उत्तर में विश्वास था। एक के समाधान के लिए दूसरी अभिनय करती थी।

माता ने फिर अपनी पुत्री के माथे को छुआ। गरमी के कारण ज्वर का ताप बढ़ा-सा लगा।

माता अपने सोने के कमरे में गई, संदूक में से चांदी की दुअन्नी लाई। उसे धोकर सीता के चारों ओर घुमाया; पुत्री को शीघ्र आराम हो जाय तो चांदी का एक त्रिशूल बनवाकर दूंगी, मन में कहके तिरुपति तिम्मय्य (वेंकटेश्वर) को नमस्कार किया फिर उस दुअन्नी को एक कपड़े में लपेटकर ऊपर के उस बांस के साथ बांध दिया जिस पर इसके पहले कई मनौतियां बांधी गई थीं। उनको देखकर माता के मन को तनिक तसल्ली हुई। माता के इन कामों को पुत्री साक्षी के रूप में टुकुर-टुकुर देखती थी।

मनौती बांधने के बाद गौरम्माजी ने फिर पूछा, "अब कैसी है ?"

सीता ने उसांस भरकर कहा, "अब ज्वर कुछ छूट-सा गया है, दीखता है।"

पुत्री के माथे पर माता ने हाथ लगा या और कहा "हां री, अब माथा ठंडा है! बुखार भी नहीं है!" पुत्री को भी ऐसा ही लगा।

उसके बाद गौरम्मा ने दिल भरकर पुत्री को सुनाया, "पहले एक बार मेरे पतिदेव सख्त बीमार पड़े थे। किसी दवाई से लाभ नहीं हुआ। तिरुपति तिम्मप्प से मैंने प्रार्थना की कि उनका ज्वर छूट जाये और वे रोग मुक्त हो गये।"

इतना हो जाने पर भी लक्ष्मी नहीं आई। नारियल के तेल का कटोरा, लकड़ी की कंघी अपने निकट रख लेकर गौरम्मा ने जोर से बुलाया—"लक्ष्मी!"

लक्ष्मी ने पहले की भांति निरुद्विग्न ध्वनि से गान की भांति फिर जोर से कहा—"आंऽऽऽ !!"

गौरम्माजी ने फिर "आती है कि नहीं तू बजारी!" कह खिड़की के पास जाकर बाहर देखा।

लक्ष्मी मिट्टी की रोटियां बनाकर कड़ी धूप में उनको सुखाने फैला रही थी। उसके पास बादल की छाया काली-काली-सी जहां पड़ी थी वहां उसी का बनाया छोटा चूल्हा. उस पर उसी प्रकार कुशल कला की जात का एक टेढ़े मुंह का

खिलौने का मटका, वाहर रंगमंच पर आये हुए स्वयं कृतापराधों की भांति शर्मा-कर पड़े थे। वालिका का मुंह पसीने से लाल वना था। हाथ लाल मिट्टी की कीचड़ से भरा था, पहने हुए लहंगे पर गुंथी हुई लाल मिट्टी का प्रभाव अच्छी तरह दीखता था। लक्ष्मी की छाया उसके पांव तले स्याही की तरह पड़ी थी।

"हाय ! क्या किया जाय इसके लिए? क्या धूप में मिट्टी से खेल रही थी !! अच्छी हुई लहंगे की हालत ! आज ही धोया था री ! हाय ! वरवाद हो जाय तेरा खेल ! यहां आ जा री।"

माता की पुकार सुन वाला ने पसीने से लाल वने अपने मुंह को ऊपर उठा-कर देखा और लंवी रागध्वनि से कहा—"रोटी···वना···रही···हूं री !"

"हां, तेरा यार आयगा सोचकर रोटी वनाती है क्या री? आती है कि नहीं भीतर? तुझे वहुत दिन से मारा नहीं। घमंड से झूमती फिरती है। मस्ती आई है न !"

लक्ष्मी वेमन से खेल छोड़ उठी; अंदर गई; हंडे के साफ़ पानी में अपने दोनों मैले हाथ डुवोये और साफ़ किये; फिर बड़ी वहन के कमरे में गई जहां वो सोई हुई थी।

मां के पास तेल का कटोरा, कंघी देख, मुंह को फुलाकर दीवार के सहारे हो गई।

वाल साफ करा लेना मानो उसके लिए महान क्लेश का काम था। प्रशस्त मिट्टी का खेल छोड़, वाल साफ करा लेना उसकी दृष्टि में समय को वरवाद करना था। अत: उसका दिल खौल रहा था।

"यहां आ री।"

मां ने वुलाया। वेटी अपनी जगह से विलकुल हिली नहीं। उसकी आंखों में आंसू आने लगे थे।

"आ री, कंघी करके वाल संवारती हूं।"

"न, मैं नहीं आती।" लक्ष्मी रुआंसी-सी हुई।

"रिश्तेदार आते ही होंगे री, वाल संवारकर, माला पहनकर" कहकर माता झूठ का संमोहन फेंक रही थी, तव वेटी ने कहा—"नहीं; मैं नहीं चाहती, सव जानती हूं मैं, ठेठ झूठ !" फिर उसने रुलाई की सूरत पर हास्य छटा से प्रस्फुटित मुंह को टेढ़ा किया।

"आती है कि नहीं? जमा दूं पीठ पर दो-चार?"

"ऊं···ऊं···ऊं···ऊं" लक्ष्मी रोती रही, मगर जहां खड़ी थी वहां से न हटी, न हिली।

गौरम्माजी को गुस्सा आया, झट उठकर गई, पुत्री की पीठ पर दो-चार घूंसे जमाकर खींच लाई और लक्ष्मी जोर से रोती शरणागत हुई।

"आजादी देने पर कुत्ता सिर पर भी चढ़ता है जैसे ! अच्छी बात थोड़े ही सुनती है ?" कहती हुई मां बेटी का बाल संवारने लगी।

कल गुंथी चोटी को खोलकर तेल लगाया और कंघी से उलझन को सुलझाने लगी। खूब उलझे, तितर-बितर हुए बालों को सुलझाते समय एक दो-बार लक्ष्मी को दर्द भी हुआ; वह जोर से रोने लगी।

"चुप रहेगी कि नहीं री ?"

"ऊं···ऊं···ऊं !···आं आं आं···" करती हुई लक्ष्मी ने मां के हाथ से बाल छुड़ाने का प्रयत्न किया।

गौरम्मा जी को फिर गुस्सा आया, फिर उन्होंने जोर से एक घूंसा और जड़ दिया। लक्ष्मी फिर रोने लगी।

सीता ने क्षीण ध्वनि से कहा, "मारती क्यों हो मां ?"

अपनी लाड़ली बहन को देखकर जब सीता ने यह बात कही थी तो तब गौरम्माजी को गुस्सा आया था। फिर करुणा से "मारती क्यों हो ?" सीता ने कहा तो माता का वात्सल्य उमड़ आया, झट उन्होंने लक्ष्मी को खींचकर गले लगाया, उसके गालों, होंठों को अपने गालों पर दबाया, उसके माथे से अपना माथा धीरे से रगड़ा। पुत्री की नाक व मुंह की खुशबू का अपनी नाक से आस्वादन करती हुई बोली, "रो मत मेरी सोने की पुतली ! मेरी मुन्नी ! हाथ जल जाय मेरा !···मैं गुड़ दूंगी, रो मत ! हाय कट जाय मेरा !···बुलाने पर आती तो मैं क्यों मारती ? खामखाह हठ करके मार खाती है !···नहीं, मुझसे गलती हो गई; रो मत मेरी सोने की गुड़िया !···दीमक लग जाय मेरे हाथ को···!" इस तरह अपने को कोस लेती हुई, पुत्री को सांत्वना देती हुई मां ने उसे झट से छाती से लगाकर, चूमकर सुख पाया।

लक्ष्मी ने रोना बंद किया, मगर ऊं ऊं ऊं करना बंद नहीं किया। वह रसभाव गंवा लेने वाले बासी अलंकार की तरह शुष्क हो गया था। उसमें रस कुछ भी नहीं था। माता जब कंघी कर रही थीं तब बीच-बीच में दूसरे विचार आते; वह ऊं ऊं करना छोड़ देती भूलकर, फिर झट याद आते ही ऊं ऊं करने लग जाती थी।

चोटी का काम पूरा होने वाला ही था कि रसोई घर में काले ने भय मिश्रित स्वर से पुकारा, "अम्मा ! अम्मा ! अम्मा !"

गौरम्माजी 'हां' कहने वाली ही थीं, कि काला वहीं दौड़कर आया जहां वह थीं। उसके सर्वांग से—आंख, मुंह, कंठ से भय टपकता था।

गौरम्माजी ने लक्ष्मी की चोटी पकड़ी ही रही, घबराहट से पूछा, "क्या है रे ?"

"कृष्णप्प गौड़जी को बाघ ने पकड़ लिया, कहते हैं।"

"क्या ?" ऐसा लगा गौरम्माजी को कि किसी ने उन पर खौलता पानी मानो उंड़ेल दिया हो। उनके हाथ से लक्ष्मी की चोटी छूट गई।

काले ने लंबी सांस वाहर छोड़कर कहा, "सिंगप्प गौड़जी ने लोगों को भेजा है···कल वंदूक वांधी थी, कहते हैं ! आज सवेरे घायल वाघ को खोजने गये··· कहते हैं, वाघ ने उनको धर दवाया !"

गौरम्माजी ने रोते हुए 'नारायण !' कहकर सीता की ओर देखा। लक्ष्मी भी मां को रोते देखकर रोने लगी।

सीता का शरीर आद्यंत विक्षुब्ध था। विस्तर पर उठ वैठी थी। छाती धड़क-धड़क करती थी। मालूम नहीं हो रहा था कि वह फूट-फूटकर रो रही थी या हंस रही थी। आंखों में आंसू थे, मगर मालूम नहीं हो रहा था कि वे आनंद के हैं या दुःख के। परंतु गले में ध्वनि नहीं थी।

कहना होगा कि उसके मन के भाव-समुदायों के ताने-वाने की जटिलता दूर करके रहस्य को भेदना अत्यंत समर्थ मनःशास्त्रज्ञ की प्रतिभा को भी असाध्य था, नामुमकिन था।

विदेश में अंधेरे गुफा-कारागार में वहुत दिनों वंधित रखे मृतप्राय आदमी को, कारावास से मुक्त करके स्वदेश के निर्मल वायुमंडल में—आकाश, धूप, जंगल, नदी, झरना, तालाव, हरी फसल के परिसर में—छोड़ने के समान वनी थी सीता।

२६

दुख के लिए अमीर-गरीब का भेद है ?

दूसरे दिन सवेरे हूवय्य ने कानूर के दुमंजिले पर आंखें खोलीं तो सूरज जंगल-पहाड़ों के शिखर पर उग गया था। पिछले दिन शाम को जोर से वर्षा हुई थी, इसलिए वायुमंडल में वनों की हरियाली, धूप की स्वर्णिमा, गगन की नीलिमा, इनके मिलन से समां बंध गया था।

जागने में कितनी देर हुई ? मन में ही कह लिया हूवय्य ने। बगल में देखा तो रामय्य पूरी चद्दर ओढ़कर अभी सोया है।

हूवय्य को पिछले दिन हुई भयंकर घटनायें याद आई। कृष्णप्प की मृत्यु, उसके माता-पिता का रोदन, जाकी की पीड़ा, श्मशान में शवदहन ! वह बाघ ! इनके स्मरण से ही हूवय्य थोड़ा कांपा।

रामय्य को उसने नहीं जगाया। नहाया, नाश्ता किया, काफी पी; फिर वह कानु बैलु की ओर घूमने चला गया। रसोईघर में सुब्बम्म ने, पुट्टम्म ने और अपनी माता ने कृष्णप्प के दुर्मरण के बारे में जो प्रश्न पूछे थे उनका जवाब एक-दो बातों में उसने दे दिया था। लेकिन मन में वह भयंकर दुर्घटना जैसे-जैसे धूप चढ़ती वैसे-वैसे अधिक से अधिक प्रदेश को आक्रमित करने वाले ओस के बादल की तरह फैल रही थी। इसलिए सुंदर प्रातःकाल या पंछियों का सुमधुर गान या शीतल मंद-मंद पवन या सुखोष्ण बालातप या घास पर, पेड़ों, हरे चामर जैसे बांस के झुरमुट पर चमकने वाली लाखों हिममणि उसके मन को आकर्षित न कर सके।

एक-दो बार उसने प्रकृति सौंदर्य की ओर अपना मन फिराने का प्रयत्न किया। लेकिन बाघ के नाखूनों के आघात से जर्जरित कृष्णप्प का कलेवर बार-बार, फिर-फिर उसकी आंखों के आगे आ जाता था ! कृष्ण भी क्या, उससे कुछ ही छोटा, उसके साथ खेला, उसके साथ पढ़ा। सब परसों-तरसों हुआ-सा है। विवाह का भी निश्चय हो चुका था ! सहसा, यकायक यह क्या हो गया !

हूवय्य के हृदय में अचानक एक परिवर्तन-सा हो गया। विवाह का निश्चय हो चुका था; पर अब कृष्णप्प मर गया है ! फिर आगे सीता ?

हूवय्य एक बड़े बरगद के पेड़ के नीचे एक बड़ी जड़ पर बैठ गया। आगे बिना

सोचे पेड़ की ओर देखने लगा।

वह एक विशाल भीमाकार पेड़ था। चारों ओर स्वच्छंद फैलकर, अपना ही एक संसार बना लिया था। उसकी छोटी-छोटी शाखाएं तप करने बैठे महर्षि की याद दिलाती थीं। इधर-उधर बड़ी शाखाएं व्यायाम विशारद के अंगविन्यास की तरह दीखती थीं। भूमि पर उतरकर बढ़ी हुई शाखाएं बड़े मंदिर के खंभों की कतार का स्मरण कराती थीं। घने बढ़े मोटे पत्ते छाता तान धरे हुए के समान यद्यपि लगते थे तथापि यहां-वहां उनमें से होकर धूप हरी जमीन पर लंबी-लंबी छड़ी की भांति पड़ती थी। कोमल धूप के गिरने से पत्तों से हरियाली का सोता फूट-फूटकर मानो निकल पड़ता था। इधर-उधर बड़े-बड़े कटहल के जितने बड़े पत्तों को टांककर बनाये गये चगली नामक चींटियों के घोंसले दीखते थे। कुछ लाल रंग की बड़ी-बड़ी चींटियां पत्तों एवं शाखाओं पर चलती-फिरती थीं। कुछ पंछी भी शाखाओं पर बैठ जाते थे, फिर उड़ जाते थे। हवा के झोंकों से पेड़ की बूंदें टप-टप नीचे गिरकर आवाज करती थीं। उस पेड़ को देखकर ऐसा लगता था जैसे प्राचीन-नवीन का संगम-सा और बूढ़े के गांभीर्य के साथ बालक का हर्ष मिल गया है। हूवय्य को लगा पेड़ में कोई एक व्यक्तित्व है। इसीलिए लगता है कि देहाती कहते हैं, उस पेड़ में अतिमानव व्यक्ति है।

"यह क्या मालिक, आप यहां बैठे हैं?"

हूवय्य ने घूमकर देखा। बड़ी तोंदवाला सोम कंबल ओढ़े, सूप हाथ में लिए, मुंह खोले खड़ा है!

"वह क्या है रे तेरे हाथ में?" हूवय्य ने कहा।

"कुछ नहीं जी···भात नहीं रुचता···इसलिए 'चगली' चींटियां ले जाने आया।"

हूवय्य तब समझ गया—सोम के हाथ में रहे सूप और उसमें रखे नमक का उद्देश्य। सोम चगली चीटियों के घोंसले उतारकर, उनमें निवास करते चींटियों तथा उनके अंडों से चटनी बना लेने के इरादे से, उनको ले जाने के लिए आया था।

"क्या? क्या बुखार चढ़ा था रे?"

"बुखार नहीं मालिक। उस बदमाश जाकी की लाठी की मार से हुआ है ऐसा, देखिये।" कहके ओढ़ा हुआ कंबल जरा हटाकर तोंद और चमड़े पर पड़ी मार के निशानों को, पसलियों और निर्बल पैरों को दिखाया।

"बेचारा! वह तीर्थहल्ली के अस्पताल में मरा पड़ा है रे!"

"वैसा ही होना चाहिये उसको मेरे मालिक। क्या गुंडा! क्या गुंडापन! आपके टाइगर कुत्ते को मार डालने वाला वही है न? भूत से प्रार्थना की मैंने, उसी भूत ने बाघ बनकर उसे मारा न?···छिनाल का बच्चा! कितना हुड़दंग करता था सूअर का बच्चा!"

सोम ने जाकी के प्रति अपना सारा गुस्सा उसे गाली देकर उतार लिया। फिर वह बरगद के पेड़ पर चढ़ा और जंगली चींटियों के जिस टहनी पर घोंसले बने थे उसके नीचे सूप धरकर उसको काटने लगा। जंगली चींटियों के झुंड के झुंड सूप में गिर गए। उनके साथ गेहूं के दाने के जितने बड़े-बड़े उनके अंडे भी गिरे। भाग न जायं चींटियां, इसलिए वह सूप को दायें-बायें, आगे-पीछे झटपट सरकाता था। सूप में जो नमक था वह आगे-पीछे इधर-उधर सूप में सरककर आवाज करता था। जंगली चींटियां नमक खाकर खट्टे का वमन करके निश्चल बनने लगीं। तो भी कुछ चींटियां सोम को काटने लगीं। सोम ने 'अय्, अय् अय्, हाय्, हाय्' कहते बदन को यहां-वहां मलते, ओढ़ा हुआ कंबल भी नीचे गिरा दिया।

"नीचे गिर जाओगे, होशियार!" कहकर हूवय्य अपनी हंसी को न रोक सका। सोम का अभिनय उतना ही हास्यपूर्ण था।

"न···हीं···अय्···अय्यय्!···हाय रे···" चिल्लाते सोम सरसर करता नीचे उतरा।

सूप में लाल रंग की चींटियां लाखों थीं, उनसे भी ज्यादा सफेद छोटे-छोटे अंडे थे। चींटियों में अभी बहुतेरों की जानें नहीं गई थीं। मगर वे छटपटाती थीं।

सोम कंबल को कंधे पे फेंक लेकर, हूवय्य की ओर घूमके "उस जाकी का चल बसना तो लोगों की दृष्टि से अच्छा ही हुआ!···लेकिन बेचारा! कृष्णप्प गौड़जी क्या गिराचार! (गृहाचार)। शादी तय हुई थी कहते हैं! पूनम के बाद शादी संपन्न होने को थी, कहते हैं!···"कह रहा था।

हूवय्य ने कहा, "अच्छा, जाने दो। वह सब लेकर तुम क्या करोगे? जाओ!"

अपने दुबले पांव उछाल-उछालकर रखते सोम पेड़ों के बीच ओझल हुआ। हूवय्य के मन में फिर सीता की चिंता उठी थी। बीमार पड़ी उसको एक बार देख आने की इच्छा भी धीरे-धीरे उसके मन में अपना सिर उठाने लगी।

वह वहां से जल्दी-जल्दी घर लौट आया। पोशाक बदली। आइने के आगे खड़े होकर कंघी से क्रॉप को ठीक कर लिया। फिर रसोईघर जाकर माता से "मुत्तली में हो आता हूं," कहकर निकला।

अपने पीछे आने वाले कुत्तों को पीछे भगा दिया; बाग के ऊपर से जो पगडंडी जाती थी उस पर चला। उसके हृदय में एक महान परिवर्तन हो रहा था। उल्लास का सोता फिर आंखें खोल रहा था। पहले कृष्णप्प-सीता के विवाह के निश्चय से भग्न हुई उसकी आशा फिर पनपने लगी थी। पूर्वाह्न का सौंदर्य—हरियाली, धूप, पंछियों का गाना, ठंडी हवा—उसके प्राणों को मस्त बना रहा था। बीच-बीच में अपने क्रॉप को टटोल-टटोलकर देख रहा था। उसको विदित हो रहा था कि अपने चेहरे पर कोई एक नई कांति आई है, तब उसने पिछले दिन की वर्षा से गड्ढे में खड़े जल में—जलदर्पण में—झुककर देखा। फिर उसने सोचा,.

मेरा अनुमान सही है। इससे वह संतुष्ट होकर, समाधान चित्त से जोर से चला।

पगडंडी से सरकारी रास्ते पर आके कुछ दूर गया था। उसके पीछे कोप्प ग्राम की तरफ से आती हुई साइकिल की घंटी की आवाज़ खूब जोर से हो रही थी मानो प्राण छोड़ रही है। हूवय्य ने अपने मन में आप ही कह लिया 'यहां-कहां से आई रे यह साइकिल?' फिर उसने घूमकर देखा,साइकिल खूब तेज आ रही थी। वह एक ओर होने ही वाला था कि ऊबड़-खाबड़ उतारू सड़क पर उन्मत्त वेग से दौड़ती आई साइकिल उसके बहुत बिलकुल पास से झपटकर ऐसी निकल गई जैसे उसे घसीटती जा रही हो।

'क्या पागल आदमी है। इस ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर इतने ज़ोर से जा रहा है! कहीं गिर जाय तो दांत टूट जायं। नहीं तो किसी पर चलाकर हंगामा मचा देगा।' हूवय्य इस तरह सोच ही रहा था कि उसके देखते-देखते सड़क के मोड़ पर साइकिल एक गड्ढे में कूद, उछल, घोड़े की भांति तीन बार छलांग मारकर जमीन से टकराकर 'कण-खण' आवाज करती गिर पड़ी। उसका शौकिया सवार भी पथरीली जमीन पर औंधे मुंह गिर पड़ा पत्थर की तरह।

हूवय्य गिरे हुए आदमी की सहायता के लिये दौड़ा। उतने में वह धूल से धूसरित उठ खड़ा हो अपना कुर्ता और अपनी धोती को झाड़ ले रहा था। माथा, नाक, गाल के पथरीली जमीन से रगड़ खाने से उनसे लहू चू रहा था।

हूवय्य करुणा से, सहानुभूति दरसाते पूछा, "बहुत चोट लगी है?"

उस आदमी ने अपने अस्त-व्यस्त क्रॉप को ठीक संवार लेते हुए कहा, "नहीं जी, चोट ज्यादा नहीं लगी। कितनी खराब रोड है जी यह?—इस तीर्थहल्ली-कोप्प रोड की जितनी खराब रोड मैंने कहीं नहीं देखी।"

"दीखता है मुंह पर चोट लगी है।"

"कुछ परवाह नहीं! उतनी सीरियस नहीं है।" कहते उस शौकीन आदमी ने साइकिल उठाकर 'ट्रि ट्रि' घंटी बजाई।

"साइकिल सही है न?"

"सही कैसे नहीं होगी? बी० एस्० सी० साइकिल है जी। वैसे यह डिरेंज नहीं होने वाली। मड़गार्ड थोड़ा टेढ़ा हो गया है बस!"

"यह सड़क बिलकुल खराब हो गई है। इसके अलावा घुमाव, मोड़ भी ज्यादा हैं इसमें। कुछ धीरे-धीरे, सावधानी से जाइये।"

"नहीं जी, मैं एक्सपर्ट हूं। आम तौर से हमेशा पच्चीस-तीस मील स्पीड से ही जाने वाला हूं मैं! पर यह कम्बख्त सड़क···अच्छा, मैं जाता हूं।" कहकर पहले की तरह वेग से साइकिल चलाता गया और 'हां-हां' में आंख से भी ओझल हो गया।

हूवय्य ने नीचे गिरी उसके फाउंटेन पेन को देखा। उसे उठाकर उस साइकिल

सवार को जोर से पुकारा "क्यों जी" और कुछ दूर दौड़ा मगर उसका दौड़ना और पुकारना सब बेकार हो गया।

यह नागरिकता, अंग्रेजी, चंचलता, उद्वेग, वेग!—खुद पीछे छोड़ आई उस प्रतिगामी दुनिया का फिर बहुत दूर के पर्वतीय अंचल के एक कोने में दर्शन-सा हुआ उसको। बिना रुके दिन-ब-दिन बदलते रहने वाली बाहरी विशाल दुनिया के लिए वह साइकिल और उसका सवार प्रतिमाएं बन गये। हूवय्य का मन मानो गवाक्ष से कानूरु-मुत्तल्ली के संकुचित जीवन से बाहरी दुनिया की ऊंचाई तक उछल गया। नगर की भीड़ में अलक्षित साइकिल जंगल के प्रदेश में विशेष-तिथि की तरह दिखाई दी। आक्रमणशील उस चंचल नागरिक लोक द्वारा पर्वतीय प्रदेश पर हमला करने के पहले भेजा गया रणचार है न वह साइकिल सवार!

हूवय्य उस पेन पर हंस के चित्र के नीचे लिखी अंग्रेजी लिपि को पढ़ते कुछ दूर गया ही था कि सामने आते हुए नंज को देख सब विषयों को भूल गया, सीता को याद करके कातरता से आगे बढ़ा।

उसने दूर से ही पूछा, "क्या समाचार है?"

नंज न सुनाने लायक खबर सुनाने के लिए आये हुए आदमी के समान, मुंह फीका करके, रोदन की ध्वनि से "क्या कहूं मेरे मालिक? जो न होना था सो हो गया!" कह, आंसू बहाते फिर "ऐसा होगा करके कौन जानता था?" कहकर फूट-फूटकर रोने लगा, उसांसें भरने लगा।

हूवय्य को लगा कि किसी ने उस पर खौलता पानी उलीचकर मार दिया है उसे। एक बार नसों में सर्दी का प्रवाह संचारित-सा हो, फिर आग का प्रवाह बहता-सा हो, पसीने से उसका शरीर तरबतर हो गया। होंठ हिलने लगे। तुरंत बोलने लगता तो कंठ गद्‌गदित होता। सांस जोर से चलने लगी। दिमाग में कल्लोल-कल्लोल-सा हुआ। ऐसा प्रतीत हुआ कि शरीर का भार ढोने से पैर इनकार कर रहे हों।

उद्वेग और आशंका से "ऐ···क्या···क्या···रे? सीता की बीमारी कैसी है?" हूवय्य के इस प्रश्न का जवाब न देते हुए नंज और जोर से रोने लगा और थोड़ी देर के बाद कैबन में टटोलकर खोज करके एक चिट्ठी बाहर निकालकर दी।

कांपते हुए हाथ से उसे लेकर, खोल के पढ़ा। फिर हूवय्य ने शांत होकर सिर उठाकर नंज की तरफ देखा और गुस्से से कहा—"क्यों रे, रोता क्यों है?" खैर, तिम्मय्य ने अपने पत्र में कृष्णप्प की मृत्यु पर शोक प्रकट किया था। सीता के कुछ आराम होने पर संतोष भी प्रकट किया था अलावा इसके हूवय्य को मुत्तल्ली आने के लिए जोरदार निमंत्रण दिया था।

"क्या कहूं मालिक, सीतम्म का विवाह इस तरह रुक जायगा, सपने में भी किसी ने नहीं सोचा था!···" कहकर नंज फूट-फूटकर रोते हुए "कल शाम को

मेरी लड़की रंगी भी मर गई मालिक !" कह छाती पीटते, ऐसा रोने लगा कि छाती फट जायेगी उसकी। रास्ते में ही बैठ गया।

"हुआ क्या था रे उसको ?"

नंज ने रोते-रोते "बालग्रह···हाय, स्वामी, परमात्मा ने मुझे यह कष्ट क्यों दिया ? उसका मंदिर ढह जाय !" कह कोसने लगा।

हूवय्य ने उसे कई तरह से तसल्ली देकर खड़ा किया।

दोनों मुत्तल्ली के पास आये, तब नंज अपनी झोंपड़ी को देख, रोते हुए उसके भीतर गया। हूवय्य अकेला आगे बढ़ गया, और भविष्य में होने वाले अपनी पुत्री के विवाह के लिए श्यामय्य गौड़जी ने जो काम कराये थे उनको देखते फाटक के भीतर गया।

३७

वर को ही कन्या की मंगनी करनी होगी ?

"जीजी, रंगी मर गई, कहते हैं री," लक्ष्मी ने अपने से बन पड़े गांभीर्य, शोक से कहा।

सीता को यह खबर पहले ही पता लग गयी थी। उसका मन दूसरी चिंता में लगा था, अतः वह नहीं बोली। खिड़की की सलाखों में से आकाश की ओर देखते रोगशय्या पर सोई थी। पिछले दिन कृष्णप्प की मरणवार्ता जब नई-नई आई थी, तब उसकी मानसिक स्थिति डरावनी-सी हुई थी। पर धीरे-धीरे हलकी हुई। उससे भी आश्चर्य-कारक ढंग से शारीरिक स्थिति बेहतर होने लगी। शाम होने के पहले ही, कई दिनों से किसी उपचार से न छूटने वाला ज्वर आज अपने आप पूरा छूट गया ! गौरम्माजी तो तिरुपति तिम्मय्य के नाम पर रखी गई मनौती सार्थक, सफल हुई जानकर, अपनी भक्ति पर आप ही रीझकर खूब रोई। सीता ने भी मां की राय का समर्थन करके उसी पर विश्वास किया।

अपना सुनाया महत्त्वपूर्ण समाचार को भी अनसुनी करके चुप रहने वाली अपनी जीजी की तटस्थता न सह सकने से लक्ष्मी ने फिर कहा, "जीजी, रंगी मर गई कहते हैं री। कहां गई ?" उसके एक हाथ की उंगली जेब के निचले हिस्से में बने छेद में से बाहर निकल छिपकली की टूटी-कटी पूंछ के समान हिलती, यह घोषणा कर रही थी कि अपनी मालकिन के प्रश्न में गंभीरता होने पर भी मन में वह नहीं थी।

"कहां गई यानी ? मर गई।" सीता ने कहा।

"मर गई !" कह कुछ महान विषय जानने वाली की तरह अभिनय-सा करने का प्रयत्न करके लक्ष्मी ने फिर शक्की बनी हुई-सी होकर कहा, "मरकर कहां गई ?"

"स्वर्ग को।"

जीजी को उस विषय के जिक्र से दुःख होगा, बेचारी लक्ष्मी को कैसे मालूम हो ?

"स्वर्ग है कहां ?"

"वादल, आकाश, नक्षत्र सव पार करके जाने पर स्वर्ग मिलता है।"

घुटने के वल भी अच्छी तरह न चल सकने वाली रंगी ने उतनी दूर का प्रवास कैसे किया? लक्ष्मी की समझ में कुछ नहीं आया।

"रंगी गई कैसे री उत्ती दूर?"

सीता ने अपनी जानकारी के अनुसार स्वर्ग का सौंदर्य, मरे हुओं को देवता से उठा ले जाने का विचार छोटी वहन को वता दिया।

यह सव सुनकर लक्ष्मी को वड़ी खुशी हुई। रंगी अगर उतने सुख की जगह गई है तो उसके माता-पिता इतना छाती-माथा पीट-पीटकर क्यों रोये, वह समझ न पाई। फिर पूछा, "हम भी जायं क्या री वहां।"

"थू! अमंगल मत वोल।" कहा सीता ने।

लक्ष्मी को वहुत आश्चर्य हुआ। उतनी अच्छी जगह जायं, कहने पर जीजी कहती है, न, अमंगल मत वोल?

तो भी जैसे श्रुति की शरण में मति गई, वेद की शरण में विचार गये और मुंह वन्द कर लिया, वैसे थोड़ी देर चुप रहकर "रंगी कव वापस आयगी?" दूसरा विषय निकाला।

सीता ने कुछ नाराज होकर कहा, "अव वो वापस नहीं आयगी।"

जीजी के जवाव से लक्ष्मी की मुग्धता पर वड़ी चोट लगी। पहले वताया गया वह स्वर्ग वाघ के मुंह से भी भयानक दीखा। जेव के सूराख में खेलने वाली उंगली स्तव्ध हो गई। किसी अज्ञात संशय से वह सीता के मुंह को टकटकी लगाकर देखने लगी। कुछ मिनट वैसे ही वैठी रही, फिर वह धीरे से उठकर कमरे से वाहर हो गई।

कृष्णप्प के साथ विवाह सूत्र से वंध जाना छूट गया, जिससे सीता भीतर ही भीतर खुश हो रही थी। मैं वीमार पड़ी मुझको देखने हूवय्य मामा क्यों नहीं आये, इस विचार से दुःख के कारण चिंताग्रस्त हुई सीता वहुत देर तक न सो सकी थी। तभी चिन्नय्य हूवय्य के साथ कमरे में आया।

छाती तक दुशाला ओढ़े, खिड़की के परे आकाश की ओर देखती सीता ने अचानक अपने वड़े भाई के साथ हूवय्य को अपनी ओर आते हुए देखा। तुरंत गर्दन तक शाल खींचकर पलकें मींच लीं। चेहरे पर गुस्सा, दुःख न देखते तो कह सकते थे कि वह सो रही थी।

हूवय्य को देखते ही सीता के हृदय में अनेक भाव उद्रिक्त हुए: उनमें सर्वप्रथम और मुख्य था हर्ष। उसके लिए वहुत दिनों से कातर वनी वह अपनी इष्ट-मूर्ति को देख खुश हो जाने के वजाय क्या करेगी? लेकिन मनुष्य में अभिमान एक चीज है न? अपने प्रीतम को देखने से संतोष होने पर भी सीता ने स्वाभिमान से, मान-मनौती से उसे प्रदर्शित न करने का निश्चय किया। उसके वाद प्रियतम के

इतने दिनों तक न आने से कोप-दुख एक के पीछे एक आये। उसके बाद "हाय मुझे ज्वर से कराहते देख, पीड़ा का अनुभव करने का उनको अवसर नहीं मिला न?" यह सूक्ष्म प्रतिहिंसा का भाव भी उत्पन्न हुआ। इन सब भावों की परस्पर क्रियाओं के फलस्वरूप पलकें मुंदी हुई उसकी आंखों से आंसू झरझर नीरव हो झरने लगे।

बिस्तर के बगल में बैठे हूवय्य, चिन्नय्य कुछ मिनटों तक नहीं बोले। कमरे का निःशब्द शकुन पूर्ण-सा होकर भरी-सा लग रहा था। हूवय्य का हृदय भी सीता के प्रति के प्यार और करुणा से, अपने प्रति कोप-भर्त्सना से भाव पूरित हो जाने से पहले उसे भी बोलना असंभव हुआ। एक-दो बार थूक निगलकर गले में ही खांसकर स्थिर चित्त होने का प्रयत्न किया तो भी आंखों में आंसू के भर जाने से दृष्टि मंद हुई थी।

"अब कैसी है सीता?" कह बात शुरू करके चिन्नय्य ने बहन के माथे पर स्नेह से हाथ रखा।

सीता ने आंखें नहीं खोलीं। आंसू पहले से भी अधिक होकर लगातार बहने लगे। चिन्नय्य और हूवय्य ने उसकी गलत व्याख्या की: कृष्णप्प की दुरंत घटना के कारण वह रो रही है।

चिन्नय्य ने अपनी छोटी बहन को धीरज बधाने के लिए "तुम रोती क्यों हो? जो होना था सो हो गया;...कौन क्या कर सकता है? ललाट का लिखा कौन मेटनहार है? जो कुछ भाग्य में लिखा है उसके अनुसार होता है...।" करुणा-पूर्ण ध्वनि से कहने लगा। सीता उसकी बातें न सह सकी। वह बिलख-बिलखकर रोने लगी। मगर उसके शोक में कृष्णप्प की अकाल मृत्यु का अनुताप नहीं था। अपने दुःख को अपने को नापसंद, अपने को अनिष्ट व्याख्या कर रहे हैं ये, इस कारण से रुलाई में संताप मात्र था।

हूवय्य बिना बोले, बिना हिले-डुले, सिर झुकाये बैठा था। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे।

चिन्नय्य ने सीता का हाथ पकड़कर उससे कहा, 'छिः! ऐसा मत रोओ। फिर बुखार चढ़ जायगा। देखो तुम्हारे हूवय्य मामा आये हैं।"

सीता ने फूट-फूटकर रोते एक बार आंख खोलकर हूवय्य को रोते देख फिर अपनी आंखें मूंद लीं। अपना प्रियतम भी अपना कष्ट देखकर रो रहा है, देख उसको कुछ तसल्ली-सी हुई।

'यह क्या झंझट शुरू हुआ?' सोचकर चिन्नय्य ने कहा, "हूवय्या, खेत की तरफ जाकर आयें, आओ।" कहकर, उसकी इच्छा न होने पर भी उसको भी अपने साथ लेकर "अब जितना भी उससे बोलो, वह रोयेगी! फिर बुखार न चढ़ जाय!" धीमे स्वर में कह, दरवाजा पार करके गया।

अंत में न हूवय्य ने, न सीता ने एक बात की। हूवय्य के मन में तो

'सीता सचमुच कृष्णप्प की मृत्यु पर रो रही है, उसने उसी को मन से चाहा था, अव भी उसका प्रेम उसी पर है।' यह गलत भाव प्रवलतर हो रहा था।

जब कभी वह इस तरह सोचता उसका मन हताशा से और उद्वेग से विक्षुब्ध होता था। मुत्तल्ली आना जितना प्रिय लग रहा था अब उतना ही प्रिय वहां से लौट जाना लग रहा है।

खेत और वाग में घूमकर लौटने के इरादे से निकले थे दोनों; मगर फाटक पार करते समय यकायक हूवय्य ने कहा—"चिन्नय्य, अव मैं घर जाता हूं।"

चिन्नय्य एकाएक यह निर्णय सुनकर चकित हुआ; उसने कहा, "क्यों अव कैसे जाओगे? भोजन का समय होने को आया।"

"परवाह नहीं, आधे-पौन घंटे में घर पहुंच जाऊंगा।"

"इतनी जल्दी क्या पड़ी है? अभी-अभी आये हो! पिताजी भी सीतामने से नहीं लौटे हैं। दुपहर के बाद आयेंगे शायद, उनसे मिलकर बातें करके जाना ही मुनासिब होगा।"

हूवय्य ने कुछ देर आंखें खोले ही सोचा—क्या श्यामय्य गौड़जी सीता के वारे में मुझसे वोल सकेंगे? इसके अलावा सीता से एक-दो बातें किए विना जाना भी ठीक नहीं। उसका मन अच्छी तरह जान लेना ही उत्तम है। आखिर जो कुछ भी हो जाय, पहले उतावली नहीं करनी चाहिये, यह निर्णय करके उसने चिन्नय्य की वात मान ली और उसके साथ खेत की तरफ गया।

दुपहर का भोजन हुआ। हूवय्य अपना वायां हाथ पकड़कर खींचती, कुछ वकवास करती आती हुई लक्ष्मी के साथ सीता से वातें करने गया।

थोड़े समय में मामा तथा जीजी के वीच में गंभीर वातें होने लगीं और उनका लक्ष्य लक्ष्मी की ओर न रहा, इसे जानकर लक्ष्मी अभिमान भंग से, असंतोप से वहां से उठी और वहां गई जहां उसे गौरव, मान-सम्मान, पुरस्कार मिलता था यानी वह काले के पास गई।

जैसे-जैसे वात वढ़ी सीता ने भी दिल खोलकर अपनी वीमारी की अवस्था में देखे सपनों, भोगी यातनाओं के वारे में तथा हूवय्य मामा की प्रतीक्षा करके हताश होने की वात भी विना लुकाव-छिपाव के सरल हृदय से वता दी। मगर अपने प्रति सीता का अगाध प्रेम है, जानने पर भी हूवय्य अपना पूरा मन खोल न सका। अपने न आने के कारण वताकर और दूसरे विपय पर वोलने लगा। किसी ने कृष्णप्प के वारे में एक भी वात नहीं उठाई।

हूवय्य ने जब सीता के सोने का कमरा छोड़ा तव उसका मन दूसरे विचार से गरम हुआ था। सीतेमने सिगप्प गौड़जी अपने पुत्र कृष्णप्प के लिए सीता की मंगनी के लिए गये थे, उनके पहले मैं खुद जाकर सीता की मंगनी करता तो श्यामय्य गौड़जी माने विना न रहते। अलावा इसके अव जो घटनाएं हुईं उनके

बारे में संदेह एवं कष्टों के लिए अवकाश न रहता। शायद ये घटनाएं भी न होतीं। आखिर किस तरह सीता का पराई होने का प्रसंग चूक गया विधिवश से। अब कम से कम खुद होशियारी शीघ्र न बरतूं तो श्यामय्य गौड़जी अपनी कन्या सीता को किसी और के साथ विवाह करके देने की स्वीकृति दे दें और फिर सारा मामला न बिगड़ जाय, अनहोनी हो जाय! इस तरह कहीं हो जाय तो सीता का और, दोनों का जीवन बरबाद हो जाय, इसमें संदेह नहीं। इसलिए उसने निर्णय किया कि श्यामय्य गौड़जी सीतेमने से ज्यों ही लौट आवेंगे त्यों ही उसने अपनी इच्छा कह दूं और उनको मनवा लूं।

उसके बाद हूवय्य उठते-बैठते, यहां-वहां जहां जाता अपना निर्णय श्यामय्य गौड़जी से कैसे कहूं, कैसे शुरू करूं, कैसे समाप्त करूं आदि के बारे में सोचता रहा। वह इस विचार परंपरा में तल्लीन था।

उस समय कोई उससे बोलने गया तो वह पुस्तक पढ़ने का बहाना करके बिना बोले हवाई बनाने में तन्मय था। उसको एकाएक कई बार मूर्छा रोग आता है यह अफवाह जिन्होंने सुनी थी उन सबने सच भी मान लिया था, मगर वे सब चुप थे। आज चिन्नय्य को भी शंका-सी होने लगी इस बारे में।

पिछले दिन दुपहर को चार बजे पुट्टण्ण जाकी को तीर्थहल्ली के अस्पताल ले गया था। आज वह मुंह लटकाकर मुत्तल्ली आया। उसको देख हूवय्य ने दिवा-स्वप्न से जाग्रत हुआ-सा होकर पूछा—"जाकी कैसा है?"

चिन्नय्य, गौरम्माजी, लक्ष्मी, काला आदि सब पुट्टण्ण को घेरकर कातरता से खड़े हो उसकी बातें सुनने लगे।

पुट्टण्ण ने जो कुछ हुआ वह सब आधे घंटे तक सविस्तार, सविवर सुनाया बीच-बीच में उमड़ आते हुए आंसुओं को पोंछते हुए।

रास्ते में बारिश हुई, जोर की हवा बहने लगी थी। तभी जाकी बाघ, कृष्णप्प, शिकार इनके बारे पागल की तरह अंटसंट बकने लगा। बीच-बीच में दर्द के मारे इस तरह से कराहता जिसे सुन छाती फट-सी जाती। एक-एक बार "कृष्णप्प गौड़जी! कृपा करके मत जाइये! घायल बाघ!" जोर से चिल्लाकर उठकर भागने की कोशिश करता था। जब पुट्टण्ण ने उसको रोका तो उसे मनमाने उसने कोसा। अंत में बहुत कष्ट से तुंगा नदी के नावों के स्टेशन की बालू पर गाड़ी को छोड़ दी; नाविकों से प्रार्थना कर; जाकी को नाव में सुलाया; नदी के उस पार पहुंच, कपड़े के दूकानदार रामराव जी की गाड़ी में उसे अस्पताल ले गये!...वहां जाने के थोड़ी देर बाद उसके होश उड़ गये। डॉक्टरों ने घावों पर दवा लगाई; इंजेक्शन दिया। बड़े अच्छे डॉक्टर थे! अस्पताल में ठहरने की जगह दी। रात-भर पुट्टण्ण को नींद नहीं। जाकी की प्रज्ञा आती, फिर जाती। जाकी एक-एक बार बाघ के शिकार के बारे में अस्पष्ट कुछ कहता और चौंक पड़ता, दो-तीन बार

गये प्राण फिर लौटे। "आह! वह दर्द, वह कराहना, राम! राम! हमारे शत्रु को भी ऐसा न हो! सवेरे प्राण निकल गये!...उसके बाद पुलिस वहां आई। न जाने क्या-क्या पूछकर जवाब लिख लिया। उसके बाद उसकी जात के ईसाई सब मिलकर जाकी की लाश को अपने गिरिजाघर ले गये। मुझे तो अन्न का एक दाना भी इतने समय तक नहीं मिला। अंत में सिर्फ नाश्ता करके आया।... बेचारा! कितना अच्छा आदमी! अन्नदाता मालिक के लिए अपनी जान तक दी न..."

पुट्टण्ण ने सुनाकर समाप्त किया तो सबने एक आह भरकर दीर्घ उसांस छोड़ी। गौरम्माजी ने पुट्टण्ण से "हाथ-मुंह धोकर खाना खाने को आ जाओ" कहा, और काले से कहा—"चलो, पत्तल बिछा दो। मैं अभी आती हूं।" फिर वह सीता के कमरे में गईं।

शाम को हूवय्य के अनुमान के अनुसार श्यामय्य गौड़जी सीतेमने से आये। उनका मन वहां की दुर्घटनाओं से शोकतप्त एवं विदीर्ण हुआ था। उनको देखने से भासता था जैसे हम उजाड़ कुआं देखते हों। मामा की स्थिति देखकर हूवय्य को अधैर्य हुआ। इस समय अपना निर्णय बताना उसे लज्जाजनक लगा। समय ठीक नहीं दीखा।

एक बार बोलने का मौका मिला। श्यामय्य गौड़जी ने कानूर के घर और जायदाद के बंटवारे की बात उठाई और उसे किसी तरह से रोकने की सलाह दी। क्योंकि कानूर का घराना मुत्तल्ली के घराने का जितना ही अमीर था। फिर भी चंद्रय्य गौडजी के अंधेर दरबार के कारण वे श्यामय्य गौड़जी के कर्जदार बने थे। इसलिए श्यामय्य गौड़जी रिश्तेदारों के घराने के और अपने कर्ज के हित की दृष्टि से भी सलाह देने लगे थे।

हूवय्य ने सकारण बता दिया कि बंटवारा न होने देना मुमकिन नहीं है उसके बाद मैसूर से आने के उपरांत जो बातें हुईं उन्हें विस्तार से बता दीं जो बताने लायक थीं।

श्यामय्य गौड़जी ने ऊब के स्वर में कहा, "जो चाहे कर लो।" फिर वे चुप हो गये।

इस बातचीत के उपरांत सीता की मंगनी करने में हूवय्य को संकोच हुआ। इतना ही नहीं, दामाद होने वाला भयंकर दुर्घटना में मर गया, उसके दूसरे ही दिन वह प्रस्ताव करना उसे अविवेक-सा लगा। थोड़ी देर में हूवय्य फिर ज्वालाग्रस्त हो गया। अभी मैं एक बात श्यामय्य गौड़जी से न कहूं तो वे और किसी को वादा करें तो कितना बड़ा प्रमाद होगा? यह विचार भी उसे बड़े से बड़ा अविवेक करने के लिए प्रवृत्त करेगा। यह विचार उसको जलाने लगा। जो भी हो, मामा से अपना विचार कहने का उसने निर्णय कर लिया। कब कहना? शाम को?

मुत्तल्ली से कानूर जाते समय ! क्योंकि मुत्तल्ली से रवाना होते समय कह दिया जाय तो आगे लज्जा का अनुभव करना अपने आप चूक जाता है ! मैं आसानी से लज्जानुभव से बच जाऊंगा।

इस तरह सोचकर, कहने वाली बातों का क्रम विधान मन में ठीक करके अंधेरा होने के ठीक पहले हूवय्य श्यामय्य गौड़जी के पास उद्वेग से गया।

"मैं हो आता हूं मामाजी !"

"अंधेरा हो गया न ?"

"कोई हर्ज नहीं। चांदनी है। साथ में पुट्टण्ण भी है।"

"तुम्हारे घर जाने के जंगली रास्ते में चांदनी रहती क्या, न रहे तो क्या ? कल सवेरे जाने से नहीं चलेगा ?"

कानूरु ही जाने की इच्छा करने वाले हूवय्य ने यकायक कहा—"सीतेमने जाकर, आज रात को वहां बिताकर, कल सुबह घर जाऊंगा। सारा मैदानी रास्ता है; उतनी तकलीफ़ नहीं होगी।"

"तुम्हारे घर से दूर पड़ता है न ?"

"नजदीक के रास्ते से जाऊंगा।"

"वह भी जंगल में से होकर जाता है न ?"

"परवाह नहीं ! पुट्टण्ण है। यही नहीं, सिगप्प चाचा से भी मिलकर जाऊं !"

"तो जाओ। देर हो रही है।"

हूवय्य जो बताना चाहता था, कुछ भी कहे बिना, श्यामय्य गौड़जी से विदा लेकर, सीता, गौरम्माजी, चिन्नय्य से भी कहकर पुट्टण्ण के साथ सीतेमने के लिए रवाना हुआ।

संध्या हो रही थी। अंधेरा घना होता जा रहा था। शब्द को भगाकर निश्शब्दता संसार में फैल रही थी। आकाश में चमकने वाला सुधांशु अमृतकिरणों की वर्षा करने लगा था।

३८

कर्ज चुकाने के लिए मुर्गे की चोरी

कृष्णप्प की भयंकर मरणवार्ता गांव-गांव में फैल गई और उसने शिकार के प्रति लोगों के मन में जुगुप्सा उत्पन्न कर दी। प्रतिदिन बंदूक लेकर जंगल जाने वाले मृगया व्यसनियों ने भी डरके मारे जंगल में जाना कम कर दिया। माता-पिता ने अपने लड़कों को, पत्नियों ने अपने पतियों को कृष्णप्प की घोर घटना का उदाहरण देकर शिकार के लिए जाने का विरोध किया। जहां भी जाएं वहां यही कहानी सुनने को मिलती। सबके मुंह में वही कहानी, वही बात। स्त्रियां रसोई बनाते समय, धान कूटते समय, ईंधन जुटाते समय, कृष्णप्प के माता-पिता के शोक के बारे में दर्द भरी बातें करती थीं; बड़े बुजुर्ग कहते थे कि कृष्णप्प में आखेट की अत्याशा थी, जो उचित नहीं थी। किसी न किसी दिन ऐसा होगा, वे पहले से ही जानते थे। जो जीना चाहते हैं वे क्या कभी घायल बाघ के पीछे जाते हैं? सिंगप्प गौड़जी को ऐसा कष्ट न आना था इस उम्र में, इस तरह व्याख्या की बुजुर्गों ने। गरम-गरम खून के युवकों ने अधिक समालोचना किये बिना, कृष्णप्प के शेर दिल का, साहस का, जाकी की स्वामिभक्ति का, बंदूक बांधने की रीति का, बाघ के कूदने के ढंग का, कृष्णप्प अगर जिंदा रहता तो अब तक दुलहा बना रहता, कन्या का पुण्य ही होता, इस तरह सालंकारिक सरस वर्णन करके रसास्वाद किया। छोटे बालकों ने तो सबके मुंह से नाना तरह की बातें सुन-सुनकर, सबकी बातों को अपनी इच्छा के अनुसार मिलाकर अपनी एक "भारत कथा" ही गढ़ दी थी।

सारांश यह कि पहले-पहल जो वार्ता गरम खून की तरह गरम थी वह जैसे-जैसे दिन बीतते गये वैसे-वैसे ठंडी पड़ती बासी होने लगी थी, कि एक दूसरी वार्ता देहातियों के मन पर आक्रमण करके दावाग्नि की तरह एक से दूसरे तक कूदकर फैल गई : चंद्रय्य गौड़जी और हूवय्य गौड़जी के बीच मन-मुटाव हो गया है। हूवय्य मैसूर नहीं जा रहे हैं, पढ़ाई छोड़ देते हैं; कानूरु घर का बंटवारा हो जाता है; नागम्मा हेग्गडिति अकेली होने से हूवय्य गौड़जी अपने हिस्से की जमीन खुद जुतवाते हैं! पहले से देश के लिए भूषण की तरह रहा एक बड़ा संयुक्त घराना

अब टूटने वाला है ! मुत्तल्ली श्यामय्य गौड़जी, बालरु सिंगप्प गौड़जी, नेल्लुहल्ली पेट्टे गौड़जी, बैदूरु बसवे गौड़जी, सबने मिलाकर पंचायत करके बंटवारा न होने देने के लिए बहुत प्रयत्न किया, कहते हैं। मगर चंद्रय्य गौड़जी ने जिद पकड़ी है। हरगिज नहीं होने का। उसकी मेरे साथ बिलकुल नहीं पटती ! वर्षा शुरू होने के पहले ही बंटवारा हो जाना चाहिये। अगले हफ्ते में या उसके अगले हफ्ते में बंटवारा होकर 'इकरारनामा' भी तैयार हो जाता है, कहते हैं !

कुछ के लिए तो यह खबर कृष्णप्प के घोर मरण से भी ज्यादा दुःख का कारण बन गई। उसके आस-पास के गांवों में एक छोटी-सी क्रांति ही अपना कदम रखेगी जैसा दीखने लगा। उसमें भी कानूरु चंद्रय्य गौड़जी के किसानों को व मजदूरों को, छोटा कर्ज देने वाले किसानों एवं मजदूरों को बैंक दिवाला निकलने से व्यापारियों को होने वाले दुःख से भी अधिक क्या, दुगुना दुःख हुआ। कौन-कौन मजदूर और किसान किसके-किसके हिस्से में जायंगे ? अपना पैसा डूब जायगा या नहीं ? अगर पहले ही मालूम हो गया होता कि इस तरह होने वाला है तो हम कर्ज देने का झंझट ही न करते, किसी तरह कर्ज की रकम वसूल कर लें, फिर कभी कर्ज देने के नाम से बचे रहें आजन्म, जन्म-जन्मांतर, पीढ़ी-दर-पीढ़ी इत्यादि सोचकर छोटे महाजन कार्य प्रवृत्त हुए।

इस तरह कार्य प्रवृत्त होने वालों में पहला था ताड़ी का दूकानदार। कानूर में, अन्य गांवों की तरह उसके कई कर्जदार थे। उनमें तोंदवाला सोम, बेलर बैरा, उसकी पत्नी सेसी, उसका लड़का गंग, बेलर सिद्द, गाड़ीवान सिंग, सेरेगार रंगण्ण सेट्टजी के घाट के मजदूर शामिल थे।

एक दिन शाम को अंधेरा होने के पहले ताड़ी का दूकानदार सोम के निवास पर आया। यह खबर औरों से पाकर, रात को बहुत देर तक सोम अपने घर नहीं गया। बाहर ही कहीं छिपकर बैठा था। दूकानदार ने सोम को मन-माने कोसा और दूसरे दिन फिर आने की खबर देकर चला गया। उसके जाने का समाचार पाकर फिलहाल जीत गया, सोच, सोम खुशी से घर आया और चटाई पर बैठा ही था कि नहीं, बाहर झुरमुट में छिपकर ताक में बैठा ताड़ी का दूकानदार फिर आ गया। "भरौता छोड़ गया था" कहकर, ढूंढ़ने वाले की तरह अभिनय करके सोम को देख "कहां था ? अब तक राह देख-देखकर तंग आ गया ! मेरा कर्ज चुकाओगे कि नहीं ?" कहते सोम के साथ चटाई पर ही बैठ गया। अपने से भी होशियार बने दूकानदार से अवाक् हो सोम ने कहा—"अजी, इतने दिन सब्र किया, दो दिन और सब्र करो। तुम्हारा कर्ज मैं क्यों डुबाऊं ? चुका दूंगा !"

"यह सब रहे, तुम हमेशा ऐसा ही कहते हो। अब मैं बहुत दिन नहीं ठहर सकता ! कहते हैं, कहते हैं, गौड़जी का घर भी बंट जायगा !"

"हां, बंट जायगा तो क्या ? मैं अपना पैसा नहीं देता ?"

"अच्छा, रहने दो। पहले दे दो, फिर बात करो।"

इस तरह बहुत बहस हो जाने के बाद सोम ने कहा—"कल जरूर चुका दूंगा।" तब ताड़ी का दूकानदार वहां से चला गया।

सोम रात को साढ़े तीन बजे उठा, घर का दरवाजा धीरे से खोलकर बाहर निकला। चांदनी रात थी। चलकर हलेपैक के तिम्म की झोंपड़ी के पास आया। तिम्म का कुत्ता भौंकते पास आया। उसको सोम परिचित लगा तो वह दुम हिलाने लगा। सोम सीधे धीरे से मुर्गी के घर गया। उसका दरवाजा खोलकर, अंदाज से एक बड़े मुर्गे को बाहर खींचा, कुछ मुर्गियों ने आवाज की। मगर वह गहरी नींद में सोये हुओं को जगा सकने वाली नहीं थी। यानी वह बुलंद नहीं थी। मुर्गे को सोम ने बगल में ऐसा दबाया कि वह मर भी न सके और न बांग ही दे सके। वह सीधे ताड़ी की दूकान पर गया।

इस तरह चोरी के व्यापारों से अधिक पैसा कमाने वाले ताड़ी के दूकानदार ने दूसरे दिन कर्ज चुकाने के लिए सोम को तंग नहीं किया। न सताया ही।

तिम्म ने सवेरे उठकर देखा कि मुर्गियों के घर का दरवाजा खुला है; किसीने मुर्गे की चोरी की है, पुकार मचाई। सोम और बाकी लोग तिम्म के घर गये; देखा और कहा कि किसीने चोरी नहीं की होगी, जंगली बिल्ली ने की होगी। इस तरह कहकर तिम्म को समझाकर उन्होंने समाधान किया। तिम्म की पत्नी अपने मोटे मुर्गे के लिए बहुत रोई और जंगली बिल्ली को खूब कोसा तब तक जब तक उसका मुंह नहीं थक गया।

वेलर वैरे ने भी ताड़ी बेचकर कर्ज चुकाने का वादा करके ताड़ी के दूकानदार को धीरज बंधाया। उसकी पत्नी सेसी ने भी कहा कि मुर्गी की बच्चियों को बड़ा करके, बेचकर कर्ज चुका दूंगी। यह इस प्रकार वह प्रार्थना के स्वर में कहकर दूकानदार के तकाजे से पार हो गई। मगर गंग लड़का दूकानदार की आंख चुराकर इधर-उधर भटकता फिरता। उसने साजिश कर ली थी कि उसके बाप को यह न मालूम हो जाय कि वह ताड़ी के दूकानदार का कर्जदार है। कई बार उसने घर के पिछवाड़े में उगाई गई तरकारियों—बैंगन, कद्दू, सेम, केले आदि—की चोरी करके कर्ज चुकाया था। कतिपय बार गौड़जी के घर से कुदाल, कुल्हाड़ी, फावड़ा आदि चुराकर, कर्ज चुकाया था। ताड़ी पीने की लालसा ने उसे बचपन से चोरी का प्रशिक्षण देकर उसमें प्रवीण बना दिया था।

लड़का आंख चुराकर अपने को कर्ज से छुटकारा पाने के लिए इधर-उधर घूम रहा है यह जानकर दूकानदार ने उसके बाप से कह दिया। उसे सुनकर बाप को ऐसा लगा कि उसके सिर पर गाज गिर गई हो। सपने में भी उसने नहीं सोचा था कि उसका लड़का उससे भी बढ़कर ताकतवर बन ताड़ी के दूकानदार का कर्जदार बना है। वह अपने बेटे को पकड़कर लाया और उसे ताड़ी के दूकान-

दार के आगे खूब पीटा। ऐसा करने से उसने समझा था दूकानदार तृप्त होगा और लड़का छूट जायगा, मगर उसकी समझ गलत निकली। दूकानदार ने कर्ज चुकाने की मांग की। बैरे को और भी गुस्सा आया। उसने कहा—"छोटे-छोटे लड़कों को कर्ज देने के लिए तुमसे किसने कहा ? तुम जो चाहे सो करके उससे कर्ज चुका लो। मुझसे मत कहो।"

ताड़ी के दूकानदार ने गंग को पकड़कर जोर से पूछा—"कर्ज चुकाओगे कि नहीं ?" फिर गंग उसे अपने साथ बुलाकर कानूरु घर के पास के जंगल ले गया। वहां जाकर एक गीली-गीली जगह दिखाई। दोनों ने मिलकर उसे खोदा तो वहां दो-चार रेज़र, दो पीतल के लोटे, एक रंभा, एक कुदाल, कुछ हलके फाल मिले।

"किसने इन्हें यहां गाड़कर रखा था रे ?" ताड़ी के दूकानदार ने पूछा।

"गाड़ीवान निगय्याजी ने !"

"तुमको कैसे मालूम हुआ रे ?"

"मैंने जंगली मुर्गी पकड़ने का जाल बिछा दिया था। उसमें मुर्गी फंसी है या नहीं देखने आया था। तब निगय्य को यहां खोदते देखा। हां, छिपकर देखा !"

"वह जानते हैं कि तुम छिपकर देख रहे थे ?"

"नहीं।"

"तब तुम चुप रहो। किसीसे मत कहो। तुमको जितनी चाहिये उतनी ताड़ी दूंगा।"

"भगवान की कसम ! मैं किसीसे नहीं कहूंगा।" गंग लड़का फूला न समा कर बोला।

दूकानदार खुद कुछ सामान ढोकर, कुछ गंग से ढुलवाकर दूकान ले गया। उस दिन गंग को सूखी मछली और ताड़ी-शराब की दावत मिली !

गाड़ीवान निग ने उन सामानों को गाड़कर रख दिया था, सच है। मगर वे चोरी के नहीं थे। उसके वे अपने थे जब उसकी पत्नी जीवित थी तब अलग घर बसाने के समय खुद की कमाई से उसने उनको खरीदा था। पत्नी की मृत्यु के बाद उसने खेती छोड़ दी। घर का नौकर बना और गाड़ी चलाने का काम उसको सौंपा गया। इस तरह वह गाड़ीवान बन गया। तो भी अपने सामान उसने घर की अटारी पर एक कोने में सुरक्षित रखे थे। घर के बंटवारे के समय अपने सामान भी बंटवारे के सामानों में न मिल जायं, इस ख्याल से, वह उन्हें यहां-वहां गाड़कर रखने लगा था।

इस प्रकार घर के बंटवारे की बात तय हो जाने की खबर पाकर सभी किसान-मजदूर अपने-अपने सामानों का बचाव करने के व्यूहों में लगे थे तो घर के लोग भी चुप न रहे। वे भी अपने निजी सामानों के अलावा सब के हिस्से के सामान भी

जहां तक हो सके हथियाकर सुरक्षित रख लेने में लगे थे। सुब्बम्म-नागम्मा दोनों ने अपने विवाह के समय दिये गये सामानों को, जो मायके से लाये गये थे, अपने-अपने कहकर कमरे में भर लिये। उनका अनुसरण करके पुट्टम्मा-वासु दोनों ने अपने लिए आवश्यक वस्तुओं को अपना लिया। चंद्रय्य गौड़जी ने सेरेगार रंगप्प सेट्टजी से गुप्त बातें करके, बंटवारा पूरा हो जाने के बाद खुद को वापस देने के लिए उनसे वचन लेकर, कहिये साजिश करके घर की जायदाद के कुछ कीमती सोने के आभूषणों को और जानवरों को बहुत सस्ते में बेच दिया।

इस गड़बड़ी में चंद्रय्य गौड़जी का मन सब कुछ बंटवारे के क्रम की ओर, अपनी 'स्वयमार्जित' कमाई कहकर वाद करके उत्तमोत्तम खेत, बागों का गबन करने की योजना में किसी तरह मजबूत मजदूरों को—बंधकों को—अपने हिस्से में कर लेने के विचार में लग जाने से सुब्बम्म को प्रतिदिन दिये जाने वाले कष्ट कुछ कम हुए थे।

३९

वर्ड्सवर्थ-मैथ्यू आर्नल्ड

घर का बंटवारा होने के पिछले दिन प्रभात में करीब आठ बजे कानूरु घर की अटारी पर हूवय्य पिछले दिन हाथ लगा अंग्रेजी अखबार खोलकर देख रहा था। उसके पास ही कुछ दूरी पर दीवार से पीठ लगाके बैठे रामय्य एक पुस्तक पढ़ रहा था। दोनों पुस्तक पढ़ रहे थे, मगर उनका मन उनके विषय पर नहीं था। दोनों के मन दूसरे दिन होने वाले बंटवारे के बारे में, उसके बाद के अपने जीवन के बारे में आशंका, आलोचनाओं की परंपरा से भर गये थे। रामय्य की आंखों से बार-बार उमड़ते आंसू घर के बंटवारे के प्रति उसकी हृदयवेदना अभिव्यक्त करते थे। उसका चेहरा खिन्न हो गया था; शोक भार से कुम्हलाया-सा दीखता था। तब तक का सरल जीवन, वृहत् आशा से निर्मित प्रिय, मीठा, सुनहला सपना भी मटियामेट होने लगे थे। अब तक एकत्र रहा घराना (संयुक्त कुटुंब) कल दो हिस्सों में बंट जायेगा! घर बसाने के प्रथम दिन से एक ही रसोईघर में जलती आग अब दो रसोईघर में जलेगी। उस चिर परिचित रसोईघर में मथनी के खंभे के निकट बैठ बड़े भैया को छोड़ अब भोजन करना पड़ता है। भोजन के समय होने वाले सारे के सारे स्वादिष्ट संभाषण थम जाते हैं। एक के घर रिश्तेदार आवें और दूसरे उनको परायों की तरह उदासीनता से देखें तो कितना असुंदर, कितना भद्दा, लगेगा! एक के घर में रसोई देर से बने तो दूसरे उनको छोड़कर कैसे भोजन करने जायं? एक ही रसोईघर में दो जगह चूल्हे होंगे। एक ही चौपाल में दो दिये जलेंगे दो हिस्सों में। इत्यादि सब सोचते-सोचते रामय्य का शोक खूब बढ़ने लगा। फिर उसने आंसू बहाये! उसको नहीं सूझ रहा था कि क्या किया जाय? धीरे से आंख उठाकर उसने हूवय्य की ओर देखा। वह उसे पढ़ने में तल्लीन दिखाई पड़ा।

रामय्य ने पूछा, "भैया, आज की पत्रिका में विशेष क्या है?"

हूवय्य पत्रिका देख रहा था, मगर उसका मन उसे पढ़ने में नहीं था। पत्रिका हाथ में लेने पर, पहले कुछ विषय उसने कुतूहल से पढ़ा। प्रधानतः स्वराज्य संपादन के प्रयत्न में भारतीयों को होने वाले कष्ट, राष्ट्रीय नेताओं के आन्दोलनकारी भाषण, ब्रिटिशों के दमनकारी शासन के व्यवहार, दक्षिण अफ्रीका में भार-

तीयों पर होने वाले अत्याचार, नेताओं की गिरफ्तारियां, ये सब पढ़ते-पढ़ते उसकी आत्मा को वेदना हुई। पर्वतीय प्रदेश के उस एक कोने में,गगनचुंबी पर्वतारण्य श्रेणियों से परिवेष्टित, दुनिया से अलग दूसरी दुनिया के जैसे कानूरु में पत्रिका ने ही एक महान गवाक्ष-सी होकर, हूवय्य की कल्पना की आंखों को बाहर के विशाल संसार के भव्य घटनाओं को, महद् व्यापारों को महा व्यक्तियों को दिखाया, प्रदर्शित किया! हूवय्य को लज्जा, आशा, शोक, जुगुप्सा, क्रोध सब हुए: अपना महात्त्वाकांक्षा का जीवनादर्श कैसी कीचड़ में कदम रख गड़ गया है! बाहरी दुनिया, कैसे-कैसे, कितने महा कार्यों में लग गई है! क्षुद्र परिवार के जाल में फंसकर मेरी आत्मा महान् संसार का आमंत्रण इनकार कर रही है! पहले महापुरुषों की जीवनियों को पढ़ते समय उनकी तरह स्वयं बनने का जो सुनहरा सपना देख रहा था उस सपने का जहाज किसी अज्ञात बालू के टीले से टकराकर चकनाचूर हो रहा है? हे जगदीश्वर! इससे पार पाने का हृदयबल, महाकांक्षा एव उसे साधने का दृढ़ मन कृपा करके दे दो!

विचार में यों डूबे हूवय्य को रामय्य का प्रश्न साफ सुनाई नहीं पड़ा। उसने पूछा, "क्या कहा?"

रामय्य, "कुछ नहीं, आज भी पत्रिका में विशेष क्या है, पूछा था, बस!" कहकर हूवय्य के पास आया और उसके आगे बैठ गया।

दोनों ने मिलकर थोड़ी देर पत्रिका में प्रकाशित सभी सद्सद्विचारों को पढ़ा: आलोचना की, टीका की, प्रशंसा की, खण्डन-मण्डन किया।

हूवय्य बोलते-बोलते एक दीर्घ उसांस छोड़कर "यह दुनिया हम जितनी कल्पना करते हैं, जितना अनुमान करते हैं उतना आदर्शप्राय नहीं है रामू। उसमें भी जब हम लड़के थे तब जो सपने हमने देखे थे उनको वास्तव में यथार्थ में लाना बहुत कठिन है, असाध्य है! अंत-अंत में सत्य असत्य से समझौता कर-करके, ऐसा हो जाता है कि दोनों के बीच का भेद ही नहीं मालूम होता।" कहकर ठेठ अंग्रेजी में ही बोलना शुरू किया। रामय्य ने भी उसी का अनुसरण किया। बहुत देर तक दोनों अंग्रेजी में ही बातें करते रहे। उनकी बातचीत के जुलूस में प्रसिद्ध भारतीय, पाश्चात्य, कैवल्य महाग्रंथ समूह भी क्रम या अक्रम से ही निकल गये।

मनोकामना विफल हो जाने से अत्यंत उत्साही युवक भी आखिर निरुत्साही बन सामान्य जीवनपथ पर चलकर कैसे अज्ञात हो जाते हैं, विचार आने पर रामय्य ने कहा—"वर्ड्सवर्थ ने कितना अच्छा भविष्य कहा है उस 'इम्मार्टलिटी ओड' में! गुरुजी ने क्लास में अपना सिर खपाकर उसका अर्थ समझाया था, तब वह मेरे अनुभव में आया ही नहीं, अभी-अभी आ रहा है:

"Heaven lies about us in our infancy!
Shades of the prison house begin to close.

Upon the growing Boy,
But He beholds the light, and whence it flows,
He sees it in his joy;
The youth, who daily farther from the east
Must travel, still is Nature's Priest,
And by the vision splendid
Is on his way attended.
At length the Man perceives it die away,
And fade into the light of Common day."

"वर्ड्सवर्थ ने अच्छा कहा है। और उस रुद्र चित्र को और भी परिणामकारी, प्रभावकारी रूप में अभिव्यक्त किया है मैथ्यू आर्नाल्ड ने उस 'रग्बि चापेल' में! वह चित्र मानो अब भी मेरी आंखों के आगे है, ऐसा लगता है! जब कभी मैं याद करता हूं तब पुलकित होता हूं! क्या तुमको वह भाग कंठस्थ है?"

"थोड़ा-थोड़ा…"

"उस मेज पर मेरी "गोल्डन ट्रेजरी" पड़ी है, ले आओ।…"

रामय्य तुरंत जाकर वह पुरानी पुस्तक लाया और उसे हूवय्य को दे दिया। वह अपने पसंद का नाटक या काव्य का अंश या गद्यांश भावपूर्ण प्रभावकारी ढंग से पढ़ता था। रामय्य सुनते-सुनते अघाता नहीं था।

हूवय्य 'गोल्डन् ट्रेजरी' के पन्ने पलटते-उलटते 'रग्बि-चापेल' का पृष्ठ खोलकर अट्ठावनवीं पंक्ति से पढ़ने लगा :

"What is the Course of the life of mortal men on the earth?—Most men eddy about here and there, eat and drink, chatter and love and hate, gather and squander, are raised aloft, are hurl'd in the dust, striving blindly, achieving nothing, and then they die, perish!…

"We, we have chosen our path—path to clear—purposed goal, path of advance! but it leads a long, steep journey through sunk gorges, o'er mountains in snow! Cheerful, with friends, we set forth-then, on the height comes the storm!…

"…Alas, havoc is made in our train! Friends who set forth at our side falter, are lost in the storm! We, we only, are left! With frowning foreheads with lips sternly compressed, we strain on on"…

हूवय्य ने पढ़ना रोककर, दीर्घ उसांस छोड़कर, सामने के अरण्याकाश की ओर देखते बैठ गया। उसकी आंखों में बूंदें थीं। चेहरा रक्तिम हो गया था। शायद उसमें आवेश आ गया था। हमेशा होने वाला भावोन्माद हो, समझकर, रामय्य अपने गालों, अपनी हथेली पर रख जमीन देखते बैठ गया।

दुमंजिले पर इन दोनों की भावुकता एवं आदर्श का मानो वास्तविक दुनिया परिहास कर रही हो, नीचे से अनेकों लोगों का हंसने का स्वर सुनाई पड़ा।

कुछ देर वाद हूवय्य ने रामय्य की ओर देखा तो रामय्य ने कहा, "भैया, क्यों यह वंटवारा नहीं टाल सकते हैं ?"

"कैसे टाल सकते हैं ? छोटे चाचाजी मानें तव न ?"

"मैं पूछकर देखूं ?"

"अरे, यह तुम्हारा पागलपन है? पूछोगे तो अभी अच्छी तरह गाली खाओगे, वस !"

फिर दोनों विना बोले चुप वैठे। वाग से एक मिचोल्ली पंछी 'मी-मी' वोला। कामल्ली पंछी गाते-गाते उड़ गया, न जाने क्यों, वह घर के पिछवाड़े में आवाज कर रहा था।

सीढ़ियां धड़धड़ आवाज करती पुट्टम्म ऊपर आई और कहा, "भैया, थाली लगा दी गई है। खाने के लिए आना।"

"अरे ! इतनी जल्दी भोजन ! अव वक्त क्या हो गया है ?" रामय्य ने आश्चर्य से पूछा।

पुट्टम्म ने कहा, "ग्यारह वज गये।"

"वे नीचे क्यों हंस रहे हैं ?"

"क्रॉप निकालकर चोटी रखने को कहा था पिताजी ने। नाई को आया देख वासु भागकर, मुर्गी के घर में छिपकर वैठा था···"

"मुर्गी के घर में ?"

"हां ! हां !मुर्गी के घर में ही छिपकर वैठा था ! सेरेगारजी, पुट्टण्ण, पिताजी मैं, हम सवने मिलकर उसे ढूंढ़ा। आखिर मिल गया ! अव उसे घसीटकर ले गये हैं और क्रॉप निकलवा रहे हैं, वह रो रहा है ! रो रहा है फुरसत ही नहीं ! लगातार रोए जा रहा है !

"वस करो ! सवने मिलकर मानो एक सैनिक को काट दिया। क्या उसका क्रॉप तुम लोगों की आंख की किरगिरी वन गया था ?"

यह वात पुट्टम्म को कुछ लग गई। वह "मैं क्या करूं भैया ? पिताजी ने कहा—" कहकर वात पूरी करने वाली ही थी कि रामय्य ने कहा, "वस करो अव !"

पुट्टम्म तनिक जोर से ही सीढ़ियां उतरकर गई। शायद उसको भैया की वात से गुस्सा आ गया था

४०

कानूरु की जमीन के हिस्से की पंचायत

आज कानूरु घर के बंटवारे का दिन। बहुत समय से एकत्र बहती आई संसार-नदी आज दो बनेगी। बाहरी दुनिया की दृष्टि में वह एक सामान्य घटना थी तो उन घर के लोगों को और उनके रिश्तेदारों को वह एक विषम प्रसंग था। एकैक के मन में एकैक भाव तरंग उठ रही है। हूवय्य, रामय्य को बहुत दुख हो रहा था तो चंद्रय्य गौड़जी और नागम्माजी को खुशी हो रही थी। सुब्बम्मा को भय एक तरह का और संभ्रांति कुल मिलाकर। पुट्टण्ण को चिंता इस बात की कि आगे क्या करूं। सेरेगारजी रंगप्पजी को दिग्विजय की खुशी इसलिए कि चंद्रय्य गौड़जी ने उनको अपने विश्वास में ले लिया था। इसपर उनको अभिमान भी हो रहा था। सभी मजदूरों में एक तरह का असहाय भाव था : जो कुछ भी हो, हमें क्या? कुल मिलाकर आज घर में सवेरे से गड़बड़ी व शोरगुल शुरू हो गयी है।

यथार्थ बात को न जानने वाले कोई आकर देखते तो समझ लेते या अनुमान करते कि आज इस घर में विशेष समारोह है! हर एक के चाल-चलन में एक अज्ञात निरीक्षण अभिव्यक्त होता था। चौपाल में पट्टी-पट्टी वाली दरी बिछी थी। उसपर जरी का साफ़ा बांधे गौड़, हेग्गड़े, नायक तकिये के सहारे लेटे, तश्तरी से पान-सुपारी लेकर खाते, किसी महान् कार्य करने आये हुए एलचियों की तरह खूब प्रसन्नता से बोलते बैठे थे। उनकी सभा का ओज इतना था कि उनकी बोली सुनकर बेलर बैरे ने झांककर देखा, अपने अपराध के लिए अपनी जीभ काट कर, लौटकर आया और वहां जमे हुए लोगों को भी भीतरी सभा के वैभव के दृश्य का वर्णन सुनाने लगा तो एक-एक करके सभी गये और उस चौपाल के मुख्य दरवाजे की दरार में से झांककर देखने लगे।

"बैरे भैया, उस खंभे से टेककर बैठे हैं न, वह कौन है?" सिद्द ने पूछा।

"ऐ! तुम नये अजनबी आदमी की तरह क्यों बोलते हो? बेट्टर बसवे गौड़जी हैं न!" कहकर बैरे ने इस तरह दांतों का प्रदर्शन किया कि मैं इस प्रदेश के बड़े-बड़े गौड़ों को जानता हूं, पहचानता हूं।

हलेपैक के तिम्म ने भी दरार में से देखा और लौटकर "जाओ, जाओ!

वैंदूरु बसवे गौड़जी दीवार से पीठ टेके बैठे हैं ! खंभे से पीठ टेककर बैठने वाले हैं वाचूरु सिंगे गौड़जी !" कहकर बैरे की सर्वज्ञता का खण्डन किया।

बैरे ने फिर झांककर देखा और प्रतिवाद किया, "जाओ, जाओ रे ! तुम क्या जानते हो ? क्या मैं बैंदूरु बसवे गौड़जी को नहीं पहचान सकता ?"

तिम्म ने अधिकार वाणी से कहा—"बस करो ! भाड़ में जाय तेरी पहचान ! जब-जब वे यहां आते हैं तब-तब मैं ही उनको ताड़ी देने वाला हूं। कहता है क्या, उनकी मुझे पहचान नहीं है !"

तो भी बैरे ने नहीं माना। दोनों मुंह लगे !

इतने में सिद्दने कहा, "ठहरो जी, झगड़ा क्यों कर रहे हो ? देखो, वहां सेरेगारजी आ रहे हैं, उन्हींसे पूछा जाय तो सब सही-सही मालूम होगा।"

वहां आये हुए रंगप्प सेट्टजी ने कानूर घर का बंटवारा करने के लिए आकर चौपाल में बैठे हुए साफे वाले गौड़ों, हेग्गडेयों, नायकों का एक-एक करके वर्णन किया और विवरण देते हुए पहचान बताई :

खंभे से पीठ टेके हुए जो बैठे हैं वे नेल्लुहल्ली के पेद्दे गौड़जी हैं···उनके पास दीवार से पीठ टेके बैठने वाले हैं मुद्दूरु भरमे गौड़जी···उनके इधर बैठे हुए जो नाटे-से हैं न, वे ऐटनूरु शेपे गौड़जी हैं।"

"लड़की को उड़ा ले जाने के संबंध में जो केस चला था उसी केस के गौड़जी हैं ये, क्या ?" बीच में ही बैरे ने सवाल किया।

सेरेगारजी ने धमकाकर कहा, "वह लेकर तुम क्या करोगे ?" फिर उन्होंने औरों का परिचय देना शुरू किया, "काली-काली लकीरों का कोट पहने बैठे हुए हैं वे हैं वालूरु सिंगे गौड़जी···, लकीर-सी मूंछ वाले हैं मेग्रल्ली नागप्प हेगडेजी···, घड़ी की चेन (जंजीर) दीख पड़ती है न, वे ही हैं बेंदूरु बसवे गौड़जी।···"

सेरेगारजी तांबूल को थोड़ा-थोड़ा करके थूककर अंदर चले गये।

सभी मजदूर, नौकर, चाकर बाहर ही खड़े हो उस अपूर्व दृश्य को बार-बार देखते-बोलते इकट्ठे खड़े हुए थे। इतने जरी के साफ़े, रंग-बिरंगे कपड़े, अचकन एक ही जगह एक साथ दिखाई देना मानो मैसूर न गये देहाती की दृष्टि में दूसरा दरबार सरीखा था।

इधर नौकर, किसान उस दृश्य को देखने में आसक्त थे तो उधर चौपाल में बातचीत जोरों से हो रही थी। बातचीत की गहराई, चौड़ाई ग्राम जीवन की सीमा को नहीं लांघी थी। जमीन, खेती, बारिश, सुपारी के बाग का सड़ियल रोग, सुपारी का भाव, घाट के नीचे के मजदूरों का विचार इन सब पर वे अपने-अपने दृष्टि को बता रहे थे। चंद्रय्य गौड़जी अलमारी के बगल में दुशाला ओढ़कर बैठे थे, वे बार-बार उठकर नस बांटते, खुद नस चढ़ाते, अतिथियों का भी सत्कार कर रहे थे।

एकायक सीढ़ियों पर आवाज़ हुई। सभी ने बातें बंद कर दीं। हरएक की भंगी में गौरव प्रदर्शन की सूचना थी। मुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी दुमंजिले से नीचे उतर आये और सबको ऊपर आने के लिए निवेदन किया। उनके पीछे-पीछे सभी एक-एक करके दुमंजिले पर गये।

वहां साफ-सुथरी लाल-काली पट्टियों की बड़ी दरी बिछी थी। उसके एक कोने में हूवय्य से बातें करते सीतेमने के सिगप्प गौड़जी बैठे थे। नौ बजे की धूप में उन दोनों की परछाइयां दरी पर काली-काली पड़ी थीं। रिश्तेदारों के आते ही उन दोनों ने खड़े होकर नमस्कार किया। हर एक अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठ गये और उस दिन का कार्य शुरू हुआ।

उस सभा के लिए कोई चुनकर नहीं आये थे। सब अपने वजन, अपनी संपत्ति, अपने व्यक्तित्व की महिमा-गरिमा से ही आये थे। मुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी ने ही स्वाभाविक स्वयं अध्यक्ष बनकर कामकाज शुरू किया।

प्रारंभ में बिना कोई विघ्न-बाधा के काम चला। हिसाब-किताब की जांच हुई। घर की मालिकी की तरी, खुश्की और जमीनों को दिखाने वाले नक्शे की समीक्षा हुई। चंद्रय्य गौड़जी और हूवय्य के पिता दोनों आपस में सगे भाई थे। इसलिए जायदाद के दो हिस्से करने का निर्णय हुआ। बीच में सीतेमने सिगप्प गौड़जी ने हूवय्य के पक्ष में बोलते हुए कहा—"हूवय्य के पिता चूंकि चंद्रय्य गौड़जी से बड़े थे, इसलिए हूवय्य को ज्यादा हिस्सा मिलना चाहिये।" यह कहकर वाद प्रस्तुत किया। मगर थोड़ी चर्चा होने के बाद चंद्रय्य गौड़जी के पक्ष की जीत हुई।

लेकिन जमीनों के बंटवारे का समय जब आया तब चंद्रय्य गौड़जी ने एक तकरार प्रस्तुत की :

"हिस्से में सभी जायदाद शामिल नहीं हो सकती। पित्रार्जित जायदाद सिर्फ शामिल होनी चाहिये। अपनी स्वयमार्जित जायदाद में हिस्सा देना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। दावीमक्की की जमीन-खेत-बाग-सभी मेरा पसीना बहाकर कमाये हुए हैं। उसी प्रकार चिक्कूरु का बाग भी मेरे मालिकपन में मेरी ही कमाई का है।"

बालूरु सिंगे गौड़जी ने और नेल्लुहल्ली पेद्दे गौड़जी ने चंद्रय्य गौड़जी के इस कथन का ही समर्थन किया। लेकिन सीतेमने सिगप्प गौड़जी ने मनःपूर्वक उसका विरोध किया।

हूवय्य ने भी चंद्रय्य गौड़जी की बात का विरोध करते हुए कहा, "स्वयमार्जित, पित्रार्जित इस प्रकार जायदाद में विभाग करना उचित नहीं है। न्याय भी नहीं है। एक घर का मालिक जो होगा वह जो भी कमाये वह घर की संपत्ति में मिल जाता है। जायदाद की देखरेख मालिक जब करता रहता है तब कुछ हानि हो तो उसे केवल वही उठाता है, समूचे घर के खर्च में नहीं लगाता। हानि की तरह लाभ भी घर की जायदाद में ही मिल जाना चाहिये। पित्रार्जित जायदाद का

आधार, सहाय, धन, गौरव, विराम ये सब न हों तो मालिक को नई जायदाद कमाना साध्य हो सकता था ? इसलिए संपादित नई जायदाद भी पित्रार्जित जायदाद नामक पूंजी पर मिले सूद के सिवा दूसरा कुछ नहीं। इसलिए छोटे चाचाजी के कथनानुसार पित्रार्जित जायदाद, स्वयमार्जित जायदाद, इस प्रकार जायदादों में विभाग करना मुझे भी बिल्कुल पसंद नहीं है।"

यह वाद सुनकर चंद्रय्य गौड़जी आदि सभी स्तब्ध हुए। वहां रहने वाले सभी निष्पक्षपाती होते तो हूवय्य के वाद को मान ले सकते थे। परंतु वातावरण ऐसा नहीं था। वहां इकट्ठे हुए सभी मुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी के सिवा अंदर ही अंदर चंद्रय्य गौड़जी के पक्ष में या हूवय्य का पक्ष लेकर आये थे। जैसे वालुरु सिंगे गौड़जी, नेल्लुहल्ली पेद्दे गौड़जी चंद्रय्य गौड़जी का पक्ष लेकर आये थे, वैसे सीतेमने सिंगप्प गौड़जी हूवय्य का पक्ष लेकर आये थे। इसलिए उनके किसीके निर्णय के लिए कारणों की आवश्यकता नहीं थी। उनकी वातें उनके मन की आकांक्षाएं वताती थीं, मगर पक्षपातरहित हो विचार करके सिद्धांत पर पहुंची रायें सूचित नहीं करती थीं।

अंत में, पहले-पहल गंभीरता से शुरू हुई चर्चा धीरे-धीरे गरम होकर, चीख-पुकार के झगड़े में बदल गया। नीचे फाटक के पास वाहर कुतूहल से सुनते खड़े रहे नौकर-चाकर-मजदूरों को भय-सा लगा। साथ ही उनको अचरज भी हो रहा था। हलेपैक के तिम्म ने वेलर वैरे से चंद्रय्य गौड़जी की प्रशंसा करने के लिए कहा—"देखा न, हमारे गौड़जी कैसे वोलते हैं ? उतने वड़े-वड़े साफे वाले सभी गौड़ों की परवाह न करके, उनका दाक्षिण्य देखे विना उड़ा रहे हैं !···मैंने तुमसे पहले ही कहा था न ? हूं ! घर का वंटवारा यानी आसान काम समझा था क्या ?" फिर तिम्म संगीत सुनने वाले की भांति दुमंजिले पर होने वाले शोर-गुल की ओर कान देकर आनंद से सुनने लगा।

वैरा ने भी भय के स्वर में कहा, "हां जी ! मारामारी होगी, ऐसा ही लग रहा है।" फिर उसने भी कान खोलकर शोरगुल की ओर कान दिया।

ऊपर होने वाले शोरगुल को सुनते ही वैठक में रहने वाले वासु, पुट्टम्म, नागम्म, सुव्वम्म पुट्टण्ण, सेरेगारजी आदि सभी उद्विग्न हुए। वासु की आंखों से डर के मारे या शोक के मारें या वड़े लोग यों क्यों लड़ते हैं आदि समझ में न आने के कारण पानी आने लगा। पुट्टण्ण चुप रहे विना सीढ़ियां चढ़कर ऊपर का दृश्य देखने लगा। उसके पीछे सेरेगारजी ने भी आधी सीढ़ियां चढ़कर वहां का दृश्य देखा। मंजिल पर के शोरगुल से अवगत होकर कुत्ते भी भौंकने लगे।

यकायक सीढ़ी के छोर पर खड़े झांकते रहने वाला पुट्टण्ण घूमकर जल्दी-जल्दी उतरने लगा। वह भूल ही गया था कि उसके पीछे सेरेगारजी हैं। उसका शरीर सेरेगारजी के मुंह से टकरा गया। वे नीचे लुढ़क गये, किसी तरह खड़े रहे!

इतने में सीतेमने सिगप्प गौड़जी भी सीढ़ियां उतरकर नीचे आये। उनके पीछे हूवय्य भी आया। दोनों फाटक पार करके बाग की ओर गये।

वहां आपस में कुछ देर गुफ्तगू करके, फिर लौटकर आये और मंजिल पर चढ़ गये।

हूवय्य की स्वीकृति के अनुसार चंद्रय्य गौड़जी की इच्छा ही फिर जीत गई। उनकी 'स्वयमार्जित' जायदाद उन्हीं को छोड़कर 'पित्रार्जित' जायदाद में ही दो हिस्से करने का निर्णय हुआ। फिर सभी दोपहर के भोजन के लिए निकले।

तीसरे पहर जमीन का बंटवारा शुरू हुआ। चंद्रय्य गौड़जी भली भांति जानते थे कि अपनी जमीनों में कौन-कौन-सी ज्यादा उपजाऊ हैं। मगर हूवय्य को इसका कुछ भी अनुभव नहीं था। लेकिन बंटवारा करने के लिए जो वहां आये थे, उनको भी कानूर की जमीनों का परिचय पर्याप्त नहीं था। इसलिए हिस्सा करने में अनिवार्य से, कुछ जान बूझकर, अन्याय की बातें हुईं, अविवेक हुए। सीतेमने सिगप्प गौड़जी ने अपनी जानकारी के अनुसार, अपने से जितना बन सका, हूवय्य की मदद करने का प्रयत्न किया। मुत्तल्ली के श्यामे गौड़जी एक ओर सिगप्प गौड़जी तथा हूवय्य के, दूसरी ओर चंद्रय्य गौड़जी के दाक्षिण्य में फंस गये थे। इसलिए वह तटस्थ हो गये। इसके अलावा वे सात्विक स्वभाव के थे, कुछ भी करने के पसोपेश न करने वाले चंद्रय्य गौड़जी को अनानुकूल होने वाली बातें करके उनकी वैर दृष्टि के भाजन बनना नहीं चाहते थे।···

अंत में बंटवारे में सारी अच्छी जमीनें मूंछों पर ताव देते रहने वाले, लाल आंखें करके, जोर से बरतने वाले चंद्रय्य गौड़जी के पल्ले में ही पड़ गईं। नागम्माजी अच्छी तरह जानती थीं कि कौन-कौन-सी जमीन अच्छी है, कौन-कौन-से बाग अच्छे हैं, उनको बताकर उनके बारे में हठ धरने के लिए हूवय्य को कहला भेजा, पर कोई फायदा नहीं हुआ।

शाम को सभी पियक्कड़ अतिथियों को चंद्रय्य गौड़जी 'कानुबैलु' के ताड़ी के स्थान पर ले गये। रामय्य, बानु और सेरेगारजी को अतिथियों की सेवा के लिए बुलाया। तबियत खराब होने से रामय्य ने इनकार किया। तब चंद्रय्य गौड़जी ने उस पर गालियों की झड़ी लगा दी और कहा, "दो अक्षर क्या पढ़ लिया, घमंड सिर पर चढ़ गया है! जमीन झाड़ने के समान धोती पहनकर, बाजार घूमने की तुमको आदत पड़ गई है और काम न करने की भी। काम करने के लिए कमर नहीं झुकती!···और कितने दिन करोगे इस तरह देखता हूं।···"

रामय्य ने कुछ नहीं कहा। पियक्कड़ों को ताड़ी और भुना मांस बांटना उसके मन को अत्यन्त हीन और अपमानजनक-सा मालूम हुआ। अत्यंत दुख से पश्चिम की ओर का दरवाजा पार करके बाग की ओर चला। रिश्तेदार सभी चंद्रय्य गौड़जी के नेतृत्व में कानुबैलु की ओर निकले। सिगप्प गौड़जी अकेले अटारी पर रह

गये थे। उन्होंने हूवय्य से कहा, "तुम भी कैसे हो ? वे जो कहते, सबके लिए 'हां' कहकर तुमने मान लिया। ऐसा कहीं किया जाता है ?"

हूवय्य ने, "अब जाने दीजिये सिंगप्प चाचाजी, सच्चा सुख नहीं रहता है जमीन में, बल्कि यहां !" कहकर अपनी छाती को स्पर्श करके दिखाया।

"सो भी ठीक है !...तो भी..."

"क्या 'तो भी ?'..."

"तो भी व्यवहार है न ?..."

इतने में सीढ़ियों पर आवाज हुई। नागम्माजी ऊपर आईं। उन्होंने कहा, "सिंगप्प, क्या सब पूरा हो गया ?"

सिंगप्प गौड़जी ने जमीन की ओर देखते हुए, "पू...रा...हु...आ...लेकिन क्या ? आपके लड़के ने वे जो कहते सबके लिए हां, हूं करते सिर हिला दिया।" शुरू करके जो हुआ था सो पूरा सुना दिया।

यह सब सुनकर नागम्माजी ने आंखों में आंसू भरकर, एक उसांस छोड़कर, वेदना की ध्वनि में, "करें क्या ? मेरा गिराचार ! दुर्भाग्य ! वे रहते तो क्या ऐसा होता ? यह तो भोला शंकर ठहरा ! संन्यासी की तरह कहता है, कुछ भी नहीं चाहिये।" कहकर पुत्र की ओर लाड़-प्यार से देखा।

माता को संतुष्ट करने का प्रयत्न करते हुए हूवय्य ने कहा—"बात ऐसी नहीं मां, छोटे चाचाजी ने दस-पंद्रह हजार का कर्ज दिखाया है। कहते हैं, उसमें आधा हिस्सा मेरी पढ़ाई के लिए हुआ।...करें क्या ?...उनके हिस्से में ज्यादा जमीन गई है, इसलिए उन्होंने उनके साथ पूरा कर्ज अपने जिम्मे लिया है।...हमें कर्ज का भार नहीं रहा। यह सही हुआ कि नहीं ?"

नागम्माजी ने जोर से कह दिया, "किसने कहा, वह सारा कर्ज तुम्हारी पढ़ाई के लिए हुआ ? उनकी पत्नी-पुत्रियों को जरी की साड़ियां क्या ! गहने क्या ! अंगूठी, कमर पेटी, चेन, सोने के कंगन बनवा-बनवाकर संदूक में भरने से क्या कर्ज हुए बिना रहेगा ?..." इस तरह आगे बोलने वाली थी कि हूवय्य ने कहा —

"जाने दो मां, उनका अन्याय उन्हीं को रहे ! हमें पेट के लिए रोटी और पहनने के लिए कपड़ा मिल जाय तो बस ! अलावा इसके, सोने-चांदी के गहने, बर्तन-गिर्तन भर लेकर रहने वाले संसार में सुखी रहने वाले बहुत कम हैं।" धीर-वाणी से हूवय्य ने कहा।

पुत्र की ये बातें सुनकर नागम्माजी को ऐसा लगा कि अपना पुत्र ही अपनी अमूल्य निधि है और अभिमान धन ! फिर उन्होंने सिंगप्प गौड़जी से कहा, "क्या मैं कुछ नहीं जानती। कल चर संपत्ति का बंटवारा करते समय जरा भी ढीला मत बनिये।" दिया जलाने के लिए ऊपर आने वाले निंग से उन्होंने कहा, "तेल है क्या रे लैंप में ?"

निग ने धीरे से कहा, "तेल है !…लैंप टांगने के लिए मेख ढूंढ़ रहा हूं।…यहीं कहीं था वह निगोड़ा मेख !" कहकर ऊपर के तख्ते पर हाथ फेरते हुए मेख ढूंढ़ने लगा।

नागम्माजी नीचे उतर गईं। निग, लैंप को जलाकर, एक मेख से लटकाकर चला गया।

"कुछ पढ़ो तो," कहा सिगप्प गौड़जी ने।

हूवय्य 'किंग लियर' नाटक हाथ में लेकर उसे पढ़ते हुए अर्थ सुनाने लगा।

सिगप्प गौड़जी अत्यंत कुतूहल से सुनने लगे।

बहुत देर के बाद सुनते रहे सिगप्प गौड़जी ने "कोई पुकार रहा है न ?" कह, अचरज से, भौंहें सिकोड़, वक्र दृष्टि से पुकार की ओर कान दिया। हूवय्य ने भी पढ़ना छोड़कर सुना।

दोनों को किसी का जोर से पुकारना-चिल्लाना सुनाई पड़ा।

"चंद्रय्य गौड़जी ?" सिगप्प गौड़जी ने कहा।

"हां ! उन्हीं की आवाज लगती है !" कहकर हूवय्य खड़ा हुआ।

सिगप्प गौड़जी भी तुरंत खड़े हुए। जल्दी-जल्दी नीचे उतर आये। रामय्य, पुट्टण्ण, नागम्मा, सुब्बम्मा—सभी तभी बैठक में आकर फुसफुस के बोल रहे थे।

"पुट्टण्ण, वह कौन है जिसने पुकारा ?" सिगप्प गौड़जी ने कहा।

"हमारे गौड़जी की पुकार सुनाई पड़ी," कहकर उसने लालटेन जलाई।

रामय्य, हूवय्य, सिगप्प गौड़जी, पुट्टण्ण और सभी कुत्ते कानुबैलु की तरफ निकले।

दस-बीस गज गये ही थे कि सामने सेरेगारजी के साथ उनके पीछे भागते आने वाला बासु आगे झपटकर हांफते हुए कहने लगा, "फिर…नेल्लुहल्ली पेद्दे मामा !…ज्यादा पीने से…गिर पड़े…सिर फूट गया !"

सिगप्प गौड़जी, "सिर फूट गया !" कह भय विह्वल हो, "आं ! क्या हुआ ?…" पूछ रहे थे कि सेरेगार रंगप्प सेट्टी, "नहीं जी, ऐसा नहीं ! पीकर मस्त हुए थे ! चले आ रहे थे। रास्ते में ठोकर खायी…और गिर पड़े; माथे पर चोट लगी है।…तेल चाहते हैं…जब बर्दाश्त नहीं कर सकते, तब इतना पीना क्यों ?…" कहकर तेल लाने घर की ओर भागे।

बाकी सब लोग पहाड़ पर चढ़ गये और वहां पहुंचे जहां पेद्दे गौड़जी का 'कुरुक्षेत्र' था।

उनको ज्यादा चोट नहीं लगी थी। तो भी माथे पर पत्थर की रगड़ लग गयी थी जिससे ज्यादा पीड़ा हो रही थी; इसके साथ खूब पीने से नशा हुआ। शरीर पर उल्टी होने से कपड़े गंदे हो गये थे और उनसे बदबू आ रही थी। इसलिए जो वहां गये थे उनको अपनी नाक को ढक लेना पड़ा।

पेद्दे गौड़जी के साथ जो ताड़ी पीने गये थे वे भी लड़खड़ाते थे। चंद्रय्य गौड़जी उनको साथ में लेकर पहाड़ से उतर रहे थे। उनको देखने से यह जाहिर होता था कि उनमें से किसी को अपने शरीर और सिर पर नियंत्रण नहीं था।

महत् को शूद्र से तुलना करनी हो तो चांद परिवेश से जैसे घिरा रहता है वैसे उन सबको ताड़ी की बू घेरे हुई थी !

४१

घर की चर संपत्ति का हिस्सा : वासु की विचित्र बेहोशी !

दूसरे दिन सवेरे चंद्रय्य गौड़जी और लोगों के साथ जानवरों का बंटवारा कराने के लिए गोठ में गये थे। बैठक में नेल्लुहल्ली के पेद्दे गौड़जी खूब चद्दर ओढ़कर सोये थे। बिस्तर के पास एक कटोरा था जिसमें वे उलटी कर सके। उसके साथ नारियल के तेल की एक शीशी भी थी, एक पीतल का पीकदान, एक लोटा आदि भी रखे गये थे। उनकी देखभाल करने के लिए वासु को छोड़ दिया गया था। मगर वह वहां दिखाई नहीं दे रहा था। उस नीरस व्यक्ति के पास बैठकर देखते रहना बेकार का काम लगने से बार-बार वह इधर-उधर घूम आता था। सुब्बम्म एक-दो बार पिताजी से बोलकर चली गई। लेकिन उस दिन उसे रसोईघर में सबके लिए खाना पकाने का काम ज्यादा था जिससे पिता के पास रहकर उनकी शुश्रूषा करने के लिए फुरसत नहीं थी।

पिछले दिन ताड़ी और ब्रांडी ज्यादा पीने से जो नशा चढ़ गया था वह बहुत कुछ उतर गया था, मगर पेद्दे गौड़जी का शारीरिक पीड़ा कम नहीं हुई थी। दर्द के मारे बुखार भी चढ़ गया था। बार-बार उलटी होती थी जिससे बदबू खूब आती थी। लाख कोशिश करने पर भी वासु उन्हें नहीं रोक सका।—मामा (उसके पिता उन्हें मामा कहते थे, इसलिए वह भी उन्हें मामा कहने लगा था) के बारे में उसे घृणा पैदा हुई, इसलिए वह चाहता था कि वह पीड़ा (अर्थात् मामा) शीघ्र से शीघ्र जाय तो अच्छा। बाहर उस रम्य प्रातःकाल में संभ्रम-संतोष की घटनाएं जब हो रही थीं तब मुझे केवल इस 'दरिद्र आदमी' के बगल में उलटी की बदबू पीते बैठना पड़ा न, सोचकर, ऊब से वह अटारी पर चढ़कर गया।

वहां के बड़े आइने में अपना प्रतिबिंब सहसा देखकर खड़ा हो गया। देखते-देखते बालक की आंखें मंद पड़ गईं। दिन में यातना से भरा गया अपना प्रतिबिंब उसको ही अपरिचित-सा विकृत दिखाई पड़ा। आह ! वह कमबख्त नाई न आया होता तो ! पहले जब था तब कितना अच्छा था ! अब ? पंचादि खोये हुए, चोर की तरह अपना रूप बन गया है ! वह आइने में अपना रूप न देख सका, अतः वह मुंह

फिराकर एक कोने में बैठ फूट-फूटकर रोने लगा। अगर कोई आड़ में खड़े होकर उसकी तरफ देखता तो उसे हृदयविदारक दृश्य गोचर होता ! पर उसे किसी ने नहीं देखा। वे सब जानवरों का हिस्सा करने एवं अन्य उपयोगी काम करने में लगे थे।

"वासय्या, ओ वासय्या !" निंग का बेटा पुट्ट उसे बुलाने लगा।

दो-तीन बार बुलाने पर भी वासु नहीं बोला। उसके बाद वह जल्दी-जल्दी आंसू पोंछकर, नाक साफ करके, आस्तीन से नाक को रगड़कर, गुस्से से, "क्या हुआ है रे तुझको ? गला फाड़-फाड़कर क्यों चिल्लाते हो ?" कह सीढ़ियां धड़-धड़ उतरकर गया।

पुट्ट सीढ़ियों के नीचे खड़ा था। वासु को आते देखकर पीछे हटकर खड़ा हुआ और बोला, "पिल्ला गया-सा दीखता है। आंख में काली मिर्च की बुकनी डाल दी। चिल्ला रहा है ! सुन नहीं सकते !"

वासु अपना सारा दुःख भूल गया। फिर पिल्ले की खैरियत की फिक्र ने उसकी आत्मा पर आक्रमण किया। उसने घबराहट और गुस्से से कहा, "हाय रे, सत्यानास हो तुम्हारे घर का; काली मिर्च क्यों डाल दी रे आंख में ?"

"काली मिर्च नहीं, काली मिर्च की बुकनी।"

"तुम्हारी नानी का सिर ! किसने कहा तुमको ?"

"गंग लड़के ने कहा ! काली मिर्च की बुकनी रगड़ने से घाव भर जाता है।"

"वह मर गया !" वासु बैठक से निकलकर पिछवाड़े की तरफ गया। पुट्ट भी उसके पीछे-पीछे गया।

कुछ दिनों के पहले मुर्गी ने उस पिल्ले की आंख में चोंच मारी थी। वह मर रहा था। उसकी आंख में मिर्च की बुकनी डालने से उसे बेहद जलन हो रही थी, इसलिए वह 'कुंई-कुंई' करके चीख रहा था। उसकी घायल आंख से पीप निकल रहा था पिल्ला दुबला-पतला बन गया था। सिर्फ उसका चमड़ा भर रह गया था।

बड़ी मां से वासु दूध मांग लाया और उसको पिलाने का प्रयत्न किया। मगर दूध बाहर निकल आया। फिर दूध को बाहर न निकलने देने के इरादे से वासु ने उसके मुंह ऊपर को किया। पिल्ला उसके हाथ पर ही मर गया !

वहां पुट्टम्मा आकर खड़ी थी। उसने कह दिया, "वासु, पिल्ला मर गया है रे !"

वासु की समझ में नहीं आया कि उसके रहते ही पिल्ले के प्राण निकल कैसे गये।

अन्त में आंसू बहाते अच्छी तरह गाली दी पुट्ट को—"तुमने ही उसे मार डाला रे !"

दोनों लड़के मिलकर अपने प्रिय पिल्ले की लाश को एक झुरमुट के नीचे अच्छी तरह गाड़कर, उसपर कांटे बिछाकर, भारी पत्थर उन कांटों पर लादकर लौट आये ताकि फिर लोमड़ी-सियार उसे उस गड्ढे से न निकाल सकें।

दुपहर को घर और बरतन आदि सामानों का बंटवारा हुआ। उस कार्य का हर एक भाग हूवय्य को नापसंद लगता था।

पुराने झाड़ू, काले मटके, सूप, चलनी-झरडी, सींकें, कलछुल, मूसल, रंभे, मथनी, टोकरे, टोकरियां, तांबे-पीतल के बरतन, जयमाला की संदूक, पापड़-अचार के डिब्बे, चटाई आदि, बिछाई जाने वाली दरियां इत्यादि को देव पाषाण के चारों ओर नौकरों ने ढेर लगाया जिसे देख हूवय्य को लगा कि हाय! अपने घर के सभी मर्मस्थानों को परायों के सामने खोलकर रख दिया, हो गया, हाय! नीचा किया हुआ सिर ऊपर उठाना भी कष्टकारक हुआ। उस ओर रामय्य ने झांका तक नहीं।

सवेरे जानवरों का हिस्सा करते समय हूवय्य ने बीच-बीच में विरोध किया था। घर में हिस्सा करते समय भी जोर से एक-दो बातें की थीं। पर, क्षुद्र होने पर भी घर के अन्तरंग की पवित्र वस्तुओं का बंटवारा करते समय कुछ भी नहीं बोला। उसको लग रहा था मानो उन वस्तुओं का जिन्होंने उपयोग किया था उनकी आत्माएं—'इस्सि! इस्सि! इस्सि!' कह घृणा सूचित कर रही हैं।

श्यामय्य गौड़जी, सिगप्प गौड़जी बीच-बीच में औरों की सलाहें लेते उन सामानों का बंटवारा करने लगे। पुट्टण्ण, सेरेगारजी, सिंग आदि स्पृश्य नौकर (स्पृश्य का मतलब स्पर्श किये जाने वाले। क्योंकि तिम्म जैसे हलेपैकवाले, या बैरा जैसे बेलर जातवाले नीच जात वाले होने के कारण अन्दर के सामान नहीं छू सकते) उन सामानों को जैसे श्यामय्य गौड़जी कहते वैसे दो भागों में रख देने लगे। करीब डेढ़ घण्टे बाद आंगन में पहले एकत्रित राशि बंटकर खड़ी हुई।

किसको कौन-सा हिस्सा जाय, इस बारे में पहले कुछ चर्चा हुई। उसका कारण हूवय्य नहीं था। उसका पक्ष लेने वाले सिगप्प गौड़जी थे।

अन्त में मुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी ने एक उपाय सुझाया। एक छोटे बालक को बुलाकर, किसी एक भाग को छूने के लिए कहा। "उसका छुआ हुआ भाग चन्द्रय्य गौड़जी को जाय, बाकी हिस्सा हूवय्य को।"

यह उनका उपाय-सुझाव सबको पसन्द आया। चन्द्रय्य गौड़जी ने सिंग के पुत्र पुट्टु को बुलाया। वह पिल्ले की हत्या करने के कारण, डरने पर क्या बोलेगा, यह सोचकर, डरके मारे कहीं चला गया। नाम बुलाया, तो भी वह नहीं आया। ढूंढ़ने पर भी नहीं मिला। अन्त में हूवय्य की सलाह के अनुसार पापु को ही बुलाया। पहले पहल उसने भी कबूल नहीं किया। चन्द्रय्य गौड़जी ने आंखें लाल

करके उसे धमकाया। वह रोने लगा। अन्त में हूवय्य को उसको मनाकर बुला लाना पड़ा।

उस दिन प्रातःकाल से ही वासु का मन कुछ एक तरह का था। दिल में कसमसाहट थी। दो दिन पहले चन्द्रय्य गौड़जी ने जबरदस्ती उसके क्रॉप को कटवाया था। गोखुर का जितना बाल रखवाकर बाकी सभी बालों का मुंडन करवाया था। तब से उसका चित्त स्वस्थ नहीं था। इसके साथ ही पिछले दिन शाम को पिताजी की आज्ञा के अनुसार कानु बैलु जाकर, वहां रिश्तेदार ताड़ी-ब्रांडी जब पी रहे थे तब उनके प्रलोभन का शिकार बनकर हूवय्य भैया की हिदायत के विरोध में, उसने शराब पी ली थी। उसने दो-तीन बार इनकार किया था, मगर पेद्दे गौड़जी आदि के उपचार करके, अनुरोध करने से उसे पीना ही पड़ा। अगर यह खबर हूवय्य को या बड़े भैया को लग जाय तो, क्या सोचेंगे वे मेरे बारे में, यह उद्वेग भी उसे सता रहा था। इतना ही नहीं, उस दिन सवेरे उन पेद्दे गौड़जी की शुश्रूषा में तैनात करके मां ने उसे कैद किया था। उसके दुर्भाग्य से ठीक उसी समय उसका पिल्ला मर गया था और एक खास बात यह थी कि उस सरल बुद्धि बालक को उस दिन घर में होने वाला हिस्सा कोई अमंगल-सा, अशुभ-सा, अनिष्ट-सा, अपशकुन की सूचना-सा दीखने लगा था। उसके फल-स्वरूप उसके हृदय में निराकार अस्फुट भय पैदा हुआ था।

ऐसी मानसिक स्थिति में वासु अपने हूवय्य भैया के कहने के अनुसार आंगन में उतरा। उसकी हालत सबसे पहले मंच पर खड़े होकर अनेक लोगों के आगे भाषण देने वाले की भांति हो गई थी। सबकी दृष्टि अपने पर पड़ी है, दीखता है, अपना काम महत्व का है जानने वाले उस बालक का शरीर तभी गरम होने लगा था। सांस का वेग भी बढ़ गया, पसीना छूटा। दिल में हलचल मची-सी लगी। आंखों में अन्धेरा-सा छा गया। पैर लड़खड़ाने लगे।

इकट्ठे हुए लोगों में किसी ने जैसे कहा, "डरो मत; जाओ छुओ!"

वासु बहुत प्रयास करके आगे बढ़ गया, अपने कांपते हाथों से एक हिस्से की राशि में रखी कड़ाही को छुआ और पीतल के बरतनों पर 'ढन-ढन' कर गिर पड़ा।

"लड़का गिर गया! लड़का गिर पड़ा! हाय! गिर पड़ा! पकड़ लो पुट्टण्ण, पकड़ लो!···पानी···पानी···पंखा ले आओ!" इत्यादि पुकारों के साथ सभी वासु की ओर दौड़ गये।

हूवय्य उसे धीरे से उठाकर बैठक में ले गया और बिस्तर पर सुलाया। बालक प्रज्ञाशून्य हो गया था।

सिर पर ठंडा पानी डालकर थपथपाया। पंखे से हवा की। नागम्माजी और चन्द्रय्य गौड़जी ने अलग-अलग भूत-भगवान की मनौती मान ली। सहसा वहां

इकट्ठे हुए सब लोगों का मन घर, हिस्सा, बंटवारा, बरतन, झगड़ा आदि से दूर हटकर जीव, मृत्यु, भगवान की तरफ मुड़ गया। कुछ दिन पहले ही अपने पुत्र को खोने पर सोचते हुए सिगप्प गौड़जी चुपचाप, एक ओर दीवार से पीठ टेककर बैठ गये।

बहुत देर के बाद वासु को होश आये।

"हूवय्य भैया, पानी चाहिए!" कहा।

पुट्टम्मा दौड़कर भीतर गई और शरबत लाकर दिया।

उसी दिन शाम को पेद्दे गौड़जी को गाड़ी में लाद नेल्लुहल्ली भेज दिया। गुत्तल्ली के श्यामय्य गौड़जी, सीतेमने के सिगप्प गौड़जी इन दोनों को छोड़कर बाकी सभी रिश्तेदार अपने-अपने घर चले गये।

श्यामय्य गौड़जी इसलिए रुक गये थे कि चन्द्रय्य गौड़जी से उनको कर्ज की रकम जो प्राप्त होने वाली थी उसके बारे में निर्णय करना था।

सिगप्प गौड़जी इसलिए ठहर गये थे कि हूवय्य से बातचीत करके उत्तम विचार जान लेने थे। हूवय्य के साथ रहते समय उनको अपने दुख क्षुद्र, तुच्छ दीखते और अलौकिक आनन्द आता।

४२

ओछा मन

अन्त में बहुत समय से चलता आया कानूरु घर का अविभक्त कुटुंब दो हिस्सों में बंट गया। इससे कुछ असंतुष्ट हुए तो कुछ अन्दर ही अन्दर खुश हुए। प्रबल रहता आया घराना फूट जाये तो प्रबल होना चाहने वालों को अच्छा मौका मिल जाता है। उसमें भी चन्द्रय्य गौड़जी जैसे निरंकुश, घमंडी, दर्पी आदमी पर कइयों की निगाह थी जो स्वाभाविक है। ऐसे लोग कानूरु के घर के बंटवारे से खुश हुए। ऐसे भी कुछ लोग होते हैं जो दूसरों की उन्नति की अपेक्षा अवनति देखकर खुश होते हैं।

नाम के लिए घर में सिर्फ दो हिस्से हुए। लेकिन वास्तव में तीन चौथाई हिस्सा चन्द्रय्य गौड़जी को ही मिला। कुछ जमीन स्वयमार्जित कहकर तथा 'घर के लिए कर्ज करना पड़ा' कहकर कर्ज के मद्दे कुछ जमीन चन्द्रय्य गौड़जी ने अपने हिस्से में ले ली। गहने आदि जंगम जायदाद का हिस्सा करते समय भी कई उपायों से अपने हिस्से में अधिक सामान ले लिए। घर के बंधक नौकरों का हिस्सा करते समय भी ऐसा ही किया। बैरे और उसका संसार—पत्नी सेसी और लड़का गंग—के सिवाय सभी बेलर चन्द्रय्य गौड़जी के हिस्से में आये।

बैरा भी अपने परिवार सहित शायद चन्द्रय्य गौड़जी के ही हिस्से में जाता! किंतु कुछ दिन पहले गौड़जी ने उसको खूब पीटा था, क्योंकि एक बैल की टांग में चोट लगी थी और गौड़जी ने उसको मजदूरी भी नहीं दिलाई थी एवं उससे कठोरता से पेश आये थे। बैरे ने अपना सारा गुस्सा अपनी पत्नी सेसी पर उतारा था और उसको खूब पीट रहा था तब हूवय्य ने, बैरा अछूत होने पर भी, उसके कंबल में बंधे धान को ले जाकर उसके घर पहुंचाया था और सांत्वना दी थी। इससे हूवय्य के प्रति आराधना का भाव उत्पन्न हो गया था। इसलिए उसने हठ किया, मैं चन्द्रय्य गौड़जी के पक्ष में नहीं जाऊंगा। चन्द्रय्य गौड़जी ने मन में ही 'अच्छा, तुझे एक हाथ दिखाऊंगा।' कहकर उसे हूवय्य के पक्ष में जाने दिया था। बाकी बंधक (गुलाम) नौकर चन्द्रय्य गौड़जी की आंख एवं गर्दन के भय से प्रतिवाद किये बिना उनके पक्ष में ही आ गये।

घर का बंटवारा हो जाने के दूसरे ही दिन से दो चूल्हों में आग जली चूंकि दो रसोई घर बने थे। स्नान गृह में भी दो चूल्हे जले और दो हंडों में पानी गरम होने लगा। एक ही बैठक में पश्चिम के कोने में एक, पूरब के कोने में एक, इस प्रकार दो लैंप जलने लगे। जहां-जहां हो सके चंद्रय्य गौड़जी ने हूवय्य के और अपने हिस्से के बीच में टट्टी खड़ी करवा दी। ऐसा करने से सारा घर भद्दा हो गया, विकृत दीखने लगा। घर आने वाले रिश्तेदारों को भी यह देखकर अच्छा नहीं लगेगा; इसलिए बीच में टट्टी खड़ी करना ठीक नहीं, हूवय्य ने कहा तो चंद्रय्य गौड़जी ने दीर्घ स्वर में "क्यों भाई; तुम्हारा हिस्सा तुमको, मेरा हिस्सा मुझको! हमारा दूर-दूर रहना ही अच्छा।" आदि कई कटु हास्यगर्भित बातें कहकर, अपना काम पूरा करके ही छोड़ा।

उसी प्रकार सेरेगारजी को आज्ञा दी कि सुपारी के बाग में मेरे और हूवय्य के हिस्से के बीच में मेंड खड़ी कर दी जाय। उन्होंने अपने मजदूरों से ताकीद की कि हूवय्य का एक भी काम न करें। वह यहां तक बढ़ा कि बैठक झाड़ने वाला निंग ने गौड़जी की आज्ञा भूलकर रिवाज के अनुसार हूवय्य के हिस्से के भाग में भी झाड़ू लगा आया तो गौड़जी ने उसको भला-बुरा कहकर खूब डांटा। निंग ने कहा कि मैं अपनी गलती सुधार लूंगा। फिर उसने हूवय्य के हिस्से में कूड़ा डाल दिया। और एक बार नागम्माजी की एक मुर्गे ने चंद्रय्य गौड़जी के चौके में जाकर गंदा किया। तब उसे पुट्ट से उठवाकर बाहर फेंकवाने के बजाय हूवय्य के चौके में डलवा दिया।

अन्य जानवरों की तरह कुत्तों का भी बंटवारा हुआ था न? लेकिन उन मूक प्राणियों को मनुष्यों के अविवेकजन्य इस कृत्रिम विभाजन का रहस्य भी कैसे मालूम हो? वे पहले की तरह घर में जहां-तहां घूमते थे, सोते थे। उनको लात मारकर भगाया जाता था। यह काम केवल नौकर ही नहीं करते थे बल्कि चंद्रय्य गौड़जी भी जब कभी देखते कि हूवय्य के हिस्से का कोई कुत्ता अपने हिस्से में सोया है तब उसे जगाकर बाहर भगा देते।

हमेशा की तरह दुपहर को कुत्तों को भात खिलाने के लिए निंग ने बड़ी पतीली में साक-भात मिलाकर 'क्रू-क्रू' कहके कुत्तों को बुलाया। सभी कुत्ते दौड़-कर आये, अपनी पूंछ हिलाते हुए एक बार पतीली की ओर, एक बार निंग के मुंह की ओर ताकते खड़े हुए। निंग ने पहले चंद्रय्य गौड़जी के कुत्तों को ही भात डालने का प्रयत्न किया। पर कामयाब नहीं हुआ। अंत में उदार मन से सब कुत्तों को अन्न डाल दिया।

यह सब देखते हुलेपैक का तिम्म खड़ा था। उसने अपने मालिक को इसकी खबर पहुंचा दी। उन्होंने निंग को बुलाकर "तुमको हमारे घर का खाना खाकर चर्बी आना दीखता है! जिसके नाना के घर की गठरी समझ भात डाला रे उसके

घर के कुत्तों को ?" कहकर धमकी दी।

निंग ने विनय से "क्या करूं मालिक ? सभी एक के पीछे एक आके खा जायं तो मैं क्या करूं ?" कहकर सारी गलती कुत्तों पर डालने की कोशिश की।

"जब वे एक के बाद एक खाने लगे, क्या तुम गधों को चरा रहे थे ? वहां क्या लाठी नहीं थी ?" सुनाकर गौड़जी ने हूवय्य के कुत्तों को भगाने की तरकीब बता दी।

उसी तरह हूवय्य ने उनके कुत्तों को जब भात डलवाया था तब भी उन्होंने गुस्से से कहा था, "तुम हमारे कुत्तों को मत खिलाओ।"

कुत्तों, मुर्गियों, मजदूरों की बात एक ओर रहे, वासु ने उस दिन दो जगह रसोई बनते देख, नागम्माजी के पास जाकर पूछा, "बड़ी मां ! यह क्यों दो जगह रसोई बन रही है ?"

नागम्माजी ने लड़के की सरल बुद्धि पर हंसकर प्यार से कहा, "हाय रे बेटा, इतना भी तुम्हारी समझ में नहीं आता ? कल घर का हिस्सा हो गया न ? इसीलिए···"

हिस्से का अर्थ इतना दूरगामी होता है, वासु नहीं जानता था। उसको बड़ों के बर्ताव विचित्र लगने लगे थे। एक रसोईघर काफी नहीं हुआ, इसलिए दो बना लिये हैं। गुसलखाने में भी एक के बदले दो हिस्से हो गये हैं ! घर के कई भागों में टट्टी बांध दी गई है और घर विभक्त हो गया है ! उसको बाहर दिखाई देने वाले विभागों के पीछे, उनके कारण बने मन का फूट समझने और नापने का परिज्ञान नहीं था। इसीलिए उसने हठ किया कि "भोजन के समय मैं बड़ी मां के रसोई घर में हूवय्य के साथ भोजन करूंगा।"

पुट्टम्म ने "नहीं भैया ! पिताजी सुनेंगे तो गाली देंगे।" कह मना किया, तो भी वह नहीं माना।

नागम्माजी ने भी वासु के प्रति प्यार होने से, चंद्रय्य गौड़जी को चुभे, प्रतिहिंसा के विचार से वासु के लिए भी हूवय्य के साथ रसोई घर में थाली लगा दी।

वासु खुशी से हूवय्य के साथ गप्प मारते खा रहा था।

इतने में रामय्य के साथ खाने के लिए आये चंद्रय्य गौड़जी ने पूछा, "वासु कहां है ?"

सुब्बम्म ने सोचा कि सच कहने से हंगामा मच जायेगा; अतः उसने कहा, "मैं नहीं जानती। वह अभी तक खाने के लिए आया ही नहीं।"

गौड़जी ने बुलाया, "पुट्टम्मा !"

"आं···क्या है पिताजी ?" पुट्टम्मा दरवाजे के पीछे से कहकर डरते-डरते आई।

"तुम्हारा छोटा भाई कहां है, बुलाओ उसको।"

पुट्टम्म बैठक में गई, यहां-वहां उसे ढूंढने का बहाना करके लौटी, फिर बोली, "यहां-वहां देखा, वह कहीं नहीं दीख पड़ा।" फिर उसने अपने बड़े भाई रामय्य की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा।

गौड़जी को संदेह हुआ। उन्होंने जोर से पुकारा, "तम्मा! तम्मा!" ('तम्मा' प्यार से पुकारा जाने वाला नाम जिसका अर्थ होता है छोटे भैया!

हूवय्य के साथ खाने बैठा था वासु। उसने उस रसोई घर से ही कहा, "आं!"

"खाने के लिए आओगे कि नहीं? वहां क्या कर रहे?" कहकर गौड़जी ने धमकाया।

"यहीं खा रहा हूं बड़े भैया के साथ।" सरल मन से वासु ने जोर से कहा।

फिर गौड़जी ने आंखें लाल करके सुब्बम्म, रामय्य, पुट्टम्म की तरफ देख, जोर से पुकारा, "आते हो कि नहीं रे!"

किसीने कुछ नहीं कहा। वासु भी एक बार हूवय्य, एक बार नागम्माजी की तरफ बारी-बारी से देखने लगा। सारा घर मौन था।

"जा री पुट्टम्मा! उसको घसीटते ले आ।" गौड़जी गरजे। पुट्टम्मा बोली नहीं। न वहां से हिली। फिर गौड़जी ने खूब जोर से चिल्लाकर कहा, "जायगी कि नहीं?"

पुट्टम्मा रोती हुई बैठक की ओर गई।

तब तक चुप बैठे रामय्य ने कहा, "खाने के लिए बैठा है! आप उसे घसीटकर लाने के लिए कह रहे हैं?"

"उसका खाया सारा उलटी करा दूंगा! बाहर आ जाय!" कह गुस्से से गौड़जी खाने लगे।

जैसे-जैसे दिन बीतते गये गौड़जी का मन क्षुद्र, कमीना, अनुदार, अधोमुखी हो अंधेरे गर्त में उतर रहा था। घर के बंटवारे के बाद से तो कम से कम, उदारता से बरतेंगे, हूवय्य समझता था। मगर उसके विपरीत उनका बर्ताव देख, उनके प्रति हूवय्य के मन में जुगुप्सा हुई। बिलकुल छोटे-छोटे विषयों में भी वे द्वेष, मत्सर, दिखाने लगे जिसे देख हूवय्य को भी बहुत गुस्सा आया। इसी प्रकार नागम्माजी ने भी पुत्र की तटस्थता देख, उपदेश दिया कि अब प्रतिवाद किये बिना शान्ति से इस घर में रहना दूभर हो जायेगा। अतः हूवय्य ने मन में सोचा, 'काटना नहीं चाहिए, बल्कि केवल फन उठाकर डराना चाहिए।' यह गृहस्थ धर्मानुसरण करके देखने का निश्चय किया।

नागम्मा अपना विचार गलत न समझे, इस विचार से हूवय्य ने उनको भी

अपना निर्णय सुना दिया। वह भी मान गया।

हूवय्य और नागम्माजी की इच्छा के अनुसार उनके घर में ही रहने के लिए पुट्टण्ण ने मान लिया था। उसको हूवय्य ने अपना निर्णय वता दिया।

इस प्रकार घर में चन्द्रय्य गौड़जी को सुधारने का एक षड्यन्त्र का समूह तैयार हुआ।

४३

नारियल की मंत्रशक्ति

घर का बंटवारा हो चुकने के बाद औरों की भांति निग भी जंगल में गाड़कर रखे अपने सामान को अपने घर ले जाने लगा। एक-दो जगह उसके सामान ज्यों के त्यों रहे। लोहे के सामान जंग खाये थे, लकड़ी के सामानों में दीमकें लग गई थीं। इनकी ओर उसने ज्यादा गौर नहीं किया। अलावा इसके मानसून की वर्षा शुरू होने से बेंत की छोटी पिटारी में रखी उसकी मृत पत्नी की कीमती साड़ी भी पूरी भीग गई थी। उसे भी उसने सब्र से सह लिया। मगर गंग लड़के की सहायता से ताड़ी की दूकानदार ने जो गड्ढा खाली कर दिया था, उसके पास आ जाने से उसका दिल धड़क उठा। मानो आकाश ही टूट पड़ा सिर पर, 'हाय' कहकर उसने सिर पीट लिया और फिर कोसने लगा, दुःख, कोप, निराशा से दांत पीसते हुए, "हाय रे! किस छिनाल के बच्चों ने मेरा…खाया? तुम्हारे घर का सत्यानाश हो! तुम्हारा गढ़ा भर जाए!" उसका रोदन, उसकी चिल्लाहट सुनकर बाग में सीमा का मेड़ बांधते रहे सेरेगारजी, उनकी तरफ के घाट के मजदूर कुछ गड़बड़ी हो गई हो सोचकर अपना काम वहीं छोड़कर भागकर आये जहां पर निग रो रहा था। सांप ने काटा? या किसी पेड़ पर से गिरा? या भूत सवार हुआ? या पेड़ की शाखा कहीं टूटकर शरीर पर पड़ी? या कोई खून-वून कर रहा है? इस तरह एकैक आदमी को एकैक शंका करते दौड़कर आते देख निग और जोर से सिर पीटकर रोने और कोसने लगा।

वाकया जानने में आये हुओं को आधा घंटा लगा। निग एक बात बोलता और दस गालियां देता।

"विचार करें। क्यों चिल्लाते हो?"

"गौड़जी से कहूंगा, देखो, चोर कहां जायेगा?"

"सांपवालों में किसी ने निकालकर रखा होगा, दे देंगे।"

इस तरह एक ने कहकर निग को चुप करने का प्रयत्न किया तो भी निग चुप न रहा। कोसना और अपने माथे को पीट देना नहीं रोका। शायद उसने सोचा होगा कि ऐसा करने से ही उसके खोये हुए सामान उसके हाथ लगें आ गिरेंगे।

नारियल के तेल से चमकने वाली तोंद को दिखाते हुए, त्रिकोणाकार में घुटनों तक लटकने वाला गंदा, काला-सा लंगोट पहने, सिर पर पुरानी टोपी रखे, हाथ में काम का हथियार लिए, अब तक होती घटना को देखते दूर खड़े हुए वाडुगल्ल सोम ने पास आकर मंत्रणा दी, "सच, निगय्या, मैं कहता हूं, सुनो। इस तरह तुम चिल्लाते क्यों हो ? क्या सच्चाई नहीं रह गई ? हमारे भूतराय के नाम एक नारियल मनौती रखो। उसे सबके हाथ से स्पर्श कराके देखो। तुम्हारे सामान जहां भी होगा तुम्हारे यहां आ गिरेगा।"

सोम की सूचना सबको पसन्द आई। सेरेगारजी और मजदूर अपने काम पर गये। निग सोम की सूचना को मानकर, तदनुसार करने के लिए घर गया।

वह जिसको देखता उसको अपनी हानि की कहानी विस्तार से ऐसे सुनाता कि सुनने वालों का हृदय पिघल जाय। फिर वह बात-बात पर चोरों को गाली भी सुनाता और कहता, "नारियल छुआकर चोरी के सभी सामान उलटी कराऊंगा, हमारे भूतराय में शक्ति है कि नहीं, एक बार देख लूंगा," फिर वह योग्य आकार का नारियल खोज के लाया। उस नारियल में आवश्यक चोटी, आंख और जल तीनों थे। अगर ये तीनों न हों तो वह नारियल मंत्र के लिए योग्य नहीं माना जाता था !

निग ने सब प्रकार से योग्य नारियल को साफ तीर्थ से धोया, भस्म, कुंकुम, तेल, अड़हुल (जवा कुसुम), मुर्गी के रक्तादि से पूजकर उसे हाथ में पकड़कर चारों दिशाओं में घुमाया, फिर नमस्कार करके बड़ी भक्ति से कुछ सराग ध्वनि में "स्वामी भूतराय ! तुम पाप-पुण्य आदि सब जानते हो। इस गरीब पर दया करके अपनी शक्ति दिखाओ। जिसने भी मेरी चीजों की चोरी की हो उसके मुंह से खून कै करवा दो और मेरी वस्तुएं मुझे लौटा देने के लिए अपनी शक्ति लगाओ। अगली मनौती के लिए मैं गरीब हूं, ज्यादा मैं नहीं दे सकता, मेरी भक्ति देखकर तुम अपनी शक्ति दिखाओ—अगली मनौती में एक मुर्गी ज्यादा तुमको अर्पण कर दूंगा।···छू !···मां काली (महाकाली), मारी दुर्गी (महामारी दुर्गा), उनकी आंखें फूट जायं ! उनके मुंह में मिट्टी पड़ जाय ! वे खून की कै करके नष्ट-भ्रष्ट हो जायं !" इस तरह सरल वाक्यों में कराल आकांक्षाओं का एक ही सांस में उच्चार करके भूतराय की मनौती मान ली।

उसके बाद निग ने सोचा, नारियल का स्पर्श किस-किससे कराना चाहिये; मेरे घर वालों में किसीने मेरे सामान को नहीं चुराया होगा। फिर सेरेगारजी से लेकर, उनके घाट के मजदूरों, बेलरों, हलेपैक के तिम्म आदि किसानों के हाथ से नारियल का स्पर्श कराने का उसने निश्चय किया। दूर में रहने वाले ताड़ी के दुकानदार पर उसे संशय आया ही नहीं।

इस तरह खाली बंदूक की नालियों में बारूद-गोली भरकर शिकार के लिए

जाने वाले की तरह तैल लिप्त, विभूति-विभूषित, कुंकुमांकित, जवाकुसुम से सुशोभित, रुद्रवेष भूषित नारियल को हाथ में लेकर निंग निकला !

सबसे पहले वह घाट के मजदूरों के यहां गया। उन सबसे नारियल का स्पर्श कराया। उसके बाद वह खेत पर गया और वहां काम करते रहे बेलर मजदूरों से स्पर्श कराया। उनमें कुछ लोगों ने पहले-पहल आगा-पीछा किया, एतराज भी किया, फिर बाद को अच्छी तरह वाकया जानने के बाद, हम निरपराधी हैं तो छूने में क्या हर्ज, क्या डर सोचकर उस नारियल का स्पर्श किया। इसके बाद वह हलेपैक के तिम्म की झोंपड़ी में गया। वहां नारियल का स्पर्श कराकर बेलरों की गली में आया। वहां की सभी मजदूरिनों को अपनी कहानी सविस्तार सुनाई। उनमें सभी ने एक-एक करके नारियल का स्पर्श किया। निंग ने कहा कि छोटे लड़कों को भी छूना चाहिये। कतिपय माताओं ने उसका विरोध किया। बच्चों से क्यों छुआना चाहिये ? वे क्यों तुम्हारे सामानों की चोरी करने जायंगे ? अपने संदेह की निवृत्ति के लिए निंग ने जिद की कि बालकों को भी छूना चाहिये। थोड़ी देर बातों के घर्षण के बाद सबने मान लिया। सब लड़कों को वहां बुलाया गया। वे आये और कतार में खड़े हो गये। मगर गंग लड़का डर के मारे वहां से खिसक जाने का प्रयत्न कर रहा था। मगर निंग ने किसी को नहीं जाने दिया। एक-एक करके सब लड़के नारियल को छूने लगे। निंग जब गंग के लड़के के पास आया तब वह लड़का कांपते हुए रोने लगा।

अपने बेटे का तनिक भी राज न जानने वाली सेनी ने अपने परिवार की नेकी, सुशीलता स्थापित करने के लिए पुत्र के पास आकर प्यार से कहा—"तुमको क्या रे ? छुओ रे, क्या हमने नही छुआ ? तुमने चुराया हो तो तुमको तकलीफ़ ! नहीं तो क्या ? कुछ नहीं होगा। डरो मत ! छुओ !"

लड़का एक बार मां का मुंह, तो एक बार वहां इकट्ठे हुए लोगों की ओर देखते, "ना, ना, मैं नहीं छूता !" कहके जोर-जोर से रोने लगा।

जो वहां थे उन्होंने उसको धीरज बंधाया, समाधान किया, नारियल को छूने के लिए उत्साहित किया। मगर गंग लड़का कांपते हुए, कुंकुम से लाल बने नारियल को टकटकी लगाकर देख, जोर से कहने लगा, "नहीं, नहीं, मां। मैं नहीं छूता ! निंगय्या, पांव पड़ता हूं, मुझे छोड़ दो !"

निंग को यह देख 'हंसि' लगा। नफरत हुई।

उसने सेनी की ओर देखकर कहा, "जाने दो ! बेचारा ! आखिर तुम पर मुझे शक बैठता है !" फिर वह जाने लगा।

सेनी को अपमान-सा हुआ। लड़के पर गुस्सा आया। इसने लोगों के आगे इसके रोने पर बट्टा लगा न !

सेनी ने लड़के की पीठ पर एक जोर का घूंसा जमाया; उसे खींचकर लाई

और कहा, "निगय्या, जरा नारियल दिखाओ। इसके हाथ से उसे छुआऊंगी।"

निग ने नारियल को आगे बढ़ाया। सेसी ने गंग से नारियल को छुआ ही दिया जबरदस्ती से यद्यपि वह कहता रहा, "नहीं मां, नहीं।"

लड़का खूब गरम लोहे को छूने वाले की तरह चीखकर प्रज्ञाहीन हो माता के हाथों पर गिर पड़ा। वहां खड़े हुए लोगों को भ्रम-सा हुआ। कुछ ने लड़के के सिर पर ठंडा पानी थपथपाया; हवा की उठाकर भीतर ले गये और कंबल पर सुला दिया।

निग अपने नारियल की मंत्रशक्ति से खुद ही डर गया। भूतराय की सच्चाई से डरते हुए अपने घर लौटा।

थोड़ी देर के बाद बेलर का एक लड़का हूवय्य, पुट्टण्ण के साथ काम करते रहे बैरे के पास आया और कहा—"गंग पर कोई सवार हुआ है, उसे बुखार चढ़ गया है; वह भ्रांति से मनमाने बक रहा है। तुमको शीघ्र घर बुलाया है सेसी ने।" बैरे ने तुरंत काम छोड़ दिया; हूवय्य को समाचार सुनाया, आंसू बहाए। हूवय्य भी घबरा गया। पुट्टण्ण को भी बैरे के साथ हूवय्य ने भेज दिया सारा समाचार जानकर आने के लिए और वह खुद कीचड़ से भरे खेत में काम करने लगा।

दूर के खेतों में चंद्रय्य गौड़जी अपने बहुत-से मजदूरों से और बेलरों से काम करा रहे थे। रामय्य की सफेद पोशाक भी उनके बीच में दीखती थी। वह किसी काम में नहीं लगा हुआ था। मगर वह बिछाए हुए कंबल पर बैठा था।

घोर वर्षा में नहाकर सारा प्रदेश हरियाली से भर साफ-सुथरा हो गया था। सारे आकाश भर बादल छाए हुए थे। सूर्यरश्मि का पता नहीं लग रहा था। वायुमंडल निर्मल बन गया था। मैदानों में हरी-हरी घास उग आई थी; ऐसा दीखता था जैसे हरा कालीन बिछाया गया हो। चारों ओर दुर्ग की दीवारों की भांति ऊंचे बढ़े हुए पहाड़ों को कसकर गले लगाए जंगलों की कतार हरी-हरी होकर रमणीय बन गई थी। खेतों में इधर-उधर पड़े काली खाद के ढेरों में पंछी नाना प्रकार से चहकते कीड़ों के शिकार में मग्न थे। यहां-वहां सफेद बगुले भी अपनी लंबी गरदन उठाकर ध्यानमग्न-से बैठे थे। हूवय्य अपने काम में मग्न होने पर भी अपने कालेज के लेक्चर हॉल में बैठकर अध्यापकों के लेक्चर सुनाते बैठे दृश्य की तुलना अपने इस धंधे से करके मुसकुराया।

पुट्टण्ण आधे घंटे में लौट आया और वहां का सारा हाल सुनाकर हूवय्य को बेलरों की गली ले गया। दोनों बैरे के घर गये।

उनको दूर से आते देखकर, बैरा अपनी छाती पीटते हुए रोने लगा और कहने लगा, "हाय रे! मेरे लड़के को मार डाला रे! मार डाला! मार डाला!"

हूवय्य उसे चुप रहने के लिए धमकाया और घर के भीतर गया। वहां सेसी कंबल पर सोये अपने पुत्र के पास बैठकर "हाय रे बेटा।" कहकर अपनी छाती व माथा पीटते हुए रो रही थी।

गंग कंबल पर बहरा होकर निश्चेष्ट पड़ा था । सांस चल रही थी । हूवय्य ने अच्छी तरह समझ लिया कि वह भूत के भय से ही लड़का बेहोश हो गया है ।

हूवय्य ने गंग के माता-पिता को धीरज दिलाया और उनके कथनानुसार अपनी ओर से पुट्टण्ण द्वारा भूतराय के नाम पर मनौती रखवा दी । अपनी जानकारी के अनुसार उपचार भी करवाया; बुखार तेज होने से लड़के के माथे पर ठंडी पट्टी रखवा दी । थोड़ी ही देर में गंग को प्रज्ञा आई । उसने इधर-उधर आंखें फिराकर देखा ।

पुट्टण्ण ने कोमल स्वर में, 'गंगा ! गंगा ! ये कौन हैं रे ? यहां देखो ! यहां ।" कहकर हूवय्य को दिखाया ।

गंग थर-थर कांपते हुए, चीखते हुए, सेसी को जोर से गले लगाकर, "नहीं ! नहीं ! गलती हुई ! मैं नहीं; ताड़ी का दूकानदार चिक्कण्ण ! ! अह ! अम्मा री, छुड़ाओ ! छुड़ाओ ! मरा ! मरा !" कहकर बेहोश हो गया । उसके मुंह के कोने से खून भी निकला ।

हूवय्य ने पुट्टण्ण की तरफ देखकर कहा, "वह क्या ? लड़का कहता है ताड़ी का दूकानदार चिक्कण्ण ? कहता है न ?"

वैरा जवाब देते हुए रोने लगा—'क्या है कि मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा है । लड़का तब से यही कह रहा है ! उन्हीं को बुला भेजिए और उन्हीं से पूछना अच्छा होगा ।"

"अच्छा, उसको बुलाकर पूछें !...तुम सब यहां इकट्ठे होकर मत बैठो । शोर मत मचाओ । उसको गरम कपड़ा ओढ़ाकर सुलाओ । सरदी न लगने पाए । मैं घर जाकर बुखार की दवा भेजता हूं । ऐ वैरा, उसको कुछ होश आने पर कहना कि भगवान का प्रसाद भेजा है, कुछ भी डरने की बात नहीं है, वगैरह कहकर, समझा-बुझाकर समाधान करना; मैं फूल, भस्म भेजता हूं । उसे देना और ऐसा कहना कि उसमें विश्वास उत्पन्न हो । सुना क्या मेरा कहना ?"

"हां जी ।"

हूवय्य घर गया और दवा और प्रसाद भेज दिया । मगर उससे कोई लाभ न हुआ । सिंग के नारियल से उत्पन्न भयंकर सूचना भूत से डरकर मरते हुए बालक को निचोड़ रही थी ।

हूवय्य ने सिंग को खूब डांटा । सिंग ने आंसू बहाते हुए, गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'जी, मैं नहीं जानता था कि ऐसा होगा ।"

अपने नौकर से चंद्रय्य गौड़जी ने सारी बातें सुनकर हूवय्य को खरी-खोटी सुनाई, जो मुंह में आयी वह बके ।

"हमारे नौकर से कहने वाले तुम कौन हो ? उसको गाली देने-डांटने का क्या हक है तुमको ? नारियल छुआ दिया तो क्या हुआ ? अपनी वस्तु गई थी, इसलिए

उसने ऐसा किया। वह न करता तो तू कराके देता ? इतना डरपोक तेरे नौकर ने नारियल छुआ क्यों ?"

अपने पक्ष में चंद्रय्य गौड़जी को ऐसी बातें करते देख सिंग को भी बहुत बुरा लगा।

हूवय्य ने भी गुस्से से चार बातें खूब सुना दीं। उसने कह दिया कि मैं भी भूत की शक्ति का प्रयोग चंद्रय्य गौड़जी पर ही कर दूंगा।

भूत के नाम से डरने वाले चंद्रय्य गौड़जी ने विष की कै कर दी, "तेरे दादा को आना चाहिये मेरे एक रोम को उखाड़ने के लिए ! भूत के नाम मनौती रखे बकरे को छुड़ाकर रखने वाले तुझको सात घाट का पानी पिलाए बिना नहीं छोड़ेगा हमारा भूतराय ! उसी के प्रताप से गंग लड़के को ऐसा हुआ है। तेर उस बकरे की रक्षा के कारण ही—तेरे कारण ही उस गरीब लड़के की यह नौबत आई। अपनी गलती के लिए दूसरों पर गुस्सा करे तो सुनता कौन ?"

उस दिन आधी रात को कानूरु के घर में जब सभी सोये हुए थे तब बैरा हृदय-विदारक रूप में अपना मुंह, माथा पीटते चंद्रय्य गौड़जी के घर आया। सोये हुए सभी लोग घबराकर उठे।

पुट्टण्ण ने दरवाजा खोला। बैरा इस तरह रोते हुए भीतर आया कि सुनने वालों का खून जम जाय। वह चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा "ओय सिंगय्या, मेरे लड़के ने तुम्हें क्या किया था ? हाय रे, मैं बिगड़ गया रे, मैं बिगड़ गया ! अजी, हूवय्यजी, बचाइये जी मेरे पुत्र को !"

उसका हाथ पकड़कर चलाते हुए हूवय्य बेलरों की गली की ओर चला। पुट्टण्ण, रामय्य भी साथ में गये। जाकर क्या देखते हैं : रोते हुए एकत्रित गली वालों के बीच में, एरंडी के तेल के मंद प्रकाश में गंग लड़के का मृत शरीर कंबल में छिपा पड़ा था।

४४

हृदय्य का कानूर का घर छोड़कर जाना

बरसात शुरू हुई। मानसून के प्रारंभ के दिन। आकाश भर में छाये बादल, बिजली, गाज, आंधी आदि परिवार के साथ खूब पानी बरसाकर, थोड़ी देर में आंखों से ओझल होते और फिर नीला आकाश तथा सूरज की निर्मल किरणें दिखाते थे। फिर बादलों का समूह नीरव हो आकाश में छा जाता, सूरज का निशान तक मिटाकर दिन-रात पानी बरसता था। वर्षा की झड़ी लग जाती। सारा प्रदेश—जंगल, पहाड़, मैदान सभी—वर्षा की धाराओं से बुने महीन तनिक सफेद पर्दे में ऊंघ रहा था। गरमी में सूखे सोते सजीव हो कलनाद से बहने लगे थे। सारे रास्ते में कीचड़ भर गई थी। पानी गंदला हो गया था। जमीन सदा जलमय रहती थी। बाग की क्यारियों में, खेत में पानी शिशु की भांति सदा तुतलाते बह रहा था। महीने-भर सूखे खेत अब धान के पौधों से और बांधकर रखे पानी से खिल-खिलाकर हंसते थे। चारों ओर पहाड़ थे, उनके बीच की कंदरा में चौड़े फैलकर बढ़े पौधों की हरियाली आंखों को प्यार, मन को आनंद व आत्मा को संतोष मानो दे रही थी।

गरमी का आलस्य छोड़, जागकर लोग कार्यशील बन गये थे। कुछ को झगड़े तथा चुगली करने का मन यद्यपि था तथापि फुरसत नहीं थी। सवेरे कांजी पीकर खेत जाते, दुपहर के बारह बजे या एक बजे तक अच्छी तरह मेहनत करते, बीच में कटहल या कोई और फल खाते, फिर दुपहर का भोजन करने के बाद खेत में उतरते, शाम तक बारिश की झड़ी में कंबल ओढ़कर पुरुष, पत्तों से बने छाता (लगाये) तानें स्त्रियां, काम करके, थककर शाम को घर लौटते, रात का भोजन करके तुरंत बिस्तर की शरण में जाते। इस प्रकार अविराम मेहनत करके थक जाने से उनका मन अंधेरे के मोह में न फंसता, जो स्वाभाविक था। ऐसे वर्षा में काम करने वाले लोगों का जीवन ग्रीष्म के दिनों में काम करने वालों के जीवन से तुलना पर, अधिक सुखमय है, कहा जा सकता था।

जिनको थोड़ा विराम था वे भी खेत में बांध बांधना, बांध बांधकर झरने के पानी को रोकना आदि काम करते। जिस रात में बारिश जोर से हो उस रात में

लालटेन लिये खेत में जाते और औरों की भांति मेहनत करके थक जाते।

सेरेगार रंगप्प सेट्टजी, उनके मजदूर हर साल की पद्धति के अनुसार घाट के नीचे के अपने 'देवी-देवता' की मनौती को समर्पण करने के लिए, अपने सगे-संबंधियों से मिलने के लिए और वहां के अपने कामों को देखने के लिए घाट को जाते थे। ऐसे गये हुए मजदूर अभी तक लौटकर नहीं आये थे। चंद्रय्य गौड़जी उनकी रोज प्रतीक्षा करते हुए, जितना हो सके, बेलरों से ही काम कराते थे। लेकिन उस उत्कंठित निरीक्षा-प्रतीक्षा का घर के काम-काज के अलावा गंग का वियोग भी प्रबल कारण था।

हूवय्य नागम्माजी, पुट्टण्ण, बैरा, सेसी, इनकी मदद से भी तथा सीतेमने सिंगप्प गौड़जी से प्रेषित एक-दो मजदूरों की सहायता से भी अपने हिस्से के जमीन-बाग के काम मन लगाकर कराता था। कर्मक्षेत्र में इतना जयशील होते अपने को देखकर उसको ही आश्चर्य होता था।

अधिक उम्र होने पर भी नागम्माजी रसोई का पूरा काम करके, पुत्र-प्रेम से उत्साहित होकर खेत जातीं, पौधे उखाड़कर अन्यत्र रोपतीं और ऐसे ही अन्य कामों में लगी रहतीं। हूवय्य अपनी माता से कहता, "बारिश में खेत में आकर सरदी में काम न करें।" तो भी वह नहीं मानती थीं। माता को पत्ते का छाता ताने सेसी के साथ पौधे रोपते देखकर कई बार उसकी आंखों में आंसू आते। उन आंसुओं में उसे सुख भी मिलता, दुख भी। ऐसी वात्सल्यमयी माता को पाने से उसे अभिमान होता जिसमें सुख था। ऐसी माता को खेत में काम करते देख दुःख होता।

सुब्बम्म एवं पुट्टम्म घर में आराम से रहती हैं, याद करके नागम्माजी को एक तरह से पीड़ा यद्यपि होती थी, तो भी पुत्र को देखते रहने के संतोष में वह सब कुछ भूल जातीं।

जुताई, बोआई जैसे उपयोगी कार्यों में बड़े आलसी कहलाने में मशहूर पुट्टण्ण को हूवय्य के साथ काम करते देख लोग दांतों तले उंगली दबाते थे। हूवय्य कहानी सुनाते, कविता गाते, मजाक करके अपने साथ काम करने वालों को उत्साहित करता था। कई बार दूर के खेतों में चंद्रय्य गौड़जी के नेतृत्व में व निगरानी में अन्य नौकरों के साथ काम करने वाला रामय्य बारिश की आवाज को मात करके, अपनी ओर लहर-लहर-सी आने वाली हूवय्य तथा उनके साथ काम करने वालों की हंसी को सुनकर पीड़ा का अनुभव करता था। चंद्रय्य गौड़जी ऐसे समयों में बिना चूके हूवय्य या नागम्माजी के प्रति अनुदार टीका-टिप्पणी किये बिना न रहते।

जितना हो सके अवसर की कल्पना करके दायादों को सताने की लत पड़ी थी चंद्रय्य गौड़जी को।

अंत में उनका हठ ही जीत गया। हूवय्य कानूर में बहुत दिन नहीं रह सका।

घर का बंटवारा जिस दिन हुआ उसी दिन से लेकर चंद्रय्य गौड़जी लगातार किसी न किसी कारण से हूवय्य को सताते रहे। उठते-बैठते गलती की खोज करते और भला-बुरा कहते। हूवय्य का एक जानवर अपने बाग में घुसा, हूवय्य के कुत्ते ने अपने कुत्ते को काटा, हूवय्य की मुर्गी ने अपनी बैठक में गंदगी कर दी, अपनी लकड़ी की राशि से हूवय्य की तरफ के किसी ने लकड़ी की चोरी की है, अपने पानदान से हूवय्य के नौकर बैरे ने पान चुराया है, भोजन करने बैठने पर नागम्मा-जी ने जानबूझकर हमारे रसोईघर की ओर धुआं फैलाया है, अपने पिछवाड़े से नागम्माजी तरकारी चुराती हैं, इस तरह के सैंकड़ों बहाने बनाकर गाली देते रहते। हूवय्य ने एक-दो बार प्रतिवाद किया और विरोध करके देखा। लेकिन चंद्रय्य गौड़जी की ओछी बुद्धि और जिद्द बढ़ती ही गई जिसे देख हूवय्य को निराशा हुई। अपने चाचा के प्रति जुगुप्सा हुई।

हूवय्य को और उसके घरवालों को सताने की बात एक ओर रही। वे अपने घरवालों को भी सताते थे। क्योंकि घरवाले हूवय्य से द्वेष नहीं करते थे पर वे चाहते थे घर के सभी लोग उससे द्वेष करें।

वासु को कभी हूवय्य के घर की ओर जाते देखते तो गौड़जी उसे डांटते-धम-काते और उसके कान मरोड़ते। एक दिन की बात है। वासु को नागम्माजी ने एक खाने की चीज दी। वह दरवाजे की आड़ में खड़े होकर उसे खा रहा था। उसको चंद्रय्य गौड़जी ने देखा तो वासु के हाथ से खाने की चीज छीन ली और फेंक दिया, और उसके मुंह में उंगली डालकर, खाने की चीज को बाहर निकाल दिया, फिर जोर से उसे एक घूंसा दिया ताकि फिर वह ऐसा न करे। फिर 'सिद्दगुम्म' किया।

'सिद्दगुम्म' यानी एक बांस के माप में सूखी मिर्चा डालकर, उस पर एक शोला रख के उसे नाक से जोर से लगा देना और मुंह को भी दबाकर रखना। ताकि सांस लेने में तकलीफ हो। मिर्चों का धुआं नाक में, फेफड़ों में घुस जाता है तब ऐसा लगता है जैसे अब प्राण ही निकल जायेंगे!

एक बार पुट्टम्म हूवय्य के घर जाकर बड़ी मां से बातचीत कर रही थी, तब चंद्रय्य गौड़जी ने उसे बुलाकर मनमाने गाली देते हुए अश्लील बात भी कही, "यार को ढूंढ़कर जाने वाली जात यह।" इसी प्रकार एक बार नागम्माजी की दी हुई 'कोच्चिली मछली' की तरकारी सुब्बम्म ने परोसी तो चंद्रय्य गौड़जी को शक हुआ तो पूछा, "कोच्चिली मछली कहां थी?" उस दिन सवेरे निंग अपने खेत के गड्ढे से मछली ला रहा था, तब टोकरी की तलाश करके चंद्रय्य गौड़जी ने देखा था। सुब्बम्म ने कहा था, "सुबह निंग लाया था।" यह झूठ था। इसलिए वे गरजे, "कहां थी मछली, कहती हो कि नहीं?" गौड़जी की आंखें लाल हो गई थीं। उनकी लाल आंखें देखने से बड़े-बड़े वीरों को भी भय लगता। सुब्बम्म ने भय से सच ही कह दिया, कांपते हुए। गौड़जी ने थाली को दूर सरका दिया

और पत्नी को तब तक पीटा जब तक उनके हाथ नहीं थके। फिर गरदनिया देकर उन्होंने कहा, "जाओ, अपने बाप के घर ! मेरे घर में तुमको जगह नहीं।" इस तरह उन्होंने कहकर भयंकर बर्ताव किया। सुब्बम्म भोजन किये बिना बाहर ही बैठी सारा दिन रोती रही। रात हो जाने के बाद नागम्माजी के आग्रह से उनके घर गई और आंसू से भात मिलाकर खाके वहीं सोई। यह गौड़जी को मालूम होते ही वे रणपिशाच बन गये।

कमसिन स्त्री से विवाह करने वाले उस बूढ़े पर पहले ही संशय पिशाच सवार हुआ था। उसमें भी सुब्बम्म जो आदरभाव हूवय्य के प्रति दिखाती थी उसका चंद्रय्य गौड़जी ने बुरा अर्थ लगा लिया था। वह भी घर के बंटवारे का एक प्रबल कारण था। घर का बंटवारा हो जाने के बाद संशय पिशाच ने हजारों रूप लिया था। एकैक अपने पुत्र रामय्य को भी संशय की दृष्टि से देखते थे। सुब्बम्म की तो सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा कर रहे थे।

जब सुब्बम्म ने हूवय्य के घर में रात बिताई, मालूम हुआ तब चंद्रय्य गौड़जी की कल्पना ने तब तक जो केवल भय से थे उन सबको वास्तव में चित्रित किया। उन्होंने घोषणा कर दी कि पत्नी को अपने घर में प्रवेश है ही नहीं। मेरे घर का दरवाजा उसके लिए हमेशा के लिए बंद। नेल्लुहल्ली के पेद्दे गौड़जी और मुत्तल्ली के श्यामे गौड़जी आदि गौड़ों ने आकर समाधान न करते कि सुब्बम्म परिशुद्ध है, उसकी हालत गई-बीती होती।

सब कष्टों को सहने तैयार हुए हूवय्य को यह अपमान सहना दूभर हो गया। अगर मैं उस घर में रहूं तो एक न एक दिन अनहोनी हो जाय, यह पहले ही जानकर उन्होंने पितरों का कानूर का घर छोड़ने का निश्चय किया। इस बाबत अपनी मां को भी सब कुछ बताकर समझा दिया। उन्होंने भी अत्यंत कष्ट से पुत्र की बात मान ली। यह सुनकर चंद्रय्य गौड़जी को अत्यानंद हुआ। और जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी घर छुड़ाने के इरादे से उन्होंने और ज्यादा सताना शुरू किया।

उनका भाग्य मानिये, एक और बात हुई। एक दिन शाम को नागम्माजी अपने खेत में किनारे वाली घास को काटकर लाने गई थी। बूंदा-बूंदी हो रही थी, बादलों के कारण अंधेरा छाया हुआ था।

खेत के ऊपरी भाग के मैदान में जानवरों के झुंड में चंद्रय्य गौड़जी के गाड़ी के बैल चर रहे थे। उनमें से 'लछमन' नामक बैल ने पत्तों का छाता ताने ऊपर, नीचे होती नागम्माजी को देखकर, न जाने क्या समझा, वह पूंछ उठाकर अपने लंबे सींगों को आगे बढ़ाकर भयंकर गर्जन करते उनकी तरफ झपटा।

जानवरों को चराने वाला बेलरों का सिद्द था। उसने झपटकर जाते हुए बैल को देखा। वह, "आह ! अम्मा ! हाय अम्मा !" पुकारते हुए दौड़ा।

नागम्माजी सिर उठाकर देखती हैं : खेत में धान के पौधे खड़े हैं। किनारे से किनारे पर कूदकर लछमन बैल भीषण वन झपटकर आ रहा है। वह चीखकर अपने पत्तों के छाते के साथ भागीं। दो-तीन गज भागी ही थीं कि खेत के बीच में गिर पड़ीं। वह पत्तों का छाता उन पर टोकरी की तरह औंधे मुंह पड़ा रहा। लछमन बैल ने आदमी के बदले उसी में अपने सींग भोंक दिये। वह छाता उसके सींग में फंसकर आकाश में हवा के साथ उड़ गया। दूसरी बार लछमन ने अपना सींग भोंकने का प्रयत्न किया। इतने में खेत के मेंड पर के पेड़ों पर के 'होरसलु' पंछियों का शिकार करने आये हुए हूवय्य ने देखा और अपनी सारी शक्ति समेट-कर लछमन की ओर झपटा। बैल उसकी तरफ घूमकर उसी को सींग से पीछे हटाने लगा।

थोड़ी दूर भाग जाने के बाद उसने सोचा, बंदूक से बैल को गोली मार दूं। मगर वह चंद्रय्य गौड़जी का बैल था ! गोहत्या ! न जाने क्या-क्या विचार उसके दिमाग में हलचल मचा गये। देखता है : बैल चार-पांच गज की दूरी पर दृढ़ निश्चय से झपट रहा है। वह आकर सींग मार दे तो मृत्यु निश्चित ! चढ़ने के लिए पास में कोई पेड़ भी नहीं है। हूवय्य ने झट से घूमकर खड़े होकर गोली दाग दी। बैल कम-बेश उसीके शरीर पर जैसे धड़ाम से गिर पड़ा ! गोली के लगने से उसके माथे से खून बहने लगा।

हूवय्य ने मूर्छित अपनी मां का उपचार किया। उसको जगाया। शोरगुल सुनकर पुट्टण्ण, रामय्य, वासु वहां भाग आये थे। उनकी सहायता से हूवय्य ने मां को घर पहुंचा दिया। उस घटना के आघात से सभी नसें पस्त हो गई थीं। इसलिए उसने भी बिस्तर पर लेटकर आराम किया।

चंद्रय्य गौड़जी को सारी बातें जब सही-सही मालूम हो गई तब, "हूवय्य ने हसद से ही गाड़ी के बैल को मार डाला है।" कहते हुए, "मुकद्दमा चलाऊंगा, मंत्र-तंत्र से, भूत की सहायता से, बैरी की हत्या करा दूंगा, उसके जानवरों को गोली से मार दूंगा।" कहते घर की छत उड़ा देने की भांति शोर मचाया।

अंत में उन्होंने जैसे कहा था वैसे कुछ भी नहीं किया। लछमन के साथ नंदी नामक बैल को भी हूवय्य को बेच दिया और उन दोनों बैलों को जितने रुपये में खरीदा था उतने रुपये वसूल कर लिये।

नागम्माजी का कुशल-समाचार जान लेने के लिए मुत्तल्ली से चिन्नय्य और सीतेमने से सिंगप्प गौड़जी आये। घर के बंटवारे के बाद चिन्नय्य यह घर नहीं आता था। एक के घर भोजन करने आवे तो दूसरे को गुस्सा आयेगा; एक की बैठक में बैठे तो दूसरे को बुरा लगेगा इस विचार से वह आता नहीं था।

चंद्रय्य गौड़जी ने तो हमेशा की तरह चिन्नय्य का स्वागत किया, मगर सिंगप्प गौड़जी को आंख उठाकर भी नहीं देखा। सो, चिन्नय्य चंद्रय्य गौड़जी की बैठक में

और सिगप्प गौड़जी हूवय्य की वैठक में वैठ गये।

थोड़ी देर में चिन्नय्य सिगप्प गौड़जी से वातचीत करने का वहाना करके हूवय्य की वैठक में आ वैठा। वस, रामय्य, पुट्टण्ण, वासु सभी वहीं इकट्ठे हुए। चंद्रय्य गौड़जी को अकेली अपनी अलमारी के पास वैठकर तपना पड़ा। गौड़जी को ऐसा लगा, सभी मुझे तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं; इसलिए उनको थोड़ा गुस्सा भी आया।

मुत्तल्ली से चिन्नय्य मामा आये हैं, अतः पुट्टम्म को रात की रसोई सुब्बम्म के साथ वनाने में थोड़ा विलंव हुआ।

हूवय्य के घर में नागम्माजी का स्वास्थ्य ठीक न रहने से, भोजन में कुछ भी विशेषता नहीं थी इसलिए रात को आठ वजे ही खाना तैयार हुआ।

पुट्टण्ण ने कहा—"भोजन के लिए चलिये।"

वैठक में वैठे हुए सभी एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

सिगप्प गौड़जी ने, "उठो चिन्नय्या, भोजन का शास्त्र पूरा कर लें (नाम के लिए मात्र भोजन करें)" कहकर ताश के पत्ते दरी पर रख के उठे। चिन्नय्य भी उठा।

इतने में रामय्य ने हूवय्य के कान में कहा—"हमारे घर में विशेष वनाया गया है।"

हूवय्य ने भी धीमे स्वर में कहा—"सच, करें? कहो। अच्छी फजीहत हुई! भोजन के लिए सिगप्प गौड़जी तुम्हारे घर नहीं आयेंगे। चिन्नय्य तो भोजन के लिए उठ गया। उससे वैठने के लिए कहकर, उसे छोड़ हम कैसे जाएं?"

अंत में अनिवार्य से चिन्नय्य भी सिगप्प गौड़जी के साथ हूवय्य के घर ही भोजन करने गया।

यह जानकर पुट्टम्म रोई, फिर अपनी वनाई कुछ चीजें, तरकारी, हूवय्य के घर भेज दीं।

यह छोटी-सी, स्वाभाविक घटना चंद्रय्य गौड़जी को वहुत वड़ा षड्यंत्र-सी लगी।

दूसरे दिन जव रिश्तेदार अपने गांव चले गये तव तुरंत चंद्रय्य गौड़जी रामय्य को आड़े हाथों लिया। चिन्नय को हूवय्य के घर भोजन के लिए भेजने के संवंध में उन्होंने खरी-खोटी सुनाई। गाली भी दी।

इस तरह सरौते में फंसी सुपारी की तरह की कदम-कदम पर घटनाएं होने लगीं तो हूवय्य को कानूरु के घर में वरसात विताना भी कठिन मालूम होने लगा। अतः उसके घर का वंटवारा होने के वाद दो ही महीनों में घर छोड़ने का निश्चय करना पड़ा।

केल कानूरु अण्णय्य गौड़जी जिस फूस के घर के एक हिस्से में रहते थे वह

और उसके समीप की जमीनें हूवय्य के हिस्से में आई थीं। उस घर को देखने वाला, सही, साफ-सुथरा रखने वाला कोई नहीं था। इससे उस घर में पानी चूता था, कूड़ा-करकट गिर गया था। जानवरों के सोने-उठने का विश्रामघर-सा बन गया था।

उसको साफ कराया गया। ऊपर घास अच्छी तरह बिछाई गई। उसके पास का खेती का कुआं भी साफ कराया गया। गोठ आदि की भी मरम्मत कराई गई। हूवय्य ने इस घर में आकर रहने का दिन तय कर लिया। उस दिन पानी जोर से बरस रहा था। तो भी सिगप्प गौड़जी की भेजी गई गाड़ी में सब सामान, बरतन आदि लादकर भेज दिये गये। चंद्रय्य गौड़जी के सिवा जब सभी रो रहे थे तब हूवय्य ने नागम्माजी के साथ पैतृक घर तज दिया।

पुट्टण्ण हूवय्य के हिस्से में आये डायमंड, रोजी, कोतवाल, इन तीन कुत्तों को और एक बेनाम या कई लोगों से कई नामों से पुकारे जाने वाले पिल्ले को साथ में लेकर, फिलहाल चंद्रय्य गौड़जी की पीड़ा से मुक्त होने की खुशी में केल कानूरु की तरफ बंदूक को कंधे पर रखकर चला। सभी उनका शान से जाना देखते रह गये।

४५

सांप का अण्डा

आठ दिन बीत गये। अण्णय्य गौड़जी, ओबय्य जिस घर के हिस्से में रहते थे उस घास वाले केल कानूरु के घर में हूवय्य, पुट्टण्ण, नागम्माजी रहने लगे तो वह अधिक गौरवान्वित हुआ। पुट्टण्ण के अनवरत श्रम से, हूवय्य की कलाभिरुचि से वह घर एक छोटे कुटीर के समान मनोहर हुआ।

घर पर धान की घास बिछाने से और उसका किनारा करीने से काटने से उसमें कोई नयापन आया था। पहले गोबर से लीपकर चूना लगाने से, चेचक के दाग वाले के मुंह की तरह दिखाई देने वाली दीवारों पर लाल मिट्टी के ऊपर सफेद रंग लगा देने से उनमें चमक आ गई थी और आह्लादकर कांति आई थी। कई वर्षों से धुएं के कारण काले पड़े बल्ले अब भी थे, मगर साफ थे। मकड़ी के जालों से, कई प्रकार के कीड़ों से भरा घर अब उनसे मुक्त होकर, जगह विशाल दीखती थी। घर में चारों ओर पड़े कूड़े-करकट निकाल दिये गये थे। अब घर के साथ, उसके चारों ओर की जगह भी साफ-सुथरी हो गई थी।

सबसे विशेष बात यह थी कि उस घर ने सपने में भी नहीं सोचा था कि इतनी तस्वीरें और इतनी पुस्तकें उसको देखने को मिलेंगी। हूवय्य को कानूरु छोड़कर आने के दूसरे ही दिन तीर्थहल्ली गये हुए चिन्नय्य ने मैसूर से वहां आये हुए हूवय्य के सामान को अपनी गाड़ी में भेज दिया था, उन सामानों का आगमन मानो हूवय्य को शांति, उत्साह, आनंद, ज्ञान इत्यादि की निधि मिलने के समान प्रतीत हुआ। सैकड़ों चित्रपटों से दीवारें सजाई गई। बैठक में मेज-कुर्सियां रखी गई। उनके पास अलमारी करीने से जोड़ी गई जो किताबों से भरी हुई थी! कुल एक सप्ताह के अंदर ही अंदर यह घास वाला घर कानूर के खपरैलों के घर के गात्र व विशालता को छोड़कर, अन्य बातों में मात करने वाला, शरमाने वाला-सा हो गया।

पहले पहल हूवय्य के मन में नूतनगृह प्रवेश के आनंद की अपेक्षा अधिक प्राचीन पैतृक गृहत्याग का दुख था। लेकिन जब उसके प्राणप्रिय ग्रंथ समूह हाथ लगे तब अपना यह घास वाला मकान ही पर्णकुटी की भांति शांत दीखने लगा। इतना ही नहीं, कानूरु में रही चंद्रय्य गौड़जी की किरकिर भी छूट जाने से मन

में समाधान विराजमान हुआ। रामय्य भी शाम की हवाखोरी के बहाने से, बारिश की झड़ी लगी रहने पर भी केलकानूरु गया और प्रतिदिन अपने बड़े भाई के साथ एक-दो घंटे रहकर अपने घर लौट जाने लगा। कौन-सी तस्वीर कहां टांग देनी चाहिये, कुर्सी, मेज, अलमारी कहां रखनी चाहिये आदि के बारे में सलाह देने व उनके रखने में रामय्य ने प्रमुख भाग लिया था। अलावा इसके अपने कुछ उत्तम सामान और चित्र एवं पुस्तकें हूवय्य के यहां रखने का प्रबंध किया। उसके लिए केलकानूरु एक तरह से 'रीडिंग रूम', 'लाइब्रेरी', 'आश्रम', 'क्लब', सब बन गया था। कभी-कभी उसको घर का बंटवारा होकर, हूवय्य का केलकानूरु आना एक प्रच्छन्न श्रेयस् की तरह दीखता था। प्रतिदिन केलकानूरु हो आने के लिए पिता की असीम गालियां सुनने के लिए भी वह तैयार हो गया था।

हूवय्य ने केलकानूरु आने के आठ दिनों के बाद एक छोटी-सी पार्टी देने की व्यवस्था करके, खुद कानूरु जाकर चंद्रय्य गौड़जी को भी तथा औरों को भी आमंत्रित किया। सीतेमने तथा मुत्तल्ली के और इतर कुछ घरों के लोगों को 'बुला लाने' के लिए पुट्टण्ण को भेजा।

उस दिन सवेरे करीब साढ़े आठ बजे कानूर से रामय्य, पुटम्म और वासु आये। पिंजरे से छूटे हिरन की तरह वासु कूदते-फांदते, किलकारियां मारते आकर नागम्माजी के पास आया और उनसे सटकर बैठ गया। वह सैकड़ों सवाल करते, बातें सुनाते, बड़ी मां को आनन्द के आंसू आने तक बातें करता रहा। वह फिर उठकर घर के कोने-कोने में जाकर तस्वीरें, चित्रपट, पुस्तकें देखकर फूला न समाया।

हूवय्य ने पूछा, "सुब्बम्म क्यों नहीं आई ?" तो पुट्टम्म ने जो कुछ हुआ था सब सुनाया। सुब्बम्म को यहां आने की बड़ी इच्छा थी। नई साड़ी भी पहन चुकी थी। पर चंद्रय्य गौड़जी ने मनमाने गाली देकर, धमकाकर उसे रोक दिया।

नौ बजे के करीब सीतेमने से सिगप्प गौड़जी आये। आते ही घर को, दरवाजों पर बंधे वंदनवारों को देख हर्षपूर्वक हंसते, "ओ हो-हो, क्या हूवय्या ! ऐसा लगता है जैसे तुम्हारा विवाह हो," कहकर उन्होंने सबको हंसा दिया।

दुपहर के बारह बजे मुत्तल्ली से गाड़ी आई और आंगन में खड़ी हो गई। चिनय्य, सीता, सीता का हाथ धरे लक्ष्मी (केवल लक्ष्मी कहने से गलती होगी) तीनों गाड़ी से उतरे। उनका स्वागत करने के लिए घर के सभी लोग वहां आ गए थे।

सिगप्प गौड़जी ने कहा—"ओ हो-हो, हूवय्या, मैंने जो कहा, वही सही है ! कन्या की तरफ की बरात भी आ गई तो !"

जो वहां इकट्ठे हुए थे, यह सुनकर सभी जोर से हंस पड़े। दुल्हन की भांति अलंकृत सीता के मुंह पर लाली छा गई। उसने अपना सिर नीचे झुका लिया।

हूवय्य भी हंस रहा था। लेकिन उसके मुंह पर भी लाली छायी थी। मगर उसने सिर नहीं झुकाया। औरों की ओर मुंह फेरकर बोलने के बहाने से, वसंत सौंदर्य की मूर्ति की तरह शोभायमान सीता की ओर कनखियों से देख-देख वह खुश हो रहा था।

रामय्य ने भी सोचा कि सिगप्प गौड़जी ने मुझे ही लक्ष्य करके मज़ाक किया है; अतः वह भी भीतर ही भीतर फूलकर बार-बार सीता की ओर देख रहा था।

चिन्नय्य एवं पुट्टम्म के मनोरथ, मनोभाव भी उसी श्रृंगार निधि पर जुलूस में निकले थे।

नागम्माजी के रिश्तेदारों के बच्चे जब घर आते हैं तब किये जाने वाले रस्म के अनुसार, लाल भात पर दिया जलाकर लक्ष्मी की आरती की, रंगीन पानी को आरती पर छिड़काया, फिर उसकी मसी को उसके माथे पर लगाया, फिर, 'दीठारनी' करने के बाद सब घर के भीतर गये।

इस विचित्र शुभ लीला को देखते, पूंछ हिलाते खड़े रहे डायमंड, रोजी, कोतवाल ने आंगन में गाड़ी के आने पर रोकी गई अपनी प्रणय क्रीड़ा आरती के बाद फिर से शुरू कर दी।

लक्ष्मी मना करने पर हठ करके बड़ी बहन के साथ जितने उत्साह से इस रिश्तेदार के घर आयी थी उतने ही रभस से मुत्तल्ली में रही मां के पास लौट जाने के लिए हठ करके रोने लगी। बहुतेरों ने उसे गोद में लेकर सांत्वना दी, खाने की चीजें दीं, तो भी उसने "मां···आ-आ-आ" कहते नहीं छोड़ा अपना रोना। छोटी बहन पर सीता को बहुत गुस्सा आया था; रुलाई आई, वह आंसू को रोक न सकी।

बड़ी बहन जितना गुस्सा करती, उससे भी ज्यादा लक्ष्मी ने रोना शुरू किया। आखिर, दुपहर के भोजन तक उसको मनाते रहकर, भोजन होते ही, सीता ने लक्ष्मी को गाड़ी में बिठाया और नंज से कहा—"इसे अपने घर पहुंचा दो।"

नंज ने सोचा था कि वह अकेला लौट जायगा और रास्ते में पड़ने वाली ताड़ी की दूकान में खूब ताड़ी पीने का मौका मिलेगा। अब लक्ष्मी को भी ले जाने की जिम्मेवारी पड़ने से अपनी इच्छा बेकार जायगी, सोचकर उसने कहा—"क्यों सीतम्माजी इसको क्यों भेज रही हैं? यह भी आपके साथ एक-दो दिन यहां रहे!"

सीता को उसकी बात सुनकर खूब गुस्सा आया और उसने कहा—"वह यहां नहीं रहेगी। उसे ले जा सकते हो तो ले जाओ! वरना मैं जो मुंह में आये, कह दूंगी!" नंज यह सुन बिना बोले चुप हो गया। लक्ष्मी को ले जाना मान गया।

लेकिन महारानी लक्ष्मीदेवीजी को गाड़ी में चढ़ाते समय या रथारूढ़ कराते समय वह हठ करके रोने लगी कि मेरे साथ बड़ी बहन को भी आना चाहिये। सीता के गले में कुछ अटक-सा गया। विरोध किया तो दर्द, शरण में

जाय तो मृत्यु, मछली की तरह हो गई उसकी हालत। उसकी समझ में न आ सका कि उसको रोना चाहिये या हंसना चाहिये, गुस्सा करना चाहिये या फिर घूंसा देना चाहिये। उस दिन सवेरे ही हूवय्य मामा के घर आई हुई वह उसी दिन दुपहर को घर कैसे लौट सकेगी? भूखी मधुमक्खी से उसके फूल पर बैठते ही कह दें "मकरंद पान अब बस करो, उड़ जाओ।" तो क्या वह उड़कर जायगी? सीता ने दांत पीसते हुए, आंखें लाल करके छोटी बहन की तरफ़ देखा। हूवय्य, सिगप्प गौड़जी, रामय्य वहां न रहते तो सीता लक्ष्मी को शायद एक घूंसा देकर उसे राह से छुड़ा देती, लगता था।

सीता ने छोटी बहन को छाती से लगाया, पुचकारा, खूब समाधान किया और अस्फुट स्वर में प्रार्थना की, "अरी, तेरे पांव पड़ती हूं! पुण्यवती! इतना उपकार कर! अकेली जा!" मगर शरणागत की रक्षा करनी चाहिये, यह वह कैसे जानती? वह इतनी बड़ी नहीं हुई थी कि शरणागत की रक्षा करना मानव धर्म है, जान सके। अतः उसने अपना हठ नहीं छोड़ा। "मैं···नहीं···जाऊंगी···अकेली··· तुमको भी···आ···जाना···चाहियें।···ऊं-ऊं" कह मुंह फुलाकर रोती रही।

सीता अपने गुस्से को रोक न सकी। उसने चुप-चाप लक्ष्मी की भीतर जांघ पर चिकोटी काटी। तुरंत वातावरण बदल गया। लक्ष्मी लोट-पोट होकर जोर से रोने लगी मानो उसे सांप ने डसा हो। इतने में नागम्मा, पुट्टम्मा उसके पास आईं। उसे सांत्वना दी। बहुत देर के बाद पुट्टण्ण के साथ मुत्तल्ली जाने के लिए मनवाया।

नंज ने गाड़ी को जोता। लक्ष्मी को लेकर पुट्टण्ण गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी धीरे-धीरे निकल पड़ी।

हूवय्य ने जोर से पुकारकर पुट्टण्ण से कहा—"उसको छोड़कर तुम जल्दी आ जाओ।"

पुट्टण्ण ने जवाब दिया 'हां! हां!"

आंखों से गाड़ी ओझल हो जाने के बाद सीता यह सोचकर कुछ शांत हुई—अभी तो बला टल गई।

शाम को अभी पांच नहीं बजे थे, बादल घिर आये। बारिश लगातार होने लगी। साढ़े छह या सात बजे का अंधेरा जमीन-आसमान में व्याप्त हो गया।

मैसूर से आये हुए अपने सामान, पुस्तकें दिखाने के बाद हूवय्य दीवार पर टंगे चित्रपटों को दिखाते जा रहा था, बीच-बीच में उन चित्रों का विवरण देते व्याख्या करता था। उसके आसपास खड़े सिगप्प गौड़जी, चिन्नय्य, रामय्य, वासु, सीता, पुट्टम्मा एक-एक बात बोलते, सवाल करते, यह अच्छा है, वह अच्छा है, कहते प्रशंसा करते जाते थे।

"यह है बुद्धदेव। महाराज शुद्धोदन का पुत्र था। वह जब पैदा हुआ तब

ज्योतिषियों ने उसका भविष्य बताते हुए कहा था कि वह संसार त्यागकर संन्यासी होगा। इसलिए राजा ने ऐसा प्रबंध किया था कि संसार के कष्ट पुत्र की दृष्टि में न पड़े। लेकिन एक बार वह राजधानी में रथ में बैठे जा रहा था तब उसने एक रोगी को, एक अंगहीन को, एक बूढ़े को, एक लाश को, एक संन्यासी को देखा। अपने सारथी से पूछकर उनके बारे में जान लिया। उसके बाद उसका मन प्रासाद के भोग-विलास की ओर न जा सका। मनुष्य का जीवन नश्वर है, दुःखमय है। उस दुःख से पार होने के विधान की खोज करने का उसने तय किया। राजा ने एक सुन्दर कन्या से उसका विवाह किया था ताकि पुत्र घर छोड़कर न जाय। उसके साथ बुद्ध कुछ दिन सुख से रहा। लेकिन उसका अंतरंग धीरे-धीरे संसार-सुख से दूर हो रहा था। इस तरह रहते समय, एक दिन रात को राज्य, माता-पिता, प्रासाद, पत्नी, सब को, सारे सुखभोग को छोड़कर तप करने जाने का निर्णय किया। उसी दिन रात को उसकी पत्नी ने एक शिशु को जन्म दिया।…"

"लड़का या लकड़ी ?" पुट्टम्मा ने पूछा।

हूवय्य और रामय्य दोनों हंसे। बाकी लोगों को वह प्रश्न हास्यास्पद नहीं लगा। उसके बदले वे सभी उत्तर सुनने को उत्सुक जान पड़े।

"लड़का !" कहकर हूवय्य ने रोचक ढंग से सिद्धार्थ के राज्यत्याग की महा-रात्रि में घटी सारी बातों का वर्णन सुनाने लगा। सभी अपनी सांस रोके, खड़े हो सुन रहे थे।

ध्यानमग्न बुद्धदेव की प्रशांत मूर्ति शताब्दियों के मौन-गांभीर्य से मुद्रित हो, पहाड़ी प्रदेश जंगल के कोने में रहे केलकानूरु के घास के घर की दीवार पर निस्पंद थी।

"अनमने से उस रात को जच्चा बनी अपनी पत्नी को, सद्योजात अपने पुत्र शिशु को सोते समय देखकर, मध्य रात्रि में सारथी की सहायता से अपने प्रिय घोड़े पर सवार होकर वह बहुत दूर गया।" जब हूवय्य ने काव्यवाणी में सुनाया सबकी आंखें गीली हो गई थीं।

"छि: ! ऐसा नहीं करना था !" वासु ने कह ही दिया।

समालोचना के पात्र बुद्धदेव भी वासु को सहानुभूति दिखाये बिना न रहता।

हूवय्य कहानी को आगे बढ़ाकर संक्षेप में, सिद्धार्थ बुद्धदेव बना, उसकी पत्नी, उसका पुत्र, उसके सगे-संबंधी उसके शिष्य वर्ग में शामिल हुए; सारा लोक उसका अनुयायी बना आदि सुनाकर आगे बढ़ा।

उसके उपरांत क्रूस पर चढ़ाये गये ईसा का चित्र, यम, सत्यवान-सावित्री का चित्र दिखाकर उनकी कथा सुदीर्घ विवर के साथ उसने सुनाई।

सुनते-सुनते सीता हूवय्य के इतने पास आ गई थी कि उसका शरीर हूवय्य के शरीर से स्पर्श कर रहा था। तो भी उसका ध्यान उसकी ओर नहीं था। प्रियतम

के भावपूर्ण वाक्य सुनते-सुनते उसका हृदय नंदनोद्यान बन गया था; उसका मन कल्पनाओं का मंत्र मंजूष बना था। वह सुवर्ण सपने देख रही थी—जैसे बुद्ध की पत्नी उसकी शिष्या बनी, मैं भी हूवय्य की शिष्या बनूंगी, सावित्री जैसे अपने पति के साथ यमलोक जाने के लिए भी तैयार हो गई थी वैसे ही मैं भी हूवय्य के साथ जाने के लिए तैयार हूंगी।

हूवय्य के शरीर से अपना शरीर सटाकर जाती हुई सीता को देखकर, रामय्य का मन हूवय्य के चित्रपटों के वर्णन की ओर नहीं गया। उसके मन में बहुत दिनों से जो संदेह था सीता-हूवय्य का शरीर सामीप्य को देखते ही साफ होने लगा। हूवय्य के प्रति पहले कभी जिस भाव का अनुभव नहीं किया था वह उसके दिल में झलका। तभी उत्पन्न हो, आंख खोलते हुए उस भाव को 'प्रणय मात्सर्य' नाम देना बहुत बड़ी बात होने पर भी कहना होगा कि उसमें कुछेक थोड़ा अस्तित्व था।

दूसरे दिन सवेरे सिगप्प गौड़जी सीतेमने चले गये। पिताजी ने कहा है, कह-कर रामय्य भी चिन्नय्य, सीता, पुट्टम्मा को लेकर कानूरु गया। जाते समय सीता ने अपना हृदय छिपा लेने का बहुत प्रयत्न किया, मगर आंखों ने आंसू बहाकर हृदय द्रोह किया।

सबने लाख सुनाया, समझाया, पर वासु कानूरु जाने के लिए बिलकुल तैयार नहीं हुआ और उसने किसी की नहीं मानी। हूवय्य के साथ रहने का हठ करके वह रह गया।

हूवय्य सभी रिश्तेदारों को भेजने के लिए थोड़ी दूर खेत को पार करके झरने तक ही गया, वहां रुककर पाव घंटे तक बातें करके, वर्षा शुरू होने पर ही अनमने से विदा लेकर वापस आया। विदा होते समय उसने सीता की ओर देखा। वह तो उसकी ओर ही देखते खड़ी थी। उस क्षण में उन दोनों के मन को संसार विरह के नरक-सा दीखा होगा।

प्रतिदिन बिना चूके केलकानूरु आने वाले रामय्या ने जब तक सीता कानूरु में थी तब तक हूवय्य के घर की ओर मुंह तक नहीं फिराया! पिंजड़े से मुक्त पंछी की तरह वासु प्रातः सूर्य के कोमल रक्तरश्मि में पहाड़ के शिखर पर के पेड़ के अंतिम छोर पर बैठ गानोन्मत्त बन गया था।

४६

चंद्रय्य गौड़जी पर कृष्णपक्ष का हावी होना

चिन्नय्य, सीता, पुट्टम्मा के साथ रामय्य घर पहुंचा तो चन्द्रय्य गौड़जी ने पूछा, "वासु कहां है ?" रामय्य ने कहा कि वह दो दिन वहीं रहेगा तो गौड़जी का चेहरा तमतमा गया एक क्षण में, फिर शांत होकर आये हुए रिश्तेदारों से बात-चीत करने लगे। अपने पिताजी को इतनी जल्दी शांत होते देखकर रामय्य को आश्चर्य हुआ।

दो दिनों के बाद रामय्य को साफ मालूम होने लगा कि पिता की शान्तता उन्माद के पास का प्रच्छन्न क्रोध है। चिन्नय्य और सीता को घर से थोड़ी दूर जाकर बिदा करके लौटते समय नारियल के पेड़ पर एक कौआ बैठकर विषण्णता से 'कां-कां-कां···' बोल रहा था। उसे देखकर गौड़जी बिगड़ गये और कहा—"बदमाश कौआ, क्या अपशकुन बोल रहा है ! ऐ निंगा, वह बंदूक ले आओ यहां।"

निंग अन्दर गया, बंदूक-कारतूस लाया और गौड़जी को दे दी। गौड़जी ने कौए को गोली दाग दी। कौआ पेड़ के सिरे पर से नीचे गिर गया। सभी कुत्ते उस पर झपटे। डूली ने कौए को मुंह में दबाकर लाकर गौड़जी के पैर के पास पटक दिया। कुत्तों से चिढ़ने वाले गौड़जी ने डूली की प्रशंसा करके, उसे चूमकर शाबाशी दी। मनः शास्त्रज्ञ कोई देखते तो, गौड़जी को अपने छोटे पुत्र के प्रति जो क्रोध था उसका रूपान्तर उसमें पाते।

इतना ही नहीं, उसी दिन कन्नड़ जिले से मजदूरों के साथ आये हुए सेरेगारजी को उन्होंने आज्ञा दी—"यह नारियल का पेड़ कल ही कटवा दीजिये।"

अनेक पीढ़ियों से बढ़ आये, काफी फल दिये उस वृद्ध वृक्ष को देख करुणा से सेरेगारजी ने कहा, "जी, स्वामी, वह रहे तो आपको क्या करेगा ? उसे तो कल्प वृक्ष कहते हैं। वही अपने आप गिर जाय तो गिर जाय। हम उसे काटकर पाप के भागी न बनें।"

गौड़जी एकदम आगबबूला हो गये। वे बोले, "आपको क्यों वह पुराण ?

जो कहूंगा सो कीजिये। कल्पवृक्ष कहते हैं! कल्पवृक्ष! बेकार बंझा पेड़ रहे तो क्या, जाय तो क्या?"

दूसरे दिन ही गौड़जी ने खुद उस नारियल के पेड़ को कटवा दिया।

गौड़जी जब से घूमने लगे तब से डूली तीनों वक्त उन्हीं के पास रहने लगी और उसको स्वादिष्ट खाना मिलने लगा। गौड़जी अपनी थाली में से ही दही-भात, मांस, हड्डी के टुकड़े उसे देते थे।

तीन-चार दिनों के बाद गौड़जी ने स्नान करते समय डूली को भी नहलाने का प्रयत्न किया। पर वह उतनी सभ्य नहीं बनी थी। एक लोटा पानी पड़ते ही वह उनके हाथ से खिसककर भाग गयी। नहाने तैयार हुए, कौपीन धारी गौड़जी डूली को बुलाते उसके पीछे गये। डूली रुक-रुककर देखती और गौड़जी के पास आते ही भागने लग जाती। गुस्से से गौड़जी ने उसे पास बुलाया, पर वह नहीं आयी। गुस्से से दौड़कर उसे पकड़ने का प्रयत्न किया। घर, गोठ, खलिहान सब जगह उसका पीछा किया। केवल कौपीनधारी, नंगे बदन के गौड़जी को कुतिया का पीछा करते देख पुट्ट तथा निंग ने भी कुतिया को पकड़ने में उनकी ममद की। कुतिया घबराहट के मारे बेतहाशा भागने लगी।

गौड़जी मारे गुस्से के और थकावट के, हांफते खड़े हुए और निंग को बंदूक लाने के लिए कहा। निंग प्रतिवाद करना चाहता था, पर डर के मारे उसने बंदूक ला दी। इतने में दौड़कर रामय्य आया और कहा, "कुतिया को न मारें।" तब पुत्र को एक ओर ढकेल करके गौड़जी ने कहा—"कही बात न मानने वाले प्राणी को जिंदा नहीं रहना चाहिये।" फिर उन्होंने उन्हीं को देखते खड़ी रही डूली पर निशाना बांधा। उस मूक प्राणी की गौड़जी की प्रलय बुद्धि समझ में नहीं आयी। एक बार जोर से फिर पुकार कर उन्होंने डूली को बुलाया। मगर वह न हिली न डुली। फिर दूसरी बार बुलाया। वह डर कर दो कदम पीछे सरक गयी। और लोग किसी तरह उसकी जान बचे, सोचकर पुकार रहे थे "डूली! आ, डूली!" गौड़जी ने तीसरी बार बुलाया। कुतिया लौट आने वाली ही थी कि बंदूक से गोली निकल चुकी थी! खून की कीचड़ में गिरकर कराहती हुई डूली ने अपने प्राण त्याग दिये।

गौड़जी तुरंत लौटकर गये और नहाये।

दुपहर का खाना खाया। फिर सोये। मगर वे बिस्तर से नहीं उठ पाये। रामय्य ने आकर पूछा तो उन्होंने कहा—"बुखार चढ़ा है।"

उस दिन शाम को गौड़जी की हालत विषम हो गयी। बुद्धिविकार से न जाने क्या-क्या बकने लगे। नारियल का पेड़ कटवाना, बांझ से क्या प्रयोजन? उपयोग? कहना, कल्पना, कही गयी बात न मानने वाले को गोली से उड़ा देना चाहिये। हाय रे बाबु, क्या मुझे छोड़कर गया रे? इत्यादि अंट-संट, असंबद्ध

प्रलाप करने लगे। अपनी पत्नी सुब्बम्मा को पास न आने दिया। अगर वह पास आती तो "थू! बदचलन, छिनाल, जा" कहकर थूक देते थे। रामय्य को भी पराया-सा मानने लगे। सेरेगार रंगप्प सेट्टजी, उनसे भी बढ़कर, खासकर गंगा ये दोनों उनका उपचार करके उनको अपने काबू में रख सकते थे। गौड़जी को स्वकीय परायों से, पराये स्वीकीयों से दीखने लगे। गंगा में जो विश्वास था उनका, वह सुब्बम्म में नहीं था।

दूसरे दिन बुखार थोड़ा-सा उतर गया था। मगर मनोविकार में कमी नहीं दिखाई देती थी। रामय्य ने कहा—'तीर्थहली से डाक्टर को बुला लाता हूं।" तब गौड़जी बिगड़कर कहने लगे, "अरे डाक्टर से क्या होता है? यह सब तमाशा भूतराय का है। यह सब उस हूवय्य का मंतर-जंतर है! जादू-टोना है! केलकानूरु अण्णय्य गौड़जी को कहला भेजो! उनको बुलाओ! तुम सबने मिलकर मुझे दूर करने की साजिश की है।" फिर वे रोने लगे।

"केलकानूरु के अण्णय्य गौड़जी कुछ महीने पूर्व गांव छोड़कर चले गये हैं। वे कहां हैं, किसी को नहीं मालूम।" जब रामय्य ने कहा तब गौड़जी ने कराहकर, एक दीर्घ उसांस छोड़कर "करो, करो! जो-जो करना चाहते हो, करो!" कहके कंबल को पूरा ओढ़ मुंह ढंक लिया।

रामय्य ने पिताजी के विश्वास के अनुसार सेरेगारजी द्वारा भूतराय की मनौती रखवा दी।

दुपहर को केलकानूरु से वासु को बुला लिया। गौड़जी ने उसे देखते ही पूछा, "वह कौन है रे?"

"मैं हूं पिताजी।" वासु ने कहा।

"अरे, किसी ने कह दिया कि तू मर गया?" जब गौड़जी ने कहा तो बगल में बैठी गंगा ने धमकाया, "छिः ऐसी बातें क्यों कहते हैं? ऐसी बातें मुंह से नहीं निकालनी चाहिये।" फिर गौड़जी कुछ नहीं बोले।

शाम के करीब अग्रहार के ज्योतिषी वेंकप्पय्यजी पधारे। जैसे प्रवाह में एक पुल के गिर जाने के लक्षण दिखाई देने पर उसकी रक्षा के लिए बुलाये गये इंजीनियर जिस अधिकार से, दर्प से, गर्व से, अभिमान से हुकुम बजाते हैं वैसे, उससे भी अधिक रीति से ज्योतिषीजी बरत रहे थे।

ज्योतिषीजी नहीं जानते थे कि रोग क्या है। तो भी उनको विदित सभी दवाओं का, एक के बाद एक का, प्रयोग करने लगे। साथ ही साथ यंत्र-तंत्र-मंत्र आदि दैविक विधानों का भी प्रयोग किया।

रोग उनसे कम होने के बजाय बढ़ गया। प्रबलतर हुआ। चौथे दिन हताश हो रामय्य केलकानूरु को दौड़कर गया। तब हूवय्य पुट्टण्ण के साथ अपने घर के आंगन में एक फूल के बगीचे की रचना में लगा था। रामय्य से सारी बातें जान-

कर हूवय्य ने सलाह दी कि तुरंत तीर्थहल्ली से सरकारी डाक्टर को बुला लो।

रामय्य ने कहा, "सरकारी डाक्टर का नाम लेते ही पिताजी बिगड़ जाते हैं, क्या करें ?"

"बिगड़ें तो बिगड़ें ! रोगी की बात बिल्कुल नहीं सुननी चाहिये ! पहले उस ज्योतिषी से दवा दिलाना बंद कर दो। उस मक्कार पंडित से वे नहीं बच सकते।"

"तुम भी आते तो बहुत अच्छा होता !..."

"मैंने उन पर जादू किया है। यह धारणा जब उनकी हो गयी है तो मुझे देखने से उनका बुद्धि-विकार और भी बढ़ जायगा, तो ?"

आखिर रामय्य को धैर्य देने के लिए हूवय्य भी कानूरु गया। लेकिन चंद्रय्य गौड़जी ने उसको देखते ही, रोग से कमजोर होने पर भी, खूब जोर से मुंह में जो आयी सो गाली देते हुए कहा—"मेरी आंखों के आगे मत खड़े रहो। दूर हट जाओ।" फिर हूवय्य उनकी नजर में न पड़ने का निर्णय करके दूर-दूर ही रहने लगा।

तीर्थहल्ली से डाक्टर आये, इंजेक्शन दिया, दवा दी, पथ्य बताया, तीमारदारी का विधान बताया, प्रतिदिन आकर दवा ले जाने की आज्ञा दी, फिर अपनी फीस लेकर लौटे।

आठ-दस दिनों में गौड़जी रोग-मुक्त हो गये। मगर बुद्धि का विकार पूरा नहीं गया। सुब्बम्म को बांझ, रांड़, छिनाल कहकर कोसते थे। घर के सब लोगों को जुगुप्सा से देखने लगे। अकेली गंगा ही उनकी हितकारिणी बन गयी थी।

पहले की शक्तियां—दर्प, गांभीर्य आदि—उनमें नहीं रहीं, उनके बदले क्रोध, धूर्तता, तुनुकमिजाजी, बीच-बीच में उन्मादी स्वभाव, ये अधिक हुए।

दिन बीतते गये। सुपारी के कटाव का मौसम आ गया। रामय्य ने ही सुपारी के गुच्छे काटने वालों और उतार लेनेवालों को तय करके, दक्षता से सुपारी के गुच्छे उतरवा लिए।

सुपारी के छिलके उतरवाना, सुपारी को पकवाना, फैलवाना, बीच-बीच में सीतेमने जाकर हूवय्य के काम में भी मदद कर देना, कभी-कभी बंदूक लेकर दोनों का जंगल में शिकार करने जाना आदि काम बेरोक-टोक होने लगे तो भूमि-पूर्णिमा का त्योहार आया।

४७

भूमि-पूर्णिमा त्यौहार के पिछले दिन जंगल में दैत्य पुट्टण्ण का कांटेदार सूअर का शिकार

भूमि-पूर्णिमा का त्यौहार दीपावली त्यौहार के ठीक पंद्रह दिन पहले आता है। फूलकर वढ़कर खड़ी रही हरी धान की फसल में दानेदार भुट्टे निकलने लगते हैं। पहले वोये गये कुछ खेतों में दूध पड़े भुट्टे भी दीखते हैं। सूर्य को भी ढंककर सारे आकाश में फैल पानी वरसाने वाले वादल काले-सफेद वादल वनने लगते हैं। कभी-कभी बूंदा-वांदी होने पर भी गरम-गरम धूप वार-वार झांककर हरे खेतों पर सुनहला हास्य विखेरती है। न वरसात की लगातार झड़ी, न गरमी के मौसम की चिलचिलाती धूप, न जाड़े की चुभती सरदी होने से आवोहवा—वातावरण सुखदायक होता है। एक-एक दिन वारिश विलकुल नहीं होती, धोये नीले शीशे की तरह फैले नीलाकाश में सूरज प्रफुल्ल तेजस्वी वना रहता है। ऐसे दिन वन्य मृगों के लिए खुशी के दिन होते हैं ! वैसे ही शिकारियों के लिए भी !

भूमि-पूर्णिमा त्यौहार की विशेषता है—कलमश्री की पूजा ! त्यौहार के अगले दिन ही सव लोग जंगल जाते हैं, साठ प्रकार के पत्ते लाते हैं और नूल नामक शकरकंद भी लाते हैं। सव पत्तों को मिलाकर तरकारी वनाते हैं जो 'मिश्रित पत्तों की तरकारी' कहलाती है। नूले शकरकंद आधा फुट मोटा, चार-पांच फुट लंवा होता है। उसे पकाकर, उसका छिलका उतार दिया जाय तो मक्खन की तरह सफेद, मुलायम और खाने में वहुत स्वादिष्ट होती है। इसी तरह अणंवलि, कोच्चिलि नामक मछलियों की तरकारी आदि भक्ष्य-भोज्य इस त्यौहार के दिन वनाये जाते हैं। इनके साथ ही, पिछले दिन कोई वड़ा जानवर शिकार में मिल जाय तो उसके मांस का पकवान भी त्यौहार के दिन वनाया जाता है।

परन्तु इस कलमश्री को जैन नैवेद्य दिखाया जाता है। यानी शाकाहार का नैवेद्य अर्पण किया जाता है। त्यौहार के दिन लड़के तड़के ही उठकर खेत जाते हैं, धान की फसल की विधिवत् पूजा करते हैं। फूल, फल, कपूर, गंध, घंटा, आरती—आदि से पूजा करते हैं। कलमश्री की आराधना के साथ कलोपासना भी होती है। जड़ जगत् और शस्यादि तत्वतः चेतनायुक्त होने से वंदनीय हैं और

यही इस पूजा की अव्यक्त शिक्षा है !

नूले शकरकंद और मिश्रण की तरकारी के लिए पत्ते लाने तथा शिकार करने त्योहार के पिछले दिन हूवय्य, रामय्य, वासु, पुट्टण्ण, वेलरों का वैरा और सिद्द सभी इकट्ठे होकर जंगल जाने के लिए निकले। सच कहना हो तो वे इकट्ठे होकर नहीं निकले, निकलने के बाद कानुबैलु में एकत्रित हुए। रामय्य, वासु, वेलरों का सिद्द ये चंद्रय्य गौड़जी की आज्ञा लेकर कुत्ते, बंदूक, रंभा, लाठी, दियासलाई का बक्स आदि वस्तुएं लेकर गये और इस तरह की समस्त वस्तुओं के साथ कानुबैल में प्रतीक्षा में बैठे हूवय्य के दल से जा मिले। सब मिलकर आगे बढ़े। इस तरह अलग-अलग जाकर मिलने का कारण चंद्रय्य गौड़जी का डर ही था।

उस दिन उनके भाग्य से गरम धूप हरी-हरी हरियाली पर खेल रही थी जो रमणीय थी। बिखरे बादलों के टुकड़ों के सिवा बाकी सारा आसमान साफ था। हवा भी सुखदायक थी। पंछी कूजनोत्सव में तत्पर थे।

हूवय्यादि से लेकर वैरे को और सिद्द को भी ऐसा मालूम हो रहा था कि जीवन गिरि-वन की रमणीयता में पंछी के पंखों से भी हलका होकर पंछियों की तरह उड़ने लगा है। संसार के सैकड़ों झंझटों की कंदराओं के निचले स्तर से स्वच्छ-स्वतन्त्र गिरि-वनों के औन्नत्य तक ऊपर उठे हैं उनके जीवन, ऐसा उनको लग रहा था। किस जीवी की आत्मा ऐसे समय में गगनस्पर्शी नहीं होगी ? हूवय्य उस रम्य प्रकृति के बीच में निर्मल वातावरण में आनन्द पा रहा था, सिद्द भी अबोध हो, आनन्द पा रहा था।

शिकारियों का समूह कभी-कभी विनोद की बातें करते, कभी-कभी बिना बोले, कभी-कभी फुसफुस करके मंत्रणा करते, कभी-कभी इर्द-गिर्द जमीन सूंघते जाते हुए कुत्तों को धीमी आवाज में 'छू-छू' कहते, हाथ से चुटकी देकर इशारा करते, कभी-कभी नूले शकरकंद की बेलों की खोज करते, मिश्रण के पत्ते काटते नाले में उतर, कगार पर चढ़, सरस साहस से आगे बढ़ गया।

जंगल में घूमने का वासु को अनुभव कम था। उसके पैर कांटेदार बेलों से खरोंच खा गये थे। तो भी वह घायल शूर सिपाही की भांति अधिक उत्साह से बड़ों के बराबर होकर आगे बढ़ा। उस जंगल, उस पहाड़ का सहवास उसके लिए खुशी का था। उसमें भी हूवय्य के साथ ! और आजादी !

एक जगह उन्होंने नूले शकरकंदों की लताओं को पास-पास में बढ़े देखकर वे शकरकंद खोदने लगे।

एक ओर वैरा, एक ओर सिद्द, रंभों से खोद रहे थे। बाकी लोग कंबल बिछाकर बैठ बातें कर रहे थे। कुत्ते भी एक के बाद एक वहां आकर, अपनी लाल जीभें बाहर निकाले हांफते आराम करने लगे। पुट्टण्ण जेब से पान-सुपारी निकाल-कर खा रहा था।

हूवय्य ने विनोद के लिए मानो कहा "शायद आज वासु के आने से कोई शिकार नहीं मिला।"

पुट्टण्ण ने मुंह भर में तांबूल भरकर, नथुने फुलाकर, निचला होंठ ऊपर करके कहा—"हां, हां। टुम को उसे लेकर आणा ही ण चाहिये ठा !" यों कहते ही खून तरह लाल वना थूक फूटकर कंवल पर और उसके शरीर पर आ पड़ा।

वासु "थू ! तेरा !" कहकर दूर सरका।

पुट्टण्ण ने अपने हाथ से कंवल एवं अपने शरीर को साफ किया।

"मैं आऊं तो शिकार नहीं मिलेगा ? पिछले साल भूमि-पूर्णिमा के त्यौहार के दिन पुट्टण्ण के साथ ही ताक में वैठा था न ? तव उसने एक सूअर को मारा था न !"

"हांजी, इसको अपने साथ विठाकर तंग आ गया था। 'वोलो मत, चुप रहो,' कई वार कहा तो भी वात करता रहा। उस सूअर का गिराचार ! (दुर्भाग्य) वह मेरे पास आया था !"

यह वात औरों को उवा देने वाली थी; तो भी, उन दोनों के लिए रसपूर्ण होकर चल रही थी। इस वीच में पुट्टण्ण उठकर खोदने वाले वैरे तथा औरों की सहायता के लिए गया। रामय्य ने कंवल पर पीठ के वल सोकर आंखें मूंद लीं।

हूवय्य "पुट्टण्ण, मैं कुछ इधर-उधर हो आता हूं।" कहकर, वंदूक हाथ में लिए उठा।

वासु ने कहा, "मैं भी आता हूं।"

"न, तुम यहीं रहो !"

वासु को वहीं रहने के लिए कहकर, कुत्तों को साथ लेकर अकेला हूवय्य नाले में ओझल हो गया।

वासु भी पुट्टण्ण, वैरा, सिद्द जहां शकरकंद खोद रहे थे वहां गया और कहा, "ओ हो हो; मेरे जितना ऊंचा है न यह शकरकंद !"

हूवय्य को नाले में ओझल हुए आधा घंटा वीत चुका था। खोदने वाले दो लंवे-लंवे शकरकंद उखाड़कर और दो निकालने में लगे थे। वासु पास के पेड़ पर चढ़ता, उतरता रहा। उसने वैरे के हंसुए से गुली-डंडा वना लिये। पेड़ों के सिरों से लंवी झूलने वाली वेलों को खींचकर चेन वनाया। कोमल पत्तों को काटकर दोनों अंगूठों के वीच में पकड़कर जंगली मुर्गियों एवं मंगट्टे नामक चिड़ियों की तरह वोलने का प्रयत्न किया। मगर उसमें वह सफल नहीं हुआ। किसी प्राणी की ध्वनि से न मिलने-जुलने वाली ध्वनियां, विकृत ध्वनियां निकलीं। पसीना वहाते खोदने वालों को भी उन ध्वनियों को सुनकर लोटपोट होना ही पड़ा। जव अपने से न वन पड़ा तव वासु ने पुट्टण्ण को कोमल पत्ते देकर उनसे आवाज निकालने को कहा। पुट्टण्ण ने ऐसी स्वाभाविक ध्वनि निकाली कि जंगली मुर्गियां और पेड़ों पर

बैठी मंगट्टे नामक चिड़ियां उसे सुनकर आवाज करने लगीं। वासु को अत्यानंद के साथ निराशा तथा असूया हुई। उसको तो पुट्टण्ण सर्वादर्शो का प्रतिनिधि जैसा दीख पड़ा। पुट्टण्ण का पिता जीवित नहीं था। इसलिए उसको अपने पिता का डर नहीं था। वह जहां चाहे वहां जा सकता है। उसके लिए दिन और रात एक समान है। इसलिए वह जब चाहे तब जंगल में घूमता है। उसका निशाना कभी नहीं चूकता है। वह अव्वल दर्जे का निशाना बांधने वाला है। कांटेदार सूअर, सूअर, बाघ, सांप आदि जंगली जानवरों का डर उसको बिल्कुल नहीं है। न जीने की जिम्मेदारी है, न मरने की। उसकी न पत्नी है, न संतान, न जमीन है, न जायदाद; कुछ भी न रहने पर भी, सब कुछ होने वाले की तरह स्वतंत्र है, सुखी है। मंगट्टे चिड़ियों की तरह आवाज करता है, जंगली मुर्गियों की तरह आवाज करके, उनको बुलाकर, उनको बंदूक से मार डालता है। वासु जैसे-जैसे उसके गुणों को गिनते गया वैसे-वैसे वे बढ़ते ही गये। वह उसके आगे ऐसा बना जैसे एक बड़े पेड़ के नीचे एक छोटा पेड़ होता है। पुट्टण्ण को देख उसे असूया हुई। लेकिन वह एक अबोध बालक की असूया थी जिसमें उज्ज्वल होने का गुण होता है, न कि जलाने का।

वासु ने एक पत्ते को लपेटकर सीटी बजाई। उसकी ध्वनि इतनी तीक्ष्ण थी कि उसने रामय्य को गुदगुदी करके जगाया। वह अनिच्छापूर्वक उठा और अपनी आंख मलने लगा। पिता की बीमारी एवं मन के क्षोभ के मारे उसे कुछ दिनों से अच्छी तरह नींद नहीं आई थी।

वासु फिर पुट्टण्ण के पास आया और शकरकंद खोदते हुए उसको रोककर कहा, "पत्ते से सीटी बनाकर बजाओ, देखें।"

"क्यों नहीं बजाऊंगा ? उसमें क्या बड़ी बात है ?" कहा पुट्टण्ण ने।

उसने एक पत्ता लिया; लपेटा, बजाया।

केवल फुसफुस आवाज निकली जैसे फुंकनी से निकलती है। वासु को बड़ी खुशी हुई जैसे बदला लेने से होता है। उसने कहा—'हां ! ऐसा ही होना चाहिए। सब में तुम्हीं होशियार हो समझ लिया है ?" फिर उसने चिढ़ाने के स्वर में कहा, "अब देखें, बजाओ। सीटी बजाओ। क्या इसे सूअर को मारने जैसे समझ रखा है ?" उसने फिर जोर से पत्ते की सीटी बजाई और गर्व से तनकर खड़ा हो गया।

पुट्टण्ण ने हंसते हुए चार-पांच पत्तों से सीटी बनाकर बजाने का प्रयत्न किया। मगर हर बार उसको नाकामयाब देखकर वासु को बहुत खुशी हुई। पुट्टण्ण सीटी नहीं बजा सका। क्योंकि उसका तोड़ा हुआ पत्ता, उसका हाथ, पत्ते के लपेटने की रीति, उसके होंठ, उसकी सांस भी, सब कड़े थे; बालक की मृदुता के लिए साध्य बना कार्य उससे नहीं बन सका।

"सीटी बजाने में केवल, तुम मर्द नहीं बने, लड़कियां भी सीटी बजाती हैं ! मेरी तरह तुम भी खोदो, देखें !" कहा पुट्टण्ण ने।

पुट्टण्ण ने विनोद के लिए कहा। लेकिन वासु सीधे जाकर वैरे से रंभा लेकर खोदने लगा। वाकी सव हंसी रोककर खड़े देख रहे थे। दो मिनटों में वालक के कोमल चेहरे पर से पसीने की वूंदें, आंखों से पानी की वूंदें झरने लगीं।

ठीक उसी समय दूर जंगल के वीच में से कुत्तों के भौंकने की आवाज उसके पीछे ही वंदूक की गोली की आवाज सुनाई पड़ी। तुरंत किसी के पुकारने की ध्वनि भी सुनाई दी।

सवका ध्यान उस ओर गया। उनके कान उसी तरह खड़े हो गये जैसे दूर में जंगली जानवर को देख शिकारी कुत्ते के कान ऐंठकर खड़े हो जाते हैं।

"कौन ? वड़े भाई क्या ?" कहकर रामय्य फुर्ती से उठा और तुरन्त वंदूक लेकर खड़ा हो गया।

"नहीं, ऐसा लगता है कि थोड़ी दूर जाकर देखें। कुछ दूर से आवाज आई है।" पुट्टण्ण ने कहा।

"कुछ भी हो, मैं देखकर आऊंगा।" कह रामय्य वंदूक कंधे पर रख के उसी ओर गया जिस ओर हूवय्य गया था। वह जंगल में ओझल हो गया।

इतने में वासु, किसी को मालूम न हो, इस तरह खोदना छोड़कर दूर गया और एक झुरमुट के पीछे एक महाकार्य में लगा हुआ-सा अभिनय कर रहा था।

पुट्टण्ण आदि को सुनाई पड़ी वंदूक की आवाज कानूरु, केलकानूरु को भी सुनाई पड़े विना न रही। उसे सुनने वालों में एक-एक ने एक-एक तरह से अनुमान किया।

चंद्रय्य गौड़जी ने सेरेगारजी से, "क्यों जी, दो गोलियां एक साथ क्यों दागी गई ?" कहकर, नस चढ़ाकर नाक को आस्तीन से रगड़ लिया।

"हिरन मालूम होता है, देखिये। परसों हमारे तोंद वाला तिम्म कह रहा था कि उसने हिरनों का एक झुंड देखा।"

"हिरन को नहीं, सूअर को मारा होगा। दो गोलियां दागी हैं तो, सूअर को ही मारा होगा।"

"सच ! कारतूस की वंदूक है न ?"

"और क्या ? 'कैप' की वंदूक से दो गोलियां एक साथ कैसे दाग सकते हैं ?"

"तो; हमारे हलेपैक के तिम्म की सवारी जंगल में चढ़ी थी कि क्या ?"

"हां, हां; उसके पास जोड़ नली की कैप की वंदूक है। वही शायद गया होगा।" गौड़जी ने तिम्म के प्रति अपना पक्षपात अभिव्यक्त करके कहा।

केलकानूरु में नागम्माजी की चिंता तरंगें दूसरी तरह की थीं। हूवय्य और पुट्टण्ण दोनों उस दिन जव घर से निकले थे तव से उनका मातृ हृदय किसी आशंका से भर गया था। कोई एक अस्पष्ट भय उनकी आत्मा को मथ रहा था। घर में कोई नहीं था, इससे शकुनपूर्ण-सा मौन घर उनके डर को और वढ़ावा दे रहा था।

उसी तरह घर की शांति कल्पना को मथकर, अनगिनत भय के चित्रों को भीतरी आंखों के आगे धर कर और भी डरा रही थी। बैरे की पत्नी सेसी लकड़ी की कोठरी में चावल को पीस रही थी। नागम्माजी वहां गईं। उससे बातें करते समय न जाने कौन-कौन से भयंकर विचार आने लगे तो वह लौट गई थीं।

स्थूल तबियत की सेसी को भी नागम्माजी का उद्वेग मालूम हुआ। उसने पूछा, "क्यों अम्माजी, क्या तबियत ठीक नहीं है ?"

नागम्माजी ने औपचारिक, यांत्रिक ढंग से कहा, "सिर में कुछ दर्द है री !" इतना कहकर वह घर के भीतर गई और बैठक में टंगे हर एक देवता के चित्र के आगे खड़े होकर पुत्र की कुशलता मांगते हुए हाथ जोड़े। उन चित्रों की बात रहे एक ओर, उनकी स्थिति ऐसी हो गई थी कि जो भी दिखाई दे उसके आगे हाथ जोड़तीं।

हूवय्य के जनन से ही नागम्माजी का उस पर लाड़-प्यार ज्यादा था। माता को अपने पुत्र की इतनी खातिर करते देखकर सबको लगता था, "यह क्या जी ? जैसे-जैसे पुत्र बढ़ता, उसके अंगांगों को, उसके भद्राकार को देख फूली न समाती थीं। कुल परिवार वालों को जो नहीं करना चाहिये, ऐसे कामों को भी पुत्रवात्सल्य से वह करती थीं। पुत्र के लिए अलग घी, मक्खन, दही, तले अंडे आदि चुरा के रख देती थीं। जब अपना पुत्र उनके पास रहता तब अन्य बच्चों को प्यार नहीं करती थीं। न चूमती थीं, न पास में आने देती थीं। कुछ समय के बाद जब उनको मालूम हो गया कि अपना पुत्र पढ़ाई में भी प्रथम है तब उनकी छाती खूब फूल गई और फाटक की भांति चौड़ी हो गई। चंद्रय्य गौड़जी और अपने पति के बीच में मनमुटाव हो गया और कष्ट से जीवन बिताना पड़ा तब, और पति की मृत्यु के बाद नागम्माजी ने अपने आगे की जगत की शून्यता को अपने इकलौते पुत्र के प्यार से भर लिया। हूवय्य ही उनके लिए दुनिया था। दुनिया ही हूवय्य थी। हूवय्य पढ़ने के लिए दूसरे गांव गया; तब उनका प्यार पुट्टम्मा और वासु की ओर झुका था, यह सच है। वासु को तो वह बहुत चाहती थीं। मगर वासु के प्रति उनका प्यार हूवय्य के प्रति प्यार के आगे अल्प था।

अति प्रीति अति भय का कारण बनी जो स्वाभाविक था। हूवय्य जब उनके पास रहता तब वह जो स्वर्ग सुख पाती थीं उतनी ही नरकयातना उनको होती थी जब वह दूर जाता था।

जब वह मैसूर में आराम से था तब भी नागम्माजी सोचतीं कि वह रोग से पीड़ित हो, कराहते मुझे बुला रहा है, चोर-बदमाशों के हाथों फंस गया है, दुष्टों के हिस्से में गया है, मोटर के नीचे आकर हाथ-पैर टूट गये हैं, या रेल के नीचे दबकर मर गया है इत्यादि। फिर वह भगवान से प्रार्थना करतीं, "हे भगवान्, मेरे पुत्र की रक्षा कर ! मेरी कोई गति नहीं उसके सिवा।" फिर वह एकांत में जाकर

रोतीं। वासु से तो दिन में चार बार पूछतीं, "हूवय्य से पत्र आया है क्या ?" पत्र जिस दिन आता उस दिन भी वह आराम से नहीं रहतीं। क्योंकि पत्र दो-तीन दिन पहले लिखा हुआ होता। तब पत्र लिखते समय सुखी था, अब क्या कुछ हो गया हो! कई बार अपनी भीति को अनावश्यक समझकर उससे मुक्त होने का उन्होंने प्रयत्न किया था। मगर जैसे-जैसे प्रयत्न करतीं वैसे-वैसे वह और भी अधिक होती जाती।

उस दिन भी जब हूवय्य जंगल के लिए रवाना हुआ, उसको बुलाकर, उसके क्रॉप पर हाथ फेरते, कई बहानों से उसके मुंह, गाल, कपोल पर अपनी हथेली फेरकर, "सावधानी से जाकर आना बेटा।" कहकर आशीर्वाद देकर उन्होंने भेजा था। उसके बाद पुट्टण्ण को बुलाकर कहा था, "होशियारी से देख लेना इसको !" उसी तरह अपने मन में काया, वाचा, मनसा प्रभु से प्रार्थना करके हाथ जोड़े थे।

लेकिन शिकारियों का समूह आंखों से ओझल होते ही चिरपरिचित भय के भूत ने माता के दिल को सताना शुरू किया। उनकी यातना को मातृहृदय ही जान सकता है।

यकायक उनको याद आया कि सिंगप्प गौड़जी का पुत्र कृष्णप्प भी बाघ का शिकार बन गया था; तब नागम्माजी आपादमस्तक सिहर गई थीं। घर के बाहर जाकर पुत्र को शिकार करने जाने से रोकने के लिए और उसको वापस बुलाने के लिए गरुड़ दृष्टि को दौड़ाकर देखा। विशाल खेत, घना जंगल, ऊंचा पहाड़, नीला मौन आकाश, प्रकाशमान धूप, आह्लादकर बहती हवा, इनके सिवा दूसरा कुछ भी उनकी दृष्टि में नहीं पड़ा।

"ऐ हूवय्या ! ओ पुट्टण्णा !" जोर से पुकारा।

उस पुकार को सुन हरे खेत में बैठा सफेद बगुला भी नहीं उड़ा। नागम्माजी लौटीं, हाथ पर सिर रख दिया, स्वप्न देखने बैठ गईं, चटाई पर नहीं, मानो कांटों पर जैसा लगता था। उस माता के मन में न जाने क्या-क्या दुरूहताएं, भीति के चित्र, भयंकर कल्पनाएं झलककर, उनके हृदय में कितने भयंकर प्रलयाग्नि सदृश भाव तांडव करते थे, उन सबका अंकन करना, लिखना मुमकिन नहीं।

यकायक दूर के गिरिवन के मध्य से दो गोलियों के दागने की धड़ाम-धड़ाम आवाजों ने दिन के मौन को आलोड़ित किया। मां चौंककर खड़ी हो गईं ! अब चिल्लायें क्या ? पर चिल्ला न सकीं। दीर्घ उसासें भरने लगीं। "राम ! राम ! राम ! बचाओ," कहकर हाथ जोड़ा। बिजली के वेग से हजारों भयंकर चित्र आलोड़ित कल्पना में गुजर गये। बाघ के कूदने के जैसे ! सूअर के भौंकने के जैसे ! सिर के टूटने के जैसे ! खून के बहने के जैसे ! गोली लगने के जैसे···! नागम्माजी जहां खड़ी थीं, वहां खड़ी न रह सकीं। वह जलाऊ लकड़ी की कोठरी में गईं।

वहां सेसी दिन के मौन से ज्यादा मौन हो, अरण्य की शांति से भी अधिक

काम हो, धीरे-धीरे जांत के गीत गाती हुई चावल पीस रही थी। उसको बंदूकों की आवाज़ें भी सुनाई नहीं पड़ी थीं !

हूवय्य जिस ओर गया था उसी ओर कंधे पर बंदूक रख के, रामय्य जंगल के उस रास्ते में घुस के कुछ दूर चलकर गया था। दुपहर की धूप में भी छाया हुआ वह वन का अंधेरा, हवा की सनसनाहट से ही पोषित-सी उस बीहड़ जंगल की निःशब्दता, मौन सरोवर में निःस्वन का पत्थर फेंकने से उत्पन्न ध्वनि के समान अत्यंत कम सुनाई पड़ती विविध शकुनियों की विकट ध्वनि—इन सब के माया प्रभाव से वह स्वप्नस्थ-सा, स्वप्नमुद्रित-सा हो आगे बढ़ते जाते रहने वाला यकायक चौंककर, टकटकी लगाये देखने लगा।

अपने से कुछ दूरी पर, एक ऊंची जगह पर, इर्दगिर्द बेहद घने हो बढ़े पेड़-पौधों के स्थान पर, हरा छाता ताने घने पेड़ों के जंगल के अंधकार में, उस वन के मौन में, एक बड़ी चट्टान थी जिस पर हरी दूब फैल गई थी जैसे हरा कालीन बिछाया गया हो। उस पर बिछे कंबल पर पद्मासन में बैठी है मनुष्याकार की एक निश्चल मूर्ति ! अगर दूसरे कोई होते तो उसे देख शंका करते कि कोई पूर्व-काल के एक ऋषि स्थावर शरीरी तनकर, कलियुग के जंगल में तप के लिए आ बैठे हों। पर, रामय्य ने धोखा नहीं खाया। वह जान गया था कि हूवय्य ध्यान-मग्न-सा बैठ गया है। उसका ध्यान भंग न करने के इरादे से वह एक पौधे की आड़ में चुपचाप छिप गया।

हूवय्य की बंदूक चट्टान के सहारे खड़ी थी।

वह चित्र इतना भव्य एवं प्रभावकारी था कि छिपकर देखते रहने वाले रामय्य का मन भी धीरे-धीरे गगन पै चढ़ने लगा। शरीर रोमांचित हुआ। हृदय दिव्यावेश की बिजली से पुलकित हुआ। आंखों में आंसू आये। ऐसा लगा मानो हूवय्य अपने ध्यान से उस सारे प्रदेश को ही ध्यानस्थ बना रहा हो। उस प्रभाव के उदार-कृपापूर्ण-सुंदराश्रय में रामय्य डूब गया।

हूवय्य पत्थर की मूरत की तरह बैठा था। उसकी सांस भी चलती थी कि नहीं. संदेह-सा हो गया था। अनुमान-सा हो गया था। उसकी आत्मा मानो भूर्भुवस्सुवर्लोकों में व्याप्त हो, उनको निगलकर, पचाकर, उनको पार करके अनिर्वचनीय,-अप्रमेय अनंत आकाश में विहार कर रही हो. लगता था। उस ध्यान की न गहराई थी, न चौड़ाई; उसकी कोई सीमा-सी नहीं थी। वह वहां बहती हुई हवा हो गया था; वहां बढ़े हुए पेड़-पौधे बन गया था, जंगल बन गया था, मर्मर नाद बन गया था, वहां का मौन बन गया था, दूर का आकाश बन गया था, पास की भूमि बन गया था; इतना ही नहीं, हूवय्य को लगा कि अपना व्यक्तित्व भी जैसे निराकार बन रहा हो।

देखते-देखते हूवय्य ने कहीं से, वहुत दूर से लौटकर अवतरित हुए-से उसांस छोड़ी, हसन्मुखी हो, चारों ओर देखा। उसका वदन तेजस्वी वन गया था। आंखें चमक रही थीं। उज्ज्वल वन गई थीं।

उस जंगल के शांतिमय मौन में एकाएक मंत्रघोष का मधुर गंभीर नाद उभर, ऊपर उठ वन प्रदेश में, वायुमंडल में धीरे-धीरे भरकर उमड़ पड़ा। रामय्य ने सांस रोककर, आनंद से पुलकित हो, सुना। वेदोपनिषदों के महामंत्र सह्याद्रि के कांतारों में धीर-माधुर्य से स्पंदित हो रहे थे।

थोड़ी देर में पुट्टण की पुकार सुनाई पड़ी, रामय्य अपनी जगह से चुपके से खिसक गया।

"हूवय्य मिले ?" पुट्टण्ण ने पूछा तो रामय्य ने कहा—"नहीं।" फिर उसने उससे जोर से पुकारने के लिए कहा। पुट्टण्ण शिकारियों की रीत के अनुसार हूवय्य को पुकार-पुकारकर वुलाने लगा।

हूवय्य पुट्टण्ण की पुकार सुन, उठकर आया। उसके प्रश्न के उत्तर में कह दिया—"कुत्ते वंदूक की आवाज सुनकर, उस आवाज की ओर झपटकर भाग गये। मैं एक जगह वैठकर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हारी पुकार सुनते ही उठकर आया; शायद और कोई शिकार के लिए आया होगा, उसने वंदूक दाग दी होगी। वंदूक की आवाज इधर की थी।" इस रहस्य को जानने वाला रामय्य भीतर ही भीतर हंस रहा था।

पुट्टण्ण ने कुत्तों को वुलाया। कोई कुत्ता नहीं आया। सवने मिलकर जो शकरकंद खोदे थे उनको और अपने औजारों को ले लिया और उस ओर चले गये जिस ओर से वंदूक की आवाज़ आई थी।

"क्रू-क्रू डैमंड ! क्रू-क्रू कोतवाल !"

"क्रू ऊ रूवी ! क्रू ऊ रोजी !"

वड़े कुत्तों को यों वुला रहे थे तो वासु अपने कोमल स्वर से छोटा होने पर भी अपने तीखे तार स्वर से, एक सांस में वार-वार 'क्रू, क्रू कुरु कुरु ऊ ऊ' कहकर वुला रहा था।

वहुत दूर जाने के वाद जंगल के वीच अत्यंत सांद्र, अत्यंत शीतल, अत्यंत नीरव कंदरा में किसी की पुकार-सी हुई। पुट्टण्ण ने भी पुकारा। किसी ने 'हां' कहके जवाव दिया।

"ओ हो। हमारे हलेपैक के तिम्म की पुकार-सी लगती है। लगता है कांटेदार सूअर के विल पर वैठा है! तो एक अद्भुत चमत्कार-सा हुआ!" कहते ही आगे वढ़ा।

वाकी सव लोग कुतूहल से, उत्साह से उसके पीछे गये।

वहां जाकर क्या देखते हैं: तिम्म के दो कंट्री कुत्तों के साथ डायमंड, कोतवाल,

रूबी, रोजी आदि चीनी कुत्ते भी मिलकर कांटेदार सूअर के बिल के मुंह के पास लाल मिट्टी कुरेद रहे थे। बगल में कंबल पर जोड़ नली की बंदूक रखकर पान-सुपारी खाते हुलेपैक का तिम्म बैठा था।

पुट्टण्ण ने कहा, "क्या है रे?"

"कुत्ते कांटेदार सूअर का पीछा करके भागकर यहां आये। मैंने दो गोलियां दागीं। मगर एक भी नहीं लगी। कुत्तों ने उसे इस बिल में घुसेड़ा है! इतने में आपके कुत्ते भी आये। आप लोग भी आ जायेंगे, सोचकर यहां बैठ गया हूं।" कहके तिम्म हूवय्य, रामय्य और वासु को आते देख खड़ा हो गया।

कांटेदार सूअर लंबे बिलों में रहते हैं। बिल यानी सुरंग मार्ग-सा जमीन में बनाया हुआ छेद या रंध्र गुफा। बिल जो कुछ लंबे होते हैं वे कन्नड़ में 'सरगुद्दु' कहलाते हैं। वे ही कांटेदार सूअरों के सच्चे निवास होते हैं। वे ऐसे बिलों में घुस जायं तो उनका कोई कुछ नहीं कर सकता। और एक प्रकार के बिल होते हैं जो दस-बीस गज लंबे होते हैं। उनमें कांटेदार सूअर घुस जायं तो खूब मेहनत करके खोदकर उनको बाहर निकालकर या बिल में धुआं करके मार डाल सकते हैं। एक और प्रकार का बिल होता है जो कोडा बिल कहलाता है। वे सिर्फ तीन-चार गज लंबे होते हैं। इनके दोनों ओर मुंह खुला रहता है। कोई जानवर एक ओर से घुसकर दूसरी ओर से निकल अपनी जान बचा सकता है। ये बिल बनाने वाले कांटेदार सूअर नहीं होते, बल्कि बिल दूसरे प्रकार के सूअर के बनाये हुए होते हैं। मगर इन बिलों पर कांटेदार सूअर ही अपना सामाज्यत्व—एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं!

छोटे क़द के कुत्तों में कुछ बिल में धैर्य से घुसकर कांटेदार सूअरों से लड़ सकते हैं। मगर यह एक ख़तरनाक साहस होता है। कई बार ऐसा हुआ है कि साहस से इन बिलों में घुसे कुत्ते बाहर आये ही नहीं।

पुट्टण्ण ने एक लंबी लचीली लाठी काट ली। बिल का मुंह एक या डेढ़ फुट चौड़ा था। उसके पास बैठ, उसने लाठी बिल में घुसेड़ दी। फिर उसे हिलाकर देखने लगा—सूअर पास में है या दूर। थोड़ी देर में उसको अनुभव हुआ कि लाठी कांटेदार सूअर को लग गई है। पुट्टण्ण ने यह शुभ एवं सुलभ समाचार सबको सुनाया। फिर उनने बिल के मुंह पर लकड़ी के टुकड़े और कूड़ा-करकट जमा करके उसे सुलगाकर धुआं बिल के भीतर पहुंचाने का निर्णय किया। एक-दो बार रूबी भी अंदर घुसने का साहस करके बाहर आई थी। उसने पहले कांटेदार सूअर पर टूट पड़के, मज़ा चख लिया था। फिर उसने दूसरी बार उन पर हमला करने का साहस नहीं किया। मगर जानवर कहां है, कितनी दूरी पर है, इतना भर मालिक को समझाने के लिए आवश्यक साहस करती थी।

वैरा, सिद्द, हुलेपैक का तिम्म तीनों लकड़ी, सूखे पत्ते, कूड़ा-करकट आग

जलाने के लिए संग्रह करने लगे। हूवय्य, रामय्य और वासु तीनों झुककर पुट्टण्ण से बातें कर रहे थे जो बिल के मुंह के पास बैठा था। घने वृक्षों से भरी गिरि-श्रेणियां अनंत दूरी तक फैली हुई थीं। दुपहर होने पर भी वन की छाया के कारण अंधेरा छाया था जिससे वातावरण में ठंडक थी।

"है कितनी दूर कांटेदार सूअर?" वासु ने पूछा।

"तीन चार गज की दूरी पर होगा।" पुट्टण्ण ने बिल के भीतर लाठी घुसेड़कर कहा, "सुनी क्या कांटों की आवाज़?"

तीनों ने बिल के मुंह पर कान देकर सुना। उस जंगल की नीरवता में सूअर के कांटों की आवाज़ साफ़ सुनाई-सी दी।

एकाएक पुट्टण्ण ने चौंककर, हाथ में धरी लचीली लाठी नीचे रखकर, कंबल झट से लेकर उसे बिल के मुंह पर पकड़कर कहा, "देखो, देखो, कांटेदार सूअर बाहर निकलने लगा है दीखता है! थोड़ी दूर जाकर खड़े रहो।"

हूवय्य, रामय्य अपनी-अपनी बंदूक लेकर थोड़ी दूर जा खड़े हुए सन्नद्ध होकर। कुत्ते उद्वेग से उछलने-कूदने लगे।

यकायक कांटेदार सूअर का मुंह बिल के मुंह पर दिखाई पड़ा। दैत्य पुट्टण्ण टस से मस नहीं हुआ। बिना डरे, बिना हटे चार-पांच तह किया हुआ कंबल उसकी गरदन के चारों ओर लपेटकर उसे दबाकर उसने पकड़ लिया। उस जानवर का शरीर बाहर होता तो उस पुट्टण्ण पर कांटों का प्रयोग तीर के समान हुए बिना न रहता। सूअर का शरीर बिल में था। उससे छूटने वाले कांटों की केवल आवाज सुनाई पड़ती थी। कांटेदार सूअर के सिर पर कांटे नहीं होते। वही एक भाग उसका निराधार था।

विद्युत्-वेग से पुट्टण्ण बाएं हाथ से सूअर का सिर जोर से दबाकर पकड़े रहा और दाहिने हाथ से अपनी बंदूक की थैली में से छुरा निकालकर सूअर का सिर कचकच काटने लगा।

उस समय देखने वालों को ऐसा लगता था मानो कांटों पर खड़े हों। कोई बोल नहीं सका। वह सूअर कहीं झपटकर पुट्टण्ण पर टूट पड़े तो क्या हो, सोचते हुए वहां खड़े रहने वाले सभी सांस रोके सुन्न थे। मगर दो-तीन मिनटों में सूअर का काम तमाम हो गया। वह ठंडा पड़ गया। कट-कटकर टुकड़े-टुकड़े हुए उसकी खोपड़ी से बहने वाले रक्त से मिश्रित सफेद मस्तिष्क बीभत्स दीख पड़ने लगा। तो भी पुट्टण्ण का दैत्यावेश नहीं उतरा। छुरे से उसकी आंख की पुतलीं, उसके कान, उसका मुंह, सब घास काटने के समान काट रहा था। उसको हूवय्य नहीं देख सका। उसने अपनी आंखें मूंद लीं। अनेक करुणा के काम किये पुट्टण्ण को, कुत्ते के पैर में कांटे चुभने से पीप हो जाने पर उसकी शस्त्र चिकित्सा कराके दवा लगाकर शुश्रूषा करते रहे करुणालु पुट्टण्ण को इस भीम भयानक, बीभत्स, रुद्र कार्य में

उद्विग्न देखकर हूवय्य को ऐसा लग रहा था कि मानो कोई उनकी छाती आरे से चीर रहा हो ! 'बस भाई, यह निगोड़े सूअर का शिकार ! आइंदा बंदूक लेकर इस खूनी काम के लिए जंगल नहीं जाना चाहिये।' इस प्रकार मन में पहले कई बार प्रतिज्ञा करने की भांति फिर हूवय्य ने प्रतिज्ञा की।

कांटेदार सूअर का सिर चकनाचूर होकर, उसकी जान पूरी निकल चुकने के बाद ही आवेश उतरने से पुट्टण्ण ने सुदीर्घ सांस छोड़कर, विजयोन्माद के ठाट से कांटेदार सूअर को बिल से बाहर खींचकर जोर से जमीन पर फेंक दिया। सभी कुत्ते घेरकर नोचने लगे।

हूवय्य शाम को जब सकुशल घर पहुंचा तब ही उद्वेग, भय आदि से तपी नागम्माजी की जान में जान आई। उनके हृदय में उत्पन्न कृतज्ञता की, भक्ति की, मंगलारती की महाज्वाला अंतरिक्ष को पार करके अतीत को अर्पित हो गई।

४८

चंद्रय्य गौड़जी की तलवार से बचकर रातों-रात सुब्बम्मा का कानूर से पलायन

भूमि-पूर्णिमा का त्यौहार बीत गया। दीपावली भी समाप्त हुई। सुपारी का कटाव शुरू होकर कुछ दिन बीत गये थे।

दीपावली त्योहार के अवसर पर हमेशा की भांति बड़ा शिकार साहस से किया गया। तीन सूअर, एक हिरन, एक-दो बर्क, एक कांटेदार सूअर के मिलने से सभी का त्योहार खुशी का हो गया।

उसमें एक विशेषता यह थी कि हूवय्य ने एक हिरन को मारा था, पहले उसने प्रतिज्ञा की थी कि कभी प्राणी हिंसा नहीं करूंगा। वह सार्थक नहीं हुई। वह तो साधु व अतिभीरु हिरन को नहीं मारूंगा, सूअर, बाघ, चीता जैसे क्रूर प्राणियों को मारूंगा, कहकर बंदूक ले खड़ा था। लेकिन कुत्तों का भूंकना, औरों की चीख-पुकार, होहल्ला, बंदूकों की ढम्, ढप्, ठप्, ठप् इत्यादि आवेश, उत्तेजक आवाज सुनकर, शिकार का जोश आने से हूवय्य ने अपने आपको भूलकर, डर के कूदते, फांदते, चमकते आते हुए हिरन को गोली मारकर गिरा दिया। तब उसको सोचने का, विचारने का न सब्र था, न फुरसत थी।

इतना ही नहीं, वह हिरन रामय्य के मार्ग से हूवय्य के मार्ग पर आया था। हूवय्य के पहले ही रामय्य ने उस पर एक गोली चलाई थी। मगर हिरन गिर गया हूवय्य की गोली से ही। लेकिन रामय्य की बंदूक के एक-दो छर्रे उसके पीछे लग गये थे पहले ही। उसका खून भी यहां-वहां गिरा था। इसलिए हूवय्य की गोली दूसरी थी जो लगी थी, पहली नहीं थी। मगर हूवय्य ने वाद किया कि मेरी गोली खाकर ही वह गिर गया। इस पर विनोद से शुरू हुई बात, भिन्नाभिप्राय की बातचीत कुछ गरमागरम होकर तीखी बन गई। हूवय्य ने और रामय्य ने आपस में बातें करना भी छोड़ दिया था एक सप्ताह तक। उसके बाद भी पहले की तरह बातचीत में आत्मीयता एवं आज़ादी नहीं दीख पड़ी।

हूवय्य-रामय्य प्रत्यक्ष झगड़े थे यही पहली बार। फिर भी उस घटना में उन दोनों के अंतरंग में गुप्त रूप से हृदय मंथन की छाया थी कुछ समय से। शायद

सीता उसका कारण रही होगी क्या ?

सुपारी का कटाव शुरू होकर कुछ समय बीत गया था। कानूर के घर में सुबह से शाम तक सुपारी के गुच्छे उतारना, ढेर लगाना, सुपारी का छिलका उतारना, उनको पकाना, सुपारी के पेड़ के पत्तों में उन्हें फैलाकर छप्पर पर धूप में सुखाना—ये सारे काम जोर से हो रहे थे।

रात के आठ बजे थे। छोटी और बड़ी बैठकों में, चौके में, हर जगह सुपारी के छिलके उतारने का लयबद्ध मनोहर नाद चारों ओर से सुनाई पड़ रहा था। उस दिन ज्यादा गुच्छे उतारे गये थे। इसलिए गौड़जी ने कड़ी आज्ञा दी थी कि आज ही सब सुपारी के छिलके उतारने का काम पूरा हो जाना चाहिए, कल के लिए न रखा जाय। इसीलिए बेलर सभी, हलेपैक के सभी, कन्नड़ जिले के सभी मजदूर, घर के नौकर-चाकर सभी जल्दी-जल्दी रात का भोजन करके आकर सुपारी के छिलके छीलने के काम में लग गये थे। काम जोरों से हो रहा था।

चौके के एक कोने में एक बड़े तांबे के हंडे में सुपारी पकपक, तकतक पक रही थी। और उस रात को पकाई सुपारी को सुखाने के लिए जगह भी तैयार हो गई। सुपारी के चूल्हे में आग धधक रही थी। उससे थोड़ी दूर में सिंग खड़े हो, अपनी जांघ खुजलाते, सेंकते बार-बार बांबू के बड़े कलछे को हंडे में घुमाते रहा। आग से थोड़ी दूर पर, तो भी उसके उष्णवलय में कुत्ते बेखबर हो, निर्लक्ष्य हो सोये हुए थे।

जहां-जहां सुपारी का छिलका उतारने का काम हो रहा था वहां-वहां मिट्टी के तेल के दिये जल रहे थे। जैसे-जैसे उन दियों की ज्वालाएं नाचती थीं वैसे-वैसे सुपारी के छिलके उतारने वालों की छायाएं चित्र-विचित्र हो, रूप-विरूप हो, दीवारों पर शकुनपूर्ण हो, गुह्य भीषण हो प्रेतनाट्य के प्रतिबिंब से दीखती थीं।

बैठक में एक ओर सेरेगार रंगप्प सेट्टजी, गंगा, सोम, उनसे कुछ दूर पर हलेपैक का तिम्म—इतने लोग अपना ही एक समूह बनाकर सरस बातचीतों में, भद्दी गप्पों में लगे थे; बीच-बीच में जमा हुए सब लोगों की आवाजों को मात करके अट्टहास करते सुपारी के छिलके उतारते थे। मन बातों पर था, परंतु अभ्यास के बल से हाथ अपना काम बिना चूके कर रहे थे। हलेपैक के तिम्म की कृपा से उन पर थोड़ा नशा चढ़ा था। यह बात हमें नहीं भूलनी चाहिये न ?

यकायक सबने सुपारी का छिलका उतारना रोक दिया। भौंहें चढ़ाकर, आंखें विस्तारित करके, मुंह खोलकर, सुना। भीतर से चंद्रय्य गौड़जी की कोप-ध्वनि, बीच-बीच में सुब्बम्मा की विरोध ध्वनि सुनाई पड़ी।

"हां! देखो फिर! शुरू हुआ! उस हेग्गडिति अम्मा के मारे सुख नहीं! उनकी ओर से भी सुख नहीं!" कहा गंगा ने सेरेगारजी की ओर देखकर।

"हेग्गडिति अम्मा पर क्यों आरोप ? गौड़जी का सिर फिर गया है तो!"

कहते हुए सेरेगारजी सुपारी के छिलके उतारने का काम छोड़कर उठे।

आजकल सुब्बम्मा के प्रति गौड़जी का वर्ताव लगातार बर्बर, क्रूर होता जा रहा था। शारीरिक दुर्बलता के साथ-साथ संशय प्रवृत्ति भी अधिक हो गई थी। सुब्बम्म की उन पर प्रेम करने की बात एक ओर रहे। वह उनको देखना भी नहीं चाहती, यह भाव बढ़ गया था। साथ ही उनके दिल में एक गूढ़ भाव का कीट घुसकर अपना घर बना रहा था कि वह पतिव्रता नहीं है। छोटे-छोटे कारणों से, कई बार वेबुनियादी बातों पर विश्वास करके, क्षुल्लक क्षुद्र-कल्पना करके भी उसे मारते थे। गाली देते थे।

वास्तव में सुब्बम्मा में पति के प्रति जुगुप्सा उत्पन्न हो गई थी। यह सच है। मगर वह जुगुप्सा दूसरे के प्रेम से प्रेरित नहीं थी। सेरेगारजी उसके प्रति ज्यादा सहानुभूति दिखाते थे। वह न जाने किस अभिसंधि से वैसे वरतते थे? वह सुब्बम्मा की स्थूल वुद्धि को नहीं सूझा। वह तो उनको कष्ट में सहायता पहुंचाने वाले के रूप में कृतज्ञता से देखती। पति से गाली खाकर, मार खाकर, सदा किरकिर, झंझट का जीवन बिताकर वह धीरे-धीरे दुबली बन गई। उसे देखकर गौड़जी को और गुस्सा आया। रोगपीड़ित उनके दिमाग में कराल कल्पना पिशाच बनकर नाचने लगी।

एक बार भोजन करते समय गौड़जी के मन में यह भाव उत्पन्न हो गया कि मेरी पत्नी ने मेरी हत्या करने के लिए तरकारी में जहर मिलाया है। उन्होंने उसका जूड़ा पकड़कर झकझोरते हुए पूछा, "तरकारी में क्या मिलाया है? अच्छी बात से कहती हो कि नहीं?"

"नमक, मिर्च की बुकनी, खटाई डाली है! फिर क्या डालती हूं?" सुब्बम्मा ने नाराज होकर कहा।

गौड़जी ने यह कहकर एक घूंसा दिया, "झूठ बोलती हो रांड़! यारों की बात मानकर तरकारी में विष मिलाया नहीं? कहो!"

सुब्बम्मा ने रोते, गिड़गिड़ाते हुए कहा—"मैंने वैसा कुछ भी नहीं किया है।" रामय्य ने, सेरेगारजी ने सुब्बम्मा का पक्ष लेकर वाद किया। तो भी गौड़जी ने सारी तरकारी सुब्बम्मा को खाने को दिया और उसके मरने की राह देख हताश हो गये थे।

एक बार सुब्बम्मा के सिर के पीछे, पीठ पर तिनके का टुकड़ा देखकर गौड़जी ने, "कहां से आया यह तिनका तुम्हारी पीठ पर? कहां, किसके साथ, घास के ढेर में सोई थी?" दांत पीसते, आंखें लाल करके पूछा। तब सुब्ब ने सरलता से कहा, "दुधारू जानवरों को खुद घास डालने के लिए गई थी, तब लग गया होगा।" तो भी गौड़जी को समाधान नहीं हुआ और उन्होंने उसको घूंसे दिये थे, लात मारी थीं।

अलावा इसके कई रात गौड़जी के सोने के कमरे में से जोर-जोर की, गुस्से की बातें, घूंसों की आवाजें, रोदन की ध्वनि उनको सुनाई पड़ती थीं। रामय्य आदि अटारी पर सोते थे।

गौड़जी ने गंगा को सुब्बम्मा की साड़ियां एवं आभूषण देना शुरू किया था। इसी कार्य ने सुब्बम्मा को गौड़जी का प्रतिरोध करने के लिए प्रेरित किया था। कष्ट में, गरीबी में पली एवं बड़ी हुई वह गंवार लड़की मार, गाली, निंदा कष्ट से सहन कर चुकी थी, मगर अपनी साड़ियों को, आभूषणों को पराई के होते देख वह सह न सकी। अतः पति के विरोध में बोलने भी लगी थी।

उस दिन रात को बाहर सभी नौकर-चाकर, मजदूर सुपारी के छिलके छील रहे थे, भीतर एक झगड़ा हो रहा था। गौड़जी ने सुब्बम्मा से पिटारी की चाबी मांगी। उसने नहीं दी। फिर चंद्रय्य गौड़जी गुस्से से भौंहें तानकर पत्नी पर टूट पड़े चाबी छीन लेने के लिए। मगर वे अपने इस जबरदस्ती के प्रयत्न में हार गये।

तुरंत सुब्बम्मा को छोड़कर, "आज तेरा टुकड़ा-टुकड़ा न कर दूंगा तो मैं अपने बाप का बेटा नहीं हूं।" कह ऊपर बल्ले पर रखी तलवार ढूंढ़कर ले ली गौड़जी ने। सुब्बम्मा को लगा कि अब अपने जीवन का अंत आ गया। वह जोर से चीखती-चिल्लाती बैठक में घुसी।

भीतर के झगड़े की आवाज सुनकर सुपारी के छिलके उतारने का काम छोड़कर पहले ही उठे सेरेगारजी, क्या मामला है देखने के लिए जाने वाले ही थे कि सुब्बम्मा के पीछे रोषण-भीषण हुए, हाथ में तलवार लिए गौड़जी झपटकर आये।

"हाय रे, मर गई! मर गई सेरेगारजी।" जोर से चिल्लाती, चीखती हुई सुब्बम्मा खुले फाटक से बिजली की तरह भागकर बाहर निकल गई। गौड़जी भी पीछे-पीछे झपटे। सुपारी छीलने बैठे हुए सभी काम छोड़ झटपट उठे और गौड़जी के पीछे दौड़े। बुखार में अटारी पर सोया रामय्य भी घबराहट से धड़धड़ सीढ़ियां उतरकर नीचे आया।

पर्वत प्रदेश रात-निश्चल थी। बादलों के बीच में अपूर्ण चंद्र की मंद कांति माया के आवरण के जैसे गिरि-वनों की स्तब्ध निद्रा पर बैठ सेंक रही थी। लेकिन क्षणार्ध में कुत्तों के भूंकने से और मनुष्यों की चीख-पुकार से रात का सन्नाटा हिल गया।

हाथ में तलवार लिए पीछा करने वाले गौड़जी को सुब्बम्मा नहीं दिखाई पड़ी। इधर-उधर घने पेड़ों की छाया के अंधेरे में आंखों से ओझल हो गई। क्रोधांध बने गौड़जी ने जैसे घायल बाघ यहां-वहां मचान पर छिपे शिकारियों को ढूंढ़ता है वैसे दीर्घ उसांस छोड़ते हुए सुब्बम्मा को ढूंढ़ा। यकायक पेड़ की छाया में कोई बैठी हुई-सी दीख पड़ी तो गौड़जी उस ओर झपटे और तलवार से उस पर वार किया। मगर न कोई चिल्लाया, न किसी ने पुकारा, न चीखा। तलवार भी अटक गई।

गौड़जी ने उसे खींचा, खींचा, पर वह नहीं निकली। उन्होंने मारा था पेड़ के तने को ! फिर भी गौड़जी के भीतचित्त में पिशाच, भूतराय आदि के बारे में विचार-भय उत्पन्न हुए, उनकी आंखें विस्फारित हुईं और वे विकट पुकार मचाकर नीचे गिर पड़े।

सब नौकर-चाकरों ने मिलकर गौड़जी को घर पहुंचाया। सुब्बम्मा को पुकार कर खोजा। कोई प्रत्युत्तर नहीं आया। वह दिखाई भी नहीं पड़ी।

बहुत समय तक सबने पुकारकर खोजा। आखिर हताश हो, भय, शंका से लौटे। लेकिन सेरेगारजी न हताश हुए, न लौटे। नौकरों के घर, गंगा की झोंपड़ी की ओर उसका नाम लेकर धीमे से पुकारते हुए निकले।

पेड़ के कोटर में छिपकर बैठी सुब्बम्मा बहुत देर के बाद सरदी में कांपने लगी। लोगों का शोरगुल कम हो जाने के बाद उसको भय होने लगा। क्रिमि-कीट उसके बदन पर 'गुलगुल' रेंगने लगे। वहां से वह धीरे-धीरे उठ बाहर आई। क्षण भर अनिर्दिष्ट चित्ता बनकर खड़ी हो सोचा कि आगे क्या करूं ? कानूरु में तो अपने लिए कहीं भी जगह नहीं, खैर नहीं; यों सोच सीधे वह केलकानूर को निकली।

खेत के बगल में जाते समय उसने देखा कि कोई पीछे आ रहा है। कोई पीछा कर रहा है जानकर जोर से भागने लगी। वह व्यक्ति भी पीछा करते दौड़ने लगा।

थोड़ी दूर जाने के बाद उसे लगा वह व्यक्ति मेरे आगे आ जायेगा। इसलिए वह सीधी राह छोड़कर, गलत रास्ता पकड़कर एक बड़े पेड़ के तले बढ़े झुरमुट में छिप गई। उसके देखते-देखते सेरेगार रंगप्प सेट्टजी केलकानूरु के रास्ते पर गड़-बड़ी से जल्दी-जल्दी आगे दौड़ते गये।

पांच मिनट भी बीतने न पाये थे, पेड़ पर से किसी के खांसने की आवाज आई। सुब्बम्म के मन में भूत-पिशाच के प्रति विश्वास बैठ गया था। (देहातों में यह 'वैज्ञानिक सिद्धांत' है कि एक भी ऐसा बड़ा पेड़ नहीं जिस पर भूत पिशाच का निवास न हो)। पेड़ की शाखा हिल-सी गई। सुब्बम्मा अत्यंत आश्चर्य से ऊपर देखती है : एक मनुष्याकृति नीचे उतर रही है। कंधे पर कंबल है, हाथ में बंदूक है जिसकी नली आकाश की ओर है ! बंदूक को देखते ही सुब्बम्मा को धैर्य हुआ। कोई शिकार की ताक में बैठा है। जंगली सूअरों के शिकार के लिए बैठा हुआ वह शिकारी पेड़ के नीचे तक धीरे से उतर, ज़मीन पर धप्प से कूदा और पूछा, "कौन है ?"

सुब्बम्मा को पुट्टण्ण की ध्वनि का पता लगा और उसकी जान में जान आ गई। छिपे हुए स्थान से बाहर आई और कंपित स्वर में शोकाकुल हो, "मैं हूं रे पुट्टण्णा ! मेरी गति यहां तक आई भैया !" कहा।

बिजली गिरती तो भी पुट्टण्ण को उतना आश्चर्य न होता जितना अब हुआ।

"कौन ? सुब्बम्मा हेग्गडितिजी क्या ?"

सुब्बम्मा ने सब बातें जो हुई थीं संक्षेप में बता दीं। पुट्टण्ण आगे चला, पीछे सुब्बम्मा आंखें पोंछती हिचकी लेती चली।

केलकानूर के फूस के घर के आगे जलती लालटेन के प्रकाश में सेरेगारजी और हूवय्य दोनों उद्वेग से बातें कर रहे थे। कुत्ते शायद समझ गये कि वे शिकार के लिए निकलने वाले हैं। इसलिए वे पूंछ हिलाने लगे। थोड़ी देर रुककर—

"आज रात को कहां गई थीं ?" हूवय्य ने कहा।

"कहां ? मालूम नहीं, देखिये। खेत के मैदान में दीख पड़ीं। फिर नहीं। उनका मन नेल्लुहल्ली जाने का होगा, ऐसा दीखता है।"

"आप अकेले पीछे आये। और लोग कहां हैं ?"

"वे सब ढूंढ़कर थक गये और चले गये वापस।"

कुत्ते भूंके। पुट्टण्ण ने "हचा ! क्या इनकी आंखें फट गई हैं ?" कहकर लालटेन के प्रकाश में आया।

वह हूवय्य को समाचार सुनाना ही चाहता था कि पीछे सुब्बम्मा ही दिखाई पड़ी। पुट्टण्ण ने सारी बातें दो बातों में बता दीं। सभी भीतर चले गये।

हूवय्य की मां गहरी नींद में थीं; उनको उठाकर हूवय्य ने सब बता दिया। सुब्बम्मा नागम्माजी के कमरे में सोई। उसके बाद हूवय्य, पुट्टण्ण और सेरेगारजी उनकी दुःस्थिति के बारे में बहुत देर तक बोलते रहे।

दूसरे दिन सवेरे सुब्बम्मा ने हठ किया, "मैं मायके जाऊंगी।" मगर सेरेगार जी उसे स्वयं नेल्लुहल्ली पहुंचा आने के लिए तैयार हुए। हूवय्य ने पुट्टण्ण को एकांत में बुलाया और उसके कान में कुछ बातें कहीं; उसने सेरेगारजी से कहा, "सेरेगारजी, नेल्लुहल्ली में मेरा भी कुछ काम है। मैं भी आता हूं आपके साथ।"

सेरेगारजी हताश हो गये और बोले, "तब आप ही जाइये। कोई जाने वाला नहीं है, जानकर मैंने कहा, मैं जाता हूं। बस ! तब तो आप ही जाइये। अच्छा, मैं जाता हूं।" फिर वे कानूर के लिए निकले।

सेरेगारजी मन में हूवय्य और पुट्टण्ण के प्रति दांत पीसते गये। उसके बाद चंद्रय्य गौड़जी के कान में उन दोनों के बारे में निंदा की बातें फूंक दीं। सेरेगारजी का यही मन्सा था कि गौड़जी सुब्बम्मा को त्याग दें, द्वेष करें; और वे उससे स्वयं फायदा उठावें।

किस घनौंदे में कब अंडा फूटकर संपोला फन उठायेगा, कहना कठिन है।

४९

जीवन के आकाश में काला बादल घना बन रहा है

हूवय्य घर के बाहरी आंगन में चिंतामग्न हो खड़ा था। तब सुब्बम्मा पुट्टण्ण की सुरक्षा में नेल्लुहल्ली की तरफ रवाना हुई। दोनों थोड़ी देर में आंखों से ओझल हो गये।

थोड़ी दूर में हरी-हरी पर्वतश्रेणी पर सूरज उगा। पेड़-पेड़ पर, झुरमुट-झुरमुट पर चिड़ियां चहकीं। खेतों में बढ़ी फसल पर सनसनाहट करती हवा बहने लगी तो फसल लहराने लगी। ऐसे दृश्य के समग्र में घाट के मजदूर-स्त्रियां और पुरुष सुपारी के छिलके छीलने के लिए खेत के बीच की पगडंडी पर गप मारते हुए आये।

हूवय्य देख रहा था, सुन रहा था, तो भी उसका ध्यान उस तरफ नहीं था। वे सब उसके प्रभावलय में मंद पड़ गये थे। क्या उसका ध्यान उतना गहन था? अगाध था?

एकाएक किसी के धकेलने से हूवय्य चौंका। घूरकर देखा 'वलींद्र!' उसे डांटकर हास्यमिश्रित क्रोध से उसके नाटे सींग पकड़कर कहा, "खा-पीकर मस्ती आई है। फिर इस तरह मोटा-ताजा बनोगे तो भूत की बलि होओगे!"

लेकिन उस पुष्ट महाकाय का काला बकरा शायद मानव शक्ति प्रदर्शन के लिए या नौजवानी की अधिकाई का आनंद प्रदर्शन के लिए या साधु जानवर के लिए स्वाभाविक प्रीति को दिखाने के लिए हूवय्य के बदन से अपना शरीर रगड़ते-रगड़ते सिर उठाकर, दो इंच दाढ़ी एवं छोटे गलस्तन से युक्त हो, टकटकी लगाकर मालिक के मुख को देखते, सजीव नयनों से मनुष्य की तरह आचरण करने लगा। हूवय्य झुककर उसकी गरदन को अपने बगल में दबाकर उससे विनोद के लिए बोल रहा था। बकरे की देह की बू नाक पर हमला कर रही थी।

हूवय्य ने जिस दिन से उसे भूत की बलि होने से बचाया था उसी दिन से वह उसका हो गया था। और किसी को उसका मालिक बनने का धैर्य नहीं था। भूत की बलि देने से बचाने की जिम्मेदारी अपनी समझकर, भूत के क्रोध का शिकार होने से अपने को बचा लेने के विचार से कोई उसकी परवाह नहीं करता था।

इतना ही नहीं, कोई मजदूर भी उस बकरे के लिए कोई काम करने के लिए तैयार नहीं होता था। गड़रियों ने भी इसे अन्य बकरियों के साथ मिलाकर चराने से इनकार किया। भूसा देने वाला भी उसको भूसा देने के लिए तैयार नहीं हुआ। वह स्वाभाविक बलवान था। कई बार हूवय्य के कुत्ते के समूह में निर्लक्ष्य रहता था। अत: वह कुत्तों से भी नहीं डरता था। मगर उलटे कुत्ते ही उससे डरते थे। इसलिए कुछ अंध-श्रद्धा वालों ने अफ़वाह फैलाई कि भूतराय स्वयं आकर उसमें निवास कर रहा है। इसीलिए कुत्ते उससे डरते हैं। उनका विश्वास था कि यद्यपि भूतराय औरों को नहीं दिखाई देता तथापि कुत्तों को दिखाई पड़ता है। इस तरह वह बकरा परमात्मा के नाम पर छोड़े गये बैल की तरह स्वेच्छाचारी, ताकतवर, कुछ हद तक धूर्त, डरपोकों के लिए भयंकर हो संपूर्ण स्वराज्य का अनुभव करता था।

कानूर में होने वाले सभी दुर्घटनाओं, झगड़ों, रोगों, दु:खों का कारण यही बकरा है, इस तरह सभी सोचने लगे। घर का बंटवारा, वासु का बेहोश होना, चंद्रय्य गौड़जी पर गोली उड़ना, सुब्बम्मा को उनका मारना, पीटना, गाली देना। इन सब का वह बकरा ही कारण बन गया जैसे सब अनहोनी का शिकार बनता है शनिदेव।

कई बार चंद्रय्य गौड़जी ने, सेरेगारजी ने, गंगा ने हलेपैक के तिम्म ने, निंग ने, जोरदार बहस की थी कि इस बकरे की बलि भूतराय को दिये बिना सुख नहीं। नागम्माजी ने भी अपने पुत्र से ऐसी ही चर्चा की थी। पर हूवय्य ने इन सारी बातों की ओर ध्यान दिये बिना बकरे के साथ दोस्त बना रहता था। घर का बंटवारा होकर हूवय्य और बकरा दोनों केलकानूर आये। तो भी पहले की भावनाएं कम होने के बजाय, कुम्हलाने के बजाय, और भी बढ़ी और खिलीं अच्छी तरह।

घाट के मजदूरों में और बेलरों में यह भाव प्रबल हो गया कि भूत हूवय्य गौड़जी के वश में हो गया है; वह जैसे कहता है वैसे भूत सुनता है व करता है। इससे अनजाने हूवय्य को एक लाभ हुआ।

चंद्रय्य गौड़जी ने बैरा और सेसी को छोड़कर सभी मजदूरों को सेरेगारजी और निंग के द्वारा गुप्त रूप से सूचना दी थी कि वे हूवय्य की किसी काम में किसी प्रकार की मदद न करें। पहले पहल सब इस फितूर के शिकार बन गये थे। जिससे खेती आदि का काम कराना हूवय्य को दूभर हो गया। किंतु हूवय्य के बारे में 'अतिमानुष' भाव लोगों में फैल गया तो लोग प्राण भय से जब कभी वह बुलाता तब उसके काम करने गुप्त रूप से आते थे।

हूवय्य की 'अतिमानुषता' की वार्ता के सब लोगों में फैलने के अनेक कारण थे। उदाहरणत: उसकी ध्यान समाधि, उसका बहुत समय एकांत में बिताना, जंगलों में बैठ ध्यान करना, औरों की समझ में न आने वाली भाषा में बड़े-बड़े ग्रंथ पढ़ना,

आम मूढ़ अंधविश्वासों का खण्डन करके भी संप्रदाय के अनुसार भूतादि की आराधना किये बिना भी निरोगी रहना, वकरे की वार्ता—इन सबने मिलकर उसकी 'अमानुपता' के परिवेश को वढ़ा दिया था। हूवय्य के कानों पर भी यह वात पड़ी थी। लोगों के इस भाव को कम करने का उसने वहुत प्रयत्न किया, मगर उसके वदले उसके वारे में जो वातें फैल गई थीं वे और वढ़ गईं तो उसको चुप रहना पड़ा।

इन सव वातों के वारे में वह वकरे से वातचीत करता, "तुझ में भूत है ? कहां है ? तेरी आंखों में है ? या दाढ़ी में है ? वता, वता रे, वता !"

इत्यादि वह तमाशा के लिए वोलता तो सुपारी छीलने आये हुए मजदूर दूर में अवाक् हो खड़े होकर हूवय्य गौड़जी को वकरे से वातें करते देखकर भय-भक्ति से आपस में इशारे से वातें करते।

रसोईघर की खिड़की से यह सव देखती हुई नागम्माजी दुःख से वाहर आकर मज़दूरों से कहतीं, "वहां क्या देखते हो ? काम छोड़कर ? चलो काम पर, सुपारी के छिनके उतारो।" फिर अपने पुत्र से कहतीं, "तुम्हारा करना और लोगों का कहना दोनों वरावर ! कहीं से तुम्हें 'अनिष्ट' मिल गया है ! थू, उसे छोड़कर आओगे कि नहीं ?" फिर उन्होंने लकड़ी उठाकर वकरे को भगाया।

हूवय्य ने मां को देख हंसते हुए कहा, "तुम सवकी भूत-भ्रांति कव जायगी ? परमात्मा ही जाने !"

वलींद्र (हूवय्या द्वारा वकरे का रखा नाम) झूमकर देखते छोटी-सी पूंछ नचाकर उछलते-कूदते, खुशी से चीखते चरने के लिए जंगल गया।

वलींद्र के ओझल होते ही अपने रुके विचारों को ध्यान में लाकर मां से हूवय्य ने कहा, "मैं मुत्तल्ली जाकर आता हूं, शाम के पहले लौट जाऊंगा।"

नागम्मा ने पुत्र की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देख कहा—"लौटते समय सीतेमने भी हो आना, सिंगण्ण गौड़जी से मैंने कुछ कहा था, उनसे मिलकर उसके वारे में जानकर आना।"

'क्या कहा था उनसे ? मुझसे नहीं कहना चाहिये उसे ?"

"इस सवसे तुमको क्या ? चुपचाप पूछकर आओ। फिर तुमसे कहूंगी।" वहां ज्यादा देर खड़े रहने से सवालों का सामना करना पड़ेगा सोचकर नागम्माजी हंसती-हंसती धीरे से चली गईं।

हूवय्य मुत्तल्ली गया, श्यामय्य गौड़जी से, चिन्नय्य से पिछली रात को घटी सारी वातें जो उसने सुनी थीं सविवर सुनाया और कहा कि शीघ्र कानूरु जाकर चंद्रय्य गौड़जी को सव न समझा दें तो आइंदा कोई दुर्घटना हो सकती है।

"मैंने तभी उनसे कहा था कि तुमको इस उम्र में शादी नहीं करनी चाहिये। उन्होंने मेरी वात नहीं सुनी।" हूवय्य से कह, श्यामय्य गौडजी ने नंज को वुलाकर

कहा "दुपहर, भोजन के बाद कानूर जाना है, गाड़ी तैयार करो।"

भोजन के बाद हाथ धोकर बैठक की ओर जाते हुए हूवय्य को देखकर गौरम्माजी ने बुलाया और सब कहानी सुनकर दीर्घ सांस छोड़कर उन्होंने पास में खड़ी सीता को मानो करुणा से देखा।

हूवय्या को व सीता को भी उनकी उस दृष्टि में छिपे रहस्य का या खेद का, या एक प्रकार के पछतावे का भाव तनिक भी नहीं सूझा। श्यामय्य गौड़जी और गौरम्मा के बीच में, आपस में अपने बच्चों के विवाह के बारे में भीतर ही भीतर होने वाली बातचीत, मनस्ताप, संघर्ष सीता तथा हूवय्य को कैसे मालूम हो?

लेकिन हूवय्य को उस दिन संध्या के पहले मालूम हो जाता है।

श्यामय्य गौड़जी और हूवय्य गाड़ी में बैठ गए। गाड़ी रवाना हुई। गौड़जी ने हूवय्य से नागम्माजी की खैरियत, घर के काम काज, खेती-बारी, फसल, सुपारी का कटाव, इत्यादि के बारे में बातें कीं। हूवय्य 'हां, हूं, न, हूं, हूं, ऊं' कह उत्तर देते, न जाने क्या सोच रहा था। कई दिनों से वह किस बात के बारे में कहना चाहता था वह आज फिर जाग्रत हो गई थी अंगड़ाई लेकर।

दो-तीन बार उस बात को बताने का उसने प्रयत्न किया। मगर वह बात उसके गले में ही अटक जाती जैसे पहाड़ से उतर आई नदी रेगिस्तान में सूख जाती है। अगर नंज न होता तो मैं सब कुछ कह देता! खुद आप अपनी पुत्री को मुझे दें कहना बड़ी मुश्किल बात! उसमें भी जब दूसरे लोग हों तब नामुमकिन! और जो हो, एक फर्लांग आगे जाने पर कह दूंगा, उसने मन में पक्का कर लिया।

'एक फर्लांग आगे जाने पर क्यों?' यदि कोई पूछता तो उसका सही कारण नहीं मिलता।

फर्लांग पार हो गया। तो भी हूवय्य ने नहीं पूछा। फिर वह यह निश्चय करके बैठ गया कि मील का पत्थर दिखाई देते ही पसोपेश न करते, कुछ भी सोचे बिना, पूछ ही लूंगा। जैसे-जैसे गाड़ी क्षण-क्षण आगे बढ़ती वैसे-वैसे उसकी छाती धड़कने लगी। अब और क्या, मील का पत्थर आ ही जाता है! आ ही जाता है!

पहले कैसे शुरू करूं?

"मैं बहुत दिनों से आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता रहा!"

थू! ऐसा शुरू करना ठीक नहीं।

"मामा, सीता आराम से तो है न अब?"

अभी-अभी देख आया हूं। ऐसा पूछूं तो लोग कहेंगे कि इसका सिर तो नहीं फिर गया है! यह तो अपनी हालत आप बताने के जैसा हो जाता है!

अब जो कुछ हो रहा है उसकी जड़ है वह अग्रहार का वेंकप्पय्य ज्योतिषीजी। वही है न जिसने कुंडली देखकर छोटे चाचाजी की शादी कराई थी?

उं हुं, ऐसा शुरू नहीं करना चाहिये। वेंकप्पय्य के प्रति इन सब में बड़ा गौरव

है। विश्वास है, भक्ति है !···

एक बार गाड़ी का पहिया ऊपर उठकर नीचे पटक गया। तब हूवय्य मानो नींद से जाग गया; वह चुपचाप, सोचने के लिए भी गुंजाइश न होने के कारण, मील के पत्थर के आने की प्रतीक्षा में था। गाडी बहुत दूर निकल गई थी, तो भी मील का पत्थर नहीं दीख पड़ा। हूवय्य को आश्चर्य हुआ। यह क्या चमत्कार है ? हमेशा रहने वाला वह मील का पत्थर—ताड़ी की दूकान में खूब ताड़ी पीकर मदहोश नंज आदि ने जिस पत्थर से ठोकर खाई थी, लात खाई थी, उनके रगड़ने से गेरुआ रंग में परिवर्तित हुआ पत्थर—आज कहां गया ? पियक्कड़ों में से किसी ने उखाड़ दिया क्या ? हूवय्य चौंककर देखता है – सीतेमने जाने वाला रास्ता आगे है ! तब उसको मालूम हुआ, सोचते समय वह मील का पत्थर पीछे चला गया होगा !

"मामा, मुझे सीतेमने जाना है !···तो नंजा, गाड़ी रोक दो !" कहकर गाड़ी के रुकने के पहले ही वह गाड़ी से कूदकर खड़ा हुआ।

"क्या कुछ काम है ?" पूछा गौड़जी ने टेके हुए तकिये को ठीक लगाते हुए।

"मां ने सिंगप्प चाचाजी से कुछ कहा था; वह क्या हुआ, पूछकर आने के लिए कहा है।"

श्यामय्य गौड़जी ने कहा—"तो जाकर आओ बेटा !" गाड़ी चली, हूवय्य भी चला।

सिंगप्प गौड़जी से पूछकर हूवय्य जो जानना चाहता था उसके बारे में श्यामय्य गौड़जी ही बता सकते थे। वे अच्छी तरह जानते थे किस विषय के बारे में सिंगप्प गौड़जी से हूवय्य की मां जानना चाहती थीं। लेकिन वह विषय हूवय्य और सीता से संबंध रखने वाला होने से, वे अनजान के से बहाना, अभिनय कर रहे थे।

हूवय्य जब सीतेमने पहुंचा तब सिंगप्प गौड़जी ने उसका अत्यानंद से स्वागत किया। हूवय्य ने मना किया, तो भी उन्होंने कुछ खाने की चीजें खिलाकर कॉफी पिलाई। सिंगप्प गौड़जी स्वभाव से ही विनोदप्रिय, विनोदी तबियत के व्यक्ति ! उनमें अपने शत्रुओं का प्रतिकार करने की जितनी वक्रता थी उतनी ही अपने पसंद के लोगों को प्यार करने की सरलता भी थी। कोई उनको तब देखता तो कह नहीं सकता था कि यह उसी पुत्र का पिता है जिसका विवाह तय हो चुका था और वह जो बाघ से जान से मारा गया।

थोड़ी देर बातें करने के बाद हूवय्य अपनी मां की कही बात की याद दिलाई। उनके जवाब पाने के लिए उनके मुंह की तरफ हूवय्य देखने लगा। तब हूवय्य को लगा कि उनके चेहरे पर क्रोध, खेद, हताशा—तीनों एक के बाद एक पहले बाहर आ पड़ने के लिए मानो स्पर्धा कर रहे हों जिसे देखकर उसको आश्चर्य भी हुआ।

सिगप्प गौड़जी सब रहस्य की बातें खुल्लमखुल्ला कहने लगे।

कुछ दिन पूर्व नागम्माजी ने सिगप्प गौड़जी से कहा था कि श्यामय्य गौड़जी से पूछें कि वह हूवय्य से सीता का विवाह करने के लिए तैयार हैं कि नहीं। सिगप्प गौड़जी भी इसके पक्ष में थे। इस संबंध को जोड़ने के लिए उत्साह से मुत्तल्ली जाकर उन्होंने विचारा था।

श्यामय्य गौड़जी ने कहा—"ठीक है, आपके कहने के अनुसार किया जा सकता था। लेकिन मैंने पहले ही चंद्रय्य गौड़जी को वचन दे दिया है। अलावा इसके कन्या देकर, कन्या लाना भी हमारे लिए आसान हो जाता है। क्या करें? आप ही कहिये! हमें कहीं भी हो तो बस! कन्या के लिए एक वर, एक वर के लिए एक कन्या हो तो बस!"

चंद्रय्य गौड़ और सिगप्प गौड़जी के बीच में ऐसा संबंध था जैसे तेल और साबुन के बीच में होता है। इसलिए सिगप्प गौड़जी ने पक्का इरादा कर लिया कि सीता को चंद्रय्य गौड़जी की बहू बनने नहीं देना चाहिये। यही नहीं, अपने पुत्र के लिए वाग्दत्ता सीता पर चंद्रय्य गौड़जी की अपेक्षा अपना हक ही अधिक है, उन का विचार था। जिसके विवाह के लिए चंद्रय्य गौड़जी ने सीता की मंगनी की थी उस रामय्य से सिगप्प गौड़जी का किंचित भी द्वेष नहीं था—(उसके बदले विश्वास था) तो भी रामय्य के पिता का विरोध करने के लिए उंगली उठाकर खड़े हो गये।

"बातें कर चुके हैं तो क्या हुआ? वचन दिया तो क्या हुआ? क्या आपने इकरार लिख के दिया है? कुंडली दिखानी चाहिए! देवता से पूछना चाहिए··· क्या यों ही एक लड़के लिए एक लड़की कह देने से सब कुछ हो चुका? अच्छा वर ढूंढ़ के अपनी कन्या देना माता-पिता का कर्त्तव्य है!···रामय्य और हूवय्य के बीच क्या मिसान? क्या तुलना? हूवय्य पढ़ा-लिखा, देखने में भी सुंदर, सुलक्षण, सीता के लिए ही बनाया गया वर!" इत्यादि का उपदेश करके, चंद्रय्य गौड़जी के परिवार की फूट-छिद्र-दरार आदि सभी दोषों का वर्णन किया।

श्यामय्य गौड़जी ने सब कुछ सुनकर कहा—"आप तो कहते हैं। लेकिन हूवय्य एक तरह से संन्यासी बन गया है! वैरागी को पुत्री देने के जैसे होगा तो? कहते हैं कि उसको बार-बार मूर्च्छा आती है!···जो हो, वेंकप्पय्य ज्योतिषी से पूछ, जातक-कुंडली दिखाकर, फिर बता दूंगा।"

सिगप्प गौड़जी ने सीता की मां गौरम्माजी से भी साजिश करके चंद्रय्य गौड़जी के पुत्र को सीता को देने के विरोध में कुछ बातें करके उपदेश दिया। गौरम्माजी और श्यामय्य गौड़जी के बीच में बेटी के विवाह पर गरम-गरम बहस भी हुई, अंत में पति की ही जीत हुई।

अग्रहार के वेंकप्पय्य ज्योतिषी के पास सिगप्प गौड़जी गये। उनको दान-

दक्षिणा भी दी और "सीता तथा रामय्य के जातक नहीं मिलते" कहने की सूचना-भी दी। फिर उन्होंने हूवय्य का जातक श्यामय्य गौड़जी के द्वारा ज्योतिषी के पास भेजा। जातक के बहाने, अपनी जिद में मैं सफल हो जाऊंगा, सोचकर वह शांत हुए।

लेकिन वेंकप्पय्य ज्योतिषी के मन में हूवय्य पर बड़ा क्रोध था। क्योंकि हूवय्य ने उनके पौरोहित्य की निंदा की थी; उनके लाभ के विरोध में आंदोलन वह कर रहा था। इसलिए हूवय्य के प्रति वह फुफकारते थे जैसे नेवले को देखकर सांप फुफकारता है। इसलिए यद्यपि उन्होंने सिंगप्प गौड़जी से दान-दक्षिणा स्वीकार करली तथापि उनकी इच्छा पूर्ण करने का मन नहीं किया। उलटे गुप्त रूप से चंद्रय्य गौड़जी के पास गये और सारी बातें जो हुई थीं, बता दीं। गौड़जी ज्वालामुखी जैसे अग्निजल उगलता है वैसे अपना क्रोध और निंदा सिंगप्प गौड़जी पर उतार-उछालकर, सिंगप्प गौड़जी से भी दुगुना दान-दक्षिणा देकर उनके मन को पूर्ण रूप से अपनी ओर झुका लिया और विदा किया चंद्रय्य गौड़जी ने।

इतने से चंद्रय्य गौड़जी का मन नहीं भरा। उन्होंने अपने पुत्र रामय्य के कान में विष भर दिया यह कहकर "नागम्माजी, हूवय्य, सिंगप्प गौड़जी—तीनों ने मिलकर, यद्यपि श्यामय्य गौड़जी ने सीता का विवाह तुझसे कर देने की बात मान ली है—तथापि किसी तरह यह विवाह तोड़ने में तुले हुए हैं हूवय्य का पक्ष लेकर, तू तो बड़ा बुद्धू बन बैठा है! हूवय्य, हूवय्य कहकर नाच रहा है। अब देखा न, वे सब मिलकर तेरा क्या उपकार कर रहे हैं!" पिता की बातों को अमृत समझकर उनका पान करके रामय्य ने अब हूवय्य के पास आना छोड़ दिया है। अब उसको देखने पर जितना जरूरी है उतना ही औपचारिकता से, शिष्टाचार के तौर पर, हिसाब लगाकर तौल-तौल कर उससे बोलता है।

सिंगप्प गौड़जी ने खूब-खूब कोशिश की, पर सफल नहीं हुए। ज्योतिषीजी ने श्यामय्य गौड़जी को बता दिया कि हूवय्य के जातक से सीता का जातक मेल नहीं खाता, बिलकुल हूवय्य का जातक कंटकों से भरा है; पर रामय्य के जातक के साथ सीता का जातक बहुत अच्छी तरह मेल खाता है। यह सुनकर अपनी पुत्री की कुशलता को ही विवाह का ध्येय मानकर, गौरम्माजी ने पति की बात के विरोध में कुछ भी नहीं कहा।

इस विषाद प्रकरण को—अध्याय को—सुनकर हूवय्य निर्विण्ण भाव से, भारी मन से सांझ के समय केलकानूरु को चला।

५०

प्रेमपत्र को अग्निस्पर्श

हूवय्य से सिगप्प गौड़जी ने जो बातें कही थीं उन्हें सुनकर नागम्माजी की आशा भंग हुई; वह दुखी हुईं और नाराज भी। उनमें प्रतिकार की शक्ति नहीं थी, मगर उन्होंने क्रोध की पोशाक पहन ली।

"जाने दो। उनके घर की कन्या हमें क्यों? वे ही उसे पकने डालकर पका लें! कन्याओं का अकाल नहीं है। हां कहते ही पांव पड़कर कन्या देने वाले हज़ारों हैं।...मेरे सामने कइयों ने प्रस्ताव भी रखे हैं।...उस अतिगद्दे हिरियण्ण गौड़जी की बेटी रंगम्म कैसी है?—उसे क्या हो गया है? थोड़ा हकलाती है तो क्या हुआ? गोल-गोल मुखड़ा, गोरी-गोरी; आंख, नाक, कान सभी अच्छे हैं न?... फिर उस नुग्गिमने नम्मण्ण गौड़जी की लड़की दानम्म है न, कैसी है?...कुछ काली है, हो तो क्या? खूब मेहनत करके काम करती है। या उस संपिगेहल्ली पुट्टय्य गौड़जी की लड़की दुग्गम्म कैसी है?...कहते हैं कि उसकी एक आंख जरा टेढ़ी है। हो तो क्या! कहते हैं, जरा कम सुनती है। वैसे देखा जाय तो सीता भी तनिक ऊंचा सुनती है!...उसके दांत भी कुछ उभरे हैं। मगर खूबसूरती में कुछ भी दोष नहीं। अरे छोड़ दो। ये कन्या देंगे सोचकर पुत्र को जन्म नहीं दिया! क्या इन लोगों ने समझ रखा है कि अपनी बेटी का रंग ही सोने का-सा है! उनके दादा के रंग के जैसे रंग की लड़कियां सैकड़ों पड़ी हैं!..."

नागम्माजी यह जाने बिना कि हूवय्य सुन रहा है कि नहीं, अपने मनोभाव इस तरह व्यक्त कर रही थीं कि आप ही जोर से जैसे कह रही हैं। हूवय्य के हृदय में यदि कसक नहीं भरी होती तो नागम्माजी का स्वगत भाषण मुस्कुराहट-सा लगता। लेकिन एकैक बात भी शूल की तरह पीड़ादायक थी। नागम्माजी चाहतीं अपने पुत्र के लिए 'एक कन्या'। वह कन्या नहीं तो यह कन्या! यह कन्या नहीं मिली तो वह कन्या। वह कन्या न मिली तो कोई दूसरी कन्या। केवल वह चाहती थी एक कन्या! वह चाहे जैसी भी हो। परंतु हूवय्य केवल कन्या नहीं चाहता था, प्रेम की कन्या चाहता था। उसके लिए सीता ही अकेली प्रेम की कन्या थी, न कि अत्तिगद्दे हिरियण्णजी की कन्या रंगम्म, न नुग्गिमने तम्मण्ण गौड़जी की पुत्री

दानम्म, न संपिगेहल्ली पुट्टय्य गौड़जी की वेटी दुग्गम्म—कोई दसरी कन्या सीता के स्थान पर नहीं आ सकती थी।

अपनी माता का मन दूसरी ओर घुमाने के लिए, चिंता-यातना से मुक्त करने के लिए भी हूवय्य ने पूछा—"मां, पुट्टण्ण कहां है ? अभी आया ही नहीं ?"

'क्यों नहीं आया ? तभी आ गया है ! जाते-आते रास्ते-रास्ते को नापते आया ! वहुत दिन हो गये थे पिये विना…मिल गई ताड़ी उसे पीने के लिए; इस-लिए खूव पी ली है, ऐसा लगता है ! वहां कहीं कोने में कंवल ओढ़कर पड़ा है…"

"मेरे आगे कसम खाई थी कि कभी नहीं पिऊंगा करके ?"

"परमात्मा का सौगंध खाकर, 'मान पत्र' पर हस्ताक्षर करने वाले ही पीते हैं तो वह क्या करेगा वेचारा ? मिली, पी ली ! फिर जव तक न मिले नहीं पियेगा।"

हूवय्य को दुःख हुआ। पुट्टण्ण पर गुस्सा आने के वजाय दया आई। मनुष्य का संयम कितना दुर्वल होता है ! प्रसंग के अनुसार दुरात्मा महात्मा वन सकता है, महात्मा दुरात्मा वन सकता है। वुरी लतों से मुक्त होने की पुट्टण्ण तो भरसक कोशिश कर रहा था लेकिन हूवय्य का सामीप्य छूटते ही प्रसंग प्रलोभन का जाल विछा देता तो तुरंत पतित हो जाता था ! उस दिन भी सवेरे सुव्वम्मा को पहुंचाने के लिए नेल्लुहल्ली गया हुआ, शाम को खूव पीकर, थकावट से चूर हो, लड़खड़ाते आकर वैठक के एक कोने में लुढ़का था।

हूवय्य हाथ में दिया लेकर, अंधेरे में उसे खोजता हुआ गया; कूडा-करकट में, कोने में कंवल लपेटकर अस्त-व्यस्त लेटे पुट्टण्ण को देख, पास में खड़े हो उसांस छोड़ते देखने लगा।

पुट्टण्ण के वाल विखरे हुए थे। उसके मटमैले मुंह पर थकावट का निशान उभरकर दीखता था। पसीने की वू के साथ ताड़ी-शराव की वू भी मिलकर चारों ओर असहनीय वू फैल गई थी। मुंह से फेनिल लार वह रही थी। नाक से रेंट उतरकर उसकी कड़ी मूंछ पर लग गया था। दिये के मंद प्रकाश में करवट वदलते रहे पुट्टण्ण के शरीर की छाया हिलती थी तो वह दिये को धरकर खड़े रहने वाले हूवय्य के मन की 'अस्थिरता' को ही केवल दिखा रही थी।

कोमल मृदु ध्वनि से, करुणापूर्ण हो हूवय्य ने पुकारा, "पुट्टण्णा ! पुट्टण्णा !"

पुट्टण्ण नहीं हिला, लाश की तरह पड़ा था। अगर उसकी सांस सुनाई नहीं पड़ती तो कहना पड़ता था कि वह लाश ही है।

हूवय्य ने झुककर उसे हिलाया और पुकारा, "पुट्टण्णा ! पुट्टण्णा !"

पुट्टण्ण ने आंखें खोलीं; दिये का प्रकाश टकटकी लगाकर देखा और फिर आंखें मूंद लीं। उसकी आंखें लाल हो गयी थीं।

हूवय्य ने फिर उसे छूकर पुकारा तो उसने आंखें खोले विना ही तुतलाते,

"देखो, मेरे पास...न आना...थू !" कहके थूक दिया।

हूवय्य झट पीछे कूदकर खड़ा हो गया और मुंह पोंछ लिया। फिर उसको जगाने का प्रयत्न नहीं किया। स्नानगृह में मुंह धोकर, अपनी बैठक में आ बैठा।

उसको ऐसा लगने लगा कि सारी दुनिया एक ओर है; मैं अकेला एक ओर हूं। उसको कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि मैं खुद संसार की ओर जाऊं या संसार को अपनी ओर फिरा लूं। मगर पहला सुलभ, सरल, निर्बाध दिखाई पड़ा। बहुत लोग जिस रास्ते से जायेंगे उसी रास्ते से जायं तो पैर में कांटे न चुभेंगे न ?

हमेशा मेरे साथ रहकर, मेरी बातें सुनकर, मेरे आचारों को देखते, कई बार मुझसे उपदेश लेकर अपने जीवन को सुधार लेने की प्रतिज्ञा दिल से जिस पुट्टण्ण ने की थी वही जब बार-बार ठोकर खाकर गिर के दुःस्थिति का शिकार बन गया है तो अपने से दूर के, अपने विरोधी, उद्धार कर लेने के आकांक्षा रहित लोगों का कैसे सुधार किया जाय ? इस हताशा भाव से हूवय्य दुखी हुआ।

उसी प्रकार उसके मन में और एक विचार ने झांका : मेरे कल्पित किन्नर संसार, और यह यथार्थ नर संसार दोनों में समझौता नजर नहीं आता। समझौता होने के लक्षण भी नहीं दीखते हैं। अपने निवास को अपने शरीर पर ही लाद लेकर छटपटाने वाले कीड़े की तरह इस किन्नर संसार को अपने बदन के चारों ओर लपेटकर नर संसार में जीना मानो न ढोये जा सके भार को उठाकर तैरने की कोशिश करने के समान है। इतना ही नहीं, उसमें वृथा श्रम है, श्रेय नहीं है; इत्यादि विचारों के फलस्वरूप उसने निर्णय किया कि अगर मुझे सीता से विवाह करना है तो लज्जा, संकोच आदि को एक ओर रखकर काम करना चाहिये। यह वाद तो उतना तर्कबद्ध नहीं था, परंतु इच्छाबद्ध था।

घर के बाहर फसल वाले खेत में कुत्ते जोर से भूंके। रात की नीरवता में चारों ओर के गिरि-काननों में उनके भूंकने की प्रतिध्वनि हुई। हूवय्य ने सोचा कि कोई जंगली जानवर या सूअर आया होगा। वह बंदूक हाथ में लेकर बाहर आया। अंधेरे में जंगल-पहाड़ केवल आकृति मात्र थे। आगे बढ़ने से कोई आफत आ जाय, कोई फायदा नहीं, इस विवेकपूर्ण विचार से हूवय्य, आशंका से लौट गया।

कुर्सी पर बैठा और विचार करने लगा :

सीता का हाथ यदि छोड़ दूं तो उसके प्रति द्रोह करने के समान होगा। उसके माता-पिता चाहे जो कहें, चाहे जातक मिलें या न मिलें, चाहे वह ज्योतिषी वेंकप्पय्य और उसके भगवान कुछ भी करें, चाहे चंद्रय्य गौड़जी और रामय्य सिर के बल चलें, मेरी और सीता की आकांक्षा पूरी हो जानी ही चाहिये। उसके लिए जो कुछ भी करना पड़े, करने के लिए तैयार हो जाऊं।

खिड़की से बाहर दूर वनगिरि शिखर पर एक उज्ज्वल तारा कुछ नील कांति

से झिलमिल चमकता हुआ तभी उगा था। हूवय्य अपनी विचार-धारा को तोड़कर उसीको देखने वैठ गया।

नागम्माजी ने खाने के लिए वुलाया।

"पुट्टण्ण उठा या वैसे ही पड़ा हुआ है ?"

पुत्र के सवाल पर, "अच्छा, छोड़ो; तुम को तो कोई धंधा नहीं दूसरा ! वह आज कैसे उठता है ? कल सवेरे उठे तो गनीमत !" कहकर नागम्माजी रसोईघर की ओर जाते हुए, "तुम आ जाओ, देर हो गई।" वोलीं और रास्ते में पैर में लगी सुपारी को उठाकर उनके ढेर में फेंक भीतर गईं।

भोजन करके हूवय्य अपने कमरे में गया; लालटेन की वत्ती ऊपर चढ़ाई। यकायक कमरे में उज्ज्वल प्रकाश फैल गया। भोजन करते समय सोचा था कि सीता को एक पत्र लिखूं। अतः उसने कलम हाथ में ली।

हूवय्य भोजन करते समय अपनी इच्छापूर्ति के कई मार्गों-उपायों के वारे में सोचा था। मगर कोई मार्ग उसे पसंद नहीं आया। एक ही एक मार्ग कारगर दीखा कि सीता को एक गोपनीय पत्र लिखा जाय।

हूवय्य ने रसावेश के साथ पत्र लिखने लगा। उसमें उसने उसके प्रति अपना अगाध प्रेम, प्रेम की पवित्रता, चिरंतनता सूचित करके, दीवार पर लिखी "हूवय्य मामा से ही व्याह करूंगी" लिपि की याद दिलाकर, विवाह करके एकात्म हो आनंद से कैसे रहेंगे का सुंदर चित्र देकर, किसी दूसरे के साथ माता-पिता जवर-दस्ती से विवाह करें तो प्राण त्यागने चाहिए, मैं भी तुम्हारे सिवा किसी दूसरी कन्या की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखूंगा; इस तरह भयंकर सलाह देकर पत्र पूरा किया। लिखने के आवेश में यह दृष्टि भी भूल गया था कि सीता की समझ में ये विचार आयेंगे कि नहीं।

अगर यह पत्र सीता के हाथ लगता तो अनर्थ हुए विना न रहता। क्योंकि हूवय्य की वातों में उसे इतना गहरा विश्वास था।

हूवय्य ने अपना प्रेमपत्र खुद तीन वार पढ़ा। एकैक वार पढ़ने पर उसे वह अधिकाधिक अविवेकपूर्ण लगा। अंतिम वार पढ़कर उसे लैंप की ज्वाला पर धरा। आग लगी। पत्र जलकर काला पड़ गया।

सभी सो गये थे। घर निःशब्द हो गया था। वाहरी रात की दुनिया भी सोई-सी थी। उमस वुझाने के लिए हूवय्य अपने कमरे से वाहर चला।

५१

गोबर के गढ़े में सोम

हूवय्य गाड़ी से उतरकर सीतेमने चला गया तो मुतल्ली के श्यामय्य गौड़जी गाड़ी में तकिये के सहारे लेटकर सोचने लगे। वह सीता के मारे उभय संकट में जैसे फंस गये थे । एक ओर चंद्रय्य गौड़जी की अधिकार वाणी, दूसरी ओर नागम्माजी की प्रार्थनावाणी, बीच में सिंगप्प गौड़जी की समझौते की वाणी। अगर चंद्रय्य गौड़जी को वचन न देते तो इसमें संदेह नहीं था कि हूवय्य से ही अपनी वेटी सीता का विवाह कर देते। लेकिन वह जानते थे कि चंद्रय्य गौड़जी क्रूर स्वभाव के हैं, अपने कर्जदार हैं, अपने से कम अमीर हैं, तो भी उनसे इसलिए डर था कि उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कर दूं तो वे कुछ अनहोनी किये विना न रहेंगे। इसीलिए अपनी पत्नी गौरम्माजी का, अपने पुत्र पुन्नय का, दुलहिन वनने वाली सीता का—तीनों का मन एवं अंतःकरण हूवय्य के पक्ष में होने पर भी चंद्रय्य गौड़जी के पुत्र रामय्य को अपनी वेटी सीता को देकर विवाह कर देने के लिए श्यामय्य गौड़जी ने मान लिया था। इसके साथ ही ज्योतिषी वेंकप्पय्याजी ने तो देवता, धर्मशास्त्र, निमित्त, ग्रहगति के नाम पर चंद्रय्य गौड़जी की इच्छा को ही पोपित करके हूवय्य के विरुद्ध काम किया था।

कानूर के चंद्रय्य गौड़जी के घर के वाहरी आंगन में गाड़ी आकर खड़ी हो गई। उसके पूर्व ही श्यामय्य गौड़जी एक निर्णय पर पहुंचकर संतुष्ट हो गये थे "कोई हो तो क्या, एक स्त्री के लिए एक पुरुष, वस, रामय्य हूवय्य से किस वात में कम है? जायदाद है, घर है, विद्या है, रूप है, सव कुछ है। हूवय्य की तरह उसे घर-वार के वारे में अनास्था नहीं है। हूवय्य की तरह उसको मूर्च्छा रोग भी नहीं है। अलावा इसके हूवय्य की अपेक्षा वड़ा घर है, वड़ी जायदाद है। चंद्रय्य गौड़जी भी नाराज नहीं होंगे। काम आसानी से हो जाता है। कन्या देकर कन्या लाना भी हो जायगा।" लेकिन एक मुख्य कारण उनके विचार में न आने पर भी, दिल में ही था—चंद्रय्य गौड़जी से श्यामय्य गौड़जी को हज़ारों रुपये मिलने थे जो कर्ज दिये गये थे। श्यामय्य गौड़जी सुखी व्यक्ति थे। आराम-तलव थे। सद्-व्यक्ति थे, भगवद्भक्त थे। क़ोर्ट-कचहरी की सीढी चढ़ना, इधर-उधर फिरना,

जाना आदि उनको पंसद नहीं था। इसलिए किसी तरह चंद्रय्य गौड़जी से अच्छी तरह रहते हुए अपनी कर्ज के रूप में दी गई रकम वसूल कर लेने की ही उनकी इच्छा थी। चंद्रय्य गौड़जी के मन के विरुद्ध जाने में हिचकिचा रहे थे। "देने वाला बुद्धू, लेने वाला वीरभद्र" कहावत की भांति बुद्धू गाड़ी से उतरकर कानूर के घर के अंधेरे कमरे में अस्वस्थ हो पड़े वीरभद्र के पास गया!

लोग थे, मगर घर सूना-सूना-सा लगता था। रामय्य भी अस्वस्थ हो दुमंजिले पर सो रहा था। अपर्याप्त अनुभवी पुट्टम्म गाड़ी चलाने वाले निंग की सहायता से रसोई के काम में लगी थी।

श्यामय्य गौड़जी कानूर आये थे केवल सुब्बम्म के बारे में समझाने के लिए। लेकिन चंद्रय्य गौड़जी के आगे उसके बारे में एक बात भी कहने का धैर्य नहीं हुआ। उनसे अन्य विषयों को लेकर ढेर-ढेर बातें कीं। हलेपैक के तिम्म ने जो फेनिल ताड़ी ला करके दी उसे दोनों ने खूब पिया।

शायद इसके परिणामस्वरूप चंद्रय्य गौड़जी में भूत संचार-सा हुआ। वे जोर से चिल्लाए, किसी को डराया, धमकाया। यह समाचार सुन "चंद्रय्य गौड़ जी पर भूत सवार हो गया है।" सभी नौकर-चाकर वहां जमा हो गये। चंद्रय्य-गौड़जी की रीत को देखकर भूतादि पर विश्वास न रखने वाले रामय्य को भी कुछ विश्वास हुआ। हूवय्य से दूर रहने के कारण रामय्य की मानसिक स्थिति भी अन्यमनस्क थी। शिला से बहुत समय तक दूर रहने वाले मैग्नेट (लोह चुंबक) की तरह अपनी शक्ति भी खो लेने लगी थी।

श्यामय्य गौड़जी ने हाथ जोड़कर, भूत के वशीभूत हुए चंद्रय्य गौड़जी के आगे खड़े हो, देवता से बोलने वालों की तरह कहा, "तुम कौन हो? क्यों आये हो? कृपा करके कहो तो जो चाहते हो सो करेंगे।"

सेरेगार रंगप्प सेट्टजी भी हाथ जोड़कर कातरता से उत्तर की प्रतीक्षा में थे। गंगा, सोम, हलेपैक का तिम्म, बेलर सिद्द, निंग, पुट्टम्म, वासु, निंग का पुत्र पुट्ट सभी कुछ प्रत्यक्ष, कुछ अप्रत्यक्ष कांप रहे थे।

चंद्रय्य गौड़जी ने या उन पर सवार भूत ने कुछ कहा। उस भूत की इच्छा चंद्रय्य गौड़जी की इच्छा के बिलकुल विरुद्ध नहीं थी। मानस शास्त्रज्ञ होते तो निर्णय करते कि चंद्रय्य गौड़जी की इच्छा ने ही भूत का वेष धारण किया है।

चंद्रय्य गौडजी के मुंह से निकली बातों में काफी व्यंग्य, अस्पष्टता, सूचना, वक्रोक्ति सभी मौजूद। वहां रहने वाले सभी उनकी बातों का अर्थ समझ गये। मगर उन्होंने अलग-अलग अर्थ लगा लिया। उनके अर्थ में मेल नहीं था।

"तुम्हारी पुत्री को रामय्य को न दिलाने की कोशिश में कुछ लगे हैं। इसमें तुम शामिल हो जाओगे तो तुम्हारा भला न होगा। सभी घर वालों को तोड़ दूंगा। अपनी बेटी को कानूर को दो। मैं भला करूंगा।" यही उनकी बातों का

भाव है। श्यामय्य गौड़जी ने निर्णय करके कहा—"ठीक है, तुम जैसा कहोगे वैसा करूंगा।" वचन देकर नमस्कार किया।

"मेरे लिए मनौती रखे बकरे का अपहरण किया है। उसे मुझे दिये विना मैं तुमको सुख नहीं दूंगा। उसकी वलि शीघ्र नहीं चढ़ायेंगे तो तुमको घाट के नीचे उतरने नहीं दूंगा।" इन वातों का अर्थ लगाया सेरेगारजी ने और गंगा ने कि किसी तरह केल कानूर में रहे हूवय्य के 'वलींद्र' को भूत को वलि नहीं देंगे तो हम सव को मरना पड़ेगा।

पुट्टम्म ने अर्थ लगाया, "पिताजी छोटी मां को फिर घर न वुलाने को कह रहे हैं।"

निंग के पुत्र ने कल्पना करके अर्थ लगाया—"वाग में जितने केलों की तुमने चोरी की है, उनको मुझे दे दो। भूतराय कह रहा है।" उसने उन्हें लौटा देंगे कह-कर हाथ जोड़ा वासु को मालूम कराये विना।

सुख-दुःख की वातें कहने के वाद चंद्रय्य गौड़जी में प्रविष्ट भूतराय ने कहा—"प्यास!" निंग दौड़कर गया और गोवर से शुद्ध किये पात्र में जल लाया और दिया। भूतराय ने गुस्से से उसे फेंक दिया। फिर उसने हलेपैक के तिम्म की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा।

तिम्म को लगा कि भूतराय ताड़ी मांग रहा है। सो उसने उसे लाकर दिया। चंद्रय्य गौड़जी के ज़रिये भूतराय उसे पीकर विस्तर पर पैर फैलाकर शांत हो सोया। एकत्रित सभी लोग महा घटना समाप्त हुई जानकर तितर-वितर हुए।

सेरेगारजी, गंगा, तिम्म, निंग, चारों छोटी वैठक के एक कोने में जमा हो गये, हूवय्य के 'वलींद्र' को कैसे चुराकर लावें और भूतराय को वलि दें, इस वारे में सुदीर्घ चर्चा के पडयंत्र रचने लगे।

"पैसे देकर खरीदना असंभव। हूवय्य गौड़जी पैसे लेकर देंगे भी नहीं। उलटे हमें डांटेंगे। दूसरा कोई उपाय हो तो कहो।" कहा सेरेगारजी ने।

"वह गुंडा पुट्टे गौड़जी नहीं होते तो मैं किसी तरह रातों-रात उस वकरे को ला देता! कहीं भी इस वारे में कुछ भी मालूम हो जाय तो गोली दागने में भी आगा-पीछा नहीं करेगा वह महाशय!" कहा हलेपैक के तिम्म ने।

गंगा ने कहा—"हमारे सोमय्य सेट्टजी मान लें तो एक वार देख लिया जाय!"

सोम का नाम सुनकर सव हंस पड़े। तो भी निंग उसके घर गया और तोंद वाले सोम को वुला लाया।

सोम ने सव कहानी सुनकर, अपने होंठ आगे वढ़ाकर कहा—"यह काम मुझसे नहीं होने का!"

"तुम जितना चाहो उतना मांस तुमको देंगे। आधा वकरा कहो तो आधा

बकरा ! एक बार सोचकर देखो ! चार लोगों का उपकार जैसा होगा !" कहकर तिम्म ने मांस देने का जाल बिछा दिया।

मांस ! जितना चाहूं उतना ! सोम अपने मन को रोक न सका। साध्य, असाध्य कोई बात उसके मन में आयी ही नहीं।

"जा ! जा रे ! तुम्हारा मांस किसको चाहिये ? ले जाकर कुत्ते को डाल दो। क्या तुम समझते हो कि मैं मांस के लिए मरता हूं ?···सो, एक ओर रहे। भूत को बलि न देने से गांव सुखी न होगा ! चार लोगों का उपकार होगा ! इस विचार से एक बार कोशिश करके देखूंगा !···लेकिन तुमको भी मेरी मदद करनी चाहिये !" कहकर मांसलोभी सोम ने मान लिया तो उन लोगों को इतनी खुशी हुई मानो उन्होंने दिग्विजय की हो।

दूसरे दिन रात को केलकानूर से बकरे को चुरा लाने का निश्चय हुआ। सोम बकरे को गोठ से छुड़ाकर पास के जंगल में लायगा; आगे का सारा काम सेरेगार जी और इतर लोग देख लेंगे, सोम को यथेष्ट मांस दिया जायगा।

रात बीती, सबेरा बीता; दिन भी बीता। फिर रात आई। साहस की सभी तैयारियां हुई। करीब दस बजे सेरेगारजी, निंग, तिम्म, सिद्द, सोम—इतने लोग फुसफुस बोलते केलकानूर के लिए निकले। कुछ के हाथ में छुरी, कुछ के हाथ में लाठी थी। सोम के हाथ में आठ-दस गज लंबी रस्सी थी।

थोड़ी दूर गये ही थे कि गंगा दौड़कर आई और धीमी आवाज में "रोटी !" कहकर सोम के हाथ में खुशबूदार उस चीज़ को देकर चली गई।

केलकानूर के घर से थोड़ी दूर में विद्यमान जंगल-झुरमुट आदि में सभी छिप गये; फिर अकेला सोम ही हाथ में रस्सी-रोटी लेकर सावधानी से आगे बढ़ा।

नक्षत्रों का प्रकाश अल्प होने पर भी अंधेरा चोर की इच्छा के अनुसार था। सोम कंबल को अच्छी तरह लपेटकर, कार्यक्रम की कल्पना करते हुए फसल से भरे खेतों के किनारे पर से होकर हूवय्य के घर के पास आया। एक कुत्ता भूंका। यकायक सोम के डरपोकपन ने सिर उठाया। औरों के सामने रहते समय उसने काम की कठिनाई की कल्पना नहीं की थी साफ-साफ। कुत्ते के भौंकते ही अपने बूते के बाहर के साहस की सारी आफतें आंखों के आगे कराल मूर्ति बनकर दांत दिखाने लगीं।

'मुझे क्यों करना चाहिये था यह काम ?' सोचकर उसने घूमकर देखा। सभी साथी आराम से अंधेरे में छिपे थे। सोम आगे बढ़े बिना ठहरकर सोचने लगा।

कुत्ते भौंक रहे थे। ध्वनियों से उसने जान लिया कि एक रोजी है, दूसरा कोतवाल है। मांस ! आधे का मांस ! केवल मुझे अकेले को ! नमक !तला टुकड़ा !!

आखिर दो-तीन दिन वैठकर खाकर आराम से विता सकूंगा ! मांस के स्वर्ग की याद आते ही सोम के दिल में ताक़त आ गई। वह होंठ दवाकर आगे वढ़ा। कुत्ते जोर से भौंकते आगे वढ़ आये ! सोम का परिचय कुत्तों को था अच्छी तरह। उसने उनका नाम लेकर बुलाया तो वे पास आ गये। शायद उनको आशा थी कि सोम से उनको खाने के लिए काफी मांस मिलेगा। उसके हाथ में रही नमकीन मछली-रोटी की वू आई उनकी नाक में जैसे अधिकारी को रिश्वत की वू आती है। वे पूंछ हिलाते पास आये। सोम ने रोटी के टुकड़े करके डाल दिये। उसने खुद भी कुछ टुकड़े खाये। वह खाये विना कैसे रहता।

कुत्तों को वश में करके सोम सावधानी से उस ओर गया जहां वकरा वांधा गया था। उसने कल्पना की थी कि वकरा कहां वंधा रहेगा। वह ठीक उसी जगह पर पहुंचा जहां वकरा वंधा हुआ था ! कुत्तों और आदमी को देखकर वह डर के मारे उछल-कूद करने लगा। सोम ने अपने व्यूह के अनुसार फुर्ती से काम करना शुरू किया।

उसके गले की रस्सी खोलने के पहले अपनी रस्सी से उसकी गरदन को वांधा और फिर रस्सी के दूसरे छोर को अपनी कमर से लपेट लिया कसकर ताकि वह हाथ से छूटकर न जाय। फिर वकरे को हूवय्य ने जिस रस्सी से वांधा था उसे खोल दिया। फिर वकरे को खींचकर वाहर लाया।

वकरे और सोम के वीच में खींचातानी हुई। वकरे ने घर की ओर खींचा, सोम ने जंगल की ओर। वकरे के खुर की ध्वनि, आदमी की सांस की आवाज वढ़ी, कुत्ते स्वाभाविक रूप से आदमी के पक्ष में आये और भौंकते हुए वकरे पर झपटे। वलवान काला वकरा और भी उद्रिक्त होकर घर की ओर जोर से खींचने लगा तो सोम खींच-खींचकर थक गया था, पैर फिसल गया। उसने रस्सी छोड़ दी। पर उसका दुर्भाग्य ! रस्सी ने उसे नहीं छोड़ा। उसने रस्सी को अपनी कमर से लपेट ली थी ताकि वकरा भाग न जाय ! रस्सी को कमर से वांध लेते समय उसने नहीं सोचा था कि वकरा उसी को खींचकर ले जायगा। उसे अपनी ताकत पर भरोसा था ! अपनी दृष्टि से उसने व्यूह रचना कर लिया था, न कि वकरे की दृष्टि से। इसलिए उस ओर उसका ध्यान ही नहीं गया था।

जव सोम ने रस्सी छोड़ दी तो चारों ओर से धावा वोलने वाले और सताने वाले कुत्तों से अपने के वचाने के लिए 'वलींद्र' ने अपनी सारी शक्ति लगाकर ढाल की ओर खींचा। तोंदवाला दुवला सोम आगे झुककर लुढ़क गया। ओढ़ा हुआ कंवल खिसक गया। उसका नंगा वदन जमीन पर लुढ़क, पत्थर पर गिरके घिस गया। घुटने तक पहनी धोती भी फट गई। भूस्पर्शित उसका शरीर नारियल की तरह तराशा गया। वकरे ने रस्सी खींची तो वह उसकी तोंद को कस गई और उसका सांस लेना भी दूभर हो गया। ढाल की पथरीली जमीन पर वकरे ने लंवी

रस्सी से बंधे सोम को 'दर-दर' खींचा। सोम उठकर खड़े होने का प्रयत्न करता रहा; मगर ऐसा करने के लिए उसे मौका ही नहीं मिला। वह हाथ लगे पेड़ से लिपटकर खड़ा होना चाहता था, सो भी चुक गया। उसने दूसरा पेड़ पकड़ा, मगर वह कांटे का था! तुरंत उसने उसे छोड़ दिया। इतने में गोवर के गढ़े पर बनाये गये छप्पर का वांस का खंभा मिला। उसे अच्छी तरह पकड़कर खड़ा होना चाहा, वकरा खींचता ही रहा। नारियल के रेशों से वनी रस्सी उसकी तोंद को तराशती ही रही। महायातना सहते हुए उसने दांत पीसकर, पैरों पर ही मजवूत खड़े होने की कोशिश की। दीमक लगी वांस भी 'चटचट' करके टूट गई। छप्पर पर का टिन भी 'ढणढण' आवाज करते नीचे गिर गया। कुत्ते भी भूंके। वकरा भी चिल्लाने लगा। चोरी, डकैती के समय के शोर से भी ज्यादा शोर मच गया।

"पकड़ो! छू! मत छोड़ो!" कहते वंदूक हाथ में लिये पुट्टण्ण, उसके पीछे हूवय्य, सीतेमने सिगप्प गौड़जी झपटकर आये।

उस दिन दुपहर को आये हुए सिगप्प गौड़जी केलकानूर के घर में ही ठहरे हुए थे। वह और हूवय्य रात के दस वजे तक वोलते-वोलते सो गये थे। दिया वुझाकर भी थोड़ी देर वोलते रहे। हूवय्य को अभी नींद नहीं लगी थी। इतने में पहली वार कुत्ते भौंके। रोज ऐसा होता था। इसलिए उसमें कुछ विशेपता नहीं दीखी। कोई वैल या जानवर खेत में घुस गया होगा या सूअर-गियर आया होगा, या भेड़िये की वू आई होगी, कुत्ते भूंके होंगे सोचकर, करवट वदलकर सो गया। कुत्तों का भौंकना पूरा वन्द हुआ। थोड़ी देर में गोठ के पास कुछ आहट-सी हुई जो सुनाई पड़ी। खुर की आवाज! छीना-झपटी की आवाज! वाघ, वाघ ने आकर ढोर को पकड़ा क्या? या आवारे सांड सींग लड़ा रहे हैं क्या? सोचते रहा तो यकायक कुत्तों का सूअर को रोकने का-सा शव्द हुआ। वकरे की वुलंद आवाज़ भी सुनाई पड़ी।

वगल में विस्तर पर सोये सिगप्प गौड़जी को जोर से हिलाते हुए हूवय्य ने कहा, "चाचाजी, चाचाजी!"

वे एकदम हांफते हुए उठे और कहा, "आं! आं! क्या? क्या? क्या है?"

"मालूम होता है, गोठ में वाघ आया है! पुट्टण्णा! ऐ पुट्टण्णा! वंदूक उठा लो! वंदूक उठा लो रे। वाघ आया है गोठ में।"

पुट्टण्ण उठ ही रहा था कि हूवय्य ने लालटेन जलाई और दरवाजा खोला। इतने में नागम्मा जी उठकर आईं और कहा—"तुम ठहर जाओ! रुक जाओ! आगे मत जाओ! पुट्टण्ण को आने दो।" फिर उन्होंने पुट्टण्ण को वुलाया।

इतने में छप्पर गिर गया था। टीन के पतरे गिर गये थे। उनकी आवाज़, कुत्तों का भौंकना, वकरे का चिल्लाना, ये सव सुनकर किसी को शक नहीं रहा कि वैल और वाघ में मारा-मारी हो रही है। किसी के ध्यान में चोर की कल्पना नहीं

आई। वहां कौन चोर आता ?

सब जगह ढूंढ़ा; कहीं भी न बाघ दीखा, न बैल। किसी को कुछ भी नहीं सूझ रहा था। आश्चर्य हुआ। आखिर पुट्टण्ण ने गोबर के गढ़े के किनारे पर खड़े बकरे को लालटेन के प्रकाश में देखा दूर से और कहा, "वहां देखिये। वह बकरा घबराकर रस्सी तोड़कर आके खड़ा है!" फिर उसे गोठ में लाने के इरादे से उसके पास गया और कहा, "हुश! चल!" बकरे ने आगे बढ़ने की कोशिश की, मगर आगे नहीं बढ़ा।

"क्या हो गया है इस साले को ?" कहकर उसने फिर कहा, "हुश-हुश," तो भी वह नहीं बढ़ा।

पुट्टण्ण उसके पास गया। बकरे के गले में पड़ी रस्सी किसी पेड़ से अटक गई होगी, सोचकर, रस्सी को खींचा। बरसात में पानी के रुकने से गोबर गढ़े में कीचड़ की तरह बन गया था, उससे बदबू भी आ रही थी। तब 'पचपच, किचपिच' आवाज़ हुई। जैसे भारी बल्ले को खींचने से होती है। इतने में हूवय्य की लालटेन के प्रकाश में एक मनुष्याकृति गोबर के गढ़े में दिखाई पड़ी। तब पुट्टण्ण की छाती का खून जैसे जम गया। हूवय्य से लालटेन लेकर नीचे उतरकर देखता है। सोम गोबर में फंस गया है! खुश किस्मती से सिर चढ़ाव की मजबूत जमीन से टकराकर फंस गया है! नहीं तो सांस उसकी रुक जाती और वह मर जाता!

"इस साले से सुख नहीं" कहकर पुट्टण्ण ने सोम के शरीर को चढ़ाव से ऊपर उठाया और उसकी तोंद से कसी रस्सी को खोला! बकरा रस्सी के साथ खुशी से आवाज़ करता 'गोठ' में भाग गया।

सोम के होश उड़ गये थे। चेहरा जमीन से रगड़-रगड़कर लोहूलुहान हो गया था। सारे शरीर पै गोबर का लेप होने से कोई घाव नहीं दीख रहा था।

सिगप्प गौड़जी ने लालटेन तथा बंदूक को अपने हाथ में लिया। हूवय्य और पुट्टण्ण सोम को ढोकर स्नान गृह ले गये। हवा किया, प्राथमिक उपचार किया, तब सोम ने आंखें खोलीं, पर दृष्टि शून्य थी।

जहां तक हो सके उसके शरीर को धोया, घाव पर नारियल का तेल मला। दूसरे कपड़े पहनाकर भीतर ले गये, गरम कपड़े ओढ़ाकर बिस्तर पर सुला दिया। सोम जोर से सांस लेता रहा; फिर कराहने लगा।

उस रात को केलकानूर में कोई नहीं सो सका। सिगप्प गौड़जी की सूचना के अनुसार पुट्टण्ण दो मील की दूरी पर की शराब की दूकान से थोड़ी ब्रांडी लाया और सोम को उसे पिलाया। हूवय्य, सिगप्प गौड़जी तथा नागम्माजी, इन तीनों को सोये बिना सोम की तीमारदारी में लगे रहना पड़ा।

सोम के साथ जो आकर दूर खड़े हुए थे, उनमें से कोई झांका तक नहीं इस ओर। वे चुपचाप फरार हो गये। दूसरे दिन सवेरे सोम ने सारा राज़ खोल दिया।

बिस्तर में पड़े रहकर, हाथ जोड़ते हुए, रोते हुए उसने कहा—"अजी, उनकी सुनकर मेरे मुंह में मिट्टी पड़ गई ! वहिन ......मुझे आगे भेज के पीछे छिपकर खड़े हो गये ! उनकी मां रांड़ हो जाय !"

सोम ने रहस्य को खोलते हुए ऐसा कहा था कि इस साजिश में चंद्रय्य गौड़जी और रामय्य भी शामिल हैं। चंद्रय्य गौड़जी ने भूत के द्वारा कहा था, कहने के बजाय उन्होंने ही खुद होश के साथ कहा था, कहना सही होगा, तब रामय्य वहीं था।

सिगप्प गौड़जी यही चाहते थे। कानूरु चंद्रय्य गौड़जी की 'बकरे की चोरी' की कहानी सब को सुनाते गये। 'चोरी की', 'चोरी करवाई' इसका भेद भी वे भूल गये। उनको चाहिये था चंद्रय्य गौड़जी की अपकीर्ति ! न कि सत्य का प्रचार !

भारत, रामायण पढ़ने वाले वे उस कहानी को मिर्च-मसाला लगाकर कहने लगे तो क्या वह वड़वाग्नि की तरह फैले बिना रहेगी ?

५२

सेरेगारजी की श्वान-बुद्धि

शराब पीकर नशे में चूर हुए अपने पति की तलवार के वार से अपने को बचाकर, केलकानूर में रात बिताकर, सवेरे पुट्टण्ण के साथ मायके गई सुब्बम्मा के दुख का न आदि था, न अंत। जितने वैभव से विवाह करके कानूर आई थी, जितने वैभव से जीवन विताया था, जितने अहंकार से वर्ताव करती थी, उतनी दरिद्रता से, उससे भी अधिक दीनता से सुब्बम्मा को मायके लौटना पड़ा। अपने सब आभूषण-वस्त्र कानूर में ही छोड़कर, पहनी एक साड़ी पर, पुट्टण्ण के पीछे, फूट-फूटकर रोते, आंख पोंछते, लंबी देह को ठिगनी करके अपने पिता की झोंपड़ी में प्रवेश किया। अंधेरे से भरे कमरे से सात-आठ दिन वह वाहर नहीं निकली। उसका हृदय विदीर्ण हो गया था। अपने बनाये इंद्रधनुष के-से सपने इतने शीघ्र आकाश की नीलिमा से झड़कर जमीन की कीचड़ में आ गिरेंगे, उसने कभी नहीं सोचा था।

जितना भी वड़ा घाव हो वह समय वीत जाने पर भर जाता है। वड़े से वड़े कष्ट को भी काल भुला देता है। सुब्बम्मा ने रो-रोकर सारे दुख को वाहर निकाल दिया। पड़ोसी तथा माता-पिता उसे तसल्ली देते रहे। कुछ ने सूचना भी दी थी कि आगे चलकर सब कुछ ठीक हो जायेगा। उसके पिता पेद्दे गौड़जी कानूर जाकर अपने दामाद से बोले कि ऐसा नहीं करना चाहिये था तो दामाद से गाली सुनकर, अपमानित हो लौटे। उसके वाद सुब्बम्मा ने कानूर जाने की आशा छोड़ दी।

गरीब मां ने अपनी एक मैली-कुचैली साड़ी ही वेटी को पहनने दी। सुब्बम्मा ने नौकर के द्वारा अपनी साड़ियां मंगवाने का प्रयत्न किया। वह भी वेकार हुआ। कुछ दिनों के वाद पुट्टम्मा ने पिता को मालूम कराये विना अपनी ही एक साड़ी बैरे के द्वारा नेल्लुहल्ली भेज दी।

कितने दिन रिश्तेदार की तरह बैठे खा-पीकर, विना काम किये मायके में बैठी रह सकती थी वह ? सुब्बम्मा माता-पिता के साथ विवाह पूर्व की तरह मेहनत करने लगी। झाड़ू लगाना, लीपना, कपड़ा धोना, गोठ में गोवर वटोरकर, टोकरी में भरकर, सिर पर उठाकर, गोवर के गढ़े में डालना, लकड़ी लाना, आवश्यकता

पड़ने पर ढोरों को चराना इत्यादि कामों में हाथ बंटाती हुई दिन गुजारने लगी। जैसे-जैसे दिन बीतते गये वैसे-वैसे उसको लगने लगा कि कानूर में हेग्गडिति बनकर सुख पाने से नेल्लुहल्ली में मेहनत-मजदूरी करने में ही अधिक सुख है।

लेकिन जब कभी उसके मन में यह विचार आता कि वह बांझ है तब उसको ऐसा दुःख होता जैसा सैकड़ों बिच्छुओं के डंक मारने से होता है। चंद्रय्य गौड़जी की गालियों में भी यह सुन-सुनकर उसको लगता था कि बच्चों को न जनने वाली मैं पापिन हूं। इससे उसे जुगुप्सा होती थी।

नेल्लुहल्ली में फसल का कटाव जोरों से चल रहा था। सुब्बम्मा भी सुबह से शाम तक माता-पिता की सहायता करते पसीना बहाते काम करती थी। रात को गरीब का खाना मिलने पर भी, पीने के लिए खट्टी ताड़ी मिलती, चाटने के लिए अचार मिलता काफी; इससे उसे आनंद होता था। इतना ही नहीं, दिन भर कड़ी मेहनत करने से रात को नींद भी अच्छी आती जिससे उसको अपनी बुरी हालत पर सोचने के लिए अवकाश ही नहीं मिलता था। अतः उसका जीवन सुखी बना था।

एक दिन शाम को सुब्बम्मा खेत से घर आई तो बैठक में रंगप्प सेट्टजी सज-धजकर बैठे थे—पैरों में खूबसूरत बेल-बूटेदार चरमर करने वाले जूते, कन्नड़ जिले की धोती, काला लकीर वाला कोट, सिर पर नीला साफा, माथे पै कुंकुम की बिंदी, कानों में बालियां, होंठों पै तांबूल का रंग—इनसे अलंकृत हो, हसन्मुखी हो बैठे थे। सुब्बम्मा को देखते ही खूब खिली हंसी बिखेरकर खूब आदर से पूछा, "कैसी हैं अम्मा?"

सेरेगारजी को देखते ही, कानूर में अपने पर बीती सारी बातें सुब्बम्मा को याद आईं। वह क्रोध और दुख से, सिर झुकाकर आंख उठाकर देखे बिना "वैसी हूं। अभी मरी नहीं।" कहती हुई भीतर चली गई।

"आज ही सुब्बम्मा को लिवा लाने के लिए चंद्रय्य गौड़जी ने मुझे भेजा है," सेरेगारजी ने पेद्दे गौड़जी से कहा तो थके हुए गौड़जी का चेहरा बदल गया। उनको चंद्रय्य गौड़जी से हुआ अपमान याद आया, वे गुस्से से खरी-खोटी सुनाना चाहते थे, परंतु उन्होंने अपनी जीभ रोक ली। गरीब का क्रोध किसी काम का नहीं, जानकर, चुप रहे। इस विचार से कि अपना क्रोध बेटी के कल्याण में बाधा न बने, वे संयमी बने रहे।

"गाड़ी भेजना चाहते थे। पर परसों, परसों नये बैल खरीदे हैं। उनको अभी तक साधा नहीं गया है।" कहा सेरेगारजी ने जैसे संशय निवारण के लिए।

सुब्बम्मा से विवाह करने के बाद चंद्रय्य गौड़जी जब कभी अपनी पत्नी को उसके मायके भेजते तो गाड़ी में भेजते, उसको बुला लाने के लिए भी गाड़ी भेजते ताकि अपनी पत्नी की फूल जैसे पांवों को तकलीफ न होने पाये। यह आम जनता

की धारणा भी थी। इसीलिए सेरेगारजी को गाड़ी न भेजने का कारण वताना पड़ा था।

शाम हो गई। अतः पेद्दे गौड़जी ने कहा, "सवेरे भेज देंगे।" तव सेरेगारजी ने अपनी कन्नड़ जिले की भाषा में कहा—"ऐसा नहीं हो सकता! आज ही भेजना चाहिये! आप भेजें या न भेजें, मैं चला। हमारे गौड़जी का सिर विगड़ गया है, कहते हैं। आज की वुद्धि, कल न रहे! आप भेजना चाहें, भेजिये! नहीं तो छोड़ दीजिये! आपकी मर्जी! मैं चलता हूं!" फिर वे उठकर खड़े हुए और दीवार से टिकाकर रखी चांदी मढ़ी अपनी वेंत उठा ली।

"तो आप जाइये। मैं ही कल सवेरे पहुंचा दूंगा।"

सेरेगारजी अवाक् हो गये! फिर वैठ गये। वहुत देर तक सोचते रहे।

मुर्गियों का चिल्लाना, कुत्तों का भौंकना, गोठ में आने वाले जानवरों का रंभाना, चरवाहों का विचित्र स्वर समूह, वाहर लड़कों का शोरगुल—कुछ भी सेरेगारजी को नहीं सुन पड़ा। वे अपनी व्यूह रचना में खलल पड़ने से दुःखी हो रहे थे।

वास्तव में चंद्रय्य गौड़जी ने सुव्वम्मा को वुला लाने के लिए नहीं भेजा था। 'कोप्प' जाता हूं कहकर गौड़जी से आज्ञा ले सेरेगारजी स्वयं आये थे। वहुत दिनों से उनके मन में अपवित्र भावनाएं उठकर सता रही थीं। उन दुष्ट वासनाओं से प्रेरित होकर वे नेल्लुहल्ली आये थे। उनका व्यूह यों था : सुव्वम्मा को शाम में ले जाना, जंगली रास्ते में घुमाना, अपनी इच्छापूर्ति के लिए प्रयत्न करना।

सुव्वम्मा उनके साथ जो सरलता का वर्ताव करती थी उसे उस कामोन्मत्त ने समझा था कि सरसता है, रसिकता है। और इसीलिए निर्णय किया था कि अपनी कोशिश कामयाव होगी।

अगर मार्ग में अपनी इच्छापूर्ति न हो जाय तो चंद्रय्य गौड़जी उसे अपने घर में जगह नहीं देंगे, तव उसको उस रात को गंगा के घर में या और कोई गुप्त स्थान में सोने के पहले उसे प्रिय ताड़ी पिलाकर, नशा चढ़ाकर, सुलाकर अपनी इच्छापूर्ति कर लेने की सोची थी उस गुंडे-वदमाश ने।

मगर सुव्वमा का सुदैव! पेद्दे गौड़जी की वातों ने उनके सुनहरे सपनों को चकनाचूर कर दिया था। अतः सेरेगारजी ने सोच-सोचकर दीर्घ उसांस छोड़कर कहा—"हां, यह भी ठीक है! आज रात को मैं यहीं रहकर, कल सवेरे मैं ही ले जाऊं तो क्या हो? आपको तकलीफ क्यों? खेत का काम है, फसल का कटाव है! इत्यादि वहुत काम हैं आपको। आज एक रात को यहीं रहकर कल चले जायं! गौड़जी जो मुंह में आवे सो गाली देंगे! क्या किया जाए? सुव्वम्मा का दुःख दूर हो जाए तो, वस!—मैंने तो मनौती मान ली है!" कहकर पेद्दे गौड़जी की पुत्री के प्रति करुणा, कातरता दिखाई।

कपट न जानने वाले वृद्ध पेद्दे गौड़जी ने कहा—"आप सब लोग प्रयत्न करके मेरी बेटी के मंगलसूत्र···" आगे न कह सके, गला भर आया, आंसू आए।

रात को पेद्दे गौड़जी ने सेरेगारजी की सारी बातें सुब्बम्मा को सुनाईं। लेकिन सुब्बम्मा ने पति के घर जाने से इनकार किया, वह हठ करके रोने लगी। माता-पिता ने पुत्री को कई तरह से समझाया। "खेत का कटाव रहे तो रहे! तुम्हारे साथ मैं ही जाऊंगा और तुम्हारे पति के पांव पड़कर, उनको तुम्हें सौंपकर समझा-कर आता हूं। मेरी बात मान लो!" कहकर पुत्री के आगे भी रोये। सुब्बम्मा को लाचार होकर पिता की बात मान लेनी पड़ी।

दूसरे दिन साथ में पेद्दे गौड़जी भी आने वाले हैं जानकर सेरेगारजी का दिल धड़का। उनको रोकने की कोशिश की। पर कामयाब नहीं हुए।

तीनों निकले, कानूरु की तरफ के खेत, मैदान, जंगल से होकर चले। रास्ते में सेरेगारजी ने नमक-मिर्च लगाकर बकरे की चोरी की कहानी इस तरह सुनाई कि सिंगप्प गौड़जी ने जो सुनाई थी वह झूठ है। झूठ न होने पर भी, सत्य की तरह बनाकर, हूवय्य ने भूत की बलि का बकरा अपहरण करके, उसे घर में रख लिया है, इसीसे कानूरु के घर में शांति समाधान नहीं है, सुब्बम्मा को कष्ट भोगना पड़ रहा है, चंद्रय्य गौड़जी का सिर बिगड़ गया है—यह सब ऐसा सुनाया कि मूढ़-मतियों में उनकी बातों में विश्वास बढ़ जाए दस गुना।

कानूरु का घर आधा मील दूर था तब सेरेगारजी ने कहा—"पेद्दे गौड़जी, आप एक काम करें। हमारे गौड़जी की बुद्धि आज-कल ठिकाने पर नहीं है। क्षण-क्षण उसमें परिवर्तन होता रहता है। जब वे प्रसन्नता में हों तभी उनके पास जाना ठीक होगा। आप पहले जाकर देख आइये वे प्रसन्नचित्त हैं कि नहीं। तब तक हेग्गडिति अम्मा यहीं रहें।" कहकर सुब्बम्मा से कहा—"मैं यहां रहता हूं, रक्षा के लिए। आप न डरें।"

बेटी का कल्याण हो जाय तो बस, इसी भाव से प्रेरित हो सुब्बम्मा के पिता जी "चंद्रय्य गौड़जी का मन प्रसन्न रहे" यही प्रार्थना करते हुए कानूरु की तरफ चले और आंखों से ओझल हो गये। सेरेगारजी सुब्बम्मा को एक पेड़ के नीचे ले जाकर बिठाया और खुद उसके सामने बैठ गये।

अभी दुपहर नहीं हो पाई थी। धूप कड़ी थी। चारों ओर शैल श्रेणियां धीरे से सिर उठाकर खड़ी हो फैल गई थीं। मैदान भी झुरमुट के जंगलों की भांति हरे थे। वे जहां बैठे थे उस स्थान से खेत की फसल दिखाई नहीं पड़ती थी। मगर मजदूरों का शोर सुनाई देता था।

भूखे कुत्ते की तरह सेरेगारजी सुब्बम्मा को देख रहे थे। वे उससे बोलना चाहते थे। उनकी बातों में न श्रद्धा थी, न समंजसता। सुब्बम्म भी पिताजी के कार्य के परिणाम के बारे में सोचती, उद्विग्न हो, हथेली पर सिर रखी झुककर बैठी

थी। अब सुब्बम्मा सेरेगारजी को ऐसी दीख रही थी कि स्वर्ग सुन्दर सपने की तरह मनमोहर मूरत हो।

मना करने पर भी उसकी माता ने उस दिन सवरे बाल संवारकर, फूल की माला पहनाकर, माथे पर कुंकुम लगाकर, कान-नाक में आभूषण पहनाकर, पति-गृह जाने वाली बेटी को जैसे सजाकर भेजा जाता है वैसे सजाकर, पुट्टम्मा की दी हुई पतली नीली साड़ी पहनाकर भेजा था। सेरेगारजी सुब्बम्मा के अंग-उपांगों को कला समालोचक की तरह देखकर खुश हुए। गोल-गोल चेहरा, मुलायम गाल, मनमोहक आंखें, भौंहें, माथा, करीने से कंघी किये बाल, काली लटें। चूमने के लिए ही मानो बनाये गये गोल-गोल उभरे गालों की चमक, चोली से कसी बाहें, सुवर्ण के कंगन, केशाभरण, घुंघरू की कमरपट्टी, उभरी छाती! देखते-देखते सेरेगारजी का मन दीवाना हो गया! मन में ही उन्होंने उसके अंगांगों को सैकड़ों बार चूमा। मन तृप्त नहीं हुआ। वह अपनेको रोक न सके। जो कुछ भी हो! सुब्बम्मा मान गई तो काम सरल हो जाएगा। नहीं तो घाट के नीचे कूद पड़े बस! इस तरह सोचकर, सुब्बम्मा का मन जानने के लिए, अपना पैर उसके पैर से लगा दिया। सुब्बम्मा घबड़ाकर पीछे हट गई। आगे न जाने क्या हो? इतने में तोंद वाले सोम को घास का बोझ उठाकर आते हुए देखकर खांसी।

"क्या हेग्गडिति अम्मा! यहां क्यों बैठ गई हैं?" कहकर सोम पास आया।

झट सेरेगारजी दूर हट गये। उनकी आशा टूट गई। वह तुलु भाषा में न जाने सोम से क्या कुछ कहने लगे। सोम भी उसी भाषा में उत्तर देने लगा। बातें गरम थीं, चेहरे गरम थे।

सुब्बम्मा ने पूछा, "क्या बात है?" घास का बोझ उतारकर सोम कहने लगा।

उसने सारी कथा सुनाई कि सेरेगारजी आदि ने मिलकर हूवय्य के 'बलींद्र' की चोरी करने का प्रयत्न किया था। उसे मांस की आशा दिखाकर, उसे कैसे लुभाया और बकरे की चोरी के लिए भेजा। वे सब पीछे छिपकर खड़े हो गये थे। आखिर रहस्य खुल गया तो घोषणा कर दी कि वही अकेला चोर है।

उस रात की घटना में सोम के शरीर पर बड़े घाव हो गये थे। हूवय्य ने शुश्रूषा की; कुछ दिन उनके घर में रहकर, पूरा चंगा होने के बाद घर आया। फिर अपने सारे सामान केलकानूर ले आया; अब फिर कानूर नहीं जायगा, सेरेगारजी का चाकर नहीं रहेगा, कहकर हठ किया। सेरेगारजी ने अनेक चतुर उपायों से उसे फिर कानूर बुला ले जाने का प्रयत्न किया और सोम को बांधकर जबरदस्ती से कानूर भेजने की कोशिश की। मगर सोम में ताकत नहीं थी। लेकिन उसके हाथ में रहे हंसुए को देखकर डर के मारे सेरेगारजी के मजूरों को पीछे जाना पड़ा। "हूवय्य जैसे मालिक को छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊंगा।" सोम केल-कानूर में ही चाकर बनकर ठहर गया। आखिर उन्होंने बखेड़ा शुरू किया, "सोम

से मुझे कुछ रुपये मिलने हैं।" सोम ने कहा—"उनको कुछ भी नहीं देना है। मैंने इतने दिनों तक मजदूरी की, उसीसे उनका बकाया चुका दिया, उनसे ही मुझे पैसे मिलने हैं।" जोर से बहस की।

इस बारे में सेरेगारजी और सोम में तुलु बोली में गरम-गरम बातें होते देख, सुब्बम्मा को सोम के वेश में हुए परिवर्तन का अर्थ समझ में आ गया।

वह आम तौर से एक कौपीन, सुपारी के पेड़ के छिलके की टोपी पहन तोंद को नंगा छोड़कर रहता था। वह करीब डेढ़ या दो बित्ता चौड़ी धोती कमर से लपेट लेता था। अब उसने एक पुराना अच्छा कोट पहन लिया है, घुटने के नीचे तक धोती पहनी है, सिर पर एक पुरानी टोपी पहनी है! हूवय्य के संपर्क से यकायक सोम में नागरिकता आ गई थी! कुछ महीने पूर्व अपने आगे 'जी हुजूर' कहते, सिर झुकाए खड़े हो बातें करने वाले सोम को आज सिर उठाकर बोलते देखकर सेरेगारजी तमतमा रहे थे! मगर उस पर टूट पड़ने का धैर्य उनमें नहीं था! पैना हंसुआ उसके हाथ में चमचमाता था।

सुब्बम्मा से तांबूल, पान, सुपारी, चूना, लौंग, तमाखू आदि लेकर, बोझ उठाकर सोम कुछ दूर गया और झुरमुट में छिपकर देखने लगा चूंकि वह सेरेगारजी की श्वान बुद्धि से परिचित था।

सेरेगारजी उठ खड़े हुए, तांबूल थूकने के बहाने से इधर-उधर घूमकर, सोम को छिपे देखकर सुब्बम्मा से बोले, "पेद्दे गौड़जी अभी तक क्यों नहीं आये? हम गंगा के घर जाकर रहें। वहां आपको कोई नहीं देख पावेगा।" फिर ज्योंही उनको सुब्बम्मा और गंगा के बीच का वैर याद आया त्योंही उन्होंने कहा, "गंगा अब घर में नहीं है। अब वह चंद्रय्य गौड़जी के घर में रहती है। गौड़जी का आग्रह है कि वह उन्हीं के घर में रहे।" फिर हंसते हुए सुब्बम्मा की ओर देखते हुए कहा—"आप पति पर विश्वास दिखाती हैं, मगर उनका समस्त विश्वास गंगा पर है!"

सेरेगारजी की ये व्यंग्य भरी बातें सुनकर भी सुब्बम्मा ने कोई जवाब नहीं दिया। उसकी सारी दृष्टि दूर पेड़ की कतारों के बीच के मार्ग पर आते हुए पिताजी पर थी। उनके कार्य का नतीजा क्या हुआ, जानने के उद्वेग से उसकी छाती धड़कती थी।

पेद्दे गौड़जी का चेहरा और आंसू देखकर सुब्बम्मा सब समझ गई।

वे सेरेगारजी से कुछ नहीं बोले। बेटी से "उठो चलो, अब हम घर जावें।" कहकर नेल्लुहल्ली की ओर रवाना हुए। उन्होंने दुपहर की कड़ी धूप, थकावट, भूख, प्यास की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

सेरेगारजी ने कुछ कहने का प्रयत्न किया लेकिन, पिता-पुत्री दूर जाकर ओझल हो गये।

सेरेगारजी हताश हो, सोम की छिपी जगह की ओर देखते कानुर चले गये।

थोड़ी दूर जाने के वाद सुव्वम्मा ने पिता की थकावट को देखकर सूचना दी, "केलकानूरु जाकर भोजन करके जायं।" परंतु पेद्दे गौड़जी ने नहीं माना। कानूर के घर में वंटवारा होते समय और कई बार भी हूवय्य और नागम्माजी के विरुद्ध दामाद का पक्ष लेकर वरते थे। इसलिए वह वहां अपना मुंह नहीं दिखा सकते थे। दिखाने का मन भी नहीं था। अलावा इसके वे अपने अपमान को गांव भर में फैलाना भी नहीं चाहते थे।

रास्ते में पेद्दे गौड़जी कानूर में हुई सारी वातें पुत्री को सुनाकर रोये। वेटी भी फूट-फूटकर रोई।

"चंद्रय्य गौड़जी ने कहा, 'मैंने सेरेगारजी को नहीं भेजा। आपको अपनी पुत्री को मेरे घर भेजने की जरूरत नहीं है।' कहकर फिर उन्होंने तुमको मनमानी गालियां दीं!"

फिर पेद्दे गौड़जी ने रोते हुए कहा, "मैंने उनसे कहा—'मेरी पुत्री का उद्धार करें।' उनके पांव पड़ा तो मुझे लात मारकर, गर्दनिया देकर ढकेल दिया फिर पिता को शांत करने आये रामय्य के मुंह पर भी थूक दिया, कहते हैं!"

कड़ी धूप में चलकर, भूख-प्यास से थककर पिता और पुत्री दिन के तीन बजे नेल्लुहल्ली 'आह!' कहकर पहुंचे।

५३

हा ! विधि !

सीतेमने सिगप्प गौड़जी ने प्रयत्न किया था कि चंद्रय्य गौड़जी के पुत्र के साथ श्यामय्य गौड़जी की पुत्री का विवाह न होने दिया जाय। तो भी खबर फैल गई, चैत्र में विवाह संपन्न करने का निर्णय हो चुका है। तब तक सिगप्प गौड़जी ने जो-जो उपाय किये थे वे सब नागरिक थे। जब उनको विवाह होने की बात निश्चित रूप से मालूम हो गई तो उनकी कोपवृत्ति अनागरिक मार्ग में संचार करने लगी। उन्होंने दांत पीस लिये कि किरात मार्गों से भी विवाह को न होने दूंगा। जातक देखकर, देवता से पुछवाकर, विवाह मुहूर्त तय करके, सब प्रकार से अपना विरोध करने वाले तथा चंद्रय्य गौड़जी के पक्ष में काम करने वाले अग्रहार के ज्योतिषी वेंकप्पय्यजी को जूतों से पिटवाता हूं। चंद्रय्य गौड़जी को गोली से उड़ाता हूं। विवाह के दिन बगावत करवाता हूं कि विवाह न होने पावे, वर की बरात को कन्या के घर जाने से रोकता हूं, मन में विचार किया, मगर मुंह से कुछ भी नहीं बोले। कई बार अपने आप कहते—"हाय, मेरा जाकी चला गया। वह होता तो !"

पुत्र की अकाल मृत्यु से उनका मन संतुलन खो चुका था। सभी कामों में बिगड़ गया था। इसका बहुत हद तक कारण बन गया था चंद्रय्य गौड़जी का उपद्रव।

सिगप्प चाचा के प्रताप की कहानी गुप्त रूप से सुनकर जाते हुए हूवय्य ने एक दिन सीतेमने आकर चाचा को समझाया। हूवय्य के प्रति उनमें गौरव था, इसलिए सिगप्प गौड़जी ने दुःख से शांत होकर सुन लिया।

"चाचा जी, आप इन बुरे कामों में मेरे खातिर न लगें। कन्या एवं वर के माता-पिता आपस में परामर्श करके, दोनों मानकर विवाह संपन्न करने वाले हैं तो उसे रोकने का अधिकार बाहरवालों को नहीं है। रोकना न्यायसम्मत भी नहीं। अलावा इसके अभी से लोग हमारे बारे में भला-बुरा कहने लगे हैं। आपने यदि क्रूर कर्म कर दिया तो या करा दिया तो उसके जिम्मेदार हमींको होकर कष्ट-परंपराओं को सहना पड़ता है। विधि लिखित को कोई बदल नहीं सकता।

कृष्णप्प का विवाह तय हो गया था न ? आखिर हुआ क्या ? आप ही सोच लें। सब अपने-अपने भाग्य के अनुसार होता है। उस जाल से मुक्त होने का प्रयत्न करना भी उस जाल में फंसने के मार्गों में एक है। मैं तो मानता हूं : सीता से मैं विवाह करना चाहता था। पढ़ाई छोड़कर यहीं रहने का कारण भी वही था…। न जाने क्या-क्या किन्नर सपने देखे थे। उनमें फंसकर मैं अपने पहले के आदर्शों को भूल गया था।…उनकी ओर ग़ौर नहीं किया था।…अब वे सपने पानी के बुद-बुदों की भांति फूट गये हैं। मैं नींद से जागा-सा हो गया हूं।…मैं पहले आपसे कई बार कह चुका हूं—विवाह के जाल में फंसे बिना ज्ञानार्जन करके हमारे लोगों के अंधविश्वासों को दूर करके, जनता की सेवा करके जीवन को सार्थक करके ईश्वर की साधना करता हूं।"

हूवय्य बोलना बंद करके आकाश की ओर देखते बैठ गया। रसावेश से उसका मुंह आरक्त हो रहा था। आंखों में आंसू आ रहे थे। सिंगप्प गौड़जी में भी हूवय्य का भाव ही संचार करने लगा था। वे भी नहीं बोले। उनको लगा कि किसी मंत्रशक्ति से हूवय्य उनको उच्च गिरिश्रेणी के दिव्य परिमलपूर्ण वायुमंडल में ले गया है। उस ऊंचाई पर कानूर, मुत्तल्ली, सीतेमने, केलकानूरु — सब क्षुद्र समान दीखने लगे। सिंगप्प गौड़जी अपनी महिमा पर आप ही आश्चर्यचकित हुए।

हूवय्य फिर कहने लगा :

"इन बातों के बारे में मैंने कई दिन और रात सोचा है। मैं ही खुद जान न सका था, धीरे-धीरे मैं भी सामान्य लोगों के काम-काजों में सिर खपाने लगा था। यहां का झगड़ा, मनस्ताप, मात्सर्य, असूया—ये सब मेरे हृदय में भी रूप बदल-कर, भेस बदलकर घर करने लगे थे।…कल सूर्योदय में मेरे हृदय का अंधकार बहुत कुछ मिट गया…"

हूवय्य पिछले दिन सुबह जब कानुबैलु के शिखर पर गया था तब सूर्योदय की सुन्दर दृश्य-परंपराओं को देख रहा था। उस समां में जो अनुभव हुए थे उसको,उनका वर्णन उसने किया…

"…चाचाजी, मुझे वचन दीजिए। मेरे नये जीवन में आपको मेरी मदद करनी चाहिये। आपने महाभारत और रामायण को अच्छी तरह पढ़ा है। भगव-द्गीता को कुछ जान लिया है। अगर आप कुछ इस ओर मन लगा दें तो हमारे सारे देश को स्वर्ग बना सकते हैं।"

हूवय्य की वाणी में उत्साह था। उसकी आंखों की कांति में श्रद्धा थी। सिंगप्प गौड़जी ने कहा, "अच्छा भाई! मुझसे जितना हो सके प्रामाणिकता से तुम्हारी मदद करूंगा!" उनकी आत्मा को ऐसा लग रहा था कि मानो तीर्थ यात्रा के लिए या गंगा स्नान के लिए निकले हों।

फूल के रस के लिए रंगीन पतंग उड़ रहा है। चैत्रमास का प्रातःकाल का समय; सारे पेड़ वसंत के संभ्रम से भर गये हैं। ढेर-ढेर फूल खिले हैं। हर एक फूल का हृदय कटोरा शहद से भर गया है। हर एक फूल सुंदर पतंग को अपने हृदय मकरंद का पान करने बुला रहा है। पतंग का मन पारे के रस की भांति इधर-उधर डोल रहा है। चल रहा है। उसी प्रकार पेड़ पर एक डाली से दूसरी डाली तक के बुने मकड़ी के जाल में फंसी ओस की बिंदुएं बाल सूर्य की कांति में चांदी की बूंदों की तरह पारे के रस की भांति कंपित हो रही हैं। कुछ बूंदों में इंद्रधनुष के रंग भी चमक रहे हैं। हाय, एकाएक उड़ता रहा पतंग मकड़ी के जाल में फंसकर छटपटा रहा है। जाल की सारी चमकती बूंदें नीचे गिर रही हैं। छिपकर बैठा विकराल आकृति का मकड़ा पतंग की ओर झपट रहा है। उसे देखकर पतंग मकड़े से अपने बचाव के लिए सारी ताकत लगाकर छटपटा रहा है—उस पतंग की सी सीता !

पुट्टम्मा को अपने बड़े भाई के लिए लायेंगे, उसे रामय्य को देंगे, यह समाचार सीता के कानों पर पड़ते ही वह बहुत दुखी हुई। तब तक अन्य भाइयों की भांति प्रिय बना रामय्य अब उसे शत्रु की तरह दीखा जैसे पतंग को मकड़ा दीखा ! किसी ओर से उसे तसल्ली नहीं हुई। स्वाभाविक लज्जा को एक ओर हटाकर अपनी मां और अपने बड़े भैया से प्रार्थना की ! दोनों ने रोते हुए, श्यामय्य गौड़जी की ओर उंगली दिखाई। साहस करके उसने पिता से भी प्रार्थना की। श्यामय्य गौड़जी ने बेटी को कई प्रकार के उपदेश देकर कहा कि स्त्रियों को मर्दों की तरह नहीं बरतना चाहिये।

"जातक आया है। वेंकप्पय्य ज्योतिषी जी ने कहा है, सब तरह से अच्छा है, बता दिया है। भगवान का प्रसाद भी आया है। वह भी सुंदर है। ज़मीन-जायदाद है, अमीरी है, घर है; सब कुछ है।···चंद्रय्य गौड़जी की बात सारे प्रदेश में चलती है। उनकी बात से सारा प्रदेश हिलता है, कांपता है। उनकी धाक है सर्वत्र। वचन दिया है। उससे मुकरना नहीं चाहिए। गाय की कहानी में उस गाय ने बाघ को वचन दिया था, उसे मालूम होने पर भी कि अपनी जान जायगी, वचन के अनुसार वह नहीं बरती?···तुम्हारी बात मान लूं तो मेरा मान मिट्टी में मिल जायगा! घराने का अपमान नहीं होना चाहिए···। पति को परमात्मा समझना चाहिए···।"

श्यामय्य गौड़जी ने अपना वक्तव्य अभी पूरा नहीं किया था कि सीता फूट-फूटकर रोती हुई अपने कमरे में चली गई। रोने के बाद उसने निर्णय किया कि मैं हूवय्य मामा को गोपनीय पत्र लिखूंगी। वह भी गौर न करें, मैं अपनी जान गंवा लूंगी। फिर उसने दरवाजा बंद करके पत्र लिखा।

"हूवय्य मामा जी ! दुहाई है। आपके पांव पड़ती हूं। मेरा हाथ न छोड़ें।

और एक सप्ताह में मेरा विवाह कर देने वाले हैं। तीन दिन प्रतीक्षा करूंगी। लिखिये, मैं क्या करूं? या आप ही आकर वतावें। अगर दोनों न करें तो मैं तालाव में कूदकर प्राण दूंगी। सीता।"

सीता का अपने जीवन में लिखा यह पहला पत्र था। तारीख, गांव इत्यादि सांप्रदायिक वातें कुछ भी नहीं थीं। जहां कलम रुक जाती वहीं पूर्णविराम का चिह्न होता। फिर कुछ स्थानों पर आंसू के गिरने से काला धब्वा पड़ गया था। अक्षर दोषों का अकाल नहीं था।

सीता ने काले के द्वारा पत्र भेजने का प्रयत्न किया। मगर काले को फुरसत नहीं थी। विवाह की तिथि पास आ गई थी। इसलिए सभी अपने-अपने काम में गरक थे। अन्त में नंज को गुप्त रूप से बुलाकर उसके द्वारा हूवय्य को ही देने की ताकीद करके पत्र भेजा। इनाम के तौर पर अठन्नी भी देकर कहा—' देखो, पत्र और किसी के हाथ न लगने पावे।"

नंज केलकानूर जाते समय रास्ते में रही ताड़ी की दूकान गया। वहां अठन्नी देकर खूव शराव पी ली। आगे जाने में उसमें न इच्छा थी, न ताकत। "ले लो रे, यह अम्मा ने दिया है! अपने छोटे मालिक को दे दो!" कहते हुए नशे में उसने चंद्रय्य गौड़जी के वंधक (गुलाम) नौकर वेलर सिद्द के हाथ में पत्र दे दिया।

सिद्द ने दो दिनों के वाद चंद्रय्य गौड़जी के गाड़ीवान निंग के वेटे पुट्ट के हाथ में वह पत्र दे दिया। पुट्ट ने उसे अपने पिता के हाथ में देकर कहा—"इसे छोटे गौड़जी को दें।" उसने उसे रामय्य को दे दिया। हाय, विधि!

तीन दिन वीत गये। उन तीन दिनों का समय तो सीता के लिए प्रतीक्षा और निराशा की एक दीर्घ यातना का, वेदना का वन गया था। हूवय्य या उसका गुप्त पत्र आयगा, और मैं एक महा विपत्ति से वच जाऊंगी, उसने सोचा था। कई वार वैठक में आती और यहां-वहां झांककर देख चली जाती थी। और लोगों से अगर कह दूं तो लोग उसका अपार्थ करेंगे, सोचकर उसने अपनी वहन लक्ष्मी को आज्ञा दी थी कि कोई भी आवें तो मुझे वतावें। लक्ष्मी हर वार वड़ी वहन के पास जाती और उसे रिपोर्ट देती कि वाहर वैठक में घर वाले ही आते-जाते रहे, नौकर-चाकर आते-जाते रहे, रिश्तेदार आते-जाते रहे। वह यह भी वताती कि कौन-कौन आये और गये। पहले पहल वह सीता को मज़ाक-सा लगा। तो भी छोटी वहन की एकैक रिपोर्ट में ताना रहता जो उसे चुभता; इसलिए उसने लक्ष्मी से कहा—"अव वंद करो।" तो भी लक्ष्मी आदत के अनुसार वैठक में जाती और आने वालों का नाम वता देती जो अवांछित था।

तीसरे दिन शाम को विवाह के लिए आवश्यक मंडप की सजावट के काम में लगे लोगों की भीड़ में से लक्ष्मी निकल के आई और अपनी वड़ी वहन से कहा—"कानूर गाड़ी का निगण्णा आया है री! रामय्य मामा से वड़े भैया के नाम पत्र

लाया है, कहते हैं री !"

सीता के चेहरे पर दुःख-निराशा की इतनी गहरी छाया थी कि उसे देखकर लक्ष्मी का मुग्ध दिल भी दहल गया। बड़ी बहन के गले से लगकर "जीजी, तुम्हारे विवाह के दिन मैं साड़ी पहनूंगी, हां।" कहकर सीता को तसल्ली देने लगी। उसको क्या मालूम, जीजी का दिल ज्वालामुखी बन गया है !

सीता बोली नहीं। छोटी बहन को चूमती हुई फूट-फूटकर रोने लगी। लक्ष्मी भी रोने लगी। अबोध लक्ष्मी ने सोचा कि विवाह एक भयंकर बात होगी, नहीं तो क्या जीजी इस तरह रोती ?

सीता का मन एक अत्यंत भयंकर बात सोच रहा था, इसमें कोई संदेह नहीं था !

जैसे लक्ष्मी ने सीता को बताया था, कानूरु चंद्रय्य गौड़जी के गाड़ीवान नौकर ने एक गोपनीय पत्र लाकर चिन्नय्य के हाथ में दिया। उसको पढ़कर चिन्नय्य का शरीर सिहरने लगा। सांस जोरों से चलने लगी। बोलने का प्रयत्न किया, मगर बात गले में ही अटक गई। उसको लगा कि जैसे जीभ की शक्ति ही गायब हो गई है। अपना उद्वेग, और अधीर हालत को जानने न देने के इरादे से वह अटारी पर चला गया।

उस रात को अपने मालिक के घर में विवाह के कामों में लगे पड़ोसी, नातेदार, किसान, सबको भोजन करके सोने में काफी देर हुई। बारह बज गये थे। कड़ी मेहनत के कारण सभी शीघ्र गहरी नींद में उतर गये।

दो को सिर्फ नींद नहीं आई; बहन सीता को और उसके बड़े भाई चिन्नय्य को।

५४

आत्महत्या

कुछ लोग होते हैं; उनकी इच्छा होती है कि दुनिया को अपनी अभिलाषा की अग्नि में गलाकर, इच्छा के ढांचे में ढालकर अपनी इच्छा की जीवन मूर्ति वना ली जाय। दुनिया का अनुकरण करने की अपेक्षा दुनिया को ही अपनी इच्छा के अनुसार चला लेना चाहते हैं। यदि यह इच्छा पूरी न हो जाय तो निठुर दुनिया से किसी तरह पार होने का प्रयत्न करते हैं। वह प्रयत्न नाना रूप धारण कर सकता है। कला की सुरुचिपूर्ण कृतियों से लेकर दिवास्वप्न, अपूर्ण विस्मृति, पागलपन, मूर्च्छा, वैराग्य, आत्महत्या—इत्यादि तक उस प्रयत्न की व्याप्ति है। कला और वैराग्य से लोकसंग्रह हो सकता है। दिवास्वप्न, पागलपन, मूर्च्छा, आत्म-हत्या—इनसे लोकपीड़ा हो सकती है। कुछ भी हो, आखिर इस संसार में आदर्श संसार खोजने वालों को दुनिया अंत में गौरव, आदर दिखाने पर भी, पहले पहल उनको निठुर होकर सताती है। इसलिए आदर्श की पुष्प शय्या पर जाने की इच्छा करने वालों को कांटों की मेंड़ को पार करने को तैयार होना चाहिए। इस तरह जो तैयार होंगे उन सबको पुष्पशय्या मिलेगी ही, सो भी निश्चित नहीं। कई साहसियों को मार्ग के बीच में मरना पड़ता है। ऐसे दिवास्वप्न देखने वाले साह-सियों के समूह में शामिल थे सीता और हूवय्य।

फिर कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी आशाएं-आकांक्षाएं उत्कट ही होती हैं। मगर उनकी आकांक्षाएं यथार्थ दुनिया से टकराकर, सिर पटककर रक्तपात नहीं कर लेतीं। वे कठोर संसार जहां झुकता है वहां झुकती हैं। जहां सिर उठाता है वहां अपना सिर उठाती हैं। जहां तंग होता है वहां छोटी होती हैं, संसार की आशा-आकांक्षाओं में मिलकर जीती हैं। ऐसे लोगों को स्वप्न देखने वाले साहसियों को होनेवाली अत्युत्कट हृदय यातना नहीं होती, उनको निरुपम, वड़ा दिव्यानन्द भी नहीं होता जो आदर्श सिद्धि से होता है। लेकिन कुल मिलाकर स्वप्न साहसियों की-सी श्रेष्ठता न होने पर भी ऐहिक जीवन की दृष्टि से वे अधिक आराम से रहते हैं। ऐसे लोगों के समूह में थे चिन्नय्य और पुट्टम्मा।

ऊपर कहे दोनों समूहों के गुणों में से कुछ गुण पाकर मध्यवर्ती वन गया था

रामय्य। ऐसों का भाव, रहन-सहन वातावरण के प्रवाह के अनुसार परिवर्तित होता है। इसलिए ऐसे लोगों पर विश्वास करना कठिन है। असम भार से तराजू का डंडा जैसे ऊपर, नीचे होता है, उनकी आत्मा एक बार आसमान पर उछल जाती है, एक बार नीचे जमीन पर गिर जाती है। ऐसे लोग दुष्ट नहीं होते, कृत्रिम जीवी भी नहीं होते, मगर वे हमारे कोप और अवहेलना की अपेक्षा दया के पात्र होते हैं। उनकी अनिश्चितता को दुर्बलता कहकर उसका खण्डन कर सकते हैं; पर उनको पापी कहकर नरक में नहीं ढकेल सकते। वे अपने को तकलीफ में डाल लेते हैं और दूसरों को भी तकलीफ में फेंक देते हैं।

हूवय्य का संपर्क-सहवास छूटने के बाद रामय्य को अपने पिता के जो वर्ताव विचक्षण एवं दुष्ट दिखाई देते थे अब वे साधारण एवं सही दिखाई देने लगे। सीता के मोह से अंधे बने रामय्य ने हूवय्य के विरोध में चुगली की बातें सब ध्यान से सुनकर, उन पर विश्वास किया। स्वार्थ व मोह से अंधा बना उसका मन हूवय्य को गोमुख व्याघ्र मानने लगा। पहले कई बार बड़े भाई की श्रेष्ठता दिखाने वाली घटनाएं अब कपटी दिखाई देने लगीं। सर्वसम्मति से रामय्य ने ऐसा समझा था—अपने लिए तय की गई कन्या का अपहरण करने के लिए क्षुद्र जुगतें करने वाला आदमी कहां? उदात्त स्वभाव कहां? रामय्य को उसके पिता निर्दुष्ट दिखाई देने से उनके सारे कामों में भाग लेकर वह उनका सहायक बन गया।

इसीलिए हूवय्य को लिखा सीता का पत्र उसके हाथ लग जाने से रामय्य क्रूर बन गया। उस पत्र में उसको सीता का दोष नहीं दिखाई पड़ा, परंतु दिखाई पड़ी हूवय्य की और उसके पक्षवालों की कुयुक्ति। उसने सोचा कि हूवय्य या उसके पक्ष वालों की फितूर के सिवा सीता जैसी देहाती मुग्ध लड़की ऐसा प्रणय-पत्र लिखने का साहस कर सकती है? ये सब मिलकर लड़की का मन बिगाड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं!

रामय्य को इसमें कतई संदेह नहीं था कि सीता उसको चाहती है। जो प्रसंग वह याद करता वह हर एक प्रसंग उसके प्रति सीता का अनुराग ही प्रकट करता था। उसकी मोहवंचित दृष्टि को सीता का सरल स्नेह प्रणयप्रेम की तरह दिखाई पड़ा। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। आखिर सीता को इस महान् फितूर से किसी तरह पार करके अपनी वधू बनाकर उसकी रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य समझकर, रसाविष्ट हो सीता की रक्षा सावधानी से करने के लिए गोपनीय पत्र चिन्नय्य को रामय्य ने भेजा। लेकिन सीता के पत्र के बारे में किसी से कुछ भी नहीं कहा। खुद भी उसे भूलने की आशा की।

सिंग ने जो गुप्त पत्र लाकर दिया उसे देखकर चिन्नय्य घबरा गया। लिखने में अस्पष्टता, चेतावनी की अनिर्दिष्टता इनसे वह और दिङ्मूढ़ हुआ। मगर अपने उद्वेग को जितना हो सके निग्रह करके, किसी से उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा।

उसे प्रकट करके शोर मचाना उसे शर्म की वात की तरह लगा। अपनी छोटी वहन की रक्षा का भार अपने अकेले पर पड़ा है जानकर, सीता की हरएक वात पर कड़ी नजर रख परीक्षा करने लगा।

चिन्नय्य अच्छी तरह जानता था कि अपनी छोटी वहन सीता हूवय्य से ही विवाह कर लेने पर तुली हुई है, रामय्य से विवाह करने के विरुद्ध है। उसकी इच्छा पूर्ण करने में अपने से जितना हो सके प्रयत्न भी वह कर चुका था। लेकिन अपने से भी प्रवल शक्तियों का सामना करने का साहस करने के लिए न जाकर वह 'ललाट लिखित' की शरण में गया था। भाग्य के आगे सिर झुकाया था।—इतना ही नहीं, इस विवाह के समझौते में अपनी नापसंदगी के साथ अपनी पसंदगी मिली हुई रहने से नापसंदगी को दूर करने के प्रयत्न में अपनी पसंदगी हाथ से न निकल जाय, इस ख्याल से कुछ पीछे हट गया था। क्योंकि चिन्नय्य से विवाह करने की इच्छा पुट्टम्मा की जैसे थी वैसे ही पुट्टम्मा के प्रति चिन्नय्य का हृदय भी अत्यंत कोमल वन गया था।

रात को सवके सोने तक काम करने, और कराने के वहाने इधर-उधर घूमते चिन्नय्य ने अपनी वहन पर नजर रखी थो। सवके सोने के वाद सीता के सोने के कमरे के पास विस्तर विछाकर सोया। रामय्य ने केवल चेतावनी दी थी, न कि तकलीफ के होने की और आफत की रीत सुझाई थी। इसलिए चिन्नय्य कई भयंकर कल्पनाओं से पसीने से तर होते, निःशब्द रात में एक-एक शब्द को चौकन्ने होकर सुनते सोया था।

सिगरेट पर सिगरेट सुलगाता था। उसके धुएं से चिन्नय्य का सोने का कमरा भर गया था। उसी तरह उसका मन भी चिंताओं से धूमिल हो गया था। मन को न दिशा थी, न ध्येय था। वह उस तरह छटपटाता था जैसे ववंडर में फंसा सूखा पत्ता। सीता पर क्या आपत्ति आ सकती है ? हूवय्य, सिंगप्प मामा सव मिलकर कोई षड्यंत्र रच रहे हैं क्या ?···सीता को यहां से हटाने का विचार किया है क्या ?···कहां की वात ? भूतादि वाधा के वारे में वेंकप्पय्य ने कुछ वताया तो नहीं ?···या सीता अपने नापसंद विवाह से वचने के लिए भाग जाने का प्रयत्न कर रही है ?—यह विचार इतना हास्यापद लगा कि चिन्नय्य स्वयं हंस पड़ा—आत्महत्या कर लेगी ? फांसी ! कुआं ! तालाव ! विष ! न, न, यह सव नहीं हो सकने का। सीता से यह सव न हो सकने का ! वह चाहने पर भी न कर सकती ! क्या मैं नहीं जानता सीता को ?

सोचते-सोचते उसका मन संचार करने लगा—विवाह का मंडप, पिछवाड़े की मेंड, अपने विवाह की पोशाक, सवेरा होते ही जंगली मुर्गी का शिकार करने जाना, नौकर-चाकर काम के लिए 'रेडी' होने के पहले आ जाना चाहिये। पुरानी वंदूक की दाहिनी नली ठीक काम ही नहीं कर रही है कम्वख्त ! "अरे यह क्या,

पीठ में क्या काट रहा है ? खटमल ! रह जा,…अय् !"

चिन्नय्य सिगरेट मुंह में दबाकर ही विस्तर पर उठ वैठा। दोनों हाथों से, अंधेरे में कुछ भी नहीं दिखाई देता था, विस्तर के पोश को झाड़कर, फिर सोया।

"वस ! इस रामय्य को कोई काम नहीं ! कितना डर ! विवाह के पहले ही वधू पर इतना लाड़ !"

आधी रात वीत गई है ! चिन्नय्य ने सुना। वैठक, छोटी वैठक में तथा आंगन में सोये नौकर-चाकरों की सांस लेना रात के सन्नाटे में तालवद्ध सुनाई पड़ता था। वीच-वीच में खुर्राटा भी सुनाई देता। चिन्नय्य सिगरेट पीना वंद करके, आंख मूंदकर, जागते रहने का प्रयत्न करते सोया था। लेकिन थोड़ी देर में ही उसकी प्रज्ञा धीमी पड़ती गई और वह गहरी नींद में उतरने वाला ही था कि भीषण चीत्कार की ध्वनि एक अंधकार की निस्तव्धता को चीरते, दिल को वर्फ-सा वनाने के जैसे सुनाई पड़ी। उसने निर्णय किया कि वह ध्वनि सीता की है। चिनगारी लगी वारूद की भांति झट से वह उठा और "सीता ! सीता !" घवराहट से कहते सीता के सोने के कमरे की ओर दौड़ा।

तीन दिन हुए, अपने पत्र का उत्तर हूवय्य मामा से न आने के कारण सीता के कोमल मन पर आघात हुआ। उसे दुनिया शून्य, भयंकर हो दीखने लगी। जिसको शिशु समान सरल हृदय से अपने जीवन का देवता माना था उसीने तिरस्कार किया तो फिर आगे क्या निस्तार ? सीता को मां, वाप, भाई, वहन, सगे-संवंधी सभी क्रूर शत्रुओं की तरह दीखने लगे। भयंकर परिस्थिति से मुक्त भी कैसे हो ? अपनी पढ़ी कहानियों की लड़कियों की तरह साहस करने की हिम्मत उसे नहीं हुई। भाग भी कहां जाय ? कैसे ? अगर हूवय्य 'हां' कहता तो उसके साथ कहीं भी जाने के लिए वह तैयार हो जाती ! जितनी भी तकलीफ हो, सह लेती ! मान-सम्मान, दया-संकोच सव दूर हटाकर प्रियतम के पीछे जाती ! मगर हूवय्य ने ही हाथ छोड़ दिया तो ? रामय्य से अपना विवाह होगा, यह जव कभी याद करती तो सीता उद्विग्नता से मूर्च्छित होने की अवस्था तक पहुंचती। हताशा से उसके हाथ-पैर की शक्ति ही मानो गायव होती। दृष्टि और मन धुंधले हो जाते। उसके आस-पास रहने वाले किसी को मालूम नहीं होता कि उसके हृदय में किस प्रकार का विप्लव हो रहा है, उसका अर्थ क्या है ?

वाहर देशांतर भाग नहीं जा सकती थी, इसीलिए वह अपने आपमें भाग जाने का उपाय ढूंढ़ने लगी। मगर उसके जाग्रत चित्त को कोई उपाय नहीं सूझा, पर सूझा गुप्त चित्त को।

उस दिन संध्या होने तक उसने राह देखी, पर न हूवय्य आया, न उसका प्रतिनिधि पत्र लेकर आया। तव उसने अपने प्रणय पत्र के अनुसार आत्म-हत्या

करने का निश्चय किया। मृत्यु के नाम से डरने वाली वह लड़की, इस नतीजे पर पहुंची कि मृत्यु ही अपना पार होने का मार्ग है तो आप सोच सकते हैं कि उसको जीवन कितना भयंकर दिखाई दिया होगा? आत्म-हत्या का निर्णय करने पर उसकी मृत्यु भयंकर नहीं दिखाई पड़ी। जीवन की यातनाओं से और निराशाओं से अपने को पार पहुंचाने वाली विश्वास पात्र सखी की भांति लगी मृत्यु!

उसने मन में तय कर लिया कि घर के समीप के तालाब जाऊं सबके सो जाने पर; और रामजीजी की तरह करूं। कुछ वर्ष पहले वह जब छोटी लड़की थी तब काले की मां रामजीजी ने अपने से अज्ञात किसी कारण से उस तालाब में गिरकर अपने प्राण त्यागे थे जो सीता नहीं भूली थी।

उस रात को सबसे पहले सीता भोजन करके, सिर दर्द के बहाने सोई। लक्ष्मी भी 'मुझे भी जीजी की तरह हो रहा है", कहकर सीता के विस्तर पर ही आकर सो गई। सीता ने उसे दूर दूसरे विस्तर पर सुलाने का लाख प्रयत्न किया मगर उसका सारा प्रयत्न बेकार गया।

सीता नहीं सो सकी। विवाह के मंडप आदि के काम में लगे हुओं का शोरगुल, हंसी-मज़ाक सब रुक जाने के बाद, सब खा-पीकर, पान-सुपारी का वितरण हो जाने के उपरांत सो जायंगे, तब सब शांत होगा—उसी निस्तब्धता की प्रतीक्षा कर रही थी। मां गौरम्माजी को भीतरी काम-काजों से फुरसत न मिलने पर भी बीच-बीच में एक बार आकर पुत्री के माथे पर अमृतांजन मल करके जाती थी। एक बार सीता को बुलाया तब सीता जाग रही थी। तो भी उसने अभिनय किया था मानो वह गहरी नींद में है। बेटी को सुख से सोते देखकर वह भी सो गई और गहरी नींद में डूब गई।

सीता विस्तर पर सोई थी, पर आंखें खुली थीं। अंधेरे को देखते याद-याद करके रोई···वह तालाब! वह अंधेरा!···सांप···जल का सांप···कहने पर उसकी जान जाती! सीता का दिल कितनी ही बार दहल गया! मृत्यू भयंकर दीख पड़ी। 'देखूं, कल शायद हूवय्य मामा आ जायं' अंधी आशा करने लगी।

फिर अपने और रामय्य के जबरदस्ती के विवाह की बात याद करके, जैसे कुएं पर फिसलने वाला तीर पर का पेड़ अपनी बांहों में कसकर पकड़ लेता है वैसे ही जीवन कुएं पर फिसलने वाली ने मृत्यु का पांव मजबूती से पकड़ लिया!···विस्तर पर उठ बैठी। बगल में लक्ष्मी सोई थी मगर वह नहीं दिखाई पड़ रही थी आंखों को, परंतु मन को दिखाई दे रही थी न जाने किस लिए, कुछ देर ठहर करके जाने का विचार कर सीता फिर सो गई। सोते समय लक्ष्मी के मुलायम बाल सीता के गाल पर लगे! सीता ने उन बालों को कितनी ही बार तेल लगाकर, संवार कर सजाया था मांग वगैरह काढ़कर! वह लाड़ली मृदु लट का स्पर्श धर्म-शास्त्र की हज़ारों नीति बातों की अपेक्षा अधिक विरोधी था आत्म-हत्या का!

सीता सोच रही थी अब जाऊंगी, अब जाऊंगी कि बैठक की घड़ी में घंटी बजने लगी। सीता ने कुतूहल से गिना ! एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह ! हाय, घड़ी इसी तरह सवेरे तक घंटी बजाती रहती तो, घड़ी ने घंटी बजाना बंद किया तो सीता को वह निष्करुण दिखाई पड़ी। इतने में बाहर किसी ने खांसा ! सीता को बहाना मिल गया। सोचा कि जब सब आराम से सो जायंगे तब मैं जाऊंगी। वह अंधेरे की ओर देखती हुई सोई।

आधा घंटा भी नहीं बीता था। सीता धीरे से उठी बिस्तर से। सब जगह सन्नाटा था। सीता को आत्म-हत्या करने के लिए मौका देने के लिए ही मानो दुनिया बेहोश सोई थी। दरवाजे भी निस्तब्ध थे। सोये कुत्तों ने भी सिर उठाकर नहीं देखा। सीता जल्दी-जल्दी तालाब की ओर बढ़ी। पैर में कांटा नहीं चुभा, पत्थर नहीं अटका।

कितनी जल्दी वह तालाब आकर पहुंच गई है !

सीता को अपना साहस देखकर खुद को ही आश्चर्य हुआ ! वह तब तक नहीं जानती थी कि उसमें इतने धैर्य, साहस, स्थैर्य, सामर्थ्य, चित्त की दृढ़ता है। मरने के पहले आत्मा की सारी शक्ति प्रकाशित हुई-सी दीखी।

अब क्या, तालाब में कूदना भर था ! सीता पीछे हट खड़ी हो गई।

हूवय्य की सिखाई प्रभु की प्रार्थना ! सीता ने उस अंधेरे में हजारों तारों से जड़े आकाश की ओर सिर उठाकर हाथ जोड़ प्रार्थना की ! आश्चर्य ! प्रार्थना की कि यह विवाह किसी तरह टूट जाय। प्रभो, हूवय्य मामा से विवाह मेरा हो। यही कृपा करो ! तालाब में कूद रही है, अब कहां का विवाह !

प्रार्थना पूरी हुई। सीता ने देखा कि अपनी ओर कृष्णप्प दौड़ा आ रहा है। डरकर, वह उद्विग्न हृदय से कूद पड़ी। पानी 'छन्न्' करके उछला। मगर में कोई एक वस्तु उसकी छाती से जोर से टकराई-सी लगी ! या कृष्णप्प ने घूंसा दिया ? शायद पानी में भिगोने के लिए डाले गये हल हों ! सीता को बड़ी वेदना हुई और वह जोर से चिल्लाई।

उस चिल्लाहट को सुनकर ही चिन्नय्य उसके सोने के स्थान तक दौड़कर आया था ! जल्दी दिया जलाकर देखा तो सीता बिस्तर पर निस्पंद, प्रज्ञाशून्य हो सोई है ! लक्ष्मी का हाथ उसकी छाती पर पड़ा है।…और लक्ष्मी अपने संसार में जानवरों के गोठ के उस पार स्वप्नगंधी पेड़ की जड़ में बैठ गई है !

५५

हूवय्य मुत्तल्ली को

सोये हुए सभी उठकर चारों ओर दौड़कर आये। एक-एक के मन में एक-एक दुर्घटना का अनुमान था। मगर कोई भी यथार्थ नहीं था।

सिर और आंखों पर ठंडा पानी छिड़कने और हवा करने के थोड़ी देर बाद सीता ने आंखें खोलीं। मगर संसार उसका पहले का नहीं था। पहले-पहल वहां रहे माता-पिता और बड़े भैया को शायद पहचान न सकी थी। उसने किसी के प्रश्न का जवाब नहीं दिया। यों ही सबको आंखें फाड़कर देखने लगी और फूट-फूटकर रोने लगी।

गौरम्माजी ने दीर्घ सांस छोड़ती हुई, आंसू बहाती हुई, कई प्रकार से अपने को ज्ञान देवी-देवताओं की प्रार्थना करती हुई मनौती मान ली। श्यामय्य गौड़जी भी पत्नी के कार्यों में संपूर्ण भागी बने। दूसरे ही दिन अग्रहार के वेंकप्पय्य को बुला भेजूंगा, निमित्त पूछूंगा, कूलूरु और सिद्धों के मठों को नौकरों को भेजकर प्रसाद मंगाऊंगा, घर के देवता-पिशाचों को फल आदि अर्पित करके रक्त बलि दूंगा, धर्म स्थल, तिरुपति, सिब्बुलुगुड्डे आदि दूर के और पास के मंदिरों को भेंट दूंगा; इन बातों को उन्होंने जोर से सुनाया ताकि सब लोग सुनें। सीता के शरीर में प्रविष्ट भूत-पिशाच को डराना उनका अंदरूनी ध्येय था।

तड़के सीता बोलने लगी। एक बार सीता की तरह, एक बार 'किसी और' की तरह बोलने लगी तो पहले अंधविश्वासों से भरे लोगों का मन भयभ्रांत हुआ। मनमाने सिद्धांत करने लगे।

इन अनुमानित सिद्धांतों में एक सबके हृदय को अच्छी तरह लग गया। सीतेमने सिंगप्प गौड़जी का मृतपुत्र कृष्णप्प ही भूत बनकर सीता में समाविष्ट हो गया है! सीता के मुंह से निकलती हुई कुछ बातें भी इसी अनुमान का समर्थन करती थीं।

राज्य में कहीं बगावत हो जाय तो उसे दबाने के लिए जैसे राजा की सेना उस जगह जाती है वैसे वेंकप्पय्य ज्योतिषीजी ठाट-बाट से मुत्तल्ली आ गये। उनको देखते रहने वालों को अचम्भे में डालने वालों की तरह सबकी ओर देख, पंचांग

खोल, मुहूर्त देख, सिर हिलाकर श्यामय्य गौड़जी को एकांत में बुलाकर, कानों में कुछ फंककर, मंत्रित भस्म, कुंकुम, नारियल आदि देकर, अपने मिलनेवाली दान-दक्षिणादि ढोकर अपने अग्रहार को लौट गये। सबने सोचा कि उन्होंने कोई एक बड़ा काम किया है और उनका मन शांत हुआ।

ज्योतिषीजी के उपदेश के अनुसार सीता को भस्म एवं कुंकुम लगाकर, उसके सोने के स्थान के ऊपर बांस से मंत्रित नारियल बांध दिया।

श्यामय्य गौड़जी ने वे गुप्त बातें,जो ज्योतिषी ने उनसे कही थीं, सबको सुनाकर कहा, "ये बातें किसी से न कहें।"

इस प्रकार कहने में एक बहाना भी था। पंचांग देखकर ज्योतिषी ने जो बताया था उसका अनुमान सबने पहले ही कर लिया था। निर्णय भी कर लिया था। विदित बात को गुप्त रखने में क्या मतलब है? अतः अपनी पुत्री पर सवार हुआ भूत सिंगप्प गौड़जी का पुत्र कृष्णप्प ही है, लोग कहने लगे कि इसे ही ज्योतिषी ने कहा था। ऐसी बातें देहातियों को बड़ी मीठी और दिलचस्प लगती हैं। ऐसी बातें उनको उनके कानों का त्यौहार ही समझिये। समाचार एक मुंह से दूसरे मुंह में, एक कान से दूसरे कान में पड़कर खूब फैल गया।

अपने निजी पुत्र की बहू बनकर आने वाली सीता में अपने कट्टर शत्रु सीतेमने सिंगप्प गौड़जी का पुत्र भूत बनकर समाया हुआ है, यह समाचार निंग से सुनते ही चंद्रय्य गौड़जी तमतमा से गये। मुझे सताने के लिए जीवित पिता के अलावा मृत पुत्र को भी आना चाहिये? कृष्णप्प के भूत को नरक यातना देकर बदला लेने का उन्होंने निर्णय किया। विवाह होने के बाद सीता अपने घर आ जायेगी। तब कृष्णप्प का पिशाच अपनी बहू पर धावा बोलने का धैर्य करे तो उसकी ठीक मरम्मत करूंगा! न दिये जाने वाले कष्ट देकर पिता पर का बदला पुत्र से लूंगा!

सोचते-सोचते सजा के विधान एक-एक करके उनको सूझे: गोबर खिलाना, दाग डलवाना, भूखा रखकर जीरा-मिर्च का लौंदा खिलाना, न खावें तो आंखों में लाल मिर्च की बुकनी डालना, बाल, हींग और लाल सूखी मिर्च आदि को आग पर रख नाक के पास धरना, वेंकप्पय्य ज्योतिषीजी के द्वारा मंत्र फुंकवाना और दिग्बंधन कराना, और भी उनकी पहचान की सारी यातनाएं देना···इत्यादि।

सिंगप्प गौड़जी को ही उपर्युक्त यातनाएं देने से जितना संतोष होता उतना संतोष हुआ चंद्रय्य गौड़जी को केवल कृष्णप्प के भूत को यातनाएं देने की बात सोचकर।

सिंगप्प गौड़जी का प्रयत्न ही बेकार हो गया है! अब उनके पुत्र के प्रेत के प्रयत्न की क्या बिसात? कृष्णप्प रहे! उसके दादा भी भूत बनकर आवे तो भी विवाह को रुकने न दूंगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके चंद्रय्य गौड़जी ने श्यामय्य

गौड़जी को पहले ही चेतावनी भेजी, "जो कुछ भी हो ! किसी तरह एक बार निश्चय किया गया विवाह न रोक दें। किसी हालत में !"

सीता पर सवार हुए भूत की बात सुनकर हूवय्य भी घबड़ा गया। मनःशास्त्र को वह कुछ-कुछ जानता था। अतः उसने सीता के विकार का रहस्य जान लिया। पहले उसका विवाह कृष्णप्प से तय हुआ था, तब सीता अस्वस्थ हो गई थी। वह बात याद आई। अब की बार सीता के भीतरी मन ने अपनी जुगुप्सा और पीड़ाओं के लिए कृष्णप्प के भूत का वेष धारण कर लिया होगा। इस प्रकार अनुमान करके भावी अनहोनी को न होने देने के उद्देश्य से अनमना होकर भी हूवय्य मुत्तल्ली के लिए रवाना हुआ।

परन्तु मुत्तल्ली में हूवय्य का स्वागत हुआ अत्यंत उदासीनता से। इतना ही नहीं, बातचीत में भी हूवय्य के प्रति जुगुप्सा दीखती थी। लोगों की दृष्टि में और संकेतों में अपने प्रति एक प्रकार का भय दीखता था हूवय्य को। उसको भी लग रहा था कि मुझे मुत्तल्ली नहीं आना चाहिये था, ऐसा वातावरण था।

उसका कारण बाद को चिन्नय्य से मालूम हुआ। चंद्रय्य गौड़जी की सूचना के अनुसार वेंकप्पय्य ज्योतिषीजी ने यह अफ़वाह फैला दी थी कि "सीता पर कृष्णप्प के भूत का सवार होने का कारण हूवय्य ही है। हूवय्य को विदित मंत्र-विद्या से ही कानूर के घर का भूत 'वलींद्र' बकरे में समा गया है और वह उसका वश होकर ही यह काम कर रहा है !"

हूवय्य ने लोगों की उदासीनता, जुगुप्सा की ओर गौर किए बिना निर्णय किया कि मैं सीता को देखकर ही जाऊंगा। विवाह की तैयारी में लगे श्यामय्य गौड़जी ने हूवय्य की ओर देखे बिना ही कह दिया, "वह भ्रमिष्ठ हो गई है, अब तुम उसको न देखो, बेहतर है।" मगर जिद करके हूवय्य ने श्यामय्य गौड़जी को मना लिया। अपनी मंत्रविद्या से हूवय्य क्या जादू कर देगा, इस भय से, राम का नाम लेते हुए उसको लेकर सीता के कमरे में गये। सीता के बिस्तर के बगल में लक्ष्मी के साथ बैठी गौरम्माजी आंखें पोंछती हुई कुछ सरककर बैठ गई।

उस कमरे का वातावरण ऐसा था कि जो अच्छे हैं वे भी भूतबाधा से पीड़ित हो जायं। सभी खिड़कियां बंद की गई थीं ताकि बाहरी भूतों का आक्रमण न हो। भूतों के साथ-साथ रोशनी तथा हवा का बहिष्कार था। भीतरी भूतों को मानो भगाने के लिए लहसुन आदि की कटु बू की चीजों को जलाकर धुआं कर दिया गया था। बाहर से भीतर आने वालों का दम भी घुट जाता था। खिड़की के दरवाजों पर जूते, झाड़ू, मंत्रित नारियल आदि वस्तुओं का वंदनवार शोभित था। उन सबको देखकर हूवय्य का दिल दहल गया। दुःख उमड़ आया। सीता से भी अधिक दुःखी होकर उसांस छोड़ी तो उसकी आंखें भी गीली हो गईं। क्या करने

से सीता को बचा सकते हैं ? सीता की रक्षा के लिए कुछ भी किया जा सकता है, वह सोचने लगा।

सीता हूवय्य को शीघ्र पहचान न सकी। देखते-देखते यकायक पहचान गई तो सीता चट से उठ विस्तर पर बैठ गई। चेहरे पर जो दुःख के बादल थे उनमें सुख की बिजली चमकी। वह हूवय्य की ओर सरकने लगी तो गौरम्माजी ने बेटी को पकड़कर जबरदस्ती से सुलाने का प्रयत्न किया। हूवय्य ने उसे बिस्तर पर ही बैठने देने के लिए कहा।

श्यामय्य गौड़जी ने कहा, "नहीं ! चुप नहीं बैठेगी। अभी देखा न ? तुम पर गिरने को थी ?"

पिता की बात सुन सीता हंस पड़ी। उतना हास्यास्पद था गौड़जी का व्याख्यान। लेकिन वह हंसी गौड़जी को, गौरम्माजी को सीता की हंसी नहीं लगी, मगर उसके भीतर रहे कृष्णप्प की हंसी-सी लगी। बल्कि वह स्वाभाविक हंसी न होकर विकृत थी।

अपने को सुलाने का प्रयत्न करती माता से सीता ने कहा, "नहीं मां, मैं चुप बैठती हूं। मत सुलाओ।"

तब उसकी ध्वनि में भी, चेहरे पर भी विद्यमान सरलता ने उसके माता-पिता दोनों को अचंभे में डाल दिया। उनको लगा कि उसकी ये बातें अपनी पुत्री की निजी बातों की-सी थीं। यह क्या ? सीता बहुत समय के सपने से जागी ? गौरम्माजी ने अनुमान किया कि यह परिवर्तन हूवय्य के आगमन से हुआ है। अतः वह अत्यंत हर्ष से बेटी के रोग के बारे में पहले से सविस्तार सुनाने लगी। ये बातें हूवय्य ने औरों से सुनी थीं, इसलिए वह उनकी ओर ज्यादा गौर किये बिना, सीता को ही देख रहा था।

सीता बहुत दुबली बन गई थी, फीकी पड़ गई थी। रूप में भी थोड़ा विकार आ गया था। दिन का समय होने पर भी बलने वाले एरंडी के तेल के दिये के लाल प्रकाश में अंधभाव और अंधआचारों के बीच बंधित मुग्धता की भांति करुणाकर हो दीखती थी सीता। उसकी आंखें, "किसी तरह मेरी रक्षा करो" आत्मा का आर्तनाद मानो प्रतिबिंबित कर रही थीं।

सीता हूवय्य से बोलने लगी। वह इतनी अच्छी तरह बोली कि श्यामय्य गौड़जी को हूवय्य की मंत्रविद्या में रहा विश्वास और भी अधिक हो गया !—नागम्माजी का क्षेम-समाचार पूछा। पुट्टण्ण ने इधर किस जानवर का शिकार किया, कुत्तों का नाम ले-लेकर उनके बारे में पूछा सीता ने। यह भी पूछा कि सासजी को क्यों नहीं ले आये। फिर उसने कहा, "मैंने विचारा, कहिये।" अंत में उसने कह भी दिया—"मैं भी केलकानूर आती हूं। मुझे ले जाइये !"

हूवय्य ने एकैक प्रश्न का संतोषजनक उत्तर दिया। अंतिम बात का क्या उत्तर

दूं, सोच ही रहा था कि गौरम्माजी ने कहा—"जा सकती हो ! बीमारी से पहले मुक्ति मिले !"

सीता ने माता की ओर घूमकर कहा, "मुझे कौन-सी बीमारी है ? मैं अच्छी तरह हूं, चंगी हूं न ?"

तब तो गौरम्माजी को पुत्री की बात यथार्थ मालूम हुई।

सीता की किसी बात एवं आचरण से यह मालूम ही नहीं होता था कि उसको अपने विवाह की याद है। यह बात मानो उसके मनोप्रपंच से पूरी तौर से मिट गई थी।

बोलते-बोलते एक बार कमरे में रही अंधेरी, तीक्ष्ण बू, शराब की बू, मानो प्रथम बार पा रही है, अपनी माता से कहा—"क्यों मां, सभी खिड़कियां क्यों बंद की गई हैं ? कितनी बदबू !" फिर वह खुद उठी और खिड़की को पूरा खोलकर आई। यकायक कमरे में रोशनी और हवा झट आई और दिया बुझ गया। मगर बत्ती के सिरे से उठी राख के रंग की धूम्र रेखा टेढ़ी-मेढ़ी होती हवा में उठ बहने लगी। जली बत्ती की बू सारे कमरे में फैल गई।

बेटी में इस प्रकार का परिवर्तन देख माता-पिता का कलेजा आनंद से फूल गया। हूवय्य का आगमन एक चमत्कार-सा था, उसकी मंत्र शक्ति में विश्वास करने वाले गौड़जी को थोड़ा भय भी हुआ।

रोशनी को कमरे में देखकर, अंधेरे से डरके बाहर भागकर गई मक्खियां भी एक-एक करके अंदर आने लगीं। उनमें से एक मक्खी सीता के लिए बनाई गई कांजी में—जो पीने के बाद थोड़ी बच गई थी—गुंई-गुंई करती आकर गिर पड़ी और छटपटाने लगी। हूवय्य उसको देख रहा था। सीता ने उसे देखा, उस मक्खी को अपनी उंगली से निकालकर ज़मीन पर डाल दिया। तब वह मक्खी अपने नन्हे-नन्हे पंख फट-फटाकर धीरे से चलने लगी। वह जैसे-जैसे जाती थी वैसे-वैसे उसके पीछे एक कीड़ा अनुसरण कर रहा था। मक्खी अपने अगले पैरों से मुंह को पोंछकर, पंख एक-दो बार फड़फड़ाकर एक मिनट में उड़ गई। कह देने से आश्चर्य होगा। श्यामय्य गौड़जी आदि सभी वह दृश्य देख रहे थे। कुतूहल से ! शायद सीता के हर काम से उसके मन की स्थिति की कल्पना कर रहे थे ! ऐसा दीखता है।

मुत्तल्ली से लौटते समय हूवय्य ने चिन्नय्य को अकेले में बुलाकर सीता की देखभाल करने के संबंध में कुछ बातें कहीं। परंतु उसका कुछ भी नतीजा नहीं हुआ। सब बेकार ! क्योंकि उसके जाने के बाद सीता को हमेशा की विकारावस्था में देखकर श्यामय्य गौड़जी ने कहा "देखा न, उसके माया-मंत्र के सिवा कुछ भी नहीं है। उसके आगे कैसे बोली वह ! वह गया, फिर वही शुरू हुआ ! ज्योतिपिजी ने जो कहा था वह झूठ है ?"

वहां जो थे उनमें से एक ने मंडप के खंभे पर रंगीन कपड़ा लपेटते हुए गौड़जी की वात का समर्थन करते हुए कहा—"हमारे ज्योतिषीजी की वात कभी झूठी नहीं होती ! वह पीढ़े के आगे वैठ, चावल हाथ में लेकर कह दें तो वस ! व्रह्म भी उसको टाल नहीं सकता !"

५६

कौली का बच्चा जनना

मुत्तल्ली से निकलकर हूवय्य सीतेमने गया। दोपहर का भोजन वहीं किया। मुत्तल्ली में जो बातें हुई सब सिंगप्प गौड़जी को सुनाया। उनके एक किसान की पंचायत की। फिर केलकानूर आया। तब शाम हो चुकी थी। सिंगप्प गौड़जी अपने एक किसान से कर्ज की रकम वसूल करने के लिए उसका माल जब्त करना चाहते थे। वह किसान जानता था कि सिंगप्प गौड़जी हूवय्य गौड़जी की ही बात मानते हैं। अत: वह कुछ दिन पहले केलकानूर जाकर हूवय्य से प्रार्थना करके आया था। इसीलिए हूवय्य सीतेमने गया था, 'पंचायत' करके सिंगप्प गौड़जी को समझाकर शांत किया था और किसान को उपदेश करके गरीब की मदद की थी। इस सत्कार्य की याद उसे कोई धर्मानंद दे रही थी।

हूवय्य अपने कमरे में गया, कमीज खोलकर रखी, रिवाज के अनुसार आइने के सामने खड़े हो क्रॉप को संवार लिया; फिर बैठक में गया, मेज के पास की कुर्सी को खींचकर कुछ दूर बैठ गया। चारों ओर दीवार पर टंगी महापुरुषों की तस्वीरें, अलमारी में एवं मेज पर रखी पुस्तकें देखते ही उसके हृदय में शांति का संचार हुआ। मुंह पर एक मुसकुराहट की लहर दौड़कर गायब हो गई। उसकी मां कॉफी लेकर आईं और उसके पास में खड़ी रहीं। उससे बोलने लगीं। आज उसको मां नागम्माजी और दिनों की अपेक्षा अधिक पूज्य लगीं। प्रिय दीखीं। उसको यह सोचकर उसका मन प्रसन्न हुआ कि उस माता के सान्निध्य में जीवन दिव्य होकर, सरल, सुगम हो चलने में कोई संदेह नहीं है।

"क्यों खड़ी हो मां। बैठो कुर्सी पर।"

पुत्र की बात सुनकर "अच्छा छोड़ो! मैं कुर्सी पर बैठकर दरबार करूं तब जब मुंह उस तरफ को हो जायगा! तुम पिओ। ठंडी हो रही है।" कहकर कॉफी के ऊपर तैरते हुए एक तिनके को उंगली से निकालकर फेंक दिया।

बैरे ने बाहर आंगन से दो-तीन बार "सरकार! सरकार!" कहकर पुकारा।

नागम्माजी खुद बाहर गईं और पूछा ताकि कॉफी पीते बैठे पुत्र को कॉफी पीना छोड़कर न जाना पड़े और उसे तकलीफ़ न हो। बैरा एक ही सांस में बोला।

मगर, नागम्माजी की समझ में कुछ भी नहीं आया। इसलिए "ठहरो, वही आता है" कहकर वह भीतर चली गई।

कॉफी पीकर हूवय्य बाहर आया। वैरे ने कहा—"इस बाग का काम मैं नहीं देख सकता सरकार! कितना देखता रहूं? मेंड उखड़वाकर जानवरों को घुसा देते हैं!"

"जाओ, जाओ रे! मेंड उखड़वाकर जानवरों को घुसा देते हैं! तुम मेंड अच्छी तरह नहीं बना सकते, ऐसा कहो!…"

"तब मैं…मैं…मैं क्या कहूं? आप ही आकर देखें।…परसों बड़े गौड़जी ने ही खुद मेंड उखड़वाया, जानवर अंदर घुसाये, कहते हैं।"

"तुम्हारा दिमाग ठिकाने है कि नहीं? ऐरे-गैरों की बात सुनकर, दूसरों की चुगली नहीं खानी चाहिए।…कहो, तुमने देखा क्या?"

"मैंने…नहीं…दे…खा।"

"तब चुप रहो!"

एकाएक वैरे ने एक दूसरी बात उठाई। वह शायद आया था उसी के लिए, दीखता है।

"सरकार! मैं अपना घर ही यहां लाता हूं।"

"ना कह दिया था न मैंने तुमसे? तुम यहां आओगे तो बाग की देख-भाल कौन करेगा? तुम्हारा दादा?"

दोनों बातें करते खड़े थे कि पुट्टण्ण और कुत्ते आये। उसके बाएं कंधे पर झोली में कुछ देखकर हूवय्य ने पूछा—"कहां गया था रे?"

"बंदूक लेकर गया था।"

"सो तो दीख रहा है! पूछा, किधर गया था?"

"अंधेरे नाले की तरफ।"

"कुछ दीख पड़ा?"

"दीखने के लिए तो दीखा।"

"मारने के लिए शायद नहीं मिले क्या?"

"ऊंहुं…"

"फिर तुम्हारे कंबल में क्या है?"

"कंबल में क्या है?"

"यहां आ जाओ, देखूं।"

पुट्टण्ण हंसता हुआ, जल्दी-जल्दी भीतर चला गया।

वैरा दांत निकालकर कुछ हंसके बोला, "हेग्गडिति अम्मा के लिए कुछ लाये हैं, दीखता है!"

हूवय्य समझ गया और उसका चेहरा फीका पड़ गया। वह अपने कमरे में

चला गया।

अंधेरा हो जाने के वाद पुट्टण्ण वहां आया लालटेन जलाने।

हूवय्य ने शुरू किया, "पुट्टण्ण ! मैं तुमसे कितनी वार कहूं ?"

"मैंने क्या किया है ?"

"तुमको शरम नहीं आती ? सोम जैसे पियक्कड़ ने पीना छोड़ दिया है। तुम···"

"मैंने पिया हो तो···पिया समझिये···ज्यादा क्या कहूं ? शपथ खाकर कहता हूं—चाहते हैं तो।"

"तुम कंवल में लाये, वह क्या था ?"

"मेरे लिए नहीं, नागम्माजी ने कहा था, तो एक वोतल···"

"ताड़ी ?···शराव ?···व्रांडी ?···"

"ताड़ी !"

"तुमको जो अच्छा नहीं है वह मां को कैसे अच्छा लगे ? कहो तो ?"

"उन्होंने कई वार कहा था।"

हूवय्य फिर वोला नहीं। पुट्टण्ण दिया जलाकर गया। उसके वाद वह अपनी मां की कमजोरी पर सोचने लगा। नागम्माजी हर वात में आदर्श माता की तरह थीं। परंतु दो वातों में उनको सुधारना मुश्किल था। एक तो भूतादि के वारे में अंधविश्वास की वात में, दूसरी—ताड़ी पीने की वावत में ! वह रोज वार-वार नहीं पीती थीं। वहुत प्रयत्न करके, पुत्र को संतोष हो, इस तरह रहने की कोशिश करती हुई पंद्रह दिनों में एक वार या महीने में एक वार पीती थीं। इतना संयम तो उन्होंने कर लिया था। लेकिन छुटपन से पड़ी आदत पूरी तभी छूटेगी जव उस ओर चले जाते हैं जिस ओर से कभी नहीं लौटते, वह खुद यही कहती थीं। हूवय्य ने सोचते-सोचते अपने वारे में सोचा कि खुद मैं नास छोड़ने की कोशिश जव कर रहा था तव कितना कष्ट हुआ, कितनी वार हारा। यह याद आने पर, उसने अपनी मां की थोड़ी हार को भी जीत समझकर, सहानुभूति से खुश हुआ। उस दिन सीता को देख आने पर हर वात में खुशी दीखी थी। फिर सीता की याद आने पर भी उसको ऐसा ही लगा। सीता को वुरी हालत में देख दुखी होने के वजाय अपने को संतुष्ट-सुखी पाकर उसे आश्चर्य हुआ। सीता के अंतर्मन का व्यूह हूवय्य के अंतर्मन के सिवा वाहरी मन को कैसे मालूम हो ? इसीलिए उसके अंतर्मन का संतोष वाहरी मन को आश्चर्यकारक एवं अकारण दीख पड़ा।

भोजन के समय हूवय्य और पुट्टण्ण से कुछ दूर पर वैठा सोम अपने उस दिन के काम और साहसों के वारे में जोर से वड़वड़ा रहा था। वीच-वीच में सभी हंस पड़ते। सोम की वातों के विषय की अपेक्षा उसका विधान ही अधिक हास्य-कर था। उसके साहसों में कौली नामक गाय ने पहाड़ पर वछड़ा जना और उन

मां-बेटे को सोम गोठ में लाया था।

कौली के सींग नहीं थे। मगर वह शूर थी। वह खूब मोटी-ताजी बन गई थी। देखने में भी सुंदर थी। सफेद एवं लाल रंग से मिश्रित उसका शरीर जो देखता उसे लगता कि उसे एक बार वह मिल जाए। उसकी पूंछ फूलों के गुच्छे जैसी थी। यानी पूंछ का अंतिम भाग सफेद चंवर जैसा था मानो उस पर सफेद चूना पोत दिया गया हो। सौंदर्य के योग्य उसके थन भी थे। इसलिए उपयोग की दृष्टि से भी अन्य गायों की अपेक्षा वह अधिक दूध देती थी। कानूरु में रहते समय भी वह नागम्माजी की प्रिय गाय थी। इसका एक और कारण यह था कि वह नागम्माजी को उनके मायके से प्राप्त भेंट की वस्तुओं में एक थी। वह गाय बहुत दिनों के बाद गाभिन हुई थी. इसलिए उसके जनने की राह हूवय्य आदि कुतूहल से देख रहे थे। सोम के मुंह से यह समाचार सुनकर उसको आनंद हुआ। इसलिए सोम को चिढ़ा-चिढ़ाकर बातें करने, हंसने लगे थे। जब सोम बछड़े को उठाकर लाने पास गया तो कौली ने उसका पीछा किया। तब सोम को पेड़ पर चढ़कर बैठना पड़ा। जब कौली अपने बछड़े के पास रंभाती गई तब सोम पेड़ से उतर ही रहा था, इतने में एक बूढ़ी शाखा के टूटकर गिरने की आवाज आने से कौली ही फिर आई समझ सोम फिर पेड़ पर चढ़ बैठा। यह सब सुनकर सभी खूब हंस रहे थे।

भोजन के बाद हूवय्य ने कौली और उसके बछड़े को देखने की इच्छा प्रकट की तो सोम ने अत्यंत संतोष से, मानो उसी ने बच्चे को जना हो, गोठ जाने के लिए लालटेन जलाई। उसके पीछे-पीछे हूवय्य और पुट्टण्ण भी गये।

गोबर के गढ़े के किनारे पर से जाते समय हूवय्य को कुछ महीने पूर्व घटी सोम के साहस की घटना याद हो आई तो उसने विनोद के लिए सोम से पूछा "यहीं न तुम फंस गये थे?"

"हां हुजूर! छिनाल के बच्चों ने मुझे मार ही डाला था!" कहते सोम आगे बढ़ा।

'बलींद्र' बकरा अपनी जगह सो रहा था। दीप तथा मनुष्यों को देखकर खड़ा हुआ; पागुर करना छोड़कर, टकटकी लगा के देखने लगा। लेकिन जब लोग पास पहुंचे तब वह फिर पागुर के द्वारा और समाधान की भंगी के द्वारा जता दिया कि "तुम लोगों से परिचय मुझे है।"

पुट्टण्ण "ये पिछलगुए क्यों जहां भी जाएं आते हैं। हचा, जाते हो कि नहीं? तुम्हारे···।" कहकर पत्थर लेने झुका तो कुत्ते भाग गये।

तीनों गोठ के भीतर गये। तुरंत गोबर, गोमूत्र, घास, ढोरों के शरीर की बू, उनकी सांस की बू—इन सबसे भरी कुछ गरम हवा नाक पर से बह गई। पैरों को भी गोबर के लगने का अनुभव हुआ। सोये हुए कुछ बड़े जानवर उठ खड़े हुए

और अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से देखने लगे। वे घबराकर जोर से सांस लेने लगे थे। उनकी आवाज सुनाई पड़ी। उनके खुरों की आवाज़, सींगों के खंभे से टकराने की आवाज सुनकर हूवय्य के मन में किसानों की दुनिया की सुखद स्मृति उभर गई। उन ढोरों की आंखें, उनके कान, उनके सींग, दीवार पर चलती बड़ी छायाएं कैसे दीख रही हैं! एक ओर बछड़े के गले की घंटी की आवाज हो रही थी। बड़े जानवरों के गले के घंटे का नाद भी हो रहा था।

"सोम, आज किसने गोबर निकाला है?"

"मालूम होता है सेसी ने…।"

"अच्छी तरह निकालते हो कि नहीं?"

"मैं जब निकालता हूं तो ऐसा लगता है किसी ने चाटा हो।"

"पुट्टण्ण, तुमको जरा गोठ पर अच्छी तरह निगाह रखनी चाहिये।" कहते हूवय्य ने कौली के पास खड़े होकर कहा—"गाय हो तो ऐसी, हमारी हस्ती!"

कौली अपने बछड़े को सूंघती, उसके मुलायम-नव कोमल चमड़े को चाटती, आगंतुकों की ओर अपनी बड़ी-बड़ी आंखें खोल देखने लगी। सोम ने उसकी दृष्टि से ही डरकर पीछे हटकर सबको चेतावनी देते हुए कहा—"पास मत जाइये हुजूर!"

"इतना डरने वाले तुमने उस दिन चोरी करने का धैर्य कैसे किया रे?" कहते हूवय्य आगे बढ़ा। मगर कौली अपना बेसींग का सिर हिलाने लगा।

उसे देखकर हूवय्य ने "लगता है, तुमने उसे पूरा डरा दिया है! तुम्हारे कारण वह ऐसा कर रही है!" कहकर फिर सोम की ओर देखा।

सोम "हमने क्या किया है। उसका स्वभाव ही वैसा है जन्म से" कहकर "अम्मा के सिवा किसी को…।" कह ही रहा था कि कौली ने जोर से छींका तो सोम पीछे कूदकर खड़ा हो गया। उसे देख हूवय्य और पुट्टण्ण हंसी को रोक न सके। इतने जोर से वे हंसे कि कौली को भी आश्चर्य हो गया।

लालटेन के प्रकाश में कौली की तरह ही सुंदर-प्यारे बछड़े को दूर से देखकर तीनों लौट गये। दीप दूर-दूर होते हुए जाकर ओझल होने तक उसी को देखती रही कौली, अंधेरा हो जाने पर संतुष्ट हो प्यार से अपने बछड़े को चाटने लगी।

५७

नागम्माजी की हताशा : चंद्रय्य गौड़जी की असूया

दीर्घ काल से जिसकी निरीक्षा-प्रतीक्षा कर रहे थे वह चैत का महीना आ गया। मुत्तल्ली और कानूरु के विवाह के शुभ दिन निकट आये। चिन्नय्य का विवाह रामय्य के विवाह के दो दिन पहले ही संपन्न करने का प्रबंध किया गया था।

वर की वरात मुत्तल्ली से निकलकर कानूरु जाने दिन-दिन के करीब चार वजे के समय केलकानूर के पास से कानूरु जाने वाले गाड़ी के रास्ते में घने, ऊंचे दोनों ओर बढ़कर खड़े हुए होंगे (तमाल) वृक्षों की हरी राशि में से झपटकर प्रवहित काली छाया में, आम के पत्तों, कटहल के पत्तों और केले के पेड़ों से अलंकृत छोटा-सा (छप्पर) शामियाना वना था। जमीन पर कुछ नारियल के रेशे से वनी चटाई तथा अन्य प्रकार की चटाइयां विछी थीं। एक वड़े हंडे में नींवू का शरवत वनाकर सोम और पुट्टण्ण वातें करते खड़े थे। दोनों ने अपनी-अपनी कलाभिरुचि के अनुसार वढ़िया से वढ़िया पोशाक पहनी थी।

उनसे कुछ दूर पर नागम्माजी से वोलते हूवय्य अपने रोज की सरल-सादी पोशाक पहने वैठा था। नागम्माजी ने पहाड़ी प्रदेश के रिवाज के अनुसार एक नई ओढ़नी ओढ़ी थी। इसके सिवा उनकी पोशाक में कोई विशेषता नहीं थी। उनके पास दूल्हे को पद्धति के अनुसार प्रेम से देने के लिए तश्तरी में घी-दूध का कटोरा जगमगा रहा था। उसमें रखे फूल, फल, दूध, घी की खुशबू पर लट्टू होकर चार-पांच मधुमक्खियां झपटने के लिए मंडराने लगी थीं। चारों ओर घने वढ़े होंगे, कटहल, वरगद पीपल आदि पर, तथा केवड़ों के झुरमुटों में भी चिड़ियां चहचहा रही थीं।

वरात के दो-तीन फर्लांग रहने पर अपने घर में कुत्तों का भूंकना सुनकर हूवय्य ने पूछा, "ए सोमा, कुत्तों को वांध दिया है कि नहीं?"

"सभी को वांध दिया है। मगर ठूंठी पूंछवाला पिल्ला तो हाथ लगा ही नहीं है। ढूंढ़-ढूंढ़कर थक गया।"

हूवय्य सोम के जवाव की ओर तनिक भी गौर किये विना अपनी माता के साथ वोलने लगा था। उसका पूछा गया सवाल जाग्रत अवस्था का था या

स्वप्नावस्था का, कह नहीं सकते। माता और पुत्र दोनों गहरी बात-चीत में डूबे थे। उनकी बात-चीत का विषय कानूर और मुत्तल्ली के बारे में था।

विवाह के लिए आमंत्रण पत्रिका भेजकर, निकट के नातेदारों को घरवाले ही खुद जाकर, हाथ जोड़कर, बुलाना रिवाज था। मुत्तल्ली से तो वह आमंत्रण आया था। पर कानूर से विवाह आमंत्रण पत्रिका के सिवा, खुद बुलाने के लिए कोई नहीं आया था। इससे नागम्माजी को बड़ा असमाधान एवं दुःख था। अपनी खुद की बेटी की तरह रही पुट्टम्मा के विवाह के लिए 'बुलावा' नहीं आया, इसलिए वह रोने लगी।

हूवय्य ने मां को तसल्ली देने के लिए "तुम लोगों के ये पुराने रस्म-रिवाज तो तुम्हें प्राणों से प्रिय हैं, विवाह आमंत्रण पत्रिका भेजने पर 'बुलावा' काहे के लिए?" कहा।

"सफेद कागज पर काली लकीर घिसकर देने से 'बुलावा' आया जैसे हुआ? तुम्हारे जैसे पढ़े-लिखे को ऐसा एक आमंत्रण बस हो सकता है! परंतु मेरे जैसे बेपढ़ी-लिखी के लिए?"

"बुलावा आता तो भी तुम जा पातीं?"

"नहीं! तो भी!"

"हां, बरात आई जैसा दीखता है।" कहता हुआ सोम अकड़कर खड़ा हो गया और कान देकर सुनने लगा।

पुट्टण्ण बड़ी टोकरी में रखे गिलास तैयार रखने लगा।

दूर के जंगल के बीच में शहनाई आदि वाद्यों की आवाज के साथ-साथ 'गर्नल', पटाखे आदि की आवाज भी सुनाई दी। नागम्मा और हूवय्य दोनों खड़े होकर बरात की आवाज जिस ओर से आ रही थी उस ओर घूमकर देखने लगे। पर्वतीय प्रदेश के हरे पहाड़ धूप में चमक रहे थे।

"बुलावा आने पर भी तुम जा पातीं?" हूवय्य के सवाल में कई घटनाएं समाई हुई थीं। हूवय्य कानूर का घर छोड़कर आया था, तो भी उसके हिस्से का गृह भाग उसी के वश में था न! हूवय्य ने कहला भेजा था कि विवाह के समय मेरे हिस्से के भाग का उपयोग कर सकते हैं; अगर आप चाहते हैं तो ताला लगे कमरों को दे दूंगा।

चंद्रय्य गौड़जी ने न जाने किस तर्क से विचार किया : हूवय्य ने मेरा अपमान करने के लिए ही इस तरह कहला भेजा है। उन्होंने कहला भेजा, "उससे कहो कि उसकी जगह का एक इंच जमीन भी हमें नहीं चाहिये। मैं मंडप बनवा दूंगा : परमात्मा के दिये कुछ नौकर अब भी हैं! सब जाकर गरीब हो जाने पर, जब जरूरत हो मांगूंगा तब दे!"

तब तक नागम्माजी अपने पुत्र से कह रही थीं कि पुट्टम्मा की मनःतृप्ति के लिए

कम-से कम उसके विवाह में जाना पड़ता है। सचमुच उनका प्रेम जितना वासु पर था उतना ही पुट्टम्मा पर भी था। वह ममता उनको विवाह की ओर खींच रही थी। लेकिन चंद्रय्य गौड़जी का कटु उत्तर आने के बाद नागम्माजी ने विवाह में न जाने का निर्णय किया अपना मन बदलकर। लेकिन एक सप्ताह पूर्व चंद्रय्य गौड़जी, रामय्य, नौकरों और घरवालों के लिए, दुलहिन के लिए और विवाह के लिए आवश्यक कपड़े आदि सामान लाने के लिए नयी गाड़ी को सजाकर, जुतवाकर तीर्थहल्ली बाजार गये थे, तब मौका पाकर उसी दिन शाम को पुट्टम्मा वासु को साथ लेकर, सेरेगारजी आदि को मालूम कराये बिना केलकानूरु आई। हूवय्य, पुट्टण्ण, सोम तीनों शहद की खोज में जंगल गये थे, इसीलिए घर में नागम्मा अकेली थीं। बैरे की पत्नी सेसी बाहर गोठ में गोवर निकालने में लगी थी। पुट्टम्मा और वासु दोनों ही को आये देखकर आश्चर्य से उन्होंने कहा, "क्यों अम्माजी, भैयाजी अचानक बहुत भा गये ?" इतना कहकर वे हंसे।

पुट्टम्मा और वासु को देखकर नागम्माजी को इतनी खुशी हुई कि वह तुतलाने लगीं। वह जल्दी-जल्दी रोटी, अंडा, तरकारी बनाने लगीं। पुट्टम्मा ने गिड़गिड़ाकर कहा "ना, बड़ी मां !! देर होती है ! पिताजी को मालूम हो जाय तो हमारी खैर नहीं !" पर नागम्माजी ने उसकी एक न सुनी। फिर पुट्टम्मा ने भी रोटी बनाने में उनकी मदद करने लगी यद्यपि बड़ी मां ने मना किया। वासु भी यकायक जानकार की तरह गंभीर हो, उन दोनों की सहायता करने लगा।

पुट्टम्मा ने बड़ी मां को अपने विवाह में आने का निमंत्रण दिया। नागम्माजी ने स्त्रीस्वभावानुसार गप मारती हुई अपने और चंद्रय्य गौड़जी के बीच में हुई सारी बातें सुनाकर कहा—"मैं घर नहीं आ सकती ! तेरी बरात पति के घर जाते समय देखकर संतोष कर लूंगी। बरात का आने-जाने का रास्ता हमारे खेत के कोने में का रास्ता ही है न ?" तब उनकी आंखों में जो आंसू आये थे उनको पोंछ लिए।

अभी अंधेरा नहीं हुआ था। नागम्माजी ने वासु की जेब में खाने की चीजें भर दीं। उसको और पुट्टम्मा को भेजने आंगन में आकर खड़ी थीं। पुट्टम्मा ने यकायक बड़ी मां का आंचल खींचकर कहा—"बड़ी मां, देखो; वहां सेरेगारजी आ रहे हैं !···ऐ वासू, अंदर आ जाओ !" कहकर, उसे भी खींचकर अंदर चली गई।

सेरेगार रंगप्प सेट्टजी रामय्य की आज्ञा के अनुसार, हूवय्य के यहां छोड़े गये चित्र और पुस्तकें ले जाने के लिये चाकरों के साथ आये थे। मगर नागम्माजी ने "हूवय्य घर में नहीं है, कल आइये" कहकर उनको वापस भेजा।

सेरेगारजी अपने चाकरों के साथ लौट गये। फिर सेसी के साथ पुट्टम्मा और वासु अंधेरे में चुपचाप कानूर चले गये।

इन सारी बातों को सुनाकर नागम्माजी ने पुत्र से कहा—"केलकानूर के खेत के कोने में गाड़ी के रास्ते के किनारे पर बरात के सत्कार के लिए मण्डप बनवाओ।" "मगर बाहरवालों को वह मंडप बरातियों के सत्कार के लिए बनवाया गया है, दीखता था, मगर वास्तव में यह बात नहीं थी। यथार्थ बात यह थी: कानूर से पति के साथ पालकी में मुत्तल्ली जाते समय दुलहिन पुट्टम्मा को आशीर्वाद देकर संतोष पाना चाहती थीं नागम्माजी। उसके खातिर बनवाया गया था।

देखते-देखते बरात की आवाज़ नजदीक आई। पालकी ढोकर आने वाले भोइयों की आवाज सुनाई पड़ी। आखिर विवाह की बरात भी दीख पड़ी।

बरात विश्राम के लिए मंडप में ठहर गई। वाद्य के शब्द बंद हो गये। लोगों के बोलने की आवाज़ सुनाई दी। "नमस्कार, आ गये?" क्षेम-समाचार आदि की परस्पर बातें। ललनाओं के आभूषणों की ध्वनि, उसकी समश्रुति की भांति उनकी कंठध्वनि, उनकी पहनी हुई कई प्रकार की साड़ियां, चोलियां आदि नये कपड़ों से प्रस्फुटित बू, ठेठ काले रंग से लेकर हल्के लाल रंग के उनके विविध आकार के चेहरे सोम की आंखों को नाटक के पात्रों की तरह लगे। वह किसी को नहीं देख रहा था। केवल कुल समूह को देख रहा था। उसको ऐसा लग रहा था कि बरात के सभी उसे ही देखकर आपस में बातचीत कर रहे हैं। क्योंकि उसने कभी नहीं पहनी पोशाक अधिक करीने से पहन ली थी। कुछ लोगों ने उससे 'सेट्टजी' कहकर बातें कीं तो सोम फूल गया मानो अपना जीवन सार्थक हो गया समझकर।

जब सभी छांव में बैठ गये तब पानीय आदि का वितरण हुआ। हूवय्य चिन्नय्य के साथ तथा श्यामय्य गौड़जी के साथ बोला। परंतु न उसने, न उन्होंने सीता के बारे में बातें कीं। नागम्माजी भी गौरम्माजी के साथ घरेलू कामों के बारे में ही बोल रही थीं। किसी ने विवाह के बारे में कुछ नहीं कहा मानो पहले ही उन्होंने बातचीत कर ली हो। केलकानूरु और कानूरु के बीच के संबंध के बारे में सभी जानते थे। इसलिए किसी ने भूलकर भी घाव पर नमक नहीं छिड़का। सब इस प्रयत्न में थे कि परस्पर आंखों का मिलन न होने पावे। चिन्नय्य तो हूवय्य के मुख की ओर देखकर बोल रहा था, वह उसके माथे पर उभरी नीली नस देखता रहा न कि उसकी आंखों को। उसके दिल में डर था, कहीं हूवय्य ने सीता के बारे में पूछा तो क्या उत्तर दें। क्योंकि सीता की हालत उतनी अच्छी नहीं थी जिसके बारे में चिन्नय्य हूवय्य की आंखें देखकर बता सके।

श्यामय्य गौड़जी जितना हो सके उतनी जल्दी वह जगह छोड़ने के इरादे से शरबत आदि जल्दी-जल्दी वितरण करने के लिए ताकीद कर रहे थे।

थोड़े समय के बाद फिर पटाखे फूटे। बाजे बजे। 'भोई' पालकी उठाकर अपनी घोषणा करते आगे बढ़े। सभी स्त्री-पुरुष आगे बढ़े। बरात संभ्रम से

कानूर के लिए रवाना हुई। नागम्माजी, पुट्टण्ण, सोम आदि देख रहे थे। दृश्य ओझल हो गया। घोष मात्र सुनाई पड़ रहा था। हूवय्य तो उधर देख भी नहीं रहा था। वह वाद्य-घोष भी सुन नहीं रहा था। उसके मन की आंखों की बूंद में सीता का दुःखपूर्ण केवल एक चित्र विकंपित हो रहा था।

नागम्माजी ने जानबूझकर जोर से पुट्टण्ण से कहा ताकि हूवय्य सुने "अत्तिगद्दे हिरियण्ण गौड़जी की बेटी रंगम्म को देखा क्या रे? लड़की अच्छी है! कहते हैं कि कुछ तुतलाती है तो क्या? गोल चेहरा, गोरी, आंख, कान, नाक सब दुरुस्त है न?"

इशारा जानने में अचतुर-गंवार पुट्टण्ण एक बार नागम्माजी की ओर, एक बार सोम की ओर फिर-फिरकर काम करते-करते बोलने लगा, "कौन? नाक चपटी है, वही क्या?—ए सोम, उस कांच के गिलास को इधर दे दो—अम्माजी, कल शरबत और ज्यादा बनानी होगी! आज बनाई, आज के लिए खतम हो गई!—वह चटाई वैसी ही रहे; पहले इस दरी को उठाओ! तुम कन्नड़ जिले का बुद्धू! तुमको सुपारी के पेड़ के छिलके की टोपी ही अच्छी! हासन की टोपी तुमको क्यों रे?…"

दूसरे दिन भी दुपहर के दो बजे से नागम्माजी आदि पिछले दिन की अपेक्षा ज्यादा सामान बनवाकर कानूर से मुत्तल्ली लौटने वाली बरात की प्रतीक्षा करते मंडप में खड़े थे। नागम्माजी में तो दुलहिन बनकर, पति के साथ पालकी में बैठकर ससुराल जाने वाली पुट्टम्मा को देखने का आनंद था, उद्वेग था और कातरता थी, यह सब उनकी बातों से, चाल-चलन से व्यक्त होता था। एक प्रकार की लघुता दीखती थी।

करीब तीन बजे शहनाई, तुरही आदि बाजों की आवाज सुन पड़ी तो वापसी बरात घर से निकली, समझकर नागम्माजी खड़ी होकर उसी तरफ़ देखने लगीं। उनकी भीतरी आंखों में सर्वालंकारभूषिता होकर पति के आगे पालकी में सिर झुकाकर, धारण की हुई सफेद फूलों की माला को प्रदर्शित करती, लज्जा से लाली छाये चेहरे वाली हो, आंसू बहाती बैठी पुट्टम्मा का चित्र, लगता है रंजित हो रहा था।

ऊपर से तमाल वृक्ष का एक सूखा पत्ता मर्मर नाद से बहती हवा में उड़ते, नाचते नीचे उतर उनके सफेद बालों के गुच्छे में फंस गया।

बरात की बहुत देर तक प्रतीक्षा की। उमड़कर आती हुई बरात की ध्वनि उतरकर स्वररहित हो गई। नागम्माजी का उद्वेग बढ़ा, चार-पांच फर्लांग दूरी पर से निकली बरात एक घंटा बीतने पर भी नहीं आई। कारण क्या होगा? सब लोगों को आश्चर्य हुआ सोचकर। एकैक के मन में एकैक तरह का

भय उत्पन्न हुआ। लेकिन किसी ने अपने मन में रहे अमंगल को व्यक्त नहीं किया किसी के आगे। नागम्मा यह सोचकर डर गईं, पुट्टम्मा के भीतर जक्किणी-यक्षिणी प्रवेश करके सता तो नहीं रही है? हूवय्य ने शंका की—पटाखे, आतिशबाजी के जलाने से चोट लगके अनहोनी हुई होगी। सोम ने तर्क किया कि भोजन में देर हुई होगी, मगर इस बारे में किसी ने कुछ नहीं कहा। पुट्टण्ण अनुमान कर-करके थक गया और "मैं जाकर देखकर ही जाऊंगा।" कहकर कानूर की तरफ जल्दी-जल्दी चला।

आधे घंटे के बाद दुख से थका-मांदा होकर धीरे-धीरे पुट्टण्ण आया। उसने सुनाया, "कहते हैं कि बरात भीतरी राह से चली गई!" नागम्माजी फूटफूटकर रोने लगीं।

चंद्रय्य गौड़जी ने सुना था कि मार्ग में हूवय्य ने मंडप बनवाया है, बरातियों की आवभगत की अच्छी तैयारी की है; और किसी अनिर्वचनीय ईर्ष्या से, हूवय्य और नागम्माजी की आशा भंग करके क्रूर आनंद पाने के लिए बरात से भीतरी रास्ते से जाने की बिनती की थी। उसे जानकर अनाथ पुट्टम्मा फूट-फूटकर, बिलख-बिलखकर रोई। मगर लोकरूढ़ि के अनुसार पति के घर जाते समय पुट्टम्मा रोती होगी समझकर किसी ने उसकी ओर गौर नहीं किया।

नागम्माजी रोती हुई अपने घर लौटीं। हूवय्य हंडे में भरी शरबत को वहीं गिरवाकर हंडों आदि पात्रों को ढुलवाकर घर ले गया। कई दिनों तक उस रास्ते से जाने वाले लोग मंडप के स्थान पर चींटियों, चींटों, मक्खियों को, चाहे एक क्षण के लिए क्यों न हो, खड़े होकर आश्चर्य से देखे बिना आगे नहीं बढ़ते थे।

५८

रामय्य का विवाह हुआ

चिन्नय्य के विवाह के बाद तीसरे दिन शाम को कानूर से वर की बरात मुत्तल्ली आई। जरी का साफा बांधकर, इधर दुबले होते गये फीके चेहरे पर मोटी बड़ी-बड़ी मूंछों का भार उठाये, काली लकीर वाला नया कोट, जरी के किनारे का उत्तरीय, रंगीन किनारे की धोती और फूल काढ़े 'हुंचदकट्टे' के जूतों से अलं; कृत हो, लंबे, धैर्य-धूर्तताभावों से अधिक क्रूर दिखाई पड़ते थे चंद्रय्य गौड़जी। कुछ नाटे, स्थूल, कुम्हड़े की तरह बढ़ी तोंद, चेहरे पर छोटी मूंछ एवं तिलकों से शोभित, मालिक के अनुरूप पोशाक से अलंकृत हो, मूर्खता से स्नेह बढ़ाने वाली सरलता एवं मुग्धता से किंचित् अवाक् हो, भगवान की भक्ति से विनम्र बने हुए से दिखाई देने वाले श्यामय्य गौड़जी ने हाथ जोड़कर, खड़े हो, वरपक्ष के लोगों को आदर-सत्कार से संतुष्ट करके घर के भीतर उनका स्वागत किया।

विवाह में सैकड़ों लोग आये थे। गर्नल, पटाखे, आतिशबाजी, तुरही, सींग, शहनाई, बाजे आदि की आवाज की अपेक्षा ज्यादा आदमियों का शोरगुल का नाद घर भर में भर गया था। वह उमड़ा पड़ता था। घर के आंगन में रचित विशाल मंडप के बीच में कन्यादान के स्थान पर, बैठक में, घर के कोने-कोने में लैंप, लटकने वाले लैंप, लालटेन आदि कई प्रकार के दीप जल रहे थे जिससे घर दीपावली के समान दीखता था। नाना रंग के कपड़े पहन मण्डप में बराती अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार बैठकर बात-चीत कर रहे थे। उनकी बताचीत का प्रधान विषय था दुलहिन में प्रविष्ट भूत, कह सकते हैं।

उस दिन कन्यादान का मुहूर्त रात को दस बजे था। इसलिए चंद्रय्य गौड़जी ने कड़ी आज्ञा दी कि उसके पहले भोजन समाप्त हो जाय। श्यामय्य गौड़जी घर के मालिक थे, तो भी चंद्रय्य गौड़जी से पूछे बिना कुछ भी काम नहीं करते थे। अतः उस दिन कानूर चंद्रय्य गौड़जी ही मालिक बन गये थे। श्यामय्य गौड़जी, गौरम्मा, चिन्नय्य के आग्रह के कारण सिगप्प गौड़जी विवाह समारोह में भाग लेने आये थे। तो भी किसी काम में अपनी आसक्ति दिखाये बिना, कुछ कहने के लिए आगे बढ़े बिना सामान्य रिश्तेदारों की भांति अज्ञात बैठे, नातेदारों से बातें

करने में लगे थे। सिंगप्प गौड़जी की बातों में बकरे की चोरी, चंद्रय्य गौड़जी के पत्नी परित्याग इत्यादि की बातें ही थीं, यह कहने की जरूरत नहीं है।

शहद की मक्खी के छत्ते को धुआं करने से मधुमक्खियां झंकार करते उड़ती हैं वैसे ही सभी यह घोषणा सुनते ही "सभी भोजन के लिए उठें।" भोजन शाला की ओर जल्दी-जल्दी बढ़े।

लेकिन कानूरु के चंद्रय्य गौड़जी, कानूरु के सिंगे गौड़जी, बैदूरु के बसवे गौड़जी, एट्टूरु के शेषे गौड़जी, अत्तिगद्दे के हिरियण्ण गौड़जी, नुग्गिमने के तम्मण्ण गौड़जी, संपगे के पुट्टण्ण गौड़जी इत्यादि बड़े-बड़े गौड़ों के लिए श्यामय्य गौड़जी ने अलग सत्कार का प्रबंध किया था। उनके लिए घड़ों ताड़ी, हंडों चावल की शराब, बोतलों में शराब तैयार थी। कई बकरियां भी खाने के लिए हत हुई थीं।

मुहूर्त के कटोरे के आगे बैठे, बार-बार वहां इकट्ठे हुए शूद्र समूह समझ न पावें, इस ढंग से संस्कृत मंत्र सराग पठन करते बैठे वेंकप्पय्य ज्योतिषीजी ने सुनाया कि कन्यादान का मुहूर्त पास आ गया है। खुद उन्होंने ही जातक देख-कर विवाह का मुहूर्त काढ़कर दिया था। इसलिए वे ही उदारमना होकर मंगल विवाह संपन्न करने के लिए विवाह कराने वाले जोइस बनकर पधारे थे। ज्योतिषी की आज्ञा के अनुसार वधूवर को विवाह वेदी पर लाने के लिए नियुक्त लोगों की चहलपहल देखकर सैकड़ों आंखें नींद को भगाकर मंडप की ओर देखने लगीं। सोये हुए लोगों को बगल में बैठे हुए लोगों ने जगाया।

उस शोरगुल और कुतूहल के बीच सोम सिंगप्प गौड़जी से गुप्त बातें कर रहा था जिसे कोई देख न सका। सोम उस दिन सवेरे हूवय्य से "कन्यादान देखने मुत्तल्ली जाता हूं" कहकर केलकानूर से सीधे सीतेमने जाकर वहां से सिंगप्प गौड़जी के साथ शाम को मुत्तल्ली आया था। अपने प्रिय मालिक के विरुद्ध तय हुए इस विवाह की पूर्वकथा अच्छी तरह जानने वाला सोम कन्यादान देखने गया यह अचरज की बात है। लेकिन सिंगप्प गौड़जी ने उसे विश्वास में लेकर जो व्यूह रचा था वह मालूम हो जाय तो सब अर्थपूर्वक हो जायगा, इसमें संदेह नहीं।

ऐसा करता हूं, वैसा करता हूं, उनको जूते से पिटवाता हूं, उनको गोली से जला देता हूं इत्यादि सिर्फ मुंहजोरी करने वाले सिंगप्प गौड़जी के यहां जाकर हूवय्य ने उदात्त भावों का उपदेश किया था, उनको अपनी सहायता करने के लिए मनाया था। यह बात पहले ही हो गई थी न? मगर सिंगप्प गौड़जी का हसद बहुत कोशिश करने पर भी पूरा नहीं बुझ पाया। सच है कि उन्होंने चंद्रय्य गौड़जी को गोली से जला देना आदि क्रूर काम करना छोड़ दिया था। परंतु विवाह के दिन, यह विवाह न होने देने का प्रयत्न गुप्त रूप से करने का उन्होंने निश्चय किया। इस प्रयत्न के लिए दिलेर सरल बुद्धि वाले सोम की मदद पूरी पा ली। अपने मालिक की भलाई होगी, इससे उनकी इच्छा पूर्ण होगी आदि उपदेश

सिगप्प गौड़जी ने किया तो वीरावेश से सिगप्प गौड़जी के साहस में मदद करने के लिए सोम स्वामिभक्ति से प्रेरित हो गया। उसे वार-वार सीतेमने जाते देखकर हूवय्य ने पूछा तो उसने सिगप्प गौड़जी की सिखाई झूठी बात निःसंकोच सुना दी—"सिगप्प गौड़जी अगले वर्ष कन्नड़ जिले से मजदूरों को लाने के लिए कह रहे हैं।" चिन्नय्य के विवाह के समय चंद्रय्य गौड़जी वरात को भीतरी मार्ग से ले गये थे, तब से सोम सिगप्प गौड़जी के साहस में उनसे भी ज्यादा आसक्त था। उसी के वारे में वह विवाह मंडप में सिगप्प गौड़जी से मंत्रालोचना कर रहा था।

कन्यादान का कार्य जोर से आगे वढ़ रहा था। तव सोम सिगप्प गौड़जी से वातें करके, घर के वाहर ऐसा फिसलकर-खिसककर गया कि उसे कोई देख न सका। सिगप्प गौड़जी भी अनजान की तरह लोगों के समूह में शामिल हो गये।

वर को वुला लाकर मंडप में खड़ा किया। रामय्य वासिंग (एक प्रकार का शिरोभूषण; जो विवाह के समय वर को पहनाया जाता है), मोतियों की माला आदि आभूषणों से सजकर संपूर्ण दुलहा वन गया था। उस समय हूवय्य वहां होता तो शायद रामय्य को पहनाना उसे मुश्किल होता।

रामय्य वहुत दुवला-पतला वन गया था। मुंह पर निर्वीर्यता, खिन्नता, थकावट लिखित-सी थीं। दोनों गाल सूख गये थे। आंख के नीचे की हड्डी उभर आई थी। सवसे आश्चर्य की वात थी—उसकी पोशाक! उसमें नवीनता विलकुल नहीं थी। ऐसा दीखता था मानो वह पिताजी की अभिरुचि का शरणागत हुआ है। उसके पहने जरी के साफे के नीचे क्रॉप के नये रोग पर चोटी का पुराना रोग सवार था। खादी कपड़े, गांधी टोपी, स्वदेशी धोती आदि कहीं हवा में उड़ गये थे। उनका नामोनिशान तक नहीं था। उसको देखकर, हूवय्य के सहवास से नया-नया स्वदेशी व्रत लेकर खादी कपड़े पहनने लगे सिगप्प गौड़जी को भी असह्य लगा! कुल मिलाकर रामय्य दया का पात्र वन गया था।

दुलहिन को कंधे पर उठाकर मंडप में लाये। पद्धति के अनुसार ही नहीं, वैसे लिवा लाना भी आवश्यक था। सीता को दुलहिन वनाया था। मगर सीता न दुलहिन थी, न दुलहिन-सी सीता थी। उसमें वाह्य प्रज्ञा नहीं थी। वहां रहने वाले कहते थे कि अभी-अभी उसमें भूत का संचार हुआ है। सिगप्प गौड़जी के अगल-वगल में रहने वाले उनकी तरफ चोरी-चोरी से देख रहे थे। क्योंकि वे समझते थे उनके अजीवित पुत्र का भूत ही तो सीता को धरा हुआ है!

अलंकृत शव को ढोकर लाने के समान सीता को अलंकृत करके ढोकर लाके एक आधार के सहारे रामय्य के वगल में खड़ा किया, नहीं पकड़कर खड़े रहे। सीता की उस स्थिति को देखते रामय्य के हृदय में यकायक भय का संचार हुआ। लेकिन वह भय तव उसको अचानक दिखाई देने पर भी वास्तव में वह अचानक नहीं था। वहुत दिनों से वह भय सिर उठाता था, उसने उसे दवा-दवाकर भीतर

ढकेला था। अवकाश पाते ही उसने फिर अपना फन उठाया था। वह कांपा, पसीना छूटा, आंखें मन्द पड़ीं। मस्तिष्क हिल गया। खड़े-खड़े धंसकर नीचे गिर पड़ूंगा लगने लगा। यकायक प्यास बढ़ी! बगल वालों से पानी मांगा। उन्होंने शरबत लाकर दी। लेकिन ससुर के घर का शरबत देह की प्यास बुझा सकता है, क्या वह आत्मा की प्यास बुझा सकता है? हाथ लगी सीता ने हूवय्य को पत्र लिखा था, सो याद आया। हूवय्य का ध्यानीय सौम्य चित्र, उसकी स्नेह महिमा आदि उसके चित्त में उभरे। मृत कृष्णप्प की याद हो आई तो डर लगा। विवाह एकाएक असहनीय दीखा। किसी क्रूर कर्म में मैं लगा हूं, ऐसा उसे भास होने लगा। मंत्र पठन करने वाले ज्योतिषीजी को लेकर जोर से बोलता हूं कहने वाले पिता, कन्यादान कर देने के लिए तैयार खड़े सास-ससुर, हवा को रोक चारों ओर खड़े हुए स्त्री-पुरुषों का समूह, वह मंडप, वह दीप, वह शोरगुल सभी हेय दीखकर रामय्य में महाद्वेष भाव उत्पन्न हुआ। उसको लगा कि मैं क्रूर आफतों के बीच फंसकर चूर-चूर हो रहा हूं, सांस के रुकने से मानो मर रहा हूं। डूबकर, सांस के रुक जाने के जैसे रामय्य को लग रहा था। तभी उसको हूवय्य की याद हवा की तरह बही। तब तक ऐसा न सोचते रामय्य ने, तब हूवय्य आया होगा सोचकर, चारों तरफ देखा। लोगों की भीड़! लोगों की भीड़! और लोगों की भीड़! हूवय्य कहां रहे वहां? हूवय्य के बदले घर के बाहर आठ-दस गज ऊपर उठी आग की ज्वाला दिखाई पड़ी।

'आग! आग! आग!" चिल्लाते हुए लोग घबराकर उस ओर झपटे।

बेटी का कन्यादान करने के लिए खड़े श्यामय्य गौड़जी (घर को बचा लेना कन्यादान से भी अधिक प्रथम कर्तव्य है न?) उस ओर भागने लगे जहां आग लगी थी। गड़बड़ी में अपनी धोती का छोर उनकी पत्नी गौरम्माजी के आंचल से बंधा था, यह कैसे याद आता? पास में लोग न होते तो गौरम्माजी जमीन पर गिर पड़तीं; उनको चोट लगती। किसी ने झट से आंचल को धोती से छुड़ा दिया। श्यामय्य गौड़जी नौकरों को, लोगों को बुलाते इस तरह दौड़े मानों उनकी तोंद घट गई हो। चंद्रय्य गौड़जी भी ज्योतिषीजी को विवाह को संपन्न करने के लिए कहकर क्षण-क्षण बढ़ती आग की ओर आदत के अनुसार रंगप्प सेट्टजी को बुलाते झपटे। रंगप्प सेट्टजी पहले ही वहां भाग गये थे।

घर से लगकर खलिहान में धूप में अच्छी तरह सूखी धान की घास के ढेर में आग लग गई और वह जलने लगा था। आग भयानक होकर, राक्षस बनकर, भीमाकार हो धधकती क्षण-क्षण प्रज्वलित हो रही थी। अंधेरे में उसकी देदीप्यमान ज्वालाएं आकाश को ही चाटकर मानो सुखाने का प्रयत्न कर रही थीं। कांति ने बहुत दूर के पेड़ पौधों को प्रकाशित करके छायादार बना दिया था। घास की छोटी गठरियां तथा उसके टुकड़े बहती हवा में उड़ रहे थे। लोगों की चिल्लाहट,

वुलाहट, भगदौड़, वोम, रोदन, जल्दवाजी, गड़गड़ी में वह दृश्य दिग्भ्रांतिकर वन गया था।

साहसी लोग हंडों में, पीपों में, पतीलों में, घडों में भरा हुआ पानी छोटे-वड़े घड़ों में भर के लाकर आग वुझाने लगे। कुछ लोग कुएं से पानी खींचकर खाली वरतनों में भरने लगे। फिर कुछ आदमी हरे पत्तों से भरी डालियों को काटकर, उनकी सहायता से आग को दूसरे स्थान तक न वढ़ने देने के प्रयत्न में लगे रहे। कुछ ने केले के पेड़ों को काटकर लाके आग पर फेंका तो भी अग्नि भैरव का प्रलय तांडव थोड़ा भी रुका-सा नहीं दीखा। जलने वाले ढेर से आग ने अपनी लंवी केसरी जीभ को आगे वढ़ाकर निकट के दूसरे घास के ढेर को चाट ही लिया! तुरंत वह भी जोर से सुलग गया। लोग हताश हुए। देखते-देखते फिर एक ढेर को भी आग लग गई।

श्यामय्य गौड़जी हाथ जोड़ते, छाती पीटते, "हाय रे, मेरा घर वचा दो जी! गया न! हाय रे भगवान्!" कहते, शोक करते, एक वार इकट्ठे हुए लोगों से, एक वार अग्निदेव से, फिर एक वार भूत-पिशाचों से प्रार्थना करने लगे। उनको देख-कर लोग करुणा से, उत्साहित होकर आग को और दूसरी जगह फैलने से रोकने के लिए, वड़ी उमस में पसीना-पसीना होकर भी भगीरथ प्रयत्न करने लगे।

इस वीच में कुछ लोगों ने यह सोचकर कि गोठ में भी आग लग जाये तो जानवरों को जलकर मरना पड़ेगा, उनकी वंधी रस्सियों को तलवार से जल्दी-जल्दी काट दिया। लोगों की भीड़ में वे घुस गये जिससे सारे मंडप में शोर-गुल व चीख-पुकार अधिक मच गई।

इधर भीतरी आंगन में वेंकप्पय्य ज्योतिषीजी कन्यादान के मुहूर्त में खलल न पड़ने देने के विचार से दक्षता से वरत रहे थे। आपद्धर्मानुसार मंत्रों में कुछ कटौती करके रामय्य के हाथ में मंगल-सूत्र देकर सीता के गले में वांधने के लिए कहा। उस भयानक समय में दिङ्मूढ़ वने रामय्य को कुछ भी नहीं चाहिये था। विवाह का मंडप मरघट वना-सा दीख पड़ा। ज्योतिषीजी पिशाचों के मुखिया से दीख पड़े। चारों ओर कोई पुरुष नहीं था। सभी आग लगे स्थान पर भाग गये थे। औरतों में कुछ अनिवार्य-सी वहां खड़ी थीं। सीता का अलंकृत शरीर उसको पकड़े हुए आदमी के हाथों के वीच में खड़ा था।

ज्योतिषीजीने "हां! जल्दी वांधो।" कहा जोर से। उस शोर-गुल में जोर से कहे विना कोई नहीं सुन सकता था।

रामय्य पागल-सा, कुछ भी सोचे विना मंत्रवादी (जादूगर) के कहे अनुसार—ज्योतिषजी जी की आज्ञा के अनुसार सीता के गले में मंगल-सूत्र वांधने हाथ उठा रहा था इतने में वाहर कुछ भयंकर स्फोट जैसा हुआ। उससे घर हिल-सा गया। लोगों की पुकार, वम, हाहाकार, खून को ठंडा करने के समान सुन

पड़े। रामय्य के हाथ से मंगल-सूत्र फिसलकर जमीन पर गिर पड़ा। रामय्य एकाएक अधीर हो बालक की तरह रोने लगा। ज्योतिषीजी ने मंत्र पठन करते हुए गुस्से से नीचे गिरे मंगल-सूत्र को झट से उठाकर रामय्य के हाथ से स्पर्श कराकर सीता के गले में खुद बांधा !

वेंकप्पय्यजी ने सीता-रामय्य का विवाह पूरा संपन्न किया था कि नहीं, कुछ लोग झुलसे हुए शरीर के श्यामय्य गौड़जी को लेकर बड़े दरवाजे से भीतर आये।

५९

पर्वतश्रृंग पर सूर्यदेव की सौंदर्यानुभूति

मुत्तल्ली में रात में जब विवाह तथा आग का प्रकोप हो रहा था तब हूवय्य का मन तड़प रहा था। वह मन में शांति लाने का जो प्रयत्न कर रहा था उसमें वह सफल नहीं हुआ। उस रात को सीता का विवाह—उसका जीवन-प्रलय मुत्तल्ली में हो रहा है, इस विचार ने उसे पूरा बेचैन कर दिया था। उसने सोने की कोशिश की। पर वह भी न कर सका। बिस्तर पर करवट बदल-बदलकर ऊब गया। एकाएक उसी रात को मुत्तल्ली जाने की प्रेरणा हुई। क्यों? क्या करने जाकर कैसे किसको मुंह दिखाऊं? शर्म की बात होगी न? वह सब ठीक है। तो भी मन जाने के लिए उकसा रहा था।

हूवय्य जाना सोच ही रहा था कि गाढ़ी नींद आती देख उसको आश्चर्य हुआ। उसको लगा कि कोई शक्ति नींद के बहाने मुत्तल्ली जाने से उसको जबरदस्ती रोक रही है। कुछ भी न समझ सकने के कारण वह बिस्तर पर पड़ खूब सोया।

एकाएक बम सुनाई पड़ा। हूवय्य चौंककर जागा और उठ बैठा बिस्तर पर। नींद की अवस्था नहीं रही। वह पूरा जाग गया था। उसकी दृष्टि में पड़ा—अंधेरे में घास का ढेर धधक-धधक जल रहा हो। उसके इर्द-गिर्द लोगों का समूह बम मार रहा है। उसे देखते ही हूवय्य अपने आप चिल्लाया, "मुत्तल्ली!" विस्मय से। दृश्य में हर एक बात स्पष्ट थी। कुछ भी अस्पष्ट नहीं था। सचमुच वह सपना नहीं था। दो-तीन मिनटों के लिए केलकानूर से मुत्तल्ली तक काल-देश को चीर-कर एक माया-सुरंग-मार्ग का गवाक्ष मानो बन गया था।

हूवय्य बिस्तर पर खड़ा हो रहा था कि वह दृश्य पूरा गायब हो गया था। फिर कमरे में अंधेरा छा गया था। वह उस अद्भुत से स्तंभित होकर, फिर बिस्तर पर बैठ अपने देखे दृश्य के बारे में सोचने लगा। वह यथार्थ नहीं लगा। सपना तो था ही नहीं! उसे क्या नाम दिया जाय, उसे सूझा नहीं। पहले इस प्रकार का अनुभव उसे कभी नहीं हुआ था। पिछले वर्ष मैसूर से गांव आते समय जब गाड़ी लुढ़ककर गिर गई थी, तब उसको चोट लगी थी, मुत्तल्ली में सोया था। तब रात के सपने में उसने देखा कि वह कुक्कनहल्ली के तालाब के किनारे पर

चलते समय अपनी मां को देख रहा है। उसके माथे पर चोट लगी है। उस पर पट्टी बांधी गई है। दूसरे दिन नागम्माजी मुत्तल्ली जब आईं तब सचमुच उसके माथे पर चोट लगी देखकर दंग रह गया था वह। वैसे सपने और बाद को उनकी वास्तविकता के अनुभव उसके जीवन में कुछ हुए थे, घटे थे। लेकिन उनको आकस्मिक घटना समझकर उनकी ओर ध्यान नहीं दिया था। लेकिन रात को जो अनुभव हुआ वह अत्यंत विस्मयकारी था।

हूवय्य का आत्म मंदिर धीरे-धीरे नई-नई खिड़कियां और नये-नये किवाड़ें खोलने लगा था। वह उसके चित्त को अच्छी तरह विदित नहीं हुआ था अभी तक। आगे मालूम होता है। एक-एक खिड़की, एक-एक किवाड़ जैसे-जैसे खुलता जाएगा वैसे-वैसे हर वार विस्मय करना पड़ता है।

हूवय्य सवेरे तक विस्तर पर पड़ा हुआ था। वीच-वीच में नींद आती और जाती। कव रात कटेगी, सुवह होगी, प्रतीक्षा करने वाले हूवय्य ने देखा, सामने की अलार्म की घड़ी में अभी पांच वजने को थे। वह उठा। नौकरों से कौन-कौन से काम कराने चाहिये, इसकी सूची पुट्टण्ण को देकर, शिकार के लिए नहीं, जंगलों में घूमते समय साथ में ले जाना उचित मानकर, वंदूक उठाकर, कंधे पर रख, वह प्रातःकाल की हवाखोरी के लिए गिरिवन की यात्रा पर निकल पड़ा। कुत्ते भी उसके पीछे निकले। ठंडी हवा वह रही थी। पास के झुरमुट में एक पंछी सीटी वजाने लगा था। पूरव की दिशा में पर्वत-वनों के सिर पर दिगंत रेखा अभी आकाश पर साफ नहीं उभरी थी। उस काल के शीतल वायुमंडल में रुचि से सांस लेते हुए हूवय्य और कुत्ते जंगलों की ओर वढ़े।

हूवय्य की आत्मा में होने वाला परिवर्तन क्या था? उस परिवर्तन के कारण क्या? वह परिवर्तन एकदम हो रहा था? क्रमशः विकास पाकर प्रस्फुटित हो रहा था?

मनुष्य का अंतश्चित्त समुद्र की तरह गंभीर है। अपार है। कह सकते हैं कि उसमें होने वाले व्यापार हमें अगोचर हैं। समुद्र के भीतर होने वाली घटनाओं के कारण एकाएक द्वीप उभर आते हैं, द्वीप डूवते हैं, पानी भूमि को आक्रमित करता है। या भूमि ही समुद्र को ढकेलकर पानी पीछे हटाती है। किनारा खिसककर गिर जाता है, जमीन वह जाती है, या समुद्रतल के अनर्घ्य रत्नों के साथ वहां रहने वाले विचित्र, विकराल, भयंकर प्राणी भी किनारे पर फूटकर गिर पड़ते हैं। ऊपर खड़े होकर देखने वालों को ये व्यापार आकस्मिक-से, विप्लव-से, चमत्कार-से दिखाई देते हैं। लेकिन भूगर्भ, समुद्रगर्भ के विषयों के विज्ञानियों को वे व्यापार न चमत्कार हैं, न आकस्मिक हैं, न विप्लव हैं। सकारण हो, काल-देशों में विकसित हुई प्रकृति की घटना के शिखर वन जाते हैं! उसी तरह हूवय्य के अंतरात्मा के निगूढ़ गह्वर में वाह्य दृष्टि को अगोचर हो अनेक व्यापार हो रहे थे। जव वे प्रकाश

में आते तभी उसी को विस्मय होता उनको देखकर।

सीता के प्रसंग में उसे जो निराशा हुई थी वह वास्तव में अत्यंत दुःख-कारक थी। संसार के महापुरुषों के विचार-प्रपंच का सान्निध्य, विद्या की संस्कृति, मन का संयम, उद्धार की सीमा तय किये विना हमेशा ऊपर जाने की उत्कट आकांक्षा, तीव्र व्याकुलता, उद्दाम रसकाव्यों का परिचय, प्रार्थना, ध्यान, इनका आधार और अमृत सहायता न करते तो हूवय्य का व्यक्तित्व चोट खाये विग्रह की भांति फूटकर, टूटकर, चूर-चूर हो, नष्ट हो जाता। आत्मा अधिक से अधिक समंजस हो, एकत्र हो, समन्वित हो अर्थपूर्ण, आनंदमय होने के वदले फूटकर, टूट-कर, विरोधाभास होकर, अनन्वित होकर, निरर्थक, दुःखमय हो जाती इसमें संदेह नहीं था। हूवय्य को प्राप्त सहाय-सन्निवेश-परिसर के अभाव से निराशा के जबड़े में फंसी सीता का व्यक्तित्व दिन-प्रतिदिन चीरकर विकृत होते देखें तो हूवय्य के वारे में कही गई वातें अच्छी तरह समझ में आ जायंगी। रामय्य की आत्मा भी विकृत हो, अनन्वय तो हो रही है, लेकिन उसका कारण केवल निराशा नहीं, दुराशा तथा चंचलता, और मनोमांद्य भी है।

इधर हूवय्य आत्मसाधना में अधिकाधिक तल्लीन हो गया था। कौटुंविक कार्यों को निष्ठा से देखभाल करते हुए अपनी विद्या-संस्कृति (परसों ही सुपारी भरकर शिवमोग्गा गई गाड़ी में कई नई पुस्तकों का पार्सल आया था), रस रुचि, आत्म साधना को भी वीर श्रद्धा से वढ़ा ले रहा था। एक महीने से हर रोज रात को नागम्माजी, पुट्टण्ण और सोम को भारत, रामायण काव्यों को आसान व्याख्यान सहित पढ़कर सुनाने लगा था, उसे सुनने के लिए कानूरु से तथा पास के गांवों से लोग आने लगे थे। सिंगप्प गौड़जी तथा उनके परिवार वाले एक-दो वार केवल कथा श्रवण के लिए ही आये थे। और भी कुछ लोग आना चाहते थे, परंतु किसी अज्ञानवश हूवय्य के प्रति धर्माशंका होने से आने के लिए डरते थे। कहते हैं, हूवय्य के नये उद्यम के वारे में सुनकर अग्रहार के ज्योतिषी वेंकप्पय्यजी ने कहा था, "गो हत्या करने वाला पुराण सुनावे तो सुनने वालों को नरक जाना पड़ता है।" यद्यपि चंद्रय्य गौड़जी ने अपने लोगों को आज्ञा दी थी कि कोई केलकानूरु न जावें तो भी सेरेगारजी की तरफ से कन्नड़ जिले के नौकर, वेलरों में कुछ लोग वार-वार मालिक को मालूम कराये विना, चोरी से छिपे-छिपे आकर हूवय्य गौड़जी का 'प्रसंग' (रामायणादि कथानक) सुनकर फूले न समाते थे। हूवय्य कथा सुनाते समय समाज की उन्नति के लिए आवश्यक विचारों के साथ योग्य विनोद-पूर्ण वातें मिलाकर विवरण देता था ताकि सवकी समझ में आ जाय। इस तरह प्रणय में निराश हुए हूवय्य की आत्मा विविध कार्य मार्गों में साहसपूर्ण यात्रा पर निकली थी। लेकिन निराशा-निराशा ही नहीं वनी रही। धीरे-धीरे वह उसकी आत्मा की महामंगलारती की सुगन्धित पवित्र ज्योति को पोषित कर्पूर की तरह थी।

चैत्र मास की विपिन राजि, पर्वत श्रेणी, प्रातः समय सुख-शीतल वायुमंडल, और फिर क्या, गायन के तारमंडल की भांति प्रस्फुटित होकर हजारों पंछियों की चहचहाहट, कलगान हो बदलने वाला नादगर्भित गंभीर वन्यमौन···इनके बीच हूवय्य एक वार रात में अपने अनुभव के बारे में सोचकर अंतर्मुखी होते फिर एक वार अंतर्मुखता से झट जागकर वाहरी प्रकृति की रमणीयता—(जंगल धीरे-धीरे अंधेरे से वाहर निकल रहा था; आकाश धीरे-धीरे प्रकाशमान हो रहा था; साधारण प्रकाश के सभी तारे छिपकर सप्तर्षि मंडल के नक्षत्र, चित्रा तथा स्वाति नक्षत्र ही आदि प्रथम और द्वितीय वर्ग के कुछ तारे केवल चमक रहे थे)—का आस्वादन करते, फेफड़ों में खूब सांस भर लेते-छोड़ते जल्दी-जल्दी ऊपर चढ़ गया।

वनदेवी की हृदयवीणा के तारों को झंकृत करने की भांति 'काजाण' पंछी अलापने लगे। पेड़ों पर फूल का रस चूसने वाली हज़ारों, लाखों, करोड़ों मधुमक्खियों का झंकार शुरू हुआ। कंदरा में रहे पालतू मुर्गों की सामान्य वांग के साथ जंगली मुर्गों की बांग की मोहक ध्वनि इधर-उधर सुनाई पड़ी। हूवय्य का हृदय आनंद स्पंदित हुआ। नई चेतना मानो हृदय में विजली की भांति संचारित हुई। चैत्र प्रकृति की लगन की आग उसके दिल को लगी जैसा हुआ। उषःकाल, अरुणोदय, सूर्योदय की श्री को खोने की गरीबी से डरकर जल्दी-जल्दी पहाड़ के शिखर पर की चौड़ी शिला की उत्तुंग वेदिका पर चढ़कर हांफते, आनन्द परवश हो देखते खड़ा हो गया।

मीलों उस पार विस्तृत हो, अनंत हो, दृश्यतरंग विन्यास से तुंग हो, उत्तुंग हो, महोत्तुंग हो, फैलकर वढ़े पर्वतारण्य अंत पहुंचने वालों की तरह दिखाई देने वाली पूर्व दिशा में, हलदी की वुकनी जैसे छिड़की हो, हलदी कांति से शोभयमान गगन पट के आगे दिगंत रेखा कटी-कटी-सी दीख रही थी। वह होश उड़ाने वाले दृश्य दर्शन का अनंत आह्वान कृतज्ञता से स्वीकार करके हूवय्य की आत्मा पंख फैलाकर उड़ने के लिए तैयार हो गई। उसको लगा कि अपना मुंह भी पूर्व दिशा मानो वन रहा है। वंदूक को दूर रखकर ठंडी-चौड़ी चट्टान पर यह पद्मासन लगाये वैठ टकटकी लगाकर देखने लगा।

वर्णनातीत रंगों का जुलूस निकला। हूवय्य की दृष्टि में भाव मात्र रहा भगवान् का सौंदर्य स्पंदित होकर अपने आगे मानो प्रत्यक्ष हो रहा है, इस अनुभव से वह पुलकित हो गया, रसार्द्र हो गया; फिर आंखें गीली हो गईं। देखते-देखते हलदी रोशनी कुंकुम वर्ण की वन गई। वहां के छोटे-छोटे मेंह जले सोने का रंग पाकर उज्ज्वल वन गये। अंधेरा कहीं भागकर छिप गया। प्रकाश ज़मीन पर उमड़-गिरकर मानो वह गया। दूर में तव तक अज्ञात, एक तालाव का पानी पिघली चांदी की भांति जगमगाने लगा। विलकुल पतले होकर कहीं फैले कुहासे में निकट के पहाड़ भी मृदु, कोमल, नील दीख पड़े।

देखते-देखते हूवय्य के हृदय-नीड़ में हृदय को प्रस्फुटित करता सूर्य का रक्त बिंब दिगंत की रेखा पर झांका। धीरे-धीरे वह बिंब ऊपर-ऊपर चढ़कर संपूर्ण बिंब बन विराजमान हुआ। हूवय्य के निकट के पेड़ भी छायादार बने। वे छायाएं जमीन पर पड़ीं, उनकी अपेक्षा कुहासे में धूप की छड़ियों की सृष्टि करके, अच्छी तरह दीखने लगीं। पक्षियों ने अमितोत्साह से गाया। आनंद स्वरूपी भगवान् सौंदर्यरूपी हो, हूवय्य की आत्मा में रस बनकर बहा।

हूवय्य की आंखें अपने आप मुंद गईं। वहां हूवय्य ध्यानमग्न हो गया। उस ध्यान में विचार नहीं थे। वह केवल अनिर्वचनीय अखंड भावानुभव था। पहले-पहले सब कुछ होने की तरह दिखाई देने पर भी अंत में 'मैं' 'आप' का भाव प्रज्ञा से भी उठकर गायब हो गया। वह आनंद का अनुभव कर रहा था ? आनंद ही बन गया था ? न जाने क्या-क्या ? कौन जाने ?

भाव समाधि की रसाग्नि गंगा में डूबकर, नहाकर ज्वालामयात्म बना हूवय्य ने जब आंखें खोलीं तब समय दिगंत से चार-पांच गज ऊपर चढ़ चुका था। सारा संसार शांति, सौंदर्य, आनंद, मैत्री, प्रेम से पूर्ण बना हुआ-सा है, इसका अनुभव करने वाले उसका मुख बिजली की मुसकुराहट से भर गया। पैर अकड़ गये थे। ठिठुर गये थे। खड़े होकर, हाथ-पैरों को फैलाकर, दुरुस्त, सही, पहले जैसे बनाकर, भव्य वातावरण में मानो बहुत देर तक चुप बैठे कुत्तों को देख, कृतज्ञा से उनको चूम, बंदूक कंधे पर रख लेके घर की ओर रवाना हुआ। 'काजाण' पंछियों का गाना थम गया था। कुट्टुरु, पिकलार, उरुलि, कामल्ली, तोते आदि पंछी जंगल भर में अपनी-अपनी आवाजों से शोर मचा रहे थे। जंगल के बीच दो कोयल एक दूसरी को बुला रही थीं। हूवय्य को आग से जलकर स्याह बने स्थान को देखकर रात में सपने में देखा आग का दृश्य याद हो आया। उसका शरीर रोमांचित हो गया।

मुत्तल्ली से विवाह वाद्य आदि की आवाज़ क्यों नहीं सुनाई दे रही है ? उसे आश्चर्य हुआ। सीता रामय्य की पत्नी बनकर, पर-वधू बनी, याद हो आने पर उसको पहले की तरह दर्द नहीं हुआ। ललाट रेखा को कौन मिटा सकता है ? इस तरह सोचते-सोचते जाते समय एक पेड़ तक फैले मकड़ी के जाल से उसका मुंह लग गया। उसके रेशे उसके मुंह पर लग गये। उनको पोंछ, आदत के अनुसार मुंह से निकल पड़ा "अच्छा।" वह हंसा।

हूवय्य ने घर के आंगन में कदम रखा ही था कि सोम भीतर से हड़बड़ी से आया और मुत्तल्ली में कल रात को हुई आग की दुर्घटना, श्यामय्य गौड़जी को हुए घाव, बारूद की थैली में आग लगने से हुई दो आदमियों की मृत्यु इत्यादि का समाचार सुनाने लगा। हूवय्य ने विस्मय से चुप हो सुना। नागम्माजी, पुट्टण्ण, मज़दूर आदि ने चारों ओर घेर कर खड़े हो भय से दूसरी बार वह कहानी सुनी।

हूवय्य चुपचाप अपने कमरे में गया। सोचने लगा कि मुत्तल्ली जाऊं कि न जाऊं? मन दो भागों में बंट गया। दोनों पक्ष समान थे। आफ़त के समय रिश्ते-दारों से चार सहानुभूति की बातें करना ठीक है, लेकिन···

हूवय्य ने बाहर आकर सोम को बुलाया और पूछा, "तो कन्यादान नहीं हुआ क्या रे?"

"कुछ लोगों ने कहा 'हुआ!' कुछ लोगों ने कहा 'नहीं।" फिर सोम ने आकाश की तरफ हाथ दिखाकर "परमार्थ उस स्वामी को ही मालूम!" कहकर ऐसा भाव प्रदर्शन किया कि सिंगप्प गौड़जी की इच्छापूर्ति हुई।

हूवय्य कमरे में गया। कागज के एक टुकड़े पर लिखा, "चाहिये", दूसरे टुकड़े पर रखा, "नहीं चाहिये"। दोनों को ऊपर फेंका।

एक टुकड़ा हवा में तैरकर जमीन पर गिरा। उसे उठाकर देखा "नहीं चाहिये।" उस पर लिखा था। वह मुत्तल्ली नहीं गया।

६०

मन की माया शक्ति

मुत्तल्ली में दर्द की, मृत्यु की, रोदन की, और अन्याय-अधर्मों की उस दारुण रात्रि के वाद दूसरे दिन का वातावरण भयाक्रांत हो, शोक से भर गया था। लोगों ने वहुत मेहनत से घरों को जलने से यद्यपि वचाया था तथापि खलिहान में घासों का ढेर, गाड़ी का कमरा, लकड़ी की कोठरी—अग्नि के प्रकोप से जलकर काले पड़ गये थे। वह दृश्य वहुत-से लोगों के मरे युद्ध स्थल की तरह हताश था। वारूद के स्फोट से मरे हुए श्यामय्य गौड़जी के दो वंधक नौकरों का चमड़ा जल गया था। उनकी लाशों ने तो विवाह के लिए आये हुए लोगों को भगा दिया जैसे पत्थर फेंक-फेंककर कौओं को भगा दिया जाता है। जांच-पड़ताल के लिए पुलिस आ रही है,यह खवर उसी तरह थी कौओं को भगाने के लिए जैसे फेंका हुआ पत्थर होता है। साक्षी के लिए और धैर्य के लिए वड़े-वड़े साफेवाले गौड़ों को ठहरा लेना भी चंद्रय्य गौड़जी के लिए ही कठिन हो गया। झुलसे वदन के दर्द की अपेक्षा पुलिस के आगमन से होने वाली वेदना को याद करके रोते रहे श्यामय्य गौड़जी को सिगप्प गौड़जी धीरज वंधा रहे थे, "हम सव हैं, आप न डरें।" मगर इसका नतीजा कुछ भी नहीं हुआ। ऐसी घटनाएं चंद्रय्य गौड़जी को अचारकी तरह लगतीं। वे अअनी वड़ी-वड़ी मूंछों पर ताव देते हुए वोले, "छोड़िये मामा, आप क्यों डरते हैं ? किसी का खून तो नहीं किया है। जव खून को ही पचा सकते हैं, इसकी क्या विसात ? इस फुटकर केस से कौन डरता है ?" (घास का ढेर, लकड़ी की कोठरी, गाड़ी की कोठरी का जलना, दो आदियों का मरना, घर के मालिक का वदन झुलसना—आदि चंद्रय्य गौड़जी के लिए फुटकर, नाचीज़ केस !) फिर उन्होंने कहा—"ये इन्स्पेक्टर, यह पुलिस, क्या इनको मैं नहीं जानता ? इन टटपूंजियों को मैं जानता हूं। इनका हाथ गरम हो जाय, मन खुश हो जाय तो वस।" इस तरह कहने के वाद वे अपने घर फरार होना चाहते थे, मगर संकोच के मारे रहे हुए गौड़ों के आगे अपने पराक्रम का प्रदर्शन करने का मौका मिलने से वड़े खुश हो रहे थे।

तीर्थहल्ली से डाक्टर और पुलिस आये। खाकी कपड़े, चमड़े का वेल्ट, चमकने

वाले पीतल के बटन, नंबर का बिल्ला, पुलिस का खास साफा, टाप की तरह आवाज करने वाले बूट, बेल्ट में खोंसा सोंटा, इनसे और क्रूर अनागरिक मुख-भावों से युक्त पुलिस वाले देहातियों को भीषण लगते थे और उनके बीच सौम्य डाक्टर उतने मन-मोहक न होने पर भी राक्षसों के बीच देवता की तरह दीखे तो जैमिनी भारत (डाक्टर) से परिचित सिगप्प गौड़जी को वे कौओं के बीच में रहने वाली कोयल की तरह दिखाई दिये।

लाशों को भी उबाने वाली थी उनकी तलाशी। इतनी लंबी हो गई थी। तहकीकात में कुछ लोगों को ऐसा लगा कि हम मानो लाशें होते तो अच्छा होता। कम-बेशी पुलिस के हृदय के जैसे हृदय वाले थे चंद्रय्य गौड़जी, इसलिए वे समझ गये कि इनस्पेक्टर क्या चाहते हैं, उसे पूरा करके, उनको खुश करके ऐसा कर लिया कि केस अपने पर न होने पावे।

उस दिन मुत्तल्ली पुलिस ने 'बकरी-इद' मना लिया! उन्होंने जितनी मुर्गियां मांगीं उतनी दी गईं। उनमें भी अंडे देनेवाली मुर्गियां! गेहूं, दूध, दही, घी आदि का भी खूब प्रबंध कर दिया गया। कामधेनु कल्पवृक्ष भी प्रबंध को देख शरमा सके, इतनी व्यवस्था की गई। जो नौकर मरे थे वे श्यामय्य गौड़जी के बंधक नौकर थे। अलावा इसके श्यामय्य गौड़जी लोकप्रिय सज्जन थे। ऊधम मचाने वालों को तलाशी में लगा दिया गया था। इसलिए कोई विरुद्ध अर्जी देकर कीचड़ उछालने वाला नहीं रह गया!

विशेष कारणों से वापसी बरात आदि रिवाज के अनुसार नहीं निकले। दुलहा रामय्य विवाह के समय हुई सारी दुर्घटना की जड़ अपने को समझकर, सारे अपमानों का केंद्र अपने को मानकर बहुत दुखी हुआ। दो नौकरों की मृत्यु का कारण ही नहीं, पर पुलिस की तलाशी में फंसकर दूसरों के जीवन को दुखी बनाने का कारण भी अपने को मानकर भी दुःखी हुआ। दूसरे ही दिन कानूर जाकर सोचने लगा कि आगे क्या किया जाय?

रामय्य का चोर मन अपने प्रयत्नों से मुक्त होने के लिए सोच रहा था, न कि अपने को सुधार लेने के लिए। कन्यादान के मंडप में उद्वेग की ज्वाला में जब फंसा था और सोचने के लिए गुंजाइश भी नहीं थी तब उसके हृदय ने स्वाभाविक ही बहुत दिनों की बंधुता से जकड़ी महिमा से हूवय्य का स्मरण किया था। हूवय्य से अपना अपराध, दुष्ट विचार कहकर, अपनी गलती स्वीकार करके, सीता का पत्र हूवय्य को देकर, उसके गले में खुद मंगलसूत्र न बांधने का समाचार धैर्य से उसको सुना कर, अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध हो तो भी परवाह न करके, सीता को अंध-कार से मुक्त करके, अपनी आत्मा की रक्षा करने का विचार किया था। लेकिन विवाह के बाद घर आ जाने पर सोचने लगा, उसकी बुद्धि वाम मार्ग पर चलने लगी। आग की नदी पार करके आया उसका मन कुछ शांत हो गया था। मंढक

को तो निगल चुका है, निगलते समय जव मेंढक गले में अटक गया था तब "अहिंसा परमोधर्मः" लगा था, अब कै करना भी मुश्किल, अतः पचा लेना ही ठीक, कहने वाले सांप की तरह उसकी हालत हुई। सीता के प्रेम की अपेक्षा सीता को चाहने वाला वह, प्राणसहित भले ही न मिले, प्राणरहित मोर मिल जाय, कहने वाले शिकारी की तरह वह बन गया। पहले से लाभ होगा, पर दूसरे से तो हानि नहीं होगी? सौंदर्य की वस्तु न हो, तो भी आहार के लिए तो मिल जायगा? सीता के प्रति रामय्य में विद्यमान भाव को 'हृदय का प्रेम' कहने की अपेक्षा, 'देह की भूख' कहना बेहतर होगा। सीता प्रेयसी भले ही बनकर न रहे, इंद्रियों की भूख का मिष्टान्न तो बनी रहेगी? नदी के प्रवाह में वह जाने वाला अपनी प्राण रक्षा के लिए, अपने खाने के लिए आनेवाले मगर को जैसे एक खोखला पेड़ समझ कर जोर से उससे चिपक जाता है वैसे ही रामय्य ने अपने विचारों को जोर से छाती से लगा लिया। अपनी अंतः साक्षी कहीं सिर न उठावे और जहर थूक दे; इसलिए, उसे भी दवाकर सुलाने के आत्मवंचना के उपाय ढूंढ़ लिये। जो पहले जिन व्रत, पूजा, वलि, मनौती, देवता से पूछना, फलादि अर्पण करना, मंत्रित तावीज वंधवा लेना, दान देना, आदि पर विश्वास नहीं करता था वही उन्हीं के घंटानाद द्वारा अब आत्मा की अंतर्वाणी की महीन ध्वनि को छिपाकर डुवाने का यत्न करने लगा। सर्वप्रथम भूमिका के तौर पर उसी दिन वेंकप्पय्यजी से मंत्रित तांबे का तावीज अपनी वांह पर वांध लिया। मतांतर करने वालों की मत भ्रांति अत्युग्र होती है न? स्वार्थ अगर उससे मिल जाय तो उसकी सीमा ही नहीं रहेगी!

रामय्य के मन ने अपनी अंतः साक्षी को दुखदायक जटिल परिसर से पार होने के लिए, एक झूठा ही सही, मार्ग को जैसे शोध लिया था, वैसे ही सीता के मन ने भी अपने अनिष्ट विवाह के प्रकरण से पार होने के लिए उसपर विस्मृति का परदा गिरा दिया था। वह परदा समय संदर्भ के अनुसार नाना रूप धारण करता था। एक बार कृष्णप्प के भूत का संचार होने की तरह, और एक बार प्रज्ञाहीन होने की भांति, और तीसरी बार मूर्च्छा रोग की तरह; इत्यादि। इस लिए उसके जाग्रत चित्त में विवाह का ज्ञान कुछ भी नहीं था। जब कभी वह होश में रहती तब अपनी जाग्रतावस्था के विरुद्ध रीत में विवरण देती रहती थी। कोई सुधारने जाता तो विगड़ जाती थी; मनमाने गाली देती थी। कई बार टूट भी पड़ती थी। तब लोगों को ऐसा दीखता कि उसका पागलपन वढ़ गया है।

विवाह के उपरांत दूसरे ही दिन पुलिस और डाक्टर मुत्तल्ली आकर तहकीकात, पूछताछ करने लगे, तब चंद्रय्य गौड़जी, सिंगप्प गौड़जी, रामय्य, चिन्नय्य, सेरेगारजी, वासु आदि उनकी सेवा में रहे; उसी समय गौरम्माजी तथा घर की और स्त्रियां खिड़कियों में से, दरवाजों की दरारों में से भयोद्विग्न होकर देखती

रहीं तो सीता अकेली अपने कमरे में लक्ष्मी के साथ बैठ बातें करती थी। उसकी बातों का विषय था : सीता होश में आकर देखती है। वह दुलहिन की तरह अलंकृत है ! उसका विवर सुनाये बिना उसे चैन नहीं। वह कह रही थी अपनी छोटी बहन से कि मैं जात्रा में रथोत्सव देखने गई थी, इसलिए अलंकार कर लिया था।

जीजी की बात सुनकर लक्ष्मी को पहले कुछ गड़बड़ी हुई और उसने कहा, "हां री। कल रात को तुम्हारा विवाह हुआ" एक ही सांस में कहकर जीजी का समर्थन करके अपना संशोधन सूचित किया।

सीता ने बहन की ओर प्यार से देखकर कहा, "विवाह नहीं हुआ री ! रथ देखने गई थी ! थू ! मेरी बात तुम समझती ही नहीं हो !"

लक्ष्मी ने न आगा न पीछा करती हुई, कहा, "हां ! मेरा और तुम्हारा कहना एक ही है। वही मैंने कहा जो तुमने कहा !"

जानकार से अज्ञात किसी तर्क की सहायता से उस बारे में दोनों तृप्त हुईं।

लक्ष्मी ने अपनी व्यथा को अपने चेहरे पर प्रदर्शित करते हुए कहा, "पिताजी का सारा शरीर आग से जल गया है।"

सीता ने कहा—"सच है ! हम सब रथ देखने गई थीं तब उन सबने मिलकर उनको पीटा अच्छी तरह ! पिताजी मर ही जाते अगर हूवय्य मामा आकर उनको छुड़ा न देते !"

"उन सबने मिलकर अच्छी तरह पीटा," कहते समय सीता के मन ने 'उन सब' में उन सब को मिला दिया था जिनसे उसकी नहीं पटती थी।

जाग्रत चित्त का तर्क अकेला तर्क ही तो नहीं है ? तर्क भी बहुरूपी होता है और असंख्य वेशी भी !

सीता ने अपना स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी पिताजी की शुश्रूषा करने का हठ करके, शुरू कर ही दिया। उसकी झंझट कम हो तो बस, ख्याल करके सब चुप रह गये। अपने अपाय की गहराई उसमें अच्छी तरह उभरी थी। मगर उसकी उपपत्ति तो उसकी इच्छा के अनुसार न होकर दूसरी ही हो गई थी। इतना ही नहीं, श्यामय्य गौड़जी के कमरे में, चाहे चंद्रय्य गौड़जी, चाहे रामय्य, चाहे सीता के नापसंद कोई भी हों, उनकी तरफ उसका ध्यान नहीं रहता था। नवोढ़ा में रहने वाली वास्तविक लाज भी उसमें तनिक भी नहीं थी। यह सब देखकर चंद्रय्य गौड़जी तमतमा गये। मगर हुकुम करने के लिए समय उचित नहीं था। अतः वे चुप रह गये।

कुछ दिनों के बाद चंद्रय्य गौड़जी मुत्तल्ली मामा की देख-भाल करने और बातचीत करने मुत्तल्ली आये थे, तब उनकी बहू उनकी ओर गौर किये बिना पिताजी को अन्नपानादि देकर जाने लगी तो जानबूझकर कहा—"सीता, मेरे लिए एक गिलास में ठंडा पानी लाओ पीने के लिए।" उस आवाज को सुनते ही,

पूंछ को कुचलने पर सर्पिणी जैसे फन उठाकर खड़ी होती है वैसे सीता केवल सिर घुमाकर, घूर करके देख, घृणा से वहां से चली गई। पानी भी नहीं लाई। चंद्रय्य गौड़जी जीभ काट लेकर मन में ही फुसफुसाये, "घर आ जा, तब भूत को छुड़ा दूंगा।"

विवाह के एक ही महीने के उपरांत, एक हफ़्ते के भीतर एक खबर हवा में उड़कर फैलने लगी : घास के ढेर को जो आग लगी उसका कारण बारूद नहीं था। पटाखे भी नहीं, हूवय्य और उनके पक्ष के लोग हैं। उनका मूल मिल गया चंद्रय्य गौड़जी को सेरेगारजी से। कन्यादान के प्रारंभ से कुछ समय पहले सोम को सिगप्प गौड़जी से गुफ्तगू करके जाते हुए सेरेगारजी ने देखा था। लेकिन तब उन्होंने उस घटना को उतना महत्त्व नहीं दिया था। बकरे की चोरी के प्रयत्न के समय से सोम के प्रति सेरेगारजी में द्वेष बढ़ने लगा था। विवाह के दिन तो सोम अपनी अलंकृत पोशाक से 'सोमय्य' कहलाया था, तब से, सेरेगारजी के पेट में उसके प्रति जलन थी। एक-दो बार उन्होंने उन लोगों से जो सोम को 'सोमय्य' कहते थे, कहा था, "खोखला आदमी! उसको सोमय्य क्यों कहते हो? 'सोम' कहना काफी है! इस कन्नड़ जिले के सेट्टजी के बच्चों को घाट के ऊपर आ जाने पर सिर पर सींग उग आते हैं!" इस तरह कहते समय वह यह भूल गये थे कि यह बात खुद पर भी लागू होती है। इसलिए सोम जहां कहीं भी दिखाई देता सेरेगारजी उसको आंखें लाल करके देखते थे। उस दिन भी उन्होंने उसको इसी तरह देखा था जब वह सिगप्प गौड़ से बातचीत करके गया था। एक-दो दिनों के बाद वह दृश्य अर्थगर्भित तथा प्रयोजनकारी दीखा तो उन्होंने चंद्रय्य गौड़जी के कान में फूंक दिया। सिगप्प गौड़जी ने 'बकरे की चोरी' का आरोप किया तो, उससे आधिक बढ़ा-चढ़ाकर इस आरोप का प्रचार किया जाने लगा—उन्होंने आग लगवाई है अन्याय के प्रति अन्याय करते हैं, कहकर मूंछों पर ताव देते कहने लगे चंद्रय्य गौड़जी अपने इनसे-उनसे।

मुत्तल्ली के एक भी आदमी ने—श्यामय्य गौड़जी या चिन्नय्य या गौरम्माजी ने सेरेगारजी की बात चुगली मानकर विश्वास नहीं किया। लेकिन चंद्रय्य गौड़जी ने विषय को वहीं स्थगित नहीं किया। उन्होंने ताना दिया आस्तीन ऊपर चढ़ाकर कि परमात्मा के आगे खड़े होकर जलते घी के दिये बुझाकर कसम खावें कि वे अपराधी नहीं हैं!

वह रहस्य भी प्रकाश में आ गया।

सेरेगारजी ने जैसे सिगप्प गौड़जी से सोम को बातें करते देखा था वैसे कन्यादान के स्थान के पास खड़ी महिलाओं में से एक-दो ने देखा था कि दुलहिन के गले में मंगल सूत्र ज्योतिषीजी ने ही बांधा था। यह बात पहले स्त्रियों में ही फैली थी। इस बात को अपनी पत्नी से जानकर सिगप्प गौड़जी को वज्र का शिरस्त्राण पहनने के जैसे लगा। चंद्रय्य गौड़जी के विरुद्ध ताल ठोंककर खड़े हो गये। सांड़ की तरह

गरजने लगे। जब सांड़ गरजे तो रहस्य कैसे रहे ?

चंद्रय्य गौड़जी ने कसम खाने के लिए तैयार होकर सिंगप्प गौड़जी को भी कसम खाने के लिए बुलाया। लेकिन एक पक्ष में रामय्य, दूसरे पक्ष में सोम डरकर आंसू बहाने लगे।

वेंकप्पय्य ज्योतिषी से पूछने पर उन्होंने कहा—"चंद्रय्या, मैं देख लेता हूं, कसम-गिसम खाने के लिए मत जाओ।"

दोनों पक्ष वाले जान गये कि वे रहते हैं कांच के घर में। इसलिए पत्थर फेंकना रोक दिया। लेकिन उसके पूर्व फेंके गये पत्थर से जो हानि होनी थी उसमें से कुछ हो चुकी थी।

६१

अग्रहार के मंदिर में

चैत्र मास समाप्त हुआ था। वैसाख मास का प्रथम सप्ताह भी समाप्त हो गया था। कुछ बूंदा-बूंदी हुई थी। तो भी ग्रीष्म की धूप की उमस कुछ भी कम नहीं हुई थी। देहातों में यह भविष्य कहने लगे थे, "इस वर्ष सूखा ज़रूर पड़ेगा।" हर साल यह भविष्य सुन-सुनकर लोग उसके आदी हो गये थे। इसलिए उनमें सभी उसे सच मानकर या विश्वास करके डरे बिना आराम से रह रहे थे। वह भविष्य पर्जन्य देवता को चेतावनी देने के लिए था, वायुगुण के लक्षण वैज्ञानिकता से वताने के लिए नहीं था।

एक-दो वर्षा की बौछारें हुई थीं जिनसे भूमि की प्यास दुगुनी-सी हो गई थी। खूब गरमी बढ़ गई थी। पहाड़ सारे घने जंगलों से सदा हरे थे। तो भी जमीन पर घास नहीं थी। जानवरों की पसलियां निकल चुकी थीं। नदी-नालों में पानी का बहना थम गया था। जिससे लगता था कि नदी-नाले का जीवन ही मानो खंडित हो गया है और जहां-तहां गढ़े में पानी खड़ा हो गया था जैसे आश्रय पा गया हो। (कुछ पेड़ों के फल, छिलके, पत्ते टूटकर पानी में गिरकर घुल जाने से उत्पन्न विष को मछलियां खाकर मर गई थीं और पानी काला हो गया था)। कुछ लोग जो गढ़े अच्छे पानी से भरे थे उनमें रही मछलियां पकड़ते थे, जिससे जानवरों को पीने के लिए पानी आसानी से नहीं मिलता था। उनको पहाड़ की चोटी पर के तालाब पर जाना पड़ता पानी पीने के लिए।

लेकिन अग्रहार के बगल में ही तुंगा नदी बह रही थी। इसलिए वहां के लोगों और जानवरों के लिए पानी का अभाव नहीं था। नदी के तट पर मंदिर के आगे प्रवाह तक जो सीढ़ियां गई थीं उनके बगल में से होकर जानवर पानी पीने जाते थे। इसलिए वहां मानो एक सड़क-सी ही वन गई थी। वेंकण्णय्य ने वहां मेंड लगवाकर उस मार्ग को बंद कराया था। मगर जानवर उसे तोड़कर जाते थे। अपना हक उन्होंने नहीं छोड़ा था। फिर, आखिर हारकर ज्योतिषीजी ने सोचा कि गायों को पानी पीने न देकर मैं पापी क्यों बनूं? अतः वे चुप रहकर पुण्य के भागी बने थे।

उस दिन शनिवार था। सवेरे के दस बज गये थे। गायें, बैल, बछड़े, भैंसें आदि जानवरों का एक झुंड मंदिर के आगे आया। 'आया' कहें तो भी ठीक, 'जा रहा था' कहें तो भी ठीक। क्योंकि वह जानवरों का झुंड जा रहा था, पर लगता था मानो चल नहीं रहा है। भैंसें एक ओर रहीं, अन्य जानवर भी पागुर करते धीरे-धीरे, बेकारी के चित्र की भांति जा रहे थे। सैकड़ों जानवरों के खुरों की आवाज़ आदि के सिवा तरह-तरह से रंभाने की ध्वनि सुन पड़ती थी। इनके चलने से लाल मिट्टी के बादल उठकर धीरे से आकाश में चल रहे थे। वे बादल इतने घने थे कि उनकी छाया जमीन पर पड़ती थी। उस छाया के कारण जानवरों की छायाएं मंद-मंद हो गई थीं।

पूजा की सभी तैयारी करके मंदिर के आगे एक खंभे से पीठ टेककर खड़े हो कानूरु और मुत्तल्ली से आने वाली गाड़ियों की प्रतीक्षा में रहे वेंकप्पय्य जी ने जानवरों का झुंड नीचे उतर जाने के बाद उसांस भरकर उत्तर दिशा के खेतों के उस पार के जंगल की ओर देखा। जंगल के ऊपर सफेद बादल कम थे। नीलाकाश में काले तारों की चमक दिखाई पड़ी। कानूर से दान में आयी गाय की लाश के लिए चीलों का उड़ना दीखते ही वेंकप्पय्यजी कांप गये और, "हाय, गोहत्या भी हो गई।" कहकर, कराहकर, मंदिर के भीतर देख, "हमारे पिताजी, आप ही हमारे पालनहार हैं। आप ही हमारी रक्षा करें।" कहके नमस्कार किया।

ज्योतिषी एक सप्ताह पहले कानूरु गये थे। चंद्रय्य गौड़जी ने अपने, अपने पुत्र के, अपनी बहू के अहित के परिहारार्थ (वेंकप्पय्य की सूचना के अनुसार ही) एक गाय को बछिया के साथ—दान में दिया था वेंकप्पय्य को उन्होंने। उसे स्वीकार किया था उन्होंने। दूसरे दिन गाय और बछिया को अग्रहार भेजने के लिए कहकर वे चले गये थे। दूसरे दिन दान की गाय नहीं आई। कल आ जाय सोचकर ज्योतिषीजी चुप रहे। लेकिन उस दिन भी दुपहर तक नहीं आई तो उन्होंने खुद कानूरु जाने का विचार किया। मालूम हुआ कि गाय कानूरु छोड़कर जाने के लिए तैयार नहीं थी, खूब-खूब उसको मारा, पीटा, पूंछ को मरोड़ा, घसीटा, तो भी वह बैठी रही, उठी ही नहीं। सेरेगारजी ने यह सब समाचार ज्योतिषी को ऐसा सुनाया कि उनका दिल दहल जाय।

हलेपैक के तिम्म ने कहा, "स्वामी, मैं तो पूंछ मरोड़-मरोड़कर थक गया। पूंछ टुकड़ा-टुकड़ा हो गई। फिर भी उठी ही नहीं! मैं समझता हूं कि किसी भूत की सताई होनी चाहिये!"

ज्योतिषीजी के पास गाय को फिर भेजने का प्रयत्न किया गया। पर वह नहीं हो सका। घसीटना, पीटना, पूंछ मरोड़ना, आंखों में जीरे, मिर्च की बुकनी मलना, यह सब देखकर वेंकप्पय्य ने कहा—"वह न आवे तो कोई हर्ज नहीं, पीटकर जान से न मार डालिये।" फिर वे लौटना ही चाहते थे कि गौड़जी ने कहा, "कल गाड़ी

में लादकर भेज दूंगा। आज आप जाइये।"

दूसरे दिन अग्रहार में ज्योतिषीजी के घर के आगे बैलगाड़ी रुक गई। गाय की टांगें ऊपर करके बांधी गई थीं। उसकी प्यारी नवजात बछिया गाड़ी के एक कोने में बछड़ों के समान सोकर भूख के मारे मां के थन के लिए छटपटा रही थी, तड़प रही थी। सेरेगारजी, हलेपैक का तिम्म, वेलर सिद्द, और दो घाट के नौकर गाड़ी के साथ थे।

निग ने गाड़ी को रोककर बैलों को खोल दिया। आठ-दस घरों के अग्रहार के ब्राह्मण, ब्राह्मण स्त्रियां, बच्चे, ज्योतिषी जी के घर नयी आयी दान की गाय को और उसकी बछिया को भी देखने एक-एक करके आकर जमा हो गये।

घाट के एक नौकर ने बछिया को नीचे उतारा। सेरेगारजी ने गाय को नीचे उतारने के लिए उसकी चारों टांगों को खोल दिया। पर टांगें नहीं फैलीं! सेट्टजी ने घबराकर देखा: पेट फूल गया है। आंखें चढ़ी हुई हैं। सांस भी नहीं चल रही है। कोमल बछिया की मां मर गई थी!

दूर से ही गाड़ी में गाय को सुलाई हालत को देखकर "हाय रे", कहकर दुख से भाग आये बूढ़े ब्राह्मण मंजु भट्ट ने कहा—"अरे पाजी, कोई गाड़ी में गाय को इस तरह डालकर लाते हैं क्या?—हाय रे, गोहत्या हो गई रे! अपने अग्रहार में···" तब सिद्द ने मंजु भट्ट के भय को दूर करने को मानो कहा, "नहीं जी, उसने वहीं मार्ग में ही प्राण त्यागे होंगे।"

मंजु भट्ट ने दुःख-ताप-कोप से कहा—"थू, कमीने, मत बोलो।"

"मैंने कहा कि इस तरह टांगें ऊपर करके गाड़ी में मत डालना चाहिये। मेरी बात कहां सुनते सेरेगारजी?" कहकर तिम्म ने सेट्टजी की ओर देखा।

एक दूसरे पर अपराध थोपकर, कोमल बछिया को ज्योतिषी को देकर, गौ की लाश को खेत के बाहर डलवाकर, सेरेगारजी सारे मार्ग पर खबर फैलाते कानूरु के लिए निकले गाड़ी के साथ।

अग्रहार में ऐसा कोई नहीं था जिसने बछिया को देखकर आंसू न बहाया हो।

इन सबको याद करके ही ज्योतिषी जी ने मंदिर की मूर्ति की ओर देख "मेरे स्वामी, तुम्हीं पालनहार हो।" कहकर हाथ जोड़ा था।

ज्योतिषी जी मन्दिर के भीतर गये। दिये को बड़ा किया। फिर बाहर आये। रास्ते की ओर देखा। कड़ी धूप में दाद से भरा एक भद्दा कुत्ता जीभ बाहर निकालकर अपनी छाया पर लंगड़ाते आ रहा था। सड़क पर खड़े होकर इसने चारों तरफ देखा। फिर-फिर अपनी पीछे की टांग से सिर की बाईं तरफ कान को खुजलाने लगा। न जाने, उसका अंत था कि नहीं! मगर बगल वाले किसी घर में से किसी ने जूठी पत्तल फेंकी। तुरन्त वह कुत्ता उस पर टूट पड़ा जैसे बंदूक में भरी बारूद चिनगारी के स्पर्श से फूट पड़ती है। जूठी पत्तलों के लिए कुत्तों में

छीना-झपटी की आवाज़ सिर्फ सुनाई देती थी !

प्रतीक्षा कर-करके ऊब कर ज्योतिषी जी भीतर गये ही थे कि नहीं, दो गाड़ियां मन्दिर के आंगन में आ खड़ी हो गईं। ज्योतिषी जी अपनी कातरता प्रदर्शित न करने की इच्छा से, तब तक बाहर नहीं गये जब तक उनको परिचित ध्वनि से बुलाना सुन नहीं पड़ा।

उसके बाद उन्होंने बाहर आकर पूछा, "इतनी देर क्यों हुई ?"

सब पुरुषों ने ज्योतिषीजी को नमस्कार किया। स्त्रियां अपनी साड़ियों की शिकन सही बना लेने में लगी थीं जो गाड़ी में बैठते समय में सिकुड़ गई थीं।

"क्या किया जाय, कहिये, निकलने में ही देर हो गई ! खूब सता दिया उसने 'मैं नही आने वाली कहकर"; गौड़जी ने स्त्रियों में खड़ी सीता की ओर इशारा करके दिखाया।

श्यामय्य गौड़जी के चेहरे पर की जलन के निशानों को देखते वेंकप्पय्य ने स्त्रियों की ओर घूमकर सीता को देखकर कहा, "चंद्रमौलीश्वर की कृपा से सब ठीक होगा। फिर उन सबको अंदर आने के लिए कहना," फिर वे मन्दिर के भीतर गये।

मंदिर शांत था। कुछ अंधेरा था। भीतर पीतल के दीप-स्तंभों पर जलते-जगमगाते दीपों का प्रकाश खूब प्रसन्न करता था—जैसे जलती धूप के रेगिस्तान को नंदनवन करता है। फूल, गंध, कपूर आदि की खुशबू परमात्मा की कृपा से सर्वत्र फैल गई थी।

श्यामय्य गौड़जी ने कोट, साफा उतारकर दूर रखा और अपने स्थूल शरीर को धीरे-धीरे जमीन से लगाकर देवता को साष्टांग नमस्कार किया। उसके बाद चंद्रय्य गौड़जी, चिन्नय्य, रामय्य ने श्यामय्य गौड़जी के अनुसार साष्टांग नमस्कार किया। पुरुषों से कुछ दूर पर रहीं—गौरम्माजी, सीता, लक्ष्मी, पुट्टम्मा और दो स्त्रियों ने भी साष्टांग नमस्कार नहीं किया; खड़ी होकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। देवता का विग्रह और अलंकार को टकटकी लगा के देखते खड़ा रहा वासु। उसने औरों को साष्टांग प्रणाम करते नहीं देखा।

चंद्रय्य गौड़जी ने पूछा, "साष्टांग नमस्कार किया क्या रे ?"

वासु ने मानो जागता हुआ-सा हो कहा, "आं ?"

"साष्टांग प्रणाम किया क्या रे ? पूछ रहा हूं।" कहकर चंद्रय्य गौड़जी ने डरावनी आंखों से उसे घूरकर देखा।

मंदिर था, इसलिए कोई जोर-जोर से नहीं बोल रहा था।

वासु ने एक बार रामय्य की ओर देख साष्टांग नमस्कार किया देवता को।

ज्योतिषीजी ने सबको बैठने के लिए कहा। फिर पूजा की तैयारी करने लगे। कोई नहीं बोल रहा था। अतः मन्दिर पूरी तौर से मौन था। पुजारी के

मंत्रघोष ने उसको और भी बढ़ा दिया था। वासु और लक्ष्मी को छोड़कर सभी अपनी-अपनी स्वाभाविक चिंता में डूबे थे। उस मौन में भक्ति की अपेक्षा भय एवं कष्ट से पार होने की प्रार्थना, आर्त बुद्धि ज्यादा थी।

तब एक छिपकली बोली तो सबने चौंककर सिर उठाकर उसकी ओर देखा।

स्त्रियों के बीच बैठ-बैठकर लक्ष्मी ऊब गई थी। अतः वह धीरे से सरककर वासु के पास आई। वासु ने आंख के इशारे से चुप रहने के लिए कहा। तो भी लक्ष्मी ने धीमी आवाज़ में पूछा। वासु ने बाईं ओर घूमकर कान देकर सुना। बात से भी ज्यादा लक्ष्मी की गरम सांस ही कान को लगी जिससे वह कुछ भी नहीं समझ सका कि वह क्या कह रही है।

वासु ने कहा—"चुप रह री। पिताजी गाली देंगे!"

लक्ष्मी ने घुटने टेककर बैठ, वासु के कान के पास मुंह ले जाकर पूछा, "बनाना हमें ही देंगे?"

लक्ष्मी को वासु मामा अनावश्यक ज्यादा ऊंचा बढ़ा हुआ दीख पड़ा। वह घुटनों के बल बैठ गई, तो भी उसका मुंह वासु के कान तक नहीं पहुंच सकता था!

लेकिन अब की बार वासु को लक्ष्मी का सवाल सुन पड़ा था।

"हां री!" कहकर वह पिताजी की ओर देख, डर के मारे, मूंह देवता की तरफ करके देखते बैठ गया।

लक्ष्मी ने फिर वासु के कान में पूछा, "देवता स्त्री है?"

"नहीं री, पुरुष!" वासु ने कहा।

"नहीं स्त्री!" कहा लक्ष्मी ने कुछ नाराज होकर।

"देवता कहीं स्त्री हो सकता है, क्या री?" वासु ने ज़रा गुस्से से कहा।

पूजा की घंटी बजी; सभी अपने-अपने कपड़ों की 'भरभर' आवाज करते खड़े हो गये। घंटानाद के बीच में आभूषणों की आवाज़ भी सुनाई दी। वासु और उसे पकड़कर लक्ष्मी भी खड़ी हो गई।

पूजा समाप्त हुई। प्रसाद वितरण होते समय वेंकप्पय्यजी मंत्रघोष बन्द करके बोलने लगे: शास्त्र, देवता, धर्म, विवाहविधि, पतिव्रता धर्म, पत्नी को पति ही परमात्मा आदि के बारे में।

रामय्य को एक वर्ष पहले जो वेंकप्पय्यजी मूढ़, आचार भ्रांत दिखाई पड़े थे वही अब मेधावी, पंडित, धर्मवीर दीखे। क्योंकि ज्योतिषी जी सबकी ओर देखते हुए कह रहे थे, मगर सबको मालूम हो गया था कि वे सीता को ही उपदेश दे रहे हैं। यही नहीं, यह उपदेश रामय्य को भी अनुकूल था। यह उसके कर्तव्यों के बारे में नहीं था, यह उसके हक़ आदि के बारे में वाद करने के जैसे था।

इस बीच में विनोदी होने पर भी विषाद का कारण बनी एक घटना हुई। ज्योतिषी जी ने फूल, गंध, तीर्थ बांटने के बाद पंचामृत बांटा। मगर उसे भी

थोड़ा-थोड़ा करके बांटा इतर प्रसाद की तरह ! वासु के वगल में खड़ी लक्ष्मी उसी तरह कर रही थी जैसे वह कर रहा था। फूल को सिर में खोंस लिया। (वासु को सर्वप्रथम रामय्य की चोटी का परिचय हुआ), गंध को माथे पर लगा लिया, तीर्थ पिया सशब्द; उसी प्रकार पंचामृत मुंह में डाल लिया। मुंह में डालते ही आंखें खिल गईं खुशी के मारे ! कितना मीठा ! देवता के प्रसाद के सिवा इतना मीठा पदार्थ दूसरा नहीं ! समय के वीतने के वाद सब वेकार न ?

लक्ष्मी ने अपना हाथ ऊपर उठाकर जोर से कहा ताकि भट्टजी सुन सकें— "और 'स्वप्प' !" यानी 'स्वल्प' का तद्भव 'स्वप्प' ।

"कौन है वह ?" चंद्रय्य गौडजी ने डांटा।

"यह लड़की···।" कहा गौरम्माजी ने घूरकर।

"चुप रह जा री।" कहा चिन्नय्य ने।

इस तरह सभी ने घूरकर डांटा तो लक्ष्मी को अपमान-सा हुआ। दुःख हुआ। वह झट सीता के पीछे गई। उसकी साड़ी को पकड़कर उसके पीछे छिप गई। तब तक चुप रही सीता खिलखिलाकर हंस पड़ी।

सीता ने मानो सूचना दी, वासु भी रोकी हंसी को मुक्त कर हंसा। वास्तव में वह प्रसंग हास्यपूर्ण था ! मगर बड़ों में कोई नहीं हंसा। चंद्रय्य गौड़जी ने वासु के सिर पर झट पीटकर डांटा। वासु सिर रगड़कर चुप हो गया।

सीता जैसी दुलहिन इतने लोगों के आगे, पुरुषों के सामने, पति के सम्मुख, भगवान के आगे, अपने सामने शर्माये विना हंसती है तो चंद्रय्य गौड़जी ने अनुमान किया कि कृष्णप्प का भूत ही इसका कारण होगा। उसी प्रकार ज्योतिषी ने भी अनुमान किया और कृष्णप्प के भूत से कहा—"परनारियों को छूना नहीं चाहिये,··· चंद्रमौलीश्वर के आगे तुम इस तरह करोगे तो नरक में पड़ोगे ! तुम क्या चाहते हो, कहो। सव दिला दूंगा। वेचारी उस लड़की को क्यों सताते हो ? अच्छी वातों से नहीं जाओगे तो कठिन सज़ा देकर भगाना पड़ेगा।···" जोर से अधिकार वाणी से व्याख्यान देकर पूछा, "है कि नहीं, चंद्रय्य, तुम्हीं कहो ?"

"फिर इसी तरह करे तो, सतावे तो, कड़ी सजा देनी होगी।" कहकर ज्योतिषीजी की वात का समर्थन करके चंद्रय्य गौड़जी सीता की ओर आंख फाड़-फाड़कर देखा।

इतना कह उन्होंने सीता की ओर देखा था कि नहीं, वस, वासु ने मुंह वंद करके, कितना ही रोकने का प्रयत्न किया, पर रोक न सका, वह और हंसने लगा। फिर लक्ष्मी ने प्रोत्साहित किया, "और थोड़ा।"

चंद्रय्य गौड़जी ने गुस्से से उसकी पीठ पर मुक्का मारा। फिर अच्छी तरह उसका कान मरोड़ा। फिर कहा—"तुम्हारा उपद्रव ज्यादा हुआ ! ठहर, इस वर्ष तुमको पढ़ने तीर्थहल्ली भेज दूंगा।" फिर उसको मंदिर के वाहर ढकेला। वासु

रोते वाहर चला गया।

ज्योतिषीजी ने जोर से कहा—"नहीं ! नहीं !" कहते मन में ही कहा, 'ऐसा न करें तो लड़के विगड़ जाते हैं।'

पूजा समाप्त हो जाने के वाद, पहले ही किये निर्णय के अनुसार, सभी ज्योतिषी के घर भोजन के लिए गये।

शूद्र अतिथियों को परंपरा के अनुसार छोटी वैठक में पत्तल विछाकर परोसा गया। भोजन तो खूव रुचिकर था। गेहूं का पायस, खिचड़ी, पूरण पोलिका, इत्यादि खूव पकवान थे। वासु की आंखों में पानी आ रहा था, तो भी जीभ चखने में पीछे नहीं पड़ी। रोते-रोते उसने खूव खाया। कम-वेशी करके पुरुषों ने अच्छी तरह खाया। परंतु ब्राह्मणों के घर में पुरुषों के साथ भोजन करने वैठी शूद्र स्त्रियां संकोच के कारण, शरम की वजह से अच्छी तरह खा न सकीं। भोजन भी उनको एक कवायद की तरह लगा। ज्योतिषीजी की पत्नी अत्यंत आदर से उपचार की वातें यद्यपि कहती रहीं तो भी किसी अन्यता के भाव से तीन संतानों की माता गौरम्माजी ने भी अच्छी तरह सिर उठाये विना भोजन किया।

वातें करते-करते श्यामय्य गौड़जी ने ज्योतिषीजी से पूछा कि अग्रहार के दूसरे ब्राह्मण पूजा के लिए क्यों नहीं आये ?

ज्योतिषी जी ने "मंजुभट्ट जी का पैर सूज गया है चोट लगने से,···सिंगा जोइस को दस्त के कारण कमजोरी,···" आदि वहाने लगाये। लेकिन सच वात को नहीं वताया। वेंकप्पय्य ज्योतिषीजी ने मुत्तल्ली के विवाह में शूद्र कन्या के गले में मंगल-सूत्र वांधा, यह खवर फैलने पर अग्रहार के ब्राह्मण उनसे दूर रहने लगे। पौरोहित्य, शकुन-निमित्त देखना, तंत्र-मंत्र करना इत्यादि सभी धार्मिक कार्यों में उनको अवकाश न देकर वेंकप्पय्य अकेले स्वार्थी वन कमा लेते थे वहुत समय से, इसलिए उनसे सभी नाराज थे, उनसे असूया थी। अव ऐसा समय भी आ गया कि शूद्र कन्या के गले में मंगल सूत्र भी वांध देना, दान में मिली गौ की हत्या का कारण होना आदि कारणों से वाकी ब्राह्मणों ने उनको दूर किया था। वेंकप्पय्य ने साफ़-साफ़ कहा कि उन्होंने मंगल-सूत्र नहीं वांधा, नीचे गिरे मंगल-सूत्र को उठाकर वर के हाथ में दे दिया, वर ने ही वांधा। पर उनका यह कथन सारा वेकार सावित हुआ।

उनके विरोध के अगुआ थे रामभट्टजी। उन्होंने यही योग्य समय है मानकर सीतेमने सिंगप्प गौड़जी से ज्यादा संपर्क वढ़ाकर खुद एक अलग शूद्र पक्ष खड़ा किया और उसका पौरोहित्य करने का साहस करने में लगे रहे।

लोग अधिक थे, इसलिए वेंकप्पय्य यह सव वताने में हिचकिचाये। उनके न कहने का दूसरा एक कारण था—सीता का सान्निध्य ! अगर वह सच वात कहीं कह दे तो ! उसके वावरपन का अर्थ ज्योतिषीजी ज्यादा जान गये थे !

ज्योतिषीजी ने वात का रुख वदल दिया। यात्रा पर जाने की वात उठाई। मुत्तल्ली और कानूर के घराने वालों के पीछे जो शनि पड़ा है उसको छुड़ाने के लिए धर्मस्थल की यात्रा करने का उपाय ज्योतिषीजी ने पहले सुझाया था। चंद्रय्य गौड़जी ने और श्यामय्य गौड़जी ने मान लिया था।

कव निकलें? कौन-कौन जायें? किन-किन क्षेत्रों में क्या-क्या काम करना चाहिये?—इन सवके वारे में भोजन के वाद, पान-सुपारी खाकर विदा होते समय तक सभी वोलते रहे।

फिलहाल यह तय हुआ कि वरसात शुरू होने के पहले लौटना चाहिये, इसलिए एक हफ्ते में यात्रा पर निकलना चाहिये! मुत्तल्ली से श्यामय्य गौड़जी, गौरम्माजी, ये दो निकलें तो वस, मगर कानूरु से चंद्रय्य गौड़जी, रामय्य व सीता (अव वह कानूर की हो गई थी न?) तीनों को निकलना ही चाहिये।

ज्योतिषीजी को जो दक्षिणा देनी थी वह देकर, गाड़ी में चढ़ते समय चंद्रय्य गौड़जी ने "वासू! वासू!" कहकर पुकारा। व्राह्मण-शूद्र का कृतक भेद भूलकर वाल-सहज क्रीड़ा-भाव से ज्योतिषी जी के वच्चों के साथ मिलकर थोड़ी दूर पर कटहल के पेड़ के नीचे छाया में खेलता रहा वासु "हां" कहकर लक्ष्मी को अपनी कमर पर विठाके आ गया। ज्योतिषीजी के लड़के भी उनके साथ ही आकर गाड़ी के पास देखते खड़े रहे।

लक्ष्मी का लहंगा धूल से भरा था, उसे देख सीता ने—"इतनी धूल सारे वदन पै कैसे री?" कहकर धूल को झाड़ा।

गाड़ी में वैठा वासु, कुछ याद हो आने से, मुत्तल्ली के नंज की गाड़ी के अगले भाग में वैठने के पहले, "छोटे ज्योतिषीजी यहां आइये! यहां आइये!" पुकारकर, पुरुषों को सुनाई न पड़े, इतने धीमे स्वर में फुसफुसाया।

छोटे भट्टजी कटहल के पेड़ के नीचे दौड़कर गए और दौड़ते आकर एक छोटे काले कंकड़ को दिया! वह ज्योतिषी के पुत्र को नदी के वालू के ढेर में मिला था। वह उस दिन वासु को दी गई स्नेह की भेंट थी।

६२

मुर्गों की लड़ाई के मैदान में

कानूरु और मुत्तल्ली की दोनों गाड़ियां धर्मस्थल की यात्रा पर गई थीं। उनको जाकर दो सप्ताह बीत चुके थे। दो-तीन बारिश की बौछारें भी पड़ी थीं जिससे हवा में सर्दी आ गई थी। नाला में खड़ा पानी बहने लगा था। जमीन पर दूब उग रही थी। कइयों ने जमीन जोतकर बीज बो दिये थे और खेतों के किनारे मेंड लगा दी गयी। यात्रा पर जाने के पहले चंद्रय्य गौड़जी की दी हुई आज्ञा के अनुसार कानूरु सेरेगार रंगप्प सेट्टजी ने बगीचे के सारे काम अच्छी तरह मेहनत से करा दिया था। चंद्रय्य गौड़जी, रामय्य और वासु भी घर में नहीं थे इसलिए सेरेगारजी के मन में यह भाव उत्पन्न हो गया और अभिमान पैदा हुआ था कि वही अब कानूरु के मालिक हैं। अतः वे बड़ी मुस्तैदी से सारे काम निभा रहे थे।

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सेरेगारजी ने मजा करना छोड़ दिया था। गौड़जी के यात्रा पर जाने के उपरान्त गंगा और सेरेगारजी ने कानूरु के घर को इंद्रिय-सुखों का नंदनवन बना दिया था। प्रतिदिन न्योता नहीं चूकता था। प्रतिदिन एक मुर्गी खतम होती थी। कन्नड़ जिले के निवासियों की तरह एक मुर्गी की तरकारी के लिए चार-पांच नारियलों की गरी डालते थे। इन न्योतों में हलेपैक का तिम्म और सेरेगारजी के नौकरों में से एक मुख्य नौकर शामिल होता। तिम्म जितना हो सके, ताड़ी लाकर देता था। कम पड़ने पर शराब की दूकान से ताड़ी-शराब मंगाई जाती थीं। सेरेगारजी ने मापिल्ला चोर-बाजार करने वालों को धान एवं सुपारी बेचकर भोग के लिए धन कमा लेकर, कुछ संग्रह भी कर लिया। कई रात कानूरु के घर में वे सभी खूब पीते, खाते और नशे में चूर होकर मृदंग बजाते, पुराण कथा प्रसंग रचते, ताश खेलते, चिल्लाते भी रहते थे। इस प्रकार के आमोद-प्रमोद में मशगूल हो शोर मचाते थे।

ये सारी बातें जानकर हूवय्य ने मुत्तल्ली को खबर पहुंचा दी। चिन्नय्य ने (चिन्नय्य, पुट्टम्मा यात्रा पर नहीं गये थे।) ससुर के घर जाकर पूछा तो सेरेगार जी ने सब इनकार कर दिया। फिर कहा—"सारी खबर झूठी है।" लेकिन उस शाम को चिन्नय्य मुत्तल्ली नहीं गया, केलकानूर गया और रात हो जाने पर

हूवय्य, पुट्टण्ण के साथ, सोम को भी साथ में लेकर कानूरु आया और देखा तो वहां का दृश्य वीभत्स था। पुरुषों की वात एक ओर रहे, गंगा की हालत भी न देखने लायक थी। किसी का दिमाग ठिकाने पर नहीं था। कुछ को तो आने वालों की पहचान भी नहीं लगी। एक-दो को तो न जाने क्या हुआ, चिन्नय्य, हूवय्य को देखते ही खिलखिलाकर हंसने लगे। एक तो झूमते, लड़खड़ाते आकर हूवय्य को गले लगाने का प्रयत्न कर रहा था तो सोम ने उसे ढकेल दिया। उसने गिरकर चीख-पुकार की। सेरेगारजी तो अर्ध नग्नावस्था में थे, चिन्नय्य या और किसी की ओर ध्यान दिये विना, आंखें लाल करके, वदन पर गिरने वाले थे। हूवय्य क्रोधित चिन्नय्य को शांत करके पीछे ले गया। दूसरे दिन जव वे सवेरे आये तव सेरेगारजी ने चिन्नय्य का पांव छूकर क्षमा मांगी। चिन्नय्य ऐसा फिर न करने की ताकीद करके मुत्तल्ली चला गया।

मगर सेरेगारजी ने अपने आमोद-प्रमोद वंद नहीं किये। वह चाहते थे कि कुछ कम किया जाय पर गंगा उसे न मानकर, उसने उसे और वल दिया। वह पतित ही नहीं थी, पर उसके हृदय में विषयाग्नि का कुंड धधक रहा था; वह काम-राक्षसी वन गई थी।

गौड़जी दो सप्ताह यात्रा के वाद शनीचर की शाम को जव आये तव संध्या हो रही थी। ताड़ी की दूकान के पास में जो छोटा मैदान था वह वर्षा के कारण हरा-भरा हो गया था। अभी चार नहीं वजे थे। जंगल की छाया सारे मैदान में फैल गई थी। पेड़ों की संधि में से निकलकर आने वाली धूप की सलाखों से मैदान की हरियाली को और भी मनोहरता प्राप्त हुई थी। एक-दो 'पिकलार' पंछियों की ध्वनि के सिवा सारा प्रदेश नीरव था।

उस मैदान का नाम था 'मुर्गी की लड़ाई का मैदान'। वह पहले अन्वर्थक था। फिर अंकित नाम वन गया था। वहुत समय से वह मैदान मुर्गी की लड़ाई, जुआ खेलने के लिए प्रसिद्ध था। वड़े-वड़े नगरों में जैसे राजा-महाराजा, अमीर मिलकर 'घोड़ों का जुआ' का प्रवंध करते हैं वैसे घाट के ऊपर मजदूरों को लाने वाले सेरेगारजी ने मुर्गों की लड़ाई का प्रवंध किया था जो वहुत दिनों से चल रहा था। वह मैदान ताड़ी की दूकान के पास था। जंगल के वीच में गुप्तस्थान था। जुआ खेलने वालों को पुलिस से वचने के लिए, छिपने के लिए सुविधाएं भी काफी थीं। अतः वह मुर्गों की लड़ाई का मैदान वनने के योग्य था।

चार वजे के करीव लोग एक-एक करके, दो-दो करके कुछ गुनगुनाते, कुछ वोलते मुर्गों की लड़ाई के मैदान में जमा होने लगे। ताड़ी के दूकानदार ने एक पेड़ के नीचे ऊपरी जगह पर पहले की भांति आनन-फानन में अपनी दूकान खोल दी। 'वगनी' नामक पेड़ की ताड़ी, शराव, चावल भोज, भूने चने, मुरमुरे, गुड़, तमाखू, पान, वीड़ी, दियासलाई की पेटी, वनाना, उवले अंडे, 'स्वालु' मछली,

ताश के पत्तों के पैक इत्यादि का प्रवंध लड़ाई में आने वालों के लिए करके, जो भी आते उनसे हंसते, वातें करके लुभाते, उनके नातेदारों, मित्रों, खेतों, कुत्तों, मुर्गों आदि के वारे में विचार करते अपना जाल विछाकर वैठे मछुए की तरह वैठा।

आधे घंटे में जंगल के वीच का मौनी मैदान मनुष्यों की वाणियों से सशव्द हुआ। सिर पर सुपारी के पेड़ के छिलके की टोपी पहन, वचपन में हलदी के सींगों के जलाने से पड़े वड़े-वड़े धव्वों की तोंद को दिखाते, त्रिकोणाकार में धोती को कमर से लपेटकर पैरों में चांदी के कड़े पहनकर, कंवल कंधे पर डाले, मुत्तल्ली के सेरेगारजी की तरफ का 'वगली' मुर्गे की लड़ाई के मैदान में अपनी प्रधानता जताने वाले की तरह ठाट-वाट से दो-तीन आदमियों पर लड़ाकू मुर्गों को ढुलवा-कर जोर से वातें करते आया। उस घुटने की रोममय मांसपेशियों पर एक फोड़ा था जिस पर कोयले को घिसकर वनाई दवा का लेप किया गया था। आते ही उसने लड़ाई के लिए लाये गये मुर्गों की, जो पास के झुरमुट से वांधे गये थे, देख-देखकर जांच की। वह 'वगली' लड़ाई के लिए आये किन मुर्गों से अपने मुर्गों को लड़ाया जाय, जानने में होशियार था। इसलिए किस मुर्गे के साथ किस मुर्गे को जोड़ा जाय, यह वताता था। उसकी राय सव मान लेते थे। इसलिए लड़ाई के लिए मुर्गे लाये हुए कुछ लोग उसकी चापलूसी करने के लिए, यद्यपि वेशभूषा में अच्छे थे, उसके पीछे-पीछे अपने दोस्तों के साथ घूमते थे। सूअरों के आगे मोती विखेरने वाले की विचारधारा के अनुसार 'वगली' अपनी वहुमूल्य रायें देते हुए, पिछली लड़ाई में जीते, नाम कमाये अभिमन्यु, कर्ण, अर्जुन आदि पौराणिक विरुद पाये, देखने में सुंदर रहे, धीर रहे, अपने को देखने आये मनुष्यों को अहंभाव से देखते रहे मुर्गों पर हाथ फेरते, उकसाते, सराहते आगे वढ़ा।

आध घंटे में डेढ़ सौ, दो सौ के करीव लोग जमा हो गये। लड़ाई के लिए आये हुए मुर्गों की जोड़ियां वीस-तीस के करीव थीं। आये हुए लोगों में मुर्गों को लाये हुओं को छोड़कर, आधे लोग शर्त वांधने यानी वाजी लगाने, ताश का जुआ खेलने आये थे। आधे लोग मुर्गों को लड़ाने लाये हुओं का पक्ष लेने आये थे, जैसे घोड़ों के जुए में लोग 'यह घोड़ा जीतेगा', 'वह घोड़ा जीतेगा' कहकर पक्ष लेने आते हैं। इसके अलावा वे जुआ खेलने भी आये थे।

पांच वज चुके थे। तो भी मुर्गों की लड़ाई शुरू नहीं हुई थी। सभी किसीकी राह देख रहे थे। मुत्तल्ली के, सीतेमने के सेरेगारजी भी आये थे। मगर कानूर के रंगप्प सेट्टजी सेरेगार के आये विना लड़ाई शुरू नहीं हो सकती थी। उनकी सेरे-गारी में सवकी सेरेगारी मिली हुई थी। (सेरेगारी का अर्थ है चौधराना। सेरेगार यानी चौधरी)

मुत्तल्ली का 'वगली' अपने सेरेगारों से वोला, "हां रे, क्या राह देखें? सेरे-गारो, मुर्गों की लड़ाई शुरू करें। वक्त हो गया है।"

मुत्तल्ली के सेरेगारों को कानूर के सेरेगार को छोड़कर लड़ाई शुरू करने का धैर्य नहीं था।

ताड़ी के दूकानदार का व्यापार सन्निपात ज्वर की तरह चढ़ रहा था।

मैदान में लोग भर गये थे। उनकी आवाज और उनकी बू भी भर गई थी। पान-सुपारी की बू, बीड़ी की बू, सेंकी मछली की बू, ताड़ी, शराब आदि की बू सर्वत्र फैल गई थी। साथ ही मुर्गों की चीख, पंखों की फड़फड़ाहट, बुरी-बुरी गालियां सुनाई देती थीं।

"हां आये ! आये !"

"अरे यह क्या ? महारानी की तरह आ रहे हैं !"

"और क्या ? चंद्रय्य गौड़जी का तख्त ही मिल गया है लो !"

"भाग्य में बदा था !"

इत्यादि व्याख्याओं से लोगों की दृष्टि एक ओर हो रही थी, कानूरु सेरेगार रंगप्प सेट्टजी देर से आने के बारे में मानों क्षमा मांग रहे हों, कुछ जल्दी-जल्दी ही चलते आये।

लेकिन उनके चेहरे पर जल्दी का भाव नहीं था। उसके बदले में उनमें अहंकार, मुख्य आदमी हूं मैं, इसका अभिमान, अपने आगमन की प्रतीक्षा में इतने लोग इतनी देर तक रहे हैं, इसीलिए उनमें अहं—ये सब भाव उनके चेहरे पर चित्रित थे। उनका लाल साफा, कानों में चमकने वाली बड़ी बालियां, धारण किये फूल, सामान्य मूंछ, हजामत कराई दाढ़ी, दृढता या क्रियाशक्ति सूचित न करने वाले गाल, पहना काला कोट, घुटनों के नीचे तक उतरी धोती का काछा, एक पैर में चांदी का कड़ा, चुरमुर-चुरमुर करके उनके आगमन की सूचना देने वाले चमकदार जूते, हाथ में धरी चांदी की मूठ की छड़ी—ये एक-एक करके नागरिकता का अनुसरण करने वाले अनागरिक, असंस्कृत को अच्छी तरह प्रदर्शित कर रहे थे, तो भी वहां एकत्रित लोगों को सेरेगारजी एक आदर्श मूर्ति की तरह विराजते दीखे।

रंगप्प सेट्टजी के आगे और पीछे, अगल-बगल में उनका 'बगली' और नौकर, हलेपैक का तिम्म आदि कानूर के स्वतंत्री भी आ रहे थे। तिम्म ने बगल में एक छोटी जात का लड़ाकू मुर्गा दबा लिया था। नौकरों ने भी बड़े-बड़े मुर्गे पकड़ लिये थे। पेड़ों के बीच में झुंड चलते आ रहा था। तब एक-दो जगहों में झपटकर आने वाली संध्या की धूप में मुर्गों की रक्तिम वर्ण की लाल-लाल कलगियां सेरेगारजी के शीर्षवस्त्र की अपेक्षा लाल दीखती थीं।

लड़ाई के समय आमतौर से रंगप्प सेट्टजी कुछ ज्यादा खुश रहते थे। लेकिन उस दिन हमेशा की अपेक्षा खूब अधिक खुश दीखते थे। स्त्रियों की तरह सिर भर बाल थे। अभी-अभी मुंडे उनके चपटे चेहरे पर अपने लिए बरतन में पुलाव लाने

वाले मालिक को देखकर, पूंछ हिलाते उसके मुख को आशा से देखने वाले कुत्ते के चेहरे पर की आंखों में दिखाई देने वाली त्रिपय लालसा की जैसी एक कांति चमकती थी। वह चमक उनके सिर में, दिमाग में, संचारित व्यभिचारी भाव का प्रतिविंव थी।

मुर्गों की लड़ाई तो रंगप्प सेट्टजी को जान से भी प्यारी थी। तो भी उस दिन अनमना होकर लड़ाई के मैदान में आये थे। क्योंकि उनकी वांस में अटकी उनकी प्यारी मछली धीरे-धीरे उसे काट रही थी। वांस में फंदे में डंठल का गूदा पानी पर नाचने लगा था! अव क्या वांस की रस्सी को खींचने भर से मछली हाथ लग जायगी! उनको वैसे ही छोड़े आये सेरेगारजी का मन पीछे-पीछे खिच रहा था। तो भी 'मुर्गों की लड़ाई के मैदान' में आने के वाद, उन एकत्रित लोगों का उत्साह, उद्रेक, प्रशंसात्मक, खण्डनात्मक वातें, हंसी, लड़ाकू मुर्गों का झुंड, मुत्तल्ली के सेरेगार और सीतेमने के सेरेगार अपने प्रति जो भक्ति-गौरव-आदर दिखाते थे उन्हें, आगे अपने को मिलने वाले जय और लाभों को, ताड़ी, शराव की खुशवू को देखा हुआ सेरेगारजी का मन उस दिन दुपहर अपनी मां के साथ आई नेल्लुहल्ली की सुव्वम्म को फिलहाल भूल गया।

"हां, सेरेगारजी, देर क्यों करें?" पूछने वाले मुत्तल्ली के 'वगली' को रंगप्प सेट्टजी ने "हां वेटा, शुरू कर दें। देर क्यों करें?" कहकर, मूंछों पर ताव देते हुए लड़ाई शुरू करने की आज्ञा संकेत द्वारा दी।

मुत्तल्ली के 'वगली' आदि विशारद मुर्गों की जोड़ी मिलाने के काम में लग गये। तुलु भापा में वातों की वर्पा होने लगी। उस लाल मुर्गे की वरावरी यह सफेद मुर्गा नहीं कर सकता। क्योंकि उसके पैर लंवे हैं। उस रंग के मुर्गे के साथ इस रंग के मुर्गे की लड़ाई के लिए मुहूर्त ठीक नहीं है। (मुर्गों को लड़ाई के लिए छोड़ने का समय, पंचांग देखकर—घटिका, तिथि, राहुकाल इत्यादि, किस रंग के मुर्गे के साथ किस रंग का मुर्गा लड़कर जीतेगा आदि—ज्योतिपियों से पूछकर लोग मुर्गों को लड़ाई के लिए लाते थे) 'यह मुर्गा चार लड़ाइयों में जीता है। उसे आज ही पकड़ लाया हूं।' इस तरह वाद-विवाद और अलग-अलग रायें आदि शुरू हुई। हर मुर्गे वाला ऐसा मुर्गा ढूंढ़ रहा था जो अपने मुर्गे को न हरा सके। क्योंकि लड़ाई का कानून था कि लड़ाई जो मुर्गा हार जायेगा या भाग जायेगा या मर जायगा वह उसका होगा जिसका मुर्गा जीत जायगा। एकैक स्पर्धालु पराजय एवं अपमान से वचने के लिए और जीतने के लाभ और मिलने वाली कीर्ति पाने के लिए कातर रहता था। अलावा इसके दो-तीन लड़ाइयों में जीतने वाले मुर्गे की वहुत कीमत है। इसलिए मुर्गों की लड़ाई को एक धंधा मानने वाले मुर्गे पालते और उनको लड़ाई की ट्रेनिंग देते थे। ऐसे एकैक वीर मुर्गे को तीस, चालीस, पचास मुर्गे मिल जाते! उसके वाद वहादुर मुर्गों को अर्जुन, कर्ण, अभिमन्यु आदि

विरुद भी मिलते थे। ऐसे मुर्गों को पालने वालों का कितना गौरव ! ऐसे मुर्गों की लड़ाई में प्रेक्षक सैकड़ों रुपयों की वाजी लगाते थे।

जल्दी-जल्दी लड़ाई के मुर्गों की जोड़ियां मिलाई गईं। (उस स्पर्धा में भाग लेने वाले) जुआरी अपने-अपने मुर्गों की टांगों में रूढ़ि के अनुसार दो इंच लम्बी, एक चौथाई इंच चौड़ी, हजामत के छुरे से पैनी छुरियां बांधने लगे।

मैदान के सात-आठ स्थानों पर लड़ाई शुरू हुई। एकैक जोड़ी के चारों ओर खिलाड़ी, प्रेक्षक चक्राकार में खचाखच भर गये। प्रेक्षकों में स्वाभाविक ही पक्ष-प्रतिपक्ष हुए। उनमें वाजी लगाने में स्पर्धा होने लगी।

कानूरु के सेरेगारजी की अध्यक्षता में होने वाली लड़ाई के स्थान पर अधिक प्रेक्षक इकट्ठे हुए। क्योंकि वे सबसे ज्यादा वाजी वदते थे और खेल में एक नया जोश पैदा करते थे। इसके अतिरिक्त उनकी अध्यक्षता में सबसे उत्तम, चुने हुए मुर्गों की जोड़ियां ही लड़ाई जाती थीं।

दो जुआरी अपने-अपने मुरगों को लड़ने के लिए तैयार करके उनको छाती से लगाकर मैदान में उतरे। दोनों ने परस्पर सगौरव मुख देखा स्पर्धा के भाव से। एक का मुंह था दुवला, काना, धूलि-धूसरित-सी मूंछवाला। दूसरे का मुंह चेचक के दागों से भरा था, पतली छोटी मूंछ, सदा मद्यपी होने से वनी मस्ती की आंखों से वोलने वाला। विकार, गंदगी, रोष, कोप, हठ, धूर्तता में दोनों वरावर जुआड़ी की तरह दीखते थे। दोनों की नंगी वांहों पर जयलक्ष्मी के वशीकरण मंत्र के तावीज़ गंदे हो वदसूरत दीखते थे।

देखते-देखते दोनों विलकुल नज़दीक आये। काने का लाल मुर्गा, चेचक के दाग वाले का सफेद मुर्गा दोनों आमने-सामने मुंह करके देखने लगे। लाल मुर्गे की कलगी की अपेक्षा सफेद मुर्गे की कलगी वर्ण तारतम्य से वहुत अच्छी तरह दीखती थी। काने के मुर्गे ने चेचक के दाग वाले के मुर्गे की आंख में चोंच मारी। प्रेक्षकों में कुछ ने जयघोष किया। फिर वे भविष्य कहने लगे। सफेद मुर्गे ने भी चोंच मारने का प्रयत्न किया। पर दोनों कुछ पीछे हटे। आमने-सामने खड़े हो गये। लड़ाई के लिए छोड़े जाने वाले मुर्गों को इस तरह करके चिढ़ाने का रिवाज होता है।

जुआड़ी मैदान में थोड़ी दूर-दूर में खड़े होकर अपने मुर्गों को आगे-पीछे सरकाकर, परों पर हाथ फिराकर, उनसे समयोचित वातें करके लड़ाने के लिए तैयार हो रहे थे कि प्रेक्षकों में से एक ने कुछ आगे झुककर सभी को अपने हाथ में पकड़ी दुअन्नी को दिखाते हुए "लाल मुर्गे पर दुअन्नी की वाजी ! कौन वदते हो !" कहकर जोर से चिल्लाया।

दूसरे ने "सफेद मुर्गे पर चार आने !" कहकर चांदी का सिक्का ठनकाकर ऊपर पकड़ा।

चार-पांच लोगों ने केवल, ज्यादा बाजी लगाई। बाकी लोग विरुद के मुर्गों पर बाजी बदने के इरादे से सामान्य मुर्गों की लड़ाई की ओर ग़ौर किये बग़ैर चुप-चाप देखते रहे।

लड़ाई शुरू हुई। आगे-पीछे झूमकर, पंखों को ज़मीन से रगड़कर, ज़मीन पर छोड़ते ही, दोनों मुर्गे एक-दूसरे को शान से देखते, अभिनयार्थ ज़मीन पर चोंच मारते, कुश्ती के पहलवानों की तरह परस्पर देखते, घात लगाकर, धीरे-धीरे, क्षण-क्षण समीप जाकर, गरदन के बालों को उभारकर, एक-दूसरे का मुंह ताकते दृष्टि युद्ध करते, हां, हां में, प्रेक्षकों को अचंभे में डालते हुए एक-दूसरे की छाती पर रप्-रप् लात मारने लगे। तीन बार मारकर चौथी बार टूट पड़ना ही चाहते थे कि सफेद मुर्गे वाले ने अपना मुर्गा खींच लिया। लाल मुर्गे वाला अपने मुर्गे को उठाना ही चाहता था कि वह गुस्से से उड़कर आया और सफेद मुर्गे की छाती पर लात मार दी। चेचक के दाग वाले ने अपने मुर्गे को झट ऊपर उठा लिया ताकि फिर उसको चोट न लगे। मगर लाल मुर्गे के पैर में बंधी छुरी उसके हाथ में लगी तो खून बहने लगा। इतने में काने ने भी अपना मुर्गा पीछे खींच लिया। चेचक के दाग वाले को गुस्सा आया। सेरेगार रंगप्प सेट्टजी ने झगड़े को न बढ़ने देने की दृष्टि से दोनों मुर्गों को फिर लड़ने के लिए मैदान में छोड़ने का आदेश दिया।

पहले की तरह दोनों मुर्गे लड़ने लगे। एक ही मिनट में सफेद मुर्गे की छाती के पर लाल हो गए। "हो-हो-हो, पकड़ो, पकड़ो" कहते-कहते ही रहे तो उसके मालिक ने उसे उठा लिया और जांच की। बहुत खोजने पर उसको पता लगा कि मुर्गे की छाती पर चोट लगी है। लाल मुर्गे की छुरी एक इंच अंदर घुसी थी, सो मालूम हो गया। मालिक को यकीन हो गया कि अपना मुर्गा मर जायगा तो जो कुछ भी हो, सोचकर उसे उसने पानी पिलाया, ठंडा पानी छिड़ककर फिर लड़ने के लिए मैदान में छोड़ दिया। वह मुर्गा भी थोड़ा भी डरे बिना, अपनी छाती के दर्द की भी परवाह न करके फिर लड़ा। दो-तीन मिनटों में खून कै करके ज़मीन पर लुढ़क पड़ा। उसे उठाकर जांच की गई। छाती पर तीन घाव हो गये थे। छुरी की एक-एक चोट एक-एक इंच बदन में घुस गई थी। तो भी वह मुर्गा मरने तक लड़ा। भाग नहीं गया। इसीको कहते हैं 'मुर्गे की शूरता'।

लाल मुर्गे के मालिक ने अपने विजयी मुर्गे के आगे विजयोन्माद से सफेद मुर्गे की लाश को फेंक दिया। परंतु लाल मुर्गे को भी चोट लगी थी। वह भी सिर नीचा करके ज़मीन पर गिरने वाले की तरह झुकने लगा। उसे जल्दी-जल्दी उठाकर उसकी भी जांच कर ही रहे थे कि वह भी वह मर गया। दोनों जुआड़ी अपने-अपने मुर्गों को उठाकर दुख से उनकी तरफ देख रहे थे कि लाल मुर्गे के मालिक के पीछे से किसी ने तुलु भाषा में कहा—"हां रे कुदका, चोट लगी थी?"

भीलों की जात के कुदक ने अपनी कानी आंख को ऊपर उठाकर देखा : घाट के ऊपर वालों की तरह पोशाक पहने सोम कुदक के हाथ में रहे लाल मुर्गे के कुशल के बारे में पूछ रहा था, तो भी वह ज़मीन पर पड़े सफेद मुर्गे की ओर आशा भरी दृष्टि से देखते उसके पास जाकर खड़ा हो गया।

६३

सोम पर प्रलोभन के पिशाच की सवारी

हूवय्य के पत्र के अनुसार सिगप्प गौड़जी ने जो पचास रुपये दिये वे और पत्र लेकर सीतेमने से केलकानूर जाने वाले सोम पर मार्ग के मध्य में एक प्रलोभन का पिशाच सवार हुआ। शनिवार शाम को मुर्गों की लड़ाई होने की बात उसको मालूम थी। कन्नड़ जिले का वह निवासी होने से, स्वाभाविक ही उसको मुर्गों की लड़ाई में अधिक आसक्ति थी। परंतु हूवय्य ऐसी बातों के विरुद्ध था। इसलिए सोम ने अपने मन को उस ओर से रोक लिया था कोशिश करके। परंतु समय मिलने पर मन पर मजबूत काबू रखने की क्षमता मन में नहीं थी।

हूवय्य ने अपनी जमीन के काम के लिए आवश्यक धन सिगप्प गौड़जी से मांगते जो पत्र लिखा था उसे वह पुट्टण के द्वारा भेजना चाहता था, परंतु सोम ने खुद सीतेमने हो आने की इच्छा प्रकट की तो हूवय्य ने उसके द्वारा पत्र भेजा। सोम सीतेमने जाने के लिए निकला तब मुर्गों की लड़ाई के मैदान में जाने का विचार उसने नहीं किया था। मगर सीतेमने से लौटते समय भीतर छिपी वह 'आकांक्षा' धीरे-धीरे ऊपर उठी।

'क्या हुआ यदि जाकर देख आऊं तो! एक बार पान-सुपारी खाने में जितनी देर लगती है उतनी भी देर नहीं लगेगी वहां तक जाने के लिए। इतना पास है वह जगह। मेरा जाकर आना कौन जानेगा? मैं तो लड़ाने के लिए मुर्गा नहीं ले जा रहा हूं! बाजी लगाने मेरे पास पैसे भी कहां है?' सोच रहा था तब उसे याद आया कि अपनी जेब में पचास रुपये हैं। पर वे रुपये उसके मालिक के हैं। वे रुपये अपने पास हैं, पर नहीं के बराबर! इस तरह सोचकर वह मुर्गों की लड़ाई के मैदान की ओर जल्दी-जल्दी चला। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ा वैसे-वैसे मुर्गों की लड़ाई देखने की उत्सुकता बढ़ी, वह जोर से भागने लगा। लड़ाई का मैदान नजदीक आने पर, एक बार खड़ा हुआ, अपनी पोशाक को ठीक कर लिया, प्रशंसा की दृष्टि से देख-कर बढ़ा।

उसके मैदान पहुंचने के पहले ही दो-चार जगह लड़ाई शुरू हो गई थी। लड़ने वाले मुर्गों को देखते रहे लोगों ने न सोम की ओर देखा, न उसकी पोशाक की ओर

गौर किया। सोम ने सोचा कि यह अच्छा ही हुआ। वह एक ओर खड़े होकर देखे विना, वहां एकत्रित लोगों के समूह की ओर चलने लगा। तव तक केवल प्रेक्षक बनकर रहने की आकांक्षा मिट चुकी थी, अभिरुचि भी, उसका मन अस्थिर वनने लगा था।

लड़ाइयां तो हर एक जगह अपनी विशेषताओं से मनोहर हो गई थीं। एक जगह लड़ाई शुरू होने के दो-तीन मिनटों में एक मुर्गा डरकर झुरमुट की तरफ भागा और छिप गया। वाजी मारने वालों की हंसी और ताली का, हारने वालों के विषाद और गालियों तथा अपने मालिक के अपमान एवं क्रोध का कारण वन गया वह भगोड़ा मुर्गा। दूसरी जगह दो मुर्गे जमकर लड़े और एक का पेट चिर गया। तुरंत उसके मालिक ने और उसके पक्ष वालों ने मिलकर घाव को सिया, दवा लगाई, पानी पिलाया, फिर लड़ने के लिए छोड़ दिया तो एक-दो मिनटों में उसने अपने प्रतिद्वंद्वी को जान से मार दिया और खुद जी गया। तीसरी जगह मुर्गे को पानी पिलाने के वजाय शराव पिलाने के कारण वह अपने प्रतिद्वंद्वी मुर्गे को छोड़कर लोगों पर झपटा जिससे उसकी टांग में वंधी छुरी से एक-दो को चोटें भी लगीं।

इस तरह सभी लड़ाई के स्थानों में काफी उद्वेग, उल्लास होने पर भी सोम के मन को चैन नहीं। उसने सोचा था कि सव मुझे देखेंगे। उसकी सोच वेकार गई। उसने सोचा कि मैं एक मामूली साधारण आदमी हूं, इससे उसे दुख हुआ। अगर लोगों को मालूम होता कि मेरी जेव में एक नहीं, दो नहीं, दस-वीस नहीं, पचास रुपये हैं तव लोग मेरी इस तरह उपेक्षा करते? अव मैं एक दो-रुपये की वाजी लगाकर या लड़ाकू मुर्गा खरीदकर मैदान में उतर जाऊं तो ये सव मिलकर मुझे नाचीज वना सकेंगे? जाने दो, यह समय नहीं है। और फिर एक वार मुर्गों की लड़ाई हो तो देखूं, यों सोचकर वह वहां गया जहां कानूरु रंगप्प सेट्टजी थे अध्यक्ष वनकर। उनको देखते ही उसका मन अचानक मस्त होकर गरजा। आगे वढ़े विना, पीछे रहकर, सेरेगारजी की 'जवरदस्त' को असूया और तिरस्कार से देखने लगा। उसने मन में सोचा कि रंगप्प सेट्टजी ज्यादा रकम की वाजी लगा दें तो मैं उनसे भी ज्यादा वाजी लगा दूंगा, जो कुछ भी हो जाय। खुशकिस्मती से सेरेगारजी ने वाजी नहीं लगाई।

तो भी सोम मन में ही सेरेगारजी का मुर्गा सफेद है, मेरा लाल रंग का है, कल्पना करके लड़ाई के पर्यवसान की राह देख रहा था। सफेद मुर्गा जव मरकर गिर गया तव उसको इतना हर्ष हुआ कि मानो उसीने सेरेगारजी को मार डाला हो! इसीलिए उसने जीतने वाले के पास (जीतने वाले का नाम कुदक था) जाकर, "अरे कुदका, चोट लगी थी?" कहकर कुशल-समाचार की वातें करके सहानुभूति दिखाई। मरकर गिरे, पुष्ट, सफेद मुर्गे को देखते खड़े सोम में विजय की मस्ती के साथ, कुछ समय पूर्व अधिक रही, आजकल कम हुई मांस की लोभ-

लोलुपता फिर जागृत हुई। तुरंत वह अपनी तत्कालीन हालत भूल गया।

खुद एक मुर्गा खरीदकर मैदान में उतरा, कम से कम एक मुर्गा जीतने के लिए उसका मन ललचाने लगा। जेब में रखे नोटों का पुलिंदा स्पर्श करके देखा। उसके भीतरी आंख को हूवय्य का चित्र दीख पड़ा। स्वामी का, अपने को बर्बरता से इस नागरिकता की स्थिति तक पहुंचाने वाले रक्षक स्वामी का, किसी का बुरा न करके, सबों का उद्धार करने का प्रयत्न करने वाले स्वामी का, नीच जाति के गरीबों की झोंपड़ियों तक को जाकर दवाइयां लेजाकर देके पालन करने वाले देवता सदृश स्वामी का, द्रोह करने जैसा होगा न अगर मैं ऐसा करूं तो? यह विचार आते ही एक दूसरा विचार भी आया जिससे उसे समाधान हुआ और उसका विचार जीत गया।

"ज्यादा से ज्यादा एक-दो रुपये खर्च होंगे एक लड़ाकू मुर्गे के लिए! उसके साथ दूसरा मुर्गा जीतकर ले जाकर दे दें तो दो रुपयों के बदले चार रुपये दिये के समान होगा।···कुछ नाराज होकर गाली देंगे! दें तो दें, मालिक ही तो हैं! मैं न तो बाजी लगाने, न शराब पीने, न ताश खेलने जाता हूं! अगर दो रुपये देने के लिए मजबूर करें तो कह दूंगा—"मेरे वेतन में से काट लीजिये।···बस!"

ये विचार भय, समाधान, क्षणमात्र में सोम के दिमाग में संचार कर चुके थे।

सोम जमीन पर गिरे सफेद मुर्गे पर की अपनी दृष्टि को ऊपर उठाकर, कुदक के हाथ में मरे मुर्गे को देखते, "चोट कहां लगी रे?" पूछते कुदक के और नजदीक गया।

काना सोम को देखे बिना अपने लाल मुर्गे को सफेद मुर्गे के पास फेंककर काले कंबल पर बैठ पान-सुपारी खाने लगा।

इतने में थोड़ी दूर पर एक लड़ाई के स्थान पर कई लोगों का शोरगुल, झगड़े का शोर वहां रहे सामान्य शोरगुल के स्थान पर अधिक होकर सुनाई देने लगा। लोग उस ओर भागने लगे तो सोम भी भागा।

प्रेक्षकों में बाजी बदने में दो आदमियों के बीच में गरमागरम बहस होकर हाथापाई तक झगड़ा शुरू हो गया था। क्योंकि जुए में जीतने वाले को हारने वाले के पास देने के लिए पैसे नहीं थे। जीतने वाला पैसे देने के लिए जोर कर रहा था, हारने वाला कह रहा था कि मैं दूसरी जगह बाजी लगाकर जीत के पैसे दे दूंगा। दोनों खूब पी भी चुके थे। हारने वाले के पास जब जीतने वाला आया तो उसको हारने वाले ने ढकेला तो जीतने वाले ने गुस्से में आकर हारने वाले की नाक पर घूंसा जमा दिया जिससे खून बहने लगा! जब हारने वाले ने एक मैले कपड़े से अपनी नाक पोंछते हुए अपनी जेब में से छुरी निकाली तो लोगों में हाहाकार मच गया और उन्होंने उसे घेरकर उसके हाथ से छुरी छीन ली और दोनों झगड़ालुओं को अलग-अलग किया।

लोग झगड़े के पक्ष में, विपक्ष में नाना प्रकार से बातें करते अलग-अलग लड़ाके स्थान पर जब जा रहे थे तब सोम भी मूल्य पर मिलने वाले मुर्गे की तलाश करने लगा। बहुत कोशिश करने पर भी, कहीं उसको मुर्गा नहीं मिला। अंत में वह ताड़ी के दूकानदार के यहां गया और पूछा।

उसने प्रश्न का जवाब दिये बिना, "क्यों सोमय्य सेट्टजी, आजकल हमें भूल ही गये तो!" शुरू किया।

"क्या कहूं महाराज! एक लड़ाकू मुर्गे को ढूंढ़-ढूंढ़कर थक गया।···तुम्हारे पास नहीं है? पैसे देता हूं! नकद!" कहा तो ताड़ी के दूकानदार ने एक पात्र में अच्छी फेनिल ताड़ी भरकर दी प्रत्युत्तर में।

सोम ने सिर हिलाकर जताया कि मैंने ताड़ी पीना छोड़ दिया है।

दूकानदार ने "कोई हर्ज नहीं। एक बार पीने से क्या होगा? सो भी नशा लाने वाली ताड़ी नहीं है यह। ताजी है। अभी-अभी उतारी गई है, मीठी है!" कहते हुए ताड़ी भरे प्याले को सोम की नाक के पास बढ़ाया। नाक को ताड़ी की खुशबू लगी। सोम ने ताड़ी के दूकानदार के सत्कार के आग्रह से, ताड़ी की खुशबू के सम्मोहन से और वहां के दो-तीन लोगों की प्रेरणा से, हूवय्य के सहवास एवं महिमा से तजे हुए मादक पदार्थों का सेवन फिर से किया। ताड़ी बड़ी जायकेदार थी।

ताड़ी के दूकानदार ने एक आदमी को अपने घर भेजकर, लड़ाकू मुर्गा कह-कर एक को मंगा लिया! उसके पैर में निशान थे जो यह बताते थे कि उसे कई दिनों से बांधकर रखा था। उसकी लाल कलगी काट दी गई थी। पूछा गया, "क्यों?" तो कहा गया, "उसमें भूत का संचार होता था। उसको भगाने के लिए ऐसा किया गया।" मुर्गे के पर सब झड़ गये थे। मगर देखने में वह मोटा था। वह सिर्फ मुटापा था, न ताकत का, न सुष्टि का।

सोम मुर्गे को न पहचान सका। अगर वह पहचानता तो उसे मालूम होता कि हलेपैक के तिम्म की झोंपड़ी से उससे चुराया गया मुर्गा वही था। अंधेरे में चुराकर ले गया था, इसलिए उसे अच्छी तरह से नहीं देखा था। देखा था, तो भी उसके तुर्रे को और भद्दे ढंग से बढ़े उसको पहचानना भी सोम को मुश्किल होता।

अंत में काटकर खाने योग्य बने मोटे मुर्गे को लड़ाकू मुर्गा कहके, झूठ बोलकर दूकानदार ने सोम को तीन रुपये में बेच दिया। इस सौदे के प्रारंभ में दी गई ताड़ी के असर ने भी दूकानदार के पक्ष में काम किया।

सोम एक झुरमुट के पास गया। मूतने वाले का-सा बहाना करके, नोटों का पुलिंदा खोलकर पांच रुपये का नोट निकालकर ताड़ी के दूकानदार के पास गया और पूछा, "फुटकर पैसे हैं इस लोट के?"

ताड़ी के दूकानदार ने सोम की तरफ अर्थगर्भित दृष्टि से देखकर 'लोट' के फुटकर रुपये देकर तीन रुपये अपनी जेब में उतार लिये!

सोम ताड़ी के दूकानदार के मुफ्त में दी हुई और ताड़ी पीकर, मोटे मुर्गे को बगल में दवाकर, अकड़ के लड़ाई के मैदान में उतरा। अव वह मुर्गों की लड़ाई का मैदान उसे पहले से अधिक सजीव, मनोहर, उत्साहभरा, वीररस से सना हुआ दिखाई पड़ा। सोम शोरगुल के वीच अपने आप "घर के इर्द-गिर्द दीवार! मैदान के लिए मुर्गा! चांदी की मढ़ी वेंत है।" गुनगुनाते, वीच-वीच में सीटी वजाते भीड़ में आगे वढ़ा।

मुर्गों की लड़ाई के अनुभवी सोम के मुर्गे को देखकर हंसने लगे। कुछ ने मजाक किया, "इस मुर्गे को कहां से लाया रे?" कुछ ने उस मुर्गे को 'कुंभकर्ण' नाम दिया। सोम किसी की हंसी, मजाक की परवाह किये विना अपने मुर्गे की जोड़ी तय करने के लिए मुत्तल्ली के सेरेगार 'वगली' के पास गया और जोड़ी के मुर्गे के लिए पूछा। उस वगली ने सोम के मोटे मुर्गे को देखकर, भीतर से फूटती हुई हंसी को कुछ वहानों से वाहर निकालते हुए, हलेपैक के तिम्म को वुलाकर उसके मुर्गे की जोड़ी वना दी। हलेपैक के तिम्म का मुर्गा देखने में वहुत छोटा था। सोम के मुर्गे के वजन के आधे वजन का भी नहीं था। उसे देखकर सोम को खुशी हुई—अपना मोटा वीर मुर्गा एक मिनट में तिम्म के दुवले मुर्गे को जमीन पर गिरा देगा; तिम्म का मुर्गा अपने को मिल जायगा। रात को मुर्गे की तरकारी अच्छी रहेगी!

वस! सोम ने एक मुर्गे की छुरी खरीदी और अपने मुर्गे की टांग में उसे संभ्रम से वांध दिया। कसकर वांधने के वाद वहुत देर छोड़ना ठीक नहीं समझकर उसने तिम्म से जल्दी करने को कहा। तिम्म का मुर्गा भी तैयार हो गया।

सोम ने जव अपना मुर्गा लड़ने के लिए मैदान में छोड़ दिया, इकट्ठे हुए लोग उसे देखकर हंसने लगे। विना कलगी का मुर्गा; विना पंखों का मुर्गा; तोंद के वढ़ने से भद्दा मुर्गा! उसकी टांग में छुरी वांध दी गई थी। इसका अभ्यास न होने से वह वेचारा मुर्गा! उसे चलना दूभर हो गया। वह लड़खड़ाने लगा।

दोनों मुर्गों को मैदान में छोड़ दिया गया। अपने जन्म से लड़ाई में अनभिज्ञ सोम का मुर्गा अपने खाने की वस्तु को कुरेदकर देखने लगा (कुंभकर्ण नाम जो था)। एकत्रित लोग निंदा की वात करने लगे तो सोम को गुस्सा आया! अपने मुर्गे के पक्ष में किसी को वाजी न लगाते देखकर उसने गुस्से से खुद "आठ आने की वाजी लगाता हूं! इसके ऊपरी वाजी!" जोर से पुकारा।

सेरेगार रंगप्प सेट्टजी ने तिम्म के मुर्गे के पक्ष में वाजी लगा दी—"वारह आने!"

सोम ने कहा, "एक रुपया!"

सेरेगार जी ने भी कहा, "अच्छा!"

सोम ने अपने मुर्गे को उकसाकर लड़ने छोड़ दिया। उसके मुर्गे को जवर-

दस्ती से ब्रह्मचर्य का व्रत पालने लगाया गया था। अतः वह अपने प्रतिद्वंद्वी को मुर्गी समझकर 'कोंक्-कोंक्' करते अपने पर फैलाकर प्रणय चेष्टा करते आगे बढ़ा। वहां एकत्रित सभी लोग जोर से हंसते, ताली बजाते, नाचने लगे। कुछ ने "अनिष्ट! अनिष्ट! अपशकुन!" कहकर कोसा। वह अट्टहास सुनकर दूसरी जगह के लोग भी झुंड-झुंड में दौड़कर वहां आये! बड़ी भीड़ हो गई!

कुंभकर्ण प्रणय चेष्टा करते हुए आगे बढ़ा। सोम ने सोचा कि वह भी एक समर विधान है। अतः वह बिना शर्माए खड़ा रहा। तिम्म के मुर्गे ने प्रणय-भिक्षा पात्र में एक दमड़ी भी डाले बिना एक बार जोर से लात मार दी। कुंभकर्ण लोगों की हंसी के बीच में दो बार लुढ़ककर गिर पड़ा। पंख के पास चोट लगी और खून बहने लगा।

सोम ने चोट जहां लगी थी वहां दवा लगा दी। फिर उसे लड़ने के लिए छोड़ दिया मैदान में। अब की बार कुंभकर्ण ने लड़ाई की। मगर तीसरी बार तिम्म के मुर्गे की छुरी कुंभकर्ण की छाती में घुस गई और सोम का मुर्गा खून की उलटी करके लुढ़ककर गिर पड़ा एक ओर!

सोम हताश हुआ और वह और आगबबूला हो गया। ज़मीन पर लुढ़क पड़े मुर्गे को उठाकर उसे उसने पानी पिलाया, ताड़ी पिलाई। और चोटों पर दवा लगाई फिर वह उसे लड़ने छोड़ना चाहता था, इसलिए उसे मैदान में ज्योंही छोड़ दिया त्योंही गर्दन के टूटने से वह गिर पड़ा। लड़ाई के कानून के अनुसार हलेपैक के तिम्म ने उस मुर्गे को ले लिया और सेरेगारजी ने बाजी का एक रुपया भी ले लिया।

सोम मुंह लटकाकर केलकानूरु जाने का विचार कर रहा था। तब कुछ ने कहा, "अब कर्ण-अर्जुन की लड़ाई होगी। देखकर जायं।" ऐसे अद्भुत दृश्य को देखे बिना नहीं रहना चाहिये, सोचकर सोम भी उनके साथ कर्णार्जुन की लड़ाई देखने गया।

कई लड़ाइयों में जीतने के कारण दोनों मुर्गों ने 'कर्ण' तथा 'अर्जुन' विरुद पाया था। उन मुर्गों की लड़ाई अत्यंत अद्भुत, रुद्र-रमणीय था! ऊपरी बाजी दस, बीस रुपये तक चढ़ गई थी। जमे हुए सभी लोग रोमांचित होकर देखते थे। एक बार अर्जुन का पेट फट गया था। चिर गया था। और अंतड़ियां दीख रही थीं। तब उसे सींकर, दवा लगाकर, पानी पिलाकर, होशियार करके फिर लड़ने के लिए छोड़ दिया था।

सोम अपने कष्टों तथा अपमान को भी भूलकर, गौर से लड़ाई देखते भीड़ में खड़ा था। उसको लगा कि किसीने उसके कंधे पर हाथ रख दिया है। घूमकर देखा। कोई नहीं था। फिर उसको लगा किसीने उसका कुरता खींच लिया है। फिर उसने घूमकर देखा, कोई नहीं था। पास के ताड़ी के दूकानदार का लड़का

साला लड़ने वाले मुर्गों को ही टकटकी लगाकर देख रहा था। सोम भी देखने लगा।

घमासान लड़ाई हो रही थी। पराकाष्ठा तक पहुंच गई थी। पीछे से आकर हलेपैक के तिम्म ने सोम को बुलाया। अपने मुर्गे का अपहरण कर लिया है, अपने चिढ़ाने के लिए आया है, अनुमान करके सोम ने सिर हिलाकर बता दिया कि नहीं आऊंगा। तब तक अंधेरा हो गया था। उसको बुलाने वाले तिम्म का लाल चेहरा दिखाई नहीं पड़ा।

तिम्म जल्दी-जल्दी आया और उसे खींचकर ले गया जबरदस्ती से। उसे गाली देते हुए, उसका प्रतिरोध करते हुए सोम को जाना पड़ा। दोनों पेड़ के नीचे की ताड़ी की दूकान पर गये। वहां लैंप की लाल रोशनी में पड़े हुए कुंभकर्ण के शव को दिखाते हुए तिम्म ने जोर से पूछा—"यह किसका मुर्गा है ?"

सोम ने कहा, "इसे मैंने ताड़ी के दूकानदार से खरीदा है।"

तिम्म ने गरजकर पूछा, "उसको किसने लाकर दिया ?"

"मुझसे क्या पूछते हो ? उससे पूछो !" कहकर सोम ने ताड़ी के दूकानदार की ओर देखा।

ताड़ी के दूकानदार ने कह दिया, "मेरे कर्ज को चुकाने के लिए तुम्हीं ने लाकर दिया।"

एक बार सोम को घटी सारी बातें ध्यान में आईं। कुछ महीनों के पूर्व स्वयं चुराकर लाये और दिये मुर्गे का तुर्रा, पंख काटकर, बांधकर, रखके, बाद को मुझे ही बेच दिया है चोट्टे दूकानदार ने ! हाय रे ! धोखा खा गया ! अब क्या करूं ? झूठ को साधना एक मार्ग है।

सोम इस बात पर अड़ा रहा कि ताड़ी के दूकानदार ने जो कहा वह सरासर झूठ है।

ताड़ी का दूकानदार एक ओर से, तिम्म एक ओर से जोर-जोर से बातें करते सोम के बिलकुल पास आये और तिम्म पर टूट पड़े और पीटने लगे। तिम्म जोर से चीखने लगा।

सीतेमने सेरेगारजी ने अपनी तरफ के लोगों के साथ आकर सोम को छुड़ा दिया। उसके सारे कपड़े फट गये थे। शिरोभूषण भी कहीं उड़ गया था। सोम फूट-फूटकर रोते, अपने कपड़ों को ठीक कर लेकर अंधेरे में अकेला ही घर की तरफ निकला।

रास्ते में सोम रोते-सोचते गया—'हूवय्य के पांव पड़कर उनसे क्षमा मागूं। पचास रुपये में से जो चार रुपये मैंने खर्च किये हैं (मुर्गे, के तीन, बाजी का एक रुपया) उन्हें अपने हिसाब में खर्च लिख लेने के लिए प्रार्थना करूं, और किसी न किसी तरह से ताड़ी के दूकानदार और हलेपैक के तिम्म का

वदला लूं !"

धीरे-धीरे अंधेरा घना हो गया। आकाश में अनगिनत तारे वज्रसुई की नोकों के जैसे झिलमिलाते आंखों में चुभते थे। एक वार सोम ने अपनी जेव में हाथ डालकर देखा तो दंग रहकर खड़ा हो गया जैसे उस पर भूत सवार हो गया हो; जेव में रखा नोटों का पुलिंदा का पुलिंदा ही गायव हो गया था !

६४

सुब्बम्म और गंगा के बीच कुश्ती

जिस दिन सुब्बम्म को खबर मिली कि अपने पति यात्रा पर गये हैं उसी दिन से वह सोच रही थी कि अपने सारे गहने और सामान कानूर से नेल्लुहल्ली लाना चाहिए किसी तरह। उसने अपना विचार माता-पिता को भी सुनाया था। पेद्दे गौड़जी ने जुगुप्सा से पुत्री की बात की उपेक्षा करके कह दिया था, "वे अपने गहने-कपड़े अपनी लाश को पहना लें। तुम्हारे लिए क्यों? मेरे घर में तुम्हारे खाने-पहनने की क्या कमी है?"

विना बुलाये कानूरु जाऊं तो संदेह के लिए गुंजाइश है। सारा काम विगड़ जायगा। इस प्रकार सोच ही रही थी कि सेरेगारजी ने आकर कहा, "गौड़जी ने यात्रा पर जाने के पहले आपको कानूरु बुला लाने के लिए मुझे आज्ञा दी थी।" सेरेगारजी के बुलाने आने का कारण वह समझ गई। उसने यह भी जान लिया था कि अपने पतिदेव कभी इस तरह आज्ञा देनेवाले नहीं हैं। सेरेगारजी का कहना सरासर झूठ है। फिर भी अपने काम को पूरा कर लेने के इरादे से मिले हुए मौके को हाथ से निकलने न देने की इच्छा से अपनी माता के साथ वह कानूरु गई। उसके भाग्य से उसी दिन मुर्गों की लड़ाई का दिन था; सेरेगारजी, उनके नौकर, हलेपैक का तिम्म आदि अन्य पुरुष भी तीसरे पहर में कानूरु से मुर्गों की लड़ाई के मैदान में चले गये। घर में प्रधान व्यक्ति के तौर पर अकेली गंगा थी।

गंगम्मा को देखते ही सुब्बम्म के हृदय में मात्सर्य, द्वेष की आग सुलग गई थी। कन्नड़ जिले की उस औरत को घाट के ऊपर वाली स्त्रियों की तरह, कपड़ा-गहना पहनकर, घर की मालकिन की तरह आचरण करती हुई देखकर, सुब्बम्म ने निर्णय किया कि अपने सारे संकटों का मूल कारण यही छिनाल-बदचलन स्त्री है। उसको वहीं पकड़कर, गिराकर, काटकर नोचने का मन हुआ। लेकिन अब की सुब्बम्म तब की सुब्बम्म नहीं थी। कष्टों की मल्लशाला में पलती वह उतावलापन छोड़कर, अपना काम बना लेने की कार्रवाई करना सीख गई थी।

उसने यहां तक सीखा था कि गंगा को अपने हीरे के कुंडल पहने देखकर "वह किसका है? कहां से आया?" पूछे विना "मेरे कुंडल तुम्हारे कानों में कितने सुंदर

दीखते हैं ?" हंसमुख होकर प्रशंसा की। उसको अपनी शादी की साड़ी पहने देखकर पूछा—"पानी में डालने से इसका रंग नहीं गया ?" यह सब देखकर गंगा वेशक हो, सुब्बम्म को पहले से भी अधिक बुद्धू समझकर बरतने लगी।

सेरेगारजी को तो सुब्बम्म के आगमन से ताड़ी का अमल सिर तक चढ़ा-सा लगा। उन्होंने सोचा कि मुझे चाहकर ही गौड़ जी की गैरहाजिरी में वह आई है। इस प्रकार सोचने से उनके भीतर आशा के जिराफ ने इन्द्रलोक के नंदनवन के कल्पवृक्ष के हरे पत्ते चरने के लिए आकाश पर सिर उठाया। माता और पुत्री दोनों के आने से खुद उन्होंने उनके बैठने के लिए दरी बिछा दी। पांव धोने के लिए पानी लाने गंगा से कहा। खुद तश्तरी में पान-सुपारी लाये और दिया। इस प्रकार नाना ढंग से उपचार-सत्कार करके कई सांत्वनापरक बातें करके सहानुभूति को दर्शाया। उनके मन में इच्छापूर्ति का आनंद और अज्ञात कोई संशय-संदेह उठे।

मुर्गे की लड़ाई के मैदान जायं, न जायं पसोपेश में थे रंगप्प सेट्टजी, तब सुब्बम्म ने ही उन्हें उकसाकर कहा—"आप जाकर दो मुर्गे जीतकर आइये देखें ! रात को मजेदार जायकेदार रसोई बनायें !" इस प्रकार कहकर सुब्बम्म ने उन पर जादू कर दिया। 'रात को', 'जायकेदार', 'मजेदार' आदि बातों का नाना अर्थ तथा कल्पना करके, रोमांच का अनुभव करते सेरेगारजी मुर्गों की लड़ाई के मैदान के लिए रवाना हुए।

निंग के पुत्र पुट्ट को गुप्त रूप से बुलाकर, खाजा देकर, "मैं जो सामान देती हूं उन्हें खिड़की के बाहर खड़े होकर लेना और दूर जाकर उन्हें एक झुरमुट में छिपाकर रखना, किसी को दिखाई न पड़े।" इस प्रकार षड्यंत्र रचकर सुब्बम्म रसोईघर गई। वहां सबने मिलकर 'स्वार्लु' मछली को चाटते हुए शराब पी ली। उसने खुद थोड़ी शराब पी ली और गंगा को आग्रह करके ज्यादा पिलाई। अपनी मां को ज्यादा न पीने का इशारा किया। फिर शाम को सेरेगारजी से जीतकर लाये जाने वाले मुर्गों की तरकारी के लिए मसाला बनाने का काम गंगम्म को सौंपकर सुब्बम्म ने खुद टिकिया बनाने का काम अपने ऊपर ले लिया।

गंगा पिछवाड़े की ओखली में मसाला बनाने लगी। सुब्बम्म रसोईघर में चूल्हे के पास बैठकर टिकिया बनाने लगी।

इस बीच में उसने अपनी मां को आटा सानने को कहा और गंगा अगर आकर पूछे तो कह देना कि मैं पखाना गई हूं, इस तरह सूचना देकर सुब्बम अपने सोने के कमरे में गई और अपना काम करने लगी। खिड़की के उस तरफ खड़ा रहा पुट्ट। अपने हाथ में दिये जाने वाले चांदी, सोने को कीमती गहने, कीमती कपड़े, मुंह फैलाकर, आंखें फाड़कर देखते, उनको छाती से लगाकर फूलने लगा पुट्ट !

सुब्बम्म जितना हो सके उतना शीघ्र अपने सामान खोजकर खिड़की के बाहर

दे रही थी। कुछ संदूकों की तालियां वदल दी गई थीं, उनको उसने तोड़ने का प्रयत्न किया। कमरे के भीत की जंजीर चढ़ा ली थी ताकि कोई अन्दर न आ सके। तो भी ताली तोड़ते समय की आवाज़ पिछवाड़े में मसाला वनाने वाली के कान पर भी पड़ी। गंगा ने एक वार सामान लेने के वहाने से भीतर आकर पूछा, "सुव्वम्मा कहां हैं?" सुव्वम्मा की मां ने कहा—"पखाना जाती हूं, कहकर गई है।" फिर दूसरी वार गंगा ने भीतर आकर देखा तो सुव्वम्म वहां नहीं थी। सीधे चलकर चंद्रय्य गौड़जी के कमरे का दरवाजा उसने ढकेला। जो भी हो, थी तो वहुत समय से रहस्य वृत्ति में पगी-पली प्रवीणा!

पहले पहल सुव्वम्मा को दरवाजा खटखटाने की आवाज़ ताली तोड़ने की आवाज़ के कारण सुनाई नहीं पड़ी। उसने जब सुनी तव आवाज़ करना वंद किया। लेकिन दरवाज़ा नहीं खोला।

गंगा ने शोर मचाये विना दरवाज़े को ढकेला, दवाया, मुक्का मारा और अंत में लातें मारने लगी। तो भी सुव्वम्मा ने दरवाज़ा नहीं खोला। खिड़की के वाहर खड़े पुट्ट को धीमी आवाज़ में फुसफुसाकर कहा कि जल्दी आंखों से ओझल हो जाओ। वह जव धीरे से खिसककर ओझल हो गया, कमरे में जलाये दिये को वुझा दिया। फिर सांकल को खींचा तो दरवाजा खुल गया।

गंगा को उस कमरे में कुछ भी नहीं दिखाई दिया अंधेरे के कारण। तो भी मिट्टी के तेल के दिये के धुएं के फैलने से मालूम हो गया कि सुव्वम्मा ने अभी-अभी दिया वुझा दिया है। उसने पूछा—"किसने दरवाजा वंद कर लिया था?"

अंधेरे कोने से सुव्वम्मा ने ढिठाई से कहा—"मैं री, मेरे कमरे में मैं रहूं तो तुम्हारा क्या जाता है?"

"इसीलिए आई थीं आप गौड़जी की गैरहाजिरी के समय?" कहकर गंगा ने तुरंत दिया सलाई जलाई और दिया जलाकर देखा।...कमरा लूटा गया था जो साफ दिखाई देता था।

कमरे के वाहर जाने के लिए दरवाजे तक आई सुव्वम्मा पर गंगा ने विगड़ी विल्ली की तरह कूदकर उसका हाथ पकड़कर खींचा। गाली-गलौज, मार-पीट शुरू हुई। सुव्वम्मा की मां झगड़ा छुड़ाने में हार गई और गंगा को कोसते खड़ी रही।

खूव मेहनत करके पतिव्रता का जीवन विताई हुई युवती सुव्वम्मा के आगे अतिकाम लालसा में जीवन शक्ति को खोई हुई गंगा मार-पीट में कव तक ठहरेगी? कुछ ही मिनटों में पीटकर, मुक्का मारकर, खींचकर चोटी पकड़कर, गंगा को जमीन पर गिराकर, पटककर सुव्वम्मा कानूरु से रवाना हो गई। गंगा दर्द के मारे कराहती, मनमाने गाली देती, सेरेगारजी को, चंद्रय्य गौड़जी को पुकार-पुकारकर सुनाती पड़ी हुई थी। शोर को सुनकर कुत्ते भी भौंकते थे।

उस समय चंद्रय्य गौड़जी शायद धर्मस्थल में अपना तुला भार तुला लेते थे कि क्या ?

सुब्बम्मा ने सीधे नेल्लुहल्ली जाने का विचार किया था। शाम का समय होने से सेरेगारजी का आना संभव था; अगर वे आ जाएं तो अपनी रक्षा नहीं होगी, इस भय से, साथ ही नागम्माजी को देखे बहुत दिन हो जाने से, उसको उन्हें देखने की इच्छा थी, इसलिए झुरमुट में छिपे पुट्ट से गहने-कपड़े लेकर केलकानूर चली गई।

नागम्मा जी पान-सुपारी की टोकरी सामने रखे, पान-सुपारी खाती, पत्तेवाली तरकारी साफ करती, बेलर सेसी से बातें करती हुई बैठी थीं। रिश्तेदार होकर आई मां-बेटी दोनों का अंदर से स्वागत करके, हाथ-मुंह धोने पानी देकर, चटाई बिछाकर बैठने को कहके नागम्माजी ने तश्तरी में पान-सुपारी लाकर रख दिया।

यह-वह बातें करके, उस दिन घटी सारी कहानी सुनाने लगी सुब्बम्मा। बीच-बीच में आंसू बहाती हुई, अपना दुखड़ा रोई।

अच्छी तरह अंधेरा हो जाने के बाद हूवय्य तथा पुट्टण्ण मिट्टी से पुते हो, खेत से घर आये। गरम पानी से नहाया, कपड़े बदले, बैठक में आने पर नागम्माजी ने सुब्बम्मा और उसकी मां के आने की खबर सुनाई और सुब्बम्मा से सुनी बातें भी संक्षेप में सुनाईं। हूवय्य ने निर्विकार, निरुद्वेग होकर सब सुना। न उदासीनता दिखाई, न उत्साह दिखाया। इधर वह अधिकाधिक मौनी बनने लगा था।

"सीतेमने से सोम आया ?" आइने में देखते क्रॉप को संवारते हूवय्य ने पूछा।

"नहीं, अभी तक नहीं आया। तभी गया था। अब तक आ जाना चाहिये था।"

"आं ! क्या कहा ?"

माता का जवाब हूवय्य को सुनाई नहीं पड़ा। "सीतेमने से सोम आया क्या ?" पूछते ही उसका मन बिजली के वेग से सीता के बारे में कई चित्रों, भावों की याद करने लगा था।

माता ने फिर वही कहा।

"इतनी देर वह क्या करता है वहां ?" कहकर हूवय्य अपने कमरे में गया और दरवाजा बन्द कर लिया।

नागम्माजी ने पुट्टण्ण से कहा, "तुमको नहीं जाना था क्या रे ?"

"वही खुद आगे बढ़कर गिड़गिड़ाकर पत्र ले गया।"

नागम्माजी ने अचानक विषय बदलकर पूछा, "क्या पुट्टण्ण, तुम्हारे गौड़जी शादी नहीं करेंगे ?"

पुट्टण्ण ने हंसते हुए कहा—"मुझसे क्यों पूछती हैं ? उन्हीं से पूछिये।"

नागम्माजी बिना बोले उसांस लेती हुई रसोई घर की ओर गईं। उनका

हृदय कातर वन गया था "पुत्र विवाह किये विना ऐसा हो रहा है।"

हूवय्य जैसे-जैसे ऊपर-ऊपर शांत, मौनी होता गया वैसे-वैसे अंदर उनमें कसक एवं जलन वढ़ती जा रही थी। पहले-पहल अपने हाथ से सीता के निकल जाने पर जो हताशा हुई थी उसे लघुता से, सात्विकता से, संयमी होने के अभिमान से देख, उदासीन होने का प्रयत्न किया था। तो भी वह धीरे-धीरे हृदय को चीर रहा था; इसीलिए वह किसी से वोले विना, समय मिलने पर, एकांगी होकर, कहीं वैठकर परमात्मा से प्रार्थना करता था, "मुझे इस जलन से, मनोव्यथा से पार कर दो।" कई वार रम्य प्रकृति की गोद में रंग-विरंगे फूल-पंछियों की मधुर-मीठी वोली के वातावरण में, रात के गहरे ध्यानमय संसार में उसका मन एकाएक प्रशांत हो उसको किसी अनिर्वचनीय मधुर सुख का अनुभव होता। मगर वह सुख शाश्वत नहीं होता था। उड़ने वाले पंछी आहार के लिए जमीन पर उतरते ही चींटियां उसे घेर सतातीं, उस सताने से अपने को वचाने के लिए वह अधिकाधिक खेती के काम में दिलचस्पी लेने लगा। खेत-वाग में खूव मेहनत करते समय उसका मन पीड़ा से मुक्त होता था। खूव परिश्रम करके थककर घर आ जाने पर कुछ तसल्ली होती थी। उसी प्रकार काव्यों और आध्यात्मिक ग्रंथों एवं महापुरुषों की जीवनियों को पढ़ते समय मन ऊंचाई पर चढ़ता, महापुरुषों का संग-संपर्क होता जिससे आत्मा आकाशगामी होती। अतः वह इन्हीं में अधिक समय विताता था। कई एक वार तो उसके कमरे में दिया रात के दो या तीन वजे तक जलता रहता था।

अच्छी तरह अंधेरा हो जाने के वाद, एक घंटे से ज्यादा समय हो गया होगा। सोम की आवाज़ सुनाई पड़ी। हूवय्य एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें जहां तक पढ़ा था वहां निशान रख, वाहर वैठक में आया।

सोम के वाल विखरे हुए थे, कपड़ा फट गया था, खून जमकर दाग पड़ गया था। उस को इस वुरी हालत में देखकर आश्चर्य से "क्या रे, यह क्या हुआ?" कहकर उसके पास दौड़कर गया हूवय्य।

सोम वोले विना उसके पांव पड़ा; उनको पकड़कर रोने लगा। उसको वुलाने में काफी परिश्रम करना पड़ा। सोम ने कुछ भी छिपाकर नहीं रखा। सारी वातें रोते-रोते सुनाईं। लौटकर आते समय जेव में हाथ डालकर देखा तो नोटों का पुलिंदा गायव था। फिर मुर्गों के लड़ाई के मैदान जाकर तिम्म से, ताड़ी के दूकानदार से जोर लगाकर नोटों का पुलिंदा मांगा। तव उन्होंने नोटों का पुलिंदा देने के वजाय खूव लकड़ी से मार-पीटकर भेजा था!

हूवय्य कुछ नहीं वोला, सोम के घावों पर दवा लगाई, फिर पुट्टण्ण की तरफ ऐसा देखकर कि उसकी देखभाल करे, अपने कमरे में गया।

६५

पिये हुए सेरेगारजी से पुट्ट का खून

रात को अच्छी तरह वारिश हुई थी। सारा पर्वत-प्रदेश भीग गया था। जंगल और खेत हरे हो गये थे। मैदानों में हरियाली छाई हुई थी। उन पर प्रकाश फैल गया था। विस्तर पर वैठे, खिड़की के वाहर देखते हुए हूवय्य के हृदय को गिरि के सिर पर दिगंत के पास उभरती हुई शीतल अरुण कांति प्रेम के निमंत्रण की तरह मधुर लगी। पास के जंगल से 'काजाण' पंछी का वीणागान 'मडिवाल' पंछी की सीटी की ध्वनि के साथ सुनाई पड़ता था। घर के चारों ओर 'पिकलार' पंछी का स्वर मिलन हो रहा था। प्रातःकाल की प्रशांतता में एक कुत्ता जोर से चीखते भौंक रहा था।

किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। हूवय्य ने उठकर दरवाज़ा खोला। मायके जाने के लिए तैयार हुई सुब्बमा ने अंदर जाकर एक गठरी को उसकी तरफ बढ़ाते हुए कहा—"यह गठरी अपने पास रख लीलिये।"

हूवय्य ने कहा—"क्या है?"

सुब्बम्म ने कहा—"कानूर से लाये गये मेरे गहने हैं।"

"मेरे पास क्यों?"

सुब्बम्मा ने 'मायका सुरक्षित स्थान नहीं है गहने रखने के लिये' कहने के वदले "यों ही कोई कारण नहीं, यहीं रहें।" कहकर हूवय्य को बोलने के लिए गुंजाइश न देते हुए कहा—"मैं हो आती हूं!" उसकी आंखों में आंसू थे। गला भर आने वाला था।

हूवय्य के हृदय में भी कुछ उद्वेग उठा। "अच्छा, हो आइये।" कहकर गहनों की गठरी संदूक में रखने उठा।

सुब्बम्म जल्दी-जल्दी वाहर जाकर, अपनी मां के साथ नेलुहल्ली की ओर बढ़ी। हूवय्य को लगा कि सुब्बम में आजादी, धैर्य, साहस आदि गुण नये सिरे से प्रस्फुटित हो रहे हैं।

हूवय्य को उसमें एक और विशेषता दिखाई पड़ी—उसका सौंदर्य! उसके वदन का गठन पहले की तरह मजबूत था। लेकिन चेहरे पर जो नहीं थी वह

खूबसूरती विकसित हुई-सी दीखती थी। बिस्तर पर बैठ सोचने वाले हूवय्य के मन में एक अश्लील भावना उठी तो वह अपने आप शरमा गया। "धुत् ! यह मन भी कैसा है ?" कहते हुए वह झट उठा और बिस्तर लपेटकर स्नानगृह गया।

ऐसी अश्लील आलोचना वही पहली बार नहीं आई थी। कई बार अच्छे, उदास विचारों के बीच-बीच में बुरे विचार भी, दुर्भाव भी फिसलकर आते थे। हूवय्य ध्यान के बीच में चट से जागकर उन्हें चोरों को पकड़ने की तरह पकड़ कर बाहर ढकेल देता था। लेकिन अब की बार वह जैसे-जैसे अश्लील भावना को बाहर ढकेल देता वैसे-वैसे वह फिर-फिरकर अंदर घुस जाती थी। वह जितना भी बाहर ढकेलने का प्रयत्न करता उतना ही वह भीतर घुसकर उसे चिढ़ाने लगी। 'घुसो, घुसो' कहकर उदासीन होने पर ही वह उससे मुक्त हो सका।

काफी-नाश्ता करके कोने में कंबल ओढे सोम का कुशल विचार करके, हूवय्य पुट्टण्ण को बुलाकर, खेत जाने की तैयारी कर रहा था कि कानूरु के बेलरों की गली से बैरा भागते आया और "रात को सेरेगारजी ने गाड़ीवान निगय्य के पुत्र पुट्टय्य को पीट-पीटकर जान से मार डाला है !" यह खबर गड़बड़ी में, डरके, पंद्रह मिनट तुतलाते, हकलाते सुनाता रहा। जिन्होंने सुना उनको ऐसा लगा मानो उन पर गाज गिरी और छाती फटी हो !

सीतेमने और मुत्तल्ली जाकर सिगप्प गौड़जी और चिन्नय्य को खबर देने के लिए और उन दोनों को जल्दी कानूर बुला लाने के लिए बैरे को भेजकर हूवय्य पुट्टण्ण के साथ बंदूक लेकर तुरंत कानूर के लिए रवाना हुआ।

कानूर जाकर पूछताछ करने पर पहले न सेरेगारजी ने, न गंगा ने किसी ने अपना मुंह नहीं दिखाया। जोर देकर बुलाने पर एकैक-एकैक ओर से आये। "पुट्ट कहां है ?" पूछने पर कहा कि सवेरे कांजी पीकर, केकड़ा पकड़ने नाले पर गया है। नौकरों को भेजकर ढूंढ़ा गया, तो भी नहीं मिला। बहुत बुलाया, तो भी जवाब नहीं मिला। आखिर हूवय्य और पुट्टण्ण ने मिलकर सारा घर छान डाला। मगर कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

हूवय्य ने तमतमाकर गुस्से से धमकाकर सेरेगारजी से पूछा, "चुपके से बतायेंगे या तीर्थहल्ली से पुलिस को बुलावें ?"

सेरेगारजी ने अपनी टेढ़ी बुद्धि से "चाहें तो बुला भेजिये, मुझे मालूम भी कैसे होगा ?" जरा अकड़कर कहा।

गंगा को भी पास बुलाकर पूछा। वह कांपते हुए होंठों से असंबद्ध बोली।

जरा जोर लगाने पर सत्य बाहर निकलेगा, सोचकर बेंत लेकर "कहोगी कि नहीं ?" कहकर एक बार पीटा।

सेरेगारजी "क्योंजी, दूसरों की स्त्री को क्यों पीटते हैं ?" कहकर चढ़ आये तो उनके उभरे दांतों के चेहरे पर भी एक तमाचा जोर से जमा दिया।

इतने में पुट्टण्ण ने उनको पकड़कर दूर धकेल दिया। गंगा ने दूसरी मार पड़ने के पहले ही सारी वातें वता दीं, "सेरेगारजी ने पुट्ट को मारकर, उस कमरे में डालकर ताला लगा दिया है !"

सेरेगारजी से जवरदस्ती से चावी खींच लेकर कमरे का ताला खोल दिया, कंवल में लपेटे पुट्ट का कलेवर वाहर लाये।

लेकिन पुट्ट की जान नहीं गई थी !

मार से वह मूर्च्छित हो गया था। तव सरेगारजी ने सोचा कि वह मर ही गया है, उसके वाद उसको गुप्त रूप से दफनाया जाय। अतः उसे कंवल में लपेटकर कमरे में डाल दिया। रात को कानूर के मुर्गी के घर से मुर्गियों को चुराने आये बेलर वैंरे ने वाहर खड़े होकर खिड़की में से सव देखा और यह सोचकर कि पुट्ट मर ही गया है, खवर दी थी।

कुछ ज्ञात चिकित्सा करने से पुट्ट होश में आया तो भी तोंदवाला, दुवला-पतला, कमजोर लड़का वोल न सका और वह टुकुर-टुकुर देखने लगा। उसकी आंखों से आसुओं की धारा वह रही थी जिससे प्रकट होता था उसके पेट में कितनी वेदना भरी हुई है।

करीव डेढ़, दो घंटों के वाद सिंगप्प गौड़जी और चिन्नय्य घवराहट से हांफते वैंरे के साथ आये। पुट्ट को जीवित देखकर उनकी घवराहट घटी और जान में जान आ गई।

चिन्नय्य ने सूचित किया, "पुट्ट की जान अगर निकल गई तो हम सवको खून के अपराध के जिम्मेदार होकर वहुत परेशानी उठानी पड़ती है। इसलिए पहले ही पुलिस को खवर देकर, अपना वयान देना अच्छा है।"

गंगा, सेरेगार दोनों 'पुलिस', 'वयान' आदि वातें सुनते ही आंसू वहाते सिंगप्प गौड़, चिन्नय और हूवय्य के पांव पड़कर, "हमसे अपराध हुआ, पीने से दिमाग ठिकाने न रहा।" आदि सवव वताकर "पुलिस के हाथ न सौंपें" कहकर हाथ जोड़ने लगे।

पहले-पहल सिंगप्प गौड़जी का मन सेरेगार के प्रति द्रवित नहीं हुआ, आखिर हूवय्य और चिन्नय्य को शांत करके "पुलिस को खवर देने की जरूरत नहीं" कह दिया। तदनुसार पुलिस को खवर नहीं भेजी गई। तय हुआ कि गंगा और सेरेगारजी को कानूर का घर छोड़कर घाट के लोग जहां रहते हैं वहां रहना होगा। 'धर्मस्थल गये हुए वापस आ जाने तक पुट्टण्ण कानूर में रहें'। चिन्नय्य ने सूचित किया मगर, पुट्टण्ण ने नहीं माना। हूवय्य को भी यह सूचना पसंद नहीं आई। चंद्रय्य गौड़जी अन्यथा सोचें तो ! तय हुआ, फिलहाल चिन्नय्य वहीं रहें।

यह सव हो रहा था कि केलकानूर से सोम लंगड़ाते, कराहते, कंवल ओढ़े पैदल आया और पिछले दिन शाम को अपने लोटों यानी नोटों की चोरी हो जाने,

अपने को मारने-पीटने-मुक्का मारकर नीचे गिराने की बात बताकर, "सेरेगार, हलेपैक का तिम्म, ताड़ी का दूकानदार, उनके सहायक घाट के दो नौकर, इन सब की सुनवाई होनी ही चाहिये।" कहकर रोने लगा।

सिंगप्प गौड़जी ने लोगों को भेजकर ताड़ी के दूकानदार को और तिम्म को बुलवा लिया और पूछा। सबने अपना अपराध स्वीकार किया और सोम को जो तय करेंगे वह देने के लिये भी मान लिया, मगर नोटों की चोरी की जिम्मेदारी किसीने नहीं मानी।

सोम ने तो "सब प्रमाण करें!" हठ किया।

उनमें से कोई प्रमाण करने के लिए तैयार नहीं हुआ। जब चिन्नय्य ने धमकाया, "तुमने चोरीं नहीं की है तो प्रमाण करने के लिए क्यों डरते हो? प्रमाण करने के लिए डरते हो तो तुम्हीं ने चोरी की होगी!" तब उन्होंने प्रमाण करने के लिए मान लिया। अच्छी तरह मंजे दीवट में घी की बत्तियां रखकर जलाई गई और उन्हें तुलसी के चबूतरे पर कतार में रख दिया। देवता को फूल चढ़ाया, गंध लगायी, फिर मंगलारती की। फिर सेरेगारजी, हलेपैक का तिम्म, और ताड़ी के दूकानदार ने तुलसी की परिक्रमा करके "प्रभु की कसम खाकर कहते हैं कि सोम के पैसे मैंने नहीं चुराये।" कहकर एक-एक ने एक-एक बत्ती बुझाई।

सभी प्रेक्षक स्तब्ध, निःशब्द हो वह महादृश्य पूज्य बुद्धि से, भय-गौरव से देखते बैठे थे। वहां के कुत्तों को भी वह अनुभव जैसे हो गया है दीखता था। तब वहां जो जमा हुए थे वे सभी एक दूसरी दुनिया के शुद्ध सान्निध्य में रहे जैसे थे।

६६

ओबय्य की कथा

धर्मस्थल की यात्रा पर गये हुए लोग मुत्तल्ली लौट आये हैं, समाचार को सुनते ही पुट्ट को खूब खुशी हुई कि मैं अब अपने पिता को देख सकूंगा। माता की मृत्यु के बाद पिता ही उसकी मां भी बन गया था। इतना ही नहीं, सेरेगारजी ने रात को सोते समय उसको जानवरों को पीटने के जैसे पीटा था, इसलिए उसकी प्रबल इच्छा हो रही थी कि अपने पिताजी को कब देखूंगा ? कब उनको छुऊंगा ? कब उनसे बातें करूंगा ? हूवय्य और चिन्नय्य उसके घावों पर दवा लगाकर शुश्रूषा कर रहे थे, उससे वह दिन-ब-दिना चंगा हो रहा था, तो भी उसे अपने पिताजी को देख, अपनी आपबीती सुनाकर आंसू बहाने की प्रबल इच्छा थी। कितनी ही बार अपने पिता की याद करके, किसीको मालूम कराये बिना, एक कोने में जाकर रोता था। इसीलिए यात्रा पर गये हुए लौट आये हैं, सुनने से वह फूला न समाता था।

उस रात पुट्ट ने न जाने क्या-क्या सपने देखे। अच्छी तरह नींद ही नहीं आई। सभी सपनों का केंद्र बना था उसका पिता।

एक बार पिता आया है। उसके गले मिला है, वह अपनी चोटों की कहानी सुना रहा है। पिता रोते हुए, तसल्ली देते हुए उसकी आंखें पोंछ रहा है, ऐसा सपना ! और एक बार, पिता कहीं चला गया है, उस पर नाराज होकर पीटा है; किसीनदी में वह बह-सा गया है; न जाने क्या-क्या बुरे सपने! भयंकर सपने! सवेरा होने के पहले पुट्ट उठा और कानूर की गाड़ी के आने को प्रतीक्षा करने लगा।

कई बार उसको लगता गाड़ी आ रही है, उसकी आवाज सुनाई पड़ती-सी लगती तो वह उत्कंठा से प्रतीक्षा करके थककर-ऊबकर निराश होता तो भी अंधेरा होने तक प्रतीक्षा करना उसने नहीं छोड़ा। अंधेरा हो जाने पर, बाहर रहने में उसे डर लगता था, अतः वह घर में गया था। कोने में बैठे रो रहा था। तब गाड़ी की आवाज कानों में पड़ी। वह जोर से सांस लेते हुए, औरों के लालटेन लाने के पहले ही गाड़ी के रुकने के स्थान की ओर भाग गया।

गाड़ी रुकी। गाड़ीवान ने बैलों को जुए से अलग किया। धुएं से काली बनी

लालटेन के मंद प्रकाश में कुछ भी, कोई भी साफ नहीं दिखाई दे रहा था। गाड़ी से सभी एक-एक करके उतरे। उनकी बातों की ध्वनि से मालूम हुआ कि चंद्रय्य गौड़जी, रामय्य, वासु, पुट्टम्मा (उसे ससुराल से मायके लाये थे) आये हैं। लेकिन पुट्ट को चिर परिचित निग की ध्वनि ही नहीं सुनाई दी। गाड़ीवान की ध्वनि तो बिलकुल अपरिचित हो गई है! यह क्या? मेरे पिताजी कहां? हो! हो! गाड़ीवान ही मेरे पिता होगा। नया पानी पीकर उसका गला फट गया होगा। मेरे पिता के सिवा कानूर की गाड़ी हांकने के लिए कौन आवे!

थोड़ी दूर पर खड़े होकर देखते रहने वाले पुट्ट ने सबके अंदर जाने के बाद (रंगप्प सेट्टजी की तरह ही, उनके साथ में रहे गौड़जी का स्वागत करके चापलूसी करने कुछ घर के नौकर वहीं थे) 'पिताजी'; 'पिताजी', मोर से पुकारते हुए आगे बढ़कर, झुटपुटे में गाड़ी से सामान नीचे उतारने वाले गाड़ीवान के कुर्ते का छोर पकड़कर खींचा। गाड़ीवान ने गाड़ी से आधे खींचे हुए सामान को वैसे ही पकड़कर, सिर घुमाकर, भौंहें सिकोड़कर देखा। अच्छा प्रकाश होता तो उसका चेहरा देखकर पुट्ट चीख पड़ता। अंधेरे में भी डरकर दो कदम पीछे हटकर खड़ा हो गया! लालटेन के मंद प्रकाश में भी चेचक के दागों से विकृत हुए उसके चेहरे पर एक आंख में फूले के गिरने से अंधी बनी थी जो मालूम होती थी।

गाड़ीवान की कर्कश ध्वनि आई, "कौन है! पुट्ट क्या? तुम्हारा पिता पीछे आयगा। आज नहीं आया।" पुट्ट को उस ध्वनि की भांति वह खबर भी पत्थर से पत्थर को रगड़ने की सी लगी।

बैठकखाने में गंदे तख्त पर बिछाई चटाई पर लालटेन के मंद प्रकाश में तकिये से पीठ टेककर चंद्रय्य गौड़जी, विश्राम लेते हुए, प्रवास के संदूक से कपड़े और सामान निकालने वाले रामय्य और वासु से बोलते रहे, फिर दूर मंद प्रकाश में, तकिये के पीछे फूट-फूटकर रोते खड़े हुए पुट्ट को अत्यंत विश्वासपूर्वक ध्वनि में गौड़जी ने पास बुलाया। गौड़जी की ध्वनि सकरुण होने पर भी, गौड़जी के कठोर तबियत से परिचित पुट्ट उनके पास जाने के लिए डर गया। और जहां का तहां जोर-जोर से रोते खड़ा रहा। गौड़जी ने अपने छोटे पुत्र से कहा, "जाओ रे, उसको यहां बुला लाओ।" तब वासु भी अत्यंत सहानुभूति से पुट्ट के पास जाकर, मीठी बातों से उसे धीरज बंधाते हुए, उसका हाथ पकड़कर पिता के पास ले आया। चंद्रय्य गौड़जी ने पुट्ट का हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया और मीठी बातों से उसे दिलासा देते हुए, उसके घावों का स्पर्श करके देख समवेदना प्रकट की जिसे देखकर सेरेगारजी तथा गंगा आदि को आश्चर्य हुआ। देखने वालों को पाषाण जैसे कठिन हृदयी चंद्रय्य गौड़जी मक्खन की तरह हो लौटे हुए दिखाई पड़े! अपनी गैरहाजिरी में अपने घर में किये गये दुर्व्यापारों के बारे में सेरेगारजी को कड़ी बातें सुनाईं, मगर उनमें रौद्र नहीं था। देखने में ज्यादा दुबले दिखाई देने वाले

वे स्वभाव में भी कर्कशता छोड़े हुए-से दिखाई दिये। सुब्बम्मा के बारे में चुगली खाकर अपने पहले का विश्वास पाने की इच्छा करने वाले रंगप्प सेट्टजी का कुछ आशा-भंग हुआ। यात्रा पर जाने से केवल गौड़जी इतने सात्विक बनेंगे, यह सपने में भी गंगा ने नहीं सोचा था। लेकिन क्या? अपने स्त्रीत्व के आगे धर्मस्थल की यात्रा से प्राप्त सात्विकता कैसे टिकती है? देखती हूं, गंगा ने अपने आपसे कह लिया।

गौड़जी ने पुट्ट से उसके पिता के बारे में एक बात भी नहीं कही। उसका जिक्र तक नहीं किया। उसके बदले में अलग न जाने, क्या-क्या बातें करके उसे वासु से एक नया कुर्ता, एक नई धोती का पुरस्कार दिलवाया। उस खुशी में पुट्ट अपना दुख कुछ हद तक भूल गया।

लेकिन आधी रात में जब सभी सोये थे, सर्वत्र फैली अंधेरे की निस्तब्धता का भंग होता था वर्षा के कारण, तब सपने से जागकर बिस्तर पर उठ बैठा पुट्ट रोने लगा। वर्षा की ध्वनि के कारण उसका रोना किसी को सुनाई नहीं पड़ सकता था।

दूसरे दिन सवेरे पुट्ट अपने पिता के बारे में विचारने के लिए पिछली रात को देखे चेचक के दाग के चेहरे वाले, काने गाड़ीवान के पास गया। पुट्ट के बोलने के पहले ही गाड़ीवान ने कहा, "क्या रे पुट्टा, मेरी पहचान नहीं लगी क्या?"

पुट्ट उसका चेहरा टुकुर-टुकुर देखते खड़ा रहा।

"केलकानूरु अण्णय्य गौड़जी के पुत्र ओबय्य गौड़जी को तुम जानते थे?"

"जानता था।" कहकर पुट्ट आश्चर्य से उसके मुंह को ही देखता रहा। परिचय की रेखा उसकी स्मृति में उभरी-सी थी।

"मैं ही ओबय्य गौड़ हूं रे।" कहकर चीथड़ों को सीकर बनाया कुरता पहना गाड़ीवान हंस पड़ा।

मुंह को ही देखते खड़े रहे पुट्ट ने कहा—"झूठ बोल रहे हैं आप!" और इतना कहकर मुसकुराया।

"सच रे। चाहो तो अपने वासय्य से ही पूछ लो!" कहकर अपनी ओर आते हुए वासु को देखकर कहा, "पुट्ट को मेरी पहचान ही नहीं लगी। सच कहने पर भी विश्वास नहीं करता!"

वासु और ओबय्य दोनों परस्पर मुंह देखते हुए बताई कथा से पुट्ट को इतना मालूम हुआ 'निंग बीमार होने से आगुंबे के अस्पताल में है।' साथ-ही-साथ ओबय्य की दर्द भरी हालत को सुनने से आंखों में आंसू आए। अपनी कथा सुनाते-सुनाते ओबय्य भी रोने लगा। कड़े शरीर के उस क्रूर मुंह से करुण धारा को बहते देख, कोमल कलेजा के दोनों बालको ने आंखें पोंछ लेते कहानी सुनी।

यह हमको पहले ही मालूम हो गया है कि केलकानूरु अण्णय्य गौड़जी तथा ओबय्य मिलकर सीतेमने सिंगप्प गौड़जी के साथ षड्यंत्र करके सिंगप्प गौड़जी

की गाड़ी में अपने सामान आदि, चंद्रय्य गौड़जी को मालूम कराये विना, उनका कर्ज चुकाये विना, लेकर रातोरात निकल जाने का प्रयत्न कर रहे थे। मगर सिगप्प गौड़जी के चोरी से कटाये लकड़ी के टुकड़ों की रखी जगह पता लगाकर, उन्हें रेंजर द्वारा गिरफ्तार कराने के इरादे से चंद्रय्य गौड़जी उसी रात को अपने दल-वल के साथ निकले थे। मगर रास्ते में धोखा देकर भागने वाले ओवय्य, गाड़ी, गौड़जी को पकड़ा और गाड़ी सहित उनको कानूर वापस ले गये और सब सामान एवं जानवरों को कर्ज के मद्दे जमा कर लेकर, बूढ़े बाप, पुत्र, ओवय्य की सौतेली मां की अबोध, दुवली-पतली लड़की को गांव छुड़ाकर भगाकर, गाड़ी वांपस भेज दी। उसके वाद भी अण्णय्य गौड़जी ने सिगप्प गौड़जी का किसान वनकर अपने पुत्र एवं पुत्री के साथ उनके आश्रय में रहना चाहते थे। लेकिन दुर्भाग्य से दूसरे दिन ही सिगप्प गौड़जी को महा दुःख भोगना पड़ा। उनका इकला पुत्र कृष्णप्प, जिसका विवाह शीघ्र होने वाला था, जाकी के साथ घायल वाघ को ढूंढ़ने जाकर, उसके मुंह में पड़कर मर गया। उस दारुण दुःख से, यातना से पागल से वने सिगप्प-गौड़जी से बातें करके सांत्वना देने का धैर्य न होने से अण्णय्य गौड़जी ओवय्य को, क्षयग्रस्त की तरह दुवली वनी अपनी छोटी पुत्री को लेकर आश्रय ढूंढ़ते आगे वढ़े। आश्रय मिलने की वात तो एक ओर रही, पेट को भरने के लिए कुछ खाने को मिलना भी एक-एक वार दूभर हो गया। यहां-वहां भटककर, एक माह के वाद मेगर वल्ली पहुंचकर वहां एक हेग्गडे के घर में नौकरी करने लगे। वे प्रसिद्ध कंजूस थे, तो भी उन्होंने ओवय्य को माहवार एक रुपये के वेतन पर नियुक्त कर लिया। अण्णय्य गौड़जी जिस दिन काम पर आयेंगे उस दिन उनको दो सेर अनाज देना मान लिया। वहां वर्षा काल विताना भी कठिन हो गया। हेग्गडेजी वेतन देने में कंजूस थे। पर काम लेने में वड़े उदार। लड़के, वूढ़े के भेद किये विना सवसे खूव कसकर काम करवा लेते। उतना करने पर भी हर रोज शाम को गाली भी सुननी पड़ती। पीने में हेग्गडेजी के आगे चंद्रय्य गौड़जी नाचीज थे!

एक महीना वीता था कि नहीं, ओवय्य की सौतेली वहन वीमार पड़ी। दवा दी गई, चिकित्सा कराई गई, पर कोई लाभ नहीं हुआ। उनको रहने के लिए गाड़ी-खाना (गैरेज) दिया गया था। उसकी जमीन हमेशा गीली रहती थी। रसोई की जगह कुछ-न-कुछ उगता था! गोबर, कीचड़ आदि से वदवू हमेशा भरी रहती थी। मच्छरों का क्या कहना! वेहद!" पहले पहल कहा गया कि केवल वुखार है। अंतिम रूप से कहा गया 'विषम ज्वर'। बहुत उपचार किया गया। मगर वेकार। वह मर ही गई।

सौतेली वहन की मृत्यु के वाद ओवय्य हेग्गडेजी की पीड़ा, उनका सताना सह नहीं सका। इसलिए वूढ़े वाप को लेकर आगुंवे गया। वहां एक ब्राह्मण साहुकार के घर में नौकरी करने लगा। जीवन आराम से चल रहा था।

"पर हमारा दुर्भाग्य !" उस गांव में महामारी आ गई। हर जगह चेचक की बीमारी फैल गई। "हाय रे भगवान ! वह बुरी हालत देखने लायक नहीं थी।" अण्णय्य गौड़जी भी चेचक के शिकार बने। सारे वदन पर फुंसियां उठ गईं। चमड़ा दिखाई नहीं दे रहा था। सारा चमड़ा गल गया। वह भी नहीं बच सके। उनको भी मरघट में दफना कर आया था कि नहीं, ओबय्य को बुखार चढ़ा। चेचक भी निकल गयी। प्रज्ञा गई। किसने उसकी चिकित्सा की, सो भी उसको नहीं मालूम हुआ। "मगर मुझे प्रज्ञा आने पर, कहते हैं कि मैं पागल-सा बन गया था।" चेचक के कारण ही ओबय्य काना बन गया। मुंह, चेहरा, सब विकृत हो गया !···धर्म-स्थल की यात्रा से लौटते समय चंद्रय्य गौड़जी का गाड़ीवान बीमार पड़ गया। उसको आगुंबे में छोड़कर, खुशी से मान लेने वाले ओबय्य को गाड़ीवान बनाकर कानूर लाये।

ओबय्य ने आंसू बहाते कहानी सुनाई। दोनों बालकों ने आंसू बहाते कहानी सुनी।

६७

रामय्य का सीता को कानूरु लाना

धर्मस्थल की यात्रा पर गये हुए लोगों को लौटकर आए एक महीना हो गया था। वर्षा खूब हो रही थी। सारा देश साफ़ हो गया था। जमीन पर हरियाली फैल गई थी। खेती भी जोर से हो रही थी। जिनके नौकर थे, उन्होंने शस्य रोप दिया था। सूर्य का दर्शन भी कम हो गया था।

इस बीच में वासु आंसू पोंछते हुए तीर्थहल्ली जाकर हाईस्कूल में शामिल हो गया था।

पिता के आगमन की प्रतीक्षा कर-करके थककर, पीड़ित पुट्ट ने किसी से कहे बिना, किसी को मालूम कराये बिना मुत्तल्ली जाकर सीतम्मा से पूछा। "निंग बीमार पड़ने से आगुंबे के अस्पताल में भर्ती हो गया है, यह बात झूठ है। आगुंबे आने के पहले ही सोमेश्वर में कै और दस्त की वजह से वह मर गया। सबसे गुप्त रखी यह बात तुमको सुनाई है।" फिर उसने ताकीद किया, "यह किसी से मत कहना।" पुट्ट फूट-फूटकर रोने लगा। उसको बड़ी बहन की तरह खाने की चीजें देकर दिलासा दिया सीता ने। लेकिन पुट्ट रोते-ही-रोते ही झुटपुटे में कानूरु लौट आया था।

विकृत चेहरे का, काना ओबय्य निंग के बदले वेतन भोगी गाड़ीवान बनकर कानूरु में ठहर गया था।

गंगा और सेरेगार दोनों फिर अपने-अपने घर छोड़कर कानूरु के घर में आकर रहने लगे थे।

चंद्रय्य गौड़जी धीरे-धीरे अधिकाधिक दुबले और साधु बनते जा रहे थे। दूसरे के लिए पहला ही प्रधान कारण था। गंगा के प्रसाद से वह किसी एक गुप्त रोग के शिकार हुए थे। वह उनकी सारी शक्ति को निगलकर उनकी उद्धतता को कुरेदकर तोड़ रहा था। उनको देखकर सभी कहते थे—"धर्मस्थल की यात्रा करके आने के उपरांत गौड़जी में बहुत फरक हो गया है, वह अधिक धार्मिक हो गये हैं। अधिक समझ आई है। रुषि (ऋषि) बन गये हैं।"

रामय्य भी यात्रा से लौटने के बाद हंसमुख, तन्दुरुस्त, कर्तबगार हो गया था।

उसका कारण केवल प्रवास ही नहीं था। परंतु उसके दो मुख्य कारण थे। एक तो यह, सीता में यात्रा से परिवर्तन बहुत हो गया था। वह खुश थी। विवाह के पूर्व जब कुमारी थी तब जैसे बरताव करती थी वैसे करने लगी थी। उतना परिवर्तन उसमें हुआ देखकर सबको यात्रा में और धर्मस्थल के देवता में विश्वास बढ़ गया था। रामय्य तो हूवय्य के संग में जब था तब यात्रा, क्षेत्र और देवताओं की निंदा करता था या उनको उदासीनता से देखा करता था। और अब उसने निश्चय कर लिया कि पहले मैं जो समझता था वह मूर्खता थी, अब से ऐसा नहीं करूंगा। धर्मस्थल में हरएक से सौ, डेढ़ सौ रुपये भेंट में लिये थे, उससे किसी को दुःख नहीं हुआ था। जिनको दुःख हुआ था उन्होंने मुंह खोलकर नहीं बताया, यह समझकर कि कहीं देवता हम पर नाराज न हो जाय!

बिन चाही औरतों को अपनी ओर आकर्षित करने की अपेक्षा श्रेष्ठ काम दूसरा कौन-सा है उस देवता का? वह वैसा करते आवे; सभी नास्तिक आस्तिक बन जाते हैं!

रामय्य के परिवर्तन का दूसरा कारण था उसके पिता चंद्रय्य गौड़जी की दुर्बल स्थिति। जैसे-जैसे शक्ति कम होती गई वैसे-वैसे चंद्रय्य गौड़जी में पहले का दर्प, क्रौर्य, काठिन्य कम होते आने से रामय्य को ही मुख्य व्यक्ति बनना पड़ा। आखिर चंद्रय्य गौड़जी जो कुछ भी करते, पुत्र से पूछकर, उसके अनुसार करने लगे। इस स्थान परिवर्तन से, पहले कुब्ज बने रामय्य के व्यक्तित्व ने विकास पाकर सिर उठाया।

रामय्य अपनी पत्नी को बुला लाने के लिए कातर था। अलावा इसके, अपनी कातरता को दूसरे ढंग से अपने पिता से कहकर समझाता भी था।

इसीलिए धर्मस्थल से लौटने के एक महीने के बाद, एक दिन सवेरे खुद सज-धजकर, गाड़ी को सजाकर उसमें तकिये के सहारे बैठकर बड़े शान से, बैलों के गले में बंधी घंटियों के मंजुल निनाद में पत्नी को घर बुला लाने रामय्य मुत्तल्ली रवाना हुआ।

उस दिन रामय्य का हृदय मुत्तल्ली में असीम उदारता से भर गया था। रिश्तेदारों से, नौकरों से अत्यंत संतोष, सरसता एवं कृपा दृष्टि से बातें करके उसने उन सबको मोह लिया। नंज और काले ने यहां तक कह दिया, "ऐसे दामाद क्या तप करने से मिल जायेंगे?"

लेकिन सीता के लिए वह बड़ा दुर्दिन बन गया था। उसके मन में वर्णनातीत वेदना खौल रही थी। दिमाग में भयंकर विचारों का बवंडर उठ रहा था। लेकिन बाहर वालों को उसके बर्ताव में कुछ भी परिवर्तन नहीं दिखाई देता था। बिजली, गर्जन, गाज को अपने गर्भ में छिपाकर मौन रहे, बद्ध भ्रुकुटि दार्ढ्य से संचार करने वाले वर्षाकाल के मेघ सदृश सीता यंत्रवत् किये जाने वाले अपने काम अच्छी लड़की की तरह कर रही थी।

शाम को पांच बजे कानूर लौटी वह गाड़ी उस दिन सवेरे मुत्तल्ली गई थी। उसमें रामय्य, चिन्नय्य, सीता, गौरम्माजी, लक्ष्मी इतने सारे लोग कुछ इकट्ठे ही बैठे थे। सीता पहली बार पति के घर जा रही थी, इसलिए मां, भाई, बहन उसके साथ निकले थे।

अंधेरा छाया था, पर घना नहीं था। उस दिन सवेरे से ही शुरू हुई वर्षा कभी सीकर, कभी जोर से होती। गाड़ी कानूर घर के आंगन में आकर रुकी; प्रथम बार पतिगृह आने वाली नवोढ़ा के गृहप्रवेश के संबंध में की जाने वाली विधियां की गईं और सीता को पहले अंदर ले गये। फिर बाकी लोग घर में गये। पत्थर की गुड़िया की आंखों से जैसे आंसू बहते रहते हैं वैसे सीता की आंखों से भी आंसू बह रहे थे, जिनकी ओर किसी ने गौर नहीं किया। विवाह के उपरांत पतिगृह जाने वाली का रोना आलंकारिक रस्म है न ? दुलहिन को देखने तथा स्वागत करने एकत्रित हुए सभी सीतम्मा को देखकर बहुत खुश हुए।

पहले हूवय्य उस घर में रहता था तब कानूर के उस घर में आने पर सीता को त्योहार के दिन जितनी खुशी होती है उतनी होती थी। लेकिन आज वह घर अपशकुन से भरा-सा, अमंगल-सा उसे लग रहा था। वे खंभे, वे वल्ले; लंबे तिलक से शोभित वह बांवी, प्रकाश में दीवारों पर चलती रही खंभों की ओर मनुष्यों की बड़ी छायाएं सीता के मन को अपने भावी क्लेशों के प्रतीकों की तरह और दुरंत की परछाइयों की तरह दीखकर भीषण बनीं। कोई अनिर्दिष्ट भीमाकृति का भय उसके हृदय में प्रवेश कर गया। वह चीखकर माता की गोद में मूर्च्छित हो गई। मुंह में फेन भी दिखाई पड़ा। हवा की। भूतराय से प्रार्थना की गई। मूर्च्छा को दूर करने के न जाने क्या-क्या उपाय किये गये।

कुछ समय के बाद वह जागी, तो भी उसने गौरम्माजी का आंचल नहीं छोड़ा। उस दिन सारी रात मां का आंचल पकड़कर ही सोई रही। दूसरे दिन भी माता का आंचल नहीं छोड़ा। बहुत कुछ कहा गया, धमकाया गया, दिलासा दिया गया, फिर भी उसने आंचल नहीं छोड़ा। यह सब देखकर चंद्रय्य गौड़जी बहुत नाराज हुए। बिगड़े। यह सब अपने वैरी सिंगप्प गौड़जी के पुत्र कृष्णप्प के प्रेत की करतूत समझकर दांत पीसे। मां और भाई न रहते तो सीता की न जाने क्या गत होती ?

विवाह के पूर्व सीता ने हूवय्य को जो पत्र लिखा था उसकी याद हो आने से रामय्य का गुस्सा भी उभरा, क्रूर विचार भी मन में उठे। उसने सेरेगारजी को बुलाया, उनके कान में कुछ कहा, उनके हाथ में बंदूक देकर केलकानूर की तरफ भेज दिया।

दुपहर को अग्रहार के वेंकप्पय्य ज्योतिषी आये; अपने से हो सकने वाले मंत्र-तंत्र आदि किया; मगर कोई लाभ नहीं हुआ। शाम को अग्रहार लौटते समय

उन्होंने गौड़जी को पास बुलाकर गुप्त बातें कहीं, "देखो चंद्रय्य, मुझे न जाने क्यों शक हो रहा है। अगर यह वास्तव में ग्रह की पीड़ा होती या देवता की पीड़ा होती तो मेरे मंत्रों के आगे वह नहीं ठहरती। लड़की को किसी ने सिखाया होगा। या वही इस तरह बहाना करती होगी, अभिनय करती होगी कि क्या? इसलिए एक उपाय सुझाता हूं, उसे करके देखो। (खांसकर) हमारे ब्राह्मणों में ऐसी कितनी ही होती हैं। मुझे अच्छी तरह इसका अनुभव है। (खांसकर) मगर कुछ क्रूर लगे। परंतु रोग की परीक्षा करनी हो तो करना ही पड़ेगा। एक काम करो। उसके सभी घरवालों को बुलाकर, समझा-बुझाकर वापस भेज दो। उसके बाद जब तक भूत छोड़कर न जावे तब तक एक-एक दाग देना चाहिये। ऐसा ज्योतिषी ने कहा है, कहकर एक-एक दाग दे डालो! एक-दो दिनों में सब ठीक हो जायगा।"

सेरेगारजी चिड़िया मारने के बहाने यहां-वहां घूमते हुए घात लगाये रहे, तो भी बेकार हो जाने से शाम को कानूर लौटकर रामय्य को सारी बातें बता दीं। "आज नहीं तो कल! उसे किये बिना···।" कहकर भौंहें सिकोड़ लीं।

चंद्रय्य गौड़जी ने चिन्नय्य को बुलाकर कहा, "देखो चिन्नय्य, तुम सब यहां रहोगे तो वह ठीक नहीं होगी। इसलिए अपनी मां से कह दो, समझा दो कई प्रकार से बहस करके कि यहां हमारे से वह ठीक नहीं होगी।" उसी रात को सभी को गुप्त रूप से मुत्तल्ली जाने के लिए प्रेरित किया। चिन्नय्य ने इसमें कोई प्रमाद नहीं है, जानकर, ससुर की बात मान ली।

रात के बारह बजे के बाद, एक बजा था। पानी बरस रहा था। कानूर की गाड़ी मुत्तल्ली जाने के लिए तैयार हो खड़ी थी। गहरी नींद में रही लक्ष्मी को धीरे से चिन्नय्य ने उठाकर अपने कंधे पर सुला के ले जाकर गाड़ी में लिटा दिया। गौरम्माजी ने दो बार चुपके से उठकर आने की कोशिश की। पर सोती हुई सीता उसके आंचल को मजबूती से पकड़े हुई थी। आखिर गौड़जी की सलाह के अनुसार आंचल को कैंची से धीरे से काट दिया। मां के आंचल को पकड़कर मजबूत, सीता सोती रही।

बैलों के गले में बंधी घंटियों की माला को खोल दिया था। अतः गाड़ी चुप-चाप मुत्तल्ली को चली।

एक गठरी की आड़ में खड़े होकर पुट्ट सब देख रहा था। फिर वह अपनी जगह जाकर सो गया। मगर उसको नींद नहीं लगी। बेचारा नहीं जान सका कि क्यों सीतम्मा को सता रहे हैं।

गाड़ी को जाकर आधा घंटा बीत गया होगा। तब बाहर से बंद किये कमरे में से 'मां, मां' कहकर सीता का पुकारना पुट्ट के कानों पर पड़ा। पुट्ट की इच्छा हुई कि सीतम्मा को सब बता दूं जो कुछ उसने रात को देखा था। परंतु चंद्रय्य गौड़जी के डर के मारे चुप सो गया। सीता कमरे में जोर से चिल्लाती, मां को बुलाती,

रोती, वाहर आने के लिए छटपटाती, दरवाजा ढूंढ़ती, अंधेरे में कुछ भी दिखाई न देने से, दीवार से टकराकर, अपने मुंह पर हाथ मारती हुई, रोती हुई सीता की हालत पर पुट्ट की आंखों में आंसू आये। उसकी छाती धड़कने लगी। कुछ भी हो, भूंकने वाले कुत्तों के शव्द से धैर्य आ जाने से ऊपर उठकर, वैठक में सोये रामय्य के पास लड़खड़ाते आकर, घवराहट से पुकारा, "अय्या! अय्या! अय्या!" (अजी! अजी! अजी!)

जागता रहा रामय्य। उसने, "क्या है रे? तुझे क्या हो गया है?" कहकर डांटा।

"सीतम्मा रो रही हैं!"

"रोती हो तो रोये। तू चुपचाप जाकर सो जा!"

पुट्ट की समझ में नहीं आया कुछ भी। कोई भी हो, रोये, पुकारे तो उसको सांत्वना दिये विना चुप रहना! तिस पर भी मुत्तल्ली सीतम्मा! घर आई हुई नई नातेदारिन!—नहीं; पुट्ट की समझ में नहीं आईं ये वातें? आश्चर्य करते वह गया और सो गया।

सीता पुकार-पुकार कर रोती ही रही।

६८

सीता को नारकीय यातना

दूसरे दिन सवेरा हुआ। रात को हुई घटना की याद सीता को अच्छी तरह हो आई। उसने नहीं सोचा था कि मां, भाई, वहन तीनों मुझे इस तरह छोड़कर जायेंगे। कैंची से कतरे हुए मां की साड़ी के आंचल को देख-देखकर उसे माथे से, छाती से लगा-लगाकर, दिल दहल जाय जैसे रोती हुई कमरे के कोने में जमीन पर पड़ी रही वह।

वाहर कुंडी निकालकर, कण-कण शब्द करती दरवाजा खोलकर गंगा कमरे में आई और उसे मुंह धोकर, कॉफी पीने की विनती की। सीता उसकी ओर आंख उठाकर भी देखे विना रोती ही रही। गंगा चली जाती, फिर वार-वार आती और धीरज बंधाती और वुलाती वाहर वालों की सलाह के अनुसार वरतती रही। सीता ने इसे शीघ्र ही जान लिया।

सवेरे की कॉफी की वात एक ओर रही, दुपहर के भोजन के लिए भी सीता नहीं उठी; जहां वैठी थी वहां से न हिली, न डुली।

दुपहर का भोजन समाप्त हो जाने के वाद गंगा फिर कमरे में आई और कहा, "कहा है कि आप भोजन करके वाल संवार लें। मुत्तल्ली वापस भेजते हैं।"

किसी तरह एक वार कानूर से छुट्टी मिले तो वस था सीता को। गंगा की वात पर विश्वास किया। स्नानगृह जाकर, हाथ, पैर, मुंह धो आई, भोजन किया। वाल संवारकर मायके जाने के लिए तैयार हो गई।

गंगा ने सीता के सवाल का जवाव दिया, "कल रात को आपकी मां, वहिन और भाई को जो गाड़ी ले गई वह अभी तक नहीं लौटी है। उसको आते ही आपको भेजेंगे।"

वास्तव में गाड़ी तो सवेरे ही आई थी। "साथ में पुट्ट को भेजें तो कॉफी है, मैं पैदल ही जाऊंगी।" कहा सीता ने।

"न, न; इस तरह भेजें तो आपके पिताजी क्या कहेंगे?"

"गंगा मैया, तुम्हारे पांव पड़ूंगी, किसी तरह मुझे मां के पास भेज दो। चाहो तो मैं तुम्हें अपना सोने का हार दूंगी!" कहते सीता ने गंगा के पैर छुए और अपना

हार निकालकर दिखाया।

वह सोने का हार जो जगमगाता, चमकता था किसीको भी लुभा सकता था। गंगा का मन भी थोड़ा उस ओर झुका। केवल हार ही नहीं, सीता का पांव छूना भी इसका कारण था। अचानक सीता के प्रति उसके मन में करुणा जाग उठी। सीता की स्थिति का अर्थ चतुर गंगा की समझ में आ गया। सुरूपी, भद्रभाव के हूवय्य का मन में स्मरण किया। न भूत था, न पिशाच; कृष्णय्य का प्रेत भी नहीं; हूवय्य से पालित 'वलींद्र' वकरे पर की भूतराय की सवारी भी नहीं। प्रणय भंग ही सीता की इस स्थिति का मुख्य कारण है, जिसे वह पहले से ही जानती थी। स्त्री को स्त्री का हृदय मालूम नहीं होगा? उसमें भी गंगा जैसी प्रणय प्रवीणा को?

सीता की मदद करने की इच्छा होने पर भी गंगा को चंद्रय्य गौड़जी के भय ने सोने के हार के लोभ से दूर किया। न जाने क्या सोचा, फिर वैठक में गई।

वहां चंद्रय्य गौड़जी और रामय्य दोनों वंदूक धारी सेरेगारजी से उनके साहस की कहानी सुन रहे थे। पिछले दिन रामय्य ने उनको वलींद्र वकरे को वंदूक से मार डालने की कड़ी आज्ञा दी थी। सेरेगारजी ने वहुत कोशिश की, पर उस दिन नहीं मार सके थे। दूसरे दिन नहीं मार सके थे। दूसरे दिन सवेरे से साहस करके, घात लगाकर, केलकानूर से थोड़ी दूर पर जंगल के किनारे पत्ते खाते हुए वकरे को गोली से मार डालकर भाग आये थे। उसे सुनकर रामय्य को वड़ा आनंद हुआ कि अव मेरी पत्नी मुझे प्यार करेगी। सोचा कि अगर उसका खून लाया होता तो उसे सीता के माथे पर लगाकर शनि को दूर किया जा सकता था! चंद्रय्य गौड़जी तथा रामय्य से वातें करके लौटी गंगा ने भरोसा दिया—"आज अगर गाड़ी देर से लौटे तो कल सवेरे के पहले जरूर भेज दूंगी।"

लगातार रोती हुई सीता ने गंगा के पैर पकड़े।

रात हो गई। सवका खाना हुआ। सीता ने भी कल सवेरे मुत्तल्ली भेज जाऊंगी, गंगा के दिये भरोसे पर भरोसा रख, खाने का अभिनय किया।

घर के चारों ओर के घने जंगल पर खूव रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही थी।

"मैं भी तुम्हारे साथ सोऊंगी" कहकर गंगा सीता को फुसलाकर एक कमरे में ले गई। उसे देखकर सीता चौंक पड़ी और पीछे भागने लगी। वह रामय्य का सोने का कमरा था, जो उसे तुरंत मालूम हो गया था। लेकिन गंगा ने उसे जोर से पकड़ लिया। छोटी लड़की के लिए नामुमकिन एक अमानुष शक्ति से सीता अपने से भी वलवान गंगा को जोर से ढकेलकर कमरे से बाहर भाग गई। गंगा का सिर दीवार से टकरा गया और वह जोर से चिल्लायी, "हाय! हाय!" रामय्य, सेरेगारजी, पुट्ट, ओवय्य सभी वहां भागकर आये।

जो कुछ हुआ उसे जानकर चंद्रय्य गौड़जी आपे से बाहर हो गये। रामय्य

के हृदय में भी भग्न विषय लोलुपता के प्रतिकार का कराल पिशाच दांत पीसकर, नाखून उठाकर खड़ा हो गया।

चंद्रय्य गौड़जी ने होंठ चबाते झपटकर जाके सीता का हाथ पकड़ लिया। 'कानूर के ससुर' के नाम से डरनेवाली सीता ने गौड़जी को झटका दिया ऐसा कि गौड़जी को एक गज दूर कूदकर खड़ा होना पड़ा! फिर आकर उन्होंने दोनों हाथों से जोर से उसे पकड़ा। सीता ने फिर दांत पीसकर, उन्हें काट-काटकर फिर झटका देकर ढकेल दिया! लड़की को कहां से आवे इतनी शक्ति? अपने वैरी के पुत्र कृष्णप्प का प्रेत ही उसके शरीर में संचार करके इतना खेल खेला रहा है, यह पक्का निर्णय करके गौड़जी ने कहा—"क्या देखते हो! पकड़कर बांध दो इसे…"

पकड़कर बांधने की ज़रूरत नहीं पड़ी। उसकी सारी शक्ति खर्च हो गई थी। सीता कोमल कण्ठ से हृदय विदारक स्वर में "हाय! मां!" कहते मुरझाये फूल की तरह ज़मीन पर लुढ़क पड़ी। उसकी चीख ने रामय्य का हृदय छू दिया। उसकी कठोरता को थोड़ा हिला दिया। चंद्रय्य गौड़जी की तरह उसने ताड़ी नहीं पी थी।

रामय्य ने "न पिताजी, न" कहकर कितनी ही वार विनती की, उसकी ओर ध्यान दिये विना, वेंकप्पय्य के कहे अनुसार चंद्रय्य गौड़जी ने सेरेगारजी को दागने की छड़ी गरम करके लाने की आज्ञा दी।

यह सब देखते रहने वाला पुट्ट मुत्तल्ली में करुणा से मेरी चिकित्सा करने वाली बड़ी वहन की तरह, सीतम्मा की मदद करने की राह न दिखाई देने से सिर्फ रोने लगा था। सेरेगारजी दागने की छड़ी जब गरम कर रहे थे तब उसे एक विचार विजली की तरह सूझ गया। केलकानूरु जाकर हूवय्य गौड़जी को यह खबर पहुंचाऊं तो!

कौमार्य अवस्था का वालक। घर का फाटक पार करके वाहर आया। घना अंधकार, वर्षा की झड़ी, निर्जनता, भूत-पिशाचों का भय—इनसे वालक का हृदय हिचकिचाया। वाहर खड़ा न हो सका, भीतर आया। "हाय, मैं ओवय्य गौड़जी की तरह वड़ा होता तो!" कह लिया अपने-आप।

प्रज्ञाहीन पड़ी सीता की चोली को ऊपर सरकाकर, चंपा के रंग के सदृश चमकती कोमल वांहों पर लाल गरम की गई छड़ी से चंद्रय्य गौड़जी ने कृष्णप्प के प्रेत पर वदला लेने वाले की भांति एक दाग दिया।

सीता इस तरह चीख उठी कि सुनने वालों का हृदय सर्द हो जाय। "हाय! हाय! दुहाई है! जैसे कहेंगे वैसे करूंगी! हाय! हाय! आह! आह! आह!" कहकर दम मार रही थी। जब गौड़जी ने तनिक चिढ़ाने और रोष के स्वर में कहा, "करेगा? करेगा?" कहते दूसरा दाग दिया। सीता और भी जोर से चीख-

पुकार कर रही थी कि सुनने वालों की छाती फट जाय, उछल-उछल पड़ी। चंद्रय्य गौड़जी दिन को एक के हिसाब से, हफ्ते में सात दाग देना भूलकर एक ही दिन में, एक ही वार में सातों दाग देने का प्रयत्न मानो करने वाले हैं, ऐसा लग रहा था।

तव तक रामय्य सब्र करके रहा। अव उसका सब्र न रहा। "पिताजी, मार डालेंगे क्या ?" कहते-कहते दाग की छड़ी पकड़े हाथ को अपने दोनों मूठों से जोर से पकड़ा जिससे उसके पिता का ऊपर उठा हाथ वैसे ही रहा। निर्वीर्य वने गौड़जी अपने हाथ को तनिक भी हिला न सके।

चंद्रय्य गौड़जी ने गुस्से से हाथ में पकड़ी दाग की छड़ी को नीचे फेंककर, अपने कमरे में जाकर दरवाजा वंद कर लिया। रामय्य भी वहां ठहर न सका। गंगा से न जाने क्या अस्पष्ट कहकर दुमंजिले पर चढ़ गया। सेरेगारजी भी कुत्ते के पीछे उसकी पूंछ भी जाती है वैसे गौड़जी के ओझल होते ही चले गये। गंगा सीता को उठाकर उस कमरे में ले जाकर, जिसमें कल रात को वह अपनी मां के साथ सो रही थी, उसके दागे घाव पर रामय्य के आज्ञानुसार तेल लगाकर शुश्रूषा करने के इरादे से पास गई, तो रोती सीता ने उस पर थूककर, लात मार उसको ढकेल दिया ! "तुच्छ स्त्री, मर जाओ।" कहती हुई गंगा गुस्से से गौड़जी जिस ओर गये थे उस ओर गई।

काना, चेचक के दाग के चेहरे वाला ओवय्य और अवोध वालक पुट्ट वहीं खड़े थे। ओवय्य पत्थर की तरह पत्थर वन वहां खड़ा था। पुट्टण्ण विलख-विलखकर रोते खड़ा था। दीये की लौ इधर-उधर लचकती जल रही थी। चारों ओर अंधेरा छाया था। वर्षा हुई थी।

ओवय्य ने पुट्ट की ओर घूमकर पूछा, "गरी का तेल कहां रखते हैं जानते हो ?"

पुट्ट ने सिर हिलाकर वता दिया कि जानता हूं। तव ओवय्य ने कहा, "तो जाकर ले आओ।"

पुट्ट रसोई घर जाकर लौटा और कहा, "मेरा हाथ वहां तक नहीं पहुंचता।" तव ओवय्य पुट्ट के साथ जाकर तेल की कुप्पी लाया। फिर मुर्गी का एक पर भी लाया।

पुट्ट ने ही पर को तेल में भिगोकर सीता की वांह पर काले दीखते हुए दागों के घाव पर धीरे से लगा दिया। जलन को न सहते सीता मुंह सिकोड़ती रही घाव पर पुट्ट ने उफ़ करके हवा की जिससे कुछ ठंडक पहुंचे।···

सीता पुट्ट के साथ पिछली रात जिस कमरे में सोई थी उसमें गई तो ओवय्य अपनी जगह जाकर सो गया।

कमरे में दीया नहीं वुझाया गया था। सीता एक ओर सोकर दर्द से, दुख से

कराह रही थी। पुट्ट भी दूरी पर एक चटाई पर सिकुड़कर सोया था।

कुछ समय के बाद सीता ने पुट्ट के पास जाकर, उसे हिलाकर जगाया। वह उठ बैठा और पूछा "क्या है?"

"केल कानूर की राह जानते हो?"

"हां जानता हूं।"

"हूवय्य मामा और नागम्माजी वहां हैं क्या?"

"हैं तो!"

"मुझे वहां ले जाकर छोड़ोगे?"

पुट्ट अत्यंत अचरज से सीता की ओर देखने लगा।

'तुम डरो मत। हूवय्य मामा के साथ रहोगे तो तुमको कुछ भी नहीं होगा।'

पुट्ट के होंठ हिले। बोला नहीं। एक ओर वह चाहता था कि सीतम्मा की मदद करूं। दूसरी ओर चंद्रय्य गौड़जी का भय आंखें खोलकर डरा रहा था।

"जाने दो। मुझे वहां पहुंचाकर, लौट के आओ, और चुपचाप सो जाओ। समझेंगे रात को मैं अकेली उठकर गई। क्या डर लगता है अकेले को लौटने में?"

पुट्ट को सचमुच डर था। तो भी कहा, "नहीं।" एक बड़ा काम करने के साहस से, उसमें हिम्मत उभर रही थी।

दोनों एक-एक कंबल ओढ़कर, पिछले दरवाजे से बाहर निकल पड़े। बरसात में, अंधेरे में, कीचड़ में, हवा में केलकानूर की तरफ लड़खड़ाते निकले। सीता की बांह पर के घाव बहुत जलने लगे।

मेंढक, क्रिमि-कीटकों की कर्कश आवाज इतनी तीक्ष्ण थी कि कान फट जाते थे। पुट्ट यहां-वहां खड़े हो, परिचित वस्तुओं, पेड़ों को पहचानते, सही रास्ते को देखते आगे बढ़ा।

दूर अंधेरे में एक कमरे में जलने वाले दीये के प्रकाश से केलकानूर के घर का स्थान दीख पड़ा। कमरे की दोनों खिड़कियां दो आंखों की तरह घूरकर पलक बिना गिराए देख रही थीं।

पुट्ट ने सीतम्मा को राह दिखाकर लौटते समय, कुत्ते भौंके तो "हच, कहकर डरा दीजिये।" कहकर चेतावनी दी।

रात को उस समय भी हूवय्य के कमरे में दीया जल रहा था।

६९

रुद्र, मगर मधुर रात

एक दिन सवेरे विस्तर पर उठ बैठ, परमात्मा को नमस्कार करते समय नागम्माजी ने अपनी बाईं बांह पर एक पैसे का जितना हरा निशान देखकर उसांस छोड़ी। पुत्र को उसे दिखाते हुए, करुणा से कहा—"भूत मेरी आयु को सूंघकर गया है। अब मेरे दिन निकट आये।"

हूवय्य ने हंसी को रोकते हुए, मुस्कुराकर कहा—"तुमको क्या पागलपन सवार हुआ है मां? भूत सूंघता है। आयु देखकर जाता है। यह सब किसने बताया? देह में कोई विकार हो जाने से, खुजली, फुंसी, फोड़े, आदि चर्म रोग जैसे उठते हैं वैसे हरा मच्छ दिखाई दिया है। उसके लिए तुम इतना डर गई हो?"

नागम्माजी ने पुत्र की आंखें ही देखते, "डर क्यों मरने के लिये? अब जीवित रहने से भी क्या भाग्य मिलेगा? भूत का सूंघ जाना ही अच्छा हुआ।" कहकर आंसू बहाये।

हूवय्य को मां की बातों का भीतरी अर्थ विदित हुआ। भूत को सूंघकर आयु की अवधि जानकर जाने का निशान है हरा मच्छ, इसपर तनिक भी विश्वास उसका नहीं था। पर, मां की बातें, उसके आंसू उसके हृदय की वेदना अच्छी तरह सूचित करते थे। पुत्र को अविवाहित हो, अधिकाधिक निःसंगी होते देखकर नागम्माजी भीतर ही भीतर दर्द का अनुभव करती, दुबली होती जा रही थीं।

जनमना, माता-पिता के लाड़-प्यार की चीनी खाकर बढ़ना, उनकी पसंद की सुंदर लड़की का पाणिग्रहण करना, अच्छी तरह मेहनत करके आराम से जीना, संतान पैदा करना, उनको पाल-पोसकर बड़ा करना, फिर उनका विवाह करना—यही तो जीवन का राजमार्ग और ध्येय है। सामान्य लोगों को यह ध्येय हासिल न हो तो जीवन उद्देश्यहीन, अर्थहीन एवं शून्य होता है। लोगों से भरे घर में हेग्गडिति होकर, पांच-छः स्त्रियों पर अधिकार चलाकर, अपने और अन्य के बच्चों को पालकर, आगे बहू पर अधिकार चलाने की इच्छा रखने वाली नागम्माजी को पुत्र की संन्यास चिता अपनी श्मशान चिता बनी थी। वे पहले की तरह घर का

काम, नौकर-चाकरों के बाहरी कामों की निगरानी करना आदि काम आसक्ति के साथ करती दिखाई देने पर भी, उनके कामों के पीछे उत्साह नहीं था। वाष्प-यंत्र रुक जाने पर भी उसके चक्र जैसे कुछ देर चलते हैं वैसे उनका जीवन चल रहा था।

नागम्माजी के लिए सारे संसार का कल्याण अपने पुत्र के विवाह पर मानो अवलंबित था। कहीं किसी को कुछ बुरा हुआ वह सुनतीं तो कहतीं, "प्रबुद्ध बने हुए विवाह न करें तो और क्या हो सकता है!" एक बार हूवय्य फिसलकर गिर पड़ा तो, कहते हैं, उन्होंने कहा था, "विवाह कर लिया होता तो क्या ऐसा होता?" और एक बार 'नंदी' बैल एक गड्ढ़े में गिर गया था। उसकी टांग टूट गई थी। तब कहते हैं कि उन्होंने हूवय्या से कहा था, "तुमने विवाह कर लिया होता तो ऐसा होता? अब भी तुम विवाह कर लोगे तो, बेचारे उस बैल की टांग ठीक हो जाती है।" वर्षा नहीं हुई तो, वर्षा अधिक हो तो, निकास से ज्यादा पानी निकल जाय तो, सुपारी के बगीचे में बीमारी आवे तो, रात को उल्लू बोले तो, कुत्ता विकट परिक्रमा करे तो, हाट में चीजों का भाव चढ़े तो—वह कहती थीं कि इन सबका कारण है, "हूवय्या का विवाह न करना।" यदि उनको मालूम होता कि दो-तीन वर्षों में यूरोप में घमासान लड़ाई होगी तो लगता है कि वह कहतीं कि उसका भी कारण अपने पुत्र का विवाह न करना है।

करीब एक महीने के पूर्व शायद, हूवय्यादि के बहुत मना करने पर भी, शस्य रोपण के समय में, सुबह से शाम तक, घुटने तक की कीचड़ में, झुककर, उठकर, फिर झुककर नागम्माजी ने शस्य रोपण काम किया था। उस दिन से वह कहतीं कि बदन में दर्द है, आखिर वह बीमार पड़ी और बिस्तर पकड़ा। फिर एक दिन छोड़कर एक दिन बुखार चढ़ने लगा। वह दवा देने पर भी नहीं पीती थीं। अपने को विदित भूत-पिशाचों की मनौती मनाना, उन भट्टों से, इन ज्योतिषियों से, कुलूर से, सिद्धों के मठों से चिट्ठी, भस्म, अंत्र-तंत्र-मंत्र मंगाना, ये सब करते आई। पुट्टण्ण आगे-पीछे घूम-घूमकर थक गया। पुत्र तो उनकी एक भी नहीं सुनता था। ऐसा लग रहा था, हूवय्य के रुख को देख, हठ से ऐसा करती थीं। कभी-कभी गुनगुनातीं कि हूवय्य के पालित बलींद्र बकरे के भूत की करतूत ही अपनी बीमारी का कारण है। उसकी बलि देने से सब ठीक हो जाता है। जो हो, उनकी तबियत बिगड़ती जा रही थी।

नागम्माजी को अपने पुत्र पर अगाध प्रीति थी, मगर उसके व्यक्तित्व को ग्रहण करने की समझ नहीं थी। हूवय्य के हृदय का तुमुल और उसके मन की जटिलताएं उनकी सरल दृष्टि के परे थे। उसका जीवन पंछी स्वप्नांडों को फोड़कर अभी तक बाहर नहीं उड़ा था। पहले उसका महान् सपना था कि मैं पढ़ा-लिखा होऊं, प्रतिभाशाली बनूं, कीर्ति संपादन करूं, लोक महापुरुषों की तरह बनूं, स्वार्थ

त्याग से जीवन का परमार्थ-सार्थकता पर बलिदान करूं। वह फट गया और वह सीता का प्रेम ! उसने दूसरे सुवर्ण-शृंगार स्वप्न को जगह दी। वह सुनहला सपना भी देखते-देखते, उसकी आंखों के आगे ही टूट गया। हूवय्य ने एक और सपना बांधकर, लपेटकर अपनी निठुर निराशा को भूलना चाहा। निसर्ग के सौंदर्य में, भाव समाधि में, अध्ययन-विचारों में, कृषि में, ग्रामीणों के जीवन-सुधार के कामों में, एक कल्पना साम्राज्य निर्माण करके उसमें निवास करना चाहा। स्वयं विश्वामित्र और त्रिशंकु बनने का प्रयत्न किया। हताशा को ही पुष्पमाला पहनाकर, उसके सिर पर मणिमुकुट रखकर, सजाकर, उसी को अपना इष्ट देवता बनाकर पूजा करने की साधना की। लेकिन वह पुष्पमाला मुरझा गई, उस मणि मुकुट की कांति निकल गई, वह सजावट नहीं रही। इष्ट देवता के बदले, हताशा के दांत दिखाने वाली विकटाकृति बार-बार संचार करने लगी। कुछ दिन देहातियों को इकट्ठा करके हरिकथा सुनाता हूं कहकर, उनके अंध विश्वासों का खण्डन किया। उससे भी मन ऊब गया। फिर दिन को, शाम को बंदूक लेकर जंगल-पहाड़ घूम-घूमकर देखा। उससे भी तृप्ति नहीं हुई। उद्दाम काव्यों का, ग्रंथों का अध्ययन करने का प्रयत्न किया। मगर मन चंचल होने लगा। प्रार्थना एवं ध्यान से काम होने लगे। सीता का प्रेमराहु उसका पीछा कर रहा था जहां भी वह जाता। बीच-बीच में अनिष्ट पिशाच भी आत्म भित्ति के दरारों में झांककर, आंखों से इशारा करने लगे। सुब्बम्म ने जिस दिन उसके हाथ में गहनों की गठरी दी उसी दिन से हूवय्य के हृदय में एक असह्य दुराशा पिशाच सिर उठाने लगा था। बार-बार दृढ़ चित्त से मुंह पर थूककर उसे भगाता था। धर्मस्थल की यात्रा से लौटने के बाद सीता चंगी हो गई है, यह सुनते ही हूवय्य को बड़ी वेदना हुई। तो सीता ने मनःपूर्वक रामय्य को प्यार किया ! आह ! वह पहले की तरह पगली क्यों न बने, उसने चाहा। इन सब ज्वालामुखियों को ढोकर हूवय्य अग्निपर्वत की भांति ऊपर-ऊपर शांत मूर्ति की तरह दिन के कर्तव्य कर्म को निभाता रहा।

उस दिन सिंगप्प गौड़जी के पुत्र-शिशु का नामकरण था। आमंत्रण था; अतः हूवय्य मां की बीमारी के कारण रात को लौटने की इच्छा से सोम को साथ लेकर सीतेमने गया था। वहां भोजन होने में ही देर हो गई है। सिंगप्प गौड़जी ने आग्रह किया, "इतनी रात बीत गई है। क्या जाना ? यहीं ठहरकर कल सवेरे, तड़के जा सकते हो।" मगर माता की बीमारी के कारण, बहुत देर होने पर भी रात को वह सोम के साथ केलकानूर लौट आया था। नागम्माजी सो रही थीं। पुट्टण्ण से पूछ-ताछ करने पर उसने कहा—"उन्होंने दवा नहीं पी। मना करने पर भी ठंडा पानी पिया।" इसे सुनकर हूवय्य को बड़ा दुख हुआ। पुट्टण्ण ने बलींद्र के बारे में नहीं कहा। क्योंकि वह उसे नहीं जानता था।

बाकी सब सोये हुए थे। हूवय्य अपने कमरे में बिस्तर बिछा लेकर दीये के

आगे, कुर्सी पर बैठ, सीतेमने में सुनी एक बात पर, सुदीर्घ सोचने लगा था। उसी समय में वह जिस व्यक्ति के बारे में सोच रहा था वही पुट्ट के साथ निकलकर, कमरे की आंखों की तरह आ रही। खिड़कियों में दीये का प्रकाश देखकर, बांह पर दागे निशानों की यातना सहते हुए भी हर्षोन्माद से वह आगे बढ़ी आ रही थी।

बरसात की रात में सिकुड़कर सोने वाले कुत्ते इतर समयों में भूंकने की तरह खामखाह छोटे कारणों के लिए नहीं भूंकते। उनके लिए राख की राशि बहुत सुखकर होती है! कुत्तों का जोर से भूंकना और किसी का उनको डराना सुनकर विस्मित हो, झट से उठकर दरवाजा खोलकर, देहलीज पार करके आये हूवय्य को दरवाजे में से बहकर आये हुए दीये के प्रकाश में केवल कंबल ओढ़े अपने सामने खड़ी नराकृति को अपनी ओर आते देखकर उसका खून ठंडा-सा हुआ और रोंगटे खड़े हो गये। उस आकृति ने क्षणार्ध में "हूवय्य मामा" कहकर हकलाते दौड़कर आके उसे जोर से छाती से लगा लिया! हूवय्य पसीने से तर हो गया। सिहर गया। चारों ओर कुत्ते न होते, 'हूवय्य मामा' परिचित ध्वनि तुतलाहट में न सुनाई पड़ती तो वह शायद बेहोश हो जाता!

ओढ़ा कंबल फिसलकर नीचे गिर गया। सीता को पहचानकर हूवय्य आश्चर्य के सागर में डूब गया। बोलने की कोशिश की। पर ज़बान नहीं उठी। अतलतल में डूबा स्वर्ग फिर हाथ लगा था। उसे कभी नहीं छोड़ने की वज्रमुष्टि की अचल निश्चलता से सीता ने हूवय्य को कसके छाती से लगा लिया था! तो भी उसे बाह्य प्रज्ञा नहीं थी। हूवय्य का दिमाग हिल गया था। आनंद, आश्चर्य, दुःख, रुलाई, हंसी इनके तांडव से सिर चकरा रहा था। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। वह प्रसंग जितना मधुर था उतना ही अर्थहीन था! स्वप्न में इतने अनुभवों का मिलन असंभव, नामुमकिन है! दोनों के लिए वह एक भाषातीत, भावनाप्रधान महदानंद का दिव्य मुहूर्त था!

हूवय्य सीता को धीरे-धीरे उठाकर भीतर ले गया और अपने कमरे में अपने बिस्तर पर सुलाकर बड़े प्रयत्न से उसके आलिंगन के हाथों को छुड़ा लिया। पास बैठकर देखा।

सीता की सांस में उद्विग्नता थी। आंखें मूंदकर सो रही थी। देखते-देखते हूवय्य नीरव हो रोने लगा। आंसू नदी की तरह बहे। दीये के प्रकाश में सीता अपार्थिव देव विग्रह बन गई थी। साड़ी यहां-वहां भीग गई थी। कीचड़ उछलकर साड़ी पर लगी थी। पांव कीचड़ से भरे थे। बाल यद्यपि संवारे एवं गुंथे हुए थे तथापि तितर-बितर हुए थे। बांह पर दिखाई देने वाले काले दागों को देखकर आश्चर्य हुआ। दिल मरोड़-सा गया। अंतड़ियां फटी-सी हुई। कलेजा मुंह को आया-सा लगा! उसके पहने सोने के गहनों की चमक असमंजस हो अनर्थकर हुई थी।

पांव की कीचड़ को धोने की इच्छा हुई। बांह के घावों को होंठो से पोंछना

चाहा। सीता की कितनी भी सेवा की जाय, वह कम लगी। मगर सीता सेवा करा लेने की स्थिति में नहीं थी। हूवय्य वहुत देर तक प्रतीक्षा करते वैठा। लेकिन सीता ने आंखें नहीं खोलीं। शायद गहरी नींद में हो।

हूवय्य सीता को जागते ही पीने के लिए पानी लाने रसोई घर जाकर पानी लाने के वजाय दूध लाया। घर में किसी को इस ओर की प्रज्ञा नहीं थी। कुछ भी हो, वरसात की नींद थी !

विस्तर के वगल में वैठे हूवय्य को प्रतीक्षा करते वैठे वहुत समय वीत गया; तो भी सीता को जागते न देखकर जगाने की इच्छा हुई थी। धीरे से पुकारा—"सीता, सीता, सीता !" वहुत वार पुकारा, तृप्ति नहीं हुई। वह नहीं जागी। वह नाम उसको इतना मीठा था ! वह उस प्रयत्न को छोड़कर अपना दुशाला उसको ओढ़ाकर वगल में वैठ उसे देखते प्रतीक्षा करता रहा उसके जागने की। उसको नींद नहीं आई। वह सो भी न सका। कोई सोच-विचार भी नहीं कर रहा था। सीता के मुंह को ही लगातार देखता रहा।

सवेरा होते देख उसको आश्चर्य हुआ। आज कितनी जल्दी रात वीत गई। अनंत होती वह मधुर रात्रि तो !

७०

माता की मृत्यु शय्या के पास पुत्र का वचन देना

सवेरे पहले वैरे ने हूवय्य का पत्र लाकर दिया चिन्नय्य को। उसे पढ़ते ही उसे रुलाई आई और गुस्सा भी आया। सीता की सारी घटना की कथा अपने दिल का किंचित्-सा मिलाकर सविवर लिखी थी। पढ़ते-पढ़ते उसे लगा मानो छोटी बहन की वेदना के आरे पर बड़े भैया का दिल खींचा गया हो। घर के सब लोगों को पत्र का समाचार सुनाया। सारी मुत्तल्ली पर मानो समाचार की बिजली गिरी !

गाड़ी जुतवाकर श्यामय्य गौड़जी, गौरम्माजी और चिन्नय्य हांफते केलकानूरु आये।

सीता पर पिछले दिन की घटना के परिणामस्वरूप एक सौ तीन, एक सौ चार डिग्री जितना बुखार चढ़ा था। बहुत बुखार एवं थकावट के कारण ज्यादा बोल भी नहीं सकती थी। हूवय्य बगल में बैठ दवा देता रहा। चिकित्सा करता रहा। माता-पिता-भाई के आने पर उसने खूब आंसू बहाये। कोई बात नहीं की। उस मौन में काफ़ी वाग्मिता थी, भर्त्सना थी।

थोड़ी देर के बाद ओबय्य आया ! और "सीतम्म घर में नहीं हैं। कल रात को सोई थीं, सवेरे देखने पर नहीं थीं। भूतराय की करतूत है कि क्या, नहीं मालूम। सवेरे बहुत जगह ढूंढ़ा, कहीं भी नहीं मिलीं। यहां तो आई हैं कि नहीं, देख आने को गौड़जी ने भेजा है," पत्थर भी रोये जैसे कहकर रोया। पहले देखा हुआ घर देखते ही उसके मन में दुःखोद्रेक की स्मृति उभरी थी।

सोम से सारी बातें जानकर ओबय्य कानूरु लौटकर गया और रोते हुए रामय्य को, खिन्न हुए चंद्रय्य गौड़जी को जो कुछ घटा था उसे विस्तार से सुनाकर कहा कि मुत्तल्ली से श्यामय्य गौड़जी आदि आये हैं। सीता जिंदा है। सुनकर पिता-पुत्र का दिल हलका हुआ।

साथ ही चंद्रय्य गौड़जी में—अपनी पतोहू औरों के, उसमें भी हमारे साथ न पटने वालों के घर में रात को भागकर जाके रहना क्या ? कितनी शरम की बात है ? उसे तुरंत वापस बुला लेना चाहिये, नहीं तो उसे उसके मायके भेजना चाहिये यह विचार और असूया ने सिर उठाया।

फिर उन्होंने ओबय्य द्वारा अपनी इच्छा आज्ञा के रूप में भेजी। वह जाकर लौट आया और सुनाया, "हम अपनी लड़की का जो चाहे वह प्रबंध करेंगे, जहां चाहें रखेंगे। तुम अपने गौड़जी से कह दो कि वे अपना मुंह बंद करके बैठें।" फिर उसने कहा—"आप पर क्रिमिनल केस भी करने वाले हैं, आपको जो उन्हें देना है उसे वसूल करने के लिए आप पर मुकद्दमा भी चलाने वाले हैं।"

एक-दो साल पहले यह घटना होती तो चंद्रय्य गौड़जी न जाने कितना अपना प्रताप दिखाते, कितनी बार अपनी मूंछों पर ताव देते, शोर मचाते? पर अब उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। "कन्याओं का अकाल कहां? अपनी लड़की का अचार बनाकर रख लें। मेरे पुत्र को दूसरी जगह कन्या कैसे नहीं मिलेगी, देखता हूं।" कहकर सेरेगारजी की तरफ घूमकर कहा, "आज गड्ढे को पाटना है। मजदूर आये हैं क्या जी?"

"हां जी; सभी काम पर गये हैं।" कहकर सेरेगारजी आंगन में तांबूल थूक-कर बाहर गये।

वहीं कीचड़ से भरे तख्ते पर सिर झुकाए बैठे रामय्य ने सब सुना था। पर वह अपना मुंह खोले बिना चुपचाप बैठा था। एक बात भी उसने नहीं कही। अपने पिता के प्रति जुगुप्सा, कोप, तिरस्कार, घृणा सभी एक साथ उमड़ रहे थे उसके हृदय में।

सेरेगारजी के चले जाने के बाद ही उसने कहा—"आपसे घर बरबाद हुआ!"

"तेरे नाना के घर की गठरी नहीं, मैंने कमाया, मैंने उड़ाया। तू कौन होता है मुझसे पूछने वाला?" कहा गौड़जी ने।

"अगर आप अकेले बरबाद होते तो मेरा···गया कहता। मुझे भी बरबाद किया। हाथ धरने वाली को भी बरबाद किया। घर को तोड़कर हिस्सा किया। आपके कारण कितने लोग बरबाद हुए? और कितनों को बरबाद होना होगा कौन जाने? आप कराह, कराहकर, सड़कर मर जायंगे, ऐसा लगता है!" कहकर रामय्य ने इस तरह कड़ाई से बातें फेंक दीं पिता के मुंह पर जैसे पत्थर फेंक दिया हो।

वह एकैक बात सच दिखाई देने से ही चंद्रय्य गौड़जी का पारा और चढ़ गया। जो मुंह में आया वह गाली बकने लगे। फिर-फिर कोसा। उनकी देह निर्बल हो गई थी, अतः इससे अधिक कुछ नहीं कर सकते थे।

रामय्य परस्पर विरुद्ध भावोद्वेगों से भग्न हृदय वाला होकर जलते, रोते, धड़-धड़ करते, सीढ़ियां चढ़कर दुमंजिले पर गया। उसे लगता कि किसी को गोली दागकर मार डालूं। खुद को? पिता को? हूवय्य को? सीता को? किसको?

पिछली रात के अपने विचार फिर मन में उठे। दीवार पर खूंटे से टंगे कुर्ते

की जेब से एक पत्र निकाला। पढ़ा। वह पत्र सीता का था। विवाह के पहले हूवय्य को लिखा हुआ था कि उसको किसी तरह इस विवाह से पार किया जाय। भाग्य के धोखे से वह पत्र हूवय्य के हाथ में न पड़कर रामय्य के हाथ में पड़ा था।

"इसे मैं हूवय्य को दूंगा। कहूंगा कि सीता ने मुझे कभी नहीं चाहा। मैंने सच-मुच उससे विवाह नहीं किया। मैंने मंगलसूत्र नहीं बांधा। यह सब जो हुआ वेंकप्पय्य ज्योतिषी तथा मेरे पिता के षड्यंत्र का प्रसाद है। विवाह के मंडप में आये अपने अनुभव बताकर, अपना कसूर मानकर, बड़े भैया से क्षमा मांगकर, इस दुस्वप्न से पार हो जाऊंगा" आदि विचारों से लदकर ही वह दुमंजिले से धड़धड़ नीचे उतर गया।

चंद्रय्य गौड़जी जहां बैठे थे वहीं गाली देने बैठे देखकर, हठ से जान-बूझकर, उनके आगे खड़े हो, "मैं केलकानूर जा रहा हूं।" कहकर, अपना उद्देश्य आदि सब सुनाकर झट वहां से निकलकर, फाटक की तरफ चला।

गौड़जी अप्रतिभ हुए मानो गाज उनकी ओर बढ़कर आई हो। अगर कोई अचानक उनके हृदय और फेफड़ों को निकाल देते तो भी उनको वैसा नहीं होता। उन्होंने विकृत ध्वनि से कहा, "दोहाई है महाराय! इतना उपकार करो! तुम्हारे पांव पड़ता हूं। मत जाना! मत कहना!" फिर वे दौड़कर गये, रामय्य का हाथ जोर से पकड़कर रुलाई के स्वर में बोले, "हाय! बेटे, मैंने इतना तुम्हारे लिए ही किया न? मेरा गला मत काटो। जन्मदाता के पेट में आग मत लगाओ। तुम्हारी दोहाई है! चुपचाप ठंडे दिल से आंख मूंद लेता हूं। तब जो चाहे सो करो। तुम्हारा घर, तुम्हारी जायदाद, सब कुछ तुम्हारा ही है। मेरा क्या है रे? हाय!" फिर वे थककर बैठ गये।

रामय्य फाटक पार करके नहीं गया। यकायक दिन-प्रतिदिन जलने वाली मोमबत्ती की तरह अधिकाधिक दुबले-पतले होते जाने वाले पिता पर की करुणा से उन पर प्यार उमड़ पड़ा। नीचे धंसकर बैठे पिता को धीरे से चलाकर ले गया और बिस्तर पर सुलाया।

अगर रामय्य केलकानूर गया भी होता तो अपनी इच्छा के अनुसार वह कर नहीं सकता था। हूवय्य को सीता का पत्र देकर, विवाह का सारा धोखा विस्तार से सुनाकर, अपनी गलती मानकर, उससे क्षमा मांगने आदि की जो कल्पना की थी, उसे नाटक की तरह अभिनय करने के लिए न योग्य रंगमंच था वहां, न परिसर, न सन्निवेश। उसके बदले वह नागम्माजी की मृत्युशय्या के पास बैठे हुए हूवय्य को देखता।

पिछले दिन जब हूवय्य सीतेमने गया था तब नागम्माजी ने अपथ्य किया था जिससे उनकी बीमारी दूसरे दिन ज्यादा बढ़ गई। वह सीता की शुश्रूषा में था तब

पुट्टण्ण ने आकर उसके कानों में कुछ कहा तो वह थोड़ी ही देर में श्यामय्य गौड़जी, गौरम्माजी और चिन्नय्य को अपने कमरे में सीता की देखभाल के लिए छोड़कर माता के पास गया।

नागम्माजी को उलटी, खांसी, पार्श्वशूल सब होने लगा था। इससे ज्वर विषम अवस्था तक चढ़ रहा था। हूवय्य जो जानता था उन दवाओं का प्रयोग किया, नागम्माजी को पसंद दवाओं का प्रयोग करने लगा। तो भी नागम्माजी प्रज्ञाशून्य अवस्था तक पहुंच गईं और अंटसंट बोलने भी लगीं।

"सब भूतराय की करतूत रे! उसको दी जाने वाली बलि अपने पास रख ली है रे! उसके बदले मुझे ले जाये बिना रहेगा क्या रे? बस करो रे तुम्हारी दवा? दवा से क्या होता है रे?...मैं जाऊं तो भी चिंता नहीं देखो रे! तुम और तुम्हारा बकरा सुखी रहे रे!" आदि कहकर सुदीर्घ कराहने लगीं।

तब तक दिल कड़ा करके रह रहा था हूवय्य मगर उस दिन उसका दिल पिघल गया। उसे अपनी माता के प्राण सौ बलींद्रों के प्राणों से ज्यादा प्रिय थे। पहले माता ने उसके बारे में बहुत कुछ कहा था, तो भी उसकी ओर ध्यान दिये बिना बलींद्र की रक्षा की थी, उसकी भूतबलि नहीं दी थी, वह एक तत्त्व के लिए था। मनःशास्त्र का जानकार था वह। उसने सोचा कि अब बलींद्र की बलि देने से, माता के विश्वास के बल से उनकी बीमारी दूर होगी, वह चंगी होंगी, अतः उसने माता को वचन दिया कि बलींद्र की बलि तुरंत दी जावेगी, फिर उस काम के लिए बैरे को नियुक्त किया।

इस वचन को सुनते ही नागम्माजी में परिवर्तन दिखाई पड़ा। बहुत समय से जो वह कर नहीं सकी थीं उस एक बात में आखिर वह जीत गईं जिससे उनको हर्ष हुआ।

लेकिन सब जगह पुकारने और ढूंढ़ने पर भी बलींद्र का पता ही नहीं था। वह नहीं मिला। उस उद्वेग में, उस गड़बड़ी में, केलकानूर से अनति दूर में, जंगल के छोर पर, झुरमुट के बीच में सेरेगारजी की गोली से मरे पड़े बलींद्र का पता लगाने का सब्र तथा अवकाश किसी को नहीं था। इस बात को जानने वाले कुत्तों को (अब तक उस बकरे का उन्होंने कुछ-उपाहार किया था) बताने के लिए जबान नहीं थी।

शाम को बलींद्र के अदृश्य होने की बात नागम्माजी को भी मालूम हो गई। इस बीच में रोग की तीव्रता कम होने के आसार नहीं दीखते थे। मगर उनका कराहना कम हो गया था। यह खबर मिलने पर वह भी तीव्र होते गया।

रात को बीमारी का प्रकोप और भी ज्यादा हुआ। बारी-बारी से लोग सेवा-टहल, तीमारदारी करते थे। करीब रात के दो बजे होंगे, हूवय्य मां की शुश्रूषा कर रहा था। तब नागम्माजी ने पुत्र का हाथ पकड़कर कहा, "बेटे, मैं तो जा रही

हूं। तुम्हारी गति क्या ?" उनकी आंखों में आंसू थे।

हूवय्य बिना बोले रो रहा था।

नागम्माजी थोड़ी देर चुप रहकर बोलीं, "तुम यदि वचन देते कि विवाह करोगे तो मैं निश्चित मरती !" कहने के बाद अनंत आकांक्षा से प्रतीक्षा करने के उपरांत "अगर वे (हूवय्य के पिता) रहते तो तुम्हारा विवाह हो जाता। मैं भी पोतों-पोतियों को देखकर संतोष से हमेशा के लिए आंखें मूंद लेती।" कहकर फूट-फूटकर रोने लगी।

उस ज्वर की हालत में रोना भी उनकी कमजोरी को बढ़ाता था। हूवय्य नहीं सह सका।

"हां मां, तुम जैसे कहोगी वैसे ही करूंगा ! मत रोओ···बीमारी बढ़ती है।" कहकर मरने वाली माता को गड़बड़ी में दिये जाने वाले वचन की व्याप्ति, जटिलता को जानने के लिए गुंजाइश तब नहीं थी। उसने उस समय मन के उद्वेग से वचन दे दिया। मगर उसके इस वचन ने एक जादू-सा कर दिया। यकायक एक किसी संतृप्ति की शांति माता के मुंह पर उभर गई।

दूसरे दिन दुपहर को नागम्मा जी इस लोक से चल बसी। कहते हैं कि मरते समय पुत्र को प्यार से देखते संतोष से सदा के लिए आंखें मूंद लीं।

७१

मायके का कांटेदार बिस्तर

खेत के कटाव के समय का आकाश शुभ्र वना था। नीलिमा वढ़ी थी। यहां-वहां सोने की-सी फसल कटी थी जिससे ऐसा लगता था मानो सिर पर के वाल पट्टीनुमा मुंड़े गये हों। तो भी चारों ओर विस्तार से, अनंत वढ़े जंगलों से, कंदरा के चरागाहों से, सारी ज़मीन हरी-भरी हो गई थी। अभी दुपहर नहीं हुआ था। तो भी धूप कड़ी थी। खेत की सीमा से घर की ओर पेड़ों के वीच-वीच में जाने वाली पगडंडी में भरे यौवन की एक ग्रामीण युवती धान की घास का एक वोझ ढोकर धीरे-धीरे वढ़े जा रही थी। धीरे से जा रही थी, इसका कारण भारी वोझ नहीं था; थकावट भी नहीं थी, परंतु चिंता थी।

ढोये घास के मारे उस युवती ने सिर पर एक टोप पहना था जो सुपारी के पेड़ के छिलके से वना था और काली साड़ी के टुकड़े से कसकर वांध दिया गया था। उसके कारण उसका माथा या मुंह वाहर नहीं दीख पड़ता था (स्त्रियां काम करते समय में ऐसा टोप पहनती हैं जो एक तरह से उनका शिरस्त्राण होता है)। उस युवती को दिखाई दे रही थी केवल उसके आगे की दो-तीन गज दूर की पगडंडी। घास का वोझ चारों ओर झुककर उसका मुंह ढंक गया था। वह जैसे-जैसे कदम रखती वैसे-वैसे उस वोझ के भुट्टे के छोर नाचकर आवाज कर रहे थे।

गले के नीचे दिखाई देने वाली उसकी आकृति वहुत वाग्मी थी। उसका वदन पूरा भरा हुआ था। रस से भरे फल की याद दिलाता था। उसकी मैली चोली वांहों पर कसी हुई थी, और भी उभरती छाती को खूव कसकर आलिंगन कर चुकी थी। छाती के वीच में मंगलसूत्र लटकता था। उसने जो साड़ी पहनी थी, उसके नीचे के किनारे को ऊपर उठाकर कमर में खोंस लिया था। तव उसके पैर की मांसपेशियों से आवृत मजवूत उसके हड्डी के पैर वलवान दिखाई दे रहे थे। सिर पर के वोझ को उसने दोनों हाथों से मजवूती से पकड़ लिया था जिससे उसके कंगन चुप थे। चोली के ढके भाग को छोड़कर खुली वांह पर गोदने के काले-नीले चित्र साफ दिखाई पड़ते थे।

सुदीर्घ सोच में होने से युवती की चाल धीमी होती गई। वह अपने परिसर, सन्निवेश को भूलकर, दूसरी दुनिया की निवासिनी हो गई थी।

पीछे से "ओ हो, यह क्या सुब्बम्मा? अनसुनी करके जा रही हो? जल्दी-जल्दी क्यों नहीं जाती? पुरुषों का कहना, तुम्हारा वैसा करना सब बराबर!" जोर से कही भाभी की बातें सुनकर भी युवती बिना बोले पीछे घूमकर देखे बिना, स्वप्न से जागती-सी होकर, जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाने लगी। पीछे से घास का बोझ ढोकर आने वाली भी जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाकर पास आई। वह नेल्लुहल्ली के पड़ोसी के बारे में बोलने लगी। मगर युवती बोले बिना आगे बढ़ी। धान के भुट्टे सूखी घास से रगड़कर हवा से सुंई सुंई आवाज कर रहे थे।

उस दिन नेल्लुहल्ली के पेद्दगौड़जी के घर में मजदूरी थी। रिवाज के अनुसार पडोस वाले उनके घर काम में हाथ बंटाने आये थे। सभी मिलकर, तीस लोग फसल काटकर खेत से घर की खलिहान को भेज रहे थे। पति की क्रूरता से डरकर मायके आई हुई सुब्बम्म भी सबकी तरह खेत से घास का बोझ ढोकर ले आकर खलिहान में राशि करने वालों को देने में लगी थी।

नेल्लुहल्ली कानूरु की एक ही एक खपरैल के घर का ग्राम नहीं था। कुछ दूर-दूर पर पांच-छः झोपड़ियों का ग्राम था। इसलिए वहां अपने घरवालों के अतिरिक्त अन्यों के बारे में भी निंदा आदि करने के लिए गुंजाइश नहीं थी। वैसे ही स्नेह के लिए अवकाश था।

अटाले पर हो ढेर लगाते रहे दूर के एक युवक ने बोझ ढोकर आने वाली सुब्बम्मा को दूर से ही पहचानकर जोर से—"ओ हो हो, देखोजी, हमारे कानूरु की हेग्गडिति अम्मा बोझ ढोकर आ रही हैं; यह क्या हेग्गडिति अम्माजी? एक घंटे में एक बोझ लाती हैं! बड़ों का हाथ धरते ही गरीबों पर चरबी चढ़ जाती है! उसके बाद एक कदम जाने के लिए भी पालकी ही को आना चाहिए!" कहकर मजाक उड़ाया।

अपनी एक-एक बात की बर्छी सुब्बम्मा के कलेजे में चुभकर जर्जरित करके खूब बहाती है सो उस मोटी अक्ल के युवक की समझ में कैसे आवे? उसमें भी कानूरु के साहूकार चंद्रय्य गौड़जी की मंगनी के पहले सुब्बम्मा को उसी ग्रामीण युवक को देकर विवाह करने की बात हवा में थी, कहते हैं! सो भी उस रसिक बंदर को नसैनी लगाकर देने के समान था।

सुब्बम्मा घास का बोझ लाती, मिनट-मिनट में ऊपर बढ़ते जाने वाले अटाले से लगी नसैनी पर चढ़के बोझ के उस ढेर को लगाने वाले युवक के पास डालकर, मुंह पर का पसीना पोंछती नसैनी से उतरती थी कि दूसरा एक युवक बोझ लाकर नसैनी चढ़ने लगा। उसने सुब्बम्म को उतरते देखा था तो भी जान-बूझकर, एक-आधा मिनट ठहरकर, उसे उतरने न देने के इरादे से ही नसैनी पर

चढ़ रहा था। ढेर लगाने वाला, नीचे खड़े सभी स्त्री-पुरुषों ने मिलकर, सुब्बम्मा का अक्खड़पन है तय करके ऊपर चढ़ने वाले को जगह छोड़ने के लिए चिल्लाकर कहा।

"क्या दौलत है उसकी ? एक बोझ ढोकर चढ़ रहा है, तो जानबूझकर उतर रही है!"

"बड़ों के पाणिग्रहण का घमंड अभी नहीं उतरा है, लगता है।"

धीरे-धीरे जवां मर्द मर्दों की-सी बनने लगी है।"

"कोई एक चपत लगावे तो घमंड उतर जाता है।"

ये सब बातें सुब्बम्मा के कानों में पड़े बिना न रहीं। कहने वालों की इच्छा भी थी कि उसके कानों पर पड़ें।

सुब्बम्मा फिर नसैनी पर चढ़कर, घास के अटाले पर एक ओर खड़ी हो गई। बोझवाले को ऊपर चढ़ने के बाद वह नीचे उतर गई। फिर साड़ी पर गिरी धूल तथा तिनकों को झाड़कर, जिस रास्ते से आई थी उसी रास्ते से, वहां खड़े रहे बिना खेत की ओर लौटी। औरों की तरह 'बसरी' के पेड़ की छाया में बैठ थका-वट दूर कर लेने की उसकी इच्छा भी नहीं हुई। क्योंकि वह अच्छी तरह जानती थी कि वहां रहनेवाले सभी उसके बारे में निठुर बातें कर रहे हैं।

थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही तब तक बंधा, रुका दर्द हृदय विदारक हो दुख उमड़ पड़ा। वह फूट-फूटकर रोती, चारों ओर देखकर, एक बड़े कटहल के पेड़ की मोटी जड़ पर झुरमुट की आड़ में बैठ यातना के बिस्तर पर लोटपोट हो, आंखों को खूब मल दिया।

चंद्रय्य गौड़जी की क्रूरता की तलवार से अपने को बचाकर रात में सुब्बम्मा केलकानूर आकर, वहां से नेल्लुहल्ली जिस दिन आई थी उस दिन सभी-सभी पड़ोसियों ने घरवालों की अपेक्षा अधिक सहानुभूति, दया, करुणा दिखाई थी। मगर दुर्भाग्य ! परिचय से भावों की नोक बहुत उपयोग में लाये जाने वाले सब्बल की तरह अतीक्ष्ण हो जाती है। इतना ही नहीं, उसकी नोक पर मिट्टी आदि जैसे जम जाती है जैसे, विरुद्ध भाव भी उभर आते हैं। नेल्लुहल्ली वालों ने पहले पहल जो सहानुभूति दिखाई थी वह धीरे-धीरे अमीर चंद्रय्य गौड़जी से पूर्ण परित्यक्ता हो गई जब लोगों को मालूम हो गया है तब उदासीनता तिरस्कार-द्वेष में बदल गई। नेल्लुहल्ली की सुब्बि अचानक कानूरु की हेग्गडिति बन गई थी, अब वह सुब्ब जीजी बन गई।

पति को छोड़कर आनेवाली स्त्री शीघ्र निंदा की शिकार बनती है। सुब्बम्मा के बारे में लोग यहां-वहां, ये-वे फुसफुस बुरी बातें करने लगे। कुछ लोगों ने तो इधर-उधर अंटसंट बिगाड़ करके बोल दिया—सुब्बम्मा ने कानूर में बुरा काम किया हो, इसीलिए गौड़जी ने उसे भगा दिया,नहीं तो ऐसे बड़े आदमी पाणिग्रहीता

पत्नी का हाथ छोड़कर, अपमान का शिकार बनते ? इत्यादि। इतना ही नहीं, बुरी जबानों के अलावा सुब्बम्मा पर बुरी निगाहें भी पड़ने लगी थीं। उसका मन भी एक-दो बार हिलकर, झुककर, हार के किनारे तक पहुंचकर, फिसलकर, बहुत मुश्किल से नीचे गिरे बिना टिका हुआ था।

बाहर वालों की बात एक ओर रहे, मायके वालों का मन भी उसके प्रति टूट गया था। उसकी एक भाभी तो फेफड़ों में चुभे तीर की तरह कुरेद-कुरेदकर सताती थी। चंद्रय्य गौड़जी जब यात्रा पर गये थे तब कानूर जाकर सुब्बम्मा ने अपने गहने लाकर, उनको हूवय्य के हाथ में देकर आई थी तब से उसको सताना इतना अधिक हुआ था कि उसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता था। माता से लेकर सभी उससे तंग आ गये थे। सभी को उससे इसीलिए असूया थी कि सुब्बम्मा ने गहने आदि घर लाकर नहीं दिये। मायके लाकर देने पर वे अपने हाथ से निकल जायंगे, सोचकर होशियारी से वह उन्हें हूवय्य के हाथ में दे गई थी।

जिस दिन घरवालों की आशा भंग हो गई उसी दिन से वे भी औरों के साथ मिल गये और सुब्बम्मा को सताने लगे। मजदूरिन की तरह उससे काम लेने लगे। थोड़ा भी मौका मिला कि ताना मारकर कहते—"अम्मा, यह तेरे पति का घर नहीं है ! हम तो गरीब हैं ! तू आराम से बैठकर खाना चाहती है तो पति के घर जा ! या उनके पास जा जिनके हाथ गहने दे आई !" सुब्बम्मा यह सुन-सुनकर तंग आ गई थी। उसने भी सोचा था—'मायका छोड़कर जाऊं, हूवय्य के आश्रय में, नागम्माजी के साथ उनकी आजन्म दासी बनकर रहूं।' इतने में समाचार आया कि नागम्माजी का देहांत हो गया। अतः उसे आगे की बात न सूझने से वह चुप रही। अविवाहित पुरुषों के बीच में पति से परित्यक्ता युवती अकेली रहे तो निंदा को सवार होने के लिए जुए के घोड़े को देने के समान होता है न ?

कटहल के पेड़ के नीचे बैठ सोच-सोचकर रोती हुई सुब्बम्म को, जो कुछ भी हो, अपना पतिगृह ही स्वर्ग लगा। इस निंदा की भीतरी छुरी की चुभन के आगे उस पति का बाहरी घूंसा मुलायम प्रतीत हुआ। इस अपमान के आगे वे सब कष्ट ऊब से मुक्त करने वाले साहसों की तरह लगे। पति का घूंसा सह लिया तो बस, आप ही कानूर की सारी व्यवस्था के लिए, अधिकार चलाने वाली हेग्गडिति बनकर रह सकती हूं न ? इतना ही नहीं, कहा जाता है कि चंद्रय्य गौड़जी अब पहले की तरह क्रूर नहीं हैं; धर्मस्थल की यात्रा करके आने के बाद उनकी बुद्धि बदल गई है। बहुत सात्विक बन गये हैं। यह खबर सच ही होनी चाहिये ! नहीं तो पहले के चंद्रय्य गौड़जी होते तो जो गहने मैं लाई हूं, उन्हें वापस पाये बिना नहीं छोड़ते। प्रतिकार किये बिना चुप रहते ? गहने लौटाने को कहने एक नौकर को भी नहीं भेजा !

सोचते-सोचते रोते बैठी सुब्बम्मा को आंसुओं में नये सौजन्य मूर्ति बने,

सात्विक बने चंद्रय्य गौड़जी की मधुराकृति दीखकर मन को भाई। उनसे दी जाती रही सारी यातनाएं उसने पूरी तरह से क्षमा कर दीं। उनके पक्ष में उसके हृदय में एक अलंकार, पुष्प की तरह उभरा। उसको लगा कि वह फिर कानूर की हेग्गडिति होकर सबके गौरवादर के पात्र बनी है। उसने कह लिया तो परमात्मा की कृपा से वैसे हो जाय फिर आज मेरा उपहास करके मेरी निंदा करने वाले इस नेल्लुहल्ली के सभी चकरों को अपने पांव में पड़े देखूंगी।

थोड़ी देर से सोती हुई सुब्बम्मा अपनी भाभी की पुकार से जागी। उसकी गाली की ओर तनिक भी ध्यान दिये बिना घास का बोझ लाने खेत गई। उसको मानो आशा-धैर्य का कवच मिल गया था।

तो भी सुब्बम्मा कानूर नहीं गई। कटहल के पेड़ के नीचे बनाये अपने पति के चित्र में, उसके बाद उसे पूरा विश्वास न रहा। अलावा इसके, वहां बनाये कानूर के चित्र में उसने उभरे दांत के सेरेगारजी को छोड़ दिया था। उनकी याद आते ही उनके प्रति घृणा हुई। इसका बड़ा कारण उसका अभिमान था। पति के घर से एक गाड़ी का आना तो रहे, बुलाने लोग भी नहीं आये, कम-से-कम एक बुलाने की अफ़वाह तो चाहिये कि नहीं वहां जाने के लिए?

ऐसे निमित्त मात्र बुलाने की प्रतीक्षा में थी सुब्बम्मा।

कुछ महीनों के बाद वैशाख मास में एक शाम को (कमान वाली) ऊपर आच्छादन वाली बैलगाड़ी नेल्लुहल्ली आई। काने गाड़ीवान के विकार मुख के कारण, उसकी पहचान पहले-पहल नहीं लगी, तो भी गाड़ीवान ओबय्य था मालूम हो गया थोड़ी देर के बाद। गाड़ी पेट्टे गौड़जी के घर के आंगन में खड़ी हो गई। गाड़ीवान ने बैलों को जुए से खोला। कानूर रंगप्प सेट्टजी धीरे से मुंह बाहर निकालकर, अपने जूते पट् से जमीन पर फेंककर गाड़ी के अग्रभाग से नीचे उतर गये।

चंद्रय्य गौड़जी बहुत दिनों से बीमार हो बिस्तर पकड़े हुए हैं, उनकी इच्छा के अनुसार, उनकी शुश्रूषा के लिए, उनकी पत्नी को बुला लाने के लिए उनके पुत्र रामय्य ने गाड़ी भेजी थी। मगर वह सेरेगारजी को देखने से कुछ घबरा गई। परन्तु ओबय्य को देखकर उसको धैर्य हुआ। दूसरे दिन कानूर की गाड़ी में बैठकर सुब्बम्मा ससुराल के लिए रवाना हुई। मार्ग में ओबय्य से घर की सभी बातें जान लीं। बीच-बीच में गाड़ी के पिछले भाग में बैठे सेरेगारजी टोककर बोलते थे। लेकिन बर्ताव दूर का, गंभीर बना, विनयपूर्ण था। शायद सुब्बम्मा के चेहरे पर यातना, पीड़ा के तप से उत्पन्न अधिकार की गंभीरता थी, लगता है। अलावा इसके, आजकल चंद्रय्य गौड़जी का दर्प जैसे-जैसे कम होते आया था वैसे-वैसे सेरेगारजी का बल भी थोड़ा-थोड़ा करके सिकुड़ने लगा था।

७२

गरमी में मध्य जंगल के नाले में बैरे-सिद्द का केकड़े का शिकार

"धुत् ! इसका पेट फट जाय !"

कहकर, खुद उठाकर लुढ़काये पत्थर को कोसते हुए, सीधे खड़े होकर, मुंह-आंख पर उड़ी कीचड़ को पोंछ के बैरा फिर झुककर जहां पत्थर उठाया था वहां भरे दलदल के पानी में हाथ फेरते हुए पत्थरों के बीच में केकड़ों को खोजने लगा। सिद्द भी उसी काम में लगा था और नाले में पत्थरों को सरकाता था।

खूब गरमी थी। जिन तालावों में ढूंढ़ना था वे सब ढूंढ़े गये थे। एक छोटा-सा गढ़ा भी नहीं छोड़ा था। अब बैरा और सिद्द दोनों मिलकर उस दिन दुपहर में पहाड़ी नालों में पत्थर उलटाकर देखते, खोजते केकड़ों के शिकार के लिए बहुत दूर निकल गये थे। आदत से उनके हाथ-पैर काम करते थे। सुनसान उस जंगल में पत्थर उठा-उठाकर रखते समय होती हुई आवाज़ के साथ उनकी गप सर्वतो-मुखी होकर चल रही थी।

उनकी गप इधर-उधर भटककर, आखिर, कानूर, केलकानूर, मुत्तल्ली पर आकर टिक गयी। चंद्रय्य गौड़जी का बंधक मजदूर सिद्द अपने मालिकों का पक्ष लेकर उनके बारे में और हूवय्य का नौकर बैरा अपने मालिक का पक्ष लेकर उनके बारे में बोल रहे थे। रायों के न मिलने के प्रसंग आने पर, उन पर बहस करके, निर्णय की ओर बढ़ना छोड़कर, खांसकर या पान-सुपारी खाकर या पकड़े केकड़ों के बारे में बातें करना समाप्त कर आगे बढ़ते जाते थे।

सिद्द ने रामय्य और चंद्रय्य गौड़जी के बीच का झगड़ा, सेरेगारजी का षड्यंत्र, गंगा का नटखटपन, सुब्बम्मा को कानूर बुला लेना, चंद्रय्य गौड़जी का बिस्तर पकड़ना, दिन-ब-दिन 'जंगल का पास होना, गांव का दूर होना' आदि नमक-मिर्च लगाकर सुनाकर कहा, "इन बड़ों के घर का बखेड़ों-झंझटों का मतलब ही समझ में नहीं आता !"

"अरे हां ! सुनता हूं कि तुम्हारे रामे गौड़जी का दूसरा विवाह करने वाले हैं ! सच है ? यों तो सारे गांव में खबर फैली है।" कहकर बैरा अपने हाथ में

पकड़े केकड़े की टांग तीली की तरह 'चट-चट' तोड़कर फेंकने लगा उसकी ओर गौर किये विना; तरकारी काटने वाली इतने वेरहम, वेमुरौवत नहीं होते।

"मगर वही एक वड़ी समस्या हो गई है, कहते हैं। मुत्तल्ली के गौड़जी कहते हैं कि सीतम्मा को कानूर नहीं भेजेंगे। तो ये कहते हैं कि हम दूसरी वहू को लायेंगे। मगर रामय्य नहीं मान रहे हैं। अगर वह मान लेते तो अव तक हम विवाह के लड्डू खाये हुए होते ! इन वड़ों के वेटों को क्या होता है कि विवाह कर लेंगे तो ? मैं होता तो ? मैं मूंछों पर ताव देकर कहता, एक नहीं दस विवाह करने को मान लेता ! अव देखो वैरा भाई, मैं विवाह कर लेने का उपाय कितने दिनों से कर रहा हूं ! पर गौड़जी कहते हैं 'तुमको अभी तक विवाह के लिए कर्ज दिया है, अव नहीं देंगे।' मैं क्या करूं ? कहो भैया, वे रांड़ एक-एक करके मर गईं। उसके लिए मैं क्या करूं ? वे अगर भूत की मनौती पूरी न करें तो उसमें मेरा क्या कुसूर !···" आदि वहुत देर तक सिद्द अपना दुखड़ा रोता रहा।

"तुम्हारा कहना तो ठीक है। हां ! हमारे हूवे गौड़जी हैं न, उनकी तो देव की जैसी वुद्धि ! तो भी विवाह किये विना अपनी मां को ही मार डाला, वेचारा ! उनका तो सव-कुछ सही छोड़ो। अगर विवाह कर लिया होता तो !···देखो, परसों उसकी (यानी उसकी पत्नी) प्रसूति के समय में कितना उपचार (उपकार कहने के वदले) हूवे गौड़जी ने किया जानते हो ! चावल, गुड़, घी, काफी, दूध, दवा, सव हमारे घर भेज दिया। तव मुझे लगा कि मेरी पत्नी रोज प्रसूता वनती तो कितना अच्छा होता···हंसो मत···तुम नहीं जानते हो उनकी मैमा (महिमा) !"

"अरे हां ? हमारी सुव्वम्मा रोज केलकानूर जाती है, क्यों ?" कहकर सिद्द ने व्यंग्यपूर्ण दृष्टि से वैरे की ओर देखा।

"कहते हैं कि हूवय्य के हाथ में अपने गहने दिए हैं ! उनको शायद ले आने के लिए, मालूम होता है। लोगों को तो निंदा करने में क्या वाधा ! क्या अड़चन !"

"तो क्या मुत्तली के गौड़जी सीतम्मा को उसके पति के घर नहीं ही भेजेंगे ?"

"कहते हैं कि सीतम्माजी पति के घर जाने से इनकार कर रही हैं।"

"फिर क्या करेंगी ?" सिद्द ने अचंभे से पूछा।

"मायके में ही रहेंगी !"

"रहेंगी ? मुझे तो इन वड़े घरवालों की मरजी का अरथ ही नहीं मालूम होता।"

"अगर अरथ मालूम होता तो तुम हमारे वेलरों की गली में, हमारे साथ रहते ?" कहकर वैरा हंस पड़ा।

"केलकानूर में हैं न सीतम्माजी बीमार होकर…?"

"हां, तुम्हारे गौड़जी ने दाग दिया था तव तो !"

"तभी कहते हैं कि हूवय्य गौड़जी ने सीतम्माजी से कुछ कह दिया है। कहते हैं कि माया-मंत्र फूंक दिया है ! नहीं तो सीतम्माजी कैसे जानतीं कि रामे गौड़जी ने मंगलसूत्र नहीं बांधा, अग्रहार के ज्योतिषीजी ने ही बांधा है। विवाह के मण्डप में ही उन पर भूत सवार हुआ था। प्रज्ञा नहीं थी, कहते हैं।"

"तुम खामखाह हूवय्य गौड़जी के बारे में अंटसंट मत कहो। मां मर गई, तो भी सीतम्मा के पास बैठकर दिन-रात तीमारदारी करके बचा दिया न ! और कौन इस तरह करता कहो तो ? न्याय से सीतम्माजी को हूवय्य गौड़जी को ही देकर विवाह करना था। तुम्हारे गौड़जी ने फितूर करके सीतम्माजी को अपनी बहू बना लिया ! ज्योतिषी भी उन्हीं के पक्ष में शामिल हो गये ! अव सारा राज़ खुल गया है !"

"तुम्हारे गौड़जी और सीतम्मा की कुंडलियां नहीं मिली कहते हैं तो !"

"कुंडली, जातक की क्या बात है ? ज्योतिषी ने कहा तो बस ! वह ज्योतिषीजी भी तुम्हारे गौड़जी के साथ शामिल हो गये थे कहता हूं, समझ लो !"

"थू ! मेरी समझ में तो नहीं आती इन बड़ों की बातें ! हमारी जात में तो सब आसान !" कहकर सिद्द अपने अनुभवों की कथा सुनाने लगा।

केकड़ों को पकड़ते-पकड़ते वे नाले में बहुत दूर आगे बढ़कर घने जंगल के बीच आये थे जहां वन की छाया से अंधकार था। बाहर कड़ी धूप थी, मगर कुछ भी धूप नहीं थी। काली छाया दिन की नींद में थी।

नाले में एक जगह एक कीचड़ का तालाब बन गया था। क्योंकि जंगली सूअर धूप की आंच से बचने के लिए यहां आकर लोटपोट होते रहे। उस कीचड़ में एक पत्थर था जो कीचड़ से पुता हुआ था। उसे देख सिद्द ने बुलाया, "बैरा भाई ! यहां आ जाओ। यहां एक बड़ा पत्थर है कीचड़ में। इसके नीचे केकड़े-गिकड़े होंगे। उठाकर देखें।"

बैरा दूर से ही "ठहरो, आता हूं। सब्र करो। यहां कहीं एक केकड़ा था भैया। पकड़ा तो छोटी उंगली तोड़कर गया।" कहते पत्थरों के बीच में हाथ डालकर ढूंढ़ने लगा था।

इतने में सिद्द कीचड़ में पड़े पत्थर को उठाने उसके पास जाके खड़ा हो गया, उसे छुआ ही था कि नहीं, वह पत्थर एकाएक जंगली सूअर बनकर हुंकार करके उठा और कहीं भी भाग जाने के लिए मार्ग न मिलने से सिद्द की ओर ही झपटकर उसे थोड़ी दूर उठा ले गया और उसे पटककर फरार हो गया।

सिद्द चिल्लाया "हाय ! बैरा भाई, मर गया रे !"

मगर सौभाग्य से उसे चोट नहीं लगी थी। प्राण भी दुरुस्त बच गये थे। जान

लेने वाली चोट नहीं लगी थी। पर जांघ का आधे फुट का जितना चमड़ा छिल गया था जिससे लहू वह रहा था।

"वह शनि कहां से आकर सोया था रे भैया ! तुम्हारी आंखें कहां गई थीं ? तुम उसे देख न पाये। हाय रे वदनसीवी ! जहां जायें वहीं तू है !" कहकर, दीर्घ उसांस ले, शनि को, सूअर को कोसते हुए वैरा वैरा सिद्द को, उसके घाव पर दवा लगाके, उस पर पट्टी वांध, यहां-वहां वैठते, सुस्ताते, उसका हाथ पकड़कर धीरे-धीरे चलाते घर आया।

७३

आंसू की गंगा में अंतिम स्नान

सुब्बम्मा पति का सताना न सह सकी थी। अतः वह मायके गई थी। वहां भी शांति से न रह सकी। मायका भी पीड़ा का घर बन गया। इसलिए वह भविष्य के सुनहरे सपने देखती हुई पति के घर वापस आई थी। जब वह कानूर का घर छोड़कर गई थी तब से भी उसकी बुरी हालत हो गई थी। घर के जीवन के आकाश में दुख का एक बादल मानो घना होकर छाया हुआ था। कुत्ते भी नहीं भूंके, न उन्होंने दुम हिलाई। हर एक के चेहरे पर चिंता का भाव फैला हुआ-सा दीख रहा था।

दुपहर को भी कम प्रकाश वाले, एक ही खिड़की के कमरे में सोये अपने पति की शुश्रूषा में लगी गंगा को देखते ही सुब्बम्मा का मन दांत पीसने लगा। वह अपना भाव बाहर दिखाये बिना रोगी की शय्या के पास जाकर थोड़ी दूर पर संकोच से, दीवार से सटकर खड़ी हो गई। उस अंधेरे में रोगी का मुंह साफ नहीं दीख रहा था।

चंद्रय्य गौड़जी ने धीमी आवाज़ में कहा, "कौन है ?"

उस आवाज़ को सुनते ही सुब्बम्मा को आश्चर्य हुआ। एक प्रकार से करुणा भी आई। इतनी दीनता, इतनी वेदना, इतनी प्रार्थना, इतनी पश्चात्ताप की भावना थी उस आवाज़ में। सुपरिचित दर्प, या क्रूरता नहीं थी थोड़ी भी।

सुब्बम्मा "मैं हूं" कहकर बिलख-बिलखकर रोने लगी।

"आई ? अच्छा !" कहकर चंद्रय्य गौड़जी चुप हुए। उस कमरे के अंधकार में पति की आंखों से बहने वाले आंसू सुब्बम्मा को नहीं दिखाई पड़े।

थोड़ी देर बाद गरम पानी लाने के लिए चंद्रय्य गौड़जी ने गंगा को बाहर भेजा।

गौड़जी ने लंबी उसांस छोड़कर "आई ? अच्छा !" फिर से कहकर "ज़रा पकड़ लोगी ? मैं उठ बैठूं।" कहा।

बस, इतना कहते ही, सुब्बम्म झट शय्या के पास गई और पति को उठाकर तकिये के सहारे बिठा दिया। पति के जीर्ण शरीर के स्पर्श से जानकर, घबराहट

से पूछा "अब कैसी है तबीयत ?"

"कैसी है ? जैसी थी वैसी है !" गौड़जी दुखित ध्वनि से कहकर आंसू बहाते बोले ,"मैं पाप का प्रायश्चित्त कर ले रहा हूं।"

चेहरे पर पड़े मंद प्रकाश में पति की आंखों में आंसू का चमकना सुब्बम्मा ने देखा। वह भी रोई।

चेहरे पर दाढ़ी एवं मूंछ के बाल खूब बढ़े हुए थे। सिर के बाल बिखरे पड़े थे। दुबले-पतले विकृत पति को देखकर और भी रोई। उसकी कल्पना के चित्र तथा यथार्थ चित्र के बीच इतना फ़रक था जितना स्वर्ग और नरक के बीच होता है।

तब उसके प्यार में रहा प्रणय-भाव वायुहीन दीप की भांति सांस रुककर बुझ गया। जैसे कष्ट में रहे पुत्र को देखकर माता पसीज जाती है, किसी कराहते रोगी को देखकर तंदुरुस्त आदमी पसीज जाता है और अनुकंपा दिखाता है वैसे सुब्बम्मा को गौड़जी पर करुणा उमड़ पड़ी।

उस दिन से सुब्बम्मा पति के बगल में बैठकर उनकी शुश्रूषा करने लगी। रोग यद्यपि बढ़ रहा था तथापि गौड़जी अधिकाधिक हर्ष चित्त वाले बनने लगे।

गंगा के बारे में सुब्बम्मा तटस्थ भाव से थी। पति से या किसी से उस घटना के बारे में नहीं कहा। तो भी पति में एक विचित्र परिवर्तन दीखने लगा। वे पहले पहल गंगा के प्रति उदासीन होते गये। फिर उसका तिरस्कार करने लगे। कुछ बहाना करके कड़ी आज्ञा दी कि वह अपने कमरे में कदम न रखे। साथ ही सुब्बम्म को देवी की तरह मानने लगे। उसकी शुश्रूषा से प्रसन्न हो, प्रतिदिन उसे प्यार से देखकर आनंद से आंसू बहाये बिना न रहे। कई बार न जाने छोटे बच्चों की तरह सुब्बम्मा से क्या-क्या कहने लगे।

"मेरी तबीयत सुधरते ही हम इनसे अलग होकर रहें। इनका सहवास ही हमें नहीं चाहिये। सिर्फ हम दो ही रहें। तुम और मैं ! एक छोटा-सा खपरैल का घर बनवा लें तो बस है न ?···उस बाग के पास तुमने देखा न टीला ? वह जगह लायक है।···वेंकप्पय्य ज्योतिषीजी को वह जगह दिखानी चाहिये।···इस घर में चख-चख नहीं मिटेगी ! किसी ने हम पर जादू-टोना किया होगा। अन्यथा मैं तुमको घर छुड़ाकर भगाता ?···"

ऐसा कुछ कहकर सुब्बम्मा का हाथ धरकर अपने गाल और दाढ़ी पर फिरा लेते थे। तब वे सुब्बम्मा को दाढ़ी-मूंछ निकले शिशु की भांति लगते थे।

गंगा ने भी और ही सोचा : सुब्बम्मा के षड्यंत्र से ही चंद्रय्य गौड़जी ने मेरा तिरस्कार किया। आखिर सुब्बम्मा को आकर तीन-चार महीने ही बीते थे। वह कानूर के घर में रहना छोड़कर पहले की भांति अपने निवास में रहने लगी। शहद के चू जाने के बाद हुए छत्ते के समान नीरस बने चंद्रय्य गौड़जी के प्रति उसका

मन भी ऊब गया था, लगता है।

चंद्रय्य गौड़जी गंगा के प्रति ही नहीं किंतु सेरेगारजी के प्रति भी कड़ाई से पेश आने लगे। शायद उनको भी उनका मुंह देखे बिना भगा देते कि क्या?··· लेकिन वह रोज हलेपैक के तिम्म से ताड़ी लेकर ला देते थे। क्योंकि नीच जाति का तिम्म घर में प्रवेश नहीं कर सकता था। अलावा इसके, रोग के प्रारंभ में रामय्य ने अस्पताल से दवा मंगाकर दी और पथ्य भी बता दिया था! डाक्टर ने कहा था कि ताड़ी या शराब नहीं पीना चाहिये। तो भी गौड़जी सेरेगारजी द्वारा अपने लिए ज़रूरत भर की शराब या ताड़ी मंगाकर गुप्त रूप से पीते थे और जीभ के लिए अरुचिकर दवाओं को गुप्त रूप से बाहर फेंकवा देते थे। यह किसी तरह रामय्य को मालूम हुआ तो उसने पिताजी को खरी-खोटी सुनाई। पिता और पुत्र के बीच पहले ही मनमुटाव था, वह और भी बढ़ गया।

जब मुत्तल्ली वालों ने कहा कि सीता को नहीं भेजेंगे तब से चंद्रय्य गौड़जी रामय्य को दूसरा विवाह करने के लिए सताने लगे थे रोज। उसके बारे में पिता और पुत्र के बीच गरमा-गरम बहस हुई थी। गौड़जी बीमार न होते तो कहीं से कन्या मांग लाते और उसके विवाह का प्रबंध ज़रूर करते। मगर रामय्य के सौभाग्य से उन्होंने बिस्तर पकड़ा। तो भी समय, असमय, परिवेश, सन्निवेश की ओर गौर किये बिना, कौन हैं, कौन नहीं, देखे बिना पुत्र के विवाह के बारे में बोलते थे। जो उनसे मिलने आते थे उनसे प्रार्थना करते थे—पुत्र को विवाह करने के लिए मनावें, राजी करें। जब-जब समय मिलता तब-तब रामय्य से जो मुंह में आये सो कहते उसके आगे ही। कुछ बातें तो रामय्य के हृदय में चुभतीं जिनसे वह पीड़ित होता। रामय्य की पत्नी का पुनर्विवाह करेंगे, उसकी छोटी बहन को उसके ससुराल वालों ने कैद में रखा है, सौतेली बहन समझ, असूया से चुप रहने वाले रामय्य को डरपोक कहते (सीता की विषाद घटना के बाद, चिन्नय्य ने पुट्टम्मा को मायके जाने से रोक दिया था), उनके हठ के प्रतिकारस्वरूप कम से कम दूसरी कन्या से विवाह करके शासन करना छोड़कर शिखंडी बन बैठा है आदि कहकर पुत्र की जान को मरोड़ दिया था।

धीरे-धीरे रामय्य ने पिता के शयन कक्ष जाना भी कम कर दिया। उसके बाद दिन में एक बार केवल, जब कमरे में कोई नहीं रहता तब जाकर देख आता। सुब्बम्म आकर जब चंद्रय्य गौड़जी की शुश्रूषा करने लगी और उसके प्रति उनका प्रेम देखकर, उसने पिता के कमरे में जाना ही छोड़ दिया, फिर बाहर से पूछ-ताछ कर लेने लगा।

सचमुच उसका प्रधान कारण रामय्या की उपेक्षा नहीं था। गौड़जी को पत्नी के संग के सिवा कुछ भी नहीं चाहिये था। जो भी उनको देखने जाते उन सब पर बरस पड़ते। उनको सुब्बम्मा अकेली ही सर्वस्व समस्त संसार बन गई थी।

पिशाच की पकड़ की तरह जो पुत्र के विवाह का विचार पकड़ लिया था उसे भी उन्होंने छोड़ दिया। मुत्तल्ली वालों को, हूवय्य को पहले मनमाने कोसते थे, अब उसे भी छोड़ दिया। पर एक बात उनके मन में मजबूत घुसी हुई थी : पुट्टम्मा को उसके पिता की बीमारी में भी देखने के लिए मायके न भेजने की बात।

कहते हैं कि गरमी की छुट्टी में घर आये वासु से "तुम अपनी बड़ी बहन को बुला लाकर एक बार दिखाते हो क्या ? उसे देखने की बड़ी इच्छा है।" कहकर वे रोते थे। सदा मुंह फुलाये रहने वाले रामय्य से कहकर उसे नाराज करना उचित न समझकर, वासु ने केलकानूर जाकर हूवय्य को यह बात सुनाई थी। उसने चिन्नय्य को समझाया कि रोग से पीड़ित पिता को देखने के लिए कातर पुट्टम्मा को मायके जाने से रोकना महापाप है। तो भी चिन्नय अपनी जिद पर अटक रहा।...

वासु गरमी की छुट्टी के बीत जाने के बाद। फिर पढ़ने के लिए तीर्थहल्ली चला गया। पहले घर छोड़कर जाते समय आंसू बहाने वाला वासु अब की बार खुशी से ही गया। उसको अब कानूर का घर जुगुप्सा के घोंसले की तरह दीखता था। इसीलिये वह गरमी की छुट्टी में समय मिलने पर, केलकानूर जाकर हूवय्य के साथ समय बिताता था।

चिंता का शिकार बना रामय्य यंत्रवत् घर के सारे कामों की निगरानी यद्यपि करता था तथापि वह संपूर्ण उदासीन रहता था। कई बार चिंता करना भी छोड़कर शून्य मनस्क हो पागल की तरह दुमंजिले पर एक कोने में बहुत देर तक बैठ जाता था।

वेंकप्पय्य ज्योतिषी, और कई देहाती बराय नाम पंडित वैद्य अपनी इच्छा के अनुसार आकर गौड़जी के रोग निवारणार्थ कुछ प्रयत्न करके संतृप्त होकर जाते थे। रामय्य इन सब की ओर ध्यान ही नहीं देता था।

महीने के बाद महीना बीत जाता था, गौड़जी का रोग प्रबल होता जाता। जैसे-जैसे रोग प्रबल होता, वैसे-वैसे वे सुब्बम्मा को कसकर पकड़ लेते जैसे डरा हुआ बालक अपनी मां को पकड़ लेता है। तीनों समय सुब्बम्मा को उनके पास रहना पड़ा था। वह बाहर जाकर लौटने में देर करती तो खूब जोर से चिल्ला उठते थे बच्चों की तरह। धीरे-धीरे उनका शरीर भी संकुचित होता, सिकुड़ता जा रहा था।

बरसात के बीच में चंद्रय्य गौड़जी के शरीर में झुकाव आ गया। सुब्बम्मा अपने पति से, जैसे माता पुत्र से कहती है वैसे शराब न पीने के लिए कहती तो भी उन्होंने शराब पीना नहीं छोड़ा, उसकी बात नहीं मानी। आखिर सुब्बम्मा ने सेरे-गारजी को और हलेपैक के तिम्म को कड़ी आज्ञा दी कि वे शराब लाकर गौड़जी को न दें। गौड़जी ने नाराज होकर खाना और पत्नी से बोलना भी छोड़ दिया। सुब्बम्मा ने रोते हुए बहुत कुछ कहा, तो भी कोई लाभ नहीं हुआ। फिर वह परमात्मा पर भरोसा रखकर शराब मंगवा देने लगी हमेशा की तरह। गौड़जी

शराब भी पीते, थोड़ा खाना भी खाते, न पत्नी के साथ न किसी और के साथ वोलते थे।

इस तरह दो-तीन दिन वीतने के वाद सुव्वम्मा ने पति के चरण धरकर प्रार्थना की कि मुझ पर गुस्सा न करें, मुझसे वोलते रहें। गौड़जी ने वोलने का प्रयत्न किया, पर वोल न सके। तव सुव्वम्मा को मालूम हुआ कि पति की जीभ गिर गई है! हाय! इतना करने पर भी पति की अंतिम वात का पर्यवसान झगड़े में ही हो गया तो कहकर दुखी हो गई।

खवर फैल गई कि कानूर चंद्रय्य गौड़जी की बीमारी प्रवल हो गई है। कई लोग आकर उनको अंतिम वार देखकर जाने लगे। मुत्तली से कोई नहीं आये। घर की वेटी पुट्टम्मा को भी नहीं भेजा। कहते हैं कि मायके जाने के लिए रोकर आग्रह करती तो चिन्नय कहता, "तुम जाओ, मगर वापस नहीं आना।"

तो भी चंद्रय्य गौड़जी नहीं मरे। आज, कल, परसों, तरसों, नरसों कहकर काल को भी आगे-आगे ढकेलते रहे।

खेत का कटाव पूरा होकर, एक महीना वीता होगा। एक दिन शाम को, कानूर के घर में, विस्तर पर लाश की तरह मूक वने, सोये चंद्रय्य गौड़जी की वगल में, सिरहाने के पास, दीवार से पीठ टेककर, तनिक सिर झुकाकर, दीर्घ चिंतामग्न हो वैठी सुव्वम्मा के सिवा कोई नहीं था। उतना वड़ा घर, निर्जन, निःशव्द, वर-वाद हो गया था।

वाहर कहीं गया हुआ निंग का वेटा पुट्ट अचानक कमरे में दौड़कर आया। खुशी से कहा, "अम्मा, कोई आ रहे हैं। दाढ़ी वाले हैं।" लड़के की आंखों में, ध्वनि में भी काफी उद्वेग था। उसे देखकर सुव्वम्मा ने भी कुछ कुतूहल से उठकर कमरे की खिड़की में से वाहर देखा।

आने वाला व्यक्ति हूवय्य है ज्योंही मालूम हुआ तो उसने पुट्ट से, "अंदर वुलाओ" कहकर चटाई विछाई।

माता की मृत्यु के वाद हूवय्य पहले से भी ज्यादा गंभीर और मौनी होने लगा। सीता जव तक केलकानूर में रही तव तक उसकी शुश्रूषा करता रहा। उसके सान्निध्य एवं सेवाओं से उसको अपनी माता की मृत्यु से हुआ दुःख कमर तोड़ने वाले दुःख के जैसे असहनीय नहीं लगा था। मगर सीता के मुत्तल्ली जाने के वाद उसका ढंग ही अलग हो गया। अपना दुःख, अपनी चिंता किसी से न कहता और एकांत में वैठ उनका पागुर करता था। घर का काम-काज पहले की तरह संभालने का अभिनय कर रहा था। लेकिन दिन-प्रतिदिन क्षीण होता हुआ उसका शरीर, वढ़ी हुई दाढ़ी तथा मूंछ उसकी मानसिक स्थिति एवं आत्मानुभवों की घोषणा करती थीं।

हूवय्य कमरे में आकर सुव्वम्मा की इच्छा के अनुसार उसकी विछाई चटाई

पर बैठ गया। एरंडी के दीये के प्रकाश में चंद्रय्य गौड़जी को देखकर उसको आश्चर्य व दर्द हुए, साथ ही साथ उनके प्रति करुणा भी आई।

'उन दिनों के दर्प वाले चंद्रय्य गौड़जी कहां ? बिस्तर पर बित्ते भर होकर पड़े यह करुणा का पदार्थ कहां ?' लगा उसको।

उसने जरा जोर से रोगी का ध्यान आकृष्ट करने के लिए पूछा—"चाचाजी, अब कैसे हैं ?" पर दूसरे ही क्षण में वह अपने प्रश्न पर आप ही शरमाया। उस वास्तविकता के आगे उसका सवाल उसे ही हास्यास्पद लगा।

रोगी ने धीरे से सिर घुमाकर देखा। वह दृष्टि बिलकुल भावरहित थी।

"मेरी पहचान लगी क्या चाचाजी ? मैं हूं हूवय्य।" कहकर हूवय्य और आगे सरका।

रोगी की निर्भाव आंखों में झूठे भाव का संचार हुआ। चंद्रय्य गौड़जी टकटकी लगाकर हूवय्य को देखने लगे। उनकी छाती ऊपर-नीचे चढ़ती-उतरती थी। पहले निःशब्द बना श्वासोच्छ्वास अब सुनाई पड़ रहा था। हूवय्य के देखते-देखते ही, थोड़ी देर पहले निर्जीव बनी आंखों से सजीव गरम आंसू झर-झर उतरने लगे और खूब बढ़ी दाढ़ी और मूंछों में गायब होने लगे। कुछ बोलना चाहा, पर बोल नहीं सके। अंत में उन्होंने अस्थिचर्ममय अपना दाहिना हाथ हूवय्य की तरफ बढ़ाया मानो प्रीति से, दुःख से, पश्चात्ताप से क्षमा याचना कर रहे हों ! हूवय्य भी अपने रक्त-मांस से पुष्ट हाथ में उस प्रेतहस्त को लेकर अनंत क्षमा से, प्रीति से अपनी छाती से लगाकर उमड़ पड़ने वाले असंख्य भावों का आवेग न रोक सकने के कारण चुपचाप आंसू बहाने लगा। झुककर बैठे हुए उसके गरम आंसू उस प्रेतहस्त पर पड़े।

इसे देखती रही सुब्बम्म भी रोने लगी। उसके हृदय में महायातना के तीर की नोक पर महा आनन्द का माधुर्य मानो लगा-सा लगता था।

थोड़ी देर के बाद हूवय्य, "हो आता हूं।" कहकर जब उठा तब चंद्रय्य गौड़जी ने अपने दोनों हाथ माथे पर जोड़कर रख नमस्कार किया ! उसे देखकर हूवय्य को आश्चर्य हुआ। वह भी नमस्कार करके विदा हुआ।

बाहर आकर उसने सुब्बम्मा को धीरज बंधाया और केलकानूर जाते समय मार्ग में उसांस छोड़ी ! "रामय्य पिता के प्रति इतना उदासीन हो गया है तो क्यों ? ऐसा क्या हुआ है ?" कह लिया।

आठ दिनों के बाद एक दिन सबेरे साढ़े दस बजे पुट्टण्ण, सोम और बैरे के साथ हूवय्य बाग में काम कर रहा था। तब कानूर के घर से ढम्-ढम् आवाज सुनाई पड़ी जिससे पहाड़-जंगल थर्रा उठे।

"हां, सच ! कानूर गौड़जी चल बसे लगता है।" कहकर सोम आंखें चौड़ी कर खिन्नमुखी हो गया।

७४

फिर सुब्बम्मा कानूरु की हेग्गडिति

चंद्रय्य गौड़जी के दहन संस्कार पर सभी रिश्तेदार आये थे। मुत्तल्ली वाले, सीतेमने वाले, केलकानूर वाले, नेल्लुहल्ली वाले पहले के सभी मनमुटाव-दुर्भाव आदि सब भूलकर आये थे, सिगप्प गौड़जी भी। मगर हूवय्य नहीं आया था। सोम और पुट्टण्ण को अपने प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। मुत्तल्ली से पुट्टम्मा, चिन्नय्य, श्यामय्य गौड़जी आये थे, पर बहू सीता नहीं आयी थी।

सभी संस्कार समाप्त हो जाने के बाद सुब्बम्मा महीनों अपने अंधेरे कमरे में बैठकर रो-रोकर शोक करने लगी। ये, वो नातेदार-मित्र आदि जो भी घर आये थे, सब आकर उससे बात करके, अपनी हमदर्दी दिखाकर चले जाते थे। कई प्रकार से सांत्वना देते थे। सहानुभूति दिखाते थे। उसके माता-पिता ने उसको मायके बुलाया, पर उसने नहीं माना। उसने नेल्लुहल्ली से निकलते समय ही निर्णय किया था कि फिर नेल्लुहल्ली में कदम न रखेगी।

सुब्बम्मा पहले पहल पति के निधन से दुःखी थी, मगर अंत में वह अपने वैधव्य की दुःस्थिति के लिए, आगे मेरी क्या गत होगी, सोचकर आत्म करुणा से आंसू बहाती थी। 'रोज मरने वालों के रोने वाले कौन ?' कहावत के अनुसार 'रोज रोनेवालों को सांत्वना देने वाले कौन ?' आ-आकर समाधान सुनाने वाले बंधु भी ऊब गये। अलावा इसके मरने वालों के लिए रोते बैठें तो जिंदा रहने वालों के लिए कौन मेहनत-मज़दूरी करे ? सबको अपने-अपने काम होते हैं न ? जैसे नातेदार ऊब जाते हैं वैसे कुछ ही दिनों में सुब्बम्मा भी ऊबने लगी। दुःख भी अतिपरिचय से, कम होता जाता है, ऐसा लगता है।

अंत में सुब्बम्मा से बातचीत करके धीरज बंधाने के लिए किसी को न जाते देख सेरेगारजी गये और उसके कमरे में चटाई पर बैठ गये। सुब्बम्मा जो न रो रही थी सेरेगारजी को देखते ही फिर रोने लगी। बहुत समय के अभ्यास से जब चाहे तब उसमें रोने की शक्ति आई थी !

सेरेगारजी अत्यंत करुणापूर्ण ध्वनि में दशावतार के खेलों में खुद सुने और जाने हुए नीतिधर्म के सारे धर्म तत्वों को संक्षिप्त करके उपदेश करने लगे :

"चुपचाप रोने से क्या लाभ मां ? भगवान जो देता है उसे भगवान ही ले जाता है। हम कौन हैं उससे पूछने के लिये ? सभी उसकी लीला है। वह जो देता है उसे भोगना ही चाहिये···मृत्यु को कोई टाल नहीं सकता। जातस्य मरणं ध्रुवम्। मृत्यु से कोई छुटकारा नहीं पा सकता। वे कल गये तो दूसरा कल जायेगा। उनका जाने का समय आया, वे चल बसे अपने पुण्य के साथ ! अब रोने से क्या वे आ जायेंगे ? भगवान पर भार डालकर अपना भावी जीवन सुखी बना लें तो बस ! मालिक का हाथ धरने वाली आप को ही किसी तरह घर का प्रबंध देख लेना पड़ता है। रामय्य गौड़जी चिंता में डूबे हैं। उनको घर की ओर चिंता ही नहीं है। गये हुए (मालिक) की कीर्ति को आप ही बचा सकती हैं दूसरा कोई नहीं। अब से आप ही कानूरु की हेग्गडिति हैं। आप ही इस तरह शोक करती कमरे में बैठी रहीं तो घर की हालत क्या होगी ? सौतेला पुत्र ही सही, वासु आपके पुत्र के जैसा है। यदि आप थोड़ा-सा ध्यान दें तो घर को डूबने से बचा सकती हैं। मैंने आपके घर का नमक खाया है। उसका ऋण चुकाने का निर्णय किया है···।"

सेरेगारजी ने घाट के ऊपर वालों की तरह बोलकर, सहानुभूति दिखाकर आगे के जीवन का मार्ग बतलाया तो सुब्बम्मा को नये साहस के कार्य में उत्साह मिला। मैं कानूरु के घर की सर्वाधिकारी हेग्गडिति हूंगी, सुनकर उत्साहित हुई मानो उसको नया सिंहासन मिला हो। उसने निर्णय किया कि सेरेगारजी की सहायता से कानूर की हेग्गडिति बनकर सबके गौरवादर के पात्र बनूंगी।

कुछ ही दिनों के उपरांत सुब्बम्मा रोना बंद करके कमरे से बाहर आई; घर की व्यवस्था में नये उत्साह से, दक्षता से भाग लिया। आश्चर्य की बात यह थी कि सेरेगारजी के कथनानुसार घर की हालत नहीं थी। रामय्य भी नये उत्साह से, दक्षता से घर की देख-भाल करते काम-काज में आसक्त बन गया।

रामय्य की नई आसक्ति का मुख्य कारण था प्रत्याशा। पिता की मृत्यु के बाद घर का पूरा मालिक हो जाने के घमंड ने उसकी रीढ़ को कुछ सीधा बना दिया था। अलावा इसके चंद्रय्य गौड़जी के कारण घर के शत्रु बने हुए सभी अब मित्र बनकर पास-पास आने लगे। मुत्तल्ली वाले रहें, सीतेमने सिगप्प गौड़जी भी रामय्य का केवल आप्त होकर समझाने लगे। रामय्य को सभी कष्ट के समय सहायता करना चाहते थे। इस प्रकार, वातावरण के परिवर्तन के अनुसार रामय्य का आवेश भी बदल गया था। सबसे अधिक, अत्यंत गुप्त, अत्यंत प्रधान, सीता के प्रत्यागमन की आशा से उसमें दुगुना उत्साह आया था !

उसकी आशा का आधार नहीं था ऐसा नहीं था। श्यामय्य गौड़जी अपनी लड़की से आग्रह के साथ कहते थे। "तुम्हारा ससुर मर गया है। अब तुमको डरने की कोई बात नहीं। पति के घर जाकर सुहागिन बनकर रहो। विवाहित पति को छोड़कर ऐसा रहना उचित नहीं है। अन्यथा लोग हमारे बारे में भला-बुरा कहने

लग जायेंगे।" गौरम्माजी भी जब कभी मौका मिलता इसी अर्थ की वातें अपनी वेटी को सुनाती थीं। चिन्नय्य ने भी सीता के आगे रामय्य में उसके पिता की मृत्यु के वाद हुए परिवर्तन का वखान करते उसका मन फिराने का प्रयत्न किया। इतना ही नहीं चंद्रय्य गौड़जी की मृत्यु के वाद रामय्य को मुत्तल्ली बुलाकर खूब सत्कार किया। इन सव के साथ श्यामय्य गौड़जी ने सिंगप्प गौड़जी को यह समाचार भेजा था—"हूवय्य का यहां आना ऊचित नहीं। सीता जव तक पति के घर नहीं जाती तव तक उसको यहां आने के लिए मना कीजिये।"

सिंगप्प गौड़जी ने यह समाचार हूवय्य को सुनाकर रामय्य का पक्ष लेकर कहा, "हां भाई! तुम उनके विरुद्ध क्यों जाते हो? उनकी पुत्री, जो चाहे सो कर लें। खामखाह तुम पर दोषारोपण क्यों?"

दाढ़ी-मूंछ के वीच में हूवय्य का लाल मुंह देखकर सिंगप्प गौड़जी चकित हुए। तुरंत उसकी कठोर वाणी निकली। पत्थर की भांति अटल होकर उसने कहा:

"क्या कहा? उनकी पुत्री, जो चाहे सो कर लें! तुम्हारे पर दोष क्यों? कहा न? वहुत अच्छा है। यह बुद्धि तुम्हारी पहले कहां गई थी? चाचा के मरते ही, लगता है तुम सवका मन फिर गया है। तुम्हीं कहते थे: सीता के मन के विरुद्ध विवाह किया है! तुम्हीं कहते थे कि ज्योतिषीजी ने हाथ गरम कर लेकर जातक वताया है! तुम्हीं ने कहा था कि सचमुच वर ने मंगल-सूत्र नहीं वांधा। तुम्हीं ने कहा था: सीता को कानूर मत भेजो! अव अचानक गिरगिट की तरह रंग वदल कर अविवेक की वातें वोल रहे हो न! फूल पर वैठे पतंग को पकड़ ले जाकर आग में डालने का उपाय कर रहे हो तुम सव मिलकर!...कानूर जाने के लिए सीता तैयार है?"

"क्या कहते हो? सीता की स्वीकृति! स्वीकृति!" सिंगप्प गौड़जी भी थोड़ा गरम होकर ही वोलने लगे थे, "विवाहित पति के घर जाने के लिए उसकी स्वीकृति क्यों? तुम तो नया कानून मानो वतला रहे हो!"

"कानून पढ़कर ही तुम सवकी अक्ल चरने गई है! विवाहित पति? किसने पाणिग्रहण किया?"

"किसने पाणिग्रहण किया? रामय्य ने।"

"सीता का?"

तुम को यह सव क्यों आवश्यक वातें सूझती हैं! तुम भी वड़े आदमी हो कानून की शेखी वघारने वाले!"

"यहां सुनो सिंगप्प चाचाजी! तुम्हारा कोई तत्त्व नहीं! एक मार्ग नहीं! जिस ओर हवा वहे उस ओर जाते हो! तुम जो भी कहो, सीता ने मुझसे सव कुछ कहा है, उसने रामय्य से विवाह नहीं किया है, पाणिग्रहण भी नहीं किया है।

अगर उस पर जबरदस्ती करे तो वह जान देने के लिए तैयार है !"

"तो क्या वह तुम से मिलेगी ?" सिगप्प गौड़जी अनागरिक की तरह बोल चुके।

हूवय्य की छाती में मानो बर्छी चुभ गई। उसके क्रोध का फन सिकुड़कर दीन हो गया। शोकभार से सिर झुक गया। एक-दो मिनट आंसू बहाकर चुप हो गया।

फिर सिर उठाकर कहा, "चाचाजी, क्यों इस तरह बोलते हो ? मैंने स्वार्थ से इस तरह नहीं कहा। उसकी आत्मा की बलि न होने दें, इस दृष्टि से कहा था ! सीता से विवाह करने का सुनहला सपना कभी टूट गया था चाचाजी ! सुनहला सपना सच बनाने में तुमने भी बहुत सहायता की थी। तब भी तुम अब जिस प्रकार कह रहे हो वैसे एक तत्त्व के लिए तुमने कार्य साधना नहीं की। छोटे चाचा से वैरत्व के लिए, हठ के लिए किया, बस ! मैं जानता हूं ! तुम यह मत समझो कि मैं नहीं जानता कि तुम क्यों रामय्य का पक्ष लेकर बोल रहे हो। तुम उससे एक जमीन लेने का प्रयत्न कर रहे हो ! उस आशा-पिशाच की तृप्ति के लिए सीता की बलि देने का प्रयत्न कर रहे हो। चाचाजी, मुझे बुद्धू न समझें। यहां सुनो : मेरे मन में क्या है, तुमसे कह देता हूं। माता के मरते समय वचन दिया था कि विवाह करूंगा। तो भी मैं विवाह नहीं करता ! यानी सामान्य रूप से विवाह नहीं कर लेता। आत्मा के जग में मेरा और सीता का विवाह हो चुका है पहले ही ! वह प्रेम बंधन चिर है। अब मेरी आत्मा बनी मेरी मां को वह आत्म विवाह बंधन मालूम हो जाता है। अतः माता को दिया मेरा वचन झूठा नहीं होता। इतना ही नहीं, उसी दिन से, तुमसे जो नहीं जान सकता था, वैसा एक व्रत लेकर यह दाढ़ी बढ़ा ली है जान गये ? सीता को निगलने के लिए नहीं ! उसकी रक्षा के लिए। जब तक जान है तब तक प्रयत्न करूंगा। इस बारे में मानवीय शक्ति के परे की शक्ति मेरी सहायता कर रही है, जानते हो ?"

उस वाणी में इतनी दृढ़ता थी, श्रद्धा थी, कि सिगप्प गौड़जी को सब सत्य प्रतीत हुआ। उन्होंने कहा—"महाराया, मुझसे गलती हो गई। अब मैं तुम्हारे कामों में दखल नहीं दूंगा !" फिर अपनी बातों का समर्थन कर लेने के लिए कहा, "उसकी जमीन मैंने मांगी ही नहीं। उसने कहा कि कर्ज चुकाने के लिए, घर के खर्च के लिए धन की जरूरत है। उसके लिए जमीन देता हूं।" मैंने इतना ही कहा था—'अच्छा देखें।' उसकी ज़मीन लेकर मैं क्या करूं ! जो हैं उतने की देखभाल करना भी जब कठिन है।..."

आखिर, पांच-छः महीने बीत गये। तो भी रामय्य की आशा पूरी नहीं हुई। पूरी होने के आसार भी नहीं दीखते थे। सीता किसी की बात माने बिना नदी के बीच की चट्टान की तरह खड़ी हो गई।

रामय्य धीरे-धीरे अपनी पहली स्थिति की ओर बढ़ने लगा। फिर वह पहले की अपेक्षा अधिकाधिक मंद गति से जाकर कोना धरने लगा। सब पर कोप-द्वेष उत्पन्न हुए और मन के अंतस्तल में कराल व्यूह झांकने लगे।

लेकिन कानूरु घर के सारे काम-काज बहुत मुस्तैदी से चल रहे थे। सुब्बम्मा के हेग्गडितिपन में सेरेगारजी को, घाट के मजदूरों को, बेलरों को बहुत मेहनत करनी पड़ती थी। वह रसोई घर से लेकर खेत, बाग, पिछवाड़ा, गोठ, गोबर, का गड्ढा, सूखे पत्तों के पेड़ों का जंगल, गन्ने का खेत आदि स्थानों में जाकर, रहकर निगरानी करती थी। वह हजार आंखों वाली बन गई थी। उसे देख सभी दांतों तले उंगली दबाते थे।

७५

सुब्बम्मा का दुःस्वप्न

चंद्रय्य गौड़जी की मृत्यु के वाद एक वर्ष बीत गया था। सुब्बम्मा हेग्गडिति की ताकत मशहूर हो गई थी। पुरुप भी जव एक दूसरे को ललकारते थे तव कहते थे, "अरे नामर्द, कानूर जाकर सुव्वम्मा हेग्गडिति का कारोवार देख, सीखकर आ जा !"

"सुव्वम्मा की आवाज से, कहते हैं, वेलर, घाट के ऊपर के मजदूर थर-थर कांपते हैं !...वह रंगप्प सेट्टजी तो कुत्ता जैसे अपनी पिछली टांगों के वीच दुम दवाकर रहता है। वैसे वह पिल्ले की तरह वन गया है।...रामय्य गौड़जी घर प्रवंध की ओर ध्यान ही नहीं देते हैं ! सव काम अपनी छोटी माता पर छोड़ दिया है !...कितना धैर्य उसका ! स्त्री होने पर भी मोटे-ताजे वेलर नौकर को इमली के पेड़ की शाखा से उसने खूव पीटा जिससे उसके शरीर पर साटें उभर आईं।...चंद्रय्य गौड़जी की पत्नी चंद्रय्य गौड़जी ही वन गई है।"

आदि वातें लोगों में फैल गई थीं कहावतों की भांति।

लोगों की वातों में अतिशयोक्ति होने पर भी, वे झूठी नहीं थीं।...सुव्वम्मा का प्रभाव धीरे-धीरे वढ़कर अप्रतिहत हो गया था। उसकी आज्ञा के विना कोई कदम नहीं उठाता था। पति के सिंहासन पर वह श्रद्धा से चढ़कर वैठी थी। इसलिए उसमें चंद्रय्य गौड़जी के सारे गुण—दर्प, कड़ाई, किंचित् क्रोध-मिश्रित धूर्तता—वढ़ रहे थे। अधिकार मद से यौवन मद भी मिल गया था। तरुणाई की चोटी पर चढ़ी स्त्री अधिकारी वने तो कई लोग कई कारणों से उसके नौकर वन-कर, उसके व्यक्तित्व के आगे सिर झुकाते हैं। कानों में, नाक में, गले में, जूड़े में आभूपण न हों तो क्या ? विधवा वनी तरुणी यदि घने वढ़े वालों को संवारकर, मांग काढ़कर, जूड़ा वांधकर, अच्छी साड़ी कसके पहनकर, हाथ से, सुपुष्ट काया से, उभरी छाती से, गोल-गोल मुंह से हुकुम चलाते आगे खड़ी हो जाय तो सेरेगार रंगप्प सेट्टजी जैसे कोई पुरुप उसकी आज्ञा का पालन किये विना रहेगा? अगर वह गाली दे तो उसे आशीर्वाद, पीटे तो अपने को धन्य माने विना रहेगा ? सुव्वम्मा के प्रभाव का कारण उसका आधा तरुण व्यक्तित्व था। लेकिन यह रहस्य वह

नहीं जानती थी।

गृह का प्रबंध यशस्वी तरीके से चलाने के घमंड से वह अपनी पहले की गरीबी की हालत, अपने अनुभवित कष्ट, अन्याय, तथा हुई निंदा आदि की परंपरा भूलकर धीरे-धीरे अधिक से अधिक क्रूर बनकर बरतने लगी थी। रामय्य अपनी मनोव्यथा के कारण घर की व्यवस्था की ओर ध्यान दिये बिना तटस्थ होकर चुपचाप बैठा था। इससे मानो सुब्बम्मा के बदन में कांति, हाथों में नख बढ़ी थीं, सिर पर सींग उगे थे। अपने हेग्गडितिपन के काल में उसने खण्डहर बने हुए घर में देवता, जक्कणी (यक्षिणी) 'पंजुर्ली' आदि की स्थापना वेंकप्पय्या के हाथों से ही कराके, उनका जीर्णोद्धार किया था। चंद्रय्य गौड़जी के अंतिम काल से अभी तक जीवित भूत, रणादि को मनौती में दी जाने वाली भेंट को बढ़ाकर, एक बकरी के बदले दो बकरियां, एक मुर्गी के बदले दो मुर्गियां भेंट-स्वरूप दिलाने लगी थी। कानूर में पड़े संकटों का कारण भूतादि को बलि न देना ही था, यों उसने समझ लिया था—उसकी इस मूढ़ता को वेंकप्पय्य ज्योतिषी जी ने अपने महाज्ञान का आधार भी दिया था। यह सब देखकर सामान्य लोगों को खुशी भी हुई थी। उनके लिये तो यथेच्छ मीठी टिकियां, ताड़ी जो मिलती थी उसकी परंपरा उनके लिये पवित्र सनातन धर्म बन गई थी। इस कारण से सुब्बम्मा अगर पीटे, मारे तो भी होंठ हिलाये बिना चुप थे।

एक दिन सवेरे जब सोने की-सी धूप पेड़ों की हरियाली पर पड़ी बूंदों में रम्य होकर चमकती थी, झुरमुटों में चिड़ियां मनोहर स्वरों में गा रही थीं, तब सुब्बम्मा रसोइये से उस दिन करने के काम के बारे में कहकर, बाग के उस पार खोदने का काम देख आने के लिए दुशाला ओढ़कर निकल रही थी।

रसोइया ने "विशेष रसोई क्या बनाऊं, तरकारी कुछ भी नहीं।" कहा।

"पुट्ट से कहा था, नहीं लाया क्या?" कहकर सुब्बम्मा बिगड़ी।

"वह किस ओर गया, नहीं मालूम। तभी का गया, अभी तक नहीं आया। अमरूद के पेड़ पर चढ़ा? जामुन के पेड़ पर चढ़ा? कौन जाने?" कहनेवाले रसोइये के हाथ से अचानक तेल की बोतल नीचे गिरकर चूर-चूर हो गई। वह तो डर के मारे चुपचाप खड़ा का खड़ा रहा। सुब्बम्मा "तेरे सिर को आग लगे" कोसकर झट जमीन पर गिरे तेल को अपने हाथ से बटोरकर खड़ी हुई और रसोइये के मुंह पर गुस्से से एक तमाचा मारकर, बोतल के टुकड़ों को उसके हाथ में देकर "अपनी लाश पर डाल लो।" कहकर, अपने हाथ में लगे तेल को अपने सिर के बालों पर मलती हुई चली गई।

बगीचे में उतर रही थी कि पुट्ट सुब्बम्म की आज्ञा के अनुसार तरकारी के लिए केले के पेड़ का पिंड उठाकर कुत्तों से खेलते आ रहा था। सुब्बम्मा ने गुस्से से पूछा, "अब तक क्या करता था रे?" उसके जवाब की प्रतीक्षा किये बिना उसका

कान खूब मरोड़कर छोड़ दिया और आगे बढ़ी।

पुट्ट रोते, होंठ कांपते, सुब्बम्मा को ओझल होते देखते ही—"छिनाल, बेहया, रांड़ !" कहकर गाली देते हुए सीढ़ियों पर चढ़ा।

सभी मजदूर आकर खड्ड खोदने में लगे थे। सेरेगारजी जोर-जोर से आज्ञा देते इधर-उधर घूमते पर्यवेक्षण करते रहे। उन्होंने दूर से ही सुब्बम्मा को आते हुए देखकर धीरे से मजदूरों को चेतावनी दी "होय, हेग्गडिति आई रे !" मजदूर पहले की अपेक्षा अधिक श्रद्धा से काम में लगे।

सुब्बम्मा ने दूर से ही जान लिया था कि बेलरों का एक आदमी काम पर नहीं आया है। बिना बोले खोदने वाले ओबय्या से पहले की तरह "ओबय्य भाई !" संबोधित करके पूछा, "वह लड़का काम पर क्यों नहीं आया ?"

ओबय्या खोदना थोड़ा रोककर "उसके सारे बदन में दर्द है, कहते हैं।" कहकर फिर खोदने लगा।

सुब्बम्मा ने सिद्द को भेजकर, उस लड़के को बुला लिया, फिर उसे काम में लगाया।

सभी नौकरों को काम करते देखकर, पर्यवेक्षण करती, एक टीले पर बैठ गई। फिर एक छोटी थैली निकालकर उसमें से पान-सुपारी एक-एक करके निकालकर मुंह में डाल लेने लगी। सेरेगारजी भी अत्यंत फुर्ती से इधर-उधर जाकर; मजदूरों को डांटते, काम कराते सुब्बम्मा के पास आये। थोड़ी दूर पर बैठकर अत्यंत विनय से "मुझे भी थोड़ा देंगी ?" अपने उभरे दांतों का प्रदर्शन करते, हंसते मांगा। सुब्बम्मा ने एक-एक करके थैली में से पान, सुपारी, तमाखू निकालकर दिया। सेरेगारजी आनन्द से तांबूल चबाते बार-बार लाल जूठन को थूकते बातें करते बैठ गये।

पहले पहल मजदूर जो खड्ड खोद रहे थे, उसके बारे में, फिर बाग की मेंड के बारे में, फिर बाग की कृषि के बारे में, बातें आगे बढ़ी थीं। वहां उस साल की सुपारी की फसल की, सुपारी के भाव की, फिर मुत्तल्ली वालों का कर्ज चुकाने के लिए आवश्यक रकम की बातें हुईं। फिर बातें सीता, रामय्य, चिन्नय्य की तरफ झुकीं।

"सच, रामे गौड़जी दूसरा विवाह कर लें तो क्या होगा ? आपके मालिक की बड़ी इच्छा थी तो ! उस स्त्री यानी सीता के प्रति पागलपन सवार था। उसको लेकर इनको गड्ढे में गिरना चाहिये ?" कहा सेरेगारजी ने।

सुब्बम्मा उनकी तरफ देखे बिना मजदूरों की तरफ देखती हुई बोली, "उस स्त्री के मारे ही हमारे घर को शनि की पीड़ा शुरू हुई। घर का बंटवारा होकर; घर बरबाद हो गया ! वे भी जिंदा नहीं रह सके ! विवाह करने वालों को भी शनि की पीड़ा से मुक्ति नहीं मिली।···" आंसुओं को आंचल से पोंछती हुई फिर

बोली, "और क्या करने की है भगवान के मन में ?" फिर चुप हो गई।

सेरेगारजी उसके बाद नहीं बोले। मजदूरों के हाथों की रंभों-कुदालों की आवाज के साथ, चारों ओर पेड़ों पर उछल-कूद करने वाले पंछियों की चिल-बिलाहट भी सुनाई देती थी।

सुब्बम्मा दस मिनट चुप बैठी, फिर जाने के लिए उठ खड़ी हुई। सेरेगार भी उठे। वे दास की तरह उसके पीछे गये। थोड़ी दूर जाने के बाद सेरेगारजी ने कहा, "हेग्गडिति अम्मा ! उस बाग के ऊपर के तालाब के निकास को भी ठीक बनाना चाहिये। आप एक बार देखकर कह दें तो..." इतना कहकर वे रुक गये।

सुब्बम्मा मौन से स्वीकृति देकर सेरेगारजी के पीछे चली। दोनों ने जाकर तालाब का निकास देखा। सेरेगारजी ने ही "हेग्गडिति अम्मा, उसकी रिपेरी इस तरह-उस तरह कराना चाहिये", सलाह दी। सुब्बम्मा "फिर उसके बारे में सोचें। फिलहाल गढे का काम पूरा हो।" कहकर जिस रास्ते से आई थी उसी रास्ते से चली तो सेरेगारजी ने दूसरे नजदीक के रास्ते की सूचना दी। फिर दोनों उस रास्ते से चले।

उस मार्ग से थोड़ी दूर जाने पर एक बड़ा खड्ड और उसकी मेंड और बांध ने रास्ते को रोक दिया था "वहां एक पुल है, उस पर से जा सकते हैं।" कहकर सुब्बम्मा को खड्ड के किनारे से ले गये।

अंत में दो सुपारी के पेड़ों से खड्ड पर पुल बनाया गया था, सो दिखाई पड़ा। सेरेगारजी उस पर चलकर पार हो गये। मगर सुब्बम्मा उस पर से जाने के लिए डरकर वहीं खड़ी हो गई। खड्ड भी गहरा था, पुल भी हिलता था। उस पर से जाने की आदत जिनको थी उनको भी उसे देखने से ही डर लगता था। तिस पर भी स्त्रियों को उस पर से जाने का साहस करना कठिन था। सेरेगारजी ने उस पार से "मत डरिये, आइये, पुल मजबूत है।" कहकर धैर्य दिया। सुब्बम्मा ने दो-तीन बार प्रयत्न किया। तो भी धैर्य नहीं हुआ। वह "बाप रे !" कहकर पीछे हटी।

सेरेगारजी सामान्य स्वर में मुग्धता दिखाते "मेरा हाथ पकड़कर धीरे से पार करके आइये !' कहते पुल को पार करके सुब्बम्मा के पास गये। इस बात को सुनकर तरुण विधवा का खून मुंह पर उमड़-सा पड़ा था।

झट वह दूर हटकर खड़ी हो गई और कहा, "नहीं, जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से जायं। आइये। पुल पर से मैं नहीं जा सकती।"

सेरेगारजी के मन में बहुत समय से सुप्त काम भावनाएं फिर जाग उठी थीं। चारों ओर बड़ा जंगल था, सुपारी के पेड़ थे। जगह तो एकांत थी ही। निर्जन थी। अगर सुब्बम्मा चिल्लाये तो थोड़ी दूर में काम करने वाले आ जायं, इस डर

से अपनी आशा को दवाये रखकर, "डरिये मत हेग्गडिति अम्मा, मैं एक छड़ी पकड़ता हूं। उसकी नोक पकड़कर आइये।" कहकर एक पेड़ की शाखा को तोड़कर सेरेगारजी ने आगे वढ़ाया।

सुव्वम्मा को यह सलाह मुग्ध दिखाई दी। सुव्वम्मा ने "हां" कहकर सेरेगार जी की धरी छड़ी का छोर पकड़ लिया। सेरेगारजी धीरे से पुल पर चलने लगे। सुवम्मा छड़ी का छोर दाहिनी मूठ में, वाईं मूठ में जान को पकड़कर डेढ़ गज पीछा करती गई थी। इतने में सुपारी के पेड़ हिलने लगे। वे स्वाभाविक तौर से लचक रहे थे। लेकिन सेरेगारजी जान-वूझकर ज्यादा लचका रहे थे, सो सुव्वम्मा को नहीं मालूम हुआ।

सुव्वम्मा आगे वढ़े विना ठहरकर "हाय ! हाय ! सेरेगारजी, पीछे आइये, पीछे आइये", कहकर चिल्लायी।

सेरेगारजी ने "डरिये मत, आइये, पुल खतम हो गया।" कहकर छड़ी को आगे-आगे खींचा।

खड्ड की गहराई देखकर सुव्वम्मा को चक्कर-सा आ गया। आगे-पीछे डोलने लगी। वह समझ गई कि अव मैं नहीं वच पाऊंगी। अतः उससे आवाज़ भी नहीं निकल रही थी, वह इतना डर गई थी। नीचे गिरने से सिर फूट जायगा, मर जाऊंगी, सोचकर, उसने छड़ी छोड़ दी। फिर वह आगे दौड़कर गई और सेरेगार जी को पकड़ लिया। सेरेगारजी भी "हाय !" कहकर कांपने लगे। वह भी कमजोर होते तो दोनों एक दूसरे के गले लगकर खंदक में गिर जाते। लेकिन वे सुव्वम्मा को गले लगाकर, सप्रयत्न खड़े होकर जागरूकता से उस पार गये। तुरंत सुव्वम्मा ने उनका हाथ छोड़ दिया, पर सेरेगारजी ने नहीं। उसकी कुछ देर इसी तरह रक्षा करना चाहते थे सेरेगारजी। मगर सुव्वम्मा उनको ढकेलकर दूर खड़ी हुई और डर की नजर से चारों ओर देखा।

"कोई नहीं दिखाई दिया।" कहा सेरेगारजी ने। उनके चेहरे पर सुव्वम्मा की तरह घवराहट नहीं थी, पर हंसी थी।

"तुम्हारे मुंह को आग लगे। मना करने पर, न मानकर, मुझे मार डालने की सोची थी न ?" कहकर सुव्वम्मा ने धमकाया।

"दोनों गिरकर मर जाते तो ! उस तरह आकर पकड़ लिया तो कैसे ठहर सकता था ? आप ही कहिये।" कहकर सेरेगारजी हंसे।

"तुम्हारा नाश हो !" कहकर, मैं दुर्घटना से वच गई, सोचके हंसी, तुरंत यह हंसने का समय नहीं जानकर, गुस्से से भौंहें सिकोड़कर घर की ओर चली गई। मगर सेरेगारजी स्त्री स्पर्श से आनंदित हो, हंसते मजदूरों के पास गये।

सुव्वम्म उद्वेग स्थिति में घर पहुंच गई तो दुमंजिले पर दो-तीन आदमियों की वातें सुनाई पड़ीं। पुट्ट से पूछने पर मालूम हुआ कि मुत्तल्ली से चिन्नय्य गौड़जी,

सीतेमने के सिगप्प गौड़जी, अत्तिगद्दे के हिरियण्ण गौड़जी आये हैं। उनके आने का कारण सुब्बम्मा को तुरंत सूझ गया।

सीता ने मंगल-सूत्र निकालकर फेंक दिया है। उसने कह दिया है कि "मैं कभी कानूर के घर में कदम नहीं रखूंगी।" इस पर वह अड़ी हुई है। इसीलिए वे रामय्य को दूसरा विवाह कर लेने के लिए आग्रह कर रहे थे। हिरियण्णा गौड़जी अपनी लड़की रंगम्मा को रामय्य को देने का प्रयत्न कर रहे थे। इस काम में श्यामय्य गौड़जी, चिन्नय्य, सिगप्प गौड़जी प्रयत्नशील थे। हूवय्य ने भी सिगप्प गौड़जी को सूचित किया था कि न चाहने वाली लड़की का जबरदस्ती से विवाह करने की अपेक्षा दूसरी लड़की से विवाह करना बेहतर है। इसी प्रस्ताव को लेकर तीनों बहस करके रामय्य को मनाने के लिये आये थे और रामय्य से बहस कर रहे थे। वाद करने लगे थे।

थोड़ी देर सुब्बम्मा ने भी खड़ी होकर सुना। फिर रामय्य को किसी तरह विवाह करने के लिए मनावें तो अच्छा हो यह आशा करती हुई, आये हुए रिश्ते-दारों के लिए, विशेष बढ़िया खाना बनवाने के इरादे से रसोई घर गई।

सारा दिन रिश्तेदारों के सत्कार में, उनसे बातचीत में बीत गया। मगर रामय्य ने दूसरा विवाह करने के लिए नहीं माना। पागल की तरह अंटसंट बोल-कर, सबको 'थू' करने के जैसे किया, कहते हैं। इधर सुब्बम्मा ने 'स्त्री होकर मुझ अकेली को इस घर में समय बिताना पड़ेगा' सोचकर उसांस छोड़ी।

शाम को सभी रिश्तेदार निराश हो विदा हो गये।

तब तक, उस दिन सवेरे बाग के किनारे घटी घटना जो सुब्बम्मा के मन में डूब गई थी, पानी में दबाकर, डुबोई गई हलकी वस्तु जैसे ऊपर आती है वैसे ऊपर उठ आई। लेकिन उसको प्रयत्नपूर्वक मन से बाहर निकाल, घर जाने वाले मजदूरों को चावल, नमक, मिरच, सुपारी आदि देने और दिलाने के काम में लगी।

परंतु दिन में मन से बाहर निकाली घटना रात को सपने में फिर अंदर घुसी। उस दिन रात को सुब्बम्मा ने सपना देखा।

वह एक गहरे खंदक के किनारे पर खड़ी है। उसे पार करने के प्रयत्न में है वह। मगर उस खंदक की गहराई तीन-चार सुपारी के पेड़ों की ऊंचाई जितनी है। उसके पाताल तल में जोर से एक नदी बह रही है। सुब्बम्मा का हृदय डर गया है। उस पार के किनारे पर चंद्रय्य गौड़जी खड़े होकर पुल को पार करके आने के लिए पुकारकर कह रहे हैं। सुब्बम्मा उनसे प्रार्थना कर रही है—"आप ही आकर मेरा हाथ पकड़कर ले जाइये।" फिर चंद्रय्य गौड़जी आकर, सुब्बम्मा का हाथ धरकर पुल पर चलाते ले जा रहे हैं। दोनों पुल के बीच में आये हैं। अचानक सुब्बम्मा देखती है। अपने को पकड़ने वाले चंद्रय्य गौड़जी नहीं हैं, सेरेगारजी हैं! सुब्बम्मा

खुद को छुड़ा लेने का प्रयत्न कर रही है, मगर सेरेगारजी उसे कसके छाती से लगाकर पकड़ रहे हैं। पुल ऊपर-नीचे लचकने लगता है। सुब्बम्मा नीचे देखकर, सिर चकराकर, किसी तरह किनारे लगाने के लिए प्रार्थना करती हुई जाकर सेरेगारजी को कसकर गले लगाती है। उस गड़बड़ी में दोनों गले मिलकर उस पाताल की तली वाली नदी में धड़ाम से गिर रहे हैं। उस पाताल की तली वाली नदी में वह जाते समय सुब्बम्मा डरकर और भी कसकर सेरेगारजी को अपनी छाती से लगा लेती है। लेकिन सेरेगारजी सुब्बम्मा को जोर से ढकेलकर उसके आलिंगन से अपने को छुड़ाकर, तैरकर किनारे लग जाते हैं। प्रवाह में सुब्बम्मा चट्टान-चट्टान से टकराकर वहती जा रही है। वदन टूट गया है। नाक, मुंह में पानी भरकर सांस वंद हो रही है। आह ! सांस रुक रही है !

सुब्बम्मा विस्तर पर चौंक पड़ी। फिर जागी। सचमुच रो रही है ! आंखों को कुछ भी नहीं दीख रहा है। कमरे में घना अंधकार है। सर्वत्र निस्तब्धता का साम्राज्य है।

७६

घर में 'अशौच'

दो महीनों के वाद एक रात को पुट्टण्ण और सोम कुत्तों के साथ वंदूक लेकर शिकार के लिए गये थे। कानूर से ओवय्य और पुट्ट दोनों अपने कुत्तों के साथ आकर गुप्त रूप से मिले थे। शिकार तो नहीं मिला। घूम-घूमकर थक गये। रात को करीव एक वजे चांद के डूवते समय, शिकारी अपने-अपने घर की ओर रवाना हुए।

ओवय्य और पुट्ट घर के पास आये थे। पुट्ट ने अचानक घवराहट से फुस-फुसाकर कहा, "ओवे गौड़जी ! ओवे गौड़जी ! वहां कोई गया-सा लगा।" कहकर हाथ से इशारा करके दिखाया।

ओवय्य ने भी खड़े होकर देखा। कोई दिखाई नहीं पड़ा। डूवने वाले चांद की रोशनी में पेड़ और छायाएं माया-माया से खड़े थे। कुत्ते भी थकावट के मारे इधर-उधर गये विना रास्ते पर ही आ रहे थे। आदमी जव खड़े होकर देखने लगे तो वे भी कानों को खड़ा करके देखने लगे।

"कोई नहीं है रे ! चांदनी में पेड़ की छाया एक वार ऐसे दीखती है।" कहकर ओवय्य आगे वढ़ा।

पुट्ट तो उसी तरफ देखते पीछे-पीछे जा रहा था। फिर उसकी आंखों को कोई कटहल के पेड़ के नीचे खड़ा-सा दीख पड़ा। "ओवे गौड़जी, वहां कोई खड़ा-सा दीखता है। देखिये, ओ, वहां।" कहकर पुट्ट ने इशारे से दिखाया।

उसने जिस ओर इशारा करके दिखाया था उस ओर कुत्ते अपने स्वभाव के अनुसार झपटे। हां-हां में किसी को देखकर भूंके।

कुत्तों के भूंकने की आवाज़ से ऊंची आवाज़ में किसी ने कहा, "हचा ! क्या इनकी आंख फूट गई थी न ? पेट जल गया था न इनका ?"

"कौन है वह ?" जोर से पुकारकर पूछा ओवय्य ने।

"मैं हूं रे !" जवाव भी आया, जवाव के साथ वंदूक कंधे पर रखा एक मनुष्य का आकार अपनी ओर आता दिखाई पड़ा। कुत्ते भूंकना छोड़कर दुम हिलाते उसके साथ आ रहे थे।

"कौन? सेरेगारजी?" कहा ओवय्य ने।

"हां जी! ये पिल्ले मेरी जान लेने वाले थे तो!" कहते सेरेगारजी खोखली हंसी बिखेरते पास आये।

"यहां किधर गये थे?"

"यहीं बंदूक लेकर खरगोश के शिकार के लिए गया था···तुम किधर गये थे?"

"खेत की तरफ़ गये थे। कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा।"

"एक पान हो तो दोगे महाराया! खरगोश का घर सत्यानास हो गया! देख-देखकर ऊब गया।"

सेरेगारजी ओवय्य से पान-सुपारी, तमाखू लेकर खाते हुए अपने (गंगा के) घर की ओर गये। छोटे लड़के पुट्ट को सेरेगारजी की बात में कुछ भी शक नहीं दीखा। मगर ओवय्य को शक हुआ। उसी के बारे में सोचते जाकर घर गया और सो गया।

इधर सेरेगारजी और सुब्बम्मा के बीच बढ़ते संबंध को देखकर ओवय्य को कुछ शक हो रहा था। मगर देखकर भी अनदेखा-सा रहता था। बड़ों की कीचड़ में पांव रखना मुनासिब नहीं समझकर किसी से उसके बारे में न कहकर चुप था।

वह आंखें खोलकर सोचते लेटा था तो दुमंजिले पर रामय्य के सोने के कमरे से एक भयंकर वाणी सुनाई पड़ी, "आह! ओवय्या! ओवय्य! दौड़कर आ जाओ! मर गया रे!" उसकी पुकार इतनी दर्दनाक थी उस नीरव-निस्तब्ध रात में कि सुनने वालों का खून जम जाय।

ओवय्य घबराहट से दौड़कर गया जहां रामय्य सो रहा था। वहां कोई नहीं दिखाई दिया। उसने पुकारा, "रामे गौड़जी! रामे गौड़जी!" मगर जवाब नहीं आया। ओवय्य को बहुत डर लगा। उसी तरह नीचे उतरकर, लालटेन जलाकर फिर मंजिल पर चढ़ गया।

रामय्य एक कोने में अपने बिस्तर पर कंबल ओढ़कर सोया था। लालटेन के प्रकाश में उसकी खुली आंखें दिखाई पड़ीं। ओवय्य ने पूछा, "क्यों पुकारा था?" तब वह बोलना चाहता था। मगर बोल न सका। सारा शरीर थर-थर सिहर रहा था। मुंह पसीने से तरबतर हो गया था। आंसू बह रहे थे।

रामय्य को बोल सकने में आधा घंटा लगा। उसने कहा—"जब सो रहा था तब किसी की पुकार सुनाई पड़ी। आंखें खोलकर देखा तो एक आकृति मेरे बगल में खड़ी थी। मैंने पूछा, 'कौन है?' तो वह बिना बोले, मेरी तरफ बढ़ी, देखने पर पिताजी की तरह लगी। और पास आने पर अत्यंत विकृत हो, बालों को तितर-बितर करके, दांत दिखाने वाली स्त्री की भांति दिखाई पड़ी। देखते-देखते गुस्से से, नक्षत्रों की तरह आंखें फाड़कर, दांत पीसती हुई मुझ पर झपटने

वाली है, ऐसा दीख पड़ा। तब चिल्ला उठा, प्रज्ञाशून्य हो गया।" इस प्रकार उसने भयंकर कहानी सुनाई। उसे सुनकर ओबय्य भी घबरा गया।

अंत में ओबय्य को लालटेन जलाकर रामय्य के बगल में ही बैठना पड़ा। दोनों बिलकुल सो नहीं सके।

दूसरे दिन वेंकप्पय्य को बुलाकर निमित्त पूछा। उन्होंने कहा—"घर में कोई अनाचार हुआ है, उससे 'अशौच' हो गया है। घर को शुद्ध करवाकर, भूतादि को फलादि चढ़ाकर, चंद्रमौलीश्वर का अभिषेकादि करवाइये...।" यह सब करने की जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले ली। उसके अनुसार सर्व कार्य सम्पन्न हुए और घर में एक-एक दरवाजे के ऊपर एक-एक मंत्रित नारियल टांग दिया।

खैर, ज्योतिषीजी का कल्पनातीत 'अशौच' सिर्फ बेरोक-टोक चल रहा था।

बगीचे के उस पार छोटा पुल पार करते समय सेरेगारजी ने सुब्बम्मा का हाथ पकड़कर छाती से उसे लगा लिया था। उस दिन से उन दोनों के मन में नये-नये भाव एवं राग, आकांक्षाएं उभरने लगीं! सुब्बम्मा का हाथ पकड़कर आलिंगन करने पर भी, पुल को पार करने के बाद भी, थोड़ी देर वैसे ही रहने पर भी सुब्बम्मा जोर से चीख-पुकार किये बिना, केवल गुस्सा दिखाकर, गाली देकर, बाद को, उसके बारे में किसीसे न कहकर चुप थी, देखकर, अभिसार कला में पारंगत सेरेगारजी में नया जोश, नई आकांक्षा, उत्पन्न होने से वे अपने साहस एवं प्रयत्न को आगे बढ़ाने लगे।

सुब्बम्मा की मानसिक स्थिति का आम सेरेगारजी के प्यारे तोते की चोंच की मार के लिए योग्य पक रहा था; मुलायम बन रहा था। खट्टापन, कड़वापन धीरे-धीरे छोड़ता मीठा बन रहा था। जब कच्चा, अपक्व रहता है तब पेड़ हिलाने पर न गिरने वाला, खूब पक जाने पर गिरे बिना रहेगा? हाथ लगे बिना रहेगा?

चंद्रय्य गौड़जी की तीसरी पत्नी बनी सुब्बम्म ने पति से जैसे प्रेमिका अपने प्रेमी से प्यार करती है वैसे राग-अनुराग से काम भाव से प्यार नहीं किया। गौड़जी की दूसरी पत्नी (पुट्टम्म-वासु की मां) की मृत्यु के बाद घटना क्रमानुसार अचानक उनसे विवाह करने के पहले सुब्बम्मा का मन दूसरी जगहों में चक्कर काट रहा था। कानूर को अपने को देने वाले हैं, मालूम हो जाने पर भी उसने नहीं सोचा था कि तीन पुत्रों के पिता चंद्रय्य गौड़जी को व्याहना पड़ेगा। उसने खयाली पुलाव बना लिया था कि उसे हूवय्य को देंगे। जब उसको निश्चित मालूम हो गया कि उसको चंद्रय्य गौड़जी को देंगे तब उसकी आशा भंग हुई। तो भी बड़े घर के यजमान, अमीर, मशहूर बने हुए गौड़जी से विवाह करके सबके गौरव-भय के पात्र होकर कानूर के घर की हेग्गडिति बनकर, अकड़ से घूमने का सुनहरा सपना देख सुब्बम्मा फूली न समाई। लेकिन उसका सपना साकार होने

की बात उसके भाग्य में नहीं बदी थी। उसके कानूर में पैर रखने के पूर्व ही गंगा का मोहकीट गौड़जी के हृदय पर आक्रमण करके कुरेदने लगा था। पहले पहल गौड़जी ने रसभरित नया फल चूमा, तो भी थोड़े समय में ही सुब्बम्मा को नरक यातना शुरू हुई। उसके लिए वह खुद भी कारण थी। घर के यजमान से विवाह करने मात्र से घर की हेग्गडिति बन गई हूं, इस अहंकार से, अपने से काफी बड़ी बुजुर्ग, हूवय्या की मां नागाम्माजी पर भी हुकूमत करने लगी। नौकर, चाकरों से भी उसी प्रकार बरतने लगी जैसे बिच्छू को कारोबार दिया गया हो। लेकिन वह दर्प सारा समाप्त होकर थोड़े समय में रात को ही कानूर छोड़कर, अपने को काटने के लिए तैयार हुए चंद्रय्य गौड़जी की तलवार के वार से खुद को बचाकर मायके भाग जाना पड़ा। चंद्रय्य गौड़जी से प्रेम संबंध न होकर केवल विवाह बंधन था। इसलिए वे उसको कठोर पिशाच की तरह दिखाई पड़े। उनको कोसा। चंद्रय्य गौड़जी ने जब बिस्तर पकड़ा था तब फिर कानूर आई थी, तब भी सुब्बम्मा को एक तरह की करुणा थी, प्रणय भाव नहीं था। इसके अलावा मायके की पीड़ा से मुक्त होने में सहायक बनी उस घटना में उसकी कृतज्ञता थी। पत्नी बनी स्त्री का पति की शुश्रूषा करना रिवाज होने से, सुब्बम्मा भी औरों की तरह बरतती थी। गौड़जी की मृत्यु के बाद सचमुच दिल से दुःखी हुई थी। मायके वालों ने बुलाया, तो भी वहां गये बिना कानूर का हेग्गडितिपन फिर दुगने उत्साह से ग्रहण किया था।

कानूर के घर में—समस्त घर में—सुब्बम्मा अकेली स्त्री थी। कई बार बेज़ार होने से उसका मन उसांस छोड़कर किसी की आकांक्षा करके आंसू बहाता था। घर के काम-काज में मन को लगाने पर भी बीच-बीच में बेज़ारी, जुगुप्सा, शून्यता उस पर धावा बोलतीं। रामय्य यदि विवाह करे तो बहू आयेगी, सोचा था। यह आशा भी नहीं रह गई। इन सबके साथ उसका यौवन भी उबलकर उमड़ने लगा था। गरीबी में पली, मेहनत की हुई उस पर विश्राम से चरबी चढ़ी हुई थी। संस्कृतिहीन, संस्कृति के लिए न होने वाला विश्राम नरक का मार्ग है। हेग्गडिति हूं, यह घमंड भी चंदिया पर चढ़ गया था। उसका दुर्भाग्य! सेरेगारजी समय की ताक में थे।

सुब्बम्मा पहले से जानती थी सेरेगारजी की आंख उस पर है। पहले उनके सारे प्रयत्नों का तृप्तिकर निवारण किया था। लेकिन जब सभी अपने प्रति उदासीन हैं तब सेरेगारजी का लक्ष्य अपने पर रहे तो अच्छा, ऐसा लगा उसको। बाग के उस पार के पुल पर की घटना के बाद सेरेगारजी समय मिलने पर अपना विश्वास, अनुराग प्रदर्शन करने लगे थे, कई बार समय निकालकर भी! ...."थू! आप ऐसा न करें। आप चले जाइये जहन्नुम में" कहकर सुब्बम्मा गुस्से से गाली भी देती थी, तो भी उसकी आंखों में अन्य भाव को देखकर सेरेगारजी उन सब

गालियों को सिर-आंखों पर लेकर संतोप पाते जैसे चातक पक्षी मेघ जल पीकर प्रसन्न होता है।

एक वार मना करने पर भी सेरेगारजी ने सुब्बम्मा को नहाने के लिए गरम पानी लाकर दिया। हलेपैक के तिम्म से ताड़ी मंगाकर प्रतिदिन उसको निवेदने लगे! गंगा के वश हुई सुब्बम्मा की एक अच्छी साड़ी वापस लाकर दी। इस प्रकार के उपकार के लिए कृतज्ञता सूचित करने के लिए सुब्बम्मा ने सेरेगारजी को कुछ ज्यादा कॉफी और खाने की चीजें दीं। वे दुपहर को कानूर के घर में ही भोजन करते रहे। इसलिए सुब्बम्मा उनको घी, दही, मांस की तरकारी आदि व्यंजनों को अधिक से अधिक परोसने लगी। रात को वे गंगा के घर में खाकर वहीं सो जाते थे। इसलिए उनके रात के भोजन के लिए अपने बनाये भक्ष्य-भोज्य, पहले एक-एक बार फिर वार-वार भेजने लगी। इस प्रकार उन दोनों की परस्पर उपकार की कृतज्ञता स्नेह में परिवर्तित हो गई, यहां तक कि एक वार सेरेगारजी समय साधकर अकेले भोजन करने के लिए वैठे थे तव बातें करते समय लोटे से पानी चुल्लू में लेकर सुब्बम्मा के मुंह पर उछाला तमाशे के लिये। सुब्बम्मा हंसती, गाली देती हुई अपने हाथ में धरे पात्र से दही निकालकर उनके मुंह पर उछाल दिया। उनकी मूंछ, गाल पर गिरे दही को देख खूव हंसने लगी। सेरेगारजी मुंह पोंछते हंसने लगे। उसे सुनकर अन्दर आये ओवय्य से दोनों ने मिलकर 'बिल्ली की आंख में अचार का रस उछलकर पड़ने से, देखे विना मथनी के खंभे से टकराकर औंधी गिरकर उसने गड़वड़ी कर दी।' कहानी सुनाई। वह भी उनकी कहानी पर विश्वास करने वाले की तरह अभिनय करके लौट गया।

इन सबके फलस्वरूप सेरेगारजी रात को गंगा के घर में भोजन करके, वहां सोये विना, रोज वंदूक लेकर खरगोश का शिकार करने के लिए जाने लगे। गंगा को शक हुआ। एक वार उसने पूछा—"चांदनी नहीं, कुछ भी नहीं, इस अंधेरे में आपको खरगोश कैसे दीखेगा?" सेरेगारजी ने कहा—"खरगोश सफेद होने से नक्षत्र के प्रकाश में उसका आकार दीखता है, अभ्यास होने से अंदाज निशाना वांधकर मार सकते हैं।" उसने अर्थपूर्ण मुसकराहट से हंसती, व्यंग्य दृष्टि से देखती—"तुम्हारा···वरवाद हुआ!" कहकर उनकी मूंछ पकड़कर खींची।

सेरेगारजी दर्द से "हाय! पुण्यवती···" कहकर अपने को छुड़ाकर, गंगा से ही संवाद करवाके, फूल पहनकर मूंछ पर इत्र लगा लेकर, पुष्पगुच्छ को जेव में रख लेकर वंदूक कंधे पर रखकर 'खरगोश के आखेट' के लिए रोज जाने की तरह चले।

७७

बुद्धदेव की कृपा महिमा

कानुवैलु की ऊंचाई पर पश्चिमी पर्वत चंदिया पर डूबने वाले लाल बने संध्या सूरज की कुंकुमांकित मनोहर, मनमोहक रंग उछाल रही थी। पहाड़ों की छाया सारी कंदरा पर फैली थी। ओवय्य हलेपैक के तिम्म की दी हुई ताड़ी पीकर कानूर के घर की ओर उतर रहा था। तिम्म बाकी बची ताड़ी को सेरेगारजी के लिए ले गया था जल्दी। "आजकल सेरेगारजी पहले से भी दुगुनी पीते हैं रे" वह कहता, मुस्कराता, अपनी ओर देखी हुई वस्तु के बारे में ही सोचता धीरे-धीरे जा रहा था। तब कोई बातें करते हुए आ रहे हैं पहाड़ की ओर से, जानकर ओवय्य खड़ा हो गया। फिर उस ओर देखने लगा।

देखते-देखते दो आदमी, उनके चारों ओर कुत्ते, झुरमुट के बीच दिखाई पड़े। वे शिकार की बातें करते आ रहे थे। उनकी बातें सुने हुए ओवय्य को पुट्टण्ण की ध्वनि का परिचय हो जाने पर "क्या पुट्टण्ण, शिकार हो गया ?" कहकर उसने मानो उसका ध्यान आकृष्ट किया।

कंधे पर बंदूक रखता हुआ पुट्टण्ण, पीठ पर कोई एक भारी चीज़ कंबल में डालकर, तनिक झुकके चलने वाला सोम पास आये। भूंकते आये हुए कुत्ते ओवय्य को पहचानकर, सूंघ के पूंछ हिलाने लगे।

"क्या शिकार हो गया ?" फिर ओवय्य ने पूछा।

पीछे से सोम "हुआ यानी हुआ। नहीं यानी नहीं हुआ।" कहकर मुश्किल से पुट्टण्ण के पहले ही बोला। उसकी बात से उसके ढोये हुए भार की महिमा का पता लगता था।

"वह क्या है तुम्हारे कंबल में ! इतनी सांस रोककर बोलते हो।" कहा ओवय्य ने।

"कुछ भी नहीं। मैंने पकड़ा था एक बर्क (जानवर) का बच्चा।"

"बच्चा ही सही ! मुश्किल से ढोकर आ रहे हो सोम ?" कहा ओवय्य ने।

सोम "हां रे, जब मिला था तब बच्चा था। अब 'करि' हो गया है !" कहकर अपने आप हंसा। फिर अपने बोझ को नीचे पटक दिया। 'भागवत' के खेल में उपयोगित 'करि' शब्द का प्रयोग उसने किया था जिससे उसकी हास्य के साथ

विद्वत्ता का अभिमान भी प्रकट होता था। न पुट्टण्ण, न ओवय्य उसकी बात में रहा हास्य, रही विद्वत्ता समझ सके और हंस सके। तब सोम ने "करि यानी क्या जानते हो ओवे गौड़जी ?" पूछा।

"करि यानी स्याही का कालापन। जलने से हुआ कालापन।"

"उस अर्थ में मैंने न···"

सोम को उसका अर्थ ओवय्य को समझाने का मौका नहीं मिला। वर्क कंबल के साथ नीचे गिरा था। उसे देखकर कुत्ते उस पर झपटे। पुट्टण्ण उनको भगाने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन उन कुत्तों में से एक कुत्ता कंबल को ही मुंह से खींचने लगा था। उसको देख सोम ने अपने शब्द का अर्थ समझाना छोड़कर, "हाय, हाय, हाय, मेरा कंबल गया रे! देखो तो इन दुष्ट पिल्लों को! मांस कहते ही टूट पड़ते हैं! हचा! हचा! हचा!" कहते जल्दी-जल्दी कंबल के साथ वर्क को उठा लिया। फिर तुरन्त वह केलकानूर की ओर बढ़ा। कुत्ते उसके पीछे-पीछे निकले।

ओवय्य ने पीछे से पुकारकर कहा, "क्यों जी, मैं हिस्सा मांगता हूं, सोच के उठाकर भागते हो क्या ?"

सोम लौटे बिना यक्षगान का गीत जोर से गाता हुआ आगे बढ़ गया।

"सोम कितना बदल गया है ?" कहा ओवय्य ने।

पुट्टण्ण ने थकावट के मारे 'उश्ट' कहकर बंदूक नीचे रख दी। फिर एक चट्टान पर कंबल बिछाकर, बैठ गया। फिर "अगले साल मजदूरों को ले आता हूं, कहता है; सेरेगारी (मिस्तरी या पर्यवेक्षक का काम) करता हूं, कहता है। इस आजू-बाजू काम लेकर खुद करवाके, कानूरु सेरेगारजी को धूल चटाने का विचार है उसका···हूवय्य गौड़जी से पेशगी मांग रहा है। वह भी कह रहे हैं—देखें, देखें।" कहकर, खांसके खखारकर थूका। कुरुड़ु गप्पटे नामक एक पंछी ध्वनि करते हुए उड़ गया। सूरज के डूबने के बाद संध्या के अंधकार की प्रथम छाया फैल रही थी, शाम के आकाश में रंगों का जुलूस निकला था। एक-दो उज्ज्वल नक्षत्र भी चमक रहे थे।

"कानूरु सेरेगारजी को गांव से भागना ही अच्छा लगता है।" कहकर ओवय्य ने पत्थर का एक छोटा टुकड़ा लेकर जो खेल रहा था, उसे दो-तीन गज दूरी पर रही चट्टान पर मारा।

"क्यों रे ? तुम्हारी हेग्गडिति अम्मा के कारोबार के मंत्री बने हैं सेरेगारजी, सुनते हैं; क्या सच है ?"

ओवय्य उसांस लेकर चुप रहा।

पुट्टण्ण ओवय्य गौड़जी के मौन का अर्थ जानने वाले की तरह, उस बात को आगे बढ़ाये बिना पूछा, "तुम्हारे गौड़जी कैसे हैं ?"

ओवय्य के मुंह से ताड़ी की बू आ रही थी व फैल रही थी।

"कैसे हैं? हैं! भोजन करते हैं! नाश्ता करते हैं। आजकल उनको नींद नहीं लगती, इसलिए अफीम मिश्रित गोली खाने लगे हैं। मैं भी दुमंजिले पै उन्हीं के पास सोता हूं। कहते हैं, उनको अकेले सोने में डर लगता है।···एकैक बार अफीम की···लत···। लगता है···रात को जो मन में आवे बोलते हैं। परसों रात को जब नशे में थे तब फूट-फूटकर रोते, 'हाय रे ओवय्या, सबने मेरा हाथ छोड़ दिया है रे! मैं क्यों जिंदा रहूं? नदी में कूदकर प्राण छोड़ दूंगा', न जाने इस तरह क्या-क्या कह दिया! उस एक दिन आधी रात को कहा—'ओवय्य, बंदूक ले आओ, उसे गोली से मारकर, मैं भी अपने ऊपर गोली चला लेकर मर जाऊंगा', 'किसको मारेंगे?' पूछा तो चुप थे। कुछ नहीं बोले। उनको कुछ दिलासा देकर सुलाया। मुझे तो अच्छी तरह नींद नहीं।···आठ दिन पहले, 'वासु को देखकर आता हूं' कहकर गाड़ी में तीर्थहल्ली गये। करीब बीस-तीस बोतल लाये हैं। उनमें क्या है?···वैसे क्यों देख रहे हो?···" उसने कहा, कहकर अपनी कथा को रोककर, जिस पश्चिम दिशा की ओर पुट्टण्ण देख रहा था उसी ओर ओवय्य ने भी देखा।

वे जहां बैठे थे उस स्थान से लगभग एक फर्लांग दूरी पर बड़ी ऊंची काली चट्टान लाल गगन पट के आगे गोल गोपुर के जैसे ऊपर उठी थी। फैलते हुए अंधेरे में उसकी आकृति किसी एक अर्थ से, किसी एक रहस्य से भरी हुई-सी दीखती थी। दिन के प्रकाश में वह चट्टान उतना प्रमुख दीख नहीं रही थी। लेकिन उनके बैठे स्थान को वह शाम के आकाश की भिति पर खोदकर पुती हुई-सी उभर कर दिखाई पड़ने से अंधकार के मंद प्रकाश में अज्ञात, अलक्षित वस्तुओं की अपेक्षा वह अत्यंत प्रधान थी। पुट्टण्ण ओवय्य की बातें सुनते हुए, उस चट्टान की ओर ही देखता रहा, तब एक मनुष्याकृति संध्याकाश सामने की उस काली चट्टान पर चढ़ी। स्याही से खींची रेखाचित्र की भांति दिखाई देने वाली वह नराकृति रूप विवर रहित आकार मात्र थी। वह स्याह मूर्ति चट्टान के सिर पर धीरता से खड़े होकर संध्याकाश को देखने लगी। सिर पर वस्त्र नहीं था, बाल नहीं थे, दो कानों की रेखाकृति, पहना कुर्त्ता, पहनी धोती का वह व्यक्ति चट्टान पर स्थापित शिलामूर्ति की तरह थोड़ी देर खड़ा था, फिर जब उत्तर की ओर घूमकर खड़ा था तब उसकी लंबी नाक, उसके अधर, मुंह, गाल आदि की रेखा कुरेदकर बनाई गई हो जैसे पुट्टण्ण को दिखाई दी और उस व्यक्ति का परिचय हुआ।

"वह कौन है?" ओवय्य के प्रश्न का जवाब पुट्टण्ण ने फुसफुसाते हुए "हूवय्य गौड़जी" कहकर मंदिर के गर्भगृह में देवता के विग्रह के आगे भयभक्ति से बोलने की तरह सुनाया।

"दाढ़ी-मूंछ एक भी नहीं! संन्यासी की तरह मुंडा हुआ-सा सिर है।"

कहकर ओबय्य धीमी आवाज़ में बोलने लगा।

"परसों-तरसों दाढ़ी-मूंछ, सिर के बाल सब मुंड़ा लिये हैं !"

"सो क्यों ?"

दोनों इस तरह बोल रहे थे कि हूवय्य की आकृति चट्टान पर पद्मासन लगाए बैठ गई।

"वह रोज यहां आकर ध्यान करते हैं।...अभी-अभी उनके पास जाने में मुझे डर लगता है। डर यानी डर नहीं।...न जाने उनके पास जाने से एक तरह का भय होता है।...पहले उनको शिकार प्राणों से भी प्यारा था और अब उसकी ओर गौर ही नहीं करते। मांस खाना छोड़ दिया है।...दिन को एक बार भोजन... बेंगलोर से अपने मित्र को लिखकर (हाथ से ऊंचाई दिखाते हुए) इतनी ऊंची बुद्धदेव की मूर्ति मंगाई है ! आज से दस-पंद्रह दिन हुए दीखता है...पुट्टम्मा के प्रसूता बनने के एक दिन पहले एक दिन, नहीं, शायद उसके पहले दिन...दीखता है, उन्होंने सिर के सारे बाल-दाढ़ी सब मुंडा लिया...!"

पुट्टण्ण अपने प्रिय व्यक्ति की नाना ढंग से प्रशंसा करते हुए बोल चुका।

करीब आधा घंटा होने पर भी क्षण-क्षण बदलती कांति के सम्मुख चट्टान पर पद्मासन लगाकर बैठा वह निश्चल मसि चित्र न हिला, न डुला।

ओबय्य ने कहा, "मैं जाता हूं जी। हमारे गौड़जी तो अंधेरा होते ही बुलाते हैं। अंधेरा हो जाने पर कहते हैं कि एक क्षण भी वे अकेले नहीं रह सकते हैं। न जाने क्या-क्या पी जाते हैं।...चुपचाप सो जाएं तो ठीक ! मगर एकैक बार मगज़ बिगड़ जाय तो खुदा हाफ़िज़ !—'वे आये ! ये आये ! पीटते हैं ! खून करते हैं !' कहकर चिल्लाते हैं। न जाने उनको क्या घबराहट है।" कहके ओबय्य दो-तीन कदम आगे बढ़ा हुआ फिर वापस आकर बोला, "एक-दो दागने के लिए तुम मसि दोगे क्या ? कांध की हाट से लाकर तुमको दूंगा।"

"क्यों रे ? तुम्हारे गौड़जी मांगने पर नहीं देंगे ?"

"हाय ! हाय ! मेरा कहना तुम अच्छी तरह नहीं जान पाये शायद, दीखता है। आकर देखो एक दिन, उनकी स्थिति मालूम होगी।"

"दूसरे दिन बैरे के साथ बंदूक की स्याही भेज दूंगा," पुट्टण्ण के कहने के बाद ओबय्य पहाड़ से उतरकर कानूर की ओर चला गया।

आकाश नक्षत्रों से खचाखच भर गया था। पहाड़-जंगल केवल रूपरेखा मात्र हो गये थे। इतना घना अंधकार हो गया था। घर की ओर निकले हूवय्य के पीछे-पीछे पुट्टण्ण गया, दोनों घर पहुंचे।

हूवय्य ने शिकार के बारे में एक-दो प्रश्न पूछे। फिर विलंब का कारण पूछा। पुट्टण्ण कहने लगा—"रास्ते में ओबय्य मिला था, बातें करते ठहरा लिया।" फिर उसने रामय्य के बारे में, जो कुछ उसने सुना था, सब बता दिया। हूवय्य तब लघु-

गुरु उत्तर देते चिंतामग्न हो घर में गया।

रामय्य की अधोगति एवं दुःस्थिति का समाचार सुनकर हूवय्य का मन दुःखाक्रांत, शोकाक्रांत हो, करुणा से क्षुब्ध हो गया था। इस सबका कारण मैं खुद हूं, यह भावना उसके हृदय में चुभ गई थी। अपनी स्वार्थता, अनिश्चय बुद्धि, डोलायमान मन—ये कारण हैं न ?—दो-तीन घरानों में हुए, होने वाले अनर्थों की जड़ मैं हूं न ?—लगा उसको। आवश्यक न होने पर भी अति कठोरता से अपनी आत्म परीक्षा करते हूवय्य अपने आगे मेज़ पर रखी ध्यानस्थ बुद्धदेव की मूर्ति को टकटकी लगाकर देखने लगा।

उस महापुरुष के स्वार्थ-त्याग, वैराग्य, औदार्य, अनुकंपा, अहिंसा, तीक्ष्णमति, परदुःखकातरता—इनमें एक-एक उसके जीवन चरित्र के घटना चित्रों के साथ साकार हो मनोभित्ति पर चले उस भव्य भैरव व्यक्तित्व के आगे अपनी अल्पता करुणाजनक हो, नीच हो दीख पड़ी और हूवय्य की आंखों से आंसुओं की बूंदें एक के बाद एक गिरीं। हूवय्य ने उस मूर्ति के पादपद्मों पर माथा टेककर प्रार्थना की "गुरुदेव, मुझे अपने हाथ उठा लो, मेरा उद्धार करो। तुम्हारे महागुणों में से कम से कम एक को मुझे कृपा करके दे दो, मेरे जीवन को सार्थक बनाओ।"

धीरे-धीरे हूवय्य का मन बुद्धदेव के प्रति अधिकाधिक झुका था। उसका तप, उसके कष्टों के आगे उसका वज्र सदृश मन, लोक कल्याणार्थ अपने को खपाने का गगनोपम महाऔदार्य हूवय्य की वर्तमान मानसिक स्थिति के लिए तारक मंत्र थे। जहां तक हो सके, उस गुरु को आदर्श रखकर उसका अनुसरण करने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन कई बार, पुराने राग-द्वेषों से वह प्रयत्न विफल हो जाता था। तो भी हूवय्य हिम्मत हारे बिना साधना में मग्न था।

उस रात को बुद्धदेव का कृपाबल मांगकर, मन को दृढ़ कर लेकर उसने अगले मार्ग का निर्णय किया : केलकानूर जाऊंगा, रामय्य को देखूंगा और त्याग करके उसके उद्धार तथा सुख के लिए प्रयत्न करूंगा। फिर परसों मुत्तल्ली जाऊंगा न ? चिन्नय्य ने अपने पुत्र के नामकरण के अवसर पर पधारने के लिए आमंत्रण भेजा था। वहां सीता को देखूंगा, कानूर जाकर रामय्य की पत्नी बनकर रहने के लिए मनाने का प्रयत्न करूंगा !

दूसरा संकल्प करते समय हूवय्य को उसके प्राण ही शून्य होने के समान लगे। ऐसा लगा मानो छाती कोई मरोड़ रहा हो, अंतड़ियां आरे से चीरी जा रही हों। उसका बदन पसीने से तर हो गया। आंसू बहे; मन रोने लगा। तो भी वह अपने प्रयत्न में बुद्धदेव के कृपाहस्त की मदद मिली है, इस श्रद्धा से उत्तीर्ण हुआ।

उत्तीर्ण होने के बाद उसने कमरे से बाहर आकर जब आकाश की ओर देखा तब उसका मन शांत सागर बना था। असंख्य नक्षत्रों की वह मध्य रात्रि गुरु के आशीर्वाद की भांति गोचर हुई। उसकी आत्मा में धुएं से भरे कमरे में सांस रुक-

कर, आंसू बहाकर छटपटाते उसको बाहर शुद्ध हवा में फेंकने जैसे हुआ था। पानी में डूबकर हवा के लिए तरसने वाले को मानो तीर पर खींचकर डालने के समान हुआ था। उसका मन विश्रृंखल हो गया था, स्वतंत्र हो गया था, पंख की तरह हलका हो गया था; शांत हो आनंदपूर्ण हो गया था। पत्थर से फूल उगेगा, यह वह नहीं जानता था। वैसे दुःख से ऐसा आनंद, वैसे कठोर त्याग से ऐसी परम शांति मिलेगी, इसका अनुभव करने के पहले किसी को कैसे मालूम हो?

दूसरे दिन हूवय्य का पुनर्जन्म सा हुआ था। हृदय में उमड़ते शांति-आनंदों के उत्कर्ष से केलकानूर का घर उमड़ पड़ने के समान वह अपने आप गाने लगा। उसे सुनने वाले सोम, पुट्टण्ण और रसोइया भी अपने-अपने काम को स्थगित करके, निस्पंद हो सुनकर आश्चर्यचकित हो गये।

अनंत औदार्य से, अपार त्याग से उमड़ते हुए दिल से, हूवय्य अकेला कानूर के लिए रवाना हुआ। जिस ओर देखो उस ओर सृष्टि स्वर्गीय बन गई थी: रास्ते में जहां घास उगी थी उस पर न जाकर, घास से रिक्त रास्ते पर ही कदम रखता जा रहा था ताकि घास को भी दर्द न हो!

लेकिन कानूर का घर दूसरी तरह का हो गया था। वहां रहने वालों के हृदय भी हूवय्य की तत्कालीन स्थिति से बहुत दूर हो गये थे। वहां रहने वाले सेरेगारजी, ओबय्य, मज़दूर, नौकर-चाकर आदि को हूवय्य को देखकर अचरज हुआ। दुमंजिले पर चढ़कर आते हुए हूवय्य को देखने का मन न होने से शायद रामय्य ने अपने कमरे का दरवाज़ा बंद कर लिया। कड़ी बातों से उसका तिरस्कार किया। ओबय्य बार-बार उसको बुलाने के लिए गया तो नाराज होकर, उसे बुरी गालियां सुनाकर धमका दिया "फिर बुलाने आओगे तो छुरी भोंक दूंगा!" हताश हुआ हूवय्य ने सुब्बमा को देखना चाहा। सेरेगारजी ने "वह घर में नहीं हैं, कहीं काम पर गई हैं।" कहकर टाल दिया।

हूवय्य ने अपनी दृष्टि दौड़ाकर सारे घर को एक बार देख लिया। फिर उसांस छोड़कर फाटक से बाहर चला गया। उससे परिचित कानूर के घर के कुत्ते पूंछ हिलाते, उसके बदन पर कूदते, सूंघते विदा करने लगे जैसे आगमन पर स्वागत करते समय किया था।

ओबय्य ने उनको 'हचा-हचा!' कह के दूर भगाया।

हूवय्य को उस घर की मरुभूमि में कुत्तों का एक प्यार ही मरुवन का दीखने से उनके सिर पर हाथ फेरकर, प्यार दिखाते "उनको क्यों डरा रहे हो? मूक प्राणी तो कम से कम मनुष्यों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह पेश आते हैं न?" कहकर हूवय्य ने ओबय्य की तरफ देखकर मुसकुराया।

ओबय्य हूवय्य की बात का मर्म नहीं जान सका।

"उसके लिये नहीं। आपका साफ कपड़ा मैला कर देंगे, सोचकर उनको

डराया।" ओवय्य ने कहा।

"परवाह नहीं !"

हूवय्य के साथ ओवय्य भी कुछ दूर गया। हूवय्य केलकानूर की तरफ बढ़ते, सुपारी के बाग की ओर देख "ओहो ! वहां का चंपावृक्ष क्या हुआ ?" कहकर हाथ से इशारा करके दिखाया।

"रामय्य गौड़जी ने कटवा दिया।"

"क्यों ? खूब फूल लगते थे न ?"

"सारी मंजिल पर उन फूलों की खुशबू भर जाती थी जिसे वह सह नहीं सकते थे !"

हूवय्य ने धीरे से हंसकर, "ओहो ! उसके लिए !" कहा।

७८

चिन्नय्य, पुट्टम्मा और रमेश

औदार्य का उद्देश्य सफल नहीं हुआ और न सार्थक ही। निराशा से लौट आने पर भी हूवय्य के हृदय मानस सरोवर से नया उमड़ा आनंदगंगा का अप्रतिहत प्रवाह नहीं रुका। कम भी नहीं हुआ। पहले क्षणिक आ-आकर जाने वाला दिव्य अनुभव निरंतर शाश्वत बना-सा दीखा। कमल्ली पंछी का मीठा गान सामने के पेड़ के सिर से नहीं आ रहा था, अनंतता के गर्भ से अर्थपूर्ण हो आता था। यहां-वहां खिले जंगली फूल केवल फूल नहीं थे, आत्मा के मनोहर भाव संदेश लाने वाले देवदूत थे। जगत की जड़ता, स्थूलता, वास्तवता स्वप्न की भांति मिथ्या दीख पड़ीं। इंद्रियों को गोचर होने के लिये भेस बनाये रस समुद्र की तरंगें हों, जैसी दीख पड़ीं। हूवय्य का शरीर भी उस आत्मा का एक भाव मात्र की तरह प्रतीत हो चलने पर भी तैरने का अनुभव हुआ। उसको अपना अनुभव महाद्भुत दीखा।

"इतने कम त्याग से ऐसा महाभोग मिलेगा?—क्यों न हो? ऐश्वर्य से भरे बड़े संदूक की चाबी उस संदूक की जितनी बड़ी हो रहनी चाहिये?" कह लिया।

हूवय्य उस दिन उस आनंद की स्थिति में था। उसके पास आने वालों पर उस अनुभव की छाया पड़े बिना रहती। पुट्टण्ण जब कभी बंदूक के लिए कारतूस मांगता तब चार-पांच ही देता था, मगर अब मांगने पर पंद्रह-बीस दिये। सोम ने अगले साल कन्नड़ जिले से मजदूरों को लाकर सेरेगारी करने के लिए पेशगी मांगी तो प्रतिदिन कहने की तरह "देखें" कहने के बदले में सोम की निरीक्षा से भी ज्यादा धन पेशगी देने के लिए मान ही नहीं लिया, बल्कि मजदूरों को चुनते समय कैसों को चुनना चाहिये के बारे में सुदीर्घ बातें करके सलाह देकर उकसाकर "अच्छा सोम, अगले साल तुमको 'सेरेगार सोमय्य सेट्टजी' कहकर सिंहासन पर बिठायेंगे।" कहकर विनोद किया।

शाम को नंज ने चिन्नय्य से पत्र लाकर हूवय्य को देकर कहा—"अभी जरूर आना चाहिये।"

"कल है न नामकरण?" कहकर हूवय्य का पत्र खोलकर पढ़ने लगा।

"कल नामकरण हो तो आज आपको नहीं आना चाहिये?" कह नंज अपने

मालिक की ओर से वाद करने लगा।

चिन्नय्य ने आग्रहपूर्वक निमंत्रण भेजा था। अतः हूवय्य एक उत्तरीय कंधे पर डालकर, पहनी पोशाक में मुत्तल्ली के लिए रवाना हुआ।

मार्ग में ताड़ी की दूकान नजदीक आने पर नंज ने कहा—"मालिक, वड़ी प्यास लगी है। थोड़ा पानी पीकर आता हूं।"

हूवय्य को प्यास का रहस्य मालूम हो गया था। उसने मानकर—"देर मत करो। जल्दी आ जाओ।" कहकर धीरे से कदम बढ़ाया। थोड़ी ही देर में नंज भी प्यास की दवा पीकर तृप्त हो पीछे से आ मिला।

हूवय्य ताड़ी की वू के कारण, जितना हो सके, नंज से दूर रहकर ही चलने लगा उसके साथ विना वोले। झुटपुटा फैलने लगा था। लेकिन रास्ता साफ़ दिखाई देता था।

थोड़ी दूर गये ही थे, पीछे 'धप्प' की आवाज हुई तो हूवय्य ने घूमकर देखा—नंज ज़मीन पर से उठकर कपड़े पर लगी सड़क की धूल झाड़ ले रहा था। वह खड़ा न हो सकता था। पैरों में अस्थिरता थी।

हूवय्य ने मज़ाक करते हुए पूछा, "क्या है रे ?"

"थू, इसका पेट वरवाद हो गया रे !…हां तो, यह रास्ता खामखाह मेरी टांग पकड़कर उठाके छोड़ दे !" कहते झूमते नंज आगे बढ़ा।

ताड़ी का नशा सिर पर चढ़ने लगा था, जानकर हूवय्य अपने-आप हंसते हुए, पीछे घूमकर देखे विना चलने लगा। थोड़ी दूर गया ही था फिर नंज गिर गया। गिरा हुआ न उठ सका। पड़े-पड़े "थू, इसका पेट वरवाद हो गया रे ! यह रास्ता ऐसा क्यों करता है रे ! कदम उठाने के लिए ही नहीं छोड़ता ! थू !" कहकर थूका।

"यही क्या है रे तुम्हारी प्यास ? पानी पीकर आता हूं, कहना और आना ताड़ी पीकर ? उठो ! उठो !" कहा हूवय्य ने।

"क्या कहूं मालिक ! थू, इसका घर वरवाद हो गया रे ! उठने को नहीं देता !…दवाता है, मसलता है।" कहकर, उठकर चलने के वजाय, बच्चों की तरह हाथ टेककर घुटनों के वल आगे वढ़ने लगा। हूवय्य हंसी को रोक न सका।

नंज भी यद्वा-तद्वा हंसते, घुटनों के वल आगे वढ़ते-वढ़ते हकलाते वोला, "चलना मालिक ! थोड़ा पकड़ लेंगे मेरे हाथ ? उस रास्ते के मारे नहीं हो सकता। टंटा करता है !"

लाचार होकर हूवय्य ने उसका हाथ पकड़ लिया तो भी नंज नहीं चल सका। उसको तकलीफ से चलाकर ले गया। उसके घर के दरवाजे पर छोड़कर, अच्छी तरह अंधेरा हो जाने पर ही मुत्तल्ली के घर गया। हूवय्य की राह देखते हुए चिन्नय्य खड़ा था। हूवय्य को देखते ही उसने विलंब का कारण पूछा। हूवय्य ने

सीता के दिये हुए गरम पानी से पांव धो लिये, फिर घटी सारी कहानी सुनाई। उसे सुनकर सब लोट-पोट हो गये।

श्यामय्य गौड़जी गंभीर होकर धीरे-धीरे बोले, "उस रंडीबाज से सुख नहीं। जहां जाता है वहां कुछ शोरगुल, बखेड़ा करने वाला ही है। उसे क्या किया जाय, मालूम नहीं होता मुझे तो।"

हूवय्य को मुत्तल्ली के घर में संतोष का वातावरण देखकर आश्चर्य हुआ। उसकी दाढ़ी-मूंछ, उसके सिर के बाल सफ़ाचट हुए देखकर सभी मुत्तल्ली वालों को आश्चर्य हुआ बहुत ज्यादा। कानूर की विषण्ण परिस्थिति के विरुद्ध परिस्थिति थी मुत्तल्ली की। प्रसन्न स्थिति!

घर में सभी हर्षचित्त थे। श्यामय्य गौड़जी को, गौरम्माजी को अपनी पुत्री सीता के बारे में याद आने पर थोड़े समय के लिये दर्द का बादल उनके चेहरे पर छाया करता होगा। पर, उस बादल की छाया को पूरा मिटाने के लिए सूर्य का तैजस् भी अधिक ही रहता था। अन्य किसी बात में वहां कमी नहीं थी। पुत्र तथा पुत्रवधू के बारे में उनको संपूर्ण तृप्ति थी। अब पोता भी आ गया था। अतः तृप्ति में संभ्रम समाविष्ट था, उमंग भर गया था।

सीता प्रतिदिन की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, संतुष्टचित्त, उत्साहित थी। उसको ऐसा लगता था कि कुएं में गिरकर, ऊपर आई हो। पहले की तरह उसमें भूत का संचार नहीं था, किसी भूत-गीत की पीड़ा नहीं थी। ऐसा दीखता है कि उसने अपनी भावी स्थिति के बारे में नहीं सोचा था। भविष्य के बारे में कभी चिंता नहीं की। कानूर की हेग्गडिति बनने वाली है, यदि कोई कभी कह देता तो पगली की तरह विचित्र रीति से कुछ कहती और बरतती थी। इसलिए कोई कानूर की बात ही नहीं उठाता था। पुट्टम्मा, लक्ष्मी और कभी-कभी गौरम्माजी आदि को कहानी पढ़कर सुनाना, माता की भीतरी कामों में मदद करना, तीनों समय लक्ष्मी को गोद में उठाकर चूमना, उसकी शुश्रूषा करना—यह उसकी दिनचर्या थी। कहते हैं कि वह अपने कमरे में देवताओं के चित्र, हूवय्य के दिये हुए महा पुरुषों के चित्र रखकर पूजा करके प्रार्थना करती थी। यह भी कहते हैं कि कई बार अपना कमरा बंद करके कई घंटे अकेली रहती थी। जो हो, उस दिन हूवय्य के साथ निःसंकोच बहन की तरह सरलता से बरतती हुई उसने बातचीत की।

लेकिन चिन्नय्य और पुट्टम्मा सबसे अधिक संतुष्ट एवं हर्षित थे, सुखी थे। उनके जैसे सुखी, संतुष्ट, हर्षितचित्त चाहे मुत्तल्ली में हो, चाहे चारों ओर के देहाती में हो, कोई नहीं था। विवाह के दिन से मुत्तल्ली और कानूरों के क्षुब्ध जीवन समुद्र में उनका जीवन वृन्दावन सदृश द्वीप बनकर चला आया था। औरों के कष्टों तथा यातनाओं तथा उद्वेग ने उनके जीवन सरोवर को कीचड़ नहीं बनाया था। इतने सुखी थे दोनों। इसका मतलब यह नहीं कि वे हृदयहीन थे, औरों का कष्ट देखकर

आंसू नहीं बहाये थे। दोनों ने परस्पर सहायता से दुख के समुंदर में बेरोक-टोक तैरने वाली सुख की नाव बना ली थी, यह अर्थ है उनके सुखी जीवन का। अब तो पुत्र-रत्न के जनन से दोनों अत्यानंद से परवश जैसे हो गये थे। इसीलिए पुत्र के नाम-करण के दिन पधारने की प्रार्थना के साथ आमंत्रण भेजने पर भी कानूर से कोई नहीं आया था, तो भी, पुट्टम्मा दुखी नहीं हुई थी। वह सौतेली मां की पुत्री होने से रामय्य भैया का प्यार नहीं है, सोचकर दुखी होने का प्रयत्न किया। लेकिन वह प्रयत्न भी कर्तव्य जैसा था।

अग्रहार के वेंकप्पय्य ज्योतिषी ने शिशु का जन्म नाम बताया था 'करियण्ण' हूवय्य से चिन्नय्य ने "इस बम्मण से हमारा निस्तार नहीं! हमें विद्या-वृद्धि नहीं दी, वह एक ओर रहे, कम-से-कम एक अच्छा नाम तो बताते! उसके लिए भी असूया दीखती है। काला, सिड, तिम्म, करिय, ये ही नाम हमारे पल्ले!" कहकर एक बुलाने के लिए योग्य "सुंदर नाम रखने को सुझाओ।" कहा।

सीता, सिगप्प गौड़जी, हूवय्य, चिन्नय्य, लक्ष्मी, काला, नंज और चार-पांच ने मिलकर नामकरण के लिए सुंदर नाम ढूंढ़ने में बहुत समय तक चर्चा की। वह पुकार, वह शोर, वह हंसी, ये सब सुनकर श्यामय्य गौड़जी भी वहां आये। थोड़े ही समय में उनको भी लड़कों की तरह जोश से चर्चा में भाग लेते देखकर हूवय्य को आश्चर्य हुआ।

आखिर सीता अपने कमरे में जाकर वेंकटाचार्य के उपन्यासों में से एक नाम ढूंढ़कर आई और कहा, "रमेश नाम बहुत अच्छा है।"

लक्ष्मी ने आगे-पीछे देखे बिना सीता की बात का समर्थन किया। मगर सबकी राय में वह नाम उतना सुंदर नहीं था, जानकर वह रोने लगी। उसके सत्याग्रह से डरकर सबने उस नाम को मंजूर कर दिया। विजयी लक्ष्मी शिशु के पास जाकर, "रमेश! रमेश!" पुकारती हुई उसने उसके दोनों भरे गालों को अपने प्यारे हाथों से स्पर्श करके दबाया।

लार टपकाते हुए, अपने अंगूठे को चूसता हुआ शिशु तत्काल चूसना रोककर अपनी निर्मल दृष्टि से देखता मुसकुराया।

दूसरे दिन हूवय्य ने केलकानूर के लिए रवाना होने के पहले कुछ समय के बाद जच्चा को रमेश के साथ, और लक्ष्मी को साथ लेकर अपने घर आने के लिए सीता को आमंत्रण दिया। सीता ने चिन्नय्य की ओर देखा। वह सुख-रस से पूर्ण होकर "ओ हो! उसके लिए क्या?" कहकर अपनी स्वीकृति दी।

हूवय्य ने कानूर जाने की बात ही सीता से नहीं कही। रामय्य ने उसका तिरस्कार किया था, उसको देखे बिना। तब की उसकी स्थिति-गति जाने बिना। ऐसी स्थिति में सीता को कानूर लौट जाने के लिए कहना खतरनाक है, सोचकर चुप हुआ। उसने शायद यह भी सोचा होगा कि गहराई देखे बिना कुएं में समाना हुआ यह तो!

७९

सेरेगारजी फरार

जीवन करीव एक साल सरका था। सोम घाट के नीचे जाकर मजदूरों को लाया था। नये स्थान-मान के योग्य पोशाक से सुशोभित हो, दक्षता से काम चलाते सोम 'केलकानूरु सेरेगार सोमय्य सेट्टजी' के अभिधान से सर्वत्र प्रसिद्ध होकर लोगों के गौरवादर के पात्र हो रहा था। उसका नक्षत्र जैसे-जैसे ऊपर चढ़ रहा था वैसे-वैसे कानूरु रंगप्प सेट्टजी का नक्षत्र पश्चिम में उतर रहा था। कुछ मजदूर उनसे बिना कहे, बिना बताये घाट के नीचे कूद गये थे।

एक दिन सवेरे की सुनहरी धूप हूवय्य के कमरे की खिड़की में से अंदर आकर मेज पर रखी कुछ सोने की वस्तुओं पर पड़कर उज्ज्वल हो गई थी। हूवय्य ने पुट्टण्ण को पुकारा और एक वस्त्र में सब आभूषणों को बांधा और वह आभूषणों की गठरी उसके हाथ में देकर कहा, "सुब्बम्मा के हाथ में यह गठरी देना और कहना कि इसे हूवय्य ने भेजा है। उनको उनकी गठरी सौंपकर जल्दी आ जाओ।"

"देकर, वैसे जंगल की तरफ भी जाकर आऊंगा। सुनता हूं कि सूअरों का झुंड आया है। कल हमारे सेरेगार की तरफ से मजदूर टोकरी बनाने के लिए बेंत लाने उस ओर गये, तब उन्होंने देखा, कहते हैं।" कहकर पुट्टण्ण ऐसे हंसा कि दांत दिखाई देने लगे। फिर खिड़की के उस पार दूर में दिखाई देने वाले घने पेड़ों से भरी पर्वत श्रेणी को आशा से देखा।

"कुछ भी करो। तुमको तो तीनों समय शिकार!" कहकर हूवय्य ने सूक्ष्म इशारे से अपनी असम्मति दिखाई, पुट्टण्ण ने उसे सम्मति माना। फिर उसने कहा, "कारतूस नहीं हैं।"

"दस कारतूस दिये थे परसों, तरसों।"

"उस दिन त्योहार के शिकार में बाघ को मारने में खर्च हुए न? एक ही एक छर्रे का कारतूस है।"

"तुम्हारे मारे बारूद और कारतूस नहीं बच पाते।" कहते हुए हूवय्य ने अलमारी में से निकालकर पांच मनोहर कारतूस दिये और कहा, "अब फिर बार-बार मत मांगो! सावधान!"

पुट्टण्ण आनंद से कारतूस लेकर, वंदूक कंधे पै रखके, हाथ में आभूपणों की गठरी पकड़कर, कुत्तों को बुलाते हुए कानूर की ओर चल पड़ा।

सुव्वम्मा ने वार-वार कानूरु सेरेगार जी, ओवय्य, पुट्ट, वेलर सिद्द, आखिर ऐरे-गैरे द्वारा आभूपण लौटाने के लिए कहला भेजा था कि मेरे आभूपण मुझे भेजे जाएं। सेरेगारजी से कहला भेजना शुरू होने से हूवय्य को शक हुआ था कि सुव्वमा ने सचमुच कहला भेजा है कि नहीं। इसलिए ऐरे-गैरे के हाथों में देकर भेजना उचित नहीं समझा। हूवय्य ने कहला भेजा था कि सुव्वम्मा ही आकर ले जायं। लेकिन हेग्गडिति खुद जाकर लाने की परिस्थति में नहीं थी। इसीलिए वह नहीं आई। उसने इस अर्थ की अफ़वाह फैला दी थी कि हूवय्य आभूपणों को गवन करना चाहता है। इसीसे हूवय्य को उसके प्रति जुगुप्सा उत्पन्न हो गई थी। इसलिए हूवय्य ने आभूपणों की गठरी पुट्टण के द्वारा सुव्वम्मा को ही देने के लिए भेज दी थी।

सुव्वम्मा को आभूपण अपने शृंगार के लिए नहीं चाहिये थे, मगर चाहिये थे अपमान से पार होने के लिए। सेरेगारजी के सहवास से उसका पेट आगे आया था!

सुव्वम्मा अपने अनुमान से भी ज्यादा गहरे कुएं में गिर गई थी। विधवा वनी वह गर्भिणी वनी तो असहनीय अपमान हो जाता है। जात से वाहर डालते हैं। शिशु हत्या करने से कड़ी सज़ा देते हैं। घराने के नाम पर वट्टा लगता है। अपने माता-पिता एवं सगे-संवंधियों को सिर उठाकर चलना भी दूभर हो जाता है। समाज से तिरस्कृत होकर, कुत्ते की तरह जीकर मरना पड़ता है। ये सारे विचार उसके मन में आ गये थे। लेकिन विवेक को चकनाचूर करके झपटी काम लालसा; मैं जन्मतः वांझ हूं, इसलिए मैं [illegible] नहीं करूंगी—इस विश्वास ने उसे धैर्य दिया था। उसको याद था कि उसका [illegible] हमेशा उसे 'वांझ-वांझ' कहके शाप देता था। वह सुव्वम्मा को वरदान की भांति दीखकर संतोप हुआ था। इसके साथ-साथ नीचे जार जो रंग-रंगीन जाल फैलाता था उसका आकर्षण भी था। जिस तरह नाग का फन पंछी को मोहमुग्ध कर अपनी ओर खींचता है वैसे वह जार उसे खींच रहा था।

पहली वार, हृदय धड़क रहा था। डर-डर के आंसू वहाती, तो भी, पाप से दूर रहने के लिए वेमन होकर भी आगे वढ़कर [illegible] के भीतिकर भंवर में फंस गई थी। एक वार पाप कर्म हो जाने के वाद [illegible]से, भय से, "हाय! उसे मिटा सकती तो आइंदा ऐसा काम करने नहीं जाती" कहकर हृदय को निचोड़ लिया। सेरेगारजी को द्वेप भाव से देखकर अपने दृढ़ [illegible] को सुना दिया।

लेकिन वह जन्मजात जार दूसरे दिन भी [illegible] रात को पिछवाड़े के दरवाजे को खटखटाने लगा। सुव्वम्मा को वहुत गुस्सा आया। सोचा 'चोर! चोर!'

कहकर पुकारूं। लेकिन वह बदमाश कुत्ता पिछली रात की घटना को प्रकट करे तो! डटकर, बिना चिल्लाये पिछवाड़े के दरवाजे के पास जाकर गुस्से से लौट जाने को कहा। मगर सेरेगारजी और भी जोर से दरवाजा ढकेलने लगे। शोर औरों को सुनाई पड़े तो ख़ैर नहीं जानकर, डर के मारे उसने दरवाज़ा खोला।

उसके बाद न, न करते ही दरवाजा खोलती धीरे-धीरे। पाप कर्म ही रोजाना आम आदत हो गया। पहले का संकोच, भय, पछतावा सब गायब हो गये। नवा-नुराग में अभिरुचि बढ़ी।

थोड़े समय में जब सुब्बम्मा को मालूम हो गया कि वह खुद गर्भिणी बन गई है तब एकांत में बिलख-बिलख रोई। सब भगवान-भूतों की मनौती मानी। सेरेगारजी से भी कहा कि खुदकुशी कर लूंगी। उन्होंने "डरिये मत। इसका इलाज गंगा जानती है। किसीको मालूम हुए बिना काम किया जाय तो बस।" कहकर धीरज बंधाया। लेकिन गंगम्मा, और सुब्बम्मा के बीच बैर होने से शायद सेरेगारजी मौखिक सांत्वना की बातें करते थे। मगर उन्होंने दवा लाकर नहीं दी। लेकिन सुब्बम्मा दवा जल्दी लाकर देने के लिए, अपने को उबारने के लिए गिड़गिड़ाकर याचना करने लगी। जैसे-जैसे एक-एक दिन बीतता गया वैसे-वैसे उसका उद्वेग अधिकाधिक होकर बढ़ने लगा।

अंत में सेरेगारजी ने रहस्य खोल दिया। गंगा को दक्षिणा दिये बिना वह दवा नहीं देगी! सुब्बम्मा ने लाचार होकर अपने एक सोने का कंगन सेरेगारजी के हाथ में रख दिया। तो भी दवा नहीं आई।

कुछ महीने बीत गये। सुब्बम्मा का पेट आगे उभरकर दीखने लगा। अब लोगों की दृष्टि से अपने को बचाना मुश्किल जानकर, उसने यह बहाना करके कि स्वास्थ्य ठीक नहीं है, अपने अंधेरे कमरे में बिस्तर पकड़ा। दिन को बाहर आती ही नहीं थी। जब बाहर कोई नहीं रहता तब अत्यंत गुप्त रूप से आती थी। उसके कष्ट, उसकी यातना, मनोनरक शिव को ही मालूम!

अपने पास के सभी गहने एक के बाद एक सेरेगार जी को दिया। तो भी दवा नहीं आई। गंगा इतने से तृप्त नहीं हुई समझकर एक के बाद एक आदमी को भेजकर हूवय्य से आभूषणों की गठरी मंगवाकर सेरेगारजी के द्वारा गंगा को देने के लिए सेरेगारजी के हाथ में रख दी। उसकी दूर दृष्टि को नहीं सूझा कि सेरेगारजी ही उसके सारे आभूषणों को लूटने के लिए गंगा के साथ षड्यंत्र कर रहे हैं।

सभी गहने समाप्त हुए, सेरेगारजी को पूरी तौर से मालूम हो जाने के बाद एक दिन रात को घर के पिछवाड़े के दरवाजे से गंगा और सेरेगारजी दोनों ने घर में प्रवेश किया···

दूसरे दिन रंगप्प सेट्ट जी रामय्य के पास गये, अच्छी तरह मीठी-मीठी बातें

करके "मेरे मज़दूरों में कुछ काम छोड़कर चले गये हैं; नये मज़दूरों को लाना है; इसके लिए तीन सौ रुपये चाहिये, पेशगी दें दें तो कृपा होगी; हूवय्य ने रामय्य से बदला लेने के लिए ही सोम को पेशगी देकर मजदूरों को बुलवा लिया है; और सोम को सेरेगार बना दिया है; उस छिनाल के बहकाने से ही मेरे मज़दूरों में से कुछ भाग गये; दस-पंद्रह दिनों में मज़दूरों को साथ में बुला ले आऊँगा; तब तक मेरा प्रतिनिधि कानूर के मज़दूरों की देख-रेख करेगा।" कहकर रुपये लेकर गये।

उसी दिन दुपहर को रंगप्प सेट्टजी ने रामय्य से लिए रुपये और सुब्बम्मा से लूटे गहने आदि वस्तुओं की गठरी बांधकर गंगा के साथ घाट के नीचे की ओर अंतिम प्रवास किया। सुब्बम्मा को सेरेगारजी के प्रवास की बिल्कुल जानकारी नहीं थी।

उसी दिन रात को सेरेगारजी की गुप्त कड़ी आज्ञा के अनुसार उसके सभी मज़दूर गठरी-बिस्तर बांधकर फरार हो गये। दूसरे दिन रामय्य को धोखा देकर सेरेगारजी और उनके मजदूरों के जाने की खबर फैल गई। रामय्य पागल की तरह बंदूक लेकर, "फरार हुए लोगों को पकड़ लाऊंगा," कहकर कुछ बेलर नौकरों के साथ तीर्थहल्ली एवं कोप्प जाने वाले रास्ते में बेकार भटककर, थका-मांदा हो वापस आया। सदा मौन रहने वाले रामय्य के आज के बर्ताव को देख लोग आपस में कहने लगे कि चंद्रय्य गौड़जी पुत्र में आये हैं!

सुब्बम्म को यह मालूम हो जाने पर कि सेरेगारजी, गंगा और मजदूर फरार हो गये हैं और उसने अपने दांत पीस लिये, सेरेगारजी की पैशाचिकता उसके आगे कराल दिगंबर होकर खड़ी हो गई।

गंगा ने सुब्बम्मा के हाथ में दवा देकर कहा था—"इसे पूनम के बाद लेना चाहिये। मैं खुद आकर पिलाऊंगी।"

सुब्बम्मा की सारी आशा-आकांक्षाएं भयंकर हो गईं। तालाब, कुआं, फांसी आदि उसके मन में चक्कर काटने लगे। लेकिन उसको अपमान से पार होने की आशा थी। मगर मरने की इच्छा नहीं हुई। मरने पर भी क्या सुख मिलेगा? वहां चंद्रय्य गौड़जी हैं। वहां यमदूत हैं; वे गरम की हुई लोहे की मूर्ति का आलिंगन करने की सजा देंगे! नरक का वर्णन सुनकर विश्वास करने वाला ऋषि भी मृत्यु से डरे बिना नहीं रहेगा। तब बेचारी सुब्बम्मा की बात ही क्या?

सुब्बम्मा ने गंगा की दी हुई दवा खुद लेने का निर्णय किया। लेकिन उसे किस प्रमाण में लेना चाहिये, किस तरह लेना चाहिए, सुब्बम्मा को मालूम नहीं था। इसलिए वह प्रमाण से ज्यादा हुई।

रात के करीब बारह बजे थे। दुमंजिले पर रामय्य के साथ ओबय्य सोया था। उसको स्वप्न में किसी का कराहना सुनने का-सा भास हुआ। वह जाग गया। रात के शांत वातावरण में किसी के कराहने की आवाज़ वास्तव में सुनाई पड़ी।

वह भय से चौंककर विस्तर पर वैठ गया। कान लगाकर सुनने लगा। कराहने की ध्वनि साफ़ सुनाई पड़ी। क्या प्रेत-पिशाच तो नहीं? उसने सुना था कि वे वैसा करते हैं। नीचे के घर से ध्वनि आ रही है। क्यों न हो? भूत घर में आकर न कराहेगा? सोच ही रहा था कि कराहने के वीच में हृदयविदारक चीत्कार भी सुनाई पड़ा। रात के ही मानो रोंगटे खड़े हो गये! ओवय्य को अकेले नीचे जाने में डर लगा। उसने लालटेन जलाकर रामय्य को जगाया।

रामय्य ने भी कान लगाकर सुना। भीति-आशंकाएं उसके चेहरे पर मुद्रित हुईं। दोनों धीरे से नसैनी की सीढ़ियों से उतरे। कराहना। चीत्कार के वीच-वीच में "आह! मर गई रे! छिनाल का शौहर वरवाद हो गया न! वदनसीव मुंडा!" इत्यादि कठोर पुकारें सुव्वम्मा के कमरे से सुनाई देने लगीं। पुट्ट, रसोइया दोनों, जो वैठक में सोये थे, डर के मारे पसीना-पसीना होकर उठकर आये!

सुव्वम्मा का कमरा वंद था। कितना पुकारा, ढकेला, तो भी दरवाजा नहीं खुला। दूसरी ओर जाकर देखा, वहां खिड़की भी वंद थी। कराह, चीत्कार, शाप, भयानक हो, भीतर से सुनाई पड़ते थे। अनिर्दिष्ट उपाय भावना दुगना डरावनी होती है। वाहर वाले ऐसे खड़े थे मानो तलवार की धार पर खड़े हैं।

ओवय्य भागकर जाके कुल्हाड़ी लाया, उससे धड़ार-धड़ार दरवाजा तोड़ने लगा। पांच ही मिनटों में दरवाजे में दरारें पड़ीं और उनमें से कमरे के भीतर की लालटेन की रोशनी लाल गरम हुए लोहे की रेखा-सी दीख पड़ी। एक और मार! और एक मार! फिर एक! फिर एक! दरवाजे में वड़ी दरार पड़ गई। कमरे की रोशनी वाहर प्रवाह की तरह वढ़ आई। वाहर वाले भीतर घुसे।

अंदर झपट रामय्य "आह! ओवय्य!" चीत्कार करके पीछे हटकर खड़ा हो गया जैसे उसके सिर पर गाज गिरी हो। कितना वीभत्स था वह दृश्य।

दुर्वल, दुर्वल मनस्क वने रामय्य का दिमाग मानो हिल-सा गया। रक्तस्राव, लाल मृत शिशु का शरीर, वमनकारक वदवू, औरत की अस्त-व्यस्त स्थिति, रुलाई, चीत्कार, कराह, उश्शाप आदि एक-एक करके दिमाग में भरकर तांडव करने लगे। वह दिङ्मूढ़ हो गया। वहां खड़ा न रह सका। लड़खड़ाते वैठक में गया। अंधेरे में वह एक खंभे के सहारे खड़ा रहा। सुव्वमा के हाहाकार की पुकार के वीच-वीच में ओवय्य की वातें अस्पष्ट सुनाई देती थीं जैसे मन के दूर के दिगंत में से आने वाली वातें।

सुव्वम्मा के शाप, ओवय्य की वातों से सेरेगारजी के मजदूरों के साथ भाग जाने का कारण रामय्य को अव मालूम हुआ। उसको ऐसा लगा मानो किसी ने उसकी छाती में छुरी भोंक दी हो। उसने सोचा, घर की इज्जत मिट्टी में मिल गई। उसको लगा कि आइंदा होने वाले अपमान के आगे जिंदा रहना भी मरण के समान है। वहुत समय से उसके मन में झांकती, घात में वैठी आत्महत्या की

पिशाचिका ने उसके आगे साकार खड़ी होकर ललकारा। जीवन का बोझ अपनी रीढ़ के बल से भी अधिक भारी लगा। जीवन की जटिल समस्या को सुलझाना उसे कठिन-सा लगा। मृत्यु मुक्ति का स्थान जैसा लगा। अंधेरे में ही दुमंजिले पर गया, एक बोतल को ढूंढ़ निकाला मंद प्रकाश में, पहले कई बार पीने का प्रयत्न करके बिना पिये छोड़ दिया। मगर अब गले में पूरा उतारकर कमरा बंद करके कंबल लपेटकर ज़मीन पर ही एक कोने में पड़ा रहा।

८०

मृत्युमूर्ति के आगे

रात के करीब साढ़े चार बजे थे। पुट्ट वेलर सिद्द के साथ केलकानूर आया और हूवय्य के कमरे की खिड़की के आगे ठहरकर "अय्या! अय्या! अय्या!" कहकर एक ही सांस में पुकारकर बुलाया। हूवय्य घबराहट से उठा और बाहर आकर पूछा तो पुट्ट ने हांफते, तुतलाते, हकलाते, भय से कहा—"आपको तुरंत आना चाहिए कानूर।"

"किसने कहा?"

"ओवे गौड़ जी ने।"

"क्यों?"

प्रत्युत्तर के बदले रोते हुए बोले—"दोहाई है, आइये। जरा उपकार कीजिये।"

"क्या है रे सिद्द?" पूछा हूवय्य ने।

लालटेन पकड़कर, कंबल ओढ़े खड़े सिद्द ने कहा—"मुझे नहीं मालूम मालिक! में सोया था, आकर बुलाया, और 'केलकानूर जाकर आओ,' कहा, मैं आ गया।"

हूवय्य ने सोचा कि कुछ गड़बड़ी हुई होगी अनुमान करके पुट्टण्ण और सेरेगार सोमय्य सेट्टजी को साथ लेकर सीधे वह कानूर गया।

उनको देखते ही हूवय्य को मात्र अलग बुलाकर ओवय्य ने जो घटा था सो सब संक्षेप में सुनाया। हूवय्य ने कमरे में जाकर देखा तो सुब्बम्मा की लाश नीरव हो पड़ी थी। घराने के नाम पर बट्टा न लगने पावे, इस ख्याल से ओवय्य ने बलात्कार के प्रसव का चिह्न और मृत शिशु के कलेवर को अस्तित्व से मिटा दिया था।

हूवय्य ने पूछा, "रामय्य कहां?"

"दुमंजिले में कमरा बंद करके सो गये हैं। बहुत, बुलाया जोर से पुकारा, बोले ही नहीं, हां नहीं, हूं भी नहीं।"

ओवय्य की बात सुनकर उसांस छोड़कर, आंखें फाड़कर हूवय्य दुमंजिले पर

गया। अन्य लोगों ने भी पीछा किया। रात को जो सपने में देखा था वह दिन में सत्य-सा प्रतीत हुआ था।

रामय्य को पुकारा, दरवाजे पर मुक्का मारा, दबाया, पर दरवाजा खुला नहीं। खिड़की में दीया धरकर देखा तो रामय्य कंबल ओढ़कर सोया हुआ दीख रहा था। नेल्लुहल्ली, मुत्तल्ली, सीतेमने, तीर्थहल्ली को नौकरों को भेजा।

नक्षत्र मुरझा गये थे। ठंडी हवा बही, काजाण पंछी के सुमधुर गान के साथ पौ फट गयी। वस्तुओं का थोड़ा-थोड़ा रूप दिखाई देने लगा। लालटेन का प्रकाश मंद पड़ गया। काफी रोशनी होने के बाद खिड़की में एक लंबी बांस भीतर डाल-कर साहस करके अगड़ी निकालकर दरवाजा खोल देखा तो रामय्य कंबल से लपेटा हुआ शव हो गया था।

"आह! भैया क्या कर दिया तुमने? क्यों उतावली की।" कहकर हूवय्य रोते रामय्य के शव को पागल की तरह गले लगाकर, व्यवहार करने लगा। सुब्बम्मा के शव को देखने से उतना दुःख नहीं हुआ था, लेकिन भाई का शव देखने से उसको ऐसा लगा मानो उसका हृदय कोल्हू में डाल दिया गया हो।

नौ बजने के पहले सभी रिश्तेदार आ गये। पुलिस से बाहरी सुनवाई, डाक्टर से शव परीक्षा आदि दुखकारी अपमान से पार होने के लिए सिगप्प गौड़जी पेद्दगौड़ जी, चिन्नय्य, उस ग्राम के पटेल आदि सबने मिलकर सरकार की आंखों को सही जंचने लायक विषयों की, मामले की रचना करके संगठन करके आगे का काम पूरा किया।

उस दिन से हूवय्य किसी से बिना बोले, खाने-पीने के लिए घर भी आये बिना पहाड़ों, जंगलों में पागल की तरह घूमने लगा। यदि कोई उसे सांत्वना देने के लिए आवें तो अपना आसन छोड़कर दूसरी तरफ जाता था। ओबय्य, पुट्टण्ण, सेरेगार सोमय्य सेट्टजी तीनों उससे थोड़ी दूर में रहकर उसकी रक्षा के लिये, उसे खतरे से बचाने के लिए तत्पर रहने लगे। तीसरे दिन सोमय्य सेट्टजी ने अपने मालिक को खाये-पिये बिना, नींद-विश्राम के बिना, मैदान में सोकर-जाग-कर क्षीण होते देखकर, न सहकर रोते उसके पांव पकड़कर घर आने के लिए हठ किया। हूवय्य बोला नहीं। बाह्य प्रज्ञावालों की तरह भी बरता नहीं। सेरेगारजी ने अपने मालिक के मन को पिघलाने के लिए खुद उसके बगल में रहते उपवास करने का संकल्प किया। लेकिन सिगप्प गौड़जी ने वैसा करने नहीं दिया।

पांचवें दिन सीता वासु और पुट्टम्म के साथ जाकर कानुबैलु के शिखर पर विद्यमान चट्टान पर बैठे हूवय्य से मिली। सीता तब तक कानूर नहीं आई थी। कानूर में हुई मृत्युओं के बारे में वह एक तरह से अवज्ञा में थी। लेकिन हूवय्य के दुःख, उपवास, अपाय स्थिति की बातें सुनकर कातर हो कानूर दौड़ आई थी।

तब तक हूवय्य किसी से बोला नहीं था, कहते हैं कि उनके द्वारा कहला भेजा, "कल सवेरे आता हूं।"

हूवय्य घर तो आया लेकिन वह पहले का हूवय्य नहीं था। सुब्बम्मा की मृत्यु, बहुत समय से प्यारे बने अपने भाई की आत्महत्या, पांच दिन लगातार किया तप, गंभीर ध्यान उसको आत्म-साधना के मार्ग में और भी दूर ले गये थे। वह चले तो ऐसा लगता था कि मानो पहाड़ चलने लगा है। बोलता तो ऐसा लगता था मानो समुद्र ही बोल रहा है। देखता तो लगता था मानो नीलाकाश ही देखता है।

क्रिया-कर्म पूर्ण हो जाने के उपरांत एक महीने में फूटकर दो बनी कानूर की दो जायदादें फिर एक हुईं। हूवय्य को केलकानूर से कानूर को अपना निवास ले जाना पड़ा।

सीता भी अपने दूसरे प्राण की तरह रही लक्ष्मी के साथ कानूर आकर बस गई जिसे देखकर कई लोगों को आश्चर्य हो गया। उसका और हूवय्य का जीवन उदरस्पर्श की परवाह किये बिना परस्पर प्रेम की दो आत्माओं का प्रोज्ज्वल जीवन हो गया था। उनके प्रेम के लिए रूढ़ि के बंधन के शास्त्रक्रम का अवलंबन अनावश्यक था। उसके लिए संपर्क सुख की अपेक्षा सान्निध्य का पवित्र मधुरतर आनन्द ही प्रिय था, वह शुद्ध हो, आत्मा से संबंधित हो, अतींद्रिय हो गया था। उस सोने के पत्थर पर कहीं भी कालिमा की रेखा दिखाई देने पर तुरंत दोनों प्रयत्न से उसका निवारण करते थे। जलनेवाली बाती के छोर(नोक)पर कालिमा हो जाय तो उसको काटकर दीये की लौ की नोक और उज्ज्वल, चमकदार प्रकाशमान बनने की तरह।

८१

दस वर्षों के बाद

पहाड़ी प्रदेश में नवजीवन आया। उसका प्रधान कारण था काल महिमा। फिर भी कानूरु, मुत्तल्ली, सीतेमने तथा चारों ओर के देहातों में हूवय्य का प्रभाव भी गण्य था। महिलाओं में तपस्विनी के स्थानमान, गौरव आदि के पात्र सीता के प्रभाव ने भी चुपचाप, शोर मचाये विना, कोलाहल के विना काम किया था।

कानूरु एवं मुत्तल्ली के वीच में, रास्ते के नजदीक, जंगल में रही ताड़ी-शराव की दूकान ढह गई थी। चार-पांच ग्रामों के लिए अनुकूल स्थल पर एक अस्पताल, एक स्कूल, एक डाकघर, और कुछ दूकानों की निर्मिति हो गई थी जहां कार्य समुचित रूप से चलने लगा था। पहले वाईसिकिल चलाने के लिए भी अनुकूल रास्ता नहीं था, अव वही रास्ता मोटरों, वसों की दौड़-धूप से ऊव गया था। स्वदेशी सामान एवं खादी का भी प्रचार हो गया था। गांधी टोपियां भी वार-वार आकर भाषण दे रही थीं। साक्षर वने लोग समाचारपत्र पढ़ने का अभ्यास करके दुनिया के विचारों के वारे में वोलते थे। माटी-मनौती, भूत की पूजा आदि मूढ़, अंधआचारों के वदले उत्कृष्ट मत-विचार, धर्म विधान आचरण में आ रहे थे। जंगल में नागरिकता ने पग रखा था।

कानूर में हूवय्य के सतत प्रयत्न से वेलर, सेरेगार सोमय्य सेट्टजी (वह कन्नड़ जिला जाकर विवाह करके आये थे, विवाह के वाद दो-तीन वर्ष वीत गये थे), घाट वाले मज़दूर भी—जो भेड़ों के झुंड की भांति घर वनाकर सूअरों की तरह वास करने के वदले सुव्यवस्थित छोटे-छोटे घरों में, जितना हो सके, साफ जीवन चला रहे थे—वीमार पड़ने पर ज्योतिषी के यहां जाने के वदले अस्पताल जाना सीखा था। निंग का पुत्र पुट्ट सीता के प्रयत्न से साक्षर हो, विवाह करके केलकानूर में खेतीवारी कर रहा था। अव उसे शिकारी पुट्टण्ण से अलग पहचान के लिए 'छोटे पुट्टण्ण' कहकर पुकारते थे। कानूर के घर में परिवर्तन करके उसमें नयापन लाया गया था। मगर उसमें हूवय्य नहीं रहता था।

पहले हलेपैक का तिम्म जहां चंद्रय्य गौड़जी तथा रंगप्प सेट्टजी को ताड़ी उतार कर देता था, उस ऊंचे कानुवैलु में एक सुन्दर मंदिर वनवाकर वहां कर्म-

योगी हो, तपस्वी हो, रहता था हूवय्य। ओवय्य विवाह किये विना भक्ति से हूवय्य का किंकर वनकर उसकी सेवा करता रहता था। कुछ लोग जो उससे मिलते थे, उसके गौरव को देख कहते थे, "सारे मुंह पर चेचक के दाग हैं ! एकाक्षी है ! उसके विकार को देख कौन उसे अपनी कन्या देगा ? कन्या के न मिलने से, भेस वदलकर विल्ली की तरह संन्यास लिया है !" पुट्टण्ण पहले की तरह शिकारी वना रहा, मगर तीर्थहल्ली से पढ़ाई पूरा करके लौट आकर, सीता की वहन लक्ष्मी से विवाह करके, कानूर में वसने वाले वासप्प गौड़जी का मंत्री वनकर, उसके काम-काज में मदद करता रहा। उसने भी ओवय्य की तरह हूवय्य के साथ रहने का प्रयत्न किया था। मगर शिकार के पागलपन से दूर हुए विना गिरि के शिखर पर वने मंदिर के पास वने घर में रहना मुश्किल था; अतः वहां से फिसल गया था। शिखर पर के मंदिर के पास के घर की सर्दी-हवा से कंदरा के घर का गरम आंचल ही उसको सुखदायक था। उसके घर की तव्दीली-तुव्दीली के प्रति सभी गिला करके हंसते थे। कहते हैं कि सर्दी और खांसी का वहाना करके वह ऊपर से उतर नीचे के घर आया था और फिर ऊपर गये विना उसने औरों से अपने कपड़े आदि मंगा लिये थे ! कानूर की नई वहू लक्ष्मी देवी तो जव-जव समय मिलता पुट्टण्ण का मज़ाक उड़ाकर सताती थी। उसके वदले में वह राग ध्वनि में "वस, चुप रहिये अम्मा, मैं जानता हूं 'मैं भी जीजी की तरह रहती हूं, रहती हूं, कहती रहीं', आखिर कुछ भी कहे-सुने विना वासप्पगौड़जी के साथ विवाह पीढ़े पर कौन वैठी, आप या मैं ?" इस तरह कहकर चिढ़ाता था। लक्ष्मी को ऐसी वातें सुनने में मजा आता क्योंकि ऐसी वातें उसे प्रिय लगतीं। इसीलिए वह उसको चिढ़ाती थी।

वैशाख मास की पूर्णिमा की रात वीत चुकी थी। रमणीय प्रातःकाल धीरे-धीरे पग रखते आ रहा था। कानूर के घर से कानुवैलु के शिखर तक जाने के लिए एक टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता वना था। उस रास्ते पर एक ऊंचा, वलवान, भद्ररूपी, मूंछों वाला एक युवक खद्दर का सफेद पाजामा, खद्दर का पंजावी कुरता पहने, पावों में मैदानी प्रदेश की पतली चप्पल डाले, कंघी से अच्छी तरह संवारे चमकते क्रॉप से सुशोभित हो निरायास कूदते, फांदते, चलते शिखर के मंदिर की ओर वढ़ रहा था। उसके वगल में दो छोटे वालक उसी की तरह पोशाक पहने, क्रॉप को संवारकर, किलकारी भरते आ रहे थे मानो स्पर्धा करते आ रहे हैं। एक तो मुत्तल्ली के चिन्नय्य गौड़जी का पुत्र, ग्यारह वर्ष का, रमेश था; दूसरा उससे ज़रा वड़ा, सीतेमने सिंगप्प गौड़जी का पुत्र शंकरय्य था।

रमेश आगे जाते हुए युवक का हाथ पकड़कर "छोटे मामाजी, मैं ही जीता ! शंकर पीछे रह गया।" कहकर सफेद प्यारे दांतों का प्रदर्शन करते अपने कोमल लाल-लाल होंठों को खोलकर हंसा।

शंकर भी पीछे से बोला, ' मेरे पैर में कांटा चुभ गया, मैं क्या करूं ?"

इतने में चिन्नय्य के साथ धीरे-धीरे आते हुए, पकते हुए बालों के सिंगप्प गौड़जी ने "ओ वासप्पा !" कहकर, टेढ़ी नज़र से देखकर कांसे की ध्वनि से पुकारकर बुलाया।

आगे जाते हुए युवक ने और दो बालकों ने घूमकर खड़े होकर, पहाड़ के उतारू रास्ते की ओर देखा।

सिंगप्प गौड़जी ने फिर जोर से पुकारकर कहा, "ठहरो, महाराया। हम भी आते हैं। क्या नवयौवना से ब्याह करने के उत्साह में तुमको पहाड़ पर चढ़ना एक खेल-सा हो गया है !" फिर आगे बढ़ने लगे।

सिंगप्प गौड़जी की पुकार सुनकर, घूमकर खड़ा वासप्प अपनी ओर धीरे से चढ़कर आने वालों को देखने वाले की तरह अभिनय करता था। मगर उसकी नज़र सचमुच दूसरी ओर लगी थी। पीछे खड़े होकर देखते ही उसकी दृष्टि पुट्टम्मा की छः वर्ष की लड़की ललिता का हाथ पकड़कर, उसे चलाते आती खादी साड़ी पहनी सीता पर पड़ी, उसके बाद, एक वर्ष के मुन्ने को उठाकर आती हुई पुट्टम्मा पर पड़ी। और उनके साथ ही सिंगार करके वसंत श्री के समान नीली रेशम की साड़ी पहनकर आती अपनी नूतन रति लक्ष्मी देवी पर पड़ी थी। सिंगप्प गौड़जी के पके अनुभव को यह मालूम हुए बिना न रहा। वासप्प के कुछ पास आकर वे बोले, "बस करो रे ! कितना देखना ? दीठ लग जाय तो ! घूमो, जायं।" इस तरह कहके मज़ाक किया।

वासप्प शरमाकर फिर आगे बढ़ते हुए "चाचाजी, आप चुप रहें। मैं सब कुछ जानता हूं। आप जब युवा थे तब कितने संयमी थे ? अगर आप भूलते हों तो, हूवय्य भाई से पूछ लीजिये। वे कहेंगे !" कहकर वासप्प ने सुनहरी धूप में उड़ते रंगबिरंगे पतंगों को पकड़ने का प्रयत्न करने वाले लड़कों को पुकारा, "आओ रे, आओ। देर हो गई।"

"देर हो गई", सुनकर पीछे थोड़ी दूर पर आती हुई पुट्टम्मा ने कहा, "लक्ष्मी, मधू को ज़रा उठा लोगी ? मैं थक गई हूं।"

"मैं भी थकी हूं।" कहकर आगे जाती हुई लक्ष्मीदेवी ने पीछे घूमकर भी नहीं देखा। तन्दुरुस्त, रसभरी उसको वास्तव में थकावट नहीं हुई थी। बच्चे को उठाकर चढ़ने लगती तो भी थकावट नहीं होती थी। मगर बच्चे को उठा लेने से अपना बनाव-सिंगार बिगड़ जाने की और साड़ी गंदा होने की चिन्ता थी। यही उसका राज था।

सीता को अपनी बहन का भाव मालूम हुआ। तब उसने "बस, बस ! उठा लो। अभी इस तरह हो तो आगे कैसे ?" कहके लाड़ से धमकाया।

पुट्टम्मा ने "आगे कैसे री ? उसकी लड़की को या लड़के को उठाने के लिए

एक दासी चाहिये, लगता है। वासु से अभी कहना ठीक होगा" कहकर आगे थोड़ी दूर पर जोर से बातें करते जाने वाले पुरुषों का समूह देखकर "वासू ! ऐ वासू !" कहकर पुकारा।

वह पुकार किसीको सुनाई नहीं पड़ी। तो भी लक्ष्मी, झट लौट के दौड़कर आई तथा भाभी का मुंह दबाकर "दुहाई है ! चुप रहो जी, तुम्हारी कृपा।" कहकर अपनी दोनों अलंकृत बांहों को फैलाकर "मधू, आओ" कहकर, मधु को उठाकर गोद में ले, जोर से ऊपर चढ़ी।

सोमय्य सेट्टजी के मजदूर, वेलर, चारों ओर के देहातों के कुछ अच्छी हालत के लोग भी, वासु के सहपाठी, अग्रहार के वेंकप्पय्य के दो वेटे भी, और भी कई लोग वुद्ध जयंती के उत्सव के लिए आये थे। उनसे हरे वंदनवारों से अलंकृत, विविध सुगंध द्रव्यों की खुशवू से भरे, तपोवन के समान सुशोभित मंदिर खचाखच भर गया था। वासु अपने ब्राह्मण मित्रों से कुछ तरल सुलभ अट्टहास से वोलने लगा। सिंगप्प गौड़जी परिचित लोगों से वारिश, फसल आदि के वारे में, स्वास्थ्य के वारे में वातचीत करने लगे। सीता, पुट्टम्मा, लक्ष्मी तीनों महिलाओं के समूह में जाने के पहले हूवय्य के कमरे में गई। सीता ने रूढ़ि के अनुसार हूवय्य के चरण छूकर नमस्कार किया। हूवय्य ने अपने सामने के बुद्धदेव के चित्र को नमस्कार करके उसे गुरुदेव को अर्पित किया। फिर लक्ष्मी की गोद से मधु को लेकर, अपनी गोद में विठाकर चूमते वोला।

थोड़े समय के वाद उत्सव शुरू हुआ। वासु, उसके दो ब्राह्मण मित्र, शंकरय्य और रमेश वेदी के वगल में खड़े होकर नवजीवन का मंत्र गाने लगे। लक्ष्मी पीछे हार्मोनियम वजाते साथ दे रही थी। सीता जहां बैठी थी वहीं से मन से उसमें भाग ले रही थी। उस रमणीय वसंत के प्रभात में, शिखर कंदरमय सह्याद्रि की वनभूमि में नये उग आये दिनमणि की कांचन कांति में तोते, कामल्ली, काजाण, कोयल, पिकलार आदि पंछियों की ध्वनि के साथ मिलकर उस गान ने सुनने वालों को एक दूसरी नई आशा की दुनिया में वहा दिया :

उदय हो रहा है अभिनव दिनमणि का।
सुंदर सह्याद्रि श्रृंगावलियों पै ॥
रात बीती है हंसी पसरी है उषा की।
बह रही है लीला शीतल मंद पवन की।
गिरिवन प्रांत का मन मोह रही है
दिनमुख दिन की कांचन कांति,
जागो ! जागो ! वुला रही है, सुनो
ओ नवजीवन संक्रांति !
उदय हो रहा है नूतन युग देवी का

मिथ्या-मूढ़ता को चीर-फाड़कर ।
ज्ञान-विज्ञान की मति खड्ग धारिणी
सशरीर अवतरेगी नवकाली !
शूर विश्वासी तनमन पटुता का
संपादन कर ओ ऊपर उठो;
आंखें खोलो नव कांति, शांति को
ओ क्रांति के पुत्रो, जियो !

●●